हिमालय गाथा - 6

इतिहास



सुदर्शन वशिष्ठ

हिमालय गाथा (छह)

इतिहास

सुहानी बुक्स
प्रीत विहार, दिल्ली

हिमालय गाथा (छह)

इतिहास

सुदर्शन वशिष्ठ

ISBN—978-93-80927-31-2

प्रकाशक
सुहानी बुक्स
भूतल, 109, ब्लॉक बी, प्रीत विहार
दिल्ली-110092

संस्करण
2018

आवरण
निर्दोष त्यागी

मूल्य
नौ सौ पंचानबे रुपये

मुद्रक
बी०के० ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

HIMALAYA GAATHA (6) ITIHAAS (Hindi)
by Sudarshan Vashisth
Price : Rs. 995.00

मौखिक परंपरा ने बनाया इतिहास

इतिहासकारों का मानना है कि इतिहास प्रमाणों से बनता है। प्रमाण के बिना इतिहास एक लोककथा के समान है जिसे तथ्यपरक नहीं माना जा सकता। यह भी सत्य है कि आज जो इतिहास हमारे सामने है, उसे लिखने के लिए कितने साक्ष्य जुटाए गए हैं! यह इतिहास हमारे समक्ष एक लोककथा की भांति ही प्रस्तुत होता है। वैसे तो इतिहास में किंवदंतियों, जनश्रुतियों को यह कहकर नकार दिया जाता है कि इनसे इतिहास निर्मित नहीं होता, ये सब कपोल कल्पनाएं हैं। मगर इतिहास इन्हीं जनश्रुतियों पर आधारित रहा है, कम से कम हिमाचल के आज तक लिखे इतिहास के बारे में यह ठोक-बजाकर कहा जा सकता है। सभी इतिहास यूरोपियनों द्वारा लिखे गए हैं। हिमाचल के इतिहास पर एक ही पुस्तक है जो आज तक प्रामाणिक मानी जाती रही है और प्रामाणिक भी क्यों न मानी जाए क्योंकि यही एकमात्र पुस्तक उपलब्ध है। वह है हचिसन-वोगल द्वारा लिखित 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स'। इसके कई रीप्रिंट छापे गए। इस पुस्तक के रहते स्थानीय राजाओं के इतिहास पर जो संस्कृत, अरबी, फारसी या उर्दू व टाकरी में छपी हुई अथवा पांडुलिपियां उपलब्ध थीं, उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। अरबी, फारसी या उर्दू तो पढ़ने वाले ही नहीं रहे। अतः हचिसन वोगल को नकल करने की हद तक उतारने की परंपरा कायम हुई और कइयों ने तो ज्यों के त्यों ही उनके संदर्भ उतार दिए।

'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' में लोगों से सुनी-सुनाई कथाएं और जनश्रुतियां दी गई हैं, ऐतिहासिक तथ्यों का उसमें सर्वथा अभाव है। उनके इस इतिहास की हकीकत स्वयं उन्हीं की जुबानी बयां की गई है। हारकोट, जब कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर थे तो उन्होंने कुल्लू के इतिहास पर कुछ सामग्री एकत्रित की। निश्चित है, वह सामग्री स्थानीय लोगों में प्रचलित कथा-कहानियों से ली गई होगी। स्थानीय हस्तलिखित पांडुलिपियों से ली गई होगी। कुछ सामग्री हरदयाल से ली गई होगी जो अंतिम राय दलीप सिंह के पास तहसीलदार थे। हचिसन-वोगल ने लिखा है—'स्व. कर्नल (तत्कालीन कैप्टन) हारकोट अपनी 1871 में प्रकाशित पुस्तक 'कुल्लू, लाहौल एंड स्पीति' में वंशावली की ओर ध्यान दिलाने वाले पहले व्यक्ति थे। कर्नल हारकोट तीन वर्ष तक कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर रहे, जिससे उन्हें पूछताछ और अध्ययन का विशेष अवसर प्राप्त हुआ, जिसका उन्होंने भरपूर प्रयोग किया। जैसा कि उन्होंने कहा था, उनकी कुल्लू का इतिहास लिखने की इच्छा थी जिसके लिए उन्होंने सामग्री एकत्र की। ऐसा वे कर नहीं पाए और अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व पूरी पांडुलिपि हमारे हवाले कर दी। अतः हम कर्नल हारकोट के विशेष आभारी हैं।'

उक्त तथ्य से हचिसन वोगल द्वारा इतिहास लेखन में बरती गई ईमानदारी पर शंका

नहीं की जा सकती। बात लोकवार्ता में इतिहास के महत्त्व की है।

आगामी इतिहासकारों ने 'त्वारिख़ राजगान-ए-''' जैसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों की ओर ध्यान नहीं दिया। आज के समय में ऐसे स्रोत बेमानी हो गए क्योंकि कोई इन्हें पढ़ने वाला नहीं रहा। अभिलेखागार या पुस्तकालयों में ऐसे दस्तावेज महज कागज के टुकड़े हैं। कोई इन्हें पढ़ नहीं पाता। इनके अनुवाद उपलब्ध नहीं हैं। प्रदेश के भाषा-संस्कृति विभाग तथा हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी में रहते हुए मैंने ऐसी दुर्लभ पांडुलिपियों का अनुवाद करवाकर प्रकाशन का एक प्रयास किया था। इस प्रयास में कहलूर, हंडूर के उर्दू में इतिहास, 'त्वारिख़ राजगान-ए-पठानिया', रऊसा-ए-आ-इख्तियार व नाम खानदाने पंजाब', 'तारीख़-ए-सिरमौर' जैसी उर्दू-फारसी में प्रकाशित पुस्तकों का हिंदी व अंग्रेजी में अनुवाद करवाकर प्रकाशन करवाया गया जिससे ये दुर्लभ सामग्री सर्वसाधारण के लिए उपलब्ध हो सकी। अभी भी ऐसी सामग्री के अनुवाद की जरूरत है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात प्रदेश में उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों की है। साक्ष्य तो मौजूद हैं किंतु उनका तालमेल उपलब्ध इतिहास से नहीं मिलता। कुल्लू से प्राप्त पहली शताब्दी की मुद्रा में राजा 'वीरयश' कौन था, निरमंड ताम्रपत्र में उल्लिखित सेन वंशीय राजा कौन थे, रानी की आवक्ष प्रतिमा में लिखा लेख किस समय का है या देवताओं के मोहरों पर लिखे आलेख कब के हैं, यह अज्ञात है। राजाओं की वंशावली, अवधि अलग चलती है और ये साक्ष्य एकदम अलग। इसी तरह भरमौर के शिलालेखों के 'वर्मन' राजा या 'देवस राजो धर घोषस औदुम्बरिस' कौन था, यह भी ज्ञात नहीं। इतिहास की कड़ियां टूटी और बिखरी हुई हैं।

खनियारा तथा पठियार (धर्मशाला) के ब्राह्मी खरोष्ठी लिपि के शिलालेख, चैतडू में उपलब्ध चैत्य या लाहौल के गोंधला में मिला लोटा, जिसमें जातक कथाएं चित्रित हैं, कब के हैं, उस समय कौन राजा थे, कौन प्रजा, यह अज्ञात है। इसी तरह भरमौर के अद्वितीय कलात्मक मंदिर व मूर्तियां या कुल्लू में दोचा मोचा काष्ठ मूर्तियां या विश्वेश्वर महादेव व सूर्य प्रतिमाएं जो सातवीं-आठवीं शताब्दी की मानी गई हैं, किन राजाओं के समय की हैं, यह कोई नहीं बता पाया। कुशाण, कुनिंद काल के सिक्के या अभिलेख, पुरातात्त्विक अवशेष किन राजाओं द्वारा चलाए गए, यह भी अज्ञात है।

विभिन्न राजवंशों के इतिहास या वंशावलियां सीधे पंद्रह सौ के आसपास से चलती हैं। इस अवधि के बाद कई शिलालेख, पुरालेख व पट्टे व सनदें भी मिलती हैं तथापि उनमें से बहुत कम का तालमेल तत्कालीन राजाओं से बैठता है। वंशावलियों में राजाओं के नाम व काल-निर्धारण एक-सा नहीं है तथापि इस अवधि के बाद कुछ स्पष्टता बनती है।

इस तरह हिमाचल का इतिहास अंधेरे में हाथ-पांव मारने जैसा है। ऐतिहासिक तथ्यों व साक्ष्यों से राजवंशों का पता ही नहीं चलता या तालमेल नहीं बैठता। इन सब अवरोधों व सीमाओं के बावजूद (सांस्कृतिक परिवेश सहित) यह इतिहास नामधारी चीज प्रस्तुत है। आने वाले इतिहासवेत्ताओं तथा खोजियों द्वारा एक चुनौती समझी जाए, तो उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कोई निश्चित रूपरेखा बन पाएगी, ऐसी आशा है।

—सुदर्शन वशिष्ठ

अनुक्रम

प्रागैतिहासिक हिमाचल

कांगड़ा

कांगड़ा की शाखाएं

कुल्लू

लाहौल

स्पीति

सुकेत

मंडी

चंबा

सिरमौर

बिलासपुर

हिंडूर

बुशहर-किन्नौर

प्रागैतिहासिक हिमाचल

हिमाचल : हिमालय का पर्याय

विद्वानों का मत है कि हिमालय और मानव का जन्म एक समय हुआ। हिमालय और समुद्र दो महान् स्तंभ हैं पृथ्वी के। किंतु समुद्र का जन्म और अस्तित्व हिमालय के कारण हुआ, अतः हिमालय इतिहास के लिए जान-प्राण है। हिमालय तथा इसकी तलहटियों में जीवन का विकास कब हुआ, यह कहना बहुत कठिन है। इतिहासकारों ने भी इसे लोककथा की भांति कहा है कि लाखों वर्ष पहले की बात रही होगी जब मानव का जन्म हुआ और उसने वृक्षों पर, गुफाओं में रहना आरंभ किया। सुरक्षा के लिए पत्थर के औजार बनाए। फिर शनैः-शनैः तांबे, कांसे और लोहे का युग आया।

हिमाचल के ऊपरी भाग में अधिक शीत तथा हिमपात के कारण मानव समुदाय अधिक नहीं बढ़ा तथापि तिब्बत, चीन, लेह, लद्दाख की ओर से संपर्क रहने के कारण इस बर्फ के मरुस्थल में भी जीवन के कहीं-कहीं फूल खिले। हिमालय की निचली तलहटियां, धौलाधार तथा शिवालिक पहाड़ियों में उचित जलवायु के कारण मानव ने बसेरा बनाया। बहुत बाद में जब मैदानों में आदमी ने आदमी को मारा, तब बहुत से लोग पहाड़ों की शरण में आए।

हिमालय में लगभग दस हजार फुट या तीन हजार मीटर (समुद्र तल) से ऊपर वन-वनस्पति समाप्त हो जाती है। किन्नौर के अंतिम गांव छितकुल में, जो 3450 मीटर की ऊंचाई पर है, पेड़ों का अस्तित्व समाप्त हो गया है। छितकुल तक पहुंचते-पहुंचते भोज वृक्ष बिलकुल बौने हो गए। गांव के पार कहीं-कहीं भोज का बौना पेड़ अस्तित्व के लिए लड़ाई लड़ता खड़ा दिखता है। इसी प्रकार बैरागढ़ के आसपास घने जंगल हैं। पांगी जाने के लिए साच दर्रे से पांच किलोमीटर नीचे सतरुंडी में वृक्षों का अस्तित्व समाप्त हो गया है। अतः मानव जीवन भी वन-वनस्पति से जुड़ा रहा। मानव ने हिमालय में इसी ऊंचाई से नीचे बसना पसंद किया। इसके बाद लगभग एक हजार मीटर की ऊंचाई से नीचे कई तरह के वृक्ष उगे। पर्वत छोटी-छोटी पहाड़ियों में बदले. यह वातावरण भी मानव के लिए उपयुक्त बना। इसी

ऊंचाई पर पर्वतों से छोटी-छोटी नदियां निकलीं जो मैदानों में दरिया हुईं। इन्हीं दरियाओं के किनारे मैदानों में संसार की बड़ी-बड़ी सभ्यताएं विकसित हुईं। संभवतः जिस समय दरियाओं के किनारे नई-नई सभ्यताएं जन्मीं, पर्वतों की ओर आदि मानव का बसेरा था।

हिमालय तथा शिवालिक की पहाड़ियों में हिमयुग के मानव के अवशेष पाए जाते हैं। शिवालिक पहाड़ियों में वृक्षों पर रहने वाले आदि मानव के अस्थिपंजर, हड्डियों के फॉसिल तथा गोल-गोल पत्थर मिले हैं। नालागढ़ में औलाफ प्रूफर ने सिरसा नदी के किनारे रंगीन पत्थरों के औजार ढूंढ़े। कांगड़ा की ब्यास तथा बाणगंगा नदियों के किनारे सोहन किस्म के औजार मिले। गोल पत्थर के उपकरण, जो कुल्हाड़ी या लकड़ी काटने के औजार की तरह हैं, गुलेर, देहरा, ढलियारा तथा कांगड़ा से प्राप्त हुए। ये कुल बहत्तर उपकरण हैं जिनमें कुठार, कटाई के गंड़ासे, छुरे की आकृति के उपकरण हैं। जिला कांगड़ा तथा सिरसा नदी के किनारे डॉ. जी.सी. महापात्रा को भी उत्तर पाषाण काल के औजार मिले।

अतः ब्यास घाटी और सतलुज की सहायक नदी सिरसा के किनारे पाषाण युग तथा उत्तर पाषाण युग में मानव रहा होगा। यह औजार बिलासपुर की ओर भी प्राप्त हुए हैं। सिरमौर की मार्कण्ड नदी घाटी के सुकेती क्षेत्र, रावी नदी के किनारे कठुआ में भी पत्थर के औजार मिले हैं। रोपड़ के पास भी पाषाण युग के प्रमाण मिले हैं।

आदि मानव के अस्थिपंजर मोहनजोदड़ो, रोपड़, स्यालकोट तथा चंडीगढ़ के क्षेत्र में मिले। ये अस्थिपंजर आग्नेय कुल या निषाद, मंगोल-किरात, भूमध्यसागरीय कुल तथा पर्वत प्रदेशीय–चार नस्लों के बताए गए हैं। वनस्पतिशास्त्री कहते हैं कि गेहूं सर्वप्रथम हिमाचल और हिंदुकुश की तलहटी में, संभवतः पंजाब के किसी स्थान में उगाया गया। खेती होने के कारण पशु पाले गए।

हड़प्पा सभ्यता के समय हिमाचल की ओर लोग रहते होंगे, इसका प्रमाण सिंधु तथा हड़प्पा के नगरों में देवदार की लकड़ी का प्रयोग है। यहां बारहसिंगे के सींग तथा वनौषधियां भी पाई गई हैं। इससे स्पष्ट है कि इस सभ्यता का संबंध हिमालय या हिमाचल के मूल वासी लोगों से था। सिंधु घाटी की सभ्यता 3000 से 2500 ई.पू. तक स्वीकार की गई है। इस सभ्यता के समकालीन हिमाचल में कौन जातियां थीं, यह यहां की मूल जातियों के अस्तित्व से अंदाजा लगाया जा सकता है।

आदि संस्कृति

मूलवासी

सिंधु घाटी की सभ्यता के समय हिमाचल में कोल, किरात, किन्नर, नाग, खश लोगों की कल्पना की जा सकती है। कोली, हाली, डूम, चिनाल, रिहाड़े, बाढ़ी, घिरथ आदि जातियां यहां की मूल जातियां रही हैं।

हिमाचल में अनार्य संस्कृति रही है जो आज भी कई स्थानों में किसी न किसी रूप में सुरक्षित है। आर्य चाहे बाहर से आए हों, चाहे भारत के ही वासी हों, उन्होंने इन अनार्य लोगों को अपने अधीन किया। आर्यों की कर्मभूमि भारत का मैदानी भाग रहा है। अतः पौराणिक ग्रंथों में कहीं भी ऊंचाइयों पर पाए जाने वाले वृक्ष-वनस्पतियों का उल्लेख नहीं मिलता। देवदार जैसे वृक्ष का वर्णन पुराणों में नहीं है। अतः आर्य सभ्यता पर्वतों की सभ्यता नहीं थी, यद्यपि उन्होंने पर्वतवासियों को अपने अधीन किया। इसीलिए इन लोगों को अनार्य कहा गया, दास कहा गया। इन्हें निम्न वर्ग माना गया।

हिमाचल के लोग पर्वतवासी थे। वे सभी वृक्षों पर रहते होंगे। फिर उन्होंने सुरक्षा की दृष्टि से गुफाओं में रहना आरंभ किया। धीरे-धीरे पशुपालक बने, भेड़-बकरियां पालीं। अंततः खेती करने लगे। आज भी हिमाचल के लाहौल स्पीति, किन्नौर, चंबा में गुफाएं हैं। भेड़-बकरियां पालने वाले गुफाओं में वास करते हैं। लाहौल स्पीति में कुछ लोग आज भी गुफानुमा घरों में रहते हैं।

प्रकृति पूजा

सभ्यताओं के आरंभ में व्यक्ति जिस शक्ति से सर्वप्रथम डरता रहा है, वह प्रकृति है। प्रकृति से भय के कारण उसने पत्थर, पानी, वृक्ष, पहाड़ों को पूजना आरंभ किया। प्रकृति पूजा एक आदि पूजा है जो प्रत्यक्ष भी है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, पर्वत, सूर्य, चंद्रमा आदि प्रत्यक्ष देव हैं जिन्हें मनुष्य ने देखा है। अपने अस्तित्व के लिए इन प्रत्यक्ष देवों की पूजा किया जाना स्वाभाविक है।

स्पीति के मूलवासी बोंपा लोग बों छोस धर्मावलंबी थे। ये लोग घुमंतू थे। ताबो मठ के ऊपर आज भी वे शिलाएं विद्यमान हैं जहां स्वस्तिक चिह्न, सूर्य, घोड़े की

आकृतियां बनी हुई हैं। इनमें पशु तथा नृत्य मुद्रा में मनुष्यों के साथ योनि भी बनाई गई है। इन चित्रों को इतिहासकारों ने अलग-अलग समय का बताया है किंतु ये प्राचीन काल के गुफा चित्रों का स्मरण कराते हैं। इस क्षेत्र में बौद्ध परंपरा के आगमन से पूर्व ऐसे लोग रहते थे जो इन आकृतियों के रूप में प्रकृति-पूजक थे।

इसी प्रकार लाहौल में लूङ-पई-छोस धर्मावलंबी थे जो वृक्ष पूजा के साथ पत्थर-चट्टानों और जल स्रोतों की पूजा करते थे। पेंसिल सिडार पेड़ों के आगे, जलस्रोतों के पास पशु-बलि दी जाती है जो आज के बौद्ध धर्म के प्रतिकूल है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की प्रकृति पूजा और बलि प्रथा निम्न जाति के वर्गों में प्रचलित है जो धीरे-धीरे ठाकुर वर्ग तक भी जा पहुंची। ठाकुर लोग भी ऐसी मूर्तियों की पूजा करते हैं, जो न हिंदू हैं, न बौद्ध। इन अनुष्ठानों में ब्राह्मण या लामा कोई भी नहीं बुलाया जाता।

नई घास, लकड़ी या सींग की दरांती से तब तक नहीं काटी जाती है जब तक कि निश्चित दिन बलि नहीं दी जाती। बलि के बाद ही लोहे की दरांती प्रयोग में लाई जाती है। घेपङ् यहां का प्राचीन देव है जो यहां जौ और गेहूं का बीज मुंह में छिपाकर लाया था।

लाहौल में जी-डाग (gzhi-bdag) तथा सा-डाग (Sa-bdag) स्थानीय देवता तथा यू देवता की पूजा होती है, जो प्रकृति पूजा का ही दूसरा रूप है।

शिश्न पूजा

शिश्न पूजा भी एक प्राचीन पूजा है जो लाहौल, किन्नौर, कुल्लू में अपने मूल रूप में विद्यमान है। कई उत्सवों में शिश्न देव का महत्त्व है।

किन्नौर में चैत्रोल उत्सव में एक व्यक्ति मुखौटा पहनता है। इस व्यक्ति के गले में लकड़ी का लिंग लटका दिया जाता है। युवक लिंगाकार लकड़ी लिए होते हैं जिसे चैत्रोल शिङ्गी कहते हैं। किसी वृक्ष की लकड़ी लेकर उसे लिंगाकार बना दिया जाता है। उत्सव में इसे लेकर मजाक किया जाता है। यह उत्सव चगांव में होता है। लाहौल में भी शिश्न पूजा विद्यमान है। कुल्लू में काहिका उत्सवों के समय लकड़ी का लिंग किसी को भी पकड़ा दिया जाता है। इसमें लिंग की पूजा की जाती है। ऐसे उत्सवों में अश्लील हंसी-मजाक खुलकर किया जाता है। कोई इसका बुरा नहीं मानता।

अतः शिश्न पूजा का महत्त्व पुरातन समाज में रहा है जो समाज के परिष्कृत होने पर लिंग पूजा और फिर शिव पूजा में बदला।

कोल

आर्यों का सर्वप्रथम कोल संघ से संघर्ष हुआ। सप्तसिंधु में अपना आधिपत्य स्थापित करने के बाद आर्यों की कोल संघ से प्रबल मुठभेड़ हुई। ऋग्वेद में उल्लेख है :

उतं दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि। अवाहित्रंद्र शम्बरम्।। (ऋ. 4.30.14)

उत्तर-पश्चिमी हिमालय का शासक शम्बर था जिसके सौ सुदृढ़ दुर्ग थे। आर्यों को इसे जीतने में चालीस वर्ष लगे। ऋग्वेद की इस ऋचा के अनुसार कुछ विद्वान् शम्बर को कोल संघ का अधिपति मानते हैं। कुछ का मानना है कि शम्बर कोल से इतर या दूसरे संघ का शासक था। दोनों ही स्थितियों में 'कोल संघ' की उपस्थिति उस समय निश्चित होती है।

इस समुदाय के अदम्य साहस से त्रस्त होकर आर्य लोग ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा (ऋ. 5.21.7) में इंद्र से प्रार्थना करते हैं :

'हे देव! जो लिंग को देवता मानते हैं (शिश्न देव हैं), उन्हें हमारी सीमा में प्रवेश न करने दो।'

आर्यों ने इन्हें शिश्न देवाः कहा। म्लेछ और दास कहा। इन्हें कृष्णयोनि या काली चमड़ी वाले, अनासाः या भद्दी नाक वाले कहा।

कोल नाटे कद के, हृष्ट-पुष्ट, गालों की उभरी हड्डियों वाले, ऊन जैसे बालों वाले और असुंदर कहे गए हैं जो आदिवासियों के गुणों से भरपूर हैं।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि कोल हिमालय के उत्तर-पूर्वी दर्रों से भारत आए। द्रविड़ों ने उन्हें उपजाऊ प्रदेशों से भगा दिया और उन्हें जंगलों तथा पहाड़ों की ओर जाना पड़ा। कोल जब बीहड़ों और पर्वतों में रहने लगे तो किरातों ने हिमालय में प्रवेश किया और इन्हें हिमालय से भी खदेड़ दिया। इन्हें शिल्पकार माना गया है। ये लोग नृत्य, वादन के साथ धातु शिल्प, मूर्तिकला, बांस तथा वृक्षों से वस्तुएं बनाने में प्रवीण थे। इनका एक वर्ग 'मुंडा वर्ग' के रूप में बिहार के संथालों में देखा जा सकता है।

हिमाचल प्रदेश में कुल्लूवासी कोल नहीं हैं। न ही कोल एक बड़े वर्ग या समुदाय के रूप में यहां विद्यमान हैं किंतु एक जाति के रूप में आज भी विद्यमान हैं। कोली जाति प्रदेश के अधिकांश भाग में पाई जाती है। कहीं इनका स्थान अतिनिम्न हो गया, कहीं थोड़ा ऊपर रहा।

ऊपरी हिमालय में कोली अतिनिम्न वर्ग माना जाता है। कुल्लू, चम्बा में भी ऐसा ही है। कांगड़ा में यह वर्ग बिलकुल निम्न नहीं माना जाता। यहां ये विवाहादि में भोज के लिए पत्तल बनाते हैं। मुख्यतः ये शिल्पी हैं। उत्तराखंड के गढ़वाल,

देहरादून तथा हिमाचल में पाई जाने वाली यह जाति अभी भी अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। यह लोग मूलतः यहीं रहते थे और किरातों द्वारा खदेड़े जाने पर भी कुछ यहां बने रहे या शिल्पकार होने के कारण बाद में आए, यह कहना कठिन है। कुछ इतिहासकारों ने माना है कि यह लोग पंचनद के पर्वतीय क्षेत्रों में रहते थे। पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों के ये आदिम लोग कोल समुदाय के उस वर्ग से संबंधित हैं जो मध्य भारत या बिहार में पाए जाते हैं। वर्तमान कोली जाति इन्हीं की वंशज मानी गई है।

कुछ विद्वानों ने माना है कि कोल ही यहां के मूल वासी थे। पहले किरातों ने, फिर खशों ने उन्हें यहां से भगाया। आर्यों के बाद इनका किरात तथा खशों से संघर्ष हुआ। अंततः ये लोग हिमालय को छोड़ उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार के बीहड़ों में चले गए।

एक उत्सव में इसका प्रमाण भी मिलता है। निरमंड में मनाई जाने वाली बूढ़ी दियाली में कोली लोग घियाना जलाकर नृत्य करते हैं। उनके नृत्य के बीच खश उन पर हमला कर उन्हें भगा देते हैं। कोली गांव के चारों ओर सर्प के आकार की रस्सी बनाकर उसके सिर में आग लगा गांव के चारों ओर घूमते हैं, किंतु खश उन्हें भगाते हैं। सर्प नाग का प्रतीक है अतः इसमें नाग जाति का हस्तक्षेप भी नजर आता है।

ए.एच. फ्रेंके ने निरमंड के कोली समुदाय को यहां का प्राचीनतम आदिवासी माना है और इन्हें ऑस्ट्रालाइड (आग्नेय) कोल का अंग माना है।

इनके प्रजातीय गुणों के आधार पर डॉ. आर.सी. मजूमदार ने कहा है :

'भारत की कृष्णवर्णी जाति प्राचीन नेग्रिटो तथा मूल ऑस्ट्रोलाइड जातियों की वंशज है। इसका मूल रूप तो पूर्व प्रस्तर युगीन संस्कृति के साथ ही समाप्त हो गया था, अतः भारतीय उपमहाद्वीप में यह उत्तर प्रस्तर युगीन संस्कृति लेकर आई थी।'

यह भी माना जाता है कि कोल लोगों ने आर्यों से पहले धान तथा साग-सब्जियां उगाने की विधि जान ली थी। वे गन्ने से गुड़ बनाना, सूती कपड़ा बुनना तथा गिनती करना जानते थे। नृत्य, संगीत, वाद्य वादन, पाषाण मूर्तिकला, धातु मूर्तिकला, काष्ठकला, वास्तुकला में तो ये पारंगत थे ही, लोहा, तांबा, लकड़ी, बांस, बेंत, चमड़ा, लकड़ी के रेशे तथा पत्ते आदि से कलात्मक वस्तुएं बनाने में भी सिद्धहस्त थे।

गढ़वाल तथा हिमाचल प्रदेश में बहुत से स्थानों के नाम इस वर्ग से जुड़े हुए हैं। इन्हें कोल, कोली, कोलटा कहा जाता है। डोम या डूमणा भी इसी वर्ग का एक प्रभेद है। ये लोग बांस की वस्तुएं बनाते हैं।

किरात

किरात भी आर्यों द्वारा म्लेच्छ कहे गए हैं। इतिहासकारों का मत है कि जब कोल लोग बीहड़ों में रह रहे थे, मंगोल आकृति के किरातों ने चीन के आसपास से भारत में प्रवेश किया। कोल आखेट करके तथा कंद-मूल खाकर निर्वाह कर रहे थे तो किरात पशुचारण करते हुए हिमालय में आए और इन्हें यहां से भगा दिया। ये लोग असम से नेपाल, कुमाऊं, कांगड़ा होते हुए लाहौल स्पीति तक गए। हिमाचल में किरात लाहौल स्पीति तथा कुल्लू में पाए जाते हैं। किरात चपटी नाक, छोटी-छोटी आंखों वाले, दाढ़ी-मूंछविहीन, रोमरहित और नाटे कद के थे। यह हिमालय के क्षेत्र को 'खश मंडल' कहे जाने से पूर्व किरात मंडल कहते थे। त्रिपुरा का प्राचीन नाम किरात था। भारत में सर्वप्रथम आने वाली जाति किरात मानी जाती है। किरातों के बाद नाग तथा फिर खशों ने यहां प्रवेश किया।

शिश्न पूजा यदि कोल समुदाय की देन है तो किरातों ने इससे आगे बढ़कर बलि प्रथा का प्रचलन किया। लिंग पूजा किरातों में भी रही जो आज कुल्लू, लाहौल में विद्यमान है। पशुपालक किरात हिमालयवासी थे। ये लोग फल-फूलों का आहार करते थे और मृगछाला पहनते थे।

किरातों का उल्लेख अथर्ववेद, तांडव, ब्राह्मण, वृहद संहिता, मनुस्मृति से लेकर कालिदास तक हुआ है। मनु ने कहा कि ये लोग कर्म न करने से शूद्र हो गए। किरातों का उल्लेख कालिदास ने भी किया। राजा रघु ने किरातों को परास्त किया।

किरातों के दो वर्ग माने गए–भिल्ल किरात और राज्य किरात। भील और किरातों का उदाहरण किरातार्जुनीय है जिसमें भील वेशधारी शिव का युद्ध अर्जुन से हुआ। लोकास्था के अनुसार यह युद्ध कुल्लू के पर्वत में हुआ। लोकास्था है कि कुल्लू तथा स्पीति के बीच पर्वत को इंद्रकील कहा जाता है। इसे देऊ रिब्बा भी कहते हैं। जगतसुख के ऊपर हामटा में 'अर्जुन गुफा' है। ये नाम अर्जुन द्वारा शंकर से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने की पौराणिक घटना का स्मरण कराते हैं। पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के लिए अर्जुन इंद्रकील पर्वत के समीप पहुंचे तो उन्हें वृक्ष के बीच एक तपस्वी ने रोका। यह तपस्वी किरात वेशधारी शंकर थे जिनका अर्जुन से युद्ध हुआ और अंततः अर्जुन ने पाशुपतास्त्र प्राप्त किया।

शिव ने भील या किरात का वेश धारण किया हुआ था। भील या किरात वेशधारी शिव यहां किरातों की उपस्थिति की पुष्टि करते हैं। जगतसुख के पास शुरू में शबरी का मंदिर है। बाणभट्ट के अनुसार किरातों की भूमि कैलास के निकट हेमकूट पर्वत क्षेत्र में सुवर्णपुर थी। कुल्लू में हामटा पर्वत को हेमकूट माना जाता है।

किरात मंडल की स्थापना कुलिंदों की शक्ति क्षीण होने पर हुई। केदारखंड को

किरात मंडल कहा जाने लगा। राहुल जी के अनुसार भागीरथी के उद्गम स्थल पर किरातों का आधिपत्य होने से इसे 'किराती' कहा जाता था।

इतिहासकारों ने किरात को संक्षिप्त नाम से 'किर' या 'कीर' भी कहा है। जिला कांगड़ा के बैजनाथ को बारहवीं शताब्दी तक 'कीरग्राम' भी कहा जाता रहा है। संभवतः यहां कभी कीर या किर या किरातों का आधिपत्य रहा हो।

कुमाऊं, नेपाल में किरातों का आधिपत्य रहा। लद्दाख में भी किरात रहे। इस प्रकार हिमाचल प्रदेश के लाहौल स्पीति तथा कुल्लू में किरात लोग हैं। किरात तथा किराती (कणाशी) का उदाहरण आज भी कुल्लू के दूरस्थ गांव मलाणा में देखा जा सकता है।

लाहौल तथा कुल्लू में नाग पूजा भी प्रचलित है अतः यहां नागों का भी कभी प्रभाव रहा है।

किन्नर

राहुल जी ने कहा है—'किन्नर के लिए किंपुरुष शब्द भी संस्कृत में प्रयोग हुआ है, अतः इसी का नाम किंपुरुष देश या किंपुरुष वर्ष भी था। किन्नर या किंपुरुष देवताओं की एक योनि मानी जाती थी, किंतु इससे इतिहास जानने में कोई सहायता नहीं मिलती।'

'किन्नर' को 'नर' से भिन्न अर्थ लेने पर किन्नर नाम आर्यों द्वारा रखा प्रतीत होता है क्योंकि किन्नर यहां के मूल वासी थे।

वायु पुराण में किन्नरों को महानील पर्वतवासी बताया गया है। कुछ पुराणों में किन्नरों को निशाचरों की श्रेणियों में रखा गया। मत्स्यपुराण में यक्ष, पिशाच, राक्षस, विद्याधर, किन्नर, गंधर्वों को हिमवान पर्वत का वासी माना है। किन्नरों को अश्वमुख तथा किन्नरियों को मधुर कंठी कहा गया है। महाभारत में किन्नरों का वास किंपुरुष वर्ष कहा गया है। यह प्रदेश धवलगिरि को लांघकर आता था। गंधर्व, किन्नर, अप्सराओं का वास मानसरोवर भी माना गया है। कुबेर को यक्षराज संबोधित किया गया है। यहां आज भी खानदान या परिवार को 'किम' कहते हैं अतः 'किंपुरुष वर्ष' का स्मरण अनायास ही हो आता है।

अतः किन्नर हिमालयवासी थे, यह निश्चित है। ये लोग गायन तथा नृत्य में प्रवीण थे।

राहुल जी ने किन्नौर में मृतकों की समाधियां देखीं जिनमें हड्डियों के साथ बर्तन भी निकलते थे। राहुल जी ने एक खेत की खुदाई करवाई जहां एक कब्र निकली जो तीन हाथ लंबी, डेढ़ हाथ चौड़ी और हाथ भर ऊंची थी। कब्र में उन्हें

एक दीर्घकपाल व्यक्ति की खोपड़ी मिली। अतः यहां प्राचीन लोग दीर्घकपाल थे जो मृतकों को गाड़ते थे। तिब्बत-हिंदुस्तान सड़क बनाते समय भी ऐसी कब्रें निकलीं। कब्र में मृतक का सिर पश्चिम की ओर रखा जाता और साथ में खाद्य सामग्री तथा पेय भी रखे जाते। राहुल जी ने लिप्पा में एक कब्र से सिर के पास दाहिनी ओर एक कटोरा और मिट्टी का मद्यकुतुप निकलने का उल्लेख किया है, जो कलात्मक थे।

किन्नौर में नाग पूजा भी प्रचलित है। अतः नागों का भी यहां प्रभाव रहा है। किन्नर किसी समय हिमाचल में गंगा पठार से सतलुज और चंद्रभागा तक फैले हुए थे।

किन्नर, किरातों की भांति रोमविहीन थे और नारी के समान लंबे केश रखते थे। नृत्य-गायन के साथ इन्हें मायावी भी कहा गया है। लंबे केश होने के कारण इन्हें प्रथम बार देखने वाले ने पूछा, 'किम पुरुषः?' अर्थात् क्या यह पुरुष है? या यह इतना नारीनुमा पुरुष है जिसके दाढ़ी-मूंछ भी नहीं है। अतः किन्नर के ये विभिन्न नाम प्रतीकात्मक हैं।

किन्नरों का उल्लेख यक्ष, गंधर्व, सिद्ध तथा विद्याधरों आदि के साथ हुआ है। ये सभी जातियां पर्वतवासी थीं। वर्तमान किन्नर प्रदेश ही प्राचीन किन्नरों की भूमि रहा है। तथापि आज के किन्नरों में कालांतर में आसपास की जातियों का समावेश हुआ है। राहुल जी ने लिखा है–

'कनौर की भाषा में तिब्बती शब्द और लोगों में तिब्बती रक्त भी सातवीं सदी के मध्य से सम्मिलित होने लगा।'

किन्नौर में विभिन्न संस्कार आर्यों से मेल नहीं खाते। विवाह यहां किसी प्रकार का धार्मिक संस्कार नहीं माना जाता। अन्य संस्कार भी अपनी तरह के हैं। अतः यह अनार्य जाति आज भी अपनी विशिष्टता लिए हुए है।

नाग

इस समय नाग वंश के कोई चिह्न विद्यमान नहीं हैं। कांगड़ा की ओर ब्राह्मणों में एक जाति नाग है। नाग वंश अलग से यहां विद्यमान नहीं है किंतु नाग पूजा हिमाचल के सभी भागों में की जाती है। जिस प्रकार वैदिक-पौराणिक साहित्य से लेकर बौद्ध-जैन साहित्य तक नागों का उल्लेख हुआ है, उसी प्रकार हिमाचल के विभिन्न भागों–किन्नौर, लाहौल स्पीति, चंबा, मंडी, कुल्लू, कांगड़ा सब में नाग पूजा विद्यमान है। बहुत स्थानों में नागों के स्वतंत्र मंदिर हैं। उन्हें शासक के रूप में पूजा जाता है। बहुतेरे मंदिरों के बाहर, दरवाजों पर, द्वारपालों के रूप में नाग उकेरे गए हैं। नाग उत्पत्ति की कथाएं हैं। इससे प्रतीत होता है कि कभी यहां नाग जाति का प्रभुत्व रहा है।

नाग जलस्रोतों के स्वामी थे। इनकी उत्पत्ति जलस्रोतों, सरोवरों के किनारे हुई। इन्हें जल देवता माना जाता है। अकाल या अनावृष्टि के समय नाग मंदिरों में जागरे या जागरण किए जाते हैं। यदि इंद्र वर्षा का देवता है तो 'इंद्रु नाग' भी वर्षा का देवता माना जाता है। पशुधन के रक्षक भी नाग हैं। नागों को दूध की पहली धार और पहला घी चढ़ाया जाता है। नाग शिव उपासक भी थे।

नाग एक पुरातन जाति है। हड़प्पा सभ्यता में नाग पूजा विद्यमान थी। यहां प्राप्त मोहरों में एक मोहर में नाग देवता चित्रित हैं जिसके आगे कुछ व्यक्ति घुटनों के बल बैठ पूज रहे हैं।

नाग-आर्य संघर्ष

ऋग्वेद के इंद्र-वृत्र युद्ध में वृत्र को 'अहि' कहा गया है। 'अहि' से प्रतीत होता है कि वृत्र नागों का अधिपति था जिसका सप्तसिंधु में आधिपत्य था। आर्यों ने वृत्र को असुर कहकर पुकारा। वृत्र का जलस्रोतों पर अधिकार था अतः इंद्र को इससे युद्ध करना पड़ा।

इसी प्रकार इंद्र का शम्बर के साथ भी युद्ध हुआ। वृत्र के लिए 'अहि' शब्द का प्रयोग हुआ है तो शम्बर को भी 'अहि' कहा गया है। यदि अहि का अर्थ नाग माना जाए तो शम्बर भी एक नाग शासक था जिसे आर्यों ने सुप्तावस्था में धोखे से मारा। चालीस वर्ष तक युद्ध के बाद भी उसे परास्त नहीं कर पाए—

यः शम्बर पर्वतेषु क्षियतं चत्वारिश्यां शरधन्व विंदते।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं सजसान इंद्र।। (ऋ. 2.12.11)

इसके साथ ही शम्बर को इतर या दूसरे संघ का अधिपति माना गया है—

उतं दासं कैलितरं बृहतः पर्वतादधि। अवाहित्रन्द्र शम्बरम्। (ऋ. 4.30.14)

अतः शम्बर नाग शासक हो सकता है जिसका शासन जलस्रोतों पर था। आर्य महत्त्वपूर्ण जलस्रोतों पर अपना अधिकार करना चाहते थे। सप्तसिंधु के जलस्रोत बिपाशा और परुष्णी के मध्य स्थित थे जहां आज के चंबा, मंडी, कुल्लू, कांगड़ा आदि क्षेत्र आते हैं। इन्होंने चालीस वर्ष तक आर्यों से युद्ध किया और पराजय के बाद छोटे-छोटे राज्यों में बंट गए।

यह भी कहा जाता है कि ऋग्वेद के दशम मंडल के 199वें सूक्त के ऋषि नाग वंश के थे। राजा नहुष जिन्होंने इंद्रासन छीना था, नागवंशीय थे।

आर्य-नाग संघर्ष राजा जनमेजय के नाग यज्ञ तक बरकरार रहा। राजा तक्षक

ने पांडवों से बदला लेने के लिए राजा परीक्षित की हत्या कर दी जिससे जनमेजय ने नागों को समूल नष्ट करने की शपथ ली थी। जनमेजय ने नागों को पकड़कर जीवित जला दिया।

तक्षक एक ब्राह्मण (नाग) शासक था। संभवतः उस समय के ब्राह्मणों के वंशज नाग वही हैं जो आज भी कांगड़ा में पाए जाते हैं।

एक कथा के अनुसार अवलोकीतेश्वर द्वारा समझौता करवाने पर महात्मा बुद्ध के समय आर्य-नाग संधि हुई। इस संधि के बाद नागपंचमी मनाई जाने लगी जिसे आर्यों ने भी मनाया और नाग पूजा आरंभ हुई।

इससे पूर्व भी नाग-आर्य संधियां होती रही होंगी। शिव ने नाग को गले का आभूषण बनाया, विष्णु ने शेष शैया स्वीकार की, शेषनाग ने शिशु कृष्ण की रक्षा की आदि।

हमारे पौराणिक साहित्य में जिन नागों का वर्णन मिलता है, लोक में उनसे इतर भी कई नाग पूजे जाते हैं। कौशिक सूक्त में छह नाग हैं—वासुकि, चित्रसेन, चित्ररथ, तक्ष और उपतक्ष। वाराह पुराण में नौ नाग हैं—अनंत, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक, कंबज, अपराजित। सर्पनिवारक मंत्र में अनंत, वासुकि, शेष, पद्मनाभ, कंबल, शंखपाल, धृतराष्ट्र, तक्षक, कालिय गिनाए हैं। पुराणों में नाग उत्पत्ति के प्रसंग भी हैं। कद्रु और विनता की कथा प्रसिद्ध है। महाभारत में नागों की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस कथा में नागों को दुष्ट प्रवृत्ति का बताया गया है।

हिमाचल में नाग पूजा एक आदि पूजा है। नागों की उपस्थिति लाहौल तथा किन्नौर जैसे जनजातीय स्थानों में भी है। चंबा में तो नाग पूजा है ही। लाहौल में केलङ्, घेपड्. नाग देवता माने जाते हैं। किन्नौर में नाग उत्पत्ति कथा कुल्लू से मिलती है। यहां बसेहरू नाग के अतिरिक्त सापनी, ब्रुआ, पौण्डा, सांगला, रापङ्, शिशेरिङ्, लियो में नाग मंदिर हैं। चंबा में इंद्रु नाग, केलङ्., वासुकि, बासन, कुगति आदि नाग मंदिर हैं। कुल्लू में तो अट्ठारह नागों की उत्पत्ति हुई। मंडी में भी माहुंनाग, कामरू नाग आदि अनेक नाग मंदिर हैं। कांगड़ा में हर घर के आगे नाग आकृति पत्थरों पर उकेरी होती है। अधिकांश नागों के नामकरण स्थानीय हैं। पौराणिक नागों में वासुकि का नाम प्रमुख आता है। अधिकांश मंदिरों के द्वारों पर नाग आकृतियां बनी हुई हैं।

संभवतः आर्यों द्वारा प्रताड़ित होने पर नाग पहाड़ों की ओर पलायन कर गए और यहां बसने लगे किंतु धीरे-धीरे इनका प्रभुत्व समाप्त हो गया और यह जाति दूसरी जातियों में विलीन हो गई।

खश

कोल, किरात, किन्नर और नागों के प्रभुत्व को यहां खशों ने समाप्त किया। एक समय खश एक लंबे-चौड़े भू-भाग पर प्रभावी रहे। फिर धीरे-धीरे इनका प्रभुत्व केवल एक क्षेत्र में रहा। खशों से कनैत तथा राव बने। कनैत या कुलिंद आर्यों से पहले व्यास, सतलुज तथा गंगा-यमुना घाटियों तथा मूल स्रोतों को पार किए, ऐसा इतिहासकार मानते हैं।

पलीनी (79 ई.) ने कहा है कि सिंधु और यमुना के बीच जंगल में वास करने वाली जातियां खश और क्षत्रिय हैं। ये क्षत्रिय या खत्री गद्दी जनजाति में पाए जाते हैं। खश कुमाऊं से पश्चिम की ओर रहते थे। तौंस और शारदा नदियों के बीच गढ़वाल, कुमाऊं में तंगण और किरात बसते थे। फ्रांसिस हैमिल्टन ने कहा है कि खश देश नेपाल और कश्मीर के बीच स्थित है। यहां के लोग खशीये कहलाते हैं। इनका दर्जा राजपूतों से कुछ कम है। नेपाल की भाषा पर्वती तथा पश्चिम की भाषा खश कहलाती है।

खश एक शक्तिशाली जाति थी। इनका यहां किन्नर, किरात, नागों से संघर्ष हुआ। नागों को तो भगा दिया गया। किरात, किन्नरों से संघर्ष के बाद वे एक अलग भू-भाग में बसे। खशों का आज प्रमुख क्षेत्र महासू है। वे सिरमौर तक रहते हैं। खशों से ही कनैत, राहू (राव) चौहान बने। कांगड़ा कीं ओर राजपूतों में कनैत तथा तगणैत जातियां आज भी पाई जाती हैं जो पुरातन कनैत और तंगण की पुष्टि करती हैं।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि खश आर्यों का ही एक वर्ग था। आर्यों की एक टोली मध्य एशिया से ईरान होती हुई यूरोप तक गई। दूसरी टोली दो दलों में विभाजित होकर हिंदुकुश पर्वतों को पार कर सिंधु घाटी की ओर गई। तीसरी टोली मध्य एशिया से काश्गर, हिंदुकुश; गिलगित, कश्मीर की ओर मुड़ी। यही टोली खश थी। खश लोग मध्य एशिया से नेपाल तक फैले।

महासू के लोगों को आज भी खश या खशिया कहा जाता है। इनके मुख्य देवता महासू के बारे में जनास्था है कि वह कश्मीर से आया। तब इस क्षेत्र में राक्षसों का वास था, जब वे मनुष्यों को तंग करते थे तो कश्मीर से महासू को लाया गया जिसने उनकी राक्षसों से रक्षा की।

खशों के प्रभाव का पता कुछ उत्सवों से भी लगता है। निरमंड तथा महासू की ओर होने वाले भुंडा उत्सव में बेडा जाति के लोगों को उन्हीं द्वारा बनाए गए रस्से से झुलाया जाता है। बेडा को नाग समझा जाता है जिसकी खश लोग उत्सव में बलि देते हैं। निरमंड की बूढ़ी दियाली में भी खश-नाग युद्ध का प्रदर्शन किया जाता है।

आर्य-नाग संघर्ष सर्वविदित है। जनमेजय ने सर्प यज्ञ किया। अतः खश यदि आर्यों की ही शाखा रही है तो खश-नाग संघर्ष भी स्वतः स्पष्ट है।

बहुत बाद में जब आर्यों का इस क्षेत्र में प्रभाव बढ़ा, खशों का उनसे शीघ्र तालमेल हो गया। खशों ने आर्यों की प्रभुसत्ता स्वीकार की। फलतः कोल, किरात, किन्नर, यक्ष, नागों को या तो पूरी तरह दबा दिया गया या जंगलों में रहने पर विवश किया।

महासू में खश कभी योद्धा रहे होंगे। इसका प्रमाण ठोडा लोकनाट्य है जिसमें आज भी युद्ध कौशल का प्रदर्शन किया जाता है। खश योद्धा को 'खूंद' कहा जाता है। महासू में तो ये खूंद थे ही, राहुल जी ने किन्नौर में भी सात खूंद गिनाए हैं। किन्नौर सात 'खूंदों' या क्षेत्रों में विभक्त था। इसी प्रकार महासू में भी हर क्षेत्र में एक बहादुर खूंद हुआ करता था। ये खूंद युद्ध की पोशाक पहन आज भी ठोडा खेलते हैं। यद्यपि ये युद्ध अब एक खेल मात्र रह गया है।

समय के अनंतर खश अपने क्षेत्र तक सीमित हो गए। उन्होंने बाद में कोई बड़ी लड़ाई नहीं लड़ी।

शिमला हिल्ज स्टेट गजेटियर में उल्लेख है—

'आजकल लोगों में प्रचलित परंपरा के अनुसार इन पहाड़ों के मूल निवासी खश थे, जिनमें जाति या वर्गभेद नहीं था। वह आर्य शाखा के थे, इसके बारे में कोई बात नहीं कही जा सकती। लेकिन यह माना गया है कि वे उसी जाति के थे जिसके कुमाऊं और गढ़वाल के खशिया लोग और जो आम तौर से आर्य समझे जाते थे।'

कनैतों की शाखा का नाम चौहान है। चौहान, शकों का एक कबीला था जिसकी कुल देवी शाकम्भरी थी। किंतु यहां के चौहानों को शकों के साथ जोड़ना उचित प्रतीत नहीं होता।

खशों के मोटे वर्गीकरण में खश कनैत, बुशहर तथा बघाट में है। सिरमौर, नालागढ़ और बिलासपुर के कनैत अपने को महासू के कनैतों से बड़ा समझते हैं। किन्नौर के कनैत व्यापार तथा भेड़पालन के कारण संपन्न बने। कुमारसेन के कनैतों के पूर्वज का जनेऊ पेड़ पर टूट गया, इससे वह निम्न कनैत हो गया। कुठार में तीन तरह के कनैत हैं। सिरमौर में असली और खश कनैत हैं जो एक-दूसरे से अपने को बड़ा मानते हैं।

प्राचीन या मूल जातियां

हिमाचल की मूल जातियां, जो मैदानों से राजपूत या ब्राह्मणों के आगमन से पूर्व रहती थीं, बाद में दास, क्षुद्र या शूद्र कहलाईं। इन जातियों को क्षत्रिय राजाओं, उच्च वर्ग तथा ब्राह्मणों द्वारा दबाया गया और सबसे निम्न 'शूद्र' माना।

यह भी माना जाता है कि ये जातियां कोल समुदाय के अवशेष हैं जो उनके बिखरने पर यहां भी बिखरे रूप में शेष रहीं। कोल नृत्य-वादन जैसी कलाओं के साथ धातुशिल्प, मूर्तिकला, वास्तुकला के साथ बांस तथा वृक्षों से कलात्मक वस्तुएं बनाने में सिद्धहस्त थे। ये आवश्यक नहीं है कि ये सभी जातियां कोल समुदाय से ही हैं। किंतु इन्हें राजपूत, नेगी, ब्राह्मण, गद्‌दी किसी ने अपने भीतर का नहीं माना। गद्‌दी लोग कोली, सिप्पी, हाली, लोहार या बाढ़ी को गद्‌दी नहीं मानते। इसी प्रकार किन्नौर में कनैत तथा नेगी अन्य जातियों जैसे बाढ़ी, लोहार, सोनार, कसेरा, कोली को 'बेरूहन' अर्थात् बाहर के मानते हैं। इसी प्रकार कांगड़ा में अछूत जातियों को 'बाहर का' कहते हैं। अतः ये सभी जातियां कनैत, नेगी, गद्‌दी, राजपूत, ब्राह्मणों ने अपने भीतर की नहीं, बाहर की कहीं और बाहर की मानीं।

इन्हें बाहर का मानने के दो कारण हो सकते हैं—पहला तो यह कि यह लोग यहां के मूल वासी थे। हर तरह के शिल्प को जानते-पहचानते थे, शिल्पी या कलाकार थे। बाहर के लोगों ने यहां आधिपत्य जमाया तो इन लोगों को दबाया गया। ये जातियां उपेक्षित रहीं और इन्हें शूद्र या अछूत तक कहा गया क्योंकि ये दास थे, दूसरे स्वामी।

दूसरी संभावना यह है कि ये जातियां अपने शिल्प को आजमाने इन क्षेत्रों में आईं। अतः इन्हें बाहर का समझा गया क्योंकि इनको अपनी रोटी-रोजी कमानी थी। राज्य दूसरों का था, जीवन यापन के लिए ये दासवृत्ति से समय काटने लगे।

इन लोगों की भाषा भी अपनी है। उदाहरणतः किन्नौर तथा लाहौल स्पीति में चिनाल या चामङ् हिंदी शब्दों, विशेषकर संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिक करते हैं। वे भोटी नहीं बोलते अपितु हिंदी बोलते हैं। लाहौल के चिनाल तो संस्कृतनिष्ठ हिंदी बोलते हैं जिसे भाषाविज्ञानी ने संस्कृतमय भाषा कहा है। अतः यह संभव है कि ये लोग वैदिक काल से यहां रहते होंगे। इन्होंने अपनी भाषा सुरक्षित रखी, अपने संस्कार

सुरक्षित रखे चाहे इन्हें समाज में सबसे नीच समझा गया। एक अन्य विशेषता यह भी है कि इनके देवता अपने हैं, अलग हैं। इन देवताओं को ये अपने ढंग से मानते हैं, पूजते हैं। ये देवता बहुत ही प्रत्यक्ष माने जाते हैं। अन्य उच्च वर्ग के लोग हारकर इन देवताओं से फरियाद करते हैं जो तुरंत निर्णय भी देते हैं। इन लोगों ने अपने अनुष्ठान भी गुप्त रखे हैं। उदाहरणतः बिलासपुर में 'धाजा' लोकनाट्य केवल एक जाति द्वारा खेला जाता है। इसमें सवर्ण नहीं जा सकते। लाहौल में ऐसे मूल देवता माने जाते हैं, जो न हिंदू हैं, न बौद्ध।

जातिविहीन समाज

अभी डेढ़ शताब्दी पूर्व हिमाचल का जनजातीय समाज जातिविहीन था। इससे पूर्व कभी सारा समाज जातिविहीन रहा होगा। हारकोट ने लिखा है–

'स्पीति में सामान्य 'जाति' शब्द की मान्यता के अनुसार जातियां नहीं हैं क्योंकि सभी एक साथ खाते-पीते हैं।'

राहुल जी ने कहा है–'पहाड़ में न धोबी होता है, न तेली, न हजाम, न कुम्हार।'

आज भी किन्नौर में ब्राह्मण नहीं हैं। सराहन से ऊपर कोई ब्राह्मण नहीं मिलेगा। कुल्लू में भी ब्राह्मण लोग बहुत बाद में आए। पांगी में भी ब्राह्मण नाम की चीज नहीं है। नेगी, ठाकुर के अतिरिक्त यदि कोई दूसरी जाति है तो वह कोई कार्य या कर्म करने के कारण जो समाज को चलाने के लिए आवश्यक है।

शिमला हिल्ज स्टेट गजेटियर के अनुसार खशों में जाति भेद नहीं था।

जातियों की विशिष्टता

हारकोट के समय लाहौल में 4566 डागी, 277 बराड़ और 3 हेस्सी थे। स्पीति में 100 लोहार और 46 बेडा थे। यह संख्या वहां के नेगी या कनैतों से अधिक थी। कर्म के अनुसार देखें तो कुल्लू में हेस्सी, लाहौल में डागी तथा हेस्सी, स्पीति में बेडा, कांगड़ा में शहनाई, महासू में कोली तथा तूरी गाने-बजाने का काम करते थे। चमार, चामड़., चनाल चमड़े का काम करते हैं। बाढी, तरखान या थवई लकड़ी का काम करते हैं। लोहार लोहे का, सुनार सोने का, कसेरा बर्तनों का, कुम्हार मिट्टी के बर्तनों का काम करते हैं। बराड़ लाहौल में, सिप्पी चंबा में पट्टू या कपड़े बुनते हैं। यही काम कांगड़ा में कप्पड़बुण या जुलाहे करते हैं। डूम या डूमणे बांस की वस्तुएं बनाते हैं। छिम्बे रंगरेज हैं या कपड़े सीते हैं। हाली हल जोतते हैं।

हल जोतने वाले भी वहां के मूल वासी हुआ करते हैं। चंबा में हाली हल जोतते

हैं। कांगड़ा में जिन ब्राह्मणों ने हल जोता वे भी 'हलबाह' कहलाए।

जमीन से जुड़ी हुई एक महत्त्वपूर्ण जाति 'घिरथ' है। ये लोग कांगड़ा में बहुत ही उपजाऊ भूमि के स्वामी हैं। इनके 'जख' (यक्ष) जैसे अपने देवता हैं। अतः घिरथ जिन्हें बाहती या चांग भी कहा जाता है, यहां के मूल वासी हैं। प्रजाति के अनुसार भी इनकी अपनी विशिष्टताएं हैं। 'बाहती' नामकरण भी हल बाहने के कारण 'हलबाह' की भांति बना है। इनकी उपजातियां भी जमीन, पेड़-पौधों से जुड़ी हुई हैं, अतः ये वास्तविक भूमि-पुत्र थे।

आर्यों का पर्वत आगमन

आर्यों के मूल स्थान के बारे में मतभेद है। मध्य एशिया, उत्तरी ध्रुव के प्रदेश, दक्षिण-पश्चिमी यूरोप, सप्तसिंधु (भारत) आदि को आर्यों का मूल स्थान माना जाता है। वैदिक आर्यों ने सप्तसिंधु को अपना देश कहा है अतः यहीं उनकी सभ्यता पनपी। आर्य कहीं से भी चले हों, उनकी सभ्यता का उदय सप्तसिंधु में ही हुआ। आर्यों द्वारा जिस वन वनस्पति, नदी पर्वतों का वर्णन किया गया, वह सब भारत में ही है।

पर्वतवासियों से संघर्ष

यूं तो यह अनुमान लगाया जाता है कि ऋग्वेद से पूर्वकाल में आर्यों का संघर्ष पर्वतीय संघों से हुआ, तभी ये बातें ऋग्वेद में दर्ज की गईं।

ऋग्वेद में दास कौलितरं शासक शम्बर का उल्लेख है जिसे आर्य लेखकों ने 'दास' कहकर संबोधित किया। शम्बर एक शक्तिशाली नायक था जिसके पत्थर के सौ दुर्ग बने हुए थे–

भिनत्पूरा नवतिमिंद्र पूरवे दिवोदासय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो।
अतिथि ग्वाय शम्बरं गिरेरूग्रो अवाभरत।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा।। (ऋ. 1.130.7)

शम्बर का राज्य रावी नदी से पूर्व गढ़वाल तक फैला हुआ था। शम्बर के सहयोगी चुमुरि, धनि, शुष्ण, अशुष, पिप भी पर्वतीय राजा थे। रावी, बिपाशा, शतद्रु के बीच फैले इस साम्राज्य को पाने के लिए दिवोदास ने चालीस वर्ष तक युद्ध किया। अंत में उदब्रज में शम्बर मारा गया :

दिवे दिवे सदृशीरन्यमर्द्र कृष्णा असेद्धय सद्रनोजाः।
अहंदासा वृषभोव वस्नयंतोदब्रजे वर्जिना शम्बर च।। (ऋ. 21.6.47)

अतः शम्बर की पराजय के बाद पर्वतीय लोग पहाड़ों के बीहड़ों की ओर गए। ऋग्वेद के रचयिताओं ने आर्यों के जिन प्रबल प्रतिद्वंद्वियों का उल्लेख किया

है, वे सिंधु घाटी के द्रविड़ नहीं थे, अपितु पर्वतवासी थे। पर्वतवासी कोल, किरात, नागों से आर्यों का कड़ा संघर्ष हुआ। यह संघर्ष सत्ता के लिए था, राज्य विस्तार के लिए था और संपन्न साम्राज्य निर्माण के लिए था।

नाग, जो जलस्रोतों के स्वामी थे, आर्यों का लक्ष्य बने क्योंकि जलस्रोतों पर अधिकार किए बिना खेती संभव नहीं थी। खेती के बिना खुशहाली संभव न थी। नाग जाति से आर्यों का संघर्ष वैदिक काल से लेकर महाभारत तक जारी रहा। महाभारत का तो आरंभ ही सर्पों की जन्म कथा और उनके यज्ञ में विनाश से होता है। जनमेजय ने नागों को समूल नष्ट करने की ठान ली थी। किंतु इससे पूर्व आर्यों द्वारा नागों को सशर्त मान्यता भी दी है। शिव ने नागों को गले लगाया। विष्णु ने अपनी शैया या आसन बनाया। शेष नाग को विष्णु के सिर पर छाया करनी पड़ी। नागों को बहुत बाद में इसी परंपरा के अनुरूप शिव या विष्णु या देवी मंदिरों में द्वारपालों के स्थान पर उकेरा गया। नाग जाति समाप्त हो गई किंतु नाग पूजा के रूप में इसके समृद्ध अवशेष हिमाचल में आज भी सुरक्षित हैं।

शम्बर विजय के बाद भी आर्य हिमाचल की बीहड़ पहाड़ियों की ओर नहीं बढ़े अपितु शिवालिक पहाड़ियों से होते हुए शतद्रु के पार सरस्वती और यमुना नदियों की ओर चले गए।

आर्यों के तीन महत्त्वपूर्ण वंशों का वर्णन पुराणों में मिलता है। ये वंश थे—भरत, कुरु और पुरु। उल्लेख है कि ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए। दक्ष प्रजापति के एक सहस्र पुत्र और पचास कन्याएं हुईं। उन्होंने अपनी तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप से किया। कश्यप की श्रेष्ठ पत्नी से इंद्र और विवस्वान् आदि पुत्र हुए जिनमें विवस्वान् के ज्येष्ठ पुत्र मनु हुए और कनिष्ठ यमराज। मनु से मानव जाति उत्पन्न हुई। विवस्वान् से उत्पन्न होने के कारण मनुवंश सूर्यवंश कहलाया।

यद्यपि सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रसंग हैं और सभी काव्यात्मक होने से प्रतीकात्मक हैं। तथापि इनमें इन तीन प्रमुख वंशों के राजाओं का वर्णन मिलता है जो गंगा-यमुना और सरस्वती नदियों के किनारे बसे।

मनु के दस पुत्र हुए—वेन, धृष्णु, नरिष्यंत, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारुष, शर्याति, इलाकन्या, पृषध्र, नाभागारिष्ट। इला से पुरूरवा हुआ जो समुद्र के तेरह द्वीपों का शासक बना और स्वर्ग से तीन प्रकार की अग्नि और उर्वशी-अप्सरा को छीन लाया। उर्वशी के गर्भ से छह पुत्र हुए जिनमें आयु के पांच पुत्र थे—नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, गय और अनेना। नहुष ने इंद्र पद प्राप्त किया। इस समय तक देव समाज अलग हो गया था और राजा लोग इंद्रासन पाने के लिए प्रयास करते थे जिसमें नहुष सफल

हुआ। यद्यपि इसे इंद्रासन कारणवश छोड़ना पड़ा।

नहुष के ये पुत्र बताए गए हैं–यति, ययाति, संयाति, आयाति, अयति। ययाति का प्रसंग प्रसिद्ध है जिसने चिरयौवन भोगने के लिए अपने पुत्रों से यौवन मांगा। ययाति के पुत्रों–यदु, तुर्वसु, द्रुह्य, अनु और पुरु में से पुरु ने उसे यौवन दिया अतः आगे जाकर पुरु युवराज बना।

पुरु के राज्याभिषेक पर उससे पौरव वंश चला। यदु से यदुवंश, तुर्वसु से यवन, द्रुह्य से भोज, अनु से म्लेच्छ उत्पन्न हुए। इस प्रकार भारत के विभिन्न भागों में आर्यों द्वारा राज्य स्थापित किए गए जिनमें कई चक्रवर्ती सम्राट् हुए। अश्वमेध तथा राजसूय जैसे यज्ञ किए जाने लगे। इंद्र पद की प्राप्ति के प्रयास हुए। आर्यों द्वारा गंगा, यमुना, सरस्वती नदियों के मैदानों में राज्य स्थापित किए गए।

ययाति, जिसका राज्य सरस्वती के किनारे था, के पुत्रों पुरु, अनु, द्रुह्य, तुर्वसु आर्य राजाओं तथा अनार्य राजाओं के साथ भरतों के राजा दिवोदास के पुत्र सुदास के युद्ध का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। सुदास की सेना का नेतृत्व गुरु वशिष्ठ ने किया था और अन्य दस राजाओं की सेना का विश्वामित्र ने। युद्ध परूष्णी अर्थात् रावी के किनारे हुआ जिसमें अनु और द्रुह्य की सेनाएं पानी में डूब गईं। पुरू की सेना परास्त हुई। सुदास की सेना का मुकाबला भेद, अज, शिव्र और यक्ष नाम के अनार्य राजाओं से भी हुआ। सुदास इन्हें परास्त कर शक्तिशाली राजा बना जिसका राज्य यमुना तक था।

वैदिक सुरा

वैदिक काल में आर्य हिमाचल की ओर बढ़े हों या हिमाचल में रह रहे हों, यह प्रतीत नहीं होता। बल्कि पौराणिक काल में भी आर्य हिमाचल में नहीं रहे। वैदिक-पौराणिक साहित्य में देवदार जैसे पर्वतीय वृक्ष-वनस्पतियों का उल्लेख नहीं है। इन ग्रंथों में मैदानी वन-वनस्पतियों का ही उल्लेख हुआ है। तथापि यह संभव है कि आर्यों ने इन क्षेत्रों को जीता। कोल-किरात या नाग संघर्ष हिमाचल की सीमा पर निचली पहाड़ियों में हुए होंगे, जहां इन संघों ने पराजय स्वीकार कर ली। यहां के छोटे-मोटे राजा या कबीलों के सरदार मैदानों में आर्यों के शक्तिशाली साम्राज्य में अश्वमेध, राजसूय यज्ञों या अन्य अवसरों पर भेंट लेकर जाने लगे। ऐसे कई उदाहरण महाभारत में मिलते हैं। यह भी संभव है कि पर्वतवासी अपनी भेड़-बकरियों पर हिमालय में होने वाली जड़ी-बूटियों, औषधियां, अन्य सामग्री मैदानों में व्यापार के लिए ले जाते थे।

ऋग्वेद में प्रिय पेय सोमरस था। सोमरस के अधिकारी विशिष्ट व्यक्ति माने जाते थे जिनमें देवता मुख्य थे। ऋग्वेद में इसे 'मोजवत' कहा गया है जो मुजवत् पर्वत पर होता था। सोमरस बनाने के लिए सोमलता भी पर्वतों पर होती थी। यह लता हिमालय में पाए जाने के संकेत मिलते हैं। अतः सोमरस के लिए जड़ी-बूटियां हिमाचल की ओर से ही जाती थीं। सोमरस के अतिरिक्त एक अन्य पेय सुरा का भी ऋग्वेद में उल्लेख है। सुरा भी सोमरस की भांति पेय था किंतु इसे दूसरे दर्जे का माना जाता था।

हिमाचल में आज भी वैदिक सुरा बनाई जाती है। चंबा के जनजातीय गद्दी लोग इसे 'सुर' कहते हैं। संभवतः आर्यों ने यह पेय हिमाचलवासियों से ही सीखा है क्योंकि इसे बनाने के लिए उपयुक्त जड़ी-बूटियां हिमाचल में पाई जाती हैं और आज भी लोग इन जड़ी-बूटियों को पहचानते हैं और प्रयोग करते हैं। चंबा के जनजातीय लोगों तथा कुल्लूवासियों द्वारा सुर का पान विशेष समारोहों में सामूहिक रूप से किया जाता है। प्रदेश के ऊपरी भागों, किन्नौर आदि में देवता के प्रसाद के रूप में मादक पेय बांटा जाता है। जिस देवता के यहां मादक पेय का प्रसाद लगता है वहां सुरा पात्र पहले देवता के पास रखा जाता है। देवता के भंडार में इसे तैयार किया जाता है। देवता के उत्सव में देवता को चढ़ाने के बाद इसे वितरित किया

जाता है। देवता के उत्सव में पूरा का पूरा गांव सुर की गंध से महक जाता है।

शृंगे शिशनो अर्षति—यह ऋग्वेद का उल्लेख है। सोमलता पर्वत शृंगों पर पाई जाती थी। कुल्लू में तैयार मादक पेय 'सुर' के लिए भी जड़ी-बूटियां ऊंचे पर्वत शिखरों से लाई जाती हैं। ऋग्वेद ने सोम का अनेक बार गायन किया है। ऋग्वेद के नवें मंडल में सोम का भरपूर उल्लेख आता है। वनस्पतियों के राजा, औषधियों के सम्राट, सोम का उल्लेख ब्राह्मण ग्रंथों में भी मिलता है।

सोमरस को बनाने की विधि, जो हमारे इन धर्मशास्त्रों में वर्णित है, ठीक उसी प्रणाली से कुल्लू में 'सुर' तैयार की जाती है। प्राचीन समय में इसे फलक नाम के पात्र में रखा जाता था। काटकर मूसलों से कूटा जाता था। कूटने और साथ में पानी मिलाने की प्रक्रिया में मंत्रोच्चारण भी किया जाता था। कूटा हुआ सोम आघवनीय नाम के मिट्टी के पात्र में रखा जाता था। पात्र में पानी डाल इसका रस निचोड़ लेते थे। इसे अब छानकर अन्य पात्र में रखा जाता।

कुल्लू में प्रचलित इस मादक पेय को तैयार करने की भी यही वैदिक रीति है।

'सुर' अन्य प्रकार की देसी शराब या 'लुगड़ी' के विपरीत एकमात्र पेय है, जो देवता को चढ़ता है। लुगड़ी एक आम और अधिक प्रचलित पेय है, जो सुर से निम्न कोटि का समझा जाता है। यह पेय देवता के कारज के समय, जाच्र (मेला) के समय तथा ब्याह के अवसर पर तैयार किया जाता है।

इसे बनाने के लिए कई जड़ी-बूटियों को प्रयोग में लाया जाता है, जो ऊंचे शिखरों पर पाई जाती हैं। ऐसा कहा जाता है कि ऊंचे पर्वतों पर इन जड़ी-बूटियों वाले स्थानों में कोई सुकुमार बालक या नारी नंगे पांव चले तो वहीं मदहोश हो होश खो बैठते हैं। ऐसे भी ऊंचे जोतों को पहली बार लांघने वाला इन जड़ियों के खुमार से लड़खड़ा जाता है या उसके सिर में चक्कर आ जाता है।

ऐसे भी इन जड़ी-बूटियों के बारे में पुराने समय से अनेक दंत-कथाएं प्रचलित हैं, यथा ये रात को चमकती हैं, नाना प्रकार के रूप धारण करती हैं। एक औषधि किस्म की जड़ी को बंदूक से मारने लगे, तो निशाने के आगे गाय दिखने लगी या नारी दिखने लगी, आदि। कुल्लू के पार थरकू गांव में एक बार एक मैदान को समतल करते हुए लोगों को ऐसी जड़ी मिली, जो उनके अनुसार रात को चमकती थी। मैं भी उसकी जड़ें घर लाया, किंतु कई बार रात के अंधेरे में देखने पर वह चमकती हुई नजर नहीं आई।

ऊंचाइयों से, कठिनाई से लाई जाने वाली इन जड़ियों में से कुछ सुर बनाने के काम में लाई जाती हैं, जो इस प्रकार हैं—ओसटली, निंबली, चटकारी, करारी, गुड़ल, शकोरी, घुमण, टकोरी, गिद्धामूसल, उंबलीडोही, शौरी, बूढ़ी रा लोगड़, मटोषण,

टुंबलमुंही, माहुरा, मटौशल, शाउंडी, ठाठीमंग, डोरीगाह आदि। इनमें माहुरा और मटौशल दो जड़ियां प्रमुख हैं, शेष में जितनी उपलब्ध हों, उतनी से ही काम चला लिया जाता है। मटौशल नाम की जड़ी को वैसे ही डाला जाता है, जैसे सब्जी में नमक डाला जाता है। इसे डालते समय मंत्र का जाप भी किया जाता है।

अब इन समस्त जड़ियों की (वस्तुतः ये उक्त सूची से अधिक हैं) पहचान करने वाले कुछेक बुजुर्ग ही शेष हैं। अब प्रायः ये समस्त जड़ियां लाई भी नहीं जातीं। जोतों से इन्हें लाने व सोम तैयार करने का कार्य देवताओं के यहां प्रायः बीस भादों को किया जाता है। बीस भादों को ऊंचे जोतों के जलाशयों, जैसे शैला सौर, रोहतांग, भृगु आदि में स्नान का पर्व भी होता है। इसी दिन ये जड़ियां लाई जाती हैं।

इन जड़ी-बूटियों की जड़ों, पत्तों आदि को लकड़ी पर बारीक काटा जाता है। काटने के बाद इन्हें ओखली में कूटा जाता है। इन ओखलियों का प्रयोग विशेष रूप से इसी के लिए नहीं होता, बल्कि धान आदि कूटने के लिए भी ये प्रयोग में लाई जाती हैं। अब इसमें जौ का आटा मिलाया जाता है। कई बार इसमें तरम्होड़ी (काटने वाली मक्खी-भिड़) भी डाली जाती है।

सुर के प्रादुर्भाव के विषय में एक वृद्ध ने कथा सुनाई कि एक चिड़िया पुल के नीचे बैठी थी। एक आदमी ने चिड़िया से पूछा कि यहां क्यों बैठी है? चिड़िया ने रौब से कहा कि वह इस पुल को थामे है। यदि वह हट जाए, तो पुल गिर जाए। असल में वह सुर में डाली जाने वाली जड़ियां खाए हुए थी।

यह कथा ऋग्वेद की इस उक्ति से मिलती है—

हंताह पृथिवीमिया नि दधानिह वे हवा। कुवित् सोमस्यापामिति।

—धरती को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख देने की बात उस चिड़िया की ही भांति है।

सोमरस को स्वास्थ्यवर्द्धक, स्फूर्तिदायक औषधि बताया गया है।

वास्तव में यह सोमलता एक न थी, बल्कि सोमरस अनेक जड़ी-बूटियों से बनता था। वे जड़ी-बूटियां स्वास्थ्यवर्द्धक औषधि तो हैं ही, मादकता देने से आनंददायक भी हो जाती हैं। स्नायविक दुर्बलता को हरने वाली इन जड़ियों से शरीर चैतन्य और मन निडर बनता है। कुछ भारतीय विशेषज्ञों ने इसे एपिड्रा नाम का जिम्नोस्पर्म माना है। इस जिम्नोस्पर्म की जातियां हिमालय में पाई जाती है। यह एक औषधि के रूप में भी प्रयुक्त होती है। इसी तरह कुछ वनस्पतियों को सोमराजा, सोमिदा, सोंबू आदि कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने इसे सारकोस्टेमा एसिडम नाम का पौधा माना है। यह एक बिना पत्तियों वाला पौधा होता है।

पर्वत-नदियां

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में पर्वत और नदियों की आराधना की गई है। हिमाचल को हिमवंत कहा गया है। यहां से निकलने वाली नदियां औषधियां प्रदान करने वाली बताई गई हैं–

हिमवतः प्रस्रवन्ति सिंधौ समह संगमः।
आपोह मह्यं तद्र दैवीर्दद्दन हृदद्योत भेषजूम। (अथर्व. 6.24.1)

–हिमालय से निकलने वाली तथा समुद्र में मिलने वाली सरिताएं हमें दिव्य औषधियां प्रदान करें।

हिमवंत की महिमा इस प्रकार बखानी गई है–

गिरयस्ते पर्वत हिमवंतोअरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु। (अथर्व. 12.1.11)
पस्येमे हिमवंतो महिन्वा यस्य समुद्र रसया सहादु।
पस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (ऋ. 10.121.4)

–ये हिमवंत पर्वत जिसकी महिमा गाते हैं, जिसके महत्त्व की घोषणा पृथ्वी सहित समुद्र कर रहा है और जिसके सामर्थ्य की अभिव्यक्ति से प्रदिशाएं (उसकी) बाहुबल होकर रही हैं, उस देव की हम हविष्य में आराधना करते हैं।

गंगा, यमुना, सरस्वती, चंद्रभागा नदियों का वर्णन वेदों में हुआ है। सरस्वती नदी का उल्लेख ऋग्वेद में बार-बार आया है। शतद्रु, बिपाशा, परूष्णी से भी आर्य लोग भलीभांति परिचित थे क्योंकि इन्हीं नदियों ने मैदानों को जीवन दिया है।

ऋग्वेद में सरस्वती नदी के साथ दृषद्वति और आपया नदियों का उल्लेख भी हुआ है जो संभवतः घग्घर और मारकंडा थीं। ऋग्वेद की रचना शतद्रु और सरस्वती नदियों के बीच के प्रदेश में हुई।

पृथ्वी पर स्वर्ग

स्वर्ग लोक की कल्पना एक ऊंचे स्थान पर की गई है। आर्यों ने हिमालय को देवताओं का स्थान माना है। आर्य लोग हिमालय में आयुधों से लैस होकर नहीं आते थे, क्योंकि इसे तपोभूमि माना गया। हिमालय के क्षेत्र में आयुधों का काम नहीं।

इंद्र का स्वर्ग, कुबेर की अलकापुरी, शिव की कैलासपुरी, ये सभी हिमालय में स्थित थीं। श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध में शंकर के प्रिय कैलास का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

'उस कैलास पर औषधि, तप, मंत्र तथा योग आदि उपायों से सिद्धि को प्राप्त हुए और जन्म से ही सिद्ध देवता नित्य निवास करते हैं, किन्नर, गंधर्व और अप्सरा आदि सदा वहां बने रहते हैं। उसके मणिमय शिखर हैं जो नाना प्रकार की धातुओं से रंग-बिरंगे प्रतीत होते हैं।'

किन्नर कैलास में आज भी शिवलिंग कई रंग बदलते हैं। प्रातःकालीन किरणों, दोपहर की धूप और सायंकालीन किरणों में किन्नर कैलास अपना रंग बदलता है। कैलास वर्णन में कहा गया है–

'वहां निर्मल जल के अनेक झरने बहते हैं और बहुत सी गहरी कंदरा और ऊंचे शिखरों के कारण यह पर्वत अपने प्रियतमों के साथ विहार करती हुई सिद्ध पत्नियों का क्रीड़ा स्थल बना हुआ है। मंदार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताड़, कचनार, असन और अर्जुन के वृक्षों से वह पर्वत बड़ा सुहावना जान पड़ता है। उसके सरोवरों में कुमुद, उत्पल, फलहार और शलपत्र आदि अनेक जाति के कमल खिले रहते हैं। उनकी शोभा से मुग्ध होकर कलरव करते हुए झुंड के झुंड पक्षियों से वह बड़ा ही भला लगता है। वहीं जहां-तहां हरिन, वानर, सूअर, सिंह, रीछ, साही, नीलगाय, शरभ, बाघ, कृष्णमृग, भैंसे, कर्णात्र, एकपद, अश्वमुख, भेड़िये और कस्तूरी मृग घूमते रहते हैं।'

ऐसे कैलास में ब्रह्मादि देवताओं ने एक वृक्ष के नीचे भगवान शंकर को विराजमान देखा। सनंदनादि शांत सिद्धगण और सखा यक्ष, राक्षसों के स्वामी कुबेर उनकी सेवा कर रहे हैं।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि शंकर का कैलास या कुबेर की अलकापुरी देवदार की ऊंचाइयों वाले पर्वत पर नहीं थी अपितु हिमालय की तलहटियों में थी, जहां शाल,

ताड़, कचनार के पेड़ थे, कमल भरे सरोवर थे। कैलास जाते हुए अलकापुरी का उल्लेख भी आता है। कुबेर की अलकापुरी के बाहर नंदी और अलकनंदा नामक नदियां बहती थीं। वहां सौगांधिक वनों में यक्ष पत्नियां निवास करती थीं।

विष्णु पुराण में उल्लेख है कि पूर्व और पश्चिम की ओर फैले हुए गंधमादन और कैलास, ये दो पर्वत हैं जिनका विस्तार अस्सी योजन है। मेरु के चारों ओर शीतांत आदि केसर पर्वतों के बीच सिद्ध चारणादि से सेवित अति सुंदर कंदराएं हैं। इन सुंदर पर्वत श्रेणियों में गंधर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानवादि अहर्निश क्रीड़ा करते हैं। ये संपूर्ण स्थान भौम (पृथ्वी के) स्वर्ग कहलाते हैं। ये धार्मिक पुरुषों के निवास स्थान हैं। पापकर्मा मनुष्य इनमें सौ जन्म में भी नहीं जा सकते।

ऐसे रमणीय स्थानों को, जो पर्वतों की पहाड़ियों पर थे, शांत थे, मैदानों की गर्मी या नागर सभ्यता से दूर थे, पृथ्वी के स्वर्ग कहलाते थे जिनमें कैलासपुरी, अलकापुरी या इंद्रपुरी थी। जहां धार्मिक लोग निवास करते थे।

ये कुछ-कुछ आज के 'हिल स्टेशन' से मिलते-जुलते थे जिन पर देव जाति ने आधिपत्य किया हुआ था।

महाभारत में भी ऐसी पुरियों का वर्णन है। महाभारत के सभा पर्व में पांडवों की दिग्विजय के समय अर्जुन ने उत्तर दिशा में कुबेर द्वारा रक्षित पर्वतों के भीतर तथा बाहर अधिकार किया। उलूक देश, पंचगणों को वश में किया। पौरव नाम के राजा को तथा पहाड़ी लुटेरों, म्लेच्छों को, जो सात प्रकार के थे, जीता। कश्मीर के क्षत्रिय राजा लोहित, त्रिगर्त, दारू, कोकनद, बाह्लीक वीरों के साथ दरद, कम्बोज, ऋर्षिक देश सहित पूरे हिमालय पर विजय प्राप्त की। वे किंपुरुष वर्ष के अधिपति द्रुमपुत्र और हाटक देश के रक्षक गृह्यकों को हराकर मानसरोवर पहुंचे।

इसी प्रकार भीम वन पर्व में ईशाण कोण से आए सहस्रदल कमल की प्राप्ति के लिए गंधमादन पर्वत के समीप कुबेर के राजभवन जा पहुंचे। जब भीम ने वहां अपना शंख बजाया, धनुष की टंकार की और तालियां बजाईं तो उस शब्द से यक्ष, राक्षस, गंधर्वों के रोंगटे खड़े हो गए।

समर्थ अर्जुन ने पाशुपतास्त्र की प्राप्ति के लिए भृगुतुंग पर्वत पर जाकर किरात वेशधारी शिव से भेंट की। यहीं पर अर्जुन को धनुषबाण फेंक देने की चेतावनी मिली थी क्योंकि इस क्षेत्र में शस्त्रास्त्र ले जाना मना था। यहीं से अर्जुन ने इंद्रपुरी को प्रस्थान किया, अतः इंद्रपुरी इसी ओर थी। अर्जुन गुफा, भृगुतुंग, हेमकूट (हामटा) कुल्लू में है।

अन्य वर्णों की उत्पत्ति

महाभारत के सभा पर्व में 'देव सभाओं' का वर्णन किया गया है। यमराज की सभा में सभी राजाओं की उपस्थिति बताई गई है। वरुण की सभा में नाग, दैत्यराज, नदी और समुद्रों की स्थिति बतलाई गई है। कुबेर की सभा में यक्ष, राक्षस, गंधर्व, गुह्यक और रुद्रदेव बताए गए हैं। ब्रह्मा की सभा में ऋषि-मुनि, देवता, शास्त्र, पुराण बताए गए हैं तो देवराज इंद्र की सभा में देवता, गंधर्व और ऋषि-मुनि।

देवता, दानव और मानव, ये तीन प्रमुख वर्ग थे समाज में। देवता सबसे ऊंचा वर्ग था जिसने पृथ्वी पर सबसे अनुपम स्थानों में अपना निवास बना रखा था। ये निवास पर्वतों की तलहटियों में थे जिन्हें स्वर्ग की संज्ञा दी गई। दानव जंगलों या बीहड़ों में रहते थे। मानव प्रायः मैदानी क्षेत्रों का वासी था।

ये सभी एक ही वंश के थे किंतु बाद में सबने अपनी-अपनी श्रेष्ठता बनाई और अपने को एक-दूसरे से ऊंचा मानने लगे। ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु माने गए हैं। मरीचि के पुत्र कश्यप से सारी प्रजा उत्पन्न हुई। दक्ष प्रजापति की तेरह कन्याओं में से अदिति के बारह आदित्य हुए। एक अन्य कन्या दिति से एक पुत्र हिरण्यकशिपु हुआ। हिरण्यकशिपु के पांच पुत्रों में से एक प्रह्लाद के तीन पुत्र हुए—विरोचन, कुंभ और निकुंभ। विरोचन का बलि और बलि का बाणासुर हुआ। इस प्रकार ये सभी दानव या असुर कहलाए। असुर के पुरोहित शुक्राचार्य थे जो भृगु ऋषि कुल से थे। शुक्राचार्य के चार पुत्र—त्वष्टाधर, अत्रि आदि असुरों के यज्ञ-याग करवाते थे।

शेष, अनंत, वासुकि, तक्षक, भुजंगम, कुर्म, कुलिक आदि नाग कद्रु के पुत्र थे। कश्यप पत्नी से भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, नारद आदि सोलह देवगंधर्व हुए। प्राधा नामक दक्ष कन्या से भी अनवधा, मनुवंशा आदि कन्याएं और सिद्धपूर्ण, बहि आदि देवगंधर्व हुए। प्राधा से ही अलम्बुषा, मिश्रकेशी, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अरुण, रक्षिता, रम्भा, मनोरमा, कोशिनी, सुबाहु, सुरता, सुरजा, सुप्रिया आदि अप्सराएं और अतिबाहु, हा-हा, हू-हू, तुम्बरू गंधर्व हुए। अतः गंधर्व और अप्सराओं का मूल एक ही है।

ब्रह्मा के मानसपुत्र छह ऋषियों में सातवें थे स्थाणु। स्थाणु से एकादश रुद्र हुए। पुलस्त्य से राक्षस, वानर, किन्नर और यक्ष हुए। पुलह से शलभ, सिंह, किंपुरुष,

व्याघ्र, यक्ष और ईहामृग हुए।

इस प्रकार अनेक वर्गों, जातियों की उत्पत्ति एक ही स्रोत से हुई बताई गई है तथापि इनमें से कुछ श्रेष्ठ बने, कुछ निम्न होकर रह गए।

पौराणिक उपाधियां और नामकरण

एक

महान् विभूतियों को सम्मानित करने के लिए पौराणिक काल में उनके महत् कार्यों के लिए उच्च उपाधियां दी जाती थीं। ये उपाधियां इस सीमा तक प्रसिद्ध हो जाती थीं कि व्यक्ति के नाम की जगह वह उसी उपाधि विशेष से जाना जाता था। आचार्य, धनुर्वेदज्ञाता, गणितज्ञ, वैज्ञानिक, वेद-पुराण वेत्ता, साहित्यकार आदि गुणवान पुरुष अपनी उपलब्धियों के कारण समाज द्वारा सम्मान पाते थे और अपनी कृतियों के कारण लोक में यथेष्ट नाम कमाते थे।

पौराणिक काल का 'वेदव्यास' नाम विख्यात है। परंतु यह नाम नहीं, उपाधि थी। व्यास जी का वास्तविक नाम श्रीकृष्णद्वैपायन था, क्योंकि ये कृष्ण वर्ण के थे। सत्यवतीनंदन श्रीकृष्णद्वैपायन को अट्ठारह पुराणों की रचना व संपादन करने तथा वेदों का व्यास (विस्तार) करने के कारण वेदव्यास उपाधि प्राप्त हुई और समय के अनंतर वे वेदव्यास के नाम से ही जाने जाने लगे : अष्टादश पुराणानां वक्ता सत्यवतीसुतः (शिव पुराण, रेवा खंड)।

कहा जाता है कि आज तक एक नहीं, अनेक व्यास हुए हैं। हर युग में पुराणों के पुनः संपादन व वेदों के विस्तार की आवश्यकता पड़ी। संभवतः ऐसा सामाजिक मूल्यों के बदलने के कारण था। इस कार्य को पूरा करने वाले को वेदव्यास कहा गया।

शिव पुराण में उल्लेख है : 'समय के प्रभाववश समस्त पुराणों के ग्रहण में असमर्थता के कारण व्यासस्वरूपी भगवान ब्रह्माजी युग-युग में संग्रह के निमित्त चार लाख श्लोकों वाले पुराणों की रचना (संपादन सहित) प्रत्येक द्वापर युग में करते हैं, जो अट्ठारह भागों, अष्टादश पुराणों के रूप में प्रकाशित होते हैं।'

इसकी पुष्टि निम्न अवतरण से भी होती है—

कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः
व्यास रूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे-युगे
चतुर्लक्ष प्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगो।
तदष्टादशधा कृत्वा भूलोकेस्मिन् प्रकाशितम।

(पद्म-पुराण, सृष्टि खंड, अ. 1151-52)

कहा जाता है, इस कल्प में व्यतीत हुए द्वापर युगों की संख्या के अनुसार अब तक 28 व्यास हो चुके हैं। अंतिम व्यास का नाम श्रीकृष्णद्वैपायन था। इससे ज्ञात होता है कि 28 व्यास चाहे न भी हुए हों, परंतु ये सभी अलग-अलग व्यक्ति थे। एक ही कार्य—पुराणों के संपादन व वेदों के विस्तार के कारण इन्होंने यह उपाधि पाई। व्यास का परिचय इस प्रकार दिया गया है : 'व्यास कोई एक व्यक्ति नहीं होता। प्रत्येक द्वापर में नवीन व्यास हुआ करते हैं। व्यास किसी का नाम नहीं, अपितु पदवी है। गोल वृत्त में जो एक सीधी रेखा निकल जाती है, उसका नाम व्यास है। इसी प्रकार वेदवृत्त में जो सीधा निकल जाए, उसका नाम वेदव्यास होता है। जितने व्यास हुए हैं, वे वेद और पुराण तत्त्व के पूर्ण ज्ञाता हुए हैं।'

कुछ राजपरिवारों में इसी प्रकार की उपाधियां चली आ रही थीं। राजा जनक महान् तत्त्वदर्शी एवं दार्शनिक व ब्रह्म के ज्ञाता थे। रामायण युग में भी मिथिला के राजा का नाम 'जनक' था और महाभारत युग में भी। महाभारत में महर्षि व्यास अपने पुत्र शुकदेव को ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा के लिए उनके पास भेजते हैं। अतः 'जनक' भी पदवी ही थी जो उन ब्रह्मज्ञानी राजाओं से चली आ रही थी।

इसी प्रकार किसी को ब्राह्मण, किसी को तपस्वी, किसी को ऋषि कहा जाता था। जो क्षत्रिय थे, उन्होंने ब्राह्मणत्व उपाधि के रूप में पाया था। जो ब्राह्मणत्व को प्राप्त थे, वे तपस्वी, ऋषि और ब्रह्मर्षि बने। अंत में ब्रह्म को पाकर 'ब्रह्मर्षि' हुए। जैसे कृप आचार्य, त्रित्त मुनि, वीतहव्य महामुनि, लोमश, ऋषि, वशिष्ठ महर्षि, शुकदेव ब्रह्मर्षि, नारद देवर्षि, ययाति राजर्षि कहे गए। कृप को आचार्य ही कहा गया, ऋषि नहीं। व्यास को महर्षि ही कहा गया, ब्रह्मर्षि या देवर्षि नहीं, क्योंकि न उन्होंने ब्रह्म तत्त्व को पाया और न ही वे देवताओं के ऋषि थे। अश्वत्थामा को उसके कुकर्मों के कारण ब्राह्मणाधम कहा गया।

महाभारत युग में देवव्रत ने कठोर प्रतिज्ञा की। अतः सबने कहा : यह भीष्म नाम से विख्यात हुए। वसुषेण ने अपने कवच, कुंडल शरीर से नोचकर दान कर दिए। इस दुष्कर कर्म के कारण वे 'कर्ण' नाम से प्रसिद्ध हुए। इनको देवव्रत या वसुषेण कोई नहीं कहता था। अर्जुन अपने कार्यों के कारण दस नामों से चर्चित हुए : धनंजय, विजय, श्वेतवाहन, फाल्गुन, किरीटी, बीभत्सु, सव्यसाची, अर्जुन, जिष्णु और कृष्ण। उनके पिता का रखा हुआ नाम कृष्ण था, लेकिन उन्हें इस नाम से कोई नहीं जानता। सभी उन्हें अर्जुन ही कहते थे जिसकी व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है : 'चारों समुद्र-पर्यंत पृथ्वी में मेरे जैसा शुद्ध वर्ण दुर्लभ है और मैं शुद्ध ही कर्म करता हूं, इसलिए लोग मुझे अर्जुन नाम से जानते हैं।'

इन नामकरणों की सार्थकता इसी में है कि प्रत्येक के नामकरण के पीछे कोई

न कोई उसके जीवन से संबद्ध घटना रहती थी। दुष्यंतनंदन भरत का नाम आश्रमवासियों ने हिंस्र जंतुओं का दमन करने के कारण सर्वदमन रखा। बाद में दुष्यंत को आकाशवाणी हुई कि तुम्हारे भरण-पोषण के कारण इसका नाम भरत होगा और वह भरत नाम से प्रसिद्ध हुए। विभांडक के पुत्र के सिर पर सींग था, इसलिए वे ऋष्यश्रृंग कहलाए। धृष्टद्युम्न के नामकरण के समय ब्राह्मणों ने कहा कि यह कुमार बड़ा धृष्ट और असहिष्णु है। बल, रूप, धन अथवा कवच-कुंडल की कांति से संपन्न है। इसकी उत्पत्ति अग्नि की द्युति से हुई है। इसलिए इसका नाम होगा धृष्टद्युम्न। द्रौपदी कृष्ण वर्ण की थी, इसलिए उसका नाम कृष्णा रखा गया। जरासंध का जन्म दो माताओं से हुआ था। एक रानी से एक टुकड़ा जन्मा और दूसरी रानी से दूसरा। उन टुकड़ों को जरा नाम की राक्षसी ने जोड़ा। अतः वे जरासंध कहलाए। इस प्रकार सभी नामों के पीछे कोई न कोई कारण होता था, जो सार्थक होता था।

इन नामकरणों या उपाधियों की विशेषता यही है कि किसी को भी बिना उपलब्धि के ब्राह्मण, ऋषि या ब्रह्मर्षि नहीं कहा गया। श्रीराम के गुरु को महर्षि कहा गया। परंतु पांडवों-कौरवों के गुरु (द्रोण) को नहीं। परशुराम को क्षत्रियों का संहार करते समय महर्षि नहीं कहा गया। विश्वामित्र व वीतहव्य को राजा ही कहा गया, जब तक कि उन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं कर लिया।

दो

प्रत्येक मन्वंतर का एक मनु हुआ करता है। मनु, इंद्र देवता, सप्तर्षि आदि सब उपाधियां थीं। हर युग में मनु, इंद्रादि अलग-अलग व्यक्ति हुए किंतु एक नाम के कारण वर्षों से एक ही व्यक्ति के जीवित रहने का भ्रम होता है।

प्रथम मनु स्वयंभू थे। उसके बाद क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष मनु हुए। सातवें मन्वंतर से सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु माने जाते हैं।

इसी प्रकार पुराणों में सात मन्वंतरों के अलग-अलग मनु, अलग-अलग इंद्र और ऋषि गिनाए हैं।

दूसरे मन्वंतर में स्वारोचिष मनु, पारावत और तुषितगण देवता, महाबली विपश्चित इंद्र थे। उर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, ऋषभ, तिरय, परीवान् सप्तर्षि और चैत्र तथा किंपुरुष मनुपुत्र हुए।

तीसरे मन्वंतर में उत्तम मनु, सुशांति देवराज इंद्र थे। सुधाम, सत्य, जप, प्रतर्दन और वशवर्ती थे देवताओं के गण और वशिष्ठ के सात पुत्र सप्तर्षि थे। अज, परशु, दीप्त मनुपुत्र थे।

चौथे मन्वंतर के इंद्र थे, सौ अश्वमेध किए हुए राजा शिवि। तामस मनु और

सप्तर्षि थे—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर।

रैवत मनु के समय इंद्र थे विभु। देवगण थे अमिताभ, भूतरय, बैकुंठ, सुमेधा। सप्तर्षियों के नाम थे हिरण्यरोभा, वेदश्री, अर्ध्वबाहु, बेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महमुनि। मनुपुत्र थे—बलबंधु, सम्भाव्य, सत्यक।

स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत ये चारों मनु राजा प्रियव्रत के वंशज माने जाते हैं। राजर्षि प्रियव्रत ने तप द्वारा भगवान् विष्णु से इन पुत्रों को प्राप्त किया था।

छठे मन्वंतर के मनु थे चाक्षुष और इंद्र का नाम था मनोजब। देवगण थे—आप्य प्रसूत, भव्य, पृथुक, लेखा। सप्तर्षियों के नाम थे—सुमेधा, बिरजा, हविष्मानु, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु। चाक्षुक के पुत्र थे उरु, पुरु, शतद्युम्न।

सातवें मन्वंतर के मनु हैं श्राददेव और इंद्र का नाम है पुरंदर। आदित्य, वसु और रुद्रादि देवगण हैं। सप्तर्षि हैं वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भारद्वाज। मनुपुत्र हैं—इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्यासि, नरिष्यंत, नाभाग, अरिष्ट, करूष और पृषध्र।

इस मन्वंतर में विष्णु की सत्वप्रधान शक्ति अधिष्ठात्री शक्ति मानी गई है। इसी मन्वंतर में भगवान् विष्णु का अवतार वामन कश्यप जी द्वारा अदिति के गर्भ से माना जाता है।

समस्त देवता, मनु, सप्तर्षि, मनुपुत्र और देवाधिपति इंद्र—इन सभी को विष्णु की ही विभूति माना जाता है क्योंकि विष्णु ही सबका आधार हैं।

इंद्र की उपाधि वही राजा पा सकता था जिसने पृथ्वी पर सौ अश्वमेध यज्ञ पूरे किए हों। एक बार इंद्र बनने पर यह प्रयत्न रहता था कि कोई दूसरा राजा पृथ्वी पर सौ अश्वमेध यज्ञ पूरे न कर पाए। इसी कारण निर्भीक प्रतापी राजाओं द्वारा किए जाने वाले यज्ञों में इंद्र द्वारा विघ्न डालने का प्रयत्न किया जाता था।

पुराणों में सात मन्वंतरों के बाद चौदह मन्वंतरों तक आगामी मनु, इंद्र, देवता और ऋषियों के नाम भी गिनाए गए हैं। आठवें मन्वंतर के मनु सावर्णि, इंद्र विरोचन पुत्र बलि। सप्तर्षि होंगे—दीप्तिमान, गालब, राम, कृप, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, व्यास तथा ऋष्य शृंग। नवें मन्वंतर में मनु ब्रह्मसावर्णि, शांति रुद्र और विशुद्ध नामक सौ-सौ देवताओं के दो गण। हविष्मान, सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिभोजा और सत्यकेतु सप्तर्षि।

ग्यारहवें मनु धर्मसावर्णि और इंद्र होंगे वृष। निःस्वर, अग्नितेजा, वपुष्मान, घृणि, आरुणि, हविष्मान और अनघ सप्तर्षि होंगे।

बारहवें मनु रुद्रपुत्र सावर्णि, इंद्र ऋतुथामा, तेरहवें रुचि और इंद्र दिवस्पति। चौदहवें मनु भौत्य और इंद्र शुवि। इस प्रकार आगामी मन्वंतरों के सप्तर्षि, देवता

आदि सभी के नाम भी गिनाए गए हैं।

प्रत्येक चतुर्युग के अंत में वेदों का लोप हुआ माना जाता है। उस समय सप्तर्षि ही स्वर्ग से आकर उनका प्रचार करते हैं। प्रत्येक मन्वंतर के अधिकारी मनु, सप्तर्षि देवता, इंद्र तथा मनुपुत्र राजागण ही माने जाते हैं।

यह भी विचारणीय है कि प्रत्येक मनु के कुछ पुत्र प्रत्येक मन्वंतर में गिनाए गए हैं। यही मनुपुत्र राजा होते हैं जो पृथ्वी पर राज करते हैं।

चौदह मन्वंतरों के बीत जाने पर एक सहस्र युग तक रहने वाला एक कल्प समाप्त हुआ समझा जाता है। इसके बाद इतने ही समय की रात्रि होती है। इस रात्रिकाल में विष्णु प्रलयकालीन जल पर शेषशैया पर शयन करते हैं। इस प्रलय के समय त्रिलोकी का अंत हो जाता है। प्रलय रात्रि के अंत पर पुनः विष्णु सृष्टि की रचना करते हैं।

स्वर्ण का भंडार हिमालय

हिमालय अपने अद्‌भुत एकांत के लिए ऋषि-मुनि और योगियों में प्रसिद्ध रहा है। कई साधक और चिंतक शांति की खोज में हिमालय की ओर आए। हिमालय अपने स्वर्ण भंडारों के लिए भी आकर्षण का केंद्र रहा। यह रहस्य हमारे वेद-पुराणों के अनेक आख्यानों से खुलता है।

आज भी हिमालय के ऊपरी भाग में देवताओं के पास इतना सोना है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। देवताओं के मोहरे सोने के हैं। उनके साज-बाज सोने-चांदी से बने हैं। इसी कारण आज के युग में कुल्लू, किन्नौर, ऊपरी शिमला के क्षेत्रों में, मंदिरों में ग्रामीणों को बारी-बारी से पहरा देना पड़ता है। इसमें विशेष बात यह है कि यह संपत्ति किसी एक व्यक्ति की नहीं अपितु पूरे समाज की है।

महाभारत में प्रसंग है कि पांडवों को अश्वमेध यज्ञ के लिए धन की आवश्यकता पड़ी तो महर्षि व्यास ने उन्हें राजा मरुत द्वारा पृथ्वी तल में छोड़ी स्वर्ण राशि के विषय में बताया।

ऋषि अंगिरा के यजमान राजा करंधम थे। राजा करंधम ने संपूर्ण राजाओं को अपने अधीन कर लिया था और अपने तेज से देवराज इंद्र को भी मात करते थे। इनके पौत्र का नाम था मरुत। इसी बीच इंद्र ने समस्त असुरों को जीता, अंगिरा के ज्येष्ठ पुत्र बृहस्पति को अपना पुरोहित बना लिया। ऋषि अंगिरा के दो पुत्रों में बृहस्पति बड़े और संवर्त छोटे थे। बृहस्पति अपने भाई को बहुत सताया करते थे जिस कारण वे दिगंबर होकर वन में वास करने लगे।

राजा मरुत और देवराज इंद्र की आपस में लाग-डाट थी। इंद्र राजा मरुत से बढ़ने का प्रयास करते थे किंतु बढ़ नहीं पाते थे। जब इंद्र किसी भी तरह राजा मरुत से आगे नहीं निकल पाए तो बृहस्पति से कहा कि वे कभी भी राजा मरुत का यज्ञ या श्राद्ध न कराएं। तीनों लोकों का स्वामी तो इंद्र है, मरुत तो केवल पृथ्वी का राजा है। बृहस्पति ने भी मरणधर्मा राजा मरुत का यज्ञ न करवाने का वचन दिया।

मरुत ने यह सुनकर एक महान् यज्ञ करवाने का निश्चय किया। वे बृहस्पति के पास गए और विनय की कि उन्होंने निर्देशानुसार यज्ञ की सारी सामग्री एकत्र कर ली है और वे यज्ञ करवाएं। बृहस्पति ने यज्ञ करवाने से इनकार कर दिया और

कहा कि मरणधर्मा मनुष्य का वे यज्ञ नहीं करते।

जब राजा मरुत खिन्न मन से लौट रहे थे तो रास्ते में उन्हें नारद जी मिले। राजा ने उन्हें अपने गुरु द्वारा मरणधर्मा का दोष लगाकर त्यागने की बात बताई। नारद ने कहा, 'राजन्! अंगिरा के द्वितीय पुत्र संवर्त बड़े धार्मिक हैं। वे दिगंबर होकर संपूर्ण दिशाओं का भ्रमण कर रहे हैं। यदि बृहस्पति तुम्हें अपना यजमान बनाना नहीं चाहते तो तुम उन्हीं के पास जाओ। संवर्त बड़े तेजस्वी हैं। वे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारा यज्ञ करा देंगे।'

नारद जी ने यह भी बताया कि वे काशीपुरी में पागल-सा वेश धारण किए घूम रहे हैं। विश्वनाथ पुरी के प्रवेश द्वार पर मुर्दे को देख जो पीछे लौट पड़े, समझना वही संवर्त है। राजा ने काशीपुरी के द्वार पर मुर्दा रखवा दिया। संवर्त वहां दर्शनों के लिए आए, किंतु मुर्दे को देख सहसा पीछे लौट गए।

राजा ने संवर्त को अपना परिचय दिया और अपना उद्देश्य बताया। संवर्त ने उत्तर दिया—'मेरा स्वभाव तो अपनी मौज से काम करने का है। मैं किसी के अधीन नहीं रहता। मेरे बड़े भाई का इंद्र से बड़ा मेलजोल है। तुम उन्हीं से अपना यज्ञ कराओ। मेरा सब कुछ बड़े भाई ने अपने अधीन कर रखा है। मेरे पास तो केवल मेरा यह शरीर ही छोड़ रखा है।'

मरुत द्वारा बहुत अनुनय-विनय करने पर संवर्त ने यज्ञ करवाना स्वीकार कर लिया और इंद्र और बृहस्पति के कुपित होने की स्थिति में राजा द्वारा अपना समर्थन और यज्ञ लेने का भी वचन ले लिया। संवर्त ने यह भी बताया कि यज्ञ के साथ वे अक्षय धन प्राप्ति का उपाय भी बताएंगे, जिसके साथ राजा मरुत देवताओं सहित इंद्र को नीचा दिखा सकें।

संवर्त ने बताया—'हिमालय के पृष्ठभाग में मुंजबान नामक एक पर्वत है, जहां भगवान् शंकर सदा तपस्या करते हैं। उस पर्वत पर रुद्रगण, साध्यगण, विश्वदेव, बसुगण, यमराज, वरुण, अनुचरों सहित कुबेर, भूत, पिशाच, अश्विनीकुमार, गंधर्व, अप्सरा, यज्ञ देवर्षि, आदित्य, मरुत और यातुधानगण सब ओर से घेरकर उमापति महादेव की उपासना करते रहते हैं। वहां न तो अधिक गर्मी पड़ती है, न विशेष ठंडक, न वायु का प्रवेश होता है, न सूर्य के प्रचंड ताप का। उस पर्वत के चारों ओर सूर्य की किरणों के समान चमकते हुए सुवर्ण के अनेक शिखर हैं। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कुबेर के अनुचर अपने स्वामी का प्रिय करने के लिए उन सुवर्ण शिखरों की सदा रक्षा करते हैं। वहां जाने से पहले तुम जगदविधाता भगवान् शंकर को नमस्कार करके फिर इस प्रकार स्तुति करना। उनके चरणों में मस्तक झुकाने से तुम्हें सुवर्ण की प्राप्ति होगी। सुवर्ण लाने के लिए तुम्हारे सेवकों को भी वहां जाना चाहिए।

राजा मरुत ने वैसा ही किया। कारीगरों ने यज्ञ के लिए सोने के पात्र तैयार किए। यज्ञ की तैयारी होने के साथ-साथ इंद्र चिंतित होने लगे। राजा इंद्र और बृहस्पति ने यज्ञ में विघ्न डालने अग्नि को भेजा। अग्नि ने यज्ञशाला में जाकर मरुत से कहा कि बृहस्पति आपका यज्ञ करने को तैयार है। इंद्र भी मैत्री चाहते हैं। राजा मरुत ने उनकी एक न मानी।

अग्नि के बाद इंद्र ने गंधर्वराज धृतराष्ट्र को भेजा। धृतराष्ट्र ने राजा मरुत से बृहस्पति को पुरोहित बनाने की बात कही और इंद्र द्वारा वज्र से आक्रमण करने की धमकी भी दी। राजा मरुत नहीं माने तो उसी समय इंद्र वज्र सहित आकाश में प्रकट हुए। संवर्त ने स्तंभिनी विद्या द्वारा वज्र का प्रभाव शांत कर दिया और मंत्रों के बल सभी देवताओं का आह्वान किया और इस प्रकार इंद्र सहित सभी देवताओं ने पधार कर सोमरस का पान किया और यज्ञ को सफल बनाया।

यज्ञ संपन्न होने पर और सभी देवताओं के चले जाने पर राजा मरुत ने वहां पग-पग पर स्वर्ण की ढेरियां लगवाईं और ब्राह्मणों को दान दिया। ब्राह्मणों के ले जाने से जो धन वहां बच गया उसको मरुत ने एक स्थान पर जमा कर दिया और गुरु संवर्त की आज्ञा लेकर राजधानी को लौट आए।

पांडवों का हिमालय अनुराग

पांडवों का हिमालय और विशेषकर हिमाचल से विशेष अनुराग रहा है। हिमाचल प्रदेश के लगभग सभी भागों में पांडवों के किस्से-कहानियां जिस उत्सुकता और रुचि से सुनाए जाते हैं उससे लगता है पांडवों ने अपना अधिकांश समय इस भूमि पर बिताया है। महाभारत में दिए वर्णन के अनुसार पांडव हिमालय में नहीं रहे, यद्यपि वे समय-समय पर अस्त्र-शस्त्र की प्राप्ति तथा विजय यात्रा पर हिमालय की ओर आते रहे। जगह-जगह पांडवों से जुड़े स्थान हैं।

मनाली में हिडिम्बा का प्रसिद्ध मंदिर है। हिडिम्बा के मंदिर कुल्लू के अन्य भागों तथा चंबा में भी हैं। पांच पांडवों की मूर्तियां कुल्लू के निरमंड तथा चौपाल में हैं। प्रसिद्ध ठोडा खेल में भी साठा और पाशा को कौरव पांडव से जोड़ा जाता है। भीम तो पहाड़ी दंतकथाओं के नायक हैं। कहीं भीम की टांग फिसलने से ऊंचे पर्वतों में निशान पड़ा, कहीं उनकी चिलम का चुगल भारी पत्थर के रूप में पड़ा है। तो कहीं उनका गुर्ज गिरा है। अधिकांश मंदिरों को भी पांडवों से जोड़ा जाता है। विशेषकर अधूरे बने मंदिरों के विषय में यह कथा प्रायः सुनाई जाती है कि रात में पांडवों ने मंदिर बनाया। सुबह होने पर वे छिप गए और मंदिर अधूरा रह गया। जाहिर है लोक विश्वास का आधार पांडवों का अज्ञातवास है या वह समय है जब वे लाक्षागृह से बचकर भागे थे। इनमें से अधिकांश दंतकथाएं होंगी, यह निश्चित है किंतु पांडवों के इतने किस्से, उनके बार-बार यहां आगमन की धारणा को पुष्ट करते हैं।

महाभारत में पांडवों की हिमालय यात्रा के बार-बार वर्णन आते हैं। विभिन्न कारणों से वे बार-बार हिमालय की ओर आए।

पांडव लाक्षागृह में सुरंग खोद निकलने के बाद नौका से गंगा पार कर दक्षिण दिशा की ओर बढ़े। थक जाने पर वे कुछ ही दूरी पर वट वृक्ष के नीचे ठहर गए। भीम का पानी लेकर लौटने पर हिडिम्बा से साक्षात्कार हुआ। हिडिम्बा का भीम से विवाह हुआ।

विवाह के बाद भीम और हिडिम्बा पहाड़ों की चोटियों, जंगल, तालाबों, गुफाओं आदि दिव्य भूमियों में विचरते रहे। इसके बाद वन पर्व में बदरिकाश्रम जाते समय द्रौपदी के थक जाने पर भीम ने अपने पुत्र घटोत्कच को स्मरण किया। घटोत्कच तथा

अन्य राक्षसों ने पांडवों को पीठ पर उठा कैलास पर्वत की ओर कूच किया। घटोत्कच महाभारत युद्ध में पाडंवों की ओर से लड़ा। घटोत्कच के विशेष रथ में चारों ओर रीछ का चमड़ा मढ़ा था। अतः हिडिम्बा और घटोत्कच के पर्वत पुत्र होने की पुष्टि होती है।

पांडवों की दिग्विजय के समय अर्जुन ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया था। सभापर्व में वर्णन है :

'उन्होंने (अर्जुन) ने पहले साधारण पराक्रम से आनर्त, कालकूट और कुलिंद देशों पर विजय प्राप्त की। सात दीप के राजाओं में शाकलदीप वालों ने बड़ा घमासान युद्ध किया। परंतु अर्जुन के बाणों के सामने उन्हें हटना ही पड़ा। उनकी सहायता से अर्जुन ने प्राग्ज्योतिषपुर पर चढ़ाई की। वहां का प्रतापी राजा भगदत्त था। भगदत्त के सहायक किरात, चीन आदि बहुत से समुद्री देशों के लोग भी थे। आठ दिन तक भयंकर युद्ध होने के बाद भी अर्जुन का पूर्ववत् उत्साह देखकर भगदत्त ने मुसकराते हुए अर्जुन से मित्रता कर ली।'

इसके बाद अर्जुन ने उत्तर दिशा में बढ़कर पर्वतों के बाहर-भीतर और आसपास सभी स्थानों पर अधिकार कर लिया। उन्होंने पौरव नाम के राजा को तथा पहाड़ी लुटेरों और म्लेच्छों को जो सात प्रकार के थे, जीता। त्रिगर्त, दास और कोकनद के नरपति स्वयं शरणागत हुए। कश्मीर के वीर क्षत्रिय और दस मंडलों का अध्यक्ष राजा मीहित भी उनके अधीन हुए।

अर्जुन क्रमशः किंपुरुष वर्ष के अधिपति द्रुमपुत्र और हाटक देश के रक्षक को हराकर मानसरोवर पहुंचे। वहीं से हाटक देश के आसपास के प्रांतों पर भी अधिकार कर लिया। तदंतर अर्जुन ने उत्तरी हरिवर्ष पर विजय प्राप्त करनी चाही। परंतु वहां प्रवेश करते न करते बड़े वीर और विशालमय द्वारपालों ने प्रसन्नता से कहा—अवश्य ही आप कोई असाधारण पुरुष हैं, क्योंकि यहां तक पहुंचना सबके लिए सुगम नहीं। आप यहां आ गए हैं, यही विजय है।

वन पर्व में अर्जुन पाशुपतास्त्र पाने के लिए गंधमादन पर्वत पर गए। हिमालय में वे इंद्रकील पर्वत पर पहुंचे जब उन्हें आवाज सुनाई दी : खड़े हो जाओ। अर्जुन ने देखा, एक तपस्वी वृक्ष की छाया में बैठा था। तपस्वी ने कहा, तुम धनुष-बाण, कवच और तलवार धारण किए कौन हो? यहां आने का क्या प्रयोजन है? यहां शस्त्रों का कुछ काम नहीं। शांत स्वभाव तपस्वी रहते हैं। युद्ध होता नहीं इसलिए तुम अपना धनुष फेंक दो।

यहीं हिमालय में इंद्रकील पर्वत के पास अर्जुन ने शंकर से किरात वेश में भेंट की और पाशुपतास्त्र प्राप्त किया।

वन पर्व में ही पांडवों ने मेनाक पर्वत, कनखल पर्वतमाला, भृगुतुंग पर्वतों के

दर्शन किए। राजा सुबाहु के देश में किरात, तंगण, पुलिंद जाति के लोगों को देखा। अलकनंदा नदी और बदरीधाम के आगे कैलास पर्वत के दर्शन किए।

महाबली भीम ने कैलास पर्वत के समीप कुबेर के देश में राक्षसों से युद्ध कर यक्षराज कुबेर को प्रसन्न किया और वहां से अद्वितीय कमल लाए।

आश्वमेधिक पर्व में अश्वमेध के लिए छोड़े गए अश्व के पीछे विजय के लिए जाते हुए अर्जुन पुनः इन पहाड़ी प्रदेशों में आए।

महाभारत युद्ध में त्रिगर्त का वर्णन बार-बार आया है। युद्ध से पूर्व राजा विराट की गाय हरने पर भी त्रिगर्त राज सुशर्मा कौरव पक्ष से लड़ा था। महाभारत युद्ध में भी त्रिगर्तों ने पांडवों से लोहा लिया। अश्वमेध के समय कुरुक्षेत्र में जो त्रिगर्त वीर मारे गए थे, उनके महारथी पुत्रों-पौत्रों ने अर्जुन से युद्ध किया। इसके बाद प्राग्ज्योतिषपुर आदि देशों के बाद मणिपुर नरेश से युद्ध हुआ।

महाभारत के अंत में महाप्रस्थान के लिए भी पांडव हिमालय की ओर गए। सभी पांडव द्रौपदी सहित उपवास करते हुए पूर्व दिशा की ओर चले। लाल सागर के तट पर उन्हें साक्षात् अग्नि के दर्शन हुए। अग्नि ने अर्जुन को अपना धनुष-बाण फेंकने के लिए कहा।

वहां से पृथ्वी की परिक्रमा की इच्छा से उत्तर दिशा में आए और हिमालय के दर्शन किए। हिमालय में पांडव एक-एक गिरते गए और गलते गए। कहते हैं धर्मराज युधिष्ठिर सशरीर स्वर्ग जा पहुंचे।

संभवतः यही कारण है कि हिमालय के विभिन्न भागों में पांडवों से जुड़ी हुई अनेक किंवदंतियां आज भी सुनने को मिलती हैं। युधिष्ठिर की सत्यनिष्ठा, भीम का पराक्रम, अर्जुन का युद्ध कौशल, सहदेव की विद्या की चर्चा आज भी कथा-कहानियों में की जाती है।

पर्वतीय संघ

कश्मीर से गढ़वाल, कांगड़ा से जम्मू, शिमला, सोलन से उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र देहरादून तक कई छोटे-बड़े पर्वतीय संघ थे। अधिकांश पहाड़ी संघ आयुधजीवी थे। समस्त जनपदों या संघों की स्थापना के विषय में निश्चित कुछ नहीं है तथापि महाभारत में इन सभी संघों का उल्लेख मिलता है। अतः यह माना जा सकता है कि महाभारत युग में ये सभी संघ स्थापित हो चुके थे।

सभा पर्व में उल्लेख है कि उत्तर देश के सभी राजा प्रतापी जरासंध से भयभीत थे और अपना-अपना राज्य छोड़ दक्षिण की ओर भाग रहे थे। शूरसेन, भद्रकार, शाल्व, योध, पटंचर, सुस्थल, सुकुट्ट, कुलिंद, क्रांति, शाल्वायन, दक्षिण पंचाल, पूर्व कौसल, मत्स्य, संयन्तपाद आदि सभी राज्य जरासंध के अधीन थे।

इन राज्यों में शाल्व औदुम्बर के साथ का संघ था। सुस्थल संभवतः त्रिगर्त था क्योंकि शल्यपर्व में त्रिगर्त राज सुशर्मा को 'प्रस्थल देश' का शासक कहा गया है।

जरासंध मगध देश का शासक था जिसके साथी राजा करूपदेश के अधिपति, भगदत्त और किरात देश के स्वामी थे। किरात देश का स्वामी अपने को वासुदेव बताता था और कृष्ण के समान वस्त्र तथा चिह्न धारण करता था। जरासंध वध के बाद उसकी कैद से छूटे राजा राजसूय यज्ञ में उपस्थित हुए। राजसूय यज्ञ के लिए अर्जुन ने जिन संघों को जीता, वे भी उत्तर दिशा में थे। ये संघ थे—प्राग्ज्योतिषपुर (जिसका शासक भगदत्त था), कुबेर द्वारा रक्षित पर्वतीय क्षेत्र, पौरव नामक राजा, पहाड़ी लुटेरे तथा म्लेच्छ, कश्मीर, त्रिगर्त, दारू, कोकनद, दरद, कम्बोज, ऋषिक, किंपुरुष वर्ष, हाटक देश, हरिवर्ष। पांडवों तथा कौरवों के सैन्य संग्रह के समय महारथी, अतिथियों के नाम गिनाने के समय भी कुछ पर्वतीय संघों के नामों पर प्रकाश पड़ता है।

कौरव पक्ष में त्रिगर्त देश के पांच भाई—सुशर्मा, सुरथि, सुधमी, सुबाहु में सत्यरथ प्रधान माना गया है। एक राजा पौरव का उल्लेख है। यह संभवतः वही पहाड़ी राजा था जिसे राजसूय यज्ञ के समय अर्जुन ने हराया था। पांडव पक्ष में हिडिम्बानंदन घटोत्कच प्रमुख था।

महाभारत युद्ध में त्रिगर्तों के पराक्रम और युद्ध का बार-बार वर्णन आया है। आश्वमेधिक पर्व में अश्वमेध यज्ञ के समय त्रिगर्तों ने पुनः अश्व को पकड़ा और सुशर्मा

के वंशजों ने युद्ध किया। किरात, पवन और म्लेच्छ भी अर्जुन से लड़े।

प्राचीन जनपद

जिस प्रकार आर्य संस्कृति में अनेक ऋषि कुल और क्षत्रिय कुल स्थापित हुए, उसी प्रकार कई संघ, गण, जन या जनपद भी बने। ऋग्वेद में जनों का उल्लेख है, जनपदों का नहीं। जनपदों का उल्लेख कहीं-कहीं ब्राह्मणग्रंथों में हुआ है। जनपदों का उदय एवं वर्ग के समुदाय के इकट्ठा रहने के कारण हुआ। अपने-अपने जनपद में अपने समुदाय के लोगों के बीच अपनी भूमि पर रहने से एक समाज का उदय हुआ जिसकी अपनी संस्कृति थी, अपनी भाषा थी, अपनी राजनीतिक इकाई थी। अधिकांश जनपदों के अधिपति क्षत्रिय थे। अतः सहस्रों वर्षों तक ये जनपद ज्यों के त्यों बने रहे। कम्बोज, गांधार, मद्र, मत्स्य आदि ऐसे ही जनपद थे। एक जनपद का दूसरे पर आक्रमण, आधिपत्य होता रहा किंतु उनकी सांस्कृतिक जड़ें मजबूत रहीं। अतः एक जनपद के अपने कायदे-कानून बने, अपनी सीमाएं बनीं, अपने राज्य बने। पौराणिक काल में ये जनपद 175 तक थे।

मद्र जनपद का उल्लेख वैदिक साहित्य के अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण, बृहदारण्य कोपनिषद् में मिलता है। यह जनपद कुरु का पड़ोसी था। इनकी राजधानी साकल (स्यालकोट) थी। यह जनपद पाणिनि के समय साकल (स्यालकोट) से त्रिगर्त (कांगड़ा) तक फैला हुआ था।

हिमाचल प्रदेश के क्षेत्र में पौराणिक काल में त्रिगर्त, औदुम्बर, कुल्लू, कुलिंद जनपद विद्यमान थे।

त्रिगर्त

त्रिगर्त एक आयुधजीवी संघ था। इसका पुराना नाम जलंधरायण भी था। इसे बाद में जालंधरपीठ भी कहा जाने लगा। आचार्य हेमचंद्र ने 'जालंधरास्त्रिगर्ता स्युः' लिखा है। पाणिनि ने भी त्रिगर्त संघ का उल्लेख किया है। बृहत्संहिता में भी त्रिगर्त का उल्लेख हुआ है।

महाभारत में त्रिगर्त का बहुत बार उल्लेख हुआ है। त्रिगर्त का राजा सुशर्मचंद्र कौरवों की ओर से महाभारत में युद्ध लड़ा। अर्जुन के साथ त्रिगर्त वीरों का निरंतर युद्ध हुआ। प्रथम शासक भूमिचंद्र के बाद सुशर्मचंद्र 231वां राजा था।

सभा पर्व में पांडवों की दिग्विजय के समय अर्जुन उत्तर दिशा में आए जहां त्रिगर्त, दास और कोकनद राजा स्वयं ही शरणागत हुए। राजसूय यज्ञ में त्रिगर्त भेंट लेकर गए।

त्रिगर्तराज सुशर्मा तथा मत्स्यराज विराट का पुराना वैर था। विराट पर्व में पांडवों

को ढूंढ़ने के लिए दुर्योधनादि ने त्रिगर्त नरेश से परामर्श कर मत्स्यराज पर आक्रमण की योजना बनाई। जिस समय दूत पांडवों को अज्ञातवास के समय उन्हें ढूंढ़ने में असमर्थ रहने पर कौरवसभा में आए तो त्रिगर्तराज सुशर्मा वहां उपस्थित था। पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार त्रिगर्तराज ने राजा विराट की गौयें हर लीं और आक्रमण कर दिया। त्रिगर्तराज युद्ध में जब विराट को जीवित पकड़कर लिए जा रहा था, गुप्त वेशधारी पांडवों ने उन्हें बचाया। पांडवों ने सुशर्मा को परास्त कर दिया।

युद्ध के समय (शल्य पर्व) अर्जुन ने त्रिगर्तों का संहार किया। अर्जुन ने सत्यकर्मा, सत्येषु सहित त्रिगर्तराज सुशर्मा तथा उसके पैंतालीस पुत्रों का वध किया। यहां सुशर्मा को 'प्रस्थल देश' का अधिपति भी कहा गया है।

पांडवों द्वारा अश्वमेध के समय (आश्वमेधिक पर्व) अश्व के त्रिगर्त में प्रवेश पर त्रिगर्तों ने अर्जुन के साथ घोर संग्राम किया। सुशर्मा के बाद अब यहां सूर्यवर्मा राजा था। सूर्यवर्मा युद्ध में परास्त हो गया तो उसका भाई केतु वर्मा, जो एक तेजस्वी युवक था, अर्जुन से युद्ध करने लगा। केतु वर्मा के धराशायी होने पर धृतवर्मा युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ, जो अभी बालक था। वह इतना फुर्तीला था कि कब बाण लेता था, कब चढ़ाता था, अर्जुन यह देख भी नहीं पाते थे। धृतवर्मा ने अर्जुन के हाथ में बाण से गहरा घाव कर दिया जिससे अर्जुन को चक्कर आ गया। अंततः त्रिगर्तों ने हारकर पांडवों का शासन स्वीकार किया।

त्रिगर्त का उल्लेख विष्णु पुराण में औदुम्बर तथा कुलूत के साथ और राजतरंगिणी में कश्मीर के साथ हुआ। पाणिनि ने त्रिगर्त के छह संघ बताए हैं। त्रिगर्तों ने ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में मुद्राएं भी चलाईं जिनमें ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में लेख हैं।

औदुम्बर

औदुम्बर को जालंधर या त्रिगर्त के निकट माना जाता है। महाभारत में इन्हें उत्तर का निवासी बताया है। अतः ये जनपद त्रिगर्त के साथ स्थित था। रावी तथा व्यास के बीच का ऊपरी भाग जहां वर्तमान नूरपुर तथा पठानकोट है, औदुम्बरों का था। विष्णु पुराण में इन्हें त्रिगर्त तथा कुणिद के साथ बताया गया है तो वृहत्संहिता में मध्य देश का वासी। औदुम्बरों को महाभारतकालीन शाल्ववंशियों की एक शाखा भी माना जाता है। शाल्व मद्र देश के वासी थे। ऋग्वेद में औदुम्बरों ने अपने को विश्वामित्र का वंशज माना है।

औदुम्बरों की राजधानी औदुम्बरावती नदी के किनारे मानी गई है। यह नदी रावी, व्यास के अतिरिक्त कोई अन्य छोटी नदी हो सकती है।

मुद्राएं

औदुम्बरों की संपन्नता का पता यहां प्राप्त सिक्कों से मिलता है। औदुम्बर गण ने कई मुद्राएं चलाईं जिनसे उनके वैभव का पता चलता है।

सबसे पहले यहां तांबे की मुद्राएं चलाई गईं जो चौकोर थीं। इन मुद्राओं पर ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियों में लेख हैं। यह मुद्राएं ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से भी पहले की मानी गई हैं। इन मुद्राओं पर चार राजाओं के नाम मिलते हैं। ये चार राजा हैं—शिवदास, रुद्रदास, महादेव, धराघोष। इन राजाओं में से महादेव ने मथुरा के उत्तमदत्त राजा पर विजय पाई। उत्तमदत्त की मुद्राओं पर महादेव की छाप चढ़ाई गई है। मुद्रा के अग्र भाग में वृक्ष और हाथी चित्रित होने के साथ राजाओं के नाम हैं और पृष्ठ भाग में भवन, त्रिशूल के साथ ब्राह्मी लिपि में इन चार राजाओं के नाम दिए गए हैं।

दूसरी मुद्राएं चांदी की हैं जिन पर धराघोष की आकृति के साथ वृक्ष और त्रिशूल बनाए हैं। मुद्राओं में एक मनुष्य के कंधे पर बाघ-चर्म ओढ़े शिव की मूर्ति है और निचली ओर वृक्ष तथा त्रिशूल बना है। इस पर खरोष्ठी में 'यह देवस राजो धर घोषस औदुम्बरिस' लिखा है। वृक्ष तथा त्रिशूल तांबे की मुद्राओं में भी हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि धराघोष महादेव का उपासक था। वृक्ष और त्रिशूल से भी प्रतीत होता है कि औदुम्बर शिव के उपासक थे। अन्य मुद्रा में हाथी तथा त्रिशूल बनाया गया है। इस मुद्रा पर खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपियों में 'विजय रानो वैमकिस रुद्रवर्मस' लिखा है। तीसरी मुद्राएं तांबे की हैं। इन मुद्राओं में भी वृक्ष, हाथी और त्रिशूल के चिह्न अंकित हैं। दोमंजिले मंदिर की आकृति के साथ इस पर राजाओं के नाम भी हैं। इन राजाओं में महीमित्र, भानुमित्र और महाभूतिमित्र हैं। ये मुद्राएं होशियारपुर से मिली हैं। मुद्रा पर अंकित मंदिर को सभाकक्ष, स्तूप पर पिरामिड भी माना गया है। किंतु मंदिर या भवन की आकृति के साथ त्रिशूल, ध्वज तथा फरसा होने के कारण इसे शैव मंदिर भी माना गया है।

औदुम्बर एक समृद्ध गण था जिसकी पुष्टि मुद्राओं से होती है। भेड़पालन यहां का मुख्य व्यवसाय था। बढ़िया ऊन से कई प्रकार की वस्तुएं तैयार की जाती थीं। औदुम्बर बाद में बौद्ध धर्म का गढ़ भी रहा। इनकी समृद्धि का उल्लेख बौद्ध ग्रंथ विषय में भी है। मुद्राओं में मंदिर, वृक्ष, त्रिशूल, फरसा आदि इनके शैव होने का स्पष्ट संकेत देते हैं। मुद्राओं पर शिवदास, रुद्रदास, महादेव, धराघोष, रुद्रघोष, रुद्रवर्मा, आर्यमित्र, महीमित्र, भानुमित्र, महाभूतिमित्र तथा विश्वामित्र राजाओं के नाम हैं।

शिवभक्त तथा भेड़पालक होने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चंबा की जनजातीय जाति गद्दी औदुम्बर समुदाय से ही रही होगी, क्योंकि भेड़पालन के

लिए पर्वतों की ओर जाना स्वाभाविक था, अतः भेड़पालक चंबा के ऊपरी भाग भरमौर की ओर गए और वहां एक ठिकाना बनाकर पठानकोट, नूरपुर, हमीरपुर, कांगड़ा की तलहटियों में घूमते रहे। यद्यपि मुद्राओं में अंकित राजाओं के नाम और प्राचीन ब्रह्मपुर के शासकों के बीच कोई ऐतिहासिक तादात्म्य नहीं बैठता।

कुलूत

व्यास नदी की ऊपरी घाटी में कुलूत जनपद स्थित था। इसके एक ओर औदुम्बर, दूसरी ओर त्रिगर्त, तीसरी ओर कुलिंद जनपद स्थित था। ऐतिहासिक तथा पौराणिक प्रमाणों के अनुसार कश्मीर तथा त्रिगर्त के बाद कुलूत प्राचीन जनपद था। कुलूत का उल्लेख रामायण, महाभारत, वृहत्संहिता, मार्कण्डेय पुराण, विष्णु पुराण में हुआ है। कुलूत की एक प्राचीन मुद्रा भी मिलती है जिस पर 'राजन : कुलूतस्य वीरयश' लिखा है। इस मुद्रा को प्रथम या द्वितीय शताब्दी का माना जाता है। मुद्रा राक्षस के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य का विरोध करने वाले पांच राजाओं में कुलूत का चित्र वर्मा भी एक था।

किंतु पुराणों में इस जनपद को उलूक कहा गया है, कुलूत नहीं। अतः यह संदेहास्पद है। दूसरे उलूक जनपद का उल्लेख हुआ है, जाति का नहीं।

कुलिंद

कुलिंद के पश्चिम में त्रिगर्त तथा कुलूत जनपद थे। कुलिंद का उल्लेख महाभारत, वृहत्संहिता, विष्णु तथा मार्कण्डेय पुराणों में आता है। यह जनपद भी उत्तर दिशा में था। महाभारत में कुलिंद कौरवों की ओर से लड़े। कुछेक कुलिंद पांडव पक्ष में भी रहे। पाणिनि ने इन्हें क्षत्रिय कहा है।

व्यास से नीचे हिमालय की निचली पर्वत श्रेणियां, शिवालिक पहाड़ियां, शतद्रु तक का क्षेत्र कुलिंद में रहा। कनिंघम के अनुसार सतलुज के दोनों ओर, शिमला तथा सोलन जिलों का क्षेत्र कुलिंद जनपद में था। कुल्लू से लेकर गढ़वाल तक पर्वतीय क्षेत्र के कनैत कुलिंदों के वंशज माने गए हैं।

कुलिंद, शकों के आक्रमण का लाभ उठाकर मैदानों की ओर फैले किंतु कुषाणों द्वारा मैदानों पर अधिकार के बाद कुलिंद फिर पर्वतीय क्षेत्र तक सीमित हुए।

मुद्राएं

कुलिंदों की दो प्रकार की मुद्राएं मिलती हैं। पहली प्रकार की मुद्राओं में अमोघभूति का नाम है। इन पर मृग की आकृति बनी हुई है। चांदी और तांबे की ये मुद्राएं भारतीय शैली की हैं। इनका भार यूनानी तोल के अनुसार 32 रत्ती चांदी और

144 ग्रेन तांबा है। ये मुद्राएं तपा मेवा (हमीरपुर), ज्वालापुर, अंबाला तथा सहारनपुर के बीच और गढ़वाल में मिली हैं। सुमाड़ी गांव में हजार मुद्राएं एक साथ मिलीं। ये मुद्राएं ईसा से पूर्व काल की हैं। मुद्राओं में कमल सहित लक्ष्मी की मूर्ति, मृग, चौकोर स्तूप, चक्र बना हुआ है और ब्राह्मी लिपि में 'अमोघमृतस महरजस राज्ञकुणदस' लिखा है। दूसरी मुद्राओं के पृष्ठभाग में सुमेरु पर्वत, स्वस्तिक चिह्न, नंदिपाद तथा वृक्ष बना है। खरोष्ठी में 'राज्ञौ कुणिदस अमोघभूति महरजस' लिखा है।

चांदी की मुद्राओं से यह स्पष्ट है कि कुलिंदों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। कुछ मुद्राएं तांबे की भी मिली हैं जिन पर ब्राह्मी तथा खरोष्ठी दोनों में दोनों ओर लिखा है। राजा का नाम वही है। एक मुद्रा छतेश्वर नामक राजा की भी मिली है जो तांबे की है। इस मुद्रा के अग्रभाग में शिव की मूर्ति है। रैपसन के अनुसार इसमें 'भागवत छत्रेश्वर महामन' लिखा है। पृष्ठभाग में मृग, नंदिपाद, वृक्ष तथा पर्वत की आकृति है।

बाद में मुद्राओं में शिव और कार्तिकेय तो अंकित हैं, राजाओं के नाम नहीं है। चांदी की मुद्राओं पर खरोष्ठी लिपि है और तांबे में ब्राह्मी। अतः ब्राह्मी प्रदेश के भीतर और खरोष्ठी प्रदेश के बाहर की लिपि थी। अमोघभूति के बाद यह जनपद लगभग 350 ई. तक विद्यमान रहा।

संघ शासन से राज शासन तक

प्राचीन संघ या गणराज्यों की स्थापना से लेकर हिमाचल में राजा या राणाओं के शासन तक लंबा इतिहास एक अंधेरी सुरंग है जिसके भीतर कुछ दिखलाई नहीं पड़ता। अंधेरे में हाथ-पांव मारने के अतिरिक्त इस दौर में कुछ स्पष्टतः पहचाना नहीं जा सकता। बौद्ध संस्कृति ने कहीं-कहीं दीपक जगाए हैं, अन्यथा सारा इतिहास अंधकारमय है।

मौर्य काल तक संभवतः इस क्षेत्र के विभिन्न संघ अपने-अपने स्वतंत्र रूप में विद्यमान रहे। आर्यों का प्रभाव भी निचली शिवालिक घाटियों तक अधिक रहा। पर्वतों के भीतर वे पहुंच नहीं पाए यद्यपि उनके प्रतिनिधि वहां किसी न किसी रूप में जाते रहे। अतः भीतरी भाग की संस्कृति अपने मूल रूप में सुरक्षित रही।

चंद्रगुप्त मौर्य ने जब भारत को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया तब चाणक्य ने हिमालय के एक राज्य प्रमुख पर्वतक या पर्वतेश से संधि की। पर्वतक एक आयुधजीवी संघ का अधिपति था—आयुधजीविभ्यश्च पर्वते। परिशिष्टपर्वन नामक जैन ग्रंथ में उल्लेख है कि चाणक्य हिवत्कूट गया और वहां के शासक पर्वतक से संधि की। इस संधि के फलस्वरूप चंद्रगुप्त की सेना में कई जातियों के आयुधजीवी सैनिक आए और सेना सुदृढ़ हुई। इसका उल्लेख 'मुद्राराक्षस' में भी है।

पर्वतीय राजाओं में कश्मीर के राजा पुष्कराक्ष और कुलूत के राजा चित्र वर्मा ने विरोध किया। अतः चंद्रगुप्त का साथ देने वाले आयुधजीवी त्रिगर्त और कुलिंद व औदुम्बर हो सकते हैं। पर्वतीय लोग मौर्य साम्राज्य के साथ व्यापार भी करते थे। पर्वतीय स्थानों से मोती तथा खालें ले जाई जाती थीं।

सम्राट अशोक के समय हिमालय का पूरा क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का एक अंग बन गया। अशोक ने हिमालय में बौद्ध भिक्षु प्रचार के लिए भेजे। महावंश में उल्लेख है कि आचार्य मज्झिम थेर भिक्षु बनकर हिमालय भेजे। इनके चार साथी भी साथ आए जिनके नाम थे—कस्पगोत, दुंदुभिसार, सहदेव, मूलक देव। ये नाम सांची के दूसरे स्तूप के भीतर पत्थर के संदूक पर खुदे हुए थे। महावंश के अनुसार मज्झिम तथा उनके चार साथियों ने हिमालय के पांच राष्ट्रों में प्रचार किया। ये पांच राष्ट्र हिमाचल के क्षेत्र के थे क्योंकि कश्मीर से गांधार तक अशोक के पुत्र कुणाल और मजझंतिक ने प्रचार किया। अशोक स्वयं नेपाल तक आए और प्रचार कार्य अशोक पुत्री चारुमती ने किया।

लगभग सम्राट अशोक के समय ही हिमाचल में बौद्ध धर्म का प्रसार हो गया। अशोक द्वारा स्तूप बनवाए गए, शिलालेख खुदवाए गए। ह्यूनसांग ने भारत यात्रा (630-644 ई.) में इन स्थानों का वर्णन किया है। ह्यूनसांग ने त्रिगर्त में पचास बौद्ध मठ और दो हजार भिक्षु देखे। कुलूत में बीस बौद्ध मठ थे और घाटी के बीचोबीच एक स्तूप था। कालसी में भी शिलालेख खुदवाए। कालसी, पाटलिपुत्र से गांधार तथा मध्य भारत को लद्दाख तथा मध्य एशिया से जोड़ने वाला था। धर्मशाला के निकट खनियारा में ब्राह्मी खरोष्ठी का लेख, पठियार लेख तीसरी शताब्दी पूर्व के बौद्ध मठ की पुष्टि करता है।

मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ। इस साम्राज्य के अंतिम शासक को उसी के ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने मार दिया। पुष्यमित्र भी शक्तिशाली शासक बना। तुरंत ही यवनों का आक्रमण आरंभ हो गया। यवन हिमालय के भीतर नहीं आ पाए। यवनों के बाद शक आक्रमण हुए। शक एक घुमंतू कबीला था। वे अपने पशुओं को भी साथ लिए चलते थे। पर्याप्त समय के बाद शकों में से गूजर, जाट, अहीर मैदानों में बस गए।

शक सूर्य उपासक थे। उन्होंने सूर्य की बूट पहने प्रतिमाएं स्थापित कीं। कश्मीर व नीरथ (हिमाचल), बजौरा (हिमाचल) में ऐसी प्रतिमाएं मिलती हैं। शकों की ही एक शाखा कुशाण कहलाई जिसके शासक कनिष्क ने कश्मीर से कुमाऊं तक पहाड़ी प्रदेश अपने अधिकार में किया। कनिष्क बौद्ध था। उसके समय बौद्धों का चतुर्थ सम्मेलन हुआ जो जालंधर में हुआ माना जाता है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह कश्मीर में हुआ। यह लगभग 100 ई. में हुआ जिसमें अट्ठारह संप्रदायों

को मान्यता प्रदान की गई। कनिष्क ने पांच सौ भिक्षुओं का सम्मेलन किया जिसमें वसुमित्र उपाध्यक्ष थे और अश्वघोष अध्यक्ष। एक मठ का निर्माण भी किया गया।

कनिष्क के समय कांगड़ा के निकट चैतडू में स्तूप का भी उल्लेख है जिसके अवशेष अब भी वहां विद्यमान हैं। कुशाण काल में त्रिगर्त आदि हिमालयी राज्य कनिष्क के अधीन आ गए। यहां बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ।

कुशाण राज्य के पतन पर पुनः पहाड़ी जनपद स्वतंत्र हुए। पंजाब के योद्धेय और अर्जुनायन गणों ने कुशाणों को खदेड़ दिया। जनपद पुनः स्वतंत्र हुए। इस बीच इन्होंने अपनी मुद्राएं भी चलाईं।

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद गुप्त साम्राज्य ने भारत को संगठित किया। गुप्त काल भारत का स्वर्ण युग रहा है जब सुरक्षा के साथ संपन्नता आई और कला तथा संस्कृति का विकास हुआ। गुप्त साम्राज्य की नींव चंद्रगुप्त ने चौथी शताब्दी के आरंभ में डाली। समुद्रगुप्त ने 340 ई. के लगभग पर्वतीय राज्यों समेत सभी गणराज्यों को एक साम्राज्य के अधीन कर लिया। समुद्रगुप्त के अभिलेख में उल्लेख है कि उत्तर-पश्चिम में त्रिगर्त, औदुम्बर, कुलूत और कार्तिकपुर को अपने अधीन किया। संभवतः कुलिंद पहले ही चंद्रगुप्त द्वारा जीता जा चुका था। समुद्रगुप्त ने पहाड़ी राज्यों को अपने अधीन कर उन्हें करद राज्य बना स्वतंत्र छोड़ दिया। उन्हें पट्टे प्रदान किए। गुप्त साम्राज्य की संपन्नता का इस ओर भी प्रभाव पड़ा। पर्वतीय शासकों का भारत की साम्राज्य शक्ति से सीधा संपर्क बना।

हिमालय के देवदारुओं, भोजपत्रों का प्रथम बार किसी साहित्य में ही उल्लेख हुआ। कालिदास ने हिमालय का आकर्षक वर्णन किया। हिमालय का वर्णन संस्कृत साहित्य में यह प्रथम बार वर्णन हुआ लगता है। वैदिक-पौराणिक साहित्य में देवदारु या पर्वतीय वनस्पति, पशुओं का वर्णन नहीं है। कालिदास ने देवदारु, मेघ, भोजपत्र, कस्तूरीमृग का वर्णन किया। यक्ष, किन्नरों की बात की। कैलास पर्वत, मानसरोवर सबका उल्लेख हुआ है। कालिदास ने क्रौंचरंध्र दर्रे का उल्लेख भी किया है जो कुमाऊं में है।

इस स्वर्ण युग में वास्तुकला और मूर्तिकला का हिमाचल में भी विकास हुआ। शिव, सूर्य, विष्णु, दुर्गा, गणेश की कलात्मक मूर्तियां बनीं। कलात्मक मंदिरों का निर्माण हुआ। कुल्लू में शिव मंदिर, बजौरा में सूर्य प्रतिमा, नीरथ में सूर्य मंदिर गुप्तकाल कला के परिणाम हैं।

गुप्तकाल में कुमारगुप्त के समय हूणों के आक्रमण आरंभ हो गए। स्कंदगुप्त ने हूणों को पराजित कर दिया। स्कंदगुप्त ने दो बार हूणों का आक्रमण असफल किया। इसके बाद गुप्त साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया। सभी छोटे राज्य स्वतंत्र

होने लगे। पहले तोरमान, फिर उसके पुत्र मिहिरकुल ने पंजाब से ग्वालियर तक अधिकार कर लिया। मगध सम्राट ने मिहिरकुल को वापस धकेला। मिहिरकुल का क्षेत्र कश्मीर तक सीमित रहा। इससे लगता है, कश्मीर के आसपास हिमाचल के क्षेत्र में भी मिहिरकुल का शासन रहा होगा।

मिहिरकुल के बाद हूणों का पतन हुआ। इसके बाद गूजरों का आगमन हुआ जो मेवात से लेकर यमुना के दोनों किनारों में बसे।

अब पुनः सभी शासक स्वतंत्र हो गए। इस इतिहास की कोई जानकारी नहीं मिलती। संभवतः सभी राज्य आपस में छोटी-मोटी लड़ाइयां लड़कर स्वतंत्र-परतंत्र रहते रहे होंगे।

थानेश्वर के हर्षवर्धन ने सन् 606 में अपने राज्य का विस्तार निरंतर छह वर्षों के युद्ध के बाद किया। कुमाऊं से जम्मू तक हर्षवर्धन ने अपने राज्य में मिलाया। हर्षवर्धन के समय (606-47 ई.) में शांति रही, अतः समृद्धि बढ़ी। कश्मीर से ब्रह्मपुर, राजौरी से स्यालकोट और जालंधर का वर्णन चीनी यात्री ह्यूनसांग ने किया है जो हर्षवर्धन के समय आया। हर्षचरित के अनुसार हर्षवर्धन ने तुषार धवल पर्वतीय क्षेत्र से कर ग्रहण किया। तुषार धवल क्षेत्र कश्मीर, नेपाल, कांगड़ा तथा शिवालिक पर्वत श्रेणियां हो सकता है। इतिहासकार तुषार शैल का अर्थ कश्मीर, नेपाल आदि पर्वतीय क्षेत्र मानते हैं।

लगभग गुप्तकाल से लेकर राजपूतों के उद्भव तक हिमाचल का इतिहास अंधकारमय है। ह्यूनसांग की यात्रा (630-44) में जालंधर, कुलूत, शतद्रु आदि का वर्णन है। इसके बाद राजाओं के समय या राजपूत युग तक यहां का इतिहास अंधकारमय है। जिस प्रकार राजपूतों का उद्भव किस प्रकार हुआ, यह ज्ञात नहीं है, उसी प्रकार हिमाचल में किसका शासन रहा, छोटे-छोटे राजा क्या करते रहे, यह अज्ञात है।

राजपूत कौन थे, इस बारे में इतिहासकारों द्वारा अपने-अपने मत स्थापित किए गए हैं। प्राचीन क्षत्रिय किस प्रकार राजपूत बन गए, यह निश्चित तौर पर निर्णायक रूप से कोई नहीं कह पाया। क्षत्रिय वह थे जिनके हाथ राजसत्ता थी या जो योद्धा थे। राजसत्ता क्योंकि योद्धाओं के ही हाथ रही, अतः योद्धा या युद्धजीवी समुदाय जिसने राजसत्ता पाई, वह क्षत्रिय कहलाया। इसमें यह आवश्यक नहीं था कि क्षत्रिय वर्ण के अनुसार भी क्षत्रिय ही होना चाहिए। बहुत से राजा ब्राह्मण थे, कुछ राजाओं ने शूद्र कन्याओं से विवाह किए किंतु जो राजा बना वह क्षत्रिय कहलाया, चाहे वह कोई भी वर्ण था।

यही बात बाद में राजपूतों में भी आई। जो राजा बना, वह राजपूत कहलाया चाहे वह ब्राह्मण था, वैश्य था या शूद्र। या उसने किसी भी जाति में विवाह किया

हो, उसकी संतान यदि राजा बनी तो राजपूत कहलाई।

राजपूत क्षत्रिय का पर्याय है तथापि इस पदनाम को बदलने में सदियों का समय लगा। अतः विद्वानों तथा इतिहासकारों का मत है कि राजसत्ता जिसके हाथ थी, वह राजपूत कहलाया। शाब्दिक अर्थ में भी राजा का पुत्र 'राजपूत' हुआ। राजा चाहे कोई भी जाति हो, रानी चाहे कोई भी जाति हो, उत्तराधिकारी राजपुत्र 'राजपूत' होगा।

एक मत यह है कि सूर्य और चंद्रवंशी क्षत्रिय ही राजपूत कहलाए। वे आर्य वंश के हैं। दूसरा मत यह भी है कि अनार्य शासकों को, जो क्षत्रिय नहीं थे किंतु राजा बने, राजपूत कहलाए। किंतु भारत में एकाएक सभी राजा लोग राजपूत कहलाने लगे जिसमें आर्य या अनार्य का भेद नहीं था। ऐसा भी नहीं रहा कि कुछ तो क्षत्रिय रहे, कुछ राजपूत रहे।

कहा जाता है, राजपूत सबसे पहले राजपूताना में बसे। इसके बाद देश के अन्य भागों में फैले। आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक राजसत्ता राजपूतों के हाथ में रही।

हिमाचल में राजशासन

हिमाचल में राजपूतों के शासन की कहानी लोककथाओं की तरह बखानी जाती है। लगभग एक-सी कथाओं में वर्णन है कि अमुक राजकुमार यहां आया। जनता ने उसे राजलक्षणों से मुक्त पाया और अपना राजा घोषित किया। अधिकांश राजवंश यहां बाहर से आए हुए बताए जाते हैं। कोई बंगाल से आया, कोई अवध से आया। उन्हीं की शाखाओं ने अलग-अलग छोटे-छोटे राज्य स्थापित किए।

किंतु यह वास्तविकता नहीं हो सकती। हिमाचल प्रदेश का क्षेत्र पहले से ही शक्तिशाली शासकों के अधीन रहा जिसके साम्राज्य मैदानों में फैले थे। जैसे आर्यों ने इन क्षेत्रों को विजय तो किया, वे कभी यहां नहीं आए। इन्हें करद राज्य बना प्रायः स्वतंत्र छोड़ दिया गया। उसी प्रकार बाद में भी जिन शक्तिशाली शासकों ने इस क्षेत्र को अपने अधीन किया, प्रायः इसे स्वतंत्र छोड़ा।

जब विदेशी आक्रमण हुए, उस समय कुछ राजाओं ने यहां शरण ली और स्थानीय राजाओं को दबाकर शासक बन बैठे। हूणों के आक्रमण से लेकर मुस्लिम आक्रमणों तक राजा लोग इन पहाड़ियों में शरण लेते रहे। कुछ राजवंश यहां स्थायी रूप से ही जम गए। अपने धर्म तथा संस्कृति की रक्षा के लिए मैदानों से राजा लोग इधर आए।

जब कभी किसी शासक ने इस क्षेत्र को अपने अधीन किया तो अपने वंश

के किसी राजकुमार को जो, वहां राज्य का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता था, यहां भेज दिया। वह यहां स्वतंत्र शासक बना। या एक राजा का पुत्र जो अपने पैतृक राज्य में युवराज नहीं बन पाया, इस ओर आ गया। एक राजा के बहुत से पुत्र हुए तो जो राजसिंहासन नहीं पा सके, अपने अधीनस्थ छोटे राज्य में आ गए और स्वतंत्र शासक बने। इस प्रकार यहां कई राजवंशों के छोटे-छोटे शासन स्थापित हुए। जो कब यहां आए, यह निश्चित जानकारी नहीं है।

पुरातन संस्कृति के अवशेष

मौखिक परंपरा तथा लिखित इतिहास, पुरातात्त्विक अवशेष, शिलालेख, लेख, मंदिर तथा मूर्तियां किसी भी स्थान की ऐतिहासिक यात्रा को जानने में सहायक होते हैं। इन साक्ष्यों के आधार पर पुरातन इतिहास का अनुमान लगाया जा सकता है। जिस स्थान से सिक्के मिले, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वहां पहले कोई नगर रहा होगा या प्रमुख व्यापार केंद्र रहा होगा। स्थानीय सिक्कों के साथ विदेशी सिक्के प्राप्त होना विदेशों से व्यापार का द्योतक है जो उस समय की संपन्न सभ्यता की सफलता को दर्शाता है। इसी प्रकार शिलालेख इतिहास के जीवंत साक्षी होते हैं। इन लेखों के माध्यम से इतिहास के तंतु जुड़ते हैं। मंदिर तथा मूर्तियां पुरातन सभ्यता के वैभव की याद दिलाते हैं। कला-वास्तुकला तभी उन्नत होती है जब राज्य में शांति और समृद्धि हो। गुप्तकाल इसका उदाहरण है।

मौखिक परंपरा

मौखिक इतिहास, लोककथा, लोकगाथाएं, युद्धगाथाएं एक व्यक्ति से दूसरे तक गुप्त मंत्र की तरह यात्रा करती हैं। ये मौखिक परंपराएं लंबे समय तक जीवित रहती हैं। इनके मूल स्वरूप में कुछ बदलाव आने पर भी सदियों तक पुरातन तत्त्व विद्यमान रहते हैं।

लाहौल में एक कथा है केलङ् देवता की। केलङ् देवता वहां एक देवदार के पेड़ पर रहता था और मानव बलि लेता था। यह देवता लाहौल का आदि देवता है। कथा है कि एक बार एक लामा वहां आया और उस घर में ठहरा जहां से मानव बलि जानी थी। लामा ने उस घर के सदस्य की जगह अपने को बलि के लिए प्रस्तुत किया और केलङ् को, जो एक नाग था, नीचे भागा नदी में फेंक दिया। भागा नदी से एक गद्दी ने उसे पकड़ा और कुगती में केलङ् का मंदिर बनाया।

इस समय निचले केलङ् में खड़ा देवदार का यह एकमात्र पेड़ बूढ़ा हो गया है और उपेक्षित खड़ा है। इसके साथ सड़क पहाड़ी काटकर बना दी गई है जिससे पेड़ को कभी भी क्षति पहुंच सकती है। किंतु यह कथा अभी भी जिंदा है। कथा प्रतीकात्मक है। यह नाग संप्रदाय के ऊपर लामा धर्म की विजय की प्रतीक है। लामा

ने घाटी में स्थित नाग को नदी में फेंक दिया और अपना प्रभुत्व कायम किया। किंतु नाग को वहां से एक गद्दी अपने क्षेत्र में ले गया। अतः यह कथा लाहौल घाटी में लामा धर्म के प्रचार-प्रसार और नाग पूजा के पतन की ओर इशारा करती है। इस प्रकार कई कथाएं, जो प्रतीकात्मक हैं, लोक में प्रचलित हैं।

लोककथाओं के अतिरिक्त वीर गाथाएं, युद्ध गाथाएं या झेड़े भी मौखिक परंपरा के अंग हैं जो अपने नायकों की वीरता की गाथा कहते हैं। सिरमौर में ऐसी कई गाथाएं प्रचलित हैं। कांगड़ा, हमीरपुर की ओर राजा जगता, गुग्गा गाथा, कुल्ह आदि, चंबा में रानी सूही गाथाओं के माध्यम से आज तक जीवित है।

इसी प्रकार मौखिक इतिहास के रूप में राजाओं की कथाएं बुजुर्गों द्वारा बखानी जाती हैं। इन कथाओं में महत्त्वपूर्ण घटनाओं, युद्धों का वर्णन रहता है जो कभी-कभी सच्ची घटनाओं के निकट होता है। कांगड़ा में कटोच वंश के राजाओं के ऐसे कई किस्से बखाने जाते हैं। राजा हरिचंद, चंद्रभान आदि के किस्से आज भी सुनाए जाते हैं।

लिखित इतिहास

विभिन्न राजवंशों ने अपने-अपने इतिहास लिखवाए। ये इतिहास पांडुलिपियों तथा पुस्तकों के रूप में उपलब्ध हैं। कुछ राजाओं ने वंशावलियां लिखवाईं जो आज भी कहीं न कहीं उपलब्ध हो जाती हैं। इन वंशावलियों को राजपुरोहित लिखा करते थे। चंबा, कुल्लू आदि राज्यों में ये वंशावलियां मिलती हैं।

कांगड़ा, कहलूर, हंडूर, मंडी आदि रियासतों में मुद्रित इतिहास भी उपलब्ध हैं जो उर्दू—फारसी में हैं।

पूजा पद्धति

शिव पूजा

शिव आदि देव हैं। पुरातन आदि तथा वन्य जातियों के आराध्य के रूप में शिव की मान्यता है। शिव आदि सभ्यता के प्रतीक हैं। उनके सिर पर जटाएं हैं, शरीर पर वस्त्र न होकर मृगछाला है। भस्म लगाकर वे सर्दी-गर्मी से बचाव करते हैं। गले में नाग रहता है और वाहन बैल है। शस्त्र त्रिशूल है। अतः शिव का रूप एक आदि मानव का रूप है। ब्रह्मा, विष्णु वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं किंतु शिव न वस्त्र पहनते हैं, न सजते-संवरते हैं। अतः शिव का संबंध आदि या मूल सभ्यता से है। वनवासी सभ्यता के प्रतीक देवता शिव हैं। पशुओं का देव होने से शिव को पशुपति भी कहा गया है।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में भी मिट्टी या पत्थर की मूर्तियां मिली हैं जिनमें शिव अंकित हैं। इन मूर्तियों में देवता के तीन मुख और तीन नेत्र हैं। वह एक चौकी पर योगासन की मुद्रा में बैठे हैं। दोनों ओर पशु अंकित हैं। इसे शिव माना गया है। शिव के सिर पर दो सींग भी दिखाए गए हैं। हिमाचल के मंदिरों में आज भी भेड़ें, हिरण, बारहसिंगे के सींग द्वार पर लगे रहते हैं।

औदुम्बर गण की मुद्राओं में भी शिव की मूर्ति अंकित है जिसमें एक मनुष्य कंधों पर बाघचर्म रखे हुए दिखाया गया है। नीचे वृक्ष तथा त्रिशूल बना है। औदुम्बरों के उपास्य देव शिव माने जाते हैं। औदुम्बर ऊन का व्यापार करते थे। अतः संभव है कि वे अपनी भेड़-बकरियों को लेकर चंबा-भरमौर तक जाते हों या चंबा-भरमौर का क्षेत्र औदुम्बरों के अधीन हो। आज भी गद्दी जनजाति का मुख्य देवता शिव है। शिव के साथ यहां नाग मंदिर भी है क्योंकि शिव ने नाग को अपने गले का हार बनाया।

हिमाचल में एक ओर अमरनाथ हैं तो दूसरी ओर नेपाल में पशुपति। यहां चंबा तथा जनजातीय क्षेत्र भरमौर, किन्नौर, कांगड़ा, कुल्लू, मंडी में शिव उपासना के स्थल हैं। महासू को भी महाशिव का रूप माना जाता है।

शिव का संबंध पर्वतों से रहा है। यजुर्वेद में शिव को गिरीश कहा गया है। शिव पूजा से पहले लिंग पूजा भी यहां रही है। आर्यों ने यहां के लोगों को शिश्न देव कहा। विधिवत् बने शिव मंदिरों के अतिरिक्त यहां अनेक स्थानों में शिव लिंग मिलते हैं जिन्हें मात्र लिंग कहना उचित होगा। लिंग तथा योनि पूजा शिव पूजा से पहले की पद्धति है। दरियाओं के किनारे, जंगलों में कई लिंग मिले हैं। कई स्थानों में प्राकृतिक लिंगों की पूजा की जाती है। सोलन में शिव गुफा, निरमंड के पास शिव गुफा, शिरगुल तथा शाशन (जुब्बल) में ऐसे प्राकृतिक लिंग विद्यमान हैं। कुल्लू में काहिका उत्सव में लिंग-योनि की पूजा की जाती है। कुल्लू तथा किन्नौर के उत्सवों में लकड़ी के लिंग बनाकर हंसी-मजाक किया जाता है।

भरमौर के नुआला उत्सव में गाई जाने वाली एंचली में शिव को सृष्टि का रचयिता माना गया है। जब न धरती थी, न आकाश था, न जल था, न थल था और न ही सूर्य-चंद्र थे, उस समय शिव यहां धूनी रमाए बैठे थे। शिव का उल्लेख यहां के कई लोक गीतों में किया जाता है। शिव का नृत्य प्रसिद्ध है। गीतों में शिव नृत्य, शिव विवाह जैसे अनेक प्रसंग आते हैं।

शक्ति पूजा

शिव के साथ शक्ति पूजा भी हिमाचल प्रदेश में महत्त्वपूर्ण है। शक्ति की पूजा यहां कई रूपों में की जाती है। दक्ष प्रजापति ने यज्ञ में भस्म पार्वती के अंगों से निर्मित स्थल ब्रजेश्वरी कांगड़ा, नैणा देवी, ज्वालामुखी आदि यहां स्थापित हैं। आदि

शक्ति छतराड़ी (चंबा), मृकुला देवी उदयपुर, हाटेश्वरी देवी जुब्बल, हिडिम्बा देवी मनाली आदि शक्ति पूजा के स्थल हैं।

महिषासुरमर्दिनी का रूप यहां अधिक प्रभावी है। इस कारण कई स्थानों पर भैंसे बलि किए जाते हैं। महिषासुरमर्दिनी की एक पुरातन मूर्ति ब्रजेश्वरी मंदिर कांगड़ा में है। कामाक्षा देवी काओ, में आज भी भैंसे बलि दिए जाते हैं। मृकुला देवी, हाटेश्वरी देवी महिषासुरमर्दिनी के रूप में हैं।

मंदिर तथा मूर्तियां

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में कुछ महत्त्वपूर्ण मंदिर तथा मूर्तियां हैं जिन्हें कुशाण, गुप्तकाल तथा उत्तर काल का माना जाता है। राजाओं के समय में भी कई मंदिरों तथा किलों का निर्माण हुआ। वास्तुकला के ये अद्भुत उदाहरण सिद्ध करते हैं कि कभी यहां वैभवशाली तथा कलाप्रिय शासक रहे होंगे जिन्होंने इन मंदिरों तथा मूर्तियों का निर्माण किया।

1857 में मेजर हे को कुल्लू क्षेत्र में एक कलात्मक लोटा मिला। यह लोटा मठ के एक कक्ष में था जो लेंडस्लाइड के कारण बाहर निकला। गांव का नाम 'कुंदला' (Kundlah) या गोंधला है। लाहौल उस समय कुल्लू क्षेत्र में था अतः इसे गोंधला माना जा सकता है, जहां एक प्राचीन मठ है। इस लोटे पर जातक कथाओं का चित्रण किया गया है। इस समय यह लोटा विक्टोरिया एवं एलबर्ट संग्रहालय में है। यह दूसरी शताब्दी का माना जाता है जब कुशाण काल में बुद्ध धर्म पुनर्स्थापित हुआ। ह्यूनसांग ने कुल्लू में बीस बौद्ध मठों का उल्लेख किया है। कुल्लू, लाहौल तथा हिमालय के भीतरी भाग में जाने का मार्ग रहा है।

चंद्रभागा के संगम पर ही अवलोकीतेश्वर का खंडित सिर मिला है। त्रिलोकीनाथ मंदिर में स्थापित अवलोकीतेश्वर की मूर्ति की भांति यह संगमरमर का है जो आठवीं शताब्दी का माना गया है।

कुल्लू में विश्वेश्वर महादेव का मंदिर आठवीं शताब्दी का माना जाता है। यहीं हाट में प्राप्त सूर्यमूर्ति भी इसी समय की मानी गई। गजां में दोचा मोचा देवी मंदिर में काष्ठ प्रतिमाओं को भी आठवीं शताब्दी का माना गया है। जगतसुख का शिव मंदिर भी सातवीं या आठवीं शताब्दी में निर्मित माना जाता है।

कांगड़ा के ब्रजेश्वरी मंदिर के प्रवेश द्वार पर गंगा-यमुना की मूर्तियों को हरमन गोट्ज ने सातवीं शताब्दी का माना है। जालंधर दैत्य को कुचलती देवी मूर्ति दसवीं शताब्दी की मानी जाती है। मसरूर मंदिर, जो उत्तरी भारत में एकमात्र 'रॉक कट' मंदिर है, आठवीं शताब्दी के पहले का माना जाता है।

चंबा के भरमौर क्षेत्र के मंदिर अति प्राचीन हैं। लक्षणा देवी प्रतिमा भरमौर, शक्ति देवी कांस्य प्रतिमा छतराड़ी सातवीं शताब्दी की मानी जाती हैं। हाटकोटी में महिषासुर मर्दिनी की पाषाण प्रतिमा तथा कुछ पुरातन मंदिर आठवीं शताब्दी के आसपास निर्मित माने जाते हैं।

कुल्लू में दोचा मोचा मंदिर की काष्ठ प्रतिमाओं के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश में काष्ठ कला के अद्भुत उदाहरण मिलते हैं जो निश्चित ही उत्तर गुप्तकाल के हैं। इनमें मृकुला देवी मंदिर उदयपुर, लक्षणा देवी मंदिर भरमौर, दक्षिणेश्वर महादेव निरमंड उल्लेखनीय हैं। ये काष्ठ उत्कीर्ण निश्चित ही आठवीं शताब्दी के रहे हैं। इस युग के बाद भी यह कला हिडिम्बा मंदिर मनाली, पराशर मंडी, पराशर कमांद (कुल्लू) आदि मंदिरों में देखी जा सकती है।

राजाओं के समय में भी मंदिरों के साथ-साथ कुछ किलों का निर्माण हुआ। भव्य कांगड़ा किला के अतिरिक्त नूरपुर किला, नग्गर किला, कामरू किला, पांगणा किला, गोंधला किला आदि महत्त्वपूर्ण भवन हैं। इन किलों में अभी भी कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण मूर्तियां हैं जिन पर पुरातत्त्ववेत्ताओं की नजर नहीं पड़ी है। कांगड़ा किला में जैन मंदिर के साथ कामरू तथा गोंधला जैसे किलों में कई प्राचीन मूर्तियां विद्यमान हैं जिन्हें पुरातात्त्विक नजर से देखा जाना शेष है।

प्रथम शताब्दी के बाद अट्ठारहवीं शताब्दी तक यहां मंदिरों का निर्माण होता रहा। बैजनाथ मंदिर, लक्ष्मीनारायण मंदिर चंबा, ममलेश्वर महादेव, मंडी के विभिन्न मंदिर, विभिन्न शक्ति पीठ, सिद्ध मंदिर, गुग्गा मंदिर बने।

प्रदेश में प्राप्त विभिन्न मूर्तियां तथा मंदिर इतिहास की एक मजबूत कड़ी तो नहीं जोड़ पाते किंतु उस समय में अपनी उपस्थिति अवश्य दर्ज कराते हैं। मंदिर तथा मूर्तियों के साथ उनके निर्माताओं का मेल गुप्त या उत्तर गुप्तकाल में नहीं मिलता यद्यपि लगभग पंद्रहवीं शताब्दी के बाद का इतिहास राजाओं को उन द्वारा निर्मित मंदिरों से जोड़ता है।

कुल्लू में कुछ देवताओं के मोहरों (मास्क) पर लेख अंकित हैं जो इतिहास पर कुछ प्रकाश डालते हैं।

शिलालेख, पुरालेख, ताम्रपत्र

पुरालेख या शिलालेख इतिहास का एक ठोस और प्रामाणिक सबूत होते हैं। चंबा में पुरालिपियों की एक परंपरा रही है जो इतिहास को जानने में सहायक होती है। ये पुरालेख पत्थर, तांबा या लकड़ी पर उकेरे गए हैं ताकि लंबे समय तक जीवित रहें। खरोष्ठी, ब्राह्मी तथा टाकरी लिपियों के ये लेख महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज हैं।

हिमाचल प्रदेश में कुशाण काल से लेकर राजपूत काल तक के पुरालेख मिलते हैं।

धर्मशाला के पास खनियारा में खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपि का लेख है जो कुशाण काल माना गया है। इस लेख में कृष्णयास्सय के नाम का उल्लेख है। दूसरा लेख चामुंडा तथा मलां के बीच पठियार में है। खरोष्ठी ब्राह्मी लिपि में यह लेख भी कुशाण काल का है। इन्हीं दोनों लिपियों में एक लेख परमाणु के पास भी खोजा गया।

तौंस तथा यमुना के संगम पर जौनसार बाबर क्षेत्र में अशोक का शिलालेख है। निरमंड (कुल्लू) का ताम्रपत्र सातवीं शताब्दी का माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है। चंबा में छठी-सातवीं शताब्दी से लेकर शिलालेख मिलते हैं। लक्षणा देवी भरमौर का पुरालेख सातवीं शताब्दी का माना जाता है। इसके अतिरिक्त नंदी लेख, युगाकर वर्मन का भरमौर ताम्रपत्र, भरमौर शिलालेख, शक्ति देवी छतराड़ी लेख भी इसी समय के हैं। चंबा में तो अनेक ताम्रपत्र तथा पुरालेख हैं जो इतिहास की खोई कड़ियों को जोड़ने में सहायक होते हैं। गूं शिलालेख, मिंधल माता लेख, देवी कोठी लेख, लुज तथा सेहली पनघट शिलालेख, मृकुला देवी लेख आदि ऐतिहासिक दस्तावेज हैं।

हाटकोटी में देवीमूर्ति लेख, निरमंड की मंजूनी देवी के मुखौटे पर लेख तथा कुल्लू के कई देव मुखौटों पर लेख इतिहास की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं। मंडी में सलाणु शिलालेख, सूनपुर हाटकोटी गुफा लेख से लेकर ये परंपरा राजाओं के समय तक चलती रही। मृकुला देवी मूर्ति पर लेख, हिडिम्बा मंदिर में लेख इसके उदाहरण हैं।

सिक्के

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों—ज्वालामुखी, पालमपुर (कांगड़ा), तप्पा मेवा (हमीरपुर), सरोल (चंबा), डूंगी (सिरमौर), चक्कर (मंडी) तथा कालका-कसौली मार्ग से प्राप्त सिक्कों से यहां की प्राचीन सभ्यताओं की पुष्टि होती है।

ज्वालामुखी, तप्पा मेवा, सरोल तथा लचोरी (चंबा) से इंडोग्रीक मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। औदुम्बरों की मुद्राएं ज्वालामुखी, कांगड़ा तथा पालमपुर से मिली हैं। इन सिक्कों में शिवदास, रुद्रदास और धरघोष के नाम अंकित हैं। रुद्रवर्मन तथा भववर्मन नाम भी इन सिक्कों में हैं। एक मुद्रा पर 'विजय रानो बेमकिस रुद्रवर्मस' लिखा है। वेमकिस या वेमाका इनका वंश माना जाता है।

ज्वालामुखी से धर्मघोष का एक चांदी का सिक्का, कुलिंदों की सोलह चांदी की मुद्राएं तथा अट्ठाईस इंडोग्रीक मुद्राएं मिली हैं। कांगड़ा से प्राप्त 363 मुद्राओं में 103 धर्मघोष, रुद्रदास और शिवदास की हैं। पालमपुर से औदुम्बर, वेमाका और कुनिंदों की चांदी की मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। बेमाका वंश की कांगड़ा से रुद्रवर्मा और पालमपुर

से भववर्मा की मुद्राएं मिलीं।

औदुम्बरों की मुद्राओं से तीन राजाओं—शिवदास, रुद्रदास और धर्मघोष का पता चलता है। इनमें बाईं ओर वृक्ष, हाथी का अगला भाग तथा नीचे नदी को दर्शाती रेखा है। दाईं ओर शिवालय, त्रिशूल तथा फरसा है। इन पर खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में 'महादेवस राना शिवदासस औदु (मु) बरास', 'महादेवस राना रुद्रदासस औदु (मु) बरास' तथा 'महादेवस राना धर्मघोषस औदु (मु) बरास' लिखा है। किसी ने 'राना' के स्थान पर 'राजा' भी पढ़ा है। कुछ मुद्राओं में मात्र 'महादेवस राना औदुम्बरस' है जिससे राजा का नाम महादेव भी हो सकता है। महादेव को राजा के लिए सम्मानसूचक शब्द भी माना जाता है या इसे महादेव (शिव) का अनुयायी भी माना जाता है।

कुनिंद काल के 54 चांदी के सिक्के तथा मेवा (हमीरपुर) से प्राप्त हुए जिनमें से 21 इंडोग्रीक हैं। ज्वालामुखी से इसी काल के तीन चांदी के सिक्के मिले और 30 इंडोग्रीक। चक्कर (मंडी) से पांच सौ से अधिक कुनिंद काल के तांबे के सिक्के मिले। चांदी के दो सिक्के डूंगी (सिरमौर) से मिले जो कुनिंद काल के माने गए। पालमपुर से औदुम्बरों के बहुत मात्रा में सिक्के मिले थे जो इधर-उधर हो गए। ये सिक्के वेमाकी महादेव प्रकार के औदुम्बरों के सिक्के थे।

चक्कर (मंडी) से प्राप्त कुनिंदों के 525 ताम्र सिक्के राज्य संग्रहालय शिमला में हैं। भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में 24 सिक्के हैं। कुनिंद काल के कुछ सिक्के चंद्रमणि कश्यप के पास उनके 'हिमाचल लोक संस्कृति संस्थान मंडी' व्यक्तिगत संग्रहालय में हैं। इन सिक्कों में बाईं ओर हिरण तथा दाईं ओर महिला आकृति है जबकि कुछ सिक्कों में महिला आकृति बाईं ओर है और हिरण दाईं ओर।

कुशाण काल की ताम्र मुद्राएं चक्कर (मंडी), कालका-कसौली मार्ग, सिरमौर तथा कांगड़ा से प्राप्त हुईं।

यौद्धेय मुद्राएं कांगड़ा, चक्कर (मंडी), मंडी तथा सिरमौर से मिलीं। चक्कर से छह सिरों वाले कार्तिकेय की 45 मुद्राएं मिली हैं। आठ भानुघोष तथा तीन जयवर्मन की मिलीं।

कुल्लू से प्रथम या द्वितीय शताब्दी की मुद्रा प्राप्त हुई है जिसमें ब्राह्मी लिपि में 'राजन : कुलूतस्य वीरयश' लिखा है। वीरयश की मुद्रा में खरोष्ठी में 'राना' शब्द भी मिलता है।

पुरातात्त्विक स्थल

चैतडू (कांगड़ा), ईसपुर, मीरपुर कोटला आदि महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक स्थल हैं जो कुशाण काल के बताए गए हैं। चैतडू में प्रथम शताब्दी के कुशाण युग के अवशेष

पाए जाते हैं। यहां पर एक चैत्य था। कुशाण काल का स्तूप तथा कुछ पात्र यहां मिले हैं।

कुशाण काल के ही कुछ अवशेष दत्तनगर (शिमला) में भी मिले। मीरपुर कोटला (नाहन), ईसपुर में भी कुशाण काल के कुछ अवशेष पाए गए हैं। निरमंड (कुल्लू) भी एक पुरातात्त्विक स्थल है।

खनियारा, पठियार जहां शिलालेख हैं, पुरातात्त्विक स्थल हो सकते हैं, यदि खोज की जाए।

वंशावलियां

हिमाचल प्रदेश में राजाओं ने अपनी वंशावलियां लिखवाई हैं। अपने आदि पुरुष से लेकर सभी राजाओं की वंशावली लिखवाना यहां रिवाज रहा है। ये वंशावलियां राजपुरोहितों से लिखवाई जाती थीं। ये संस्कृत में हुआ करती थीं जो बाद के समय में उर्दू-फारसी में भी लिखी गईं। चंबा, बुशहर, कुल्लू आदि राजाओं की वंशावलियां संस्कृत, उर्दू में मिलती हैं। अधिकांश पांडुलिपि के रूप में हैं। जैसे कुल्लू की वंशावली या संक्षिप्त इतिहास पांडुलिपि रूप में मिलता है। कटोच वंश के इतिहास उर्दू-फारसी में मिलते हैं। कहलूर-हंडूर के इतिहास उर्दू में हैं। मंडी का इतिहास बाद में अंग्रेजी में भी छपा।

इस प्रकार ये इतिहास तथा वंशावलियां ऐतिहासिक तथ्य ढूंढ़ने में सहायक होती हैं।

वैदिक पौराणिक साहित्य

वैदिक तथा पौराणिक साहित्य भी इतिहास की खोज में सहायक रहा है। वेद, पुराण, महाभारत आदि ग्रंथ यहां की भौगोलिक स्थिति को दर्शाते हुए आर्य संस्कृति के साथ हिमाचल के संबंधों को स्थापित करने में सहायक होते हैं। यद्यपि इन ग्रंथों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है तथापि भूगोल के वर्णन में ये सहायक होते हैं।

बाद के संस्कृत साहित्य में पाणिनि की अष्टाध्यायी, कालिदास द्वारा रचित ग्रंथ, कल्हण की राजतरंगिणी भी हिमाचल के संदर्भ प्रस्तुत करती है।

ये ग्रंथ पौराणिक हिमाचल की एक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, इन्हें ऐतिहासिक कहना भ्रांतिपूर्ण होगा। इन पर इतिहास नहीं, भूगोल के लिए आश्रित रहा जा सकता है।

कांगड़ा

त्रिगर्त

सतलुज से सिंधु तक हिमालय में तीन जनपद सबसे प्राचीन माने जाते हैं–कश्मीर, त्रिगर्त और डुग्गर। हिमाचल में त्रिगर्त सबसे प्राचीन जनपद है जबकि उत्तर पश्चिमी हिमालय में कश्मीर को छोड़ यह प्राचीनतम राज्य था।

महाभारत में त्रिगर्त का उल्लेख बार-बार आया है। अतः यह राज्य महाभारत काल से पूर्व स्थापित था। त्रिगर्तराज सुशर्मा महाभारत युद्ध में कौरव पक्ष से लड़ा। युद्ध में त्रिगर्तों के पराक्रम का बार-बार वर्णन आया है। महाभारत युद्ध के बाद आश्वमेधिक पर्व में भी त्रिगर्तों ने यज्ञ के अश्व को पकड़ा और सुशर्मा के वंशजों ने अर्जुन से युद्ध किया।

त्रिगर्त, सतलुज, रावी और व्यास के मध्य की उपत्यकाओं की भूमि थी जिसकी राजधानी जालंधर रही है। बाणगंगा, न्युगल और कुरली खड्डें हरिपुर के त्रिगाढ़ में मिलती हैं जिसे त्रिगर्त का बिगड़ा हुआ शब्द माना जाता है।

मूरक्राफ्ट ने सन् 1820 में राजा संसारचंद के दरबार में कटोच वंशावली देखी जो पद्य में थी। वंशावली में पांच सौ नामों में प्रथम भूम चंद्र, भूमि चंद्र या भ्रूचंद्र था। एक मान्यता के अनुसार कांगड़ा में किसी देवी की भौंहों से पैदा होने के कारण यह भृचंद्र या भ्रूचंद्र कहलाया। महाभारत के समय सुशर्म चंद्र 234वां राजा था। महाभारत में पराजय के बाद सुशर्मा के वंशजों ने संभवतः राजधानी मुलतान या (जालंधर) छोड़कर कांगड़ा बनाई। यहां किले का निर्माण किया। राजतरंगिनी से यह भी पता चलता है कि जालंधर की पुरानी राजधानी सुशर्मपुर थी।

कनिंघम ने लिखा है–'कांगड़ा और जालंधर का राजवंश भारत के प्राचीनतम राजवंशों में से एक है और वंश संस्थापक सुशर्म चंद्र के काल से उनकी वंशावली मुझे राजपूताना से अधिक शक्तिशाली राजवंशों की लंबी वंशमाला से कहीं अधिक विश्वसनीय मालूम होती है।'

सर लेपेल ग्रिफिन ने कहा–'यह वंशावली दुनिया के किसी भी दूसरे राजवंश की अपेक्षा अधिक प्राचीन और अविच्छिन्न साबित की जा सकती है।'

कल्हण के अनुसार कश्मीर के राजा श्रेष्ठसेन ने त्रिगर्त भूमि प्रवरेश मंदिर को प्रदान की। राजा प्रवरसेन (लगभग 520 ई.) ने त्रिगर्त को जीता। राजतरंगिनी में उल्लेख है कि कश्मीर के शासक शंकर वर्मा (883-903) ने गूर्जरों के विरुद्ध जब अभियान छेड़ा तो उसे त्रिगर्त के पृथ्वी चंद का सामना करना पड़ा। राजतरंगिनी में जालंधर तथा त्रिगर्त दोनों के संदर्भ हैं।

त्रिगर्त का उल्लेख चंबा के दो ताम्रपत्रों में भी हुआ है। दसवीं शताब्दी के आरंभ में (1050-60), जब चंबा पर जम्मू तथा बसोहली की सहायता से 'किरों' आक्रमण हुआ, उस समय चंबा के पक्ष में त्रिगर्त और कुलूत रहे।

जालंधर

त्रिगर्त को जालंधर भी कहा जाता था। हेमचंद्र ने लिखा है–'जालंधराश् त्रिगर्ताः स्युः।' ह्यूनसांग ने लिखा है कि जालंधर 1000ली अर्थात् 167 मील पूर्व से पश्चिम तक लंबा और 800 ली अर्थात् 133 मील उत्तर से दक्षिण तक चौड़ा था। ह्यूनसांग जालंधर दो बार आया। पहले वह सन् 635 में कश्मीर होता हुआ यहां पहुंचा। भारत से वापसी के समय सन् 643 में वह पुनः जालंधर आया। यह राजा हर्षवर्धन का समय था और इस समय (607-647) जालंधर सहित कश्मीर से नेपाल तक सभी पहाड़ी राजा हर्ष के अधीन थे। हर्षवर्धन ने जालंधर के राजा को सीमा तक पहुंचाने के आदेश दिए थे जिसके अनुसार चीनी यात्री को सीमा तक सुरक्षित पहुंचाया गया। जालंधर में उस समय चंबा, मंडी तथा सुकेत भी शामिल थे।

ह्यूनसांग ने जालंधर के राजा का नाम 'उदिलतों' लिखा है। यह राजा बौद्ध धर्म का अनुयायी था। इस समय राजधानी 'जालंधर' ही थी जो 12 से 13ली अर्थात् दो मील के घेरे में थी।

अलबरूनी ने जालंधर को कनौज से कश्मीर तक बताया है। जालंधर का उल्लेख राजतरंगिनी, हेमकोश (संस्कृत कोश) तथा पदमूपुराण के उत्तर कांड में हुआ है।

जालंधर पीठ माहात्म्य

कांगड़ा में कई लोगों के पास जालंधर पीठ की पांडुलिपियां मिलती हैं जिसका विषय थोड़ी-बहुत भिन्नता के साथ एक ही है। इस पांडुलिपि में विश्वामित्र-वशिष्ठ प्रसंग, च्यवन ऋषि, कुशिक कथा, जरत्कारु कथा, पुरूरवा-उर्वशी कथा आदि प्रसंगों के साथ बिपाशा, बाणगंगा नदियों तथा कालेश्वर, चामुंडा, शिव आदि के माहात्म्यों का वर्णन किया गया है।

जालंधर माहात्म्यम्, जालंधर पीठ माहात्म्यम्, जालंधर पीठ दीपिका आदि नामों

से अलग-अलग पांडुलिपियां उपलब्ध होती हैं जिनमें अलग-अलग प्रसंगों और स्थानों का वर्णन मिलता है।

जालंधर एक दैत्य का नाम था। पौराणिक कथा के अनुसार एक बार इंद्र ने शिव से अनुरोध किया कि वे उस जैसा कोई बली पैदा करें। इंद्र के गर्व से शिव क्रोधित हो गए। उनका तीसरा नेत्र खुल गया और एक तेजस्वी बालक की उत्पत्ति हुई। इस तेजस्वी बालक का लालन-पालन किया गया। एक बार इस बालक ने ब्रह्माजी की दाढ़ी इतनी जोर से खींची कि उनकी आंखों में पानी आ गया। जलधारण करवाने के कारण इस बालक का नाम 'जालंधर' पड़ा।

ब्रह्माजी के वरदान से यह बालक अजर हो गया। शुक्राचार्य की विद्या से अमर हो गया। कालनेमि की पुत्री वृंदा उसकी पत्नी हुई। जालंधर ने सागरमंथन की घटना के बाद देवशत्रु बनकर इंद्र और स्वर्ग को जीत लिया। अंततः देवताओं ने शिव के नेतृत्व में जालंधर से युद्ध किया। जालंधर को मारना संभव नहीं था अतः छलकपट से मारकर युद्धभूमि में खोदे गढ़े में उसका सिर गाड़ दिया।

जालंधर धर्म में रहने वाला और आस्तिक था अतः उसके वध का स्थान पवित्र माना जाने लगा। उसकी पत्नी वृंदा पतिव्रता नारी थी जिसके शाप के भय से ब्रह्मा पुष्कर क्षेत्र में छिप गए, शिव काशी चले गए और विष्णु वृंदा के रूप से मोहित हो उन्मत्त हो घूमने लगे। इससे देवता दुखी हो जगदम्बा की शरण में गए। भगवती ने विष्णु को बाणगंगा में स्नान करवाकर त्रिपुर सुंदरी की आराधना के लिए कहा। इससे भी संतुष्ट न होने पर वे पुष्कर क्षेत्र में ब्रह्मा जी की शरण में गए। अंततः विष्णु से विभिन्न तीर्थों में स्नान करवाकर भ्रम दूर करवाया गया।

अन्य कथा के अनुसार जालंधर दैत्य का वध करने के बाद उसका पृष्ठ भाग वज्र के समान कठोर हो गया जिसे वज्रेश्वरी देवी ने अपने पैरों से रौंदकर इसी स्थान पर अटल कर दिया। यह शरीर अड़तालीस कोस में व्याप्त माना जाता है। कांगड़ा गजेटियर में जालंधर पीठ का क्षेत्र बैजनाथ तथा देहरा के बीच अड़तालीस कोस के वृत्त में फैला बताया गया है।

पौराणिक काल में विभिन्न पीठों में विभाजित हिमालय पूजास्थली बना। पूर्व में कामाख्या, उससे आगे कूर्मांचल, केदार, कुलांत, जालंधर और शारदा पीठें स्थापित हुईं। जालंधर पीठ का केंद्र वज्रेश्वरी देवी (कांगड़ा) मंदिर माना जाता है। बिपाशा नदी के पार अड़तालीस कोस जालंधर पीठ मानी जाती है।

गुरु गोरखनाथ के समकालीन जालंधर नाथ ने जालंधर पीठ में स्थित ज्वाला जी में अष्टांग योग में जालंधर बंध की साधना की नींव डाली।

शाक्त साधना में 'का पूजाओ' का स्मरण किया जाता है। 'का' से कामाख्या पीठ,

'पू' से पूर्णागिरी पीठ, 'जा' से जालंधर पीठ, 'ओ' से ओडियन (जगनाथ पुरी) है।

नगरकोट

जालंधर को नगरकोट भी कहा गया है। अलबरूनी (1017-31) ने कांगड़ा किला को नगरकोट कहा है। महमूद द्वारा नगरकोट को घेरा गया और लूटा गया। नगरकोट नाम किले तथा नगर दोनों के लिए था। फरिश्ता ने भी नगरकोट का उल्लेख पहली शताब्दी की घटनाओं के साथ किया है। उतबी ने इसे भीम नगर भी कहा है तो फरिश्ता ने भीमकोट।

यहां के उच्च ब्राह्मण भी अपने को नगरकोट कहते हैं। नगरकोट के वासी तेरह जातियां (दीक्षित, अवस्थी, उपाध्याय, आचार्य, पंडित, मिश्र, रैणा, पंजकर्ण, नाग, पुरोहित, वेदव्यास, श्रोत्रिय, विप्र) अपने को उच्च मानती थीं और विवाह संस्कार केवल आपस में ही किए जाते थे। सन् 1883 तक नगरकोट ब्राह्मणों के दूसरे वर्ग 'भटेड़ू' को सम्मान देने की खातिर कन्या ब्याहने लगे अन्यथा आपस में ही विवाह होते थे। कांगड़ा को वज्रेश्वरी देवी का स्थान होने के कारण नगरकोट धाम भी कहा जाता था। देवी को कोट कांगड़े वाली माता भी कहते हैं।

बैजनाथ शिलालेख में कांगड़ा के लिए सुशर्मपुर नाम भी आता है। सुशर्मपुर का उल्लेख राजतरंगिनी में भी है।

कांगड़ा

आचार्य प्रह्लादानंद कृत 'जालंधर पीठ द्विपिका' में कांगड़ा की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है :

कं शिरो दैत्यराजस्य गडितः तं पतितो (तं) भुवि।
स देशः कांगड़ः प्रोक्तो मृतानां मोक्षदो हियः।।

- कं- शिर, गडितः- गाड़ा गया जिस देश में, वह कंगडः- कांगड़ा देश है। यह जालंधर की राजधानी बना।

अन्य मत के अनुसार जब जालंधर दैत्य को मारा गया तो उसका शरीर इस धरा पर गिरा। दैत्य का मुंह ज्वालामुखी, पीठ जालंधर में, पैर मुलतान में और कान जहां गिरा वहां 'कानगढ़' या कांगड़ा हुआ।

'कांगड़ा' नाम का उल्लेख करने वाला सबसे पहला यूरोपीय यात्री फिंच था। फिंच (1611) संभवतः कांगड़ा नहीं आया। थॉमस कोर्याट पहला यूरोपीय यात्री था जो कांगड़ा आया। यह सन् 1615 की बात है। सन् 1666 में थैवनोट और सन् 1835 में विगने आया। सन् 1783 में फोर्स्टर आया और मूरक्राफ्ट 1820 में।

थॉमस कोर्याट के वर्णन पर सर थॉमस रॉ ने (1615) लिखा है : 'मुख्य शहर

को नगरकोट कहा जाता है जिसमें एक मंदिर स्थित है, जिसमें शुद्ध चांदी की प्लेटें लगी हैं''इसी क्षेत्र में एक दूसरा प्रसिद्ध धार्मिक स्थल ज्वालामुखी है।'

जालंधर डिविजन

कनिंघम तथा बारनेस ने जालंधर डिविजन में जिला कांगड़ा का उल्लेख किया है। कनिंघम ने 'एंशिएंट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया' (पृष्ठ 143-44) तथा 'आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट' (पांच : 145-152, 155-184, चौदह : 135-139) में कांगड़ा का उल्लेख किया है।

बारनेस ने जालंधर डिविजन में ग्यारह क्षेत्र गिनाए हैं—चंबा, नूरपुर, सीबा, दतारपुर, गुलेर, जसवां, सुकेत, कांगड़ा, मंडी, कुल्लू, भंगाहल। जनरल कनिंघम ने भंगाहल के स्थान पर कुटलैहड़ गिनाया है। इन सभी राज्यों को जालंधर डिविजन या वृत्त कहा गया। यह क्षेत्र सतलुज से रावी तक था।

कांगड़ा, जसवां, हरिपुर, सीबा, दतारपुर सभी कांगड़ा के कटोच वंश की शाखाएं थीं। दतारपुर तथा जसवां भौगोलिक सीमाओं के अनुसार जिला होशियारपुर के करीब थे किंतु इनका इतिहास कटोच वंश से जुड़ा हुआ है।

बौद्ध धर्म

त्रिगर्त या जालंधर में बौद्ध धर्म का प्रवेश सम्राट अशोक के समय ही हो गया लगता है। अशोक ने हिमालय में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भिक्षु भेजे। यहां स्तूप बनाए गए, शिलालेख खोदे गए।

धर्मशाला के पास खनियारा का खरोष्ठी ब्राह्मी का शिलालेख कुशाण काल का माना गया है। ऐसा दूसरा शिलालेख चामुंडा तथा मलां के बीच पठियार में है जिसमें कृष्णायास्य के नाम का उल्लेख है। खरोष्ठी-ब्राह्मी लिपि में यह लेख भी कुशाण काल का है। चैतडू में चैत्य भी कनिष्क कालीन माना जाता है।

हर्षवर्धन (607-64) के समय ह्यूनसांग की यात्रा में इन विहारों की पुष्टि होती है। ह्यूनसांग ने जालंधर में पचास बौद्ध मठ और दो हजार बौद्ध भिक्षु देखे। संभवतः छठी शताब्दी में ही बौद्ध धर्म के प्रबल विद्रोही मिहिरकुल ने इन विहारों को नष्ट किया।

हर्षवर्धन तथा चीनी यात्री के आगमन के बाद जालंधर स्वतंत्र हो गया। सन् 725 में कन्नौज के यशोवर्मन ने अपनी सीमा पंजाब तक बढ़ाई जिससे लगता है कि जालंधर भी अधीन किया होगा। यशोवर्मन ने कश्मीर के ललितादित्य (724-760) से मिलकर तिब्बत पर भी आक्रमण किया किंतु सफल नहीं हुआ। ललितादित्य ने सन् 740 में यशोवर्मन को हराकर पंजाब, बंगाल तक विजय पाई। अतः इस समय जालंधर कश्मीर के अधीन हुआ होगा। ललितादित्य की मृत्यु के बाद पाल वंश के

धर्मपाल (770-810) ने कन्नौज के शासक इंद्रयुद्ध को हराकर चक्रयुद्ध को शासन सौंपा। इस समय कन्नौज में एक दरबार किया गया जिसमें कुरु, मद्र के साथ 'किरा' भी उपस्थित थे। 'किरा' उस समय कांगड़ा का नाम था। यह 'किर', 'कीर' या 'किरा' वही थे जिन्होंने कश्मीर की ओर से चंबा, कांगड़ा, बैजनाथ पर आक्रमण किया।

यद्यपि ह्यूनसांग के बाद एक लंबा अंतराल है जिसमें इतिहास अज्ञात है। राजतरंगिनी में एक उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार कश्मीर के राजा शंकर वर्मन (883-903) ने गूर्जर अभियान के समय त्रिगर्तराज पृथ्वीचंद्र को अपने अधीन किया। पृथ्वीचंद्र का नाम वंशावली में नहीं है किंतु यह ऐतिहासिक तथ्य माना जा सकता है, त्रिगर्त कश्मीर के अधीन हो गया हो। शंकर वर्मन के बाद त्रिगर्त पुनः स्वतंत्र हो गया।

चंबा के दो ताम्रपत्रों में उल्लेख है कि चंबा के राजा साहिलवर्मन (920-940) ने त्रिगर्त और कुल्लूत से मिलकर 'किरा' कश्मीर, डुग्गर और बैलोर की आक्रमणकारी सेनाओं को हराया। इसके बाद त्रिगर्त भी स्वतंत्र हुआ। दोनों ताम्रपत्रों में त्रिगर्त का उल्लेख है। राजतरंगिनी में उल्लेख है कि कश्मीर के राजा अनंतदेव (1028-63) ने त्रिगर्त के राजा इंदुचंद की राजकुमारी सूर्यमती से विवाह किया। इसी राजा की एक अन्य पुत्री आसमती का विवाह राजकुमार रुद्रपाल से हुआ।

कांगड़ा किला और महमूद गजनवी

कांगड़ा किला पहाड़ों का गौरव कहा गया है। जिसके कब्जे में कांगड़ा किला होता था, वह पहाड़ों का शासक माना जाता। सन् 1905 के भूकंप में इस किले को क्षति पहुंची किंतु आज भी किले के प्राचीर, द्वार, स्तंभ सिर उठाए खड़े हैं। प्रवेश द्वार का नाम जहांगीर दरवाजा है, जहां से चौड़ा रास्ता ऊपर चढ़ता है। इस सीढ़ीनुमा रास्ते के बाहर ऊंची दीवार है जिसमें सिपाहियों के खड़े होने तथा बाहर देखने के लिए स्थान बने हैं। इन सुराखों से दरिया के पार बनी चौकियां नजर आती हैं। दरिया के पार की चौकियां आगे की चौकियों से जुड़ी हैं। युद्ध के समय चौकी दर चौकी खबर पहुंचाई जाती थी। किले की मजबूती का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि किले की दीवारें भूकंप में टूटकर साबूत की साबूत नीचे गिरी हैं, टूटी नहीं। सीढ़ियों के बाद ऊपर भीतरी द्वार है जिसके अंदर एक देवी मंदिर है, दूसरा जैन मंदिर। जैन मंदिर में आदिनाथ की पाषाण प्रतिमा है। अब किले के बाहर सड़क के साथ भव्य जैन मंदिर भी बन गया है। मंदिरों के साथ का ढांचा गिर गया है जिसे अंग्रेज भंडार के रूप में प्रयोग करते थे। यहां पानी के लिए एक कुआं है। यहां से आगे किले का मुख्य भाग है जहां राजा तथा रानियां रहती थीं। यहां की सभी दीवारें गिर चुकी हैं। कहा जाता है, यहां गुप्त सीढ़ियां थीं जो नीचे बाग में निकलती हैं।

यहां से नीचे सीधी पहाड़ी है जो नीचे दरिया को छूती है। दूसरी ओर बाग था जो अब जंगल हो गया है।

किले के ऊपर, चोटी पर महामाया मंदिर है। नीचे पुराना कांगड़ा, जो अब नए कांगड़ा से मिलकर वज्रेश्वरी मंदिर तक जाता है। संभवतः पुराने समय में कांगड़ा किला तथा वज्रेश्वरी मंदिर एक ही थे। नगरकोट किला तथा नगरकोट मंदिर एक ही भूभाग था।

उत्तरी भारत की शक्ति के प्रतीक नगरकोट किले का वर्णन कनिंघम ने यूं किया है :

'कांगड़ा किला बाणगंगा तथा मांझी नदियों के बीच की लंबी भूमि पर अवस्थित है। इसकी दीवारें ऊपर की ओर दो मील के घेरे में हैं। किले की मजबूती लगभग तीन सौ फुट ऊंची दीवार में है जो बाणगंगा के ऊपर सीधी खड़ी है। केवल शहर की ओर से ही किले में घुसा जा सकता है किंतु यहां चट्टानों की ऊंची जगह जो दो नदियों को अलग करती है बहुत तंग हो गई है जिसके बीच दीवारों के साथ गहरी खाई है।...सबसे ऊंचे स्थान में महल है जिसके नीचे लक्ष्मीनारायण और अम्बिका देवी के पाषाण मंदिर हैं तथा एक जैन मंदिर है जिसमें आदिनाथ की बड़ी प्रतिमा है। मंदिर परिसर एक गेट द्वारा बंद होता है जिसे दर्शनी दरवाजा कहते हैं। प्रवेश द्वार का नाम जहांगीर दरवाजा है। इसका मूल नाम ज्ञात नहीं है। इसके नीचे अमीरी दरवाजा तथा लोहे का दरवाजा है। ये दोनों दरवाजे जहांगीर के समय पहले मुगल गवर्नर नवाब आलिफ खान को समर्पित हैं।'

शाहजहां के समय के 'मुआसिर-उल-उमरा' में उल्लेख है :

'यह किला एक ऊंचे पहाड़ पर स्थित है। यह अत्यंत मजबूत है। इसमें तेईस छज्जे तथा सात द्वार हैं। इसका भीतरी घेरा एक कोस पंद्रह जरेब लंबा, एक चौथाई कोस दो जरेब चौड़ा तथा पंद्रह से पच्चीस जरेब ऊंचा है। किले के भीतर दो बड़े तालाब हैं।'

संभवतः शाहजहां के समय ही लिखे 'शाह फतेह-इ-कांगड़ा' में लिखा है :

'कांगड़ा किला बहुत ऊंचा है और यह एक बहुत ऊंची पहाड़ी पर स्थित है। इसकी इमारतें बहुत सुंदर हैं। यह इतना पुराना है कि कोई भी इसके निर्माणकाल के बारे में नहीं जानता। किला मजबूत है, इतना कि कोई भी राजा इसे जीत नहीं सका। पुरातन राजाओं के इतिहास के जानकार लोगों का कहना है कि प्रारंभ से यह एक राजपरिवार के अधिकार में रहा। इसकी पुष्टि मुस्लिम राजाओं के इतिहास से होती है जिन्होंने इस देश पर राज किया। सुलतान ग्यासुदीन के शक्ति में आने (सन् 1320) से लेकर अकबर के पूरे हिंदुस्तान के स्वामी बनने तक (सन् 1556)

इस किले की 52 बार घेराबंदी की गई किंतु कोई इसे जीत नहीं सका। दिल्ली के एक शासक फिरोज ने एक बार किले की घेराबंदी की किंतु उसकी कोशिश नाकाम रही। अकबर के समय एक अमीर हसन कुली खान ने, जो बंगाल का गवर्नर था, किले पर बड़ी फौज के साथ हमला किया, जब उसे पंजाब भेजा गया। लंबी घेराबंदी के बाद वह इसे हासिल करने में असफल रहा।'

दसवीं शताब्दी के अंत में मुस्लिम आक्रमण आरंभ हुए। सन् 1001 में महमूद ग़ज़नवी के पंजाब पर हमले बढ़ते गए। कांगड़ा किले की प्रतिष्ठा तथा बहुमूल्य खजाने के कारण महमूद इसकी ओर आकर्षित हुआ।

महमूद के आक्रमण तथा लूटपाट का उल्लेख उतबी की 'तारीख़-ए-यामिनी' तथा फरिश्ता के वर्णनों में मिलता है :

सन् 1009 में सिंध नदी पर ब्रह्मपाल तथा उसके पुत्र आनंदपाल को हराने के बाद सुलतान भीमनगर किले तक गया जो ऊंची पहाड़ी पर अगम्य नदियों के पार था। वहां हिंद के राजा, उस प्रांत के राजाओं तथा श्रद्धालुओं द्वारा कीमती जवाहरात मूर्ति पर चढ़ाए हुए थे। यहां इतना धन एकत्रित था जिसे न ऊंट उठाकर ले जा सके, न कोई पास रख सके, न इसका अंदाजा ही लगाया जा सके।...सुलतान ने अपनी फौजों से किले को घेर लिया। जब आसपास की पहाड़ियों को फौजों से भरा पाया और तीर किले के भीतर आने लगे तो किले के द्वार खोल दिए गए।

जिस समय महमूद ग़ज़नवी ने किले को घेरा, बहुत सी सेना राजा सहित फ्रंटियर की ओर गई हुई थी। कुछ सैनिक अपने खेतों में काम के लिए गए थे, अतः बहुत कम सेना किले में विद्यमान थी। इस समय राजा का नाम जगदीशचंद्र था जो भूमिचंद्र से 436वां तथा सुशर्मचंद्र से 202वां था।

अतः महमूद के लिए यह सुगम विजय थी। सुलतान ने अबु नसर अहमद बिन मुहम्मद फरिगुनी तथा अपने निजी सहायकों के साथ किले में प्रवेश किया। उसने अल्तुंताश और अस्गितिन को सोना-चांदी तथा बहुमूल्य संपत्ति लेने के लिए कहा जबकि स्वयं हीरे-जवाहरात लिए। यह खजाना उतने ऊंटों की पीठों पर लादा गया जितने वहां मिल सके। शेष अफसरों, हाकिमों ने उठाया।

फरिश्ता ने कहा है :

सुलतान अपने धर्म प्रचार के जोश में नगरकोट के हिंदुओं के विरुद्ध आगे बढ़ा और मूर्तियां तथा मंदिर तोड़ डाले। किला, जिसे उस समय 'भीम किला' कहते थे, पहले ही लूटा जा चुका था।

भीम किला से 7,00,000 सोने के दीनार, 700 मन सोना तथा चांदी, 200

मन शुद्ध सोना, 2000 मन चांदी तथा 20 मन हीरे-मोती-जवाहरात महमूद द्वारा लूटकर गज़नी ले जाए गए।

कनिंघम ने कहा है कि सोने-चांदी की कीमत लगाने का तो कोई हिसाब ही नहीं है। केवल सिक्कों की कीमत 17,50,000 पौंड से ऊपर थी।

महमूद गज़नवी द्वारा छोड़ी सेना संभवतः 1043 तक यहां रही। इसके बाद दिल्ली के तोमर वंश के शासक द्वारा हांसी, थानेसर पर विजय के बाद नगरकोट को भी मुगलों से मुक्त करवाया। सन् 1043 में तोमर वंश के शासक ने एक स्वप्न की बात फैलाई जिसमें उसे देवी ने महमूद गजनवी से बदला लेने के लिए कहा और तभी देवी तोड़े हुए मंदिर में वापस लौटेगी। अतः राजा ने सेना एकत्र कर हांसी और थानेश्वर के बाद नगरकोट पर चढ़ाई की। चार मास तक मुगल सेना ने मुकाबला किया। अंत में खाद्य सामग्री समाप्त हो गई और हार मान किला छोड़ना पड़ा। सन् 1059 में गज़नवी की गद्दी पर इब्राहिम बैठा जिसने सन् 1070 में जालंधर को अपने अधीन कर लिया। उस समय जालंधर का शासक जगदेव चंद्र था। संभवतः इस समय त्रिगर्त के राजा ने राजधानी जालंधर छोड़कर नगरकोट बनाई। इब्राहिम गज़नवी (1058-89) के समय 'दीवार सलमान' से भी पता चलता है कि सन् 1070 के आसपास जालंधर द्वाब का इलाका कटोचों के कब्जे में नहीं रहा।

राजधानी नगरकोट आने पर त्रिगर्त के शासक पूरी एक शताब्दी बिना किसी बाहरी प्रभाव के शासन करते रहे। सन् 1171 में पृथ्वीराज चौहान ने दिल्ली पर अधिकार किया। सन् 1173 में मुहम्मद गौरी ने गज़नवी के राज्य पर अधिकार किया। अतः इस काल में पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गौरी के युद्ध हुए। प्रारंभिक युद्धों में गौरी की पराजय हुई। सन् 1192 में अंततः पृथ्वीराज की पराजय हुई। अतः इस समय त्रिगर्तराज ने भी अपना उत्तरदायित्व निभाया होगा।

त्रिगर्त सन् 1043 के बाद लगभग तीन शताब्दियों तक स्वतंत्र रहा। इतिहासकारों का मानना है कि सन् 1043 से जहांगीर (1620) के समय तक नगरकोट किला सुरक्षित रहा। यद्यपि कुछ हमलावर आते-जाते रहे। त्रिगर्त सन् 1043 से 1620 तक स्वतंत्र इकाई बना रहा।

किरग्राम और बैजनाथ मंदिर

त्रिगर्त का उल्लेख बैजनाथ मंदिर के दो शिलालेखों में मिलता है। बैजनाथ का पुराना नाम 'किरग्राम' था और मंदिर का बैद्यनाथ। 'किर' सेना का उल्लेख चंबा में भी मिलता है। ये 'किर' मुस्लिम न होकर कश्मीर की ओर से आए थे और किरात हो सकते हैं। बैजनाथ में भी किरों का प्रभुत्व रहा।

शिलालेखों में 1126 शक संवत् अंकित है जो सन् 1204 है। शिलालेख शारदा में है। लेख के अनुसार किरग्राम के स्थानीय शासक का नाम लक्ष्मण चंद्र था। लक्ष्मण चंद्र का किला वर्तमान रेस्ट हाउस से लेकर बैजनाथ मंदिर तक था। यह भूभाग, जो बिनवा खड्ड के सीधे ऊपर है, एक किले की स्थिति का आभास देता है। लक्ष्मण चंद्र के पूर्वज आठ पीढ़ियों से त्रिगर्त के सामंत थे। इनका वैवाहिक संबंध त्रिगर्त से रहता था। राणा लक्ष्मण चंद्र की मां लक्षणा त्रिगर्त के राजा हृदयचंद्र की बेटी थी। राजा लक्ष्मण चंद्र का समकालीन राजा जयचंद्र था जो वंशावली में जयसिंह चंद्र (1200-1220) है। शिलालेख में राजा को सर्वोपरि राजा और पूर्वज राजाओं को सम्राट लिखा है। कांगड़ा को सुशर्मपुर लिखा है। कनिंघम ने जयचंद्र को वंशावली का जयमल चंद्र माना जिसका राज्य नौवीं शताब्दी में था। यद्यपि वंशावली में एक दूसरा जयचंद था जिसका पूरा नाम जयसिंह चंद था और जो पृथ्वी चंद के बाद हुआ। अतः जयसिंह चंद्र सन् 1200 तथा 1220 के बीच हुआ।

वैद्यनाथ, बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक माना जाता है। मंदिर के बाह्य मंडप में आमने-सामने शिलालेखों में एक का काल 726 शक अर्थात् 804 ई. पढ़ा गया है। अतः मंदिर का निर्माण नवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ। इस समय जालंधर या त्रिगर्त पर जयचंद्र का शासन था। द्वितीय प्रशस्ति में 'गुणों के निधि जलंधराधिराज जयचंद्र की जय' लिखा है। जालंधर की राजधानी सुशर्मपुर थी जहां के शिल्पकार और सूत्रधार आसिक पुत्र नायक ने मंदिर का निर्माण किया।

विंदुका नदी के तट पर शिवलिंग स्थापित था जिसके ऊपर लकड़ी से निर्मित कोई मंदिर रहा होगा। मन्युक आहुक ने अपने कुल के साथ स्वामी राजानक (राणा) लक्ष्मण चंद्र तथा उनके वंश का भी स्मरण किया। राणा के दस पीढ़ी तक नाम गिनाए—कंद, बुद्ध, उद्दुर, विग्रह, ब्रह्म, डोम्बक, युवन, कल्हण, विल्हण तथा लक्ष्मण चंद्र। अंतिम शासक विल्हण के राम तथा लक्ष्मण दो पुत्र थे। राम की मृत्यु पर लक्ष्मण चंद्र शासक हुए। मां लक्षणा ने बैद्यनाथ मंदिर को 'दो हल' भूमि दी। यह भूमि प्रलंब ग्राम में थी। लक्ष्मण चंद्र की रानी का नाम् मयतल्ला था।

मन्युक-आहुक बड़े व्यापारी थे। उनके सामने दूसरे व्यापारियों को 'बेचारे' कहा गया है। बैद्यनाथ शैव लोगों का स्थान रहा है। ये व्यापारी बंधु शैव रहे होंगे जिन्होंने मंदिर निर्माण किया।

इस उत्कृष्ट मंदिर का उल्लेख फरगुसन, सर ऑरेल स्टेन, फ्लीट, कनिंघम, राहुल आदि विद्वानों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं ने किया है। इस समय यह स्मारक केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग के अधीन है।

राजवंश

पृथ्वी चंद (1330)

पृथ्वी चंद के समय संभवतः मुहम्मद तुगलक (1325-51) ने कांगड़ा किला पर कब्जा किया। फरिश्ता ने इसका उल्लेख किया किंतु मुहम्मद तुगलक के दरबार के एक कवि बद्र-ए-चाच ने कविता में लिखा है—जब सूर्य वृश्चिक राशि में था, उस समय के शासक (मुहम्मद तुग़लक) ने नगरकोट का किला हिजरी 738 (1337) में जीता। यह आंख की पुतली की भांति नदियों के बीच था, और इसने अपना मान-सम्मान इतना सुरक्षित रखा था और यह इतना मजबूत था कि न तो सिकंदर, न दारा इसे जीत पाया। ...इसके शासक भैंसे की तरह ताकतवर थे जिनकी गर्दनें गैंडे क़ी तरह थीं। ...महान् सम्राटों के सम्राट रात को इस किले में 1,00,000 साथियों के साथ पहुंचे। इनकी सेना में 1000 सितारे थे और प्रत्येक के साथ 1000 पताकाएं थीं।

कनिंघम के अनुसार फिरोज तुगलक से पहले इस अवसर पर भी भवन (वज्रेश्वरी मंदिर) को लूटा गया। हचिसन-बोगल ने इस आक्रमण को संदेहास्पद बताया है। इस घटना का किसी इतिहासकार ने उल्लेख नहीं किया है। मुहम्मद तुगलक के समकालीन इतिहासकार बारनी ने भी तारीख़-ए-फिरोजशाही में इसका उल्लेख नहीं किया। अतः यह कवि की बढ़ा-चढ़ाकर लिखी कल्पना हो सकती है। सन् 1337 में मुहम्मद तुगलक ने चीन पर आक्रमण किया था। यह आक्रमण सतलुज तक हो सकता है जिसका वर्णन कवि ने कांगड़ा तक कर दिया।

पृथ्वी चंद्र के समय से कांगड़ा के राजाओं की मुद्राएं प्राप्त होती हैं। पृथ्वी चंद्र का काल 1330-45 माना गया है।

पर्व चंद (1345-60)

पर्वचंद 1345 में राजा बना। सन् 1351 तक मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हो गई और सेनाएं बिखर गईं। मुहम्मद तुगलक के बाद फिरोजशाह तुगलक शासक बना।

रूप चंद (1360-75)

रूप चंद के समय लगभग सन् 1365 में फिरोजशाह तुगलक द्वारा कांगड़ा किला जीता गया। मुसलमानों द्वारा लूटपाट की गई। इस लूटपाट से तंग आकर हिंदू राजाओं ने भी छापे मारकर लूटपाट आरंभ की। राजा रूप चंद एक बार लूटपाट करता दिल्ली तक पहुंच गया। वापसी पर कश्मीर के शासक शहाबुद्दीन से सतलुज नदी के तट पर मुठभेड़ हो गई। शहाबुद्दीन की सेना अधिक थी अतः रूप चंद ने लूट का कुछ माल शहाबुद्दीन को दे दिया।

फिरोजशाह तुगलक ने रुष्ट होकर और ज्वालामुखी मंदिर से धन लूटने की मंशा से सन् 1361 में नगरकोट पर हमला बोल दिया। राजा रूप चंद किले में सुरक्षित होकर लड़ता रहा। यह लड़ाई लगभग छह मास चली। इस बीच ज्वालामुखी मंदिर को लूटा। वहां से लगभग तेरह सौ ग्रंथ वह फारसी में अनुवाद के लिए ले गया। सुलतान लंबे समय से नगरकोट पर घेराव के कारण ऊब गया। मुआसिर-उल-उमरा में लिखा है—'सुलतान ने अपने महान् साधनों से किले को जीतना चाहा। बहुत दिनों तक घेरा डालने पर भी अंत में उसने अनुभव किया कि किले को जीतना कठिन है अतः उसने राजा से केवल भेंट करके संतुष्टि की और अपने मंसूबे से बाज आया।

राजपूतों द्वारा मुसलमानों से गुरिल्ला युद्ध का उल्लेख फरिश्ता ने भी किया है। 'राजतरंगिनी' में उल्लेख है कि सुशर्मपुर का राजा भागकर माता के पास आ गया। यह रूप चंद की कश्मीर से कोई दूसरी लड़ाई हो सकती है जिसमें राजा नगरकोट मंदिर या किले में आ गया।

छह महीने तक किले में रहने के बाद राजा ने सुलतान को किले के भीतर आमंत्रित किया। 'तारीख़-ए-फिरोजशाही' में उल्लेख है कि एक दिन सुलतान ने राजा को किले के ऊपर खड़ा देखा। राजा ने दोनों हाथ जोड़ आत्मसमर्पण की मुद्रा दिखाई तो सुलतान ने अभयदान दिया। राजा ने नीचे आकर सुलतान को भेंटस्वरूप धन-संपत्ति दी और सुलतान लौट गया। वापस जाते समय फिरोजशाह ने ज्वालामुखी मंदिर के दर्शन किए और सोने का छत्र भेंट किया। किंतु यह संदर्भ सत्य नहीं है।

फरिश्ता ने भी कुछ संदर्भ इस विषय में दिए हैं। नगरकोट के राजा ने हार मान ली। नगरकोट का नाम बदलकर मुहम्मदाबाद रख दिया गया। नगरकोट के लोगों ने फिरोजशाह को बताया कि नगरकोट मंदिर में सिकंदर महान् की रानी नौशाबा की मूर्ति है जिसे वे पूजते हैं, अतः विजेता ने मूर्ति को नहीं छेड़ा। ज्वालामुखी मंदिर से फिरोजशाह 1300 पुस्तकें अनुवाद के लिए ले गया। इन्हें फारसी में अनूदित करने का हुक्म दिया गया।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि फिरोजशाह ने नगरकोट की मूर्ति तोड़ दी और उसके टुकड़े गाय के मांस से मिला बोरियों में बांध दिए। इन बोरियों को ब्राह्मणों के गले में डाल परेड करवाई गई। यह भी कहा जाता है कि मूर्ति को मक्का में रास्ते में फेंकने के लिए भेजा गया ताकि यह पैरों तले रौंदी जा सके। सुलतान ने 1,00,000 टका मंदिर के पुजारियों तथा सेवादारों को बांटा।

तारीख़-ए-फिरोजशाही में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है।

'मुआसिर-उल-उमरा' में कहा गया है—अत्यंत मजबूती और अजेय होने के

कारण इस किले की बहुत प्रसिद्धि थी। लाहौर के उत्तर में यह पहाड़ियों के बीच स्थित था। पंजाब के जमींदारों का विश्वास था कि दुनिया बनाने वाले भगवान् के सिवा इसकी निर्माण तिथि के बारे में कोई नहीं जानता। इस लंबे समय में यह किला विभिन्न कबीलों के पास कभी नहीं रहा, न ही किसी बाहरी व्यक्ति ने इसे हथियाने की हिम्मत की। इस्लाम के एक सुलतान फिरोजशाह ने अपनी महानता और स्रोतों से इसे लेना चाहा और घेराबंदी एक लंबे समय तक चली रही। यह जानकर कि किले को कब्जे में करना असंभव है, उसने राजा से भेंट करने में ही संतुष्टि की और इस अभियान को छोड़ दिया। कहा जाता है राजा ने सुलतान को कुछ लोगों के साथ किले में आमंत्रित किया। सुलतान ने कहा कि इस प्रकार किले के भीतर आमंत्रित करना धृष्टता है और यह खतरनाक भी है। इस पर राजा के इशारे पर अनेक सिपाही सामने आ गए जो यहां-वहां छिपे हुए थे। सुलतान डर गया किंतु राजा ने बताया कि ये सब आपकी सुरक्षा के लिए हैं। सुलतान प्रसन्न हुआ। राजा ने उसे बहुत धन भेंटस्वरूप दिया। अतः सुलतान दिल्ली लौट गया।

इस संधि का उल्लेख माणिक चंद्र (सं. 1619, सन् 1562) ने अपनी कविता में भी किया है जिसमें लिखा है कि रूप चंद आगे बढ़कर सुलतान से मिलने गया और सुलतान ने उसकी पीठ पर हाथ रखा।

कनिंघम का विचार है कि रूप चंद ने अपने पैतृक किले के कारण राज्य बचा लिया किंतु मुस्लिम फौज वहां छोड़ी गई। किंतु फरिश्ता, तारीख़-ए-फिरोजशाही या मुआसिर-उल-उमरा में जिक्र है कि किला जीता नहीं जा सका। रूप चंद की मृत्यु 1375 में हुई।

संगर चंद (1375)

रूप चंद के बाद उसका पुत्र संगर चंद राजा बना। इसके शासनकाल की एक घटना का उल्लेख मुस्लिम इतिहास में मिलता है। फिरोजशाह तुगलक ने सन् 1387 में अपने सबसे बड़े पुत्र नसीरुद्दीन को उत्तराधिकारी बनाया। किंतु इसके दो चचेरे भाइयों ने इसे भगा दिया और नसीरुद्दीन को सिरमौर में शरण लेनी पड़ी। सिरमौर से वह नगरकोट आ गया। फरिश्ता ने कहा है कि शहजादा पहाड़ों में छिपता फिरता रहा और अंततः कांगड़ा किले में शरण ली। क्योंकि किला मजबूत था अतः शहजादे के शत्रुओं ने इसे जीतने का इरादा छोड़ दिया और दिल्ली लौट गए। लगभग 1390 में वह दिल्ली गया और सुलतान बना।

संगर चंद की मृत्यु संभवतः सन् 1390 में हुई और उसका पुत्र मेघ चंद राजा बना।

मेघ चंद (1390)

मेघ चंद के समय (1392) तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया। पंद्रह दिन दिल्ली रहने के बाद प्रथम जनवरी को वह मेरठ, हरिद्वार होता हुआ सिरमौर की निचली पहाड़ियों तक आया। उसने नगरकोट के बारे में सुन रखा था और उसे जीतना चाहता था किंतु वह यहां तक पहुंच नहीं पाया। तैमूर ने सात किले जीते किंतु उनमें नगरकोट का उल्लेख नहीं है। पठानकोट तथा नूरपुर क्योंकि उसके रास्ते में थे, अतः संभवतः लूटे गए होंगे। उसका रास्ता रावी के साथ लखनपुर, जसरोटा, साम्भा, जम्मू रहा होगा।

तैमूर के संस्मरणों 'मालफ़ूज़ात-ए-तिमूरी' में उल्लेख है—'जब मैंने शिवालिक की ओर से घाटी में प्रवेश किया, मुझे नगरकोट के नगर के विषय में सूचना दी गई जो हिंदुस्तान का बड़ा और महत्त्वपूर्ण नगर था और इन पहाड़ों में स्थित था। दूरी तीस कोस थी किंतु रास्ता जंगलों तथा ऊबड़खाबड़ पहाड़ियों से होकर जाता था। इन पहाड़ियों के प्रत्येक राय या राजा के पास बड़ी फौज थी। जैसे ही मुझे नगरकोट तथा आसपास के क्षेत्र के बारे में तथ्यों का पता चला, मेरा मन इन विधर्मी हिंदुओं से लड़ने और इस क्षेत्र पर विजय पाने को हुआ, अतः घोड़े को एड़ लगाकर मैं उस ओर चल पड़ा।'

तैमूर के संस्मरणों में इसके बाद लड़ाइयों का वर्णन है किंतु नगरकोट का उल्लेख कहीं नहीं है। तैमूर का कैम्प कहीं होशियारपुर के निकट रहा और उसने नगरकोट को जीतने की भी सोची होगी किंतु कठिन पहाड़ी रास्ते और नगरकोट के अजेय होने के कारण संभवतः इस ओर जाने का विचार छोड़ दिया। संस्मरणों में लिखा है—'मैंने सात प्रसिद्ध किलों को जीता जो एक-दूसरे से दो या तीन कोस की दूरी पर थे और उस क्षेत्र के नगीने और सौंदर्य थे।'

मेघ चंद के विषय में किसी घटना का पता नहीं चलता। राजा की मृत्यु सन् 1405 में हुई।

हरि चंद (1405)

हरि चंद के समय एक घटना के कारण कांगड़ा राज्य दो शाखाओं में बंट गया। हरि चंद के विषय में एक कथा लोक में प्रचलित है। इस कथा को बारनेस ने कांगड़ा गजेटियर में यूं दिया है—

राजा हरि चंद गुलेर के पास हड़सर गांव में शिकार खेलने गया। इस ओर घना जंगल था। राजा एक कुएं में गिर गया। इस बात का पता उसके साथियों को भी नहीं चला। बहुत खोज करने पर भी जब राजा नहीं मिला तो सिपाही वापस कांगड़ा लौट आए। उन्होंने सोचा कि राजा को किसी जंगली जानवर ने खा लिया है। एक

मृतक की भांति राजा की मौत का शोक मनाया गया। मृतक संस्कारों के बाद उसके भाई करम चंद को गद्दी पर बिठाया गया। अंत्येष्टि के समय हरि चंद की रानियां भी सती हो गईं। किंतु हरि चंद मरा नहीं था। कुछ दिनों (संभवतः बाईस) बाद एक गद्दी या किसी व्यक्ति ने राजा को कुएं में देख लिया जो वहां पानी पीने गया था। राजा को कुएं से बाहर निकाला गया। जब हरिचंद को पता चला कि उसे मरा हुआ समझ लिया गया था और राजगद्दी उसके भाई को मिल गई है तो उसने कांगड़ा न लौटने का निश्चय किया। उसने बाणगंगा के किनारे स्थान चुना और हरिपुर दुर्ग अपने नाम से बनाया। हरिपुर नाम से एक नए राज्य की नींव रखी। अतः गुलेर नाम से एक नया राज्य बना।

गुलेर से ही सीबा और दत्तारपुर शाखाएं निकलीं। सीबा, सीबार चंद ने बसाया जो हरि चंद की चौथी पीढ़ी में छोटा भाई था। इसी प्रकार दत्तारपुर में कटोच वंश का पता होशियारपुर गजेटियर में लगता है। मि. रो सैटलमेंट ऑफिसर के अनुसार यह पंद्रहवीं शताब्दी में बना। मि. रो के अनुसार यह घटना भी हरि चंद से चौथी पीढ़ी में हरि चंद के लगभग अस्सी वर्ष बाद हुई।

करम चंद (1415)

हरि चंद द्वारा गुलेर की स्थापना के बाद गद्दी भाई करम चंद ने संभाली। इस राजा के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती। फिरोजशाह तुगलक की सन् 1388 में मृत्यु के बाद दिल्ली में अराजकता रही, अतः कांगड़ा भी स्वतंत्र रहा होगा। करम चंद ने 1430 तक शासन किया।

संसार चंद प्रथम (1430)

वज्रेश्वरी मंदिर भवन के लेख के अनुसार संसार चंद प्रथम मुहम्मद शाह का करद था, जो संभवतः सैयद वंश का रहा होगा। कांगड़ा शासन का मुस्लिम रिकॉर्ड में शेरशाह सूरी (1540) तक कोई उल्लेख नहीं मिलता है। यह प्रतीत होता है कि कांगड़ा किला सन् 1043 से लेकर सन् 1620 (जहांगीर) तक स्वतंत्र रहा।

संसार चंद प्रथम मुहम्मदशाह सैयद (1435-44) का समकालीन था।

संसार चंद प्रथम के बाद दिवंगा चंद (1450), नरेंद्र चंद (1465) राजा हुए जो स्वतंत्र शासक रहे।

सुवीर चंद (1480)

नरेंद्र चंद निःसंतान मर गया किंतु उसकी रानी गर्भवती थी। कहा जाता है वह उत्तराधिकार की लड़ाई के भय से अपने मायके पूना चली गई। रास्ते में एक

कुम्हार के घर में सुवीर चंद का जन्म हुआ जो संभवतः राज्य की सीमाओं में ही था। बड़ा होने पर सुवीर चंद अपने नाना की सेनाओं के साथ यहां आया और राजा बना। उस कुम्हार को जागीर बख्शी गई जिसके घर उसका जन्म हुआ था।

प्रयाग चंद (1490) के बाद राम चंद (1510) शासक हुए जिनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

धर्म चंद (1528)

धर्म चंद के समय का एक ताम्रपत्र मिलता है जिसके अनुसार सं. 1535 (सन् 1478) में उसका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। अतः सन् 1528 में पिता की मृत्यु के बाद शासन संभालने के समय वह काफी उम्र का रहा होगा।

हुमायूं की काबुल वापसी पर शेरशाह सूरी (1540) का अधिकार हुआ। उसने अपने जनरल खव्वास खान को नगरकोट फतह करने के लिए भेजा। वाक्यात-ए-मुशतकी में उल्लेख है—'खव्वास खान, जो मियां मुआ का पूर्वज था, सुलतान का आदेश पाने पर पहाड़ी प्रदेश पर विजय पाने के लिए नगरकोट की ओर बढ़ा और इसे जीतने में सफल हुआ। वह देवी शंकर मंदिर से मूर्ति सहित वह ताम्र छत्र भी ले गया जिस पर इसके दो हजार वर्ष पुराना होने की तिथि देवनागरी में खुदी थी। जब यह मूर्ति सुलतान को भेजी गई, यह कसाइयों को मांस तौलने के लिए बट्टा बनाने को दे दी गई। छत्र के तांबे के पात्र बनाए गए जिनमें पानी गर्म किया जाए और वे मस्जिद तथा राजा के महलों के बाहर रखे गए ताकि लोग भीतर प्रार्थना पर जाने से पहले पवित्र होने के लिए उनसे पानी लेकर अपने हाथ-पांव धोएं।'

इस विजय के बाद पहाड़ी क्षेत्र हमीद खान कक्कड़ के अधिकार में सौंपे गए जो मलोट के किले में रहता था और वहां से नगरकोट, ज्वाला, जम्मू आदि सभी क्षेत्रों पर नियंत्रण रखता था। नगरकोट किले में किसी प्रकार की फौज रखने का उल्लेख नहीं है। इतिहासकारों का मानना है कि जहांगीर (1620) के समय तक नगरकोट सुरक्षित रहा।

पंजाब में उन दिनों शेरशाह सूरी के भतीजे सिकंदरशाह का अधिकार था। हुमायूं जब 12 नवंबर, 1554 को पुनः भारत आया तो उसने अपने पुत्र अकबर और बहरामखां को सिकंदरशाह के विरुद्ध भेजा। इस लड़ाई में सिकंदरशाह की हार हुई और वह शिवालिक पहाड़ियों की ओर भाग गया। सिकंदरशाह ने पुनः पंजाब पर अधिकार करने का प्रयास किया किंतु अकबर तथा बहरामखां ने जनवरी 1556 में उसे पुनः भगा दिया। जब अकबर सिकंदरशाह का पीछा करता हुआ कांगड़ा में स्थित

सुलतानपुर तथा हरियाणा की ओर गया तो हरियाणा में ही अकबर को हुमायूं की दुर्घटना का समाचार मिला अतः सिकंदर को छोड़ अकबर कलानौर (गुरदासपुर) पहुंचा जहां हुमायूं की मृत्यु का दुःखद समाचार मिला।

कलानौर (गुरदासपुर) में ही 14 फरवरी, 1556 को अकबर को गद्दी सौंप दी गई। अकबर अब पुनः पहाड़ी क्षेत्र की ओर बढ़ा। फरिश्ता ने उल्लेख किया कि नूरपुर में धर्म चंद आया और सुलतान से भेंट की।

यह भी कहा जाता है कि अकबर ने नगरकोट किले को अपने अधीन किया किंतु इसे इतिहासकारों ने स्वीकार नहीं किया है। अकबर नूरपुर तक ही आया और उसकी सेना सिकंदरशाह को भगाने में व्यस्त थी जिसके साथ नूरपुर के राजा बख्त मल ने संधि की हुई थी। तबकात-ए-अकबरी में उल्लेख है :

'शाही फौजों ने शिवालिक पहाड़ियों के पास अफगानों से सामना किया और विजय पाई जिससे उन्हें बादशाह से शानदार अनुमोदन मिला। सिकंदर पहाड़ों तथा जंगलों में छिपता रहा और शाही फौजें छह मास तक उसे पकड़ने के लिए खोजती रहीं। नगरकोट का राजा राम चंद पहाड़ों के राजाओं में सबसे प्रसिद्ध और माना हुआ था, वह आया और अधीनता स्वीकारी। भारी बरसात के कारण सुलतान इस स्थान को छोड़ जालंधर चले गए जहां वे पांच महीने तक ठहरे।'

यहां राजा का नाम गलत दिया गया है। यह गलती बदायूंनी ने भी की है किंतु अबुल फजल तथा फरिश्ता ने उसे धर्म चंद ही कहा है। राम चंद तो धर्म चंद का पिता था। सिकंदरशाह ने सन् 1557 में पुनः पंजाब पर आक्रमण किया। अकबर ने पुनः उसे रोका और वह पठानकोट तथा नूरपुर के बीच माऊ पहाड़ियों में रहा जहां आठ महीने बाद खाद्य सामग्री समाप्त होने पर उसे समर्पण करना पड़ा।

हचिसन-वोगल ने लिखा है कि इस समर्पण के समय नगरकोट की सेना वहां अवश्य होगी यद्यपि राजा धर्म चंद तो बहुत बूढ़ा हो चुका था। धर्म चंद 1562 तक जीवित रहा, जब 'धर्म चंद' नाटक लिखा गया। माणिक चंद के इस नाटक में रूप चंद और फिरोजशाह का वर्णन दिया है।

मुगल साम्राज्य स्थापित होने पर लगभग सभी पहाड़ी राज्य अकबर के अधीन हो गए। अकबर ने मुगल दरबार में राजाओं के निकट संबंधी अपने दरबार में रखने आरंभ किए। जहांगीर के शासन के आरंभ में बाईस युवा राजकुमार पहाड़ों से राजदरबार में थे।

माणिक चंद (1563)

धर्म चंद के बाद माणिक चंद गद्दी पर बैठा। जब वह पिता की मृत्यु के बाद

गद्दी पर बैठा तो संभवतः अधेड़ आयु का था। उसने केवल सात वर्ष राज किया और सन् 1570 में उसकी मृत्यु हो गई।

जय चंद (1570)

जय चंद के सिंहासनारूढ़ होने के तुरंत बाद अकबर किसी कारण से उससे नाराज हो गया और उस पर शक करने लगा। अकबर ने जय चंद को दिल्ली दरबार में पेश होने का हुक्म भेजा। जय चंद का पुत्र विधि चंद तब नाबालिग था। जय चंद ने उसे जसवां के राजा गोबिंद चंद की देखरेख में छोड़ा और दिल्ली चला गया जहां उसे बंदी बना लिया गया। यह भी कहा जाता है कि यह कार्य गुलेर के राजा राम चंद को सौंपा गया था किंतु राम चंद भी उस समय दिल्ली में था।

जब जय चंद वापस नहीं आया तो उसके पुत्र विधि चंद ने, जो अभी नाबालिग था, यह समझा कि राजा को मार दिया गया है। विधि चंद ने राजासन ग्रहण कर विद्रोह कर दिया।

सन् 1572 में अकबर ने पंजाब के वायसराय खान जहां हुसैन कुली खान के नेतृत्व में नगरकोट को जीतने के लिए सेना भेजी, साथ ही यह फरमान भी भेजा कि यह सारा क्षेत्र छीनने के बाद राजा बीरबल को जागीर में दे दिया जाए। राजा बीरबल भी संभवतः लाहौर में इस सेना के साथ आ मिला। सभी ने पठानकोट, धमेरी (नूरपुर) से होकर नगरकोट की ओर बढ़ना आरंभ किया। धमेरी (नूरपुर) में तख्त मल जय चंद का संबंधी था, अतः वह किले से बाहर नहीं आया और दो वकीलों को भेंट लेकर भेज दिया। मुगल सेना ने छोटी टुकड़ी नूरपुर छोड़ी और आगे बढ़ी।

नूरपुर के बारह मील दूर पहाड़ी पर कोटला का किला था, जो कांगड़ा के अधीन था। यह किला पहले गुलेर के राजा राम चंद का था किंतु राजा धर्म चंद तथा जय चंद (कांगड़ा) ने यहां सेनाएं रखी थीं। किले की सेनाओं ने मुगल सेना पर बाणों तथा पत्थरों से हमला किया। हुसैन कुली खान ने बड़ी कठिनाई से तोपें ऊपर चढ़ाईं और गोले दागे। इससे किले की दीवारें गिर गईं और बहुत से सैनिक दबकर मर गए। कुछ सैनिक भाग गए, कुछ ने आत्मसमर्पण कर दिया।

यहां से हुसैन कुली खान ने प्रातः नगरकोट की ओर प्रस्थान किया। कांगड़ा किला पर तीन मास तक घेराबंदी चलती रही। यहां जसवां का राजा गोबिंद चंद नेतृत्व कर रहा था जिसे जय चंद यहां छोड़कर गया था। इसी बीच खबर आई कि अकबर के दो संबंधियों इब्राहिम हुसैन मिर्जा और मसूद मिर्जा ने काबुल से पंजाब पर धावा बोल दिया है। विवश होकर हुसैन कुली खान को संधि करनी पड़ी। पांच मन सोना तथा कुछ बहुमूल्य वस्तुओं के देने पर संधि हो गई और मुगल सेना मिर्जाओं से सामना करने चल दी।

इस घटना का तबकात-ए-अकबरी में उल्लेख किया गया है। इसमें जिक्र है– 'प्रथम राजाब हि. 980 (8 नवंबर, 1572), उसने (खान जहां हुसैन कुली खान) नगरकोट के निकट मक्की के खेतों में सेना का डेरा डाला। भवन का गढ़ जिसमें महामाई की मूर्ति थी और जहां केवल सेवक रहते थे, पहले हमले में छीन लिया गया। राजपूतों का एक दल, जिसने मरने का निश्चय किया हुआ था, बहादुरी से लड़े जब तक कि उन्हें धराशायी नहीं कर दिया। बहुत से ब्राह्मण, जो कई वर्षों से मंदिर की सेवा कर रहे थे, ने लड़ने और मरने के सिवा कुछ नहीं सोचा और मारे गए।

'इस संघर्ष के दौरान लगभग 200 काली गौएं, जो हिंदुओं की थीं, मंदिर में शरण लेने आ गई थीं। कुछ कट्टर तुर्की लोगों ने जब बाण तथा गोलियों की वर्षा हो रही थी, उन सभी गौओं को एक-एक कर मार दिया। फिर अपने बूट उतारकर उन्हें खून से भरा और मंदिर की छत तथा दिवारों पर फेंक दिया।

'बाहरी किलेबंदी टूट चुकी थी, भवन गिरा दिए गए और भूमि कैम्प के लिए समतल कर दी गई।...एक दिन तोप के कमांडर ने एक बड़ा गोला उस महल पर गिराया जहां राजा उसे सुरक्षित समझ बैठक कर रहा था। यह गोला दीवार से लगा और लगभग अस्सी आदमी मर गए जिनमें राजा तख्तमल (नूरपुर) का बेटा भुजदेव भी था।'

मुआसिर-उल-उमरा (खंड-1, पृष्ठ 647-48) में किले की घेराबंदी का उल्लेख ऐसा ही दिया गया है। अकबरनामा में कुछ अतिरिक्त विवरण भी दिया गया है। अकबरनामा (खंड-3 पृष्ठ 6) में उल्लेख है :

'विद्रोही मिर्जाओं ने सोचा कि खान जहां तथा दूसरे नवाब नगरकोट को हथियाने में व्यस्त हैं अतः प्रांत में सफलता पाने का यह अच्छा मौका है। यदि वे असफल रहते हैं तो वे सिंध के रास्ते गुजरात निकल जाएंगे। सुलतान के निर्देशों के पालनार्थ हुसैन कुली खान ने नगरकोट को एक सलाह भरा संदेश भेजा। यह सलाह नहीं मानी गई। शाही नवाब वहां गए और छानबीन की।'

अकबरनामा में शेष घटना लगभग वही बखानी गई है। इसमें संधि की निम्न चार शर्तें रखी गई थीं–

पहली, राजा अपनी एक लड़की सुलतान के महलों में भेजे। दूसरी, अपने किसी विश्वासपात्र संबंधी को सुलतान के पास भेजे और वह तब तक बंधक रहे जब तक किला खाली न कर दिया जाए। तीसरी, वह संतोषजनक कर दिया करे। चौथी, यह क्षेत्र राजा बीरबल को जागीर के रूप में दिया जा चुका है और उसे पर्याप्त धन दिया जाए ताकि वह इसे छोड़ने के लिए राजी हो सके।

अकबरनामा में यह भी जिक्र है कि राजा (गोबिंद चंद) कांगड़ा में बैठने के

बजाय जोश में आकर मुगल सेना के साथ चलने को तैयार हो गया। कुछ दूर जाने के बाद उसे वापस जाने दिया। इससे पता चलता है कि राजा ने शाही फरमान को मान लिया किंतु गुलेर परंपरा से पता चलता है कि इसे गुलेर के राम चंद ने बंदी बनाकर दिल्ली भेजा। किंतु जाने से पहले उसने अपने नाबालिग पुत्र को जसवां के गोबिंद चंद के हवाले किया जिसने अपना कर्तव्य निष्ठा के साथ निभाया।

इसके बाद अकबर ने अपने वित्त मंत्री टोडरमल को कांगड़ा भेजा ताकि बीरबल के लिए जागीर मिल सके। टोडरमल ने कांगड़ा से छियासठ गांव लिए जिनमें चंबा का रिहलू का क्षेत्र भी शामिल था। टोडरमल ने कहा कि मांस-मांस तो ले लिया है, केवल हड्डियां छोड़ी हैं।

इस घटना के बाद मुगल इतिहास में सन् 1582 तक नगरकोट का उल्लेख नहीं है। सन् 1581 में मुहम्मद हकीम (सौतेला भाई) के विद्रोह को दबाने के लिए अकबर ने काबुल को प्रस्थान किया। जाते हुए बादशाह होशियारपुर के निकट दसुआ में ठहरा। राजा बीरबल ने, जिसे जागीर मिली थी, पूरे प्रबंध किए। बादशाह ने यहां सुना कि कांगड़ा में देवी के मंदिर में भक्त लोग अपनी जिह्वा काट देते हैं। इसे देखने के लिए बादशाह ने नगरकोट जाने का मन बनाया। सेवक रास्ते की कठिनाइयों से तंग आ चुके थे किंतु कुछ भी बोल नहीं पाए। किंतु रात में जब बादशाह सोया हुआ था, एक आत्मा ने उसे वहां जाने के लिए मना किया अतः बादशाह ने जाने का इरादा छोड़ दिया और वापस हो गया।

यह घटना अकबरनामा में वर्णित है। अतः इससे स्पष्ट है अकबर नगरकोट कभी नहीं आया।

मुआसिर-उल-उमरा में अकबर की कांगड़ा को अपने अधीन करने की तीव्र इच्छा और अन्य घटनाओं के साथ भवन मंदिर में जिह्वा कटने और उसके जुड़ने का उल्लेख भी हुआ है। हचिसन-वोगल ने लिखा है–'अकबर के इतिहासकारों के अनुसार कांगड़ा के भवन मंदिर में जिह्वा कटने का प्रसंग पुराने समय से प्रचलित रहा है। यह घटना अभी भी होती है। लोगों में यह विश्वास है कि देवी को समर्पित यह जिह्वा कुछ घंटों या दिनों में पुनः उग आती है।'

हकीकत-उल-अकलीम, जिसे लगभग सन् 1781 में शेख मुर्तज़ा खान तथा बिलग्रामी ने लिखा, में उल्लेख है–'लाहौर की सीमा में, उसी दोआबा में एक पहाड़ी क्षेत्र है जिसका नाम नगरकोट है। यहां एक बहुत विशाल किला है। पहाड़ियों के नीचे नगरकोट के पास एक गुंबदाकार भवन बनाया गया है। हिंदू इसे भवानी मानते हैं। इसके भीतर एक पत्थर का टुकड़ा है जो कलात्मक न होकर एक चट्टान का अनगढ़ टुकड़ा है। यह पत्थर हिंदुओं द्वारा बड़ी श्रद्धा के साथ पूजा जाता है। वर्ष

में दो बार बूढ़े जवान, गरीब-अमीर भीड़ की भीड़ नंगे पांव इसे पूजने आते हैं। श्रद्धालु स्वयं अपने हाथों अपनी जीभ काटते हैं और अपने विश्वास के बल पर कुछ घंटों या कुछ दिनों में एक नई और सांगोपांग जीभ दोबारा उगी हुई पाते हैं।'

लोकास्था यह भी है कि अकबर ज्वाला जी मंदिर में दर्शनार्थ आया। अकबर ने ज्वाला को शांत करने के लिए एक नहर बनाई और पानी ज्वालाओं में डाला। किंतु ज्वालाएं वैसे ही जलती रहीं। अतः देवी के चमत्कार से प्रभावित हो अकबर ने सोने का छत्र चढ़ाया जो काला पड़ गया। देवी के मंदिर में आने वाले एक छोटी नहर के अवशेष अब भी विद्यमान हैं। एक छत्र भी पुजारी दिखाते हैं जो किसी धातु का बना हुआ है। किंतु इन घटनाओं की पुष्टि इतिहास नहीं करता। यद्यपि लोकगीत में अकबर के 'नंगी-नंगी पैरी' आने और सोने का छत्र चढ़ाने का आज भी जिक्र किया जाता है।

लोकास्था यह भी है कि अकबर को नगरकोट की निम्न चार चीजों के बारे में बताया गया—

1. नई नाक बनाना
2. आंखों की बीमारियों का उपचार
3. बासमती चावल
4. मजबूत किला

राजाओं के समय में नाक काटना एक आम सजा थी। कहा जाता है कि एक बार बादशाह ने किसी को नाक काटने की सजा सुनाई। कुछ समय बाद वह नई नाक के साथ सामने आया। जब उससे पूछा गया कि यह कैसे हुआ तो उसने बताया कि बुद्धिया नाम के सर्जन ने यह कार्य किया है। उसे कांगड़ा में जागीर सौंपी गई। यह जागीर सिख शासन के समय वापस ली गई। विगने ने यह जागीर देखनी चाही किंतु जागीर पत्र उसे दिखाया नहीं गया।

कनिंघम ने कहा है कि नाक का ऑपरेशन अकबर से पहले से होता था और ब्रिटिश शासन तक जारी रहा। कनिंघम ने कहा है—'मुझे आंखों के बारे में कोई जानकारी नहीं मिली किंतु नाक का उपचार अभी भी होता है, यद्यपि सिख शासन के समय से इसमें काफी कमी आ गई है, क्योंकि पहले नाक काटना एक आम सजा थी। किंतु अब भी लोग काबुल तथा नेपाल से इलाज करवाने आते हैं।'

ऑपरेशन की विधि के बारे में विगने ने लिखा है—'मुझे पता चला कि रोगी को सबसे पहले खूब अफीम, भांग या शराब दी जाती है ताकि वह बेहोश हो जाए। फिर वे माथे की चमड़ी, जो नाक के ऊपर होती है, नीचे लाते हैं, जब तक कि एक मांसपिंड न बन जाए जिससे वांछित शक्ल का एक मांस का टुकड़ा बनाकर नाक

बना दी जाती जिसे सीकर रुई के साथ टिका दिया जाता। इस घाव को फिर नीले घोल के मरहम के साथ पट्टी कर दी जाती। सर्जन इस ऑपरेशन को हिंदुओं के विश्वास पर करते हैं कि यह सब देवी की कृपा से किया जाता है और ऑपरेशन केवल नगरकोट में ही सफल हो सकता है और कहीं नहीं।'

विधि चंद (1585)

राजा जय चंद की सन् 1585 में मृत्यु के बाद विधि चंद शासक बना। मुगल शासन से सताए राजाओं में असंतोष था अतः विधि चंद ने इन्हें संगठित किया और सन् 1585-89 में विद्रोह कर दिया। अकबर ने अपने दूध भाई जैन खां कोका को विशाल सेना के साथ विद्रोह दबाने के लिए भेजा। वह पठानकोट से सतलुज तक गया और तेरह राजाओं को मुगल दरबार में भेंट के साथ हाजिर किया।

आईने-अकबरी में लिखा है, इनमें राजा विधि चंद (नगरकोट), राय प्रताप (मानकोट), राजा परसराम (माउंट जम्मू), राजा वासु (माऊ), राय बलभादर (लखनपुर) थे।

मुआसिर-उल-उमरा में लिखा है—अकबर के पैंतीसवें वर्ष में जैन खां को उत्तरी जमींदारों को दंड देने का आदेश मिला। वह पठान (पठानकोट) के पास से चला और सतलुज तक पहुंचने से पहले पीछे मुड़कर नहीं देखा। क्षेत्र के सभी वासी अधीन हो गए। राजा विधि चंद (नगरकोट), राजा परसराम (माउंट जम्मू), राजा बासु (माऊ), राजा अनरुद्ध (जसवां), राजा कमलूरी (कलहूरी-बिलासपुर), राजा जगदीश चंद (ढढवाल), राय संसार चंद (पन्ना), राय प्रताप (मानकोट), राय भासो (भावू), बुजुर्ग (जसरोटा), राय बलभादर (लखनपुर), दौलत (कोट भारता), राय कृष्ण बलोरिया (बसोहली), राय राओदेह, धमेरवाल, यद्यपि उनके पास 10,000 घुड़सवार थे और एक लाख से अधिक पैदल सिपाही थे, दरबार में बहुमूल्य तोहफे लेकर प्रस्तुत हुए।

इससे पता चलता है कि चिनाव से लेकर सतलुज तक सभी पहाड़ी राजाओं ने विद्रोह किया था। दरबार में हाजिर होने के बाद इनके इलाके तथा राजकाज वापस दे दिया गया किंतु विधि चंद को अपने पुत्र त्रिलोक चंद को, जो अभी बालक था, मुगल दरबार में बंधक के रूप में छोड़ना पड़ा। लोगों का विश्वास है कि जब बालक त्रिलोक चंद दिल्ली दरबार में रहा, शहजादा सलीम (जहांगीर) भी बालक था। एक बार सलीम ने त्रिलोक चंद से तोता लेना चाहा जो उसने नहीं दिया। इसी रंजिश से जहांगीर ने सुलतान बनने पर यहां आक्रमण किया।

सन् 1594-95 में पहाड़ी राजाओं ने जसरोटा के राजा के नेतृत्व में पुनः विद्रोह किया। इस विद्रोह में संभवतः कांगड़ा के राजा विधि चंद या नूरपुर के राजा बासु ने भाग नहीं लिया। मिर्जा रुस्तम कंदहारी के नेतृत्व में पठानकोट सेना भेजी गई।

एक सेना शेख फरीद के नेतृत्व में भेजी गई। संभवतः विधि चंद उस समय मुगल दरबार में था।

अकबरनामा में इन राजाओं को हराने का किस्सा बखाना गया है। मुगल सेना ने पठानकोट से चलकर नूरपुर, माऊ, गुलेर जीते। कांगड़ा की रानी ने, जिसका पुत्र (और संभवतः पति भी) दिल्ली मुगल दरबार में था, अपने दो दूतों को उपहार सहित भेजा। अतः जम्मू से नगरकोट तक पुनः विद्रोह दबा दिया गया। शेख फरीद को लाहौर बुला लिया गया जहां उसे सुलतान से ईनामात मिले।

विधि चंद की मृत्यु 1605 में हुई।

त्रिलोक चंद (1605)

जहांगीर भी सन् 1605 में गद्दी पर बैठा। सन् 1615 तक जहांगीर ने नगरकोट की ओर ध्यान नहीं दिया। सन् 1615 में शेख फरीद को, जो पंजाब का गवर्नर था और जो पहले (1594-95) भी पहाड़ों में विद्रोह दबाने आया था, नगरकोट भेजा।

कहा जाता है बचपन में दिल्ली प्रवास के दौरान त्रिलोक चंद की जहांगीर से तोता न देने के कारण दुश्मनी हो गई थी, इसी कारण सेना भेजी गई। कनिंघम का मानना है कि यह कटोच राजा द्वारा अपने नाम के सिक्के चलाने के कारण हुआ। इससे सुलतान चिढ़ गया और सेना भेजी गई।

तारीख़-ए-पंजाब (पांडुलिपि), जो गुलाम मुहैय-उद-दीन द्वारा सन् 1820 में लिखी गई, में त्रिलोक चंद के पुत्र हरि चंद का नाम आता है, जो गलत है तथापि उसने घटना का जिक्र यूं किया है–'जहांगीर द्वारा तोता मांगने पर राजपूत राजकुमार ने कहा, हमने बादशाह को कर में बाज दिया है, यह घृणित पक्षी मैंने अपने आनंद के लिए रखा है। जब कभी शाही दरबार से मुझे छुट्टी मिलेगी, मैं घर वापस जाऊंगा, इस बेचारे पक्षी के साथ बाज भी भेजूंगा। क्योंकि अकबर को हरि चंद प्रिय था अतः जहांगीर पक्षी को लेने की जुर्रत नहीं कर सका। किंतु इस लड़के के प्रति मन में रंजिश रखी। जब हरि चंद कांगड़ा आया उसने बाज तथा जुराह शहजादे को भेजे। जहांगीर ने स्वीकार नहीं किए। जब राजा त्रिलोक चंद (विधि चंद होना चाहिए) की मृत्यु हुई, अकबर भी मृत्यु को प्राप्त हुआ और जहांगीर पिता का उत्तराधिकारी बना। पहाड़ी राजा अपने-अपने तोहफे लेकर दरबार में हाजिर हुए तो हरि चंद (त्रिलोक चंद होना चाहिए) भी उनमें था। उसे मालूम था कि जहांगीर के मन में उसके प्रति रंजिश है, अतः घर छोड़ने से पहले उसने मां को अपना किला सुरक्षा के लिए तैयार करने को कहा। उसकी मां चंबा से थी अतः उसने अपने भाई राजा चंबा को बुलाया

और वह कांगड़ा किले में रहा। जहांगीर हरि चंद (त्रिलोक चंद) तथा दूसरे राजाओं के साथ बाहर से ठीक रहा कि भीतर ही भीतर बंदी बनाने के आदेश दे दिए। इस बात का पता उसे चल गया और अपने दो निजी सेवकों सहित भागने में सफल हुआ। जब वह कुछ पड़ाव आ चुका था, जहांगीर को पता चला और उसने सेनाओं को भेजा। उसे आनंदपुर से पांच कोस दूर कीरतपुर में पकड़ लिया गया और अपनी सुरक्षा करते हुए मार दिया गया।'

तारीख़-ए-पंजाब की यह कहानी सही नहीं है क्योंकि तोते का यह किस्सा त्रिलोक चंद के साथ हुआ था, हरि चंद के साथ नहीं। हरि चंद सन् 1608 में पैदा हुआ और उस समय अभी बच्चा ही था। यह 1620 में अभी बारह वर्ष का था जब कि त्रिलोक चंद जहांगीर का समकालीन था।

जब जहांगीर गद्दी पर बैठा और कांगड़ा किला को फतह करने के लिए सेना भेजी उस समय त्रिलोक चंद का जिक्र नहीं आता। अतः संभवतः सन् 1612 में त्रिलोक चंद की मृत्यु हो गई या वह उक्त घटना के अनुसार मार दिया गया।

हरि चंद द्वितीय

सन् 1612 में हरि चंद द्वितीय राजा बना। हरि चंद की आयु उस समय चार वर्ष की थी। नगरकोट किले को जीतना संभवतः जहांगीर ने अपना लक्ष्य बना लिया था। अतः उसने पंजाब के निजाम मुर्तजा खान को इस काम के लिए 1615 में भेजा जब हरि चंद की आयु अभी सात वर्ष थी। मुर्तज़ा खान और कोई नहीं शेख फरीद ही था जो पहले भी नगरकोट (1590-95) में पहाड़ी राजाओं का विद्रोह दबाने आ चुका था। शेख फरीद को ही मुर्तजा खान की उपाधि दी गई थी।

जहांगीर ने अपने संस्मरणों (तुजक-ए-जहांगीरी खंड-1 पृष्ठ 283) में कहा है, कांगड़ा जिला को कब्जे में करने के लिए प्रथम या द्वितीय अप्रैल सन् 1615 को मिशन आरंभ किया गया। जहांगीर ने कहा है–

'इस दिन मुर्तजा खान ने कांगड़ा किले को कब्जे में लेने के लिए चलने की अनुमति ली, जिस (किले) के बराबर शक्ति पूरे पंजाब में या पूरे संसार में नहीं थी। जब से इस्लाम हिंदुस्तान के देश में पहुंचा, तब से अब तक जब यह गद्दी अल्लाह के इस बंदे ने पाई है, कोई भी बादशाह या राजा इसे कब्जे में नहीं कर सका। मेरे माननीय पिता के समय एक बार पंजाब की सेना इस किले के विरुद्ध भेजी गई थी और इसे लंबे समय तक कब्जे में रखा गया। अंत में उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि किले को न लिया जाए और सेना को किसी दूसरे आवश्यक कार्य के लिए भेजा गया।'

जहांगीर ने मुर्तजा खान के साथ राजा बासु के पुत्र सूरजमल को भी भेजा क्योंकि सूरजमल का क्षेत्र इस किले के निकट (नूरपुर) था। उसकी मनसबदारी भी बढ़ा दी गई। इसी समय राजा मान सिंह, जो ग्वालियर जेल में था, मुर्तजा खान की जमानत पर छोड़ा गया और उसे भी खान के साथ कांगड़ा किले में भेजा। यह मान सिंह राजपूताना से था जो अम्बेर या जयपुर का शासक था। सूरजमल ने 1613 में गद्दी संभाली थी, उसे भी खान के साथ भेजा गया।

मुआसिर-उल-उमरा (खंड-2, पृष्ठ 176-177) में उल्लेख है कि जब कांगड़ा किले को पूरी तरह घेर लिया गया और यह लगा कि किले के सैनिक अब आत्मसमर्पण करने ही वाले हैं, सूरजमल ने गतिरोध पैदा करने आरंभ कर दिए। क्योंकि सूरजमल मुगलों के प्रति वफादार नहीं था अतः उसने विद्रोह करना आरंभ कर दिया। अतः मुर्तजा खान ने जहांगीर को संदेश भेजा और सूरजमल को वापस बुला लिया गया। किले का घेराव एक बार असफल हो गया किंतु सूरजमल ने मार्च 1616 में शहजादा खुर्रम से भेंट कर अपने को निर्दोष साबित कर लिया। सूरजमल को शहजादे के साथ (अक्तूबर 1616) दक्षिण भेजा गया।

इसी वर्ष (सन् 1616) मुर्तजा खान की मृत्यु हो गई और किले पर कब्जे का अभियान अधूरा रह गया। राजा मान सिंह की भी संग्राम के साथ लड़ाई में मृत्यु हो गई। इस तरह कांगड़ा किले पर कब्जे की बात कुछ समय के लिए टल गई।

कांगड़ा किले पर अधिकार के पहले प्रयास में असफल रहने के बावजूद जहांगीर के मन से बात निकली न थी। सन् 1617 की पतझड़ में जहांगीर को फिर सूरजमल की ओर से कांगड़ा किले को जीतने के लिए पत्र मिला। सूरजमल शहजादे खुर्रम के साथ दक्षिण से लौट आया था और पहाड़ों में वापस जाना चाहता था। यह पत्र जहांगीर को लिखा था जिसमें एक वर्ष के अंदर कांगड़ा किले को जीतने की बात लिखी थी। जहांगीर ने यह मामला शहजादे खुर्रम को सौंपा कि क्या किया जाए। शहजादे से सकारात्मक रिपोर्ट आने पर इस अभियान को मंजूरी दे दी गई। शहजादे ने सूरजमल तथा अपने बख्शी शाह कुली खान मुहम्मद तकी को इस कार्य के लिए चुना। अभियान पर जाने से पहले सूरजमल को खिलअत बख्शी गई, हाथी और खपवा (कृपाण) बख्शा गया। मुहम्मद तकी को भी खिलअत बख्शी गई। इन्हें 17 मिहर हि. 1026 (सितंबर 1617) को कांगड़ा के लिए रुखसत किया गया।

तुजक-ए-जहांगीरी में उल्लेख है :

'13 मिहर के दिन राजा सूरजमल तथा बाबा खुर्रम के सेवक बख्शी, तकी मेरे पास आए। उसने (सूरजमल) सारी जरूरतें मेरे सामने रखी। उसने कार्य का प्रस्ताव रखा जो अनुमोदित किया गया और मेरे बेटे की खुशामद पर उन्हें सम्मानित किया

गया।'

सूरजमल इस कार्य के प्रति वफादार नहीं था। जब वह पहाड़ों में पहुंचा तो उसने मुहम्मद तकी के साथ झगड़ा कर लिया और शाहजहां को शिकायत भेजी कि बख्शी सक्षम नहीं है। अतः मुहम्मद तकी को वापस बुला लिया गया।

सूरजमल पहाड़ों में वापस आना चाहता था। उसने तकी की वापसी पर शाही फौजों में अधिकांश को अपनी जागीरों में वापस भेज दिया। इस तरह मुगल सेना को कमजोर कर वह विद्रोही हो गया और लूटपाट आरंभ कर दी।

विद्रोह की खबर सुन जहांगीर ने, जो उस समय अहमदाबाद में था, सुंदरदास राय रायां के नेतृत्व में सेना भेजी। सुंदरदास की सेना के आगे सूरजमल की हार हुई। वह माउकोट की शरण में गया जहां से नूरपुर और अंत में चंबा चला गया। सन् 1619 में उसकी मृत्यु हो गई।

सूरजमल द्वारा विद्रोह के समय उसके छोटे भाई जगत सिंह को बंगाल से शीघ्रता से बुलाया गया और सूरजमल की मृत्यु के बाद उसे नूरपुर का राजा बनाकर मुगल सेना और राय रायां की सहायता के लिए भेजा गया।

कांगड़ा किले पर 5 सितंबर, 1619 को घेराव किया गया। इस समय राजा हरि चंद मात्र बारह वर्ष का था। सेना ने इसी राजा के नेतृत्व में बहादुरी से मुकाबला किया। किले में खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। सैनिक पेड़ों की छाल खाने लगे। अंततः सेना ने 16 नवंबर, 1620 को आत्मसमर्पण कर दिया। तुजक जहांगीरी में यह तिथि 6 नवंबर, 1621 है जबकि बादशाहनामा में यह तिथि 11 नवंबर, 1620 है। वाक्यात-ए-जहांगीरी में 20 नवंबर, 1620 है।

किले में नवाब अली खान के नेतृत्व में मुगल सेना रखी गई जो सन् 1783 तक रही। इस प्रकार लगभग तीन शताब्दियों बाद प्रसिद्ध कांगड़ा किला मुगलों के कब्जे में आया जब कांगड़ा का राजा मात्र बारह वर्ष का था।

कांगड़ा को जीतने का उल्लेख जहांगीर के संस्मरणों में, मुआसिर-उल-उमरा आदि सभी में दिया गया है।

किले पर अधिकार के बाद कांगड़ा क्षेत्र को मुगल साम्राज्य में मिला लिया। राजगीर का तालुका हरिचंद के लिए छोड़ा गया।

बादशाहनामा (पृष्ठ 285) में उल्लेख है : 'जब यह शाही फरमान 16 नवंबर, 1620 को पहुंचा, त्रिलोक चंद का पुत्र हरि चंद, जो बारह वर्ष का था, ने किला राय रायां को सौंप दिया। वह (हरि चंद) एक, सिकंदर तथा अपने चाचा व मुख्य अधिकारी, बचे हुए सैनिकों सहित राय रायां के समक्ष उपस्थित हुआ। उसने (राय रायां) किले को विश्वासपात्र आदमियों के सुपुर्द किया और हरि चंद तथा अन्यों की निगरानी

में छोड़ दरबार की ओर कूच कर दिया। 25 दिसंबर, 1620 के दिन जब जहांगीर कश्मीर से लाहौर पहुंचा, राय रायां का दरबारियों के बीच स्वागत किया गया। क्योंकि वह ऐसे अभियान में विजेता रहा था, शहजादा खुर्रम की सिफारिश पर जहांगीर द्वारा राजा बनाया गया।'

किले की घेराबंदी एक वर्ष दो मास तथा कुछ दिन तक रही।

वाक्यात-ए-जहांगीरी में लिखा है : 'इस दिन (5 मुहर्रम हि. 1029-20 नवंबर 1620) कांगड़ा किले की विजय की प्रसन्नता देने वाली खबर ने हमारे मनों को प्रफुल्लित कर दिया। इस महान् वरदान तथा महत्त्वपूर्ण जीत के लिए, जो दाता के वरदानों में एक नया हित था, मैं दयावान अल्लाह के सिंहासन में अपना सिर झुकाता हूं। लाहौर के उत्तर में पहाड़ियों के बीच स्थित एक पुराना किला है जो अपनी मजबूती तथा जीतने में कठिनाई के लिए प्रसिद्ध है। इस किले का निर्माता कौन है, यह अल्लाह ही जानता है।' इसके आगे कांगड़ा किले को अधिकार में लेने का बयान इसमें किया गया है। बादशाह के नोट से यह भी लगता है कि इस अभियान का नेतृत्व शहजादा खुर्रम ने किया था, यद्यपि वह कांगड़ा न आकर संभवतः पठानकोट ही रहा।

कांगड़ा किला को जीतने का वर्णन शाह फतेह-इ-कांगड़ा में भी किया गया है। राय-रायां जिसे विक्रमाजीत भी कहते थे, अपने बादशाह के प्रति वफादार था। अतः उसने किले को जीतने के लिए पूरी ताकत लगा दी। वह अपनी जाति के खिलाफ लड़ा अतः उसे राजा विक्रमाजीत की उपाधि दी गई और उसे 5000 घुड़सवारों के कमांडर का खिताब बख्शा गया। उसने किले पर हमले किए। राजा के सिपाही बहादुरी से लड़े किंतु अंत में किले की दीवार में छेद हो गया जिससे एक रास्ता बन गया। बाणों की वर्षा हुई और पूरा वातावरण बारूद के धुएं से भर गया।

इस प्रकार शाह-फतेह-इ-कांगड़ा में विशद वर्णन दिया गया है।

हरि चंद से पैतृक राज्य तथा किला छुड़ा लिया गया किंतु उसने मुगलों का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। युवा होने पर उसने गुरिल्ला युद्ध पद्धति अपनाई। राजा हरि चंद के किस्से कांगड़ा के जनमानस में रमे हुए हैं और गर्व से सुनाए जाते हैं।

हरि चंद का कांगड़ा किला फतह करने के बाद क्या किया गया, यह अज्ञात है। कहा जाता है, गुरिल्ला युद्ध में लड़ते हुए उसकी मृत्यु हो गई। यह भी मान्यता है कि जहांगीर ने उसे अपने जीते-जी मरवा दिया अतः हरि चंद की मृत्यु सन् 1626 से पूर्व हो गई होगी।

लोक मान्यता है कि हरि चंद को जहांगीर ने दिल्ली में कैद कर लिया था। वहां और भी पहाड़ी राजा कैद थे। सभी राजा मजे से मांस-भात खाते थे। हरि चंद

को अपने पहाड़ों तथा साग की याद आती है–

'सब सब राजे, मास भत्त खांदे, हरिचंद रौंदा सागे जो।
छड़ी दे ओ ज्वाला राजे जो।'

'सभी राजा लोग मांस-भात खाते हैं। हरि चंद साग के लिए तरसता है। हे ज्वाला माई, राज्य छुड़ा दे।' मान्यता है कि ज्वालामाई ने सुन ली और रात को जब बादशाह सोया तो देवी ने उसे बिस्तर से गिरा दिया। जब-जब बादशाह सोता उसे नीचे गिरा दिया जाता। अंत में देवी ने कहा कि पहाड़ी राजा को छोड़ दो। सुबह ही बादशाह ने राजा को दरबार में बुलाया और अपना आदेश सुनाया। तब राजा ने कहा कि यहां जितने पहाड़ी पंछी कैद हैं, यदि आप सबको छोड़ेंगे, तभी मैं भी जाऊंगा।

जहांगीर का कांगड़ा आगमन

कांगड़ा सेटलमेंट रिपोर्ट में उल्लेख है कि जहांगीर स्वयं जनवरी 1622 में कांगड़ा आया। वह सीबा और गुलेर होता हुआ आया और नूरपुर तथा पठानकोट से वापस गया।

लोक मान्यता है कि जहांगीर को इस घाटी की सुंदरता ने मोह लिया और उसने यहां महल बनाने के आदेश दिए। यह मान्यता मौजा गरगेढी तथा नूरपुर के बारे में है।

वाक्यात-ए-जहांगीरी में लिखा है–'आगरा की भीषण गर्मी मेरे लिए माफिक नहीं थी अतः 12 अबान, अपने शासनकाल के सोलहवें वर्ष में उत्तर की ओर पहाड़ी प्रदेश की ओर गया, इस मंशा से कि यदि जलवायु माकूल हो तो कहीं गंगा के किनारे एक शहर बसाऊं जहां मैं गर्म मौसम से बच सकूं। यदि वहां मैं उचित जगह न ढूंढ़ पाऊं तो आगे कश्मीर की ओर निकल जाऊं...सातवें दिन मैं हरिद्वार पहुंचा गंगा किनारे और वहां रुका किंतु मौसम सुहाना नहीं था और कोई उचित स्थान आवास के लिए नहीं मिला तो मैंने आगे जम्मू तथा कांगड़ा की ओर जाने का निश्चय किया।'

जहांगीर ने सीबा पहुंचने पर बड़ी सेना यहीं छोड़ दी और कुछ सेवकों सहित किले की ओर बढ़ा। नूरजहां के पिता को, जो बीमार था, यहीं छोड़ा गया जहां उसकी मृत्यु हो गई।

वाक्यात-ए-जहांगीरी में आगे लिखा है–'इसके बाद मैं कांगड़ा की ओर चला और चार दिनों के सफर के बाद बाणगंगा नदी के किनारे कैंप लगाया। महीने के चौबीसवें दिन मैं किला देखने के लिए गया और काजी, मुख्य न्यायाधीश तथा इस्लाम के अन्य विद्वानों को अपने साथ चलने के आदेश दिए ताकि मजहब द्वारा

वांछित रस्में पूरी की जा सकें। आधा कोस चलने के बाद हम किले की ओर चढ़े और फिर अल्लाह की दुआ से प्रार्थनाएं की गईं, खुतबा पढ़ा गया, एक गाय हलाल की गई और वह सब किया गया जो वहां पहले कभी नहीं किया गया, जब से यह किला बना था। यह सब मेरी उपस्थिति में किया गया और मैं इस महान् विजय के लिए अल्लाह के आगे झुका और धन्यवाद किया जिसे कोई पहला बादशाह नहीं कर पाया था। मैंने किले में एक बड़ी मस्जिद बनाने का आदेश दिया।'

जहांगीर के आदेश से किले में एक बड़ा गेट 'जहांगीरी दरवाजा' नाम से बनवाया गया। इस गेट पर एक संगमरमर शिला में विजय की तारीख लिखी थी। जब राजा संसार चंद ने किले पर कब्जा किया (1786) तो यह पत्थर हटा दिया गया और मुख्य द्वार के पास स्टोर में रखा। सन् 1837 में जब नव निहाल सिंह धर्मयात्रा पर आया तो इस पत्थर को लाहौर ले गया।

नवंबर, 1620 से कांगड़ा किला सन् 1783 तक मुगलों के अधीन रहा। पहला किलेदार नवाब अलीखान बना। इसके बाद इसका बेटा संभवतः हुरमत खान था। शाहजहां के समय किले में नवाब असद उल्लाह खान और कोच कुली खान रहे। कोच कुली खान सत्रह वर्ष तक मृत्युपर्यंत यहीं रहा। उसे बाणगंगा की सहायक नदी जो किले के नीचे बहती है, के किनारे दफनाया गया।

कांगड़ा का महाराणा प्रताप चंद्रभान चंद (1627)

कांगड़ा किले के समर्पण के समय हरि चंद मात्र बारह वर्ष का था। सन् 1627 में चंद्रभान चंद के आने से पता चलता है कि मात्र उन्नीस वर्ष की आयु में ही हरि चंद की लड़ाई में मौत हो गई या जहांगीर द्वारा मरवा दिया गया। यदि जहांगीर द्वारा मरवाया गया हो तो यह घटना 1626 की हो सकती है यानी सत्रह या अट्ठारह वर्ष की आयु में ही हरि चंद की मृत्यु हुई होगी। संभवतः हरि चंद के समय ही या जब हरि चंद जहांगीर की कैद में था, मियां चंद्रभान ने कटोच सेना एकत्रित कर गुरिल्ला युद्ध जारी रखा। चंद्रभान चंद, धर्म चंद के छोटे भाई कल्याण चंद से था अतः हरि चंद के बाद वही उत्तराधिकारी भी था, क्योंकि हरि चंद निःसंतान मर गया।

चंद्रभान चंद ने मुगलों के विरुद्ध छापामार लड़ाई लड़ी जिससे नगरकोट में स्थित मुगल सेना परेशान हो गई। चंद्रभान की बहादुरी के किस्से जनमानस में गर्व से सुनाए जाते हैं। मुगलों के सताने पर चंद्रभान दर-दर भटकता रहा। अंत में पुरोहित के घर छिपा। वहां से हर घर में पांच-सात लोग बुलाकर छिपकर बैठकें होने लगीं। उसने कटोचों को इकट्ठा किया। जब कुछ सैनिक इकट्ठे हो गए तो सब गांवों से बकरियां उधार लीं। बकरियों के मुंह बांध उनके दोनों सींगों में मशालें

लगाकर रात को पहाड़ी से उतारना शुरू किया। धौंसे-नगारे में चोट डाल दी। युद्ध-सूचक ध्वनि सुनते ही बौखलाए मुगलों ने ऊपर देखा—हजारों की तादाद में मशालची उतर रहे हैं…जिस लश्कर में मशालची ही इतने हों वह सेना कितनी बड़ी होगी! मुगल घबरा गए। हिंदुओं के हाथों मरने की अपेक्षा वे आपस में ही कट मरे। किले पर चंद्रभान का कब्जा हो गया और कांगड़े के राजा के दिन फिर गए। लोकमानस में यह किला 'कांगड़ा किला' ही रहा होगा। हचिसन-वोगल ने एक दूसरी कथा दी है। जब चंद्रभान ने मुगलों का क्षेत्र लूटना शुरू किया तो उसे पकड़ने के लिए सेना भेजी गई किंतु चंद्रभान हाथ नहीं आया। अंत में दिल्ली से सेना भेजी गई। चंद्रभान धौलाधार में 9000 फुट की ऊंचाइयों पर भाग गया और मुगलों के हाथ नहीं आया। यह स्थान अब भी चंद्रभान का टीला कहा जाता है।

तारीख़-ए-पंजाब में लोक मान्यता से चंद्रभान का एक दूसरा पक्ष उजागर किया है। इसके अनुसार चंद्रभान कांगड़ा किले पर कब्जे के समय किले में मौजूद था। हचिसन-वोगल ने उल्लेख किया है कि किले में आत्मसमर्पण के समय हरिचंद का एक चाचा मौजूद था।

तारीख़-ए-पंजाब में जिक्र है कि किले से भागने के बाद चंद्रभान एक लुटेरे के रूप में रहा, ठीक वैसे ही जैसे जम्मू में मियां दीदो था। चंद्रभान गुरिल्ला युद्ध में संलग्न रहा। अंत में चंद्रभान को पकड़ने की योजना बनाई गई कि बादशाह उसे जागीर देने का प्रस्ताव करे यदि वह मुगलों की स्वाधीनता स्वीकारे। चंद्रभान ने यह प्रस्ताव मान लिया और उसे माउकोट किले में सन् 1641 में पकड़कर मार दिया।

यह भी कहा जाता है कि जब चंद्रभान को पकड़ने के लिए दिल्ली से सेना भेजी गई तो वह पकड़ा गया और बंदी बनाकर दिल्ली ले जाया गया और दिल्ली में ही चंद्रभान की मृत्यु हो गई या मारा गया। मियां चंद्रभान को राजा की उपाधि नहीं दी गई। चंद्रभान के बंदी होने तक कांगड़ा की गद्‌दी सूनी रही।

हरि चंद और चंद्रभान ने कांगड़ा किले तथा कांगड़े की स्वतंत्रता का एक सपना देखा जो पूरा नहीं हुआ। पराधीन होते हुए भी उन्होंने पराधीनता स्वीकार नहीं की, बेशक अपने प्राण खो दिए। कटोच अपने स्वाभिमान और युद्धप्रियता के लिए प्रसिद्ध रहे। उन्होंने अंत समय तक अपना गौरव बनाए रखा। महामाया मंदिर कांगड़ा को बचाने के लिए कटोच योद्धाओं, यहां तक कि देवी के पुजारियों ने भी प्राण देने के लिए लड़ाई लड़ी। किले में घेराव के समय घास उबालकर खाई, वृक्षों की छाल से गुजारा किया। कटोच योद्धाओं ने बारह वर्ष के राजा की शान के लिए युद्ध किया।

1620 के बाद 1660 तक कांगड़ा का इतिहास लोक मान्यताओं पर आधारित

है। हरि चंद तथा चंद्रभान लोक नायक बने। हरि चंद ने राजगीर की जागीर स्वीकार की हो, यह भी संदेहास्पद है। इतने समय राजा कहां रहा, कहां महल बनाए, यह भी अज्ञात है। कहा जाता है चंद्रभान ने नरवाणा में किला बनाया। नरवाणा धर्मशाला के समीप चामुंडा के पास है। यहीं चामुंडा-डाढ के पास चंद्रभान टीला है जहां वह मुगल सेना से भाग पहाड़ पर चढ़ा था। चंद्रभान की मृत्यु या वध के बाद उसका बेटा विजय राम चंद उत्तराधिकारी बना।

विजय राम चंद (1660)

तारीख़-ए-पंजाब के अनुसार विजय राम को बादशाह ने बुलाया। वह बादशाह के पास पेश नहीं हुआ अतः उसके भाई उदय राम को राजतिलक कर दिया गया तथा राजगीर की जागीर के साथ पांच दूसरे ताल्लुके—नादौन, पलम, महल सराय, जयसुख और मल्हार दिए गए।

विजय राम चंद ने बीजापुर नगर बसाया और राजधानी बनाई। यह स्थान राजाओं के रहने का स्थान बना रहा। अभी भी यहां महलों के खंडहर विद्यमान हैं। विजय राम चंद का कोई उत्तराधिकारी नहीं था अतः इसकी मृत्यु के बाद उदय राम चंद राजा बना। विजय राम चंद की मृत्यु 1687 में हुई।

उदय राम चंद (1687)

उदय राम चंद राजगीर (व्यास के दाएं किनारे आलमपुर, लंबागांव, जयसिंहपुर, बीजापुर) का शासक बना रहा। अब गुरिल्ला युद्ध समाप्त हो गया था क्योंकि राजाओं को यह ज्ञात हो गया कि अब मुगलों से टक्कर लेना फिजूल है। उदय राम चंद की मृत्यु सन् 1690 में हो गई और उसका बेटा भीम चंद गद्दी पर बैठा।

भीम चंद (1690)

औरंगजेब के समय कांगड़ा क़िला सैयद हुसैन खान, हसन अब्दुला खान पठान तथा नवाब सैयद खलील उल्लाह खान के अधीन था।

कनिंघम ने कहा है—उनका शासन संभवतः उसी असहनशीलता से भरपूर था जैसा कि औरंगजेब के गवर्नरों का मुलतान, मथुरा, ग्वालियर तथा बनारस आदि में था जहां हिंदू मंदिर, मस्जिद बनाने के लिए गिराए जा रहे थे।

भीम चंद के समय जम्मू ने हमला किया जिसे गुरु गोबिंद सिंह की सहायता से पीछे हटाया गया। जम्मू के राजा के साथ मुगल सरदार मियां खान भी था। इस युद्ध में भीम चंद विजयी रहा।

भीम चंद के औरंगजेब से संबंध भी अच्छे रहे। भीम चंद को 'दीवान' का खिताब

दिया गया। उसने बीजापुर में मंदिर बनवाया। उसके छोटे भाई किरपाल चंद ने भवारना में एक कुल्ह का निर्माण किया जो धौलाधार से आती है। इसे 'बड्डी कुल्ह' कहा जाता है और आज भी भवारना तथा इसके नीचे चंगर इलाके को सींचती है।

कहा जाता है कि किरपाल चंद के संतान नहीं थी। वह एक साधु के पास गया जिसने उसे अमर पुत्र देने की बात कही। साधु के कहने पर उसने कुल्ह का निर्माण किया जिसे साधु ने 'अमर पुत्र' कहा। किरपाल चंद इससे बहुत प्रसिद्ध हुआ।

भीम चंद की मृत्यु 1697 में हुई।

आलम चंद (1697)

आलम चंद द्वारा आलमपुर की स्थापना की गई। संसार चंद द्वारा बाद में आलमपुर को और सुंदर बनाया गया और वहां बाग लगाया गया। आलम ने मात्र तीन वर्ष राज किया। सन् 1700 में उसकी मृत्यु हो गई।

हमीर चंद (1700)

हमीर चंद के समय की किसी उल्लेखनीय घटना का पता नहीं चलता। यद्यपि उसने सैंतालीस वर्ष तक शासन किया। कांगड़ा किला इस समय भी मुगलों के अधीन था अतः कटोच राजा चुपचाप अपना समय निकाल रहे थे। हमीर चंद ने हमीरपुर के निकट एक छोटा किला बनाया। बाद में इस स्थान तथा शहर का नाम हमीर चंद के नाम पर हमीरपुर पड़ा। हमीर चंद के समय में (1740) नवाब सैफ अली खान कांगड़ा का गवर्नर बनाया गया।

अभय चंद (1747)

हमीर चंद की मृत्यु 1747 में हुई अतः अभय चंद तब तक अधेड़ हो चुका था। उसका शासन बहुत कम समय रहा। इसने आलमपुर में ठाकुर द्वारा बनवाया और अभय मानपुर या टीरा में सन् 1748 में किला बनवाया जिसे 1849 में गिरा दिया गया। राजा निःसंतान मरा।

गंभीर चंद (1750)

अभय चंद की उत्तराधिकारी के बिना मृत्यु के कारण गद्दी चाचा गंभीर चंद को सौंपी गई जो हमीर चंद का छोटा भाई था। गंभीर चंद की 1751 में ही मृत्यु हो गई। गंभीर चंद के ग्यारह लड़के थे जिन्हें दरबारी तथा लोग पसंद नहीं करते थे अतः उन्हें राजगद्दी नहीं दी गई। हमीर चंद और गंभीर चंद का छोटा भाई शंकर चंद था। शंकर चंद के पुत्र घमंड चंद को राजकाज सौंपा गया।

घमंड चंद (1751)

घमंड चंद ने जब गद्दी संभाली, मुगल साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया। उत्तर से अहमदशाह दुर्रानी तथा दक्षिण से मराठा लोगों ने शक्ति संभाली। सन् 1752 में अहमदशाह ने तीसरी बार पंजाब पर आक्रमण कर मुगल बादशाह से पंजाब तथा पहाड़ी राज्य छीन लिए और अपने सूबेदार नियुक्त किए। जब वह भारत से वापस लौटा तो सिख उसके सूबेदारों के विरुद्ध हो गए। इस तरह एक अराजकता का वातावरण बन गया। अतः कटोच शासक के पास भी स्वाधीनता हासिल करने का अवसर आया।

उधर गुरु गोबिंद सिंह ने सन् 1699 में आनंदपुर साहिबं (बिलासपुर) में अस्सी हजार जनसमूह के सामने सिख पंथ की स्थापना की जिसके फलस्वरूप सिखों ने मुगलों तथा बाहरी आक्रमणकारियों की शक्ति को क्षीण किया।

इस अराजकता का लाभ उठाकर घमंड चंद ने अपने राज्य की सीमाओं को वापस लिया जो मुगलों ने छीन ली थीं। घमंड चंद ने अपनी सेना को सुदृढ़ किया। इसमें राजपूत, अफगान, रोहिले भर्ती किए। कांगड़ा किले को छोड़ अन्य क्षेत्र घमंड चंद ने अपने अधिकार में ले लिए। कांगड़ा किले में नवाब सैफ अली खान ही किलेदार था जो अपनी वफादारी के कारण दिल्ली से संपर्क करता हुआ वहां डटा रहा। उसे दोआब के गवर्नर अदीना बेगखान के आगे सन् 1758 में झुकना पड़ा।

घमंड चंद ने इस बीच गुलेर, जसवां, सीबा और दातारपुर को हराकर अपने अधीन कर लिया। कुटलैहड़ का आधा भाग भी अपने राज्य में मिला लिया। अहमदशाह अब्दाली जब सन् 1757 में चौथी बार पंजाब आया तो उसने घमंड चंद की वीरता और प्रसिद्धि के चर्चे सुने अतः उसने सन् 1759 में घमंड चंद को जालंधर, दोआब और सतलुज तथा रावी के बीच पहाड़ी क्षेत्र का प्रतिनिधि बना दिया। घमंड चंद ने चंबा से पलम का इलाका भी छीन लिया। पठियार का किला भी मजबूत किया गया।

घमंड चंद ने 4000 मुसलमानों, जिनमें अफगान तथा रोहिला थे, की सेना बनाई और कांगड़ा किले पर हमला किया किंतु इसे जीतने में असफल रहा।

अहमदशाह अब्दाली ने सन् 1769 में अंतिम हमला किया। जब वह वापस गया तो सिखों ने पुनः पंजाब के विभिन्न स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया। जस्सा सिंह रामगढ़िया ने छापे मारकर अपनी शक्ति बढ़ाई। उसने कांगड़ा, नूरपुर, चंबा, बसौली तथा मंडी आदि से कर लेना आरंभ कर दिया। जस्सा सिंह का जयसिंह कन्हैया से बटाला से मिले कर के बंटवारे पर झगड़ा हो गया। जस्सा सिंह हारकर हिसार चला गया अतः पहाड़ी शासक पुनः स्वतंत्र हो गए।

घमंड चंद के समय कांगड़ा ने अपनी खोई हुई गरिमा पुनः प्राप्त की। लगभग सारी पुरानी सीमाएं पुनः प्राप्त कीं। सुजानपुर टिहरा बसाया गया जहां उत्कृष्ट भवन निर्माण हुए। सन् 1774 में घमंड चंद की मृत्यु हो गई।

तेग चंद (1774)

घमंड चंद के बाद उसका पुत्र तेग चंद शासक बना। उसने भी एक बड़ी सेना रखी और पिता की नीतियां जारी रखीं। इसने केवल एक वर्ष ही राज किया और 1775 में मृत्यु हो गई।

संसार चंद द्वितीय (1775)

संसार चंद कांगड़ा का उल्लेखनीय शासक हुआ। अपनी वीरता, सैन्य कौशल तथा सूझबूझ के बल पर इस शासक ने नगरकोट के पुराने वैभव व गरिमा को पुनः स्थापित किया। सन् 1620 से मुगलों के अधीन पहाड़ों के गौरव कांगड़ा किला को छुड़ाया। संसार चंद्र की परिकल्पना अपनी सीमाएं जालंधर से भी आगे लाहौर तक ले जाने की थी किंतु रणजीत सिंह की बढ़ती हुई शक्ति तथा पहाड़ी राजाओं की आपसी फूट के कारण यह संभव नहीं हो पाया तथापि संसार चंद एक प्रतापी सूर्य की तरह पहाड़ों के आकाश में चमका और ढलते हुए गोरखों तथा सिखों के बादलों से घिर गया।

संसार चंद का जन्म जनवरी 1765 में बीजापुर में हुआ। सन् 1775 में जब तेग चंद की एक वर्ष के शासन काल के बाद मृत्यु हुई तो संसार चंद केवल दस वर्ष का था। सन् 1775 में मात्र दस वर्ष की आयु में वह गद्दी पर बैठा।

यह समय पहाड़ तथा मैदानों में अराजकता का समय था। पंजाब में दुर्रानी का कब्जा हुआ जो पूरी तरह स्थापित नहीं हो पाया। लाहौर में यद्यपि अफगान वायसराय था किंतु मुगल सामंत भी स्वाधीन थे। उधर सिखों की शक्ति बढ़ रही थी।

कांगड़ा का किला सैफ अली खान के पास था जो मुगलों का अंतिम किलेदार साबित हुआ।

सिख सेना में जस्सा सिंह रामगढ़िया पहला व्यक्ति था जिसने कांगड़ा, चंबा, नूरपुर आदि को अपने अधीन किया। सन् 1775 में इसे जय सिंह कन्हैया ने हरा दिया। जय सिंह कन्हैया सिखों की बारह मिसलों में से एक का स्वामी था।

संसार चंद का सबसे पहला ध्येय पूर्वजों के गौरव कांगड़ा किला को वापस लेना था। इसे जीतने के लिए एक प्रयास किया भी गया किंतु सफलता हाथ नहीं लगी। संसार चंद ने फिर जय सिंह कन्हैया से सहायता ली और सन् 1781-82 में जब संसार चंद सोलह-सत्रह वर्ष का रहा होगा, कांगड़ा किले में घेराबंदी की। बारनेस ने

कांगड़ा सेटलमेंट रिपोर्ट में इसकी पुष्टि की है। किलेदार सैफ अली खां ने बिलासपुर से सहायता मांगी। उस समय बिलासपुर का राजा छोटी आयु का था अतः रानी ने सैफ अली खां की सहायता के लिए 300 घुड़सवार और 8000 पैदल सिपाही भेजे।

संसार चंद तथा जय सिंह कन्हैया की सेनाओं ने एक वर्ष तक घेरा डाले रखा। नवाब मृत्युशैया पर था अतः उसके आदमियों ने संसार चंद से संपर्क रखा हुआ था। इसी तरह जय सिंह कन्हैया के आदमी भी संपर्क बनाए हुए थे। सैफ अली खां की अंततः मृत्यु हो गई और जब उसे इमामबाड़े में दफनाने के लिए ले जाया गया, इसकी खबर संसार चंद से पहले जय सिंह को मिल गई अतः उसके सिपाही संसार चंद को चकमा देकर किले के भीतर पहले घुस गए। यह भी कहा जाता है कि जय सिंह के सिपाही किले के नजदीक थे अतः वे किले में पहले घुस गए। एक मत यह भी है कि संसार चंद ने कम सिपाही भेजे थे, सिखों के सिपाही अधिक थे। अतः कांगड़ा किले पर जय सिंह कन्हैया का कब्जा हो गया। संसार चंद मन मसोसकर रह गया और दूसरे अवसर की तलाश करने लगा।

फोस्टर, जो सन् 1783 में बिलासपुर से नूरपुर होता हुआ जम्मू गया, ने इस घेराबंदी का उल्लेख किया है। फोस्टर ने लिखा है—'अपनी सेवाओं के बदले उसने (अकबर) अपने एक अफसर को तोहफे के तौर पर जीता हुआ किला तथा आसपास का पर्याप्त क्षेत्र दिया। इस नवाब का एक उत्तराधिकारी, जो मुसलमानों के शियाह संप्रदाय से है, इस समय तक इसे संभाले हुए है, जब कांगड़ा के राजा ने इसका घेराव किया।...कांगड़ा में कुछ घुड़सवार थे, अधिकांश सेना राजा के नेतृत्व में कांगड़ा किले के घेराव में संलग्न थी। बिलासपुर की सेना का कैम्प कुमारहट्टी (कहलूर) तथा ललेड़ी (हमीरपुर) के बीच था।'

फोस्टर ने अकबर के समय कांगड़ा किले को मुगलों के अधीन बताया है, जो गलत है। विगने का यह कहना भी गलत है कि कांगड़ा मूलतः एक जागीर थी जिसे मुगल बादशाहों ने विभिन्न नवाबों को बांटा।

मुहम्मद लतीफ (पंजाब का इतिहास, पृ. 309-310) ने लिखा है कि जय सिंह कन्हैया ने सैफ अली खान के पुत्र जीवन खान को रिश्वत दे दी जिससे उसने जयसिंह को किले का कब्जा दे दिया।

अतः किला जय सिंह कन्हैया के कब्जे में आ गया और चार वर्ष तक उसके कब्जे में रहा। यद्यपि संसार चंद ने कुछ प्रयास भी किए किंतु असफल रहा। एक पांडुलिपि में उल्लेख है कि जय सिंह के बेटे गुरबख्श सिंह ने सरदार बघेल सिंह के साथ जब कांगड़ा किला देखा तो मशविरा किया कि कांगड़ा किला तो अपनी मिसाल है, क्यों न इस पर कब्जा किया जाए अतः वे संसार चंद को किला देने से

मुकर गए।

सन् 1783 में जय सिंह कन्हैया के विरुद्ध जस्सा सिंह रामगढ़िया तथा महा सिंह सुकेरचकिया का विरोध हो गया। महा सिंह और जय सिंह में जम्मू से लूटे माल के बंटवारे पर अमृतसर में झगड़ा हो गया। संसार चंद ने इस स्थिति का लाभ उठाया। महा सिंह तथा जय सिंह की लड़ाई में जय सिंह का पुत्र गुरबख्श सिंह बटाला में मारा गया। इससे जय सिंह हताश हो गया। यह भी कहा जाता है कि संसार चंद ने महा सिंह से सहायता मांगी और कांगड़ा किले को जीतने में सफल होने पर दो लाख रुपए देने को कहा। महा सिंह ने एक सेना दीवान दया राम के नेतृत्व में भेजी। छह महीने तक जय सिंह किले के भीतर मुकाबला करता रहा। अंत में खाद्य सामग्री समाप्त हो गई तो उसे समर्पण करना पड़ा। इसके साथ ही उसने वे पहाड़ी राज्य भी छोड़ दिए जिनसे वह कर लेता था। संसार चंद ने संधि के अनुसार बदले में हाजीपुर और मुकेरियां के मैदानी भाग उसे दे दिए। किले पर कब्जा होने पर संसार चंद ने महा सिंह को भी दो लाख रुपए देने में आनाकानी की। महा सिंह इस समय चुप रहा।

जय सिंह कन्हैया और संसार चंद की संधि सन् 1786 में हुई। यद्यपि कनिंघम ने कहा है कि सन् 1787 में जय सिंह ने आत्मसमर्पण किया और किला संसार चंद के हाथ आया। कनिंघम ने लिखा है कि सन् 1783 में जय सिंह ज्ञानी ने किले की घेराबंदी की। इस बीच किलेदार सैफुला की मृत्यु हो गई। इसके पांच महीने बाद उसके पुत्र जुल्फिकार खान ने किले का समर्पण किया। संसार चंद ने इस घेराबंदी को प्रेरित किया था किंतु जब किला सिख नेता ने अपने पास रख लिया तो निराश हुआ। चार वर्ष बाद उसने एक दूसरे सिख नेता से मदद ली और 1787 में जय सिंह के आत्मसमर्पण के बाद किला वापस लिया।

इस प्रकार संसार चंद ने अपने पूर्वजों की गरिमा को प्राप्त किया और पूरे पहाड़ी क्षेत्र का राजा बन गया। उसे महाराजा कहा जाने लगा। संसार चंद ने मंडी, सुकेत, बिलासपुर, नालागढ़ को जीत लिया। राजा की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई।

सन् 1792 में संसार चंद ने मंडी पर आक्रमण कर ईश्वरी सेन तथा उसके भाई जालम सिंह को बंदी बनाकर बारह वर्ष तक नादौन में कैद रखा। मंडी के अनंतपुर आदि के क्षेत्र कांगड़ा में मिलाए। चंबा के राजा से रिहलू का इलाका वापस मांगा गया, राज सिंह ने देने से मना किया। अतः संसार चंद ने आक्रमण कर दिया। लड़ाई में राज सिंह मारा गया। सन् 1795 में संसार चंद ने कहलूर पर आक्रमण किया। कहलूर की रानी नगर देवी ने तथा उसके पुत्र महान चंद ने सिरमौर से सहायता मांगी। सिरमौर का शासक धर्म प्रकाश हिंडूर के राजा राम सरन सिंह को साथ लिए

कहलूर आया। बिलासपुर, सिरमौर, हिंडूर की तीनों सेनाओं को संसार चंद ने हरा दिया। सिरमौर का राजा धर्म प्रकाश मारा गया। संसार चंद ने सतलुज के दाहिने किनारे अधिकार कर झांझरघाट में छातीपुर किला बनवाया।

सन् 1803-04 में संसार चंद दो बार होशियारपुर तथा बजवाड़ा पर आक्रमण किया किंतु सफल न हुआ।

स्वर्णयुग

कांगड़ा के इतिहास में महाराजा संसार चंद के काल को स्वर्णयुग कहा गया है। बारनेस ने कहा है–'उसने वह यश प्राप्त किया जो उसके किसी पूर्वज ने नहीं पाया था और इक्कीस वर्ष तक निरंकुश शासन किया जिससे किसी को उसके सामने सिर उठाने की हिम्मत नहीं हुई।'

महाराजा संसार चंद ने सुजानपुर टिहरा में राजमहल बनवाया। इस महल में एक दरबार भवन था। दरबार में बाईस दरवाजे थे। ग्यारह एक ओर तो ग्यारह दूसरी ओर। इन बाईस दरवाजों से बाईस पहाड़ी राजा महाराजा संसार चंद के दरबार में हाजिर होते थे। यह इस बात का प्रतीक था कि महाराजा की शक्ति का लोहा बाईस राजा मानते थे और उसके अधीन थे।

सुजानपुर टिहरा की बारादरी तथा महलों के भग्नावशेष आज भी उस युग के प्रतीक के रूप में खड़े हैं।

संसार चंद की ख्याति सब ओर फैल गई और सभी वर्गों के लोग अपने-अपने हितों के लिए दरबार में आने लगे। उसे दूसरा अकबर, रुस्तम और हातिम कहा जाने लगा। एक इतिहासकार ने लिखा हैं–

'बहुत वर्षों तक उसने अपने दिन प्रसन्नतापूर्वक बिताए। वह नौशेरवां की तरह व्यवहार में उदार था, प्रजा के प्रति दयावान था और मनुष्य के अच्छे गुणों की पहचान में दूसरा अकबर था। शिल्प और प्रतिभा के धनी लोग, पेशेवर सैनिक और दूसरे लोग कांगड़ा की ओर आए और उसकी कृपा व दान से लाभान्वित हो प्रसन्न हुए। जो प्रसन्नता चाहते हैं, जो दूसरों की दया पर जीते हैं, ऐसे लोग झुंड के झुंड वहां आए और उसकी उदारता से बहुत लाभ उठाया। अभिनेता और कथा-कहानी कहने वाले वहां इतनी संख्या में इकट्ठे हुए और उसके हाथों इतनी भेंट और कृपा पाई कि उसे उदारता में उस समय की हातिम और अपने समय का रुस्तम कहा जाने लगा।' (तारीख़-ए-पंजाब : गुलाम मोहिदीन)

बीस वर्ष तक संसार चंद ने पहाड़ों पर निष्कंटक राज किया। दरबार में उसे 'लाहौर प्राप्त' कहा जाता था। संसार चंद ने अपने पूर्वजों की राजधानी मुलतान पर विजय पाने का एक सपना देखा। राजा ने सन् 1803-04 में दो बार होशियारपुर

तथा बजवाड़ा की ओर से आक्रमण किया किंतु रणजीत सिंह की बढ़ती हुई शक्ति के कारण सफलता नहीं मिली। यदि यह समय रणजीत सिंह की शक्ति के उदय का काल नहीं होता तो संभवतः संसार चंद प्राचीन त्रिगर्त की राजधानी पाने में सफल हो जाता।

कला-वास्तुकला प्रेमी

संसार चंद कला तथा वास्तुकला प्रेमी था। उसके दरबार में कलाकार और कवि-कथाकारों का जमघट लगा रहता था। उस समय के एक कवि मोलाराम ने कांगड़ा किले के युद्ध का वर्णन किया।

संसार चंद को विश्वप्रसिद्ध हुई 'कांगड़ा कलम' का महान् संरक्षक माना जाता है। इस समय सुजानपुर टिहरा तथा नादौन शिल्पियों, कलाकारों का केंद्र बना रहा। इन्हें राजा की ओर से विशेष प्रोत्साहन मिला। संसार चंद को कला का सबसे बड़ा संरक्षक माना जाता है।

सन् 1786 से 1805 का समय कांगड़ा के इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है। कला, वास्तुकला की उन्नति तभी संभव है जब राज्य सुरक्षित हो और सर्वत्र शांति हो। ऐसा सुदृढ़ राज्य संसार चंद ने दिया। संसार चंद ने सुनार, लोहार, मिस्त्री, बुनकर सभी को सुजानपुर में स्थान दिया। जब राजा नादौन आता था तो सभी शिल्पी नादौन आ जाते थे। नादौन के बारे में तो यह कहावत थी–'आए नादौन तो जाए कौन'। कहा जाता है नादौन में दो सौ तवायफें थीं जिनके नाच-गाने में जो आकर्षित हो जाए, वह वापस नहीं जा सकता था।

एस.एस. रंधावा के अनुसार गुलेर से सन् 1784-86 के मध्य कलाकार सुजानपुर टिहरा आए। राजा संसार चंद के कांगड़ा कलम में कई चित्र हैं जिसमें उसे बिना दाढ़ी के लगभग अट्ठारह वर्ष का युवक बताया गया है। जब सन् 1786 में संसार चंद ने कांगड़ा किला जीत लिया, उस समय गुलेर से कांगड़ा के चित्रकार सुजानपुर आए। इन चित्रकारों ने महाभारत, रामायण, भागवत पुराण, शिव पुराण, मार्कंडेय पुराण तथा जयदेव के गीत गोबिंद, केशव दास की रसिक प्रिया तथा बिहारी सतसई के चित्र बनाए। इन चित्रों के साथ-साथ 'संसार चंद तथा दरबारी चित्रों की प्रशंसा करते हुए', 'संसार चंद युद्ध भूमि में', 'संसार चंद युद्ध कौशल देखते हुए' 'संसार चंद नृत्य देखते हुए', 'संसार चंद की बारात', 'अनिरुद्ध चंद की बारात' आदि चित्र भी इसी समय बनाए गए।

कांगड़ा शैली के सबसे बढ़िया चित्र 1780-1805 के बीच बनाए गए।

जब सन् 1810 के बाद संसार चंद नादौन में एक तरह से रिटायर जीवन बिता रहा था, उस समय भी नादौन तथा आलमपुर में वह पूजा के बाद नृत्य, संगीत सुनने

के साथ-साथ चित्रों को देखनें में अपना समय बिताता था। गीत गोबिंद, बिहारी सतसई, नल-दमयंती के चित्र इसी समय 1810-23 के बीच बनाए गए।

राजा संसार चंद ने सुकेत, सिरमौर तथा बड़ा भंगाल से विवाह के साथ 'नोखू' नाम की गद्दण से भी विवाह किया। एक बार राजा पालमपुर की घाटी बंदला में शिकार खेल रहा था तो उसे अपनी भेड़-बकरियों के साथ नोखू गद्दण मिली जिसे राजा ने रानी बनाने की पेशकश की और रानी बना लिया। नोखू गद्दण और गुलाबदासी के किस्से आज भी कांगड़ा के लोकगीतों के अंग बने हुए हैं। अपने अंतिम दिनों में राजा एक नर्तकी जमालो के प्रेम में भी फंसा। कहा जाता है कि अंतिम दिनों में राजा जमालो के साथ व्यास के किनारे रहता था। मिलने वाले कामल के एक वृक्ष को सलाम कर लौट जाते थे।

संसार चंद के दरबार में दो तरह के चित्रकार थे। एक तो बहुत ऊंचे दर्जे के थे, जो कुछ ही लोग थे। अधिकांश औसत दर्जे के थे। 'नल-दमयंती' तथा 'अनिरुद्ध चंद संगीत सुनते हुए' (जो लाहौल संग्रहालय में है) अच्छी कलाकृतियां हैं। नायिका भेद तथा 'संसार चंद दरबारियों के साथ कलाकृतियां देखते हुए' भी उत्कृष्ट कलाकृतियां हैं। संसार चंद की दिनचर्या दर्शाने वाले चित्र साधारण हैं जैसे युद्ध कौशल देखते हुए, पूजा करते हुए, उत्सव मनाते हुए आदि। अतः संभव है कि गीत गोबिंद, भागवत पुराण, बिहारी सतसई, रागमाला बनाने वाले चित्रकार केवल ऐसे ही चित्र अपनी मर्जी से अपने समय में बनाते थे। रोजमर्रा के चित्र बनाने वाले दूसरे कलाकार थे जो औसत दर्जे के थे, और जैसे-तैसे फटाफट चित्र बनाकर भेंट या प्रशंसा पाते थे।

सन् 1820 में मूरक्राफ्ट ने कहा है कि शाम को राजा संगीत सुनता था जिसमें बृजभाषा में कृष्ण के गीत होते थे। संसार चंद ड्राइंग का शौकीन था और उसके पास बहुत से कलाकार काम करते थे। उसके पास कलाकृतियों का बड़ा संग्रह था किंतु अधिकांश कृष्ण-बलराम, अर्जुन की बहादुरी और महाभारत के विषय पर थे। अनिरुद्ध चंद ने मूरक्राफ्ट को सिकंदर के दो चित्रों में से एक भेंट किया। राजा यह नहीं बता पाया कि यह चित्र कहां से आया।

संसार चंद को भवन निर्माण का भी बड़ा शौक था। सन् 1786 में संसार चंद ने बैजनाथ मंदिर की मरम्मत करवाई। उसने कई बाग लगवाए जिनमें आलमपुर का बाग प्रसिद्ध है। इसे वह लाहौर के शालीमार बाग की टक्कर का बनवाना चाहता था। आज भी इस बाग के अवशेष विद्यमान हैं। सुजानपुर टिहरा के महल, नादौन के महल भी बनवाए। सन् 1874 में गौरी शंकर मंदिर, 1871 में मुरली मनोहर मंदिर बनवाया। सन् 1824 में रानी सुकेती द्वारा प्रसिद्ध नर्वदेश्वर मंदिर बनवाया गया जो

कांगड़ा कलम का जीता-जागता उदाहरण है। सुजानपुर टिहरा के मंदिर में भी कांगड़ा कलम के चित्र तथा भित्तिचित्र विद्यमान हैं। कुछ समय पहले तक कांगड़ा किला में भी ऐसे चित्र दीवारों पर विद्यमान थे।

राज्य का पतन

सन् 1803-04 में होशियारपुर और बजवाड़ा की ओर आक्रमण कर रणजीत सिंह से टक्कर में असफल होने पर संसार चंद ने सन् 1805 में कहलूर पर आक्रमण किया और सतलुज के दाहिने किनारे तक अधिकार कर लिया। इस आक्रमण से भयाक्रांत होकर बिलासपुर के राजा महान चंद ने गोरखों को कांगड़ा पर आक्रमण के लिए आमंत्रित किया और सहायता का वचन दिया।

अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नेपाल के गोरखा भी संसार चंद की भांति विजय अभियान पर निकले हुए थे। उन्होंने कुमाऊं, गढ़वाल, सिरमौर और शिमला की पहाड़ी रियासतों को अपने कब्जे में कर लिया था। वे नेपाल से कश्मीर तक गोरखा राज्य स्थापित करना चाहते थे। गोरखों द्वारा कश्मीर के लिए दुर्रानी को भगाने के लिए रणजीत सिंह से भी बातचीत की किंतु रणजीत सिंह ने स्वीकार नहीं किया। मूरक्राफ्ट के अनुसार गोरखों ने कांगड़ा पर भी हमला बोला था किंतु संसार चंद ने उन्हें मार भगाया और संधि के अनुसार सतलुज की सीमा को स्वीकार किया गया।

यह संसार चंद के दुर्दिन ही थे कि सभी पहाड़ी राजा उसके विरुद्ध हो गए और सतलुज के पार खदेड़े गोरखों को राजा बिलासपुर ने आमंत्रण दे दिया।

उस नाजुक समय में ऊपर की ओर गोरखा, मैदान में सिख तथा इन सबसे ऊपर अंग्रेज पहाड़ों की ओर पांव पसार रहे थे। अतः बिलासपुर द्वारा गोरखा सेना को न्योता सभी पहाड़ी राजाओं के लिए घातक साबित हुआ।

संसार चंद के साथ हुई संधि को भूल सन् 1805 में अमर सिंह थापा 40,000 सैनिक लेकर सतलुज पार कर गया।

इस आक्रमण से कुछ समय पूर्व संसार चंद ने नवाब गुलाब मुहम्मद के कहने पर घमंड चंद के समय के पुराने खास सिपाहियों को सेना से निकाल दिया। ये सिपाही राजपूत, रोहिले और अफगान थे। नवाब गुलाम मुहम्मद रामपुर से निष्कासित था। गुलाम मुहम्मद ने ब्रिटिश सेना से लोहा लिया था जो माना हुआ सेनानायक था। उसने कम वेतन घर रोहिला सिपाही लाने का वादा किया। इस कार्य से सेना की शक्ति क्षीण हुई और गोरखों ने यह खबर सुनते ही बिलासपुर की ओर हमला बोल दिया। सन् 1805 के अंतिम दिनों में अमर सिंह थापा की सेना के साथ बिलासपुर, बसोहली के 10,000 सिपाही और मिल गए।

विगने ने कहा है–'इन सभी राजाओं ने शपथ ली कि गोरखा नायक केवल कांगड़ा किला को रखेंगे और राजाओं को अपनी सीमाएं दी जाएंगी।' चंबा के अभिलेखों में सन् 1801 के एक पत्र से स्पष्ट है कि रावी के दोनों ओर से लगभग सभी राज्य संसार चंद के विरुद्ध इकट्ठा होने को तैयार थे। चंबा के राजा ने भी वजीर नत्थू के नेतृत्व में गोरखों की सहायता के लिए सेना भेजी। चंबा के राजा जीत सिंह को डुग्गर से सहायता लेने के लिए भी कहा गया। अमर सिंह थापा ने चंबा के राजा जीत सिंह को एक पत्र लिखा था जिसमें कहा था कि उसे त्रिगर्त से डरने की आवश्यकता नहीं है।

संसार चंद की गोरखों से पहली मुठभेड़ महल मोरियां में हुई। गोरखा सेना के साथ बिलासपुर, बसोहली, चंबा की सेना थी। विगने ने कहा है कि महाराजा होलकर, जो उस समय पंजाब में 15,000 सेना के साथ थे, ने संसार चंद को सेना भेजने की पेशकश की जो संसार चंद ने नहीं मानी। संसार चंद बहादुरी से लड़ा किंतु हार हुई। गुलाम मुहम्मद भी नई भर्ती के सैनिकों को लेकर पहुंच गया किंतु टिक नहीं पाया। गोरखे सीमा में घुस गए और नादौन पहुंचकर मंडी के राजा ईश्वरी सेन को, जो बारह वर्षों से कैद था, मुक्त कराया।

संसार चंद ने कुछ समय सुजानपुर टिहरा में मुकाबला किया किंतु अंततः कांगड़ा किले में परिवार सहित शरण लेनी पड़ी।

किले में खाद्य सामग्री बारह वर्ष के लिए पर्याप्त थी किंतु अन्न भंडार फिजूलखर्ची के कारण क्षीण हो गया था। खाद्य सामग्री की सप्लाई गुलेर से आती थी। किंतु गुलेर के कटोच राजा, जो संसार चंद के संबंधी थे, गोरखों से मिल गए।

चार वर्षों तक गोरखों द्वारा किले पर कब्जा करने के लिए घेरा डाले रखा किंतु अफसल रहे। किंतु इन वर्षों में गोरखों द्वारा बहुत लूटपाट की गई। गोरखों ने पूरे कांगड़ा को तहस-नहस कर दिया। फसलें तबाह हो गईं। लोग दूसरे राज्यों में घर छोड़ भाग गए। वारनेस ने लिखा है–'इन अभागे दिनों की स्मृति पहाड़ों के इतिहास में एक सीमा चिह्न के समान है...देश का कुछ हिस्सा तो उनके (गोरखों) अधिकार में था। कुछ, जिसमें कांगड़ा का किला तथा कुछ अन्य किले शामिल थे, कटोचों के। एक दल दूसरे दल के अधिकारगत इलाके में इसलिए लूटपाट मचाता था कि वह उसके साधनों को कमजोर कर दे। प्रजा आक्रांत और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अड़ोस-पड़ोस के राज्यों में भाग गई। कुछ चंबा में, कुछ जालंधर दोआब में। तीन वर्षों तक अराजकता की यह स्थिति बनी रही। कांगड़ा की उर्वर घाटी में फसल का एक दाना तक पैदा न हुआ। नगरों में घास जम आई थी तथा नादौन की सड़कों पर सिंहनियों के बच्चे पैदा होने लगे।'

किले में अब तक नदी की ओर से पलम से रसद पहुंचती थी जिसे गोरखों ने बंद करवा दिया। चार वर्ष की घेराबंदी से भीतर खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। राजा तथा सेना को चार महीने तक साग-पात खाना पड़ा। जब बचाव का कोई रास्ता नहीं रहा तो संसार चंद ने रणजीत सिंह से सहायता मांगी। रणजीत सिंह लाहौर से दो बार कांगड़ा की ओर चला किंतु वापस लौट गया। एक बार पठानकोट के पास से तो एक बार नूरपुर से। रणजीत सिंह के लौटने की खबर से संसार चंद ने अब गोरखों से संधि प्रस्ताव रखा। संसार चंद ने कहा कि यदि उसे परिवार सहित किले से बाहर जाने दिया जाए तो वह अपनी सेना को हथियार डालने के लिए कह देगा। विगने ने कहा है कि गोरखे चाहते थे कि संसार चंद बाहर आए और मालाकार की देवी के समक्ष शपथ ले। संसार चंद ने अपने वजीर नौरंग को शपथ लेने के लिए भेजा। अतः दरिया की ओर के गेट से सिपाही हटा दिए गए जहां से रसद आती थी। सिपाहियों के हटने पर राजा तरह-तरह की चीजें निकालता रहा और रात को अनाज, शस्त्रों आदि की सप्लाई आने लगी। एक दिन राजा चुपचाप किसान के वेश में बाहर निकलकर सुजानपुर टिहरा चला गया। किले में उसने विश्वासपात्र नायकों को रखा। वहां से उसने अपने भाई फतेहचंद के माध्यम से फिर रणजीत सिंह को सहायता के लिए संदेश भेजा। रणजीत ज्वालामुखी में दर्शन के लिए आया हुआ था। फतेहचंद ने गोरखों के विरुद्ध सहायता मांगी और बदले में नजराने की रकम देनी स्वीकार की। कांगड़ा के पास रणजीत सिंह को अमर सिंह थापा के एक आदमी जोरावर सिंह ने दुगना नजराना पेश किया अतः रणजीत वहां से लौट गया। इन्हीं दिनों बीमारी फैलने से बहुत से गोरखा सैनिक मारे गए।

यह भी कहा जाता है कि ज्वालामुखी में लगभग एक मास तक वार्ता चलती रही। रणजीत सिंह ने कांगड़ा किला मांगा जिसे देने में संसार चंद ने आनाकानी की। अंत में चंबा के वजीर नत्थू तथा गुलेर के राजा के बीच में पड़ने पर ज्वालामुखी मंदिर में समझौता हुआ। महाराजा रणजीत सिंह ने ज्वालामुखी की जोत पर हाथ रखकर शपथ ली कि वह राजा को कोई हानि नहीं पहुंचाएगा।

गोरखा नायक ने इस संधि के बारे में सुनकर रणजीत सिंह को चेतावनी दी और कहा कि किले तथा पूरे क्षेत्र के बराबर धनराशि भी दी जा सकती है किंतु यह प्रस्ताव अस्वीकार किया गया। रणजीत सिंह ने संसार चंद के पुत्र अनिरुद्ध चंद को बुलावा भेजा। उसे पूरे सम्मान के साथ फतेहसिंह अहलुवालिया के साथ बंधक के रूप में रख लिया।

रणजीत सिंह ने अगस्त 1809 में कांगड़ा की ओर प्रस्थान किया और गोरखों पर धावा बोला। गोरखों की संख्या अब घट गई थी, कुछ बीमारी से मर गए थे। अतः

वे पीछे हटने लगे और सतलुज के पार भाग गए। चार वर्ष बाद 1813 में ब्रिटिश शासन द्वारा उन्हें पूर्णतया खदेड़ दिया गया।

गोरखों के भागने पर रणजीत सिंह ने संसार चंद की सम्मति से अपने नायक फतेह सिंह तथा अनिरुद्ध चंद को किले पर कब्जे के लिए भेजा। किले में वजीर नौरंग था जिसने संसार चंद के अलावा किसी को भी किला सौंपने से इनकार किया। रणजीत सिंह ने धमकी दी कि यदि वे बंधक बने अनिरुद्ध चंद का भला चाहते हैं तो स्वयं जाकर किला हवाले करें। संसार चंद तथा रणजीत सिंह दोनों फिर हाथी पर सवार हो किले के द्वार की ओर बढ़े। नौरंग वजीर ने भीतर से संदेश भेजा कि किले में केवल संसार चंद ही प्रवेश कर सकते हैं।

संसार चंद ने फतेह सिंह अहलुवालिया के साथ किले में प्रवेश किया। नौरंग वजीर नें तब किला समर्पण करने की लिखित आज्ञा संसार चंद से ली। इसके बाद संसार चंद को वजीर का हाथ पकड़कर किले से बाहर ले गया। तब रणजीत सिंह अपने कुछ साथियों सहित किले के भीतर गया और अधिकार किया। यह घटना 24 अगस्त, 1809 की है।

इस प्रकार पुनः कांगड़ा किला राजा के हाथ से निकल गया। संसार चंद को मुगल काल के समय से किले के आसपास के 56 गांवों के अतिरिक्त क्षेत्र छोड़ा गया। देसा सिंह मजीठिया को किले का किलेदार नियुक्त किया गया। कहा जाता है कि उसने संसार चंद को पूरा मान-सम्मान दिया। देसा सिंह के अंधीन कांगड़ा, चंबा, नूरपुर, कोटला, शाहपुर, जसरोटा, बसोली, मानकोट, जसवां, सीबा, गुलेर, कहलूर, मंडी, सुकेत, कुल्लू और दतारपुर के क्षेत्र आ गए। गोरखा सैनिक सतलुज पार भगा दिए। अतः जालंधर के सभी पहाड़ी शासक रणजीत सिंह के अधीन हो गए।

इसके बाद संसार चंद सुजानपुर टिहरा आ गया। वर्ष में एक बार उसे रणजीत सिंह के दरबार में लाहौर जाना पड़ता था किंतु लाहौर दरबार में राजा का पूरा मान-सम्मान किया जाता था। कहा जाता है कि एक बार जब संसार चंद रणजीत सिंह के पास बैठा था तो उसे जमुहाई आ गई। रणजीत सिंह ने मजाक में कह दिया 'लाहौर प्राप्त' जो संसार चंद के दरबारी कहा करते थे। इस पर संसार चंद ने तुरंत कहा 'जो हुआ सो प्राप्त।'

किंतु समय के साथ-साथ रणजीत अपने इस शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी के प्रति उतना सम्मानजनक नहीं रहा जितना आरंभ में था। राजा कभी सुजानपुर टिहरा और कभी नादौन में समय बिताता।

मूरक्राफ्ट सन् 1820 में आलमपुर में राजा का मेहमान रहा। संसार चंद ने बड़ी उदारता से उसका स्वागत किया। मूरक्राफ्ट तथा ट्रीबेक को लद्दाख जाते हुए मंडी

में रणजीत सिंह की आज्ञा के बिना वहां आने पर रोक लिया गया। मूरक्राफ्ट अपना सामान साथी ट्रीबेक के पास मंडी छोड़ लाहौर आज्ञा लेने के लिए गया। वापसी पर वह नादौन, सुजानपुर टिहरा होता हुआ आया और आलमपुर रहा।

मूरक्राफ्ट ने संसार चंद के विषय में दिलचस्प जानकारी दी है। राजा उस समय लगभग 54 वर्ष का था किंतु दुर्भाग्य ने राजा को बूढ़ा बना दिया था। जिसका राजस्व कभी 35 लाख रुपए होता था, सतलुज से लेकर सिंधु नदी तक के क्षेत्र का जो सबसे बलवान राजा था, सतलुज से कश्मीर तक के राजा जिसे कर देते थे, वह अब गरीबी के दिन काट रहा था। एक बार रणजीत सिंह ने उसके सुजानपुर टिहरा के महलों के बारे में पूछा। संसार चंद भांप गया और बताया कि वे महल तो खंडहर हो चुके हैं। वापसी पर संसार चंद नें स्वयं ही महलों के कंगूरे तुड़वा दिए और खंडहरनुमा कर दिया। जब रणजीत सिंह का आदमी आया तो वास्तव में ही वहां टूटा-फूटा महल था।

मूरक्राफ्ट जब वहां आया तो राजा का छोटा भाई फतेहचंद बीमार था। उसके अंतिम संस्कार की तैयारियां चल पड़ी थीं और रानियां भी सती होने की तैयारी में थीं। मूरक्राफ्ट ने दवाइयां देकर उसे मौत के मुंह से बचा लिया। इसके लिए राजा ने बहुत आभार प्रकट किया।

मूरक्राफ्ट ने लिखा है—'शाम को मैंने राजा की प्रतीक्षा की और राजा को उसके पुत्र तथा पौत्र के साथ बाग की खुली इमारत में देखा। राजा संसार चंद लगभग साठ वर्ष का एक लंबा और ऊंचा व्यक्ति है। उसका रंग सांवला है किंतु नैन-नक्श बहुत तीखे और प्रभावशाली हैं। उसके पुत्र अनिरुद्ध का चेहरा बहुत सुंदर है और रंग सिंदूरी है किंतु वह बहुत मोटा है। उसके दो बेटे हैं, एक बारह और एक पांच वर्ष का जो उससे कम गोरे हैं। संसार चंद सतलुज से सिंधु तक पहले बहुत शक्तिशाली राजा हुआ करता था। सतलुज से कश्मीर तक के राजा जिसे कर देते थे, और जो बहुत ही धनवान था, जिसके पास पैंतीस लाख का राजस्व आता था। आज वह गरीब और रणजीत सिंह के पूरी तरह अधीन होने के खतरे में है।'

मूरक्राफ्ट ने आगे लिखा है—'क्षेत्रों के खोने से कटोचों का राजस्व इतना गिर गया है कि राजा ने मुझे बताया कि उसे 70,000 रुपए सेना को तनख्वाह देने के बाद अपने और परिवार के खर्चे के लिए मिलते हैं। उसके संसाधन अभी भी ठीक हैं, उसका क्षेत्र मजबूत है। उसके पास किसान हैं। हीरे-जवाहरातों की इतनी संपत्ति है जिससे अच्छा धन मिल सकता है। उसकी गरिमा उसे अपने साधनों को कम करने में आड़े आती है जबकि वह असंख्य जनाना, भूखे भिखारियों को बहुत धन बांटता है और देश की सुरक्षा की परवाह किए बिना सिपाहियों के पास गोला-बारूद की

कमी रखता है। वह ब्रिटिश सरकार की सुरक्षा में आने के लिए बेचैन है…।'

जब मूरक्राफ्ट सुजानपुर में रणजीत सिंह के उत्तर की प्रतीक्षा में था, राजा संसार चंद तथा उसके पुत्र ने उसे बड़े आदर-सम्मान के साथ रखा। मूरक्राफ्ट के अनुसार राजा सुजानपुर और अधिकांश आलमपुर में रहता था जहां बाग में छोटे भवनों में दरबार लगता और बड़े भवनों में जनाना रहती थीं। टिहरा के महल राजा ने रणजीत सिंह द्वारा हथियाने की आशंका से छोड़ दिए थे। ब्राह्मण द्वारा अपने को छूरी मारने की कथा भी इसके पीछे कही जाती है।

मूरक्राफ्ट ने लिखा है कि संसार चंद प्रातः काल पूजा-पाठ में बिताता था। दस बजे से दोपहर तक दरबार लगता था। दोपहर को दो तीन घंटे सोने के बाद चैस खेलता। सायंकाल नृत्य या गायन सुनता। संसार चंद के यहां कई कलाकार रहते थे।

मूरक्राफ्ट ने बताया है, संसार चंद का राज्य लगभग चालीस कोस लंबा और पंद्रह से चालीस कोस चौड़ा था। सबसे ज्यादा लंबाई पठियार से महल तक थी। इसमें कटोच, चंगर तथा पलम इलाके थे। संसार चंद की सेना में एक आइरिश ओ-ब्रीन था जिसने मूरक्राफ्ट से भी भेंट की। ओ-ब्रीन की कब्र टिहरा में कुछ समय तक मौजूद थी। वह छोटे हथियार बनाता था और इसने 1400 सैनिकों की एक अनुशासित फौज तैयार की। इन सिपाहियों को वर्दी दी गई थी। एक दूसरा अंग्रेज जेम्स था। ये भी संसार चंद के पास गनर था। ओ-ब्रीन तथा जेम्स के चित्र संसार चंद के साथ बने हुए हैं।

संसार चंद की मृत्यु दिसंबर 1823 में सैंतालीस वर्ष के शासन के बाद हुई। इतिहास में संसार चंद एक उल्लेखनीय व्यक्ति रहा। उसके शासन काल में कटोच वंश ने अपने प्राचीन गौरव और शक्ति को प्राप्त किया। उसने इक्कीस वर्ष निष्कंटक राज किया। इस राजा की मृत्यु के साथ ही कटोच वंश का सूर्य भी डूब गया।

अनिरुद्ध चंद (1823)

संसार चंद की मृत्यु के बाद अनिरुद्ध चंद गद्दी पर बैठा। राजगद्दी पर बैठने के समय सिख सरदार उसे बधाई देने आए। लाहौर दरबार की ओर से उसे भेंट में एक घोड़ा, धनुष, मोतीहार, शॉल और पगड़ी भेजी गई। पांच-छह महीने बाद उसे अदीनानंगर में बुलाया गया जहां महाराजा ठहरता था। अनिरुद्ध चंद ने एक लाख बीस हजार नजराना भेंट किया और खिल्लत प्राप्त की। अगले वर्ष भी नजराना देने जाना पड़ा। तीसरी बार सन् 1827 में जब अनिरुद्ध चंद नजराना देने गया तो उसके साथ उसकी दो बहनें भी थीं। जम्मू के राजा ध्यान सिंह ने, जो महाराजा रणजीत सिंह का मुख्यमंत्री था, दोनों बहनों को देखा। उसने इनसे अपने पुत्र हीरा सिंह के

साथ विवाह का प्रस्ताव रखा। अनिरुद्ध चंद वहां विवश था अतः लिखित स्वीकृति दे दी। वास्तव में यह संबंध कटोच वंश की आन-बान के खिलाफ था। अपने पुराने रिवाज के अनुसार राजा की राजकुमारी किसी राजा से ही विवाह करती थी। अतः अनिरुद्ध चंद टालमटोल करता रहा। उसने कहा कि अभी-अभी उसकी मां की मृत्यु हुई है अतः एक वर्ष के भीतर विवाह नहीं किया जा सकता। इस बीच उसने अपनी धन-संपत्ति सतलुज के पार पहुंचा दी और स्वयं भी भागने की तैयारी कर ली।

एक वर्ष के बाद ध्यान सिंह के कहने पर रणजीत सिंह ने नादौन के लिए प्रस्थान किया। यह सुनकर अनिरुद्ध चंद ने अपनी मां और बहनों को सतलुज के पार भेज दिया और जब रणजीत सिंह अदीनानगर पहुंचा, वह भी ब्रिटिश क्षेत्र में भाग गया। कुछ दिन ये हरिद्वार में रहे और अपनी दोनों बहनों का विवाह टिहरी गढ़वाल के राजा सुदर्शन शाह से कर दिया। इसके बाद वे शिमला की बाघल रियासत की राजधानी अर्की में रहने लगे। सन् 1831 में अनिरुद्ध चंद की मृत्यु हो गई। अनिरुद्ध के रणवीर चंद और प्रमोद चंद दो पुत्र थे। ब्रिटिश सरकार के कहने पर रणजीत सिंह ने इन्हें वापस बुलाया और पचास हजार रुपए की जागीर महल मोरियां में दी। रणवीर चंद की 1847 में और प्रमोद चंद की 1851 में मृत्यु हो गई। इनके कोई संतान नहीं हुई। इनके वंशज लंबा गांव में रहने लगे। अंग्रेज सरकार ने इन्हीं में से राजा जय चंद को महाराजा की उपाधि दी।

सन् 1835 में विगने ने अनिरुद्ध चंद के दो पुत्रों रणवीर चंद और प्रमोद चंद से करूहीं में भेंट की। विगने ने लिखा है कि वे दो या तीन नीची छत वाले घरों में रहते थे और महाराजा की आज्ञा से आसपास के क्षेत्र से वर्ष में तीस हजार रुपए एकत्र करते थे। दो भाइयों में से बड़ा, जो टिहरा का उत्तराधिकारी राजा था, बहुत सामाजिक था और उसने मुझे प्रातः जाने से पहले ब्रेकफास्ट खिलाया। उसने विगने को वह पत्र भी दिखाया जो उसके दादा ने लॉर्ड लेक से प्राप्त किया था। एक चिट जो मूरक्राफ्ट ने दी थी, वह भी दिखाई।

प्रथम सिख युद्ध के बाद 9 मार्च, 1846 की संधि के बाद कांगड़ा अंग्रेजों के अधिकार में आ गया और कांगड़ा किले में अंग्रेज सेना रहने लगी। कांगड़ा के शासक राजगीर, महल मोरियां, नादौन में बिखर गए।

उधर रणजीत सिंह जब नादौन पहुंचा तो संसार चंद के छोटे भाई फतेह चंद ने महाराजा का स्वागत किया और अपनी पौत्री का विवाह हीरा सिंह से कर दिया। फतेह चंद को राजा बनाया गया और राजगीर की जागीर सौंपी गई। फतेह चंद की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र लुदर चंद ने जागीर पट्टे पर ली किंतु वह मानी हुई धनराशि सिखों को नहीं दे पाया अतः यह सिख सरदारों के हाथ चली गई। पहला सिख

सरदार लहना सिंह सिंधावाला था, दूसरा कंवर शेर सिंह दो वर्ष तक रहा। ये दोनों सुजानपुर टिहरा रहते थे। शेर सिंह लुदर चंद के प्रति बहुत दयावान था और उसने बटाला में एक गांव तथा बागीचा अपनी जागीर में से दिया। बाद में पलम नौनिहाल सिंह की जागीर बनी और शेष राज्य लहना सिंह मजीठिया के पास आया। नादौन संसार चंद के छोटे पुत्र जोधवीर चंद को जागीर के रूप में दिया गया और राजा की उपाधि भी दी गई। जोधवीर चंद के बाद राजा नरेंद्र चंद (सी.एस.आई.) हुआ।

लुदर चंद के बाद सन् 1851 में प्रताप चंद उत्तराधिकारी बना और उसके बाद प्रमोद चंद। प्रमोद चंद की 1864 में मृत्यु के बाद जय चंद उत्तराधिकारी बना जिसे कर्नल महाराजा सर जय चंद की उपाधि दी गई। यह लंबा गांव में रहता था। उत्तराधिकार के समय वह अवयस्क था अतः राजकाज डिप्टी कमिश्नर कांगड़ा द्वारा देखा जाता रहा। सन् 1883 में राजा के वयस्क होने पर अधिकार सौंपे गए। जय चंद की शिक्षा प्राइवेट शिक्षकों द्वारा तथा मेयो कॉलेज अजमेर में हुई। जय चंद को कर्नल की मानद उपाधि दी गई तथा 37 डोगरा में रखा गया। राजा को दीवानी तथा फौजदारी शक्तियां भी दी गईं। सी.एस.आई. बनने के बाद उन्हें महाराजा की उपाधि भी दी गई।

राय अनिरुद्ध चंद का रिश्ते के लिए मना करना तथा सतलुज पर जाना आदि प्रसंग फारसी में उपलब्ध 'कटोच वंश का इतिहास' में विस्तार से दिए गए हैं। इस पांडुलिपि में उल्लेख है कि जब 21 नवंबर को टिहरा की ड्योढ़ी पर पहुंचा तो सिपाहियों ने बंदूकें चलानी आरंभ कर दी जिन्हें मियां फतेह चंद ने बंद करवाया। सिपाहियों को तनख्वाह दी गई तब उन्होंने गद्दी खाली कर दी। 24 नवंबर को सिख सेना ने संसार चंद की छावनी और मकानात लूटे। मियां फतेह चंद को एक लाख सालाना जागीर, बेटे लुदर चंद को पचास हजार सालाना जागीर दी गई। संवत् 1886 में राजा ध्यान सिंह के बेटे हीरा सिंह का विवाह लुंदर चंद की लड़की से हुआ।

पांडुलिपि में लिखा है कि मियां जोधवीर या युद्धवीर के लिए नादौन में एक हवेली खाली करवाई गई। युद्धवीर के लिए खिल्लत तथा सात सौ पचास रुपए मदद के लिए भेजे। कुछ समय बाद एक दोशाला, कंठा, सोने के कंगन भी दिए। फिर युद्धवीर की मां को बुलाया गया जो नहीं आई। रणजीत सिंह स्वयं नादौन गया। युद्धवीर को नादौन का ताल्लुका जागीर में दिया। रणजीत सिंह ने युद्धवीर की दो बहनों से विवाह किया। विवाह का दिन 19 अक्तूबर सोमवार लिखा है।

इसी पांडुलिपि में राय अनिरुद्ध के बेटे रणवीर चंद तथा प्रमोद चंद को जालंधर दोआबा में जागीर में पेशकश की। इसके साथ यह भी कहा कि यदि वे पांच लाख

रुपए प्रति वर्ष नजराना देते हैं तो सुजानपुर टिहरा भी दिया जा सकता है। अंत में राजा ध्यान सिंह की मध्यस्थता में महल मोरियां की जागीर दी गई।

महल मोरियां

लॉर्ड विलियम बैंटिक के हस्तक्षेप पर रणजीत सिंह द्वारा हमदर्दी जताने के बाद महल मोरी की जागीर अनिरुद्ध के पुत्र रणवीर चंद को मिली। अंग्रेजी सरकार ने जागीर पर रणवीर चंद का कब्जा बहाल रखा और लड़ाई के खर्च का मुआवजा भी दिया। सन् 1847 में रणवीर चंद की मृत्यु हो गई तो रियासत भाई प्रमोद चंद को मिली।

प्रमोद चंद ने पहाड़ के लोगों को उकसाकर तीन राजाओं को साथ मिला अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसने 3 दिसंबर, 1848 को टिहरा से दस मील दूर ठहरी अंग्रेज सेना पर हमला बोल दिया किंतु पराजय हुई। प्रमोद चंद गिरफ्तार हुआ और देश निकाला देकर अल्मोड़ा भेजा गया जहां तीन वर्ष बाद उसकी (निःसंतान) मृत्यु हो गई।

इस तरह संसार चंद के गरिमापूर्ण वास्तविक वंश का अंत हुआ।

लंबा गांव

संसार चंद के भाई फतेह चंद का पुत्र लुदर चंद वंश की दूसरी शाखा का मुखिया बना। यह जागीर 35,598 रुपए वार्षिक आय की थी। अंग्रेजी सरकार ने इसे इनके कब्जे में रहने दिया। सन् 1848-49 के विद्रोह में भी इसने अंग्रेजों का साथ देकर प्रमोद चंद द्वारा विद्रोह की खबर जॉन लॉरेंस को दी। सन् 1850 में लुदर चंद की मृत्यु हो गई तो पुत्र प्रताप चंद उत्तराधिकारी बना। प्रमोद चंद की अल्मोड़ा में मृत्यु के बाद इसे कटोच राजपूतों का मुखिया बनाया गया।

प्रताप चंद के छोटे भाइयों कीरत चंद और उदय चंद को जागीर के बदले 3000 रुपए और 2000 रुपए गुजारे के लिए दिए गए। प्रताप चंद फिजूलखर्ची करता था अतः जब सन् 1864 में मृत्यु हुई तो बहुत कर्जदार था।

कर्नल फ्रांसिस मैसी ने लिखा है कि प्रताप चंद के बाद जब जयचंद उत्तराधिकारी बना तो वह केवल दो वर्ष का था। अतः रियासत कोर्ट ऑफ वार्ड्ज के सुपुर्द हुई।

कर्नल मैसी ने लिखा है– 'यह राजा लंबा गांवों में रहता है जो व्यास के दाएं किनारे पर बहुत ही रमणीक स्थान है। इसने अजमेर राजकुमार कॉलेज में शिक्षा पाई है। यह अंग्रेजी खूब साफ बोलता है और लिखता है। शिकार और कसरत का शौकीन है। सन् 1888 में इसे अंग्रेजी फौज में आदरी मेजर का ओहदा मिला। अपनी जागीर

की सीमा के अंदर इसे मैजिस्ट्रेटी अधिकार प्राप्त है और यह अपनी तहसील के स्थानीय बोर्ड का प्रेजिडेंट और जिला बोर्ड का मेंबर भी है। जिला कांगड़ा के वायसरीगल दरबारियों में इसका दूसरा नंबर है।''राजा जय चंद की शादी राजा बिलासपुर (कहलूर) की बेटी से हुई है। इसकी बहन की शादी महाराजा कश्मीर के भाई राजा राम सिंह से हुई है। इसकी माता वर्तमान राजा सिरमौर की बहन है। इस रियासत की आय का अंदाजा 45,300 रुपए किया गया है। इसमें से 35,600 रुपए तो जागीर के बीस गांवों से और बाकी भिन्न मदों से प्राप्त होती है। जागीर की रकम में वे 500 रुपए की रकम भी शामिल है जो उसके पिता के समय में इसके छोटे भाइयों–कीरत चंद और उदय चंद–के गुजारे के लिए मुकर्रर की गई थी, जिनकी अब मृत्यु हो गई है। ये 500 रुपए अब इनके बेटों को मिलते हैं। राजा जय चंद का न कोई बेटा है, न कोई भाई।'

नादौण

संसार चंद की गद्दण रानी से जुधवीर चंद था जिसने महाराजा रणजीत सिंह से अपनी दो बहनों की शादियां कीं। महाराजा ने राजा का खिताब देकर नादौण की जागीर सौंपी जिसकी आय लगभग एक लाख रुपए थी। आरंभ में जुधवीर चंद के प्रति रणजीत सिंह का व्यवहार अच्छा रहा जो धीरे-धीरे बदलता गया। सिख युद्ध के समय लाहौर से हुक्म आया कि कहलूर जाकर सिख सेना की सहायता करो। जुधवीर चंद दो-तीन सौ सिपाही लेकर कहलूर तथा कांगड़ा की सीमा पर जा पहुंचा। उसे आते जानकर हलचल मच गई क्योंकि वह एक प्रसिद्ध सेनानायक था। मि. एर्स्किन, जो पहाड़ी रियासतों का सुपरिंटेंडेंट था, ने राजा को बताया कि उसका फायदा अंग्रेजों का साथ देने में है और यदि वह पूरी तरह साथ न भी दे तो अलग रहे। राजा ने यह सलाह मान ली और बदले में 26,270 रुपए की जागीर मिली। सन् 1852 में एक उत्तराधिकारी को जागीर मिलने की बात भी पक्की हुई। बाद में कटोचों द्वारा (प्रमोद चंद) विद्रोह के समय भी इसने अंग्रेजों का साथ दिया। कर्नल फ्रांसिस मैसी ने लिखा है–

'राजा जुधवीर चंद ने इसके बाद भी कई मौकों पर अपनी वफादारी दिखाई। कटोचों के विद्रोह में इसने कितने ही बागियों को गिरफ्तार करके नादौण पर कब्जा रखने में मदद की।' मि. वारनेस (डिप्टी कमिश्नर) ने राजा की सेवाओं को स्वीकारा। इसका बड़ा बेटा पृथ्वी सिंह 'गदर' के दिनों मध्य भारत में लड़ा जिसके बदले 'ऑर्डर ऑफ मैरिट' का खिताब और पांच सौ रुपए का सम्मानार्थ अंगवस्त्र दिया गया। राजा को सात तोपों की सलामी मुकर्रर हुई।

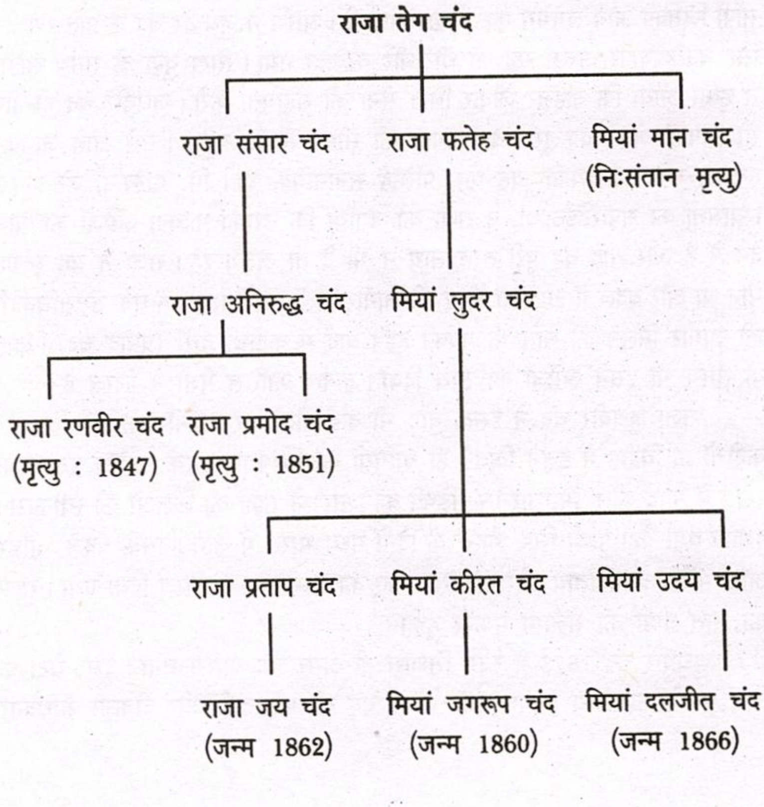
जुधवीर चंद 1873 में स्वर्ग सिधारा तो अमर चंद वारिस बना। दूसरे बेटों के लिए गुजारे का प्रबंध किया गया। अमर चंद को फौजदारी और दीवानी अधिकार

पिता की भांति प्राप्त हुए। सन् 1878 में राजा ने अपने पिता का भारी कर्ज चुकाने के लिए पचास हजार रुपए जागीर के बदले कर्ज लिया। राजा के भाई मियां हरि सिंह अतिरिक्त सहायक कमिश्नर, मियां शेर सिंह पुलिस में सहायक सुपरिंटेंडेंट थे। शेष दो भाई पृथी सिंह और ईशरी सिंह साथ रहते थे। राजा की जिला के वासयरीगल दरबारियों में चौथा नंबर था। राजा के बेटे नरेंद्र चंद की शादी जुब्बल और मनकोटिया वंशों में हुई। राजा की आय लगभग 35,500 रुपए थी–

चौदह गांव की जागीर की आय :	33316
चाय का बागीचा तहसील पालमपुर :	2000
आलमपुर कस्बे की भूमि :	184
	35500

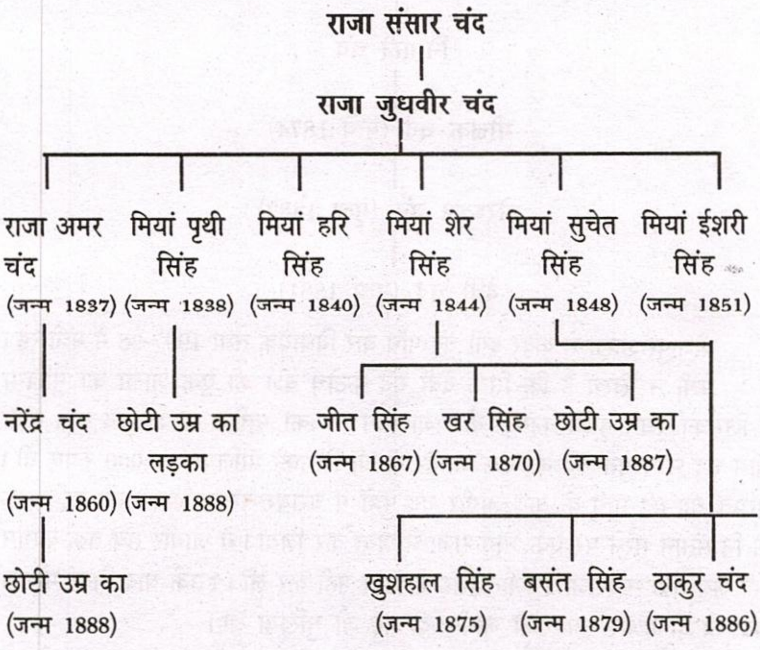
लंबा गांव शाखा

(कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची)



लंबा गांव शाखा से ध्रुवदेव चंद के बड़े पुत्र आदित्य कटोच की रानी चन्द्रेश कुमारी कटोच (जन्म : प्रथम फरवरी, 1944) 1972, 1982 तथा 2003 में प्रदेश विधानसभा सदस्य बनीं और उपमंत्री, राज्यमंत्री तथा स्वास्थ्य मंत्री भी रहीं। लोकसभा (1985) तथा राज्यसभा (1996) की सदस्यता के बाद वर्तमान में (2012) में संस्कृति मंत्री, भारत सरकार।

नादौण शाखा



मियां देवी चंद रईस बीजापुर

नरपत चंद
(भतीजा भीम चंद राजा कांगड़ा)
|
पराग चंद
|
उग्र चंद
|
निगाही चंद
|
मोलक चंद (मृत्यु 1874)
|
मोरध्वज चंद (मृत्यु 1887)
|
देवी चंद (मृत्यु 1881)

बीजापुर शाखा से कंवर दुर्गा चंद पांच बार विधायक तथा 1997-98 में मंत्री रहे।

मैसी ने लिखा है कि मियां देवी चंद कटोच वंश की एक शाखा का मुखिया है जिसका प्रथम पूर्वज कांगड़ा के राजा भीम चंद का भतीजा नरपत चंद था। राजा भीम चंद ने नरपत चंद को एक जागीर दी थी जिसकी मालियत 20,000 रुपए थी। नरपत चंद की मृत्यु के बाद जागीर चंद पुत्रों में बराबर-बराबर बहाल की गई। एक के निःसंतान मरने पर एक भाग राजा ने जब्त कर लिया। ये जागीरें तब तक कायम रहीं जब तक महाराजा रणजीत सिंह ने जब्त नहीं कर लीं। इसके बाद मियां मोलक चंद को दो हजार रुपए की जागीर दी गई जो मुखिया था।

मैसी के समय मोलक चंद का पोता देवी चंद उस पर काबिज था। मोलक चंद राजा प्रमोद चंद द्वारा किए गए विद्रोह में शामिल नहीं हुआ। उसका घर विद्रोहियों ने लूटकर जला दिया। अतः इसकी जागीर 2095 रुपए आंकी गई और अंग्रेजों द्वारा चंगर मलयार तथा राजगीर इसके पास देकर स्थायी तौर पर पुरुष उत्तराधिकारी के रूप में दी गई। मोलक चंद की मृत्यु के बाद ये मोरध्वज को मिली। सन् 1887 में मृत्यु होने पर पुत्र देवी चंद छह वर्ष का था अतः जागीर कोर्ट ऑफ वार्ड्ज के प्रबंध में रखी गई।

मोरध्वज प्रोविंशियल दरबारी था।

कांगड़ा की शाखाएं

गुलेर

गुलेर राज्य की स्थापना में हरि चंद के गुलेर के पास आखेट करने की घटना और कुएं में गिरने का प्रसंग आज भी बखाना जाता है। राजा को मरा हुआ जान छोटा भाई धर्म चंद राजा बना दिया गया। हरि चंद जब जीवित बच निकला तो उसने गुलेर नामक नए राज्य की स्थापना सन् 1405 में की। बाणगंगा के किनारे उसने हरिपुर नगर बसाया और किला बनाया। राज्य की सीमा पर छह अन्य किले भी थे जिनमें कोटला प्रमुख है।

कहा जाता है कि गुलेर का पुराना नाम 'ग्वालेर' था। जहां किला बनाया गया वहां एक ग्वाला गाय चराता था। उसने उस स्थान पर बाघ और बकरी को एक स्थान पर पानी पीते देखा। हरि चंद ने इस स्थान को देख वहां किला बनाया और किले की नींव में ग्वाले की बलि दे दी। नींव में उसका सिर दबाया गया अतः ग्वालेर नाम पड़ा। बाद में यह गुलेर हुआ।

ग्वालेर या ग्वालियर नाम तारीख़-ए-मुबारक शाही, तबकात-ए-अकबरी, तारीख़-ए-दौदी, अकबरनामा में मिलता है। इस किले के बाहरी दो दरवाजे 1847 में गिरा दिए गए। सन् 1905 के भूकंप में भी इसे क्षति हुई।

हरि चंद के बाद गुलेर के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है क्योंकि फिरोजशाह तुगलक (1388) के बाद दिल्ली सल्तनत में अराजकता फैली रही।

हरि चंद के बाद भौन चंद, स्वर्ण चंद, उध्यान चंद, नरेंद्र चंद, उर्धान चंद, रतन चंद, नंद चंद, गरुड़ चंद, गंभीर चंद, अभय चंद, उत्तम चंद, पृथ्वी चंद, करन चंद चौदह राजा हुए जिनके बारे में कोई सूचना नहीं मिलती।

राम चंद (1540)

ग्वालेर का उल्लेख 'तारीख़-ए-मुबारक शाही' में फिरोजशाह के बड़े पुत्र नसी-उद-दीन मुहम्मद के समय (1388) में आता है जब उसे दिल्ली से सुकेत तथा ग्वालेर भागना पड़ा। किंतु इस बारे में ज्यादा स्पष्ट नहीं है। अतः हरि चंद से राम चंद तक कुछ भी तथ्यपरक जानकारी नहीं है। दूसरा संदर्भ तारीख़-ए दौदी में है। इसमें जिक्र है कि शेरशाह सूरी के पुत्र इस्लामशाह ने शिवालिक तथा अन्य पहाड़ियों

के राजाओं को अपने अधीन किया तथा वफादार रहने का वादा कराया। इन राजाओं में ग्वालेर का राजा परशुराम भी था जो सुलतान का पक्का भगत बन गया और इसे दूसरे जमींदारों से अधिक महत्ता दी गई। ग्वालेर को यहां कांगड़ा तथा नगरकोट को जाते हुए दक्षिण की ओर दाएं ओर की पहाड़ियों में एक पहाड़ी बताया है। इस्लाम शाह यहां ठहरा और कुछ भवन बनाए। वह यहां के राजा से दोस्ताना ताल्लुकात रखता था। इसे 'परशुराम' भी कहा गया है।

चंबा के इतिहास में प्रताप सिंह वर्मा (1559-86) तथा कांगड़ा के राजा चंद्रपाल की लड़ाई में गुलेर का चंबा की सेना के आधिपत्य का उल्लेख आता है। यह घटना राम चंद के शासन के अंतिम दिनों घटी होगी। राम चंद का नाम अकबर द्वारा 1572 में पहाड़ी राजाओं को दबाने के लिए भेजे अभियान में भी आता है। यह अभियान नूरपुर तथा कोटला होकर गया, जहां का राजा राम चंद था।

जगदीश चंद (1570)

जगदीश चंद के समय गुलेर किला तथा राज्य मुगलों के अधीन रहा। अकबर के समय 1572 में कांगड़ा के राजा विधि चंद के नेतृत्व में पहाड़ी राजाओं ने विद्रोह किया। विधि चंद के पिता राजा जय चंद को गुलेर के राजा की सहायता से मुगलों ने दिल्ली में बंदी बनाकर रखा था। इस विद्रोह के समय जब हुसैन कुली खां के नेतृत्व में सेना पठानकोट, गुलेर होकर आई तो मुगलों ने गुलेर का किला जगदीश चंद को सौंप दिया। दूसरा विद्रोह 1588-89 में हुआ। इस विद्रोह के बाद जो पहाड़ी राजा जैन खां कोका के पास हाजिर हुए उनमें गुलेर के राजा का नाम नहीं है अतः गुलेर नरेश पहले ही मुगलों से मिला हुआ था। मुगल सेना पठानकोट से माउकोट होती हुई गुलेर आई जहां किले से बाहर आकर राजा ने अपनी वफादारी दिखाई। सन् 1594-95 में भी गुलेर राज्य मुगलों के प्रति निष्ठावान रहा। तीनों बार विद्रोह के समय गुलेर नरेश मुगलों का वफादार रहा।

विजय चंद (1605)

जगदीश चंद के पुत्र विजय चंद ने मात्र पांच वर्ष ही राज किया। विजय चंद के बाद उसका पुत्र राजा बना जिसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। अतः विजय चंद का भाई रूप चंद राजा बना।

रूप चंद (1610)

रूप चंद भी मुगलों का वफादार रहा और इसने जहांगीर के समय कांगड़ा किले को मुगलों द्वारा अपने अधीन करने के अभियान में सहायता की। 16 नवंबर, 1620

को जब कांगड़ा किला मुगलों ने जीता, उसका वर्णन तुजुक-ए-जहांगीरी में किया गया है—'क्योंकि ग्वालेर का राजा रूप चंद कांगड़ा में सेवा में सक्रिय था, मुख्य दीवानों को यह आदेश दिया गया कि उसके राज्य का आधा भाग उसे मुफ्त उपहार में दिया जाए और शेष आधा तनख्वाह जागीर के रूप में दिया जाए।' यह फरमान 7 दिसंबर, 1621 का है। इसके राजा को एक हाथी तथा घोड़ा उपहार देकर अपने राज्य में जाने की छुट्टी दी गई।

सन् 1623-24 में अमीरों के साथ रूप चंद को नूरपुर के राजा जगत सिंह को दबाने के लिए शहजादा खुर्रम (शाहजहां) के कहने पर भेजा गया।

गुलेर परंपरा में उल्लेख है कि रूप चंद ने मुगलों के समर्थन में बाईस पहाड़ी राजाओं से लड़ाइयां लड़ीं। जहांगीर ने उसे खिल्लत तथा दो हथियार दिए। उसे दक्षिण में भी लड़ाई के लिए भेजा गया। दक्षिण से युद्ध में वापसी पर भी उसे खिल्लत दी गई और अपने राज्य में लौटने की अनुमति दी गई।

अंत में सन् 1634 में शाहजहां ने गढ़वाल विजय के लिए सेना भेजी। मुगल सेना का नायक निजावत खान था और राजपूत सेना का रूप चंद। गढ़वाल के राजा पृथ्वी शाह ने मुगल सेना को पहाड़ों में अंदर तक आने दिया और फिर सभी रास्ते बंद कर दिए। अतः खाद्य सामग्री समाप्त हो गई और सेना को घोड़े तथा ऊंट खाने पड़े। अतः निजावत खान ने वापस जाने की सोची किंतु गढ़वाल के राजा ने वापसी का रास्ता भी बंद कर दिया। मुआसिर-उल-उमरा में उल्लेख है कि निजावत खान पेड़ों की पत्तियों पर गुजारा करता हुआ किसी तरह भाग आया। रूप चंद श्रीनगर की ओर बढ़ा किंतु लड़ाई में मारा गया।

मान सिंह (1635)

रूप चंद के बाद मान सिंह राजा बना। मान सिंह रूप चंद का ही बेटा था किंतु उसके साथ 'चंद' से 'सिंह' में नाम बदल गया। कहा जाता है कि सिंह की उपाधि मान चंद को शाहजहां ने दी और 'शेर-अफगान' कहकर एक घोड़ा भेंट किया।

मान सिंह भी मुगलों के प्रति वफादार रहा। उसे फ्रंटियर में लड़ाई के लिए भेजा गया किंतु किसी शिकायत पर वापस बुलाकर बंदी बना दिया गया। राजा जयपुर तथा जोधपुर के हस्तक्षेप पर मामला रफा-दफा हुआ।

सन् 1641-42 में मान सिंह को शहजादा मुराद बख्श के साथ नूरपुर के राजा जगत सिंह के विद्रोह को दबाने भेजा गया। मान सिंह की नूरपुर से पुश्तैनी दुश्मनी थी। मान सिंह द्वारा माउकोट तथा तारागढ़ को सन् 1641-42 में कब्जे में लेने का जिक्र मुस्लिम इतिहासकारों ने गर्व से किया है। यह भी कहा जाता है कि मान सिंह

ने मंडी, सुकेत, बुशहर तथा कुल्लू को भी जीता और उसे कंधार जीतने के लिए सन् 1647 में औरंगजेब के साथ भेजा गया। उसे मुगल दरबार में बुलाया गया किंतु वह यह कहकर नहीं गया कि पहले उसे पहाड़ी रियासतों का फौजदार बनाया जाए। मान सिंह ने मानगढ़ किला बनाया। अंत में अपने पुत्र को राजपाट छोड़ वह बनारस चला गया और वहीं 1661 में उसकी मृत्यु हुई।

विक्रम सिंह (1661)

विक्रम सिंह बड़ा शक्तिशाली था और अपनी उंगलियों से दबाकर नारियल तोड़ देता था। उसे उत्तर-पश्चिम फ्रंटियर में यूसुफजई पठान के साथ भेजा गया। औरंगजेब द्वारा उसे अढ़ाई हजार का मनसब और बहुमूल्य खिल्लतें प्रदान कर कांगड़ा का थानेदार बनाया। उसे पेशावर भेजा गया था जहां वह घातक रूप से घायल हुआ और वापसी पर चौंतड़ा में उसकी मृत्यु हो गई।

राज सिंह (1675)

संभवतः राज सिंह 1675 में राजा बना जब लाहौर का सूबेदार ख्वाजा रिजा बेग था। वह पहाड़ों में छापे मारता था। राज सिंह ने चंबा के चतर सिंह, बसौली के धीरज पाल, जम्मू के कृपाल सिंह देव के साथ मिलकर उसे हराया और अपने इलाकों को वापस लिया। राज सिंह ने कांगड़ा के किलेदार हुसैन खान, आलम खान तथा मियां खान के विरुद्ध लड़ाई में मंडी तथा कहलूर की सहायता की।

दलीप सिंह (1695)

राज सिंह की मृत्यु के (1695) के बाद उसका पुत्र दलीप सिंह, जिसका जन्म 1688 में हुआ था, अभी सात वर्ष का था। चंबा के राजा उदय सिंह को इसका अभिभावक बनाया गया। जम्मू तथा बसोहली के राजाओं ने इसके नाबालिग होने का लाभ उठा हमला कर दिया। उदय सिंह ने सीबा, कहलूर तथा मंडी की सहायता से इस हमले को नाकामयाब बनाया। कांगड़ा के किलेदार हुसैन खान ने भी हमला किया जिसे विफल कर दिया गया। इस समय नादिरशाह के आक्रमण के कारण बिखरे कुछ कलाकार पहाड़ों में आए। दलीप सिंह की मृत्यु सन् 1730 में हुई।

गोवर्धन सिंह (1730)

गोवर्धन सिंह का जालंधर दोआब के सूबेदार अदीना बेग खान के साथ झगड़ा हो गया। सूबेदार ने एक घोड़ा मांगा था जो राजा ने नहीं दिया अतः लड़ाई हुई जिसमें राजा विजयी हुआ। गोवर्धन सिंह के समय चित्रकला को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

प्रकाश सिंह (1760)

लगभग 1760 में प्रकाश सिंह गद्दी पर बैठा। इस समय मुगल साम्राज्य का पतन हो गया था और पहाड़ी राज्य स्वतंत्र हो गए थे। गुलेर 1758 में कांगड़ा के शासक घमंड चंद के अधीन हो गया। घमंड चंद को अहमद शाह ने जालंधर दोआब के पहाड़ी क्षेत्र का सूबेदार तैनात किया था। कुछ समय गुलेर सिखों के अधीन रहा किंतु सन् 1786 में संसार चंद के शक्तिशाली होने पर गुलेर भी कांगड़ा के अधीन आ गया। सन् 1785 में गुलेर के वजीर ध्यान सिंह ने कोटला किला पर अधिकार पर स्वतंत्र राज्य बना दिया। ध्यान सिंह ने शक्तिशाली राजा संसार चंद से भी लोहा लिया।

भूप सिंह (1790)

भूप सिंह गुलेर का अंतिम शासक था। समस्त पहाड़ी राज्य इस समय संसार चंद के अधीन थे। राजा बिलासपुर ने कांगड़ा में आक्रमण के लिए गोरखों को आमंत्रित किया। भूप सिंह कांगड़ा के विरुद्ध राजाओं से मिलने वाला पहला राजा था। गोरखों द्वारा कांगड़ा किले पर घेरेबंदी तथा लूटपाट से तंग आकर संसार चंद ने रणजीत सिंह की सहायता ली। रणजीत सिंह ने कांगड़ा किला जीत लिया और समस्त पहाड़ी शासकों को अपने अधीन कर लिया। गुलेर भी रणजीत सिंह के अधीन आ गया। रणजीत सिंह कुछ समय तक भूप सिंह को 'बाबा' पुकारता रहा और अच्छे संबंध रखे। किंतु 1811 में गुलेर पहला राज्य था जो सिख साम्राज्य में मिला लिया गया। देसा सिंह मजीठिया को कोटला किले को जीतने भेजा जो एक सप्ताह में जीता गया। वजीर ध्यान सिंह को दोआबा में जागीर दी गई। सन् 1813 में शेष गुलेर भी जीत लिया गया।

वारनेस ने लिखा है–'योजना जानबूझकर चालाकी से बनाई गई। राजा को सिंधु में अभियान के लिए बड़ी सेना तैयार करने के लिए कहा गया और जब सेना अभियान पर चली गई तो राज्य की सैन्य शक्ति समाप्त हो गई। राजा को लाहौर बुलाया गया। जब उसे वापस आना था, उसे बंदी बना लिया गया और कहा गया कि उसे तब तक छोड़ा नहीं जाएगा जब तक वह राज्य न छोड़े और जागीर स्वीकार न करे। उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना देसा सिंह को दस हजार सिख सेना के साथ भेजा गया और राज्य छीन लिया गया। फिर राजा को छोड़ा गया और उसे गुजारे के लिए बीस हजार रुपए तथा जागीर दी गई। भूप सिंह की सन् 1820 में मृत्यु हो गई।

भूप सिंह के बाद शमशेर सिंह उत्तराधिकारी बना। प्रथम सिख युद्ध के समय उसने सेना तैयार की और हरिपुर किले से सिखों को खदेड़ दिया। अतः 1846 में

गुलेर अंग्रेजी शासन के अधीन आ गया। सन् 1877 में शमशेर सिंह की मृत्यु हो गई। पुत्र न होने के कारण उत्तराधिकारी भाई राजा जय सिंह बना। जय सिंह की सन् 1884 में मृत्यु हो गई जिसके बाद राजा रघुनाथ सिंह उत्तराधिकारी बना। रघुनाथ सिंह की मृत्यु 9 मार्च, 1920 को हुई। रघुनाथ सिंह के बाद राजा बलदेव सिंह उत्तराधिकारी हुआ जो अपनी जागीर नंदपुर में रहता था। इसे दीवानी तथा फौजदारी शक्तियां प्राप्त थीं।

जसवां

जसवां दून का उपजाऊ क्षेत्र अब होशियारपुर जिले में है। त्रिगर्त की राजधानी जालंधर से नगरकोट आने के कुछ समय बाद लगभग सन् 1170 में कटोच वंश के राजा पद्म चंद के छोटे भाई पूर्व चंद ने यहां एक अलग राज्य स्थापित किया। जालंधर या त्रिगर्त राज्य से अलग होने वाली यह पहली शाखा थी। पूर्व चंद ने अलग राज्य क्यों स्थापित किया, यह अज्ञात है।

जसवां के शासक ने कालांतर में राजपुरा राजधानी बनाई और राजवंश का नाम बदलकर 'जसवाल' रखा।

पूर्व चंद से लेकर गोबिंद चंद तक चौदह राजा हुए जिनके बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। ये राजा थे—पूर्व चंद, विश्व चंद, गोपाल चंद, सिरबालिक चंद, धूला चंद, सुलोचन चंद, औकी चंद, उधन चंद, नृपत चंद, उदरण चंद, भीख चंद, सिरकार चंद, मुबारक चंद, गोबिंद चंद।

गोबिंद चंद

सन् 1572 में जब कांगड़ा का राजा जय चंद मुगलों द्वारा दिल्ली में कैद कर लिया गया तो उसने अपने नाबालिग पुत्र को जसवां के गोबिंद चंद के सुपुर्द रखा जिसने कांगड़ा किले में मुगलों का मुकाबला किया। मुगल सेना को संधि करनी पड़ी और इसी बीच में उन्हें पंजाब में मिर्जाओं के आक्रमण को रोकने जाना पड़ा।

सन् 1588-89 में गोबिंद चंद के पौत्र अनिरुद्ध चंद ने कांगड़ा के विधि चंद के साथ विद्रोह में भागीदारी की यद्यपि विद्रोह के बाद सभी राजाओं को मुआफ कर दिया गया और मुगलों द्वारा इनके राज्य लौटा दिए गए। गोबिंद चंद का पुत्र विक्रम चंद था जिसके बारे में कुछ ज्ञात नहीं है।

जसवां द्वारा सन् 1594-95 के विद्रोह में भी भाग लिया गया। मुगल सेना ने पुनः विद्रोह दबा दिया और जसवां भी इनमें एक था जिसने अपनी सीमाएं छोटी होने और राज्य छिनने के भय से समर्पण करना पड़ा।

अतः गोबिंद चंद, अकबर तथा कांगड़ा के जय चंद का समकालीन था और उसका पौत्र अनिरुद्ध चंद कांगड़ा के विधि चंद का।

अनिरुद्ध चंद के बाद समीर चंद, मान सिंह, अजब सिंह, राम सिंह, अजीत सिंह, झगड़ सिंह, अभिराय सिंह, जगरूप सिंह, प्रीत सिंह, उमेद सिंह राजा हुए।

इन राजाओं के समय का कोई विवरण नहीं मिलता। अतः ये राजा दूसरे पहाड़ी राजाओं की तरह मुगलों के प्रति वफादार रहे होंगे।

उमेद सिंह

कांगड़ा में राजा संसार चंद का साम्राज्य था। उस समय जसवां भी संसार चंद के अधीन रहा। कांगड़ा पर गोरखों के आक्रमण के समय जसवां भी कांगड़ा के विरुद्ध था। इस समय उमेद सिंह शासक था। सन् 1809 में गोरखों के जाने पर जसवां रणजीत सिंह के अधीन आ गया। सन् 1815 में यह सिख राज्य का एक अंग बन गया।

महाराजा रणजीत सिंह ने सभी पहाड़ी राजाओं को सेनाओं सहित सियालकोट बुलाया। जसवां तथा नूरपुर के राजा वहां हाजिर नहीं हो सके अतः इन्हें इतना जुर्माना किया गया जिसे वे भर न सकें। अतः राजा उमेद सिंह ने राज्य छोड़ दिया और 12,000 रुपए वार्षिक की जागीर स्वीकार कर ली। अतः जसवां राज्य का अंत हो गया।

सन् 1848 में द्वितीय सिख युद्ध के समय उमेद सिंह ने ब्रिटिश सेना के विरुद्ध विद्रोह किया अतः उमेद सिंह तथा उसके पुत्र जय सिंह अल्मोड़ा भेजे गए जहां उन दोनों की मृत्यु हो गई। कुछ समय बाद जम्मू के महाराजा गुलाब सिंह की प्रार्थना पर जय सिंह के बेटे रन सिंह को वापस आने की स्वीकृति दी गई ताकि उसका बेटा रघुनाथ सिंह महाराजा की पौत्री से विवाह कर ले। उसे जम्मू में रामकोट में जागीर दी गई।

सन् 1877 में महाराजा रणवीर सिंह (जम्मू-कश्मीर) की सरकार से प्रार्थना पर राजा रनसिंह को जसवां की जागीर दे दी गई जो राजा उमेद सिंह की थी। इस जागीर में जसवां के 21 गांव, अम्ब का बाग और राजपुरा में उमेद सिंह के महल शामिल थे। रन सिंह का उत्तराधिकारी 1892 में मृत्यु के बाद राजा रघुनाथ सिंह हुआ जिसकी मृत्यु 1918 में हुई। इसके बाद राजा लक्ष्मण सिंह हुआ।

सीबा

सीबा राज्य की स्थापना राजा हरि चंद की चौथी पीढ़ी में गुलेर के राजा के छोटे भाई स्वर्ण चंद ने लगभग सन् 1450 में की। स्वर्ण चंद ने हरिपुर से व्यास नदी के पार दक्षिण में सीबा नामक नगर बसाया।

सिबर्ण या स्वर्ण चंद (1450-60) के बाद इस राजवंश में 25 राजा हुए—सिबर्ण चंद, हेमी चंद, प्रहलाद चंद, जीत चंद, उधन चंद, औतार चंद, रूप चंद, मानक चंद, निर्मोध चंद, जय चंद, कैलाश चंद, प्राग चंद, संसार चंद, नारायण चंद, त्रिलोक चंद, किशन चंद, पृथ्वी चंद, अमर चंद, जसवंत चंद, भाग सिंह, लेकल सिंह, माधो सिंह, शेर सिंह, गोबिंद सिंह, राम सिंह।

इन राजाओं के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। सीबा भी कांगड़ा तथा अन्य पहाड़ी राजाओं की तरह समय-समय पर मुगलों के अधीन रहा होगा।

जहांगीर के संस्मरणों में उल्लेख है कि जनवरी 1622 में जब जहांगीर नूरजहां बेगम तथा बेगम के पिता इतिमाद-उद-दौला के साथ कांगड़ा किला देखने आया तो वह सीबा में बहलून गांव में ठहरा। नूरजहां तथा उसके बीमार पिता यहीं रहे, जहांगीर आगे निकल गया। नूरजहां के पिता के गंभीर स्थिति में बीमार होने पर जहांगीर को रास्ते से वापस बुलाया गया। यहां इतिमाद-उद-दौला की मृत्यु हो गई।

संसार चंद के समय (1786 से 1806) गोरखा आक्रमण तक सीबा संसार चंद के अधीन रहा। उस समय सीबा का राजा गोबिंद सिंह था। संसार चंद के पतन के बाद सन् 1806 में गुलेर के राजा भूप सिंह ने 1808 में सीबा पर हमला कर अपने राज्य में मिला लिया। सन् 1809 में सीबा गुलेर सहित रणजीत सिंह के अधीन हो गया। सन् 1830 में सीबा को पुनः राजा गोबिंद सिंह को दे दिया गया। रणजीत सिंह ने इसे अपने मंत्री राजा ध्यान सिंह के कहने पर लौटाया क्योंकि सीबा की दो राजकुमारियां ध्यान सिंह के परिवार में ब्याही थीं। राजा गोबिंद सिंह से सीबा का किला ले लिया गया और राज्य को जागीर के रूप में छोड़कर 1500 रुपए कर के रूप में लगाया गया।

बाद में सीबा का क्षेत्र राजा गोबिंद सिंह तथा उसके चचेरे भाई मियां देवी सिंह में बांट दिया गया। गोबिंद सिंह को 20,000 रुपए की भूमि तथा देवी सिंह को 5000 रुपए की भूमि (तालुका कोटला) कर देने की शर्त पर छोड़ी गई।

राजा गोबिंद सिंह की मृत्यु 1845 में हुई और उसका पुत्र राम सिंह उत्तराधिकारी बना। द्वितीय सिख युद्ध के समय उसने सीबा किले से सिखों को निकाल दिया और देवी सिंह के पुत्र विजय सिंह को बाहर निकाला किंतु जागीर सौंप दी। राम सिंह की मृत्यु 1874 में बिना उत्तराधिकारी के हो गई अतः जागीर

विजय सिंह को 1500 रुपए कर की शर्त पर मिल गई। विजय सिंह के बाद उत्तराधिकारी जय सिंह हुआ जिसकी 1920 में मृत्यु हुई। उसके बाद राजा गजेंद्र सिंह हुआ जिसका 1926 में मृत्यु हो गई। गजेंद्र सिंह के बाद श्याम सिंह हुआ।

15 मार्च, 1919 को अंग्रेज सरकार द्वारा जय सिंह को सीबा के जागीरदार के रूप में 'राजा' की उपाधि दी गई थी।

दतारपुर

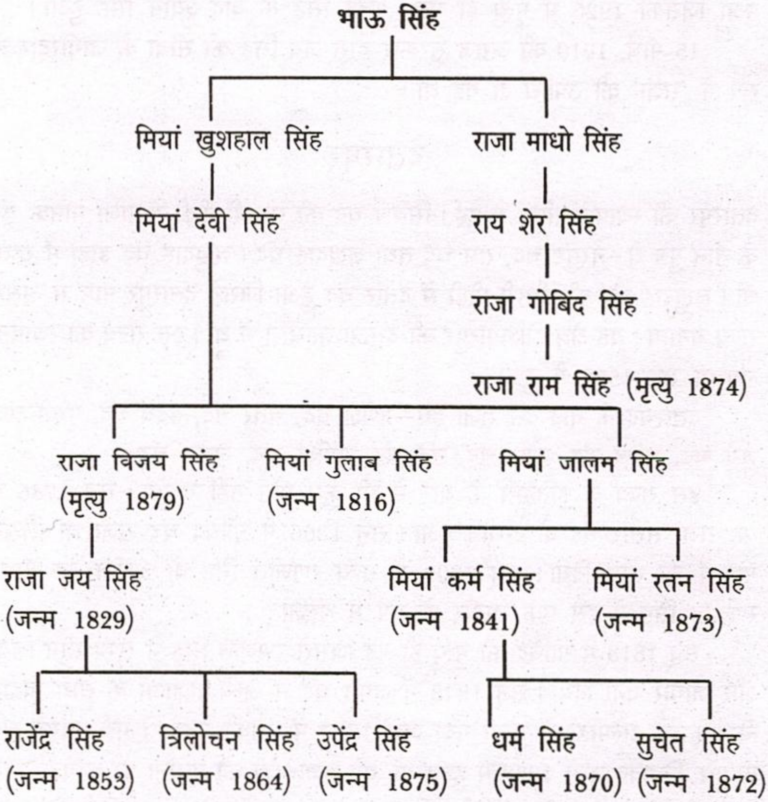
दतारपुर की स्थापना सीबा से हुई। सिबर्ण चंद की सातवीं पीढ़ी में राजा मानक चंद के तीन पुत्र थे—नरमुंड चंद, राम चंद तथा लखुदाह चंद। लखुदाह चंद डाडा में रहता था। लखुदाह चंद की तीसरी पीढ़ी में दतार चंद हुआ जिसने दतारपुर नाम से अलग राज्य बनाया। यह क्षेत्र होशियारपुर की दसुआ तहसील में था। इस राज्य की स्थापना लगभग सन् 1550 में हुई।

दतारचंद के बाद दस राजा हुए—गणेश चंद, चतर चंद, उदय चंद, पृथ्वी चंद, जय चंद, दलेल चंद, उगर चंद, नंद चंद, गोबिंद चंद, जगत चंद।

इस राज्य के इतिहास के बारे में भी कुछ पता नहीं चलता। सन् 1786 में यह राजा संसार चंद के अधीन हुआ। सन् 1806 में गोबिंद चंद राजा था जिसने गोरखों का साथ दिया। सन् 1809 में राज्य रणजीत सिंह के अधीन आ गया। रणजीत सिंह ने इसे एक जागीर के रूप में बख्शा।

सन् 1818 में गोबिंद की मृत्यु हो गई जिससे रणजीत सिंह ने राज्य छीन लिया और जागीर बना दिया। सन् 1848 में जगत चंद ने अन्य राजाओं के साथ विद्रोह किया। उसे अल्मोड़ा ले जाया गया जहां 1877 में उसकी मृत्यु हो गई। जगत चंद के पुत्र, जिसका जन्म 1838 में हुआ था, को राजा मंडी की प्रार्थना पर कांगड़ा आने दिया गया कि इसे जागीर नहीं दी गई। इसका नाम मियां देवी चंद था जिसकी 1883 में मृत्यु हो गई। मियां देवी चंद के दो पुत्र थे—सूरमा चंद, जो जम्मू में रहा और रघुवीर चंद, जो मंडी में रहा। तीसरे पुत्र उधम सिंह के उत्तराधिकारी होशियारपुर जिले में पृथीपुर में रहे जिन्हें अंग्रेज सरकार ने 600 रुपए पेंशन दी। रघुवीर सिंह का बेटा मियां बलदेव चंद दतारपुर में रहा।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची (सीबा)



राजा जय सिंह की जागीर सीबा और कोटला ताल्लुकों के 42 गांवों में थी जिसमें राजा को जुडीशियल अधिकार था। राजा की रानी बिलासपुर से थी। मियां कर्म सिंह के बेटों को रियासत जम्मू से प्रति व्यक्ति 720 रुपए वार्षिक मिलते थे।

नूरपुर

नूरपुर राज्य उत्तर में चंबा, पूर्व में कांगड़ा तथा गुलेर, दक्षिण में पंजाब, पश्चिम में रावी नदी की सीमाओं से घिरा हुआ था। पठानकोट, कांगड़ा की नूरपुर तहसील, शाहपुर-कंडी, रावी नदी की ओर जम्मू का लखनपुर इसी राज्य में था। इस राज्य का केंद्र पठानकोट था जिसका नाम कभी प्रतिष्ठानपुर था। प्रतिष्ठान अर्थात् दृढ़ता से स्थापित स्थान। उत्तर पश्चिम फ्रंटियर के पठानों से जोड़ने पर इसे नगरकोट, स्यालकोट की भांति पठानकोट भी माना जाता है।

प्राचीन समय में नूरपुर औदुम्बर गण का एक भाग था। इस क्षेत्र में औदुम्बरों की मुद्राएं भी मिली हैं। औदुम्बर गण कुशाणों के अधीन रहा। यशोवर्मन की शक्ति क्षीण होने पर यह क्षेत्र त्रिगर्त के अधीन आ गया। अलबरूनी ने जालंधर की राजधानी 'दाहमला' लिखी है, नूरपुर को पुराने समय में 'धमेड़ी' कहते थे। सन् 1070 में महमूद गजनवी के वंशज इब्राहीम ने धमेड़ी की पहाड़ी पर स्थित दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस समय तक जालंधर की राजधानी नगरकोट आ चुकी थी। जब इब्राहीम का अधिकार धमेड़ी से समाप्त हुआ तो स्थानीय राजा ने स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर लिया।

नूरपुर राज्य की स्थापना की सही तिथि ज्ञात नहीं है। त्रिगर्त की विभिन्न शाखाओं में नूरपुर का पहला स्थान आता है। नूरपुर में लगभग तीस शासक हुए। अंतिम शासक वीर सिंह की मृत्यु 1846 में हुई। अतः राज्य की स्थापना लगभग सन् 1095 में हुई होगी जैसा कि कनिंघम ने माना है। कनिंघम जब नूरपुर आया तो राजवंश संबंधी दस्तावेज मुस्लिम तथा सिख लड़ाइयों के कारण नष्ट हो चुके थे किंतु उसे 95 वर्षीय वृद्ध ब्राह्मण से, जिसका नाम देवी सिंह था, पर्याप्त सूचना मिली। इसके साथ मियां रघुनाथ सिंह, जो राजवंश की रे शाखा से थे, के पास भी कुछ जानकारी थी जो उतनी सही नहीं थी।

नूरपुर के शासक 'पठानिए' कहलाते हैं। नूरपुर के शासकों का अधिकार आरंभ में पठानकोट पर रहा होगा। अतः वे पठानिए कहलाए। पंजाब तथा मैदानों के लिए पठानकोट एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि यह पहाड़ के आधार पर रावी तथा व्यास के बीच स्थित है। व्यापार की दृष्टि से तथा पहाड़ों की ओर आने के लिए यह महत्त्वपूर्ण पड़ाव रहा है। तभी इस स्थान पर कई पुरातन सिक्के प्राप्त हुए हैं। यूनानी, मुस्लिम, कांगड़ा या नगरकोट सभी राजाओं के सिक्के यहां मिले हैं। कश्मीर के राजाओं के केवल दो सिक्के मिले हैं, जैसा कि कनिंघम ने लिखा है। ईसवी के आरंभ के छह सिक्के बहुत महत्त्वपूर्ण हैं जो यहां से मिले हैं। ये सिक्के चौकोर तथा लंबे आकार के तांबे के हैं जिनमें सामने मंदिर है तथा पीछे हाथी है। मंदिर के अलावा

स्वस्तिक चिह्न तथा नाग है। हाथी के साथ वृक्ष है जिसके साथ औदुम्बर वृक्ष है। इसी कारण इस गण का नाम औदुम्बर पड़ा। नूरपुर का नाम धमेड़ी या धर्मेडी कब पड़ा, यह ज्ञात नहीं है। जहांगीर ने अपनी बेगम नूरजहां के नाम पर इसका नाम नूरपुर रखा।

पाणिनि के अनुसार जिस क्षेत्र में औदुम्बर वृक्ष होते हैं, वह औदुम्बर है। नूरपुर में औदुम्बर वृक्ष बहुतायत में है। महाभारत में भी औदुम्बर गण का उल्लेख आता है। प्रो. रेपसन ने लिखा है कि औदुम्बरों का देश पंजाब में स्थित था जहां पुरातन ब्राह्मी-खरोष्ठी लिपि का प्रयोग होता था। गुरदासपुर में कुछ सिक्के मिले हैं जिन पर यूनानी प्रभाव है।

अतः पुरातन औदुम्बर में पठानकोट तथा नूरपुर के क्षेत्र थे। राजधानी प्रतिष्ठान थी जहां धराघोष का राज्य था। धराघोष के सिक्कों का काल रेपसन के अनुसार 100 ई. है। अकबर के समय तक इसे धमेड़ी कहा गया, जहांगीर ने नूरपुर बनाया।

औदुम्बरों से लेकर नूरपुर बनने तक इतिहास अंधकारमय है। धमेड़ी का किला इब्राहिम के आने तथा राजा बासु के पहले से रहा होगा। राजा बासु (1580-1613) ने इस किले का जीर्णोद्धार किया। •

नूरपुर का किला पठानकोट से नूरपुर आते हुए सामने दिखता है। खड़ी पहाड़ी के ऊपर किला तथा शहर है। किले में एक मंदिर है जिसे राजा बासु द्वारा बनाया बताया जाता है। एक ठाकुरद्वारा है जो राजा जगत सिंह के पौत्र मांधाता ने बनवाया। मंदिर पूरी तरह दब चुका था जिसे सन् 1886 में सी.जे. रोगर्ज़, पंजाब के पुरातात्त्विक सर्वेयर ने खोजा। इस मंदिर का आधार ही बचा था जो हिंदू मुगल शैली में है। यह संभवतः 1618 में सूरजमल के समय गिराया गया। ठाकुरद्वारे में कृष्ण की काले संगमरमर की प्रतिमा है।

पठानकोट का किला सन् 1849 में गिराया गया जिसकी ईंटें माधोपुर में बड़ी दोआब नहर बनाने में इस्तेमाल की गईं। कनिंघम के अनुसार बड़े आकार की ये ईंटें बहुत पुरानी थीं।

नूरपुर तथा पठानकोट के राजा पांडवों के वंश पर पंडीर कहलाते हैं। ये चंद्रवंशी हैं और दिल्ली के तोमर वंश से अपने को मानते हैं।

राजा बख्तमल, जो अकबर का समकालीन था, तक का इतिहास अटकलों से भरा है। इसके बाद मुस्लिम इतिहासकारों ने यहां के शासकों पर प्रकाश डाला है।

कनिंघम तथा मियां रघुनाथ सिंह की राजाओं की सूचियां भिन्न-भिन्न हैं। कनिंघम द्वारा वृद्ध ब्राह्मण देवी सिंह से बनाई सूची अधिक सही है। कनिंघम ने एक राजा को बीस या पच्चीस वर्ष देकर 1095 ई. इस राजवंश की आधार तिथि

निर्धारित की है।

प्रथम शासक जीतपाल (1995) था जो दिल्ली के तोमर वंशीय शासक का छोटा भाई था। जीतपाल दिल्ली से इस ओर आया। उस समय पठानकोट किसी पठान शासक के अधीन था जिसे जीतपाल ने निकाल दिया।

आईने-अकबरी, तुजुक-ए-जहांगीरी, बादशाहनामा सब में, पठानकोट को पठान ही कहा गया है।

यद्यपि यह पूर्णतया संदेहास्पद है तथापि जीतपाल (1095) के बाद ये तेरह राजा हुए—क्षेत्रपाल, सुखिनपाल, जगतपाल, रामपाल, गोपालपाल, अर्जनपाल, वर्षपाल, जतनपाल, विदर्धपाल, जघानपाल, किरतपाल, कखोपाल, जशपाल।

जशपाल (1313)

जशपाल अलाउद्दीन खिलजी (1295-1316) और मुहम्मद बिन तुगलक (1325-51) का समकालीन था। मुहम्मद बिन तुगलक ने नगरकोट पर आक्रमण किया अतः नूरपुर भी इस आक्रमण से बचा नहीं रहा होगा। कहा जाता है कि जशपाल के नौ पुत्र थे जिनमें से प्रत्येक ने पठानिया वंश की नींव रखी। अतः पठानिया वंश की बाईस शाखाएं बनीं। जशपाल का शासन 1353 तक रहा।

कैलासपाल (1353)

जशपाल के बाद उसका पुत्र कैलासपाल राजा बना। कहा जाता है कैलासपाल ने पंजाब में आक्रमण के समय खोरसान के सूबेदार ततार खान को जख्मी कर परास्त किया। इस कार्य के लिए दिल्ली के सुलतान ने 5000 का मनसब बख्शा। परंपरा के अनुसार कैलासपाल और मुहम्मद तुगलक के सूबेदार ततार खान के बीच कोई विवाद हुआ था। यदि ऐसा होता तो ततार खान गोरखाओं के साथ युद्ध में मारा गया होता। यह घटना सन् 1342 से पहले की रही होगी। तवारीख़-राजगान-ए-पठानिया (पृष्ठ 57) में उल्लेख है—

जो मुख देखन आरसी सीस दिल कन्नदा।
माथे फट ततार खां कैलास आनदा।

कैलासपाल ने रावी नदी से पठानकोट तक रांकी कुल्ह बनवाई जो अब तक विद्यमान है। कैलास का समय 1353 से 1397 आंका गया है।

नागपाल (1397-1438)

नागपाल कैलासपाल का सबसे बड़ा पुत्र था। जनश्रुति है कि उसके साथ एक

नाग पैदा हुआ था। नाग को एक बावड़ी में रखा गया और इसे पठानिया वंश का कुलज माना जाने लगा। नागपाल से पठानिंया वंश की शाखाएं निकलीं।

नागपाल का समय यदि सही है तो इस समय तैमूर (1398-99) का आक्रमण हुआ। पहली जनवरी को (1399) तैमूर दिल्ली से हरिद्वार होता हुआ शिवालिक पहाड़ियों में आया। नगरकोट न पहुंचकर वह बजवाड़ा, दसूआ, पठानकोट, नूरपुर होता हुआ शाहपुर कंडी को पार कर लखनपुर, जसरोटा, साम्बा होता हुआ जम्मू चला गया।

नागपाल के बाद पृथ्वीपाल (1438-73) राजा हुआ जिसके समय की कोई घटना ज्ञात नहीं।

भीलपाल (1473-1513)

भीलपाल दिल्ली के सिकंदर लोधी (1488-1516) का समकालीन था। कहा जाता है राजा ने सिकंदर लोधी की लड़ाइयों में सहायता की और ईनाम पाए। इस राजा का उल्लेख मुस्लिम इतिहास में पहला उल्लेख है। यद्यपि यह क्षेत्र मुस्लिम साम्राज्य के अधीन बहुत पहले आ गया था। पठानिया राजाओं ने अपने राज्य को बचाए रखने के लिए इनके अधीन रहना मुनासिब समझा। मुस्लिमों का साथ अन्य लड़ाइयों में देने के कारण नूरपुर की सीमाएं पंजाब तक बढ़ीं।

बख्तमल या भक्तमल (1513-58)

इस राजा के साथ 'पाल' से 'मल' नाम के साथ लगना शुरू हुआ। बख्तमल अपने पिता की भांति लोधी वंश के साथ संबद्ध रहा। सन् 1526 में बाबर के समय यह राज्य मुगल सल्तनत के अधीन आ गया किंतु जब शेरशाह सूरी ने हुमायूं को भगा दिया तो बख्तमल ने सूर वंश के साथ वफादारी निभाई।

तारीख़-ए-दौदी में उल्लेख है कि माउकोट नामक किला सलीम शाह सूरी (1543-53) ने राजा बख्तमल के समय बनवाया। शेरशाह सूरी के पुत्र शेरशाह का बेटा था जिसने रोहतास (झेलम के पास) तथा माउकोट का किला अपनी सुरक्षा के लिए बनाया। फरिश्ता ने लिखा है कि सलीमशाह सूरी वहां बाल-बाल बचा।

तारीख़-ए-दौदी के अनुसार इस्लामशाह (सलीमशाह) कुछ समय गुलेर में रहा और फिर माउकोट या मानकोट किला बनाया। उसने पांच किलों का निर्माण किया। इस किले का प्रथम उल्लेख अकबरनामा में है। सन् 1553 में हुमायूं का छोटा भाई मिर्जा कामरान काबुल से भगाने पर भारत आया और सलीमशाह सूरी के पास रहा। वह बंदी था किंतु भागने में सफल हुआ और राजा बखु के पास गया। यह बखु संभवतः पठान का बख्तमल ही था। सन् 1555 में जब हुमायूं ईरान से वापस आया

तो उसका सामना पंजाब के सूबेदार सिकंदरसूर से हुआ। सिकंदरशाह हार गया और शिवालिक पहाड़ियों की ओर भागा। उसने माउकोट किले में शरण ली। बख्तमल ने सिकंदरशाह की सहायता की। किले का घेराव छह मास तक चला और अंत में आत्मसमर्पण करना पड़ा। सिकंदरशाह को बंगाल जाने दिया गया जहां उसे जागीर दे दी गई। बख्तमल बंदी बनाकर लाहौर ले जाया गया जहां बहराम खान ने उसे मार दिया। यह घटना 1588 में हुई।

इस घटना का मुआसिर-उर-उमरा में भी उल्लेख किया गया है।

बख्तमल ने शाहसूरी वंश के नाम पर शाहपुर का किला बनवाया।

तख्तमल (1558-80)

तख्तमल बख्तमल का भाई था। इसे मुस्लिम इतिहासकारों ने तख्तमल कहा है जबकि कनिंघम ने बिहारीमल और हचिसन बोगल ने पहाड़ीमल। अकबर के समय में पठानिया राजा मुगलों के प्रति वफादार रहा। पठानकोट में राजधानी खतरे से खाली न रहने के कारण तख्तमल ने राजधानी पठानकोट से धमेड़ी या नूरपुर लाने की सोची किंतु इस योजना के कार्यान्वयन से पहले ही राजा की मृत्यु हो गई। तख्तमल की मृत्यु 1580 में हुई।

बास देव या बासु देव (1580-1613)

बासु देव बख्तमल का पुत्र था जिसे अकबरनामा में माउ और पठान का जमींदार कहा गया है। राजा बनते ही बासु देव ने राजधानी धमेड़ी बदल दी जिसका नाम इसके पुत्र जगत सिंह ने जहांगीर के नाम पर नूरपुर रखा। जहांगीर का नाम 'नूर-उद-दीन' था। किंतु कनिंघम ने कहा है कि यह नाम नूरजहां के नाम पर पड़ा।

सन् 1585 में बासु देव के संबंध अकबर से बिगड़ गए और उसने विद्रोह कर दिया। गजनी की विजय के बाद अकबर कुछ समय के लिए पंजाब में रहा। किसी कारण अकबर को भी संदेह हो गया और उसने ध्वज बेग शेख उमेरी को विद्रोह दबाने के लिए भेजा। मुगल सेना पठानकोट पहुंच गई। राजा टोडरमल ने उसे पत्र लिखा जिसे पाकर वह मुगल दरबार पहुंचा और क्षमा-याचना की। ऐसे विद्रोह पहाड़ों में होते रहे। कांगड़ा के राजा विधि चंद (1885-1605) के नेतृत्व में भी विद्रोह हुआ जिसमें राजा बासु ने भी भाग लिया। अकबर ने जैन खान कोका को विद्रोह दबाने के लिए भेजा अतः विद्रोह दबा दिया गया। आईने-अकबरी में लिखा है—राजा विधि चंद (नगरकोट), राय प्रताप (मानकोट), राजा परस राम (माउंट जम्मू), राजा बासु (माउ), राय बलभादर (लखनपुर) आदि ने जैन खान के दरबार में आत्मसमर्पण किया जबकि इनके पास 10,000 घुड़सवार तथा एक लाख पैदल सिपाही थे।

सन् 1594-95 में पुनः कुछ पहाड़ी राजाओं ने विद्रोह किया। इस विद्रोह से नाराज अकबर ने पठानकोट तथा साथ के इलाके मिर्जा रुस्तम कंधारी को दे दिए और कंधारी तथा आसण खां को भेजा। किंतु बाद में मिर्जा रुस्तम को वापस बुलाकर अजमेर के राजा मान सिंह के पुत्र जगत सिंह को भेजा। माउकोट घेर लिया गया। दो मास के घेराव के बाद राजा बासु ने समर्पण किया। राजा को माफ कर दिया गया किंतु पठानकोट का क्षेत्र मुगल साम्राज्य में मिला लिया। सन् 1602-03 में बासु ने मौका पाकर विद्रोह किया जिसे दबा दिया और जहांगीर के कहने पर माफ किया। सन् 1603-04 में राजा बासु ने फिर विद्रोह किया। इस बार भी हार हुई अतः जहांगीर के पास क्षमा-याचना के लिए जाना पड़ा। अकबर ने राजा को पकड़ने के आदेश दिए किंतु वह भाग निकला।

अकबर ने राजा बासु को 1500 का मनसब दिया तो जहांगीर ने इसे बढ़ाकर 3500 कर दिया। जहांगीर से बासु के संबंध अच्छे रहे। जब खुसरो (शाहजहां) ने विद्रोह किया तो उसे पकड़ने के लिए बासु को लगाया गया। खुसरो चिनाव के किनारे पकड़ा गया।

जहांगीर ने सन् 1611 में राजा बासु को सेना देकर मेवाड़ भेजा और मनसब बढ़ाकर 4000 कर दिया। उसे तलवार भेंट की गई। सन् 1611 में विलियन फिंच ने राजा बासु को देखा। राजा बासु का चित्र जहांगीर के साथ बना हुआ था जहां वह जहांगीर के बाईं ओर खड़ा दिखाया गया है। राजा बासु का उल्लेख तुजुक-ए-जहांगीरी (1606) में भी है—'उन दिनों राज्य के बहुत से सेवकों को ऊंची पदवियां मिलीं जिनमें दिलावर खान अफगान को 1500, पंजाब के पहाड़ी राज्य के जमींदार राजा बासु को, जब वह शहजादा था तब से लेकर वफादार रहा, 1500 से 3500 का मनसब दिया गया।'

दूसरा संदर्भ खुसरो के भागने के समय आता है—'खुसरो के भागने की शाम, मैंने राजा बासु, जो लाहौर के पहाड़ी देश का जमींदार था, को फ्रंटियर जाने के लिए कहा और जहां कहीं खुसरो मिले उसे ढूंढ़ने और पकड़ने का प्रयास करें।' तीसरा संदर्भ 1607 का है जब अब्दुला खान रामचंद बुंदेला को जंजीरों में जकड़कर लाया। इसे राजा बासु के हवाले किया गया।

सन् 1611 के बाद 1613 में जब राजा बासु को एक दूसरे अभियान में भेजा गया, राजस्थान के शाहबाद, झालावाड़ में राजा बासु की मृत्यु हो गई।

राजा बासु ने नूरपुर के किले को सुदृढ़ बनाया। नूरपुर के दक्षिण में आम का बाग लगवाया जिसका उल्लेख बादशाहनामा में है और आज भी राजा का बाग नाम से जाना जाता है।

सूरजमल (1613-18)

राजा बासु के तीन पुत्र थे—सूरजमल, जगत सिंह और माधो सिंह। जहांगीर नहीं चाहता था कि सूरजमल राजा बने क्योंकि वह उपद्रवी था। किंतु दूसरे दोनों भाई योग्य नहीं थे। एक बार तो राजा बासु ने उसे बंदी भी बना लिया था। किंतु दूसरे दो भाई निष्क्रिय होने से जहांगीर ने सूरजमल को राजा बनाया और 2000 का मनसब प्रदान किया।

जहांगीर को उस समय प्रसिद्ध कांगड़ा किले को जीतने की तमन्ना थी। कांगड़ा के राजा हरिचंद के समय जहांगीर ने पंजाब के सूबेदार शेख फरीद मुर्तजा को कांगड़ा किले पर हमले के लिए भेजा और सूरजमल से मुर्तजा की सहायता करने को कहा। सूरजमल नहीं चाहता था कि यह किला मुगलों के अधीन हो जाए अतः उसने सैनिक अभियान में बाधा डालनी आरंभ कर दी। मुर्तजा ने बादशाह को शिकायत भेजी। अपने विरुद्ध स्थिति बिगड़ते देख सूरजमल ने शहजादे खुर्रम (शाहजहां) को अपने मुर्तजा के साथ मनमुटाव के बारे में लिख भेजा। अतः बचाव हो गया। सन् 1616 में मुर्तजा खान की पठानकोट में मौत हो गई अतः कांगड़ा किले को जीतने का मसला टल गया।

इस घटना के बाद सूरजमल को दरबार में बुलाया गया और सम्मान किया। उसे शाहजहां की सेना में दक्षिण के अभियान में भेज दिया गया। सन् 1617 में दक्षिण में अभियान खत्म होने पर वह दिल्ली आया तो उसने शहजादा खुर्रम (शाहजहां) से कांगड़ा किले को जीतने का प्रस्ताव रखा जिसे बादशाह ने स्वीकार कर लिया। सितंबर, 1617 में सूरजमल तथा शाह कुली खान मुहम्मद तकी, जो खुर्रम का बख्शी था, ने बादशाह से मुलाकात की और अपनी योजना रखी। शाहजादा खुर्रम को अभियान का नेता बनाया गया जिसने इसे सूरजमल तथा शाह कुली खान की संयुक्त कमान में रखा किंतु साथ नहीं गया।

सूरजमल ने कांगड़ा पहुंचने पर शाह कुली खान से झगड़ा कर लिया और शाहजहां को शिकायत भेज दी कि शाह कुली खान अभियान में बाधा डाल रहा है। शाहजहां ने शाह कुली खान को वापस बुला लिया। सूरजमल ने सेना का नेतृत्व संभाल लिया और सैनिकों को कहा कि रसद खत्म हो गई है अतः सभी अपनी जागीरों को लौट जाएं। अतः अभियान के साथ आई थोड़ी-सी मुगल सेना शेष रह गई। सूरजमल ने अब विद्रोह कर दिया। मुगल इलाके में छापे मार लूटमार आरंभ कर दी। मुगल सेना ने इसे रोकना चाहा जिसे मार भगाया गया।

जहांगीर इस समय अहमदाबाद में था, उसने विद्रोह दबाने के लिए सुंदरदास राय राईयां को भेजा। सुंदरदास राय राईयां, जिसे बाद में विक्रमाजीत कहा जाने लगा,

को सूरजमल ने खुश करने का प्रयास किया किंतु ऐसा नहीं हो पाया। जहांगीर ने सूरज के भाई जगत सिंह को, जो बंगाल में था, सुंदरदास की सहायता के लिए भेजा। अब सूरजमल ने माउकोट के किले में शरण ली जहां मुगल सेना ने घेरा डाल दिया। सूरजमल किसी तरह से किले से भागने में कामयाब हो गया और चंबा चला गया। कुछ समय बाद चंबा में उसकी मृत्यु हो गई।

कोटला किला सबसे छोटे भाई माधो सिंह के अधिकार में था। सुंदरदास ने तीस दिन तक घेराव के बाद यह किला भी ले लिया। माधो सिंह भी चंबा भाग गया। सूरजमल की मृत्यु के बाद सुंदरदास ने चंबा के राजा से उनकी सारी संपत्ति वापस मंगवाई जो राजा चंबा द्वारा लौटा दी गई।

राय राईयां ने जगत सिंह की सहायता से कांगड़ा किले पर घेराव डाला जो चौदह महीने से अधिक चला।

जगत सिंह (1619-1646)

जब सूरजमल राजा बना था तो जगत सिंह को 300 का मनसब देकर बंगाल भेजा गया। सूरजमल के विद्रोह पर उसे बंगाल से बुलाया गया। जल्दबाजी में उसे बादशाह ने 1000 मनसब बख्शी। 500 घोड़े, राजा की उपाधि के साथ 20,000 रुपए नकद, जवाहरातों जड़ी तलवार, एक घोड़ा तथा एक हाथी दिया गया। उसे राय-राईयां के पास भेजा गया जो कांगड़ा किला जीतने के लिए भेजा गया था।

कांगड़ा किला जीतने के बाद (नवंबर, 1620) संभवतः जगत सिंह नूरपुर रहने लगा। सन् 1622 के बसंत में जहांगीर कांगड़ा घाटी में आया। वह सीबा होकर आया और नूरपुर पठानकोट होकर लौटा।

नूरजहां धमेड़ी की प्राकृतिक सुंदरता से इतनी प्रभावित हुई कि उसने वहां अपने लिए महल बनाने का आदेश दिया। जहांगीर ने अपने कोष से इस कार्य के लिए एक लाख रुपए दिया। महल का काम भी आरंभ कर दिया गया जिससे जगत सिंह का माथा ठनका। वह नहीं चाहता था कि महल यहां बने। अतः जगत सिंह ने ऐसे आदमियों को काम पर लगाया जिन्हें गले में गिल्लड़ (घेंगे) थे। कांगड़ा, नूरपुर क्षेत्र में कई आदमियों को गिल्लड़ थे। एक बार जब नूरजहां महल के कार्य का निरीक्षण करने गई तो कुरूप मजदूरों को देख परेशान हो गई। उसे बताया गया कि नूरपुर की जलवायु के कारण यहां यह बीमारी सबको हो जाती है। नूरजहां ने वहां महल बनाने का विचार छोड़ दिया।

जब जहांगीर नूरपुर आया तो जगत सिंह ने उसके सम्मान में धमेड़ी का नाम नूर-उद-दीन जहांगीर के नाम पर नूरपुर रख दिया।

सन् 1623 में शहजादे खुर्रम ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जगत सिंह शहजादे के साथ रहा था अतः उसे पहाड़ों में विद्रोह फैलाने के लिए कहा गया। जहांगीर ने पंजाब के सूबेदार साहिक खान को विद्रोह दबाने भेजा। माधो सिंह, जगत सिंह के छोटे भाई को राजा की उपाधि देकर साथ भेजा गया। जगत सिंह ने माउकोट में शरण ली। आत्मसमर्पण के बाद उसे क्षमा कर दिया गया। जगत सिंह को नूरजहां बेगम की सिफारिश पर क्षमा किया गया।

जगत सिंह ने जहांगीर से अच्छे संबंधों का लाभ उठाकर अपने राज्य का विस्तार किया। बसौली के विरुद्ध मुगलों को उकसाकर जगत सिंह ने बसौली के राजा भूपत सिंह (1614-15) को दिल्ली में बंदी बना दिया। जगत सिंह ने बसौली पर अधिकार कर अपने अधिकारी वहां लगा दिए। भूपत सिंह लगभग चौदह वर्ष कैद रहा। सन् 1628 में कैद से छूटकर आया तो बसौली में राज करने लगा। किंतु कुछ समय बाद भूपत सिंह पुनः दिल्ली गया जहां जगत सिंह ने उसे मार दिया।

इसी तरह जगत सिंह ने लाहौर के सूबेदार की सहायता से चंबा से बारह वर्ष तक लड़ाई की और सन् 1623 में उसे धोखे से मार दिया। अतः लगभग बीस वर्ष तक जगत सिंह ने चंबा पर राज किया। जगत सिंह ने गुलेर के मान सिंह और सुकेत के राजा श्याम सेन को भी झूठे आरोप लगाकर शाहजहां के पास बंदी बना दिया। बादशाहनामा में इन्हें 'जगत सिंह के घातक शत्रु' कहा गया है।

यह भी कहा जाता है कि जगत सिंह ने अपने दामाद मंडी के राजा को भी मारने की योजना बनाई थी जब वह अपने विवाह के लिए नूरपुर आया। किंतु योजना सफल नहीं हुई और राजा मंडी भाग गया।

मुआसिर-उल-उमरा में उल्लेख है कि जहांगीर की मृत्यु से पहले राजा जगत सिंह को 3000 पैदल तथा 2000 घुड़सवारों की मनसब प्रदान की जा चुकी थी। शाहजहां के सन् 1627 में बादशाह बनने पर उसे अपनी पदवी में पक्का किया गया और आठवें वर्ष (1634) में उसे कुर्रम का थानेदार बनाया गया और दो वर्ष बाद उसे काबुल भेज दिया गया। वहां जगत सिंह ने जलाल के पुत्र करीम दाद को पकड़कर शोहरत हासिल की। ग्यारहवें वर्ष (1637) जगत सिंह को कंधार भेजा गया। कंधार के बाद वह बस्त गया जहां लड़ाई लड़ी। बारहवें वर्ष (1638-39) में वह लाहौर वापस आया। बादशाह से कई पुरस्कार पाए और निचले कुर्रम और कोहात का फौजदार तैनात किया गया।

जगत सिंह के बड़े पुत्र राजरूप को, जो नूरपुर में रहा, कांगड़ा के कोहे-दामन का फौजदार नियुक्त किया गया और सभी पहाड़ी राजाओं से चार लाख रुपए नजराना इकट्ठा करने के लिए लगाया गया।

बादशाहनामा में उल्लेख है कि सन् 1640 में जब बादशाह कश्मीर में था, राजरूप द्वारा बगावत कर दी गई। जगत सिंह इस समय कुर्रम-कोहात में था। उसने शाहजहां से अपील की कि यदि उसे कांगड़ा कोहे-दामन का फौजदार बना दिया जाए तो वह सभी पहाड़ी राजाओं को चार लाख नजराना देगा। जगत सिंह की प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। जब वह नूरपुर आया तो पुनः विद्रोही हो गया। अतः बादशाह ने एक अधिकारी जांच के लिए भेजा। जांच में विद्रोह के स्वर पुष्ट होने पर बादशाह ने अपने सबसे छोटे भाई मुराद बख्श की कमान में सेना भेजी। मुराद बख्श तब काबुल में था। वह 1641 में सियालकोट होता हुआ पठानकोट पहुंचा। जगत सिंह ने माउकोट, नूरपुर, तारागढ़ किला को सुदृढ़ कर लिया था। जगत सिंह ने बड़ी मुगल सेना से पूरा संघर्ष किया। माउकोट में जगत सिंह स्वयं रहा और नूरपुर में राजरूप। अक्तूबर 1641 में घेराबंदी शुरू हुई। जगत सिंह अपने दो पुत्रों सहित तारागढ़ भाग गया और दो दिन बाद नूरपुर किले का समर्पण हुआ। मार्च में तारागढ़ को भी समर्पण करना पड़ा।

जगत सिंह ने अपने पुत्रों सहित बादशाह के दरबार में आत्मसमर्पण किया। किंतु इन्हें पुनः मुआफ कर दिया गया और सभी मान-सम्मान वापस दिए गए।

जगत सिंह ने उत्तर-पश्चिम में कई अभियानों में भाग लिया और वीरता से युद्ध किए। सन् 1645 में जगत सिंह बदखशां गया। जगत सिंह के पास चौदह हजार राजपूत सैनिक थे। उन्होंने उजबेकों के विरुद्ध वीरता का परिचय दिया। राजा जगता की वीरता के किस्से आज भी गाए जाते हैं। नूरपुर के एक कवि गंभीर राय ने लिखा है–

जगत राजा भगता राजा बास देव का जाया।
सिंधु मारे, सागर मारे, हिमाचल डेरा लाया।
आकाश को अरबा कीता ता जगता कहाया।

इस युद्ध में विजय के बाद राजपूतों का बड़ा नाम हो गया। राजपूतों ने नदियों को फलांगते, बर्फ को रौंदते उजबेकों के छक्के छुड़ाए। राजा ने इस युद्ध में स्वयं बर्फ काटा, स्वयं भाला चलाया। इस अभियान से जब जगत सिंह सन् 1646 में वापस आ रहा था तो पेशावर में उसकी मृत्यु हो गई। एलफिंस्टन ने उजबेकों के साथ युद्ध में राजा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

जगत सिंह नूरपुर का प्रतापी और बहादुर राजा हुआ जिसने कई लड़ाइयां लड़ीं। बादशाहनामा में जगत सिंह के समय का विस्तृत वर्णन मिलता है।

राजरूप सिंह (1646-1661)

जब जगत सिंह की मृत्यु हुई, राजरूप सिंह बदखशां में था। शाहजहां ने तुरंत उसे 1500 पैदल तथा 1000 घुड़सवार की मनसब की खिल्लत भेजी। उसे राजा की उपाधि दी गई और किले की कमान भी सौंपी गई। काबुल के खजाने से उसे 2000 पैदल और 500 घुड़सवार का मनसब देने का भी हुक्म हुआ। राजरूप सिंह को मुराद बख्श के अधीन लगाया गया जो बख्श तथा बदखशां को जीतने के लिए भेजा गया था। कंधार पहुंचने पर राजरूप सिंह को किले की कमान दी गई और उसकी पदवी 2000 पैदल, 1500 घुड़सवार की मनसब तक बढ़ाई गई। उसे रत्नजड़ित तलवार दी गई। उसने उजबेकों के साथ लड़ाई की और उन्हें हराने में सफल रहा। सन् 1647 में उसकी पदवी 2000 पैदल तथा घुड़सवारों तक बढ़ाई गई।

राजरूप सिंह इसके बाद एक लड़ाई में घिर गया और जख्मी हुआ किंतु अंत में दुश्मनों को भगाने में सफल हुआ। सन् 1649 में वह 2500 पैदल तथा घुड़सवारों की मनसब तक पहुंच गया और खलील बेग के स्थान पर क्रमांडर लगाया गया। सन् 1652 में उसकी पदवी 500 और बढ़ाकर शहजादे औरंगजेब के साथ कंधार भेजा गया।

राजरूप सिंह ने मुगलों के लिए कई लड़ाइयां कंधार में लड़ी। सन् 1652 से 1655 तक वह मोर्चे पर रहा। 1656 में उसे नूरपुर आने का आदेश हुआ। संभवतः वह नूरपुर एक ही वर्ष रहा। दारा शिकोह के राजा कुल्लू के एक फरमान में जिक्र आता है कि यदि वह लग के जोगचंद के पोते को नहीं छोड़ेगा तो राजरूप, जहांगीर, कुली बेग और जम्मू के फौजदार को कुल्लू जाने का हुक्म दिया जाएगा। यह फरमान आंतरिक कलह के समय दिया गया अतः राजा कुल्लू ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

सन् 1657 में शाहजहां की गंभीर बीमारी के कारण उसके चारों बेटों में झगड़ा हुआ जिसके फलस्वरूप औरंगजेब बादशाह बना। राजा राजरूप ने गद्दी के लिए इस लड़ाई में औरंगजेब का साथ दिया अतः औरंगजेब ने बादशाह बनने पर राजरूप को 3500 का मनसब दिया गया। उसे दारा शिकोह के बेटे सुलेमान शिकोह का पीछा करने सेना के साथ गढ़वाल भेजा गया। आलमगीरनामा में उल्लेख है कि यह घटना सन् 1659 में हुई।

राजरूप को अंत में गजनी का थानेदार नियुक्त किया गया। उसे सन् 1661 में वहां भेजा गया। यहां शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई।

जगत सिंह के छोटे पुत्र भाऊ सिंह ने बदखशां में और उत्तर-पश्चिम फ्रंटियर में मुगलों की सेवा की। 1650 में उसे शाहजहां से चक्की तथा रावी के बीच शाहपुर

सहित तथा पलाही व कंढी सहित क्षेत्र दिया गया। सन् 1686 में भाऊ सिंह ने इस्लाम स्वीकार कर लिया और बादशाह से मुरीद खान नाम मिला। सन् 1781 में राज्य सिखों के अधिकार में आ गया और यह परिवार माधोपुर के निकट सुजानपुर में रहने लगा।

मांधाता (1661-1700)

कनिंघम के अनुसार राजरूप सिंह की मृत्यु 1666-67 में हुई किंतु आलमगीरनामा में उल्लेख है कि राजा की मृत्यु 1661-62 में हुई। इसकी मृत्यु के बाद पुत्र मांधाता राजा बना जिसे बादशाह ने राजा मान लिया। मांधाता का अधिकांश समय नूरपुर से बाहर बीता और मुगल दरबार में उसने अच्छी शोहरत हासिल की। उसे काबुल से आगे आठ दिनों के सफर जितना दूर भेजा गया। बीस वर्ष बाद उसे 2000 पैदल तथा घुड़सवारों का मनसब दिया गया। मुगल दरबार में स्थान पाने वाले यह अंतिम राजा था।

दयाधाता (1700-1735)

दयाधाता के बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती। दयाधाता के अलग-अलग रानियों से चार पुत्र थे–पृथ्वी सिंह, इंद्र सिंह, महान सिंह, सुंदर सिंह। पहले दो का जन्म लगभग एक ही समय हुआ था अतः गद्दी के लिए निश्चित नहीं था। इंद्र सिंह का विवाह कांगड़ा के राजा की राजकुमारी से हुआ अतः वह वहीं बस गया और रे शाखा का राजा बना। पृथ्वी सिंह को उत्तराधिकारी मान लिया गया।

पृथ्वी सिंह (1735-1789)

जब पृथ्वी सिंह राजा बना तो मुगल साम्राज्य पतन के कगार पर था। सन् 1752 में पंजाब अहमदशाह दुर्रानी को दिया गया किंतु वह सत्ता स्थायी नहीं रख पाया। सन् 1770 में जस्सा सिंह रामगढ़िया ने सभी पहाड़ी रियासतों को अपने अधीन कर लिया। फिर जय सिंह कन्हैया ने 1775-86 के बीच पहाड़ी शासकों को अपने अधीन रखा। अतः नूरपुर भी इन्हीं के अधीन रहा होगा। जय सिंह कन्हैया की हार के बाद संसार चंद का एकछत्र राज हुआ।

सिख राज्य की सीमा पर होने से नूरपुर में सिखों का भय अधिक था किंतु जॉर्ज फोर्स्टर ने यहां का दूसरा चित्र दिया है। फोर्स्टर व्यापारी के रूप में नूरपुर तथा बसोही से गुजरा। फोर्स्टर ने लिखा है कि नूरपुर में अधिक आंतरिक शांति थी, लूटपाट कम थी और आसपास के भागों की अपेक्षा यहां शांति थी। नूरपुर के अधीन रावी के पास जम्मू का लखनपुर तथा चांदगांव, कोटला था। सन् 1785 में गुलेर के

वजीर ध्यान सिंह ने कोटला पर अधिकार कर लिया था जिसे सन् 1811 में जस्सा सिंह मजीठिया ने जीतकर उसे जागीर के रूप में दिया।

वीर सिंह (1789-1846)

वीर सिंह के गद्दी संभालने की तिथि निश्चित नहीं है। कनिंघम ने इसे 1805 कहा है जबकि 'चीफ्ज एंड फेमिलीज ऑफ नोट इन द पंजाब' में यह तिथि 1789 है। वीर सिंह यहां का अंतिम शासक सिद्ध हुआ। कांगड़ा में गोरखों के आक्रमण तक यहां सब ठीक-ठाक रहा होगा। कांगड़ा किले पर चार वर्ष के घेराव के बाद संसार चंद ने रणजीत सिंह से सहायता ली और 1809 में रणजीत सिंह ने पहाड़ों की ओर रुख किया और गोरखा सेना भगाई। कांगड़ा किला तथा 66 गांव रणजीत सिंह के अधीन हुए। सन् 1812 में रणजीत सिंह दीनानगर में आया और नूरपुर को 40,000 रुपए देने के लिए कहा गया।

सन् 1815 में रणजीत सिंह ने सियालकोट में अपने अधीन सभी राजाओं का एक सम्मेलन किया। नूरपुर तथा जसवां के राजा वहां उपस्थित नहीं हुए अतः उन्हें इतना जुर्माना किया गया कि जिसे वह भर न सकें। जसवां के राजा ने चुपचाप अपना राज्य छोड़ दिया और जागीर स्वीकार की। वीर सिंह ने अपना सब कुछ गिरवी रख दिया, राजघराने की मूर्तियां, सोने-चांदी के बर्तन भी बेच डाले। किंतु जुर्माना पूरा न हुआ। अतः रणजीत सिंह ने लाहौर से सिख सेना को भेजा। वीर सिंह नहीं माना। उसे जागीर देने की पेशकश की गई। वह रातोरात भागकर चंबा चला गया। सेना के लोग ब्रिटिश इलाके में भाग गए। सन् 1816 में वह काबुल निर्वासित अमीर शाहशुजा के साथ लुधियाना में रहकर रणजीत सिंह के खिलाफ षड्यंत्र करता रहा। सिखों ने इस बात की शिकायत अंग्रेजों से की अतः वह अर्की चला गया और दस वर्ष वहां रहा। सन् 1826 में वह वेश बदलकर पुनः नूरपुर पहुंचा। प्रजा जमा हुई। किले को घेर लिया गया। लाहौर से बड़ी सेना आने पर वह फिर चंबा चला गया। वीर सिंह की पत्नी चंबा के राजा चढ़त सिंह की बहन थी। राजा चंबा ने डरकर उसे सिखों को सौंप दिया। सिखों ने उसे सात वर्ष अमृतसर गोबिंदगढ़ किले में कैद रखा।

वीर सिंह को सात वर्ष तक बंदी बनाए रखा गया। चंबा के राजा के हस्तक्षेप पर अंततः 85000 रुपए देकर वीर सिंह को मुक्ति मिली। रणजीत ने उसे रावी के किनारे कठलोट में बारह हजार रुपए की जागीर देनी चाही। वीर सिंह ने मना कर दिया। जम्मू के राजा ध्यान सिंह, जो रणजीत सिंह का प्रधानमंत्री था, के माध्यम से 25000 की जागीर देनी चाही। वीर सिंह ने इसे लेने से भी मना कर दिया। वीर

सिंह डमटाल में रहने लगा। रानी अपने पुत्र को लेकर चंबा रहती थी।

बारनेस ने लिखा है–ध्यान सिंह के पास महाराजा द्वारा हस्ताक्षरित एक सनद थी, इसे देने से पहले वह चाहता था कि वीर सिंह उसे 'जैदेवा' कहे, किंतु वीर सिंह ने ऐसा नहीं किया।

विगने जून 1835 में नूरपुर आया और फिर चंबा से वापसी पर सन् 1839 में विगने ने वीरसिंह के बारे में बहुत कुछ कहा।

'मैं बेचारे वीर सिंह को चंबा में मिला और शहर के दक्षिण में एक बड़ी बिल्डिंग में देखा। उसके प्रत्येक वाक्य में अपने राज्य को वापस लेने की तीव्र इच्छा थी। उसने अपने दुर्भाग्य की कहानी कही और मेरी सहायता चाही यद्यपि मैंने उसे बार-बार दिलासा दिया कि मैं न तो राजा का सेवक था, न ईस्ट इंडिया कंपनी का।' विगने ने वीर सिंह का विस्तृत विवरण दिया है।

सन् 1845 में सिख सेना की अंग्रेजों से हार पर वीर सिंह ने पुनः विद्रोह का बिगुल बजाया और नूरपुर किले को घेर लिया। किंतु वह वृद्ध हो चुका था अतः किले की दीवारों के सामने अपने प्राण त्याग दिए।

प्रथम सिख युद्ध के बाद सतलुज से सिंध तक सारा पहाड़ी क्षेत्र अंग्रेजों के पास चला गया। सतलुज से रावी के मध्य का क्षेत्र अपने अधिकार में रखा गया और जम्मू कश्मीर महाराजा गुलाब सिंह को बेचा गया। सन् 1848 में पहाड़ी राजाओं ने विद्रोह किया जिसमें वीर सिंह के पुत्र जसवंत सिंह तथा वजीर राम सिंह ने भाग लिया।

वीर सिंह की मृत्यु के समय उसका पुत्र जसवंत सिंह अवयस्क था। वह मात्र दस वर्ष का था। वजीर राम सिंह ने जम्मू से सेना एकत्र की और रावी पार कर शाहपुर किले पर कब्जा कर लिया। उसने जसवंत सिंह को राजा और स्वयं को वजीर घोषित कर दिया। होशियारपुर से ब्रिटिश सेना के आगमन पर राम सिंह तथा साथियों ने किला खाली कर दिया और नूरपुर के जंगलों में मोर्चा बनाया। हमले में राम सिंह गुजरात भाग गया। जनवरी 1849 में वह पुनः वापस आया। उसके साथ दो सिख सेनाएं थीं। उसने शाहपुर के उत्तर-पूर्व में डले की धार में मोर्चा बनाया। यहां स्थिति सुदृढ़ थी। अतः ब्रिगेडियर व्हीलर के साथ सेना भेजी गई। लड़ाई में दोनों ओर नुकसान हुआ। सर रोबर्ट पॉल के भतीजे सहित दो युवा अंग्रेज अफसर मारे गए। राम सिंह शीघ्र ही कांगड़ा में पकड़ा गया। कहा जाता है एक ब्राह्मण ने, जिसे वह मित्र समझता था, सोने के लालच में उसे पकड़वा दिया। उसे सिंगापुर भेजा गया जहां उसकी मृत्यु हो गई।

राम सिंह की बहादुरी के गीत आज भी इलाके में गाए जाते हैं।

सन् 1846 में सर हेनरी लॉरेंस ने वीर सिंह के रणजीत सिंह के प्रति सख्त

व्यवहार को देखते हुए 20,000 की जागीर जसवंत सिंह को दी गई। इस शर्त पर कि वह नूरपुर में न रहे। यह जागीर सर जॉन लॉरेंस ने 5000 कर दी। सन् 1861 में परिवार भत्तों को देखते हुए जागीर दुगनी कर दी गई। जसवंत सिंह के बाद गगन सिंह उत्तराधिकारी हुआ।

कर्नल फ्रांसिस मैसी ने जसवंत सिंह पठानिया से नूरपुर के राजाओं का विवरण दिया है। मैसी की सूची निम्न प्रकार से है–

राजा दयादित्ता

राजा पिरथी सिंह (मृत्यु 1819)
इंदर सिंह (इसकी संतान में मियां शंकर सिंह जागीरदार रे है)

फतेह सिंह (मृत्यु 1789)

राजा वीर सिंह (मृत्यु 1846)

राजा जसवंत सिंह (जन्म 1839)

गगन सिंह (जन्म 1882)
ऊधम सिंह (जन्म 1885)

कर्नल मैसी का मत है कि यह तोमरवंशीय राजवंश दिल्ली से आकर गुरदासपुर के पास पठानकोट में बसा, अतः पठानिया कहलाया। मैदान में सुरक्षा न थी अतः बाद में पहाड़ में जा बसा।

बीर सिंह द्वारा रणजीत सिंह की कथलोट की जागीर देने की पेशकश ठुकराने पर रणजीत सिंह ने अवयस्क पुत्र जसवंत सिंह को गुजारे के लिए 6000 रुपए वार्षिक नियत किए जो उसकी मां ने मंजूर कर लिए। वीर सिंह वृद्धावस्था में नूरपुर किले की दीवारों के पास. राज्य के लिए संघर्ष करता हुआ मर गया। उसने अन्य

राजाओं की तरह वजीफा या जागीर नहीं स्वीकारी।

हेनरी लॉरेंस ने युवा राजा को 20,000 रुपए की जागीर देनी चाही किंतु एहलकारों ने इसे कबूल नहीं करने दिया। एक वर्ष तक राजा को कुछ न मिला। अंततः जॉन लॉरेंस ने जागीर की पेशकश तीन-चौथाई कर दी जो राजा को लेनी पड़ी।

मैसी ने लिखा है—

'जब 1848 में बलवा हुआ तो गद्दी से हटाए गए राजा के वजीर के बेटे राम सिंह ने जम्मू के पहाड़ से कुछ साहसी लोग जमा किए और रावी पार करके शाहपुर के खाली किले में प्रवेश कर लिया। इस रात आसपास के लोग बधाई देने आए और ढोल बजाकर मुनादी कराई गई कि अंग्रेजों का शासन समाप्त हो गया है। अब दलीप सिंह बादशाह है (महाराजा रणजीत सिंह का पुत्र)। जसवंत नूरपुर का राजा है और राम सिंह उसका वजीर हो गया है। जब यह समाचार होशियारपुर पहुंचा तो थोड़ी सी सेना तुरंत ही भेजी गई जिसने आते ही किले को घेर लिया। इस फुर्ती और तैयारी को देखकर विद्रोही भयभीत हुए और रात के समय यहां से भागकर नूरपुर के निकट एक पहाड़ी शृंखला पर जहां घना जंगल था, जा जमे।'

कमिश्नर जॉन लॉरेंस और डिप्टी कमिश्नर बारनेस ने राम सिंह तथा साथियों को भगा दिया। जनवरी, 1849 में राम सिंह ने पुनः सिख सेना लेकर चढ़ाई की। किंतु जनरल व्हीलर ने इन्हें कड़े संघर्ष के बाद हरा दिया।

राम सिंह को गिरफ्तार कर सिंगापुर भेजा गया। जसवंत सिंह उस समय दो वर्ष का था अतः उसे बेकसूर समझा गया। सन् 1861 में पुनः विचार के बाद राजा की पेंशन, जो 5000 रुपए वार्षिक थी, दुगनी कर दी गई।

सन् 1867 में जागीर में मौजा बरिंदा घंडवाल मिलाया गया जिसकी आय 2138 रुपए थी। 7862 रुपए नकद मिलते थे। जंगलात और कृषि योग्य भूमि 500 एकड़ थी।

राजा जसवंत सिंह का कांगड़ा के वायसरीगल दरबारियों में छठा स्थान था।

स्वर्गीय मियां किशन सिंह रे वाले का चचेरा भाई मियां शंकर सिंह और स्व. वजीर सुचेत सिंह भी इसी वंश से थे। शंकर सिंह राजा दयादित्ता के दूसरे बेटे इंदर सिंह की संतान में था। सुचेत सिंह के पुत्र हीरा सिंह को मिल्ख पुंदर तथा भडवार में 2692 एकड़ की जागीर मिली थी जिसकी आय 1050 रुपए वार्षिक थी। हीरा सिंह प्रांतीय दरबारी था और इसका नाम जिले की सूची में 21वां था। यह नूरपुर के लोकल बोर्ड तथा कांगड़ा डिस्ट्रिक बोर्ड का मेंबर भी था।

भंगाल

भंगाल राज्य बड़ा भंगाल तथा छोटा भंगाल में विभाजित था। बड़ा भंगाल रावी घाटी में कांगड़ा, कुल्लू तथा चंबा के बीच दर्रे के पार था तथा छोटा भंगाल में बीड़ (अब मंडी में), पपरोला, लंदोह, रजेड़ (अब कांगड़ा में) के क्षेत्र थे। पूरे राज्य को बीड़-भंगाल कहते थे। दोनों क्षेत्रों के बीच ऊंचा दर्रा स्थित है।

इस राज्य के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। कुल्लू तथा मंडी के इतिहास में भंगाल का उल्लेख आता है। कहा जाता है कि यह राज्य एक ब्राह्मण ने स्थापित किया। बीड़ भंगाल के अंतिम शासक पृथ्वी पाल को सन् 1720 में मंडी के राजा सिद्ध सेन (1684-1727) ने मरवा दिया। अतः पृथ्वी पाल से यदि एक राजा के बीस-बीस वर्ष गिने जाएं तो यह राज्य सन् 1200 के लगभग स्थापित हुआ होगा।

अपनी दुर्गम भौगोलिक स्थिति के कारण यह राज्य महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। इस राज्य के तीन ओर मंडी, कुल्लू तथा कांगड़ा जैसे शक्तिशाली राज्य रहे। भौगोलिक स्थिति के अनुसार बड़ा भंगाल ऊंचे दर्रे के उस पार रावी के किनारे है जो चंबा से लगता है। दूसरी ओर बीड़ मंडी के साथ, पपरोला आदि कांगड़ा के साथ थे। बड़ा भंगाल के वासी चंबा से और छोटा भंगाल के वासी मंडी-कांगड़ा से मिलते हैं।

भंगाल के राजाओं को भंगालिया कहा जाता था जो चंद्रवंशी थे और अपने नाम के साथ 'पाल' लगाते थे।

सुकेत के राजा मदन सेन (1240) ने द्रंग तथा गुम्मा के राणाओं को जीता जो संभवतः भंगाल राज्य के थे। साहिब सेन (1554) ने द्रंग तथा गुम्मा को अपने कब्जे में कर लिया। सन् 1657 में मंडी के सूरजसेन ने भंगाल की ओर अपनी सीमाएं बढ़ाईं। उसे कुल्लू के राजा जगत सिंह ने पीछे धकेल दिया।

पृथ्वी पाल (1710)

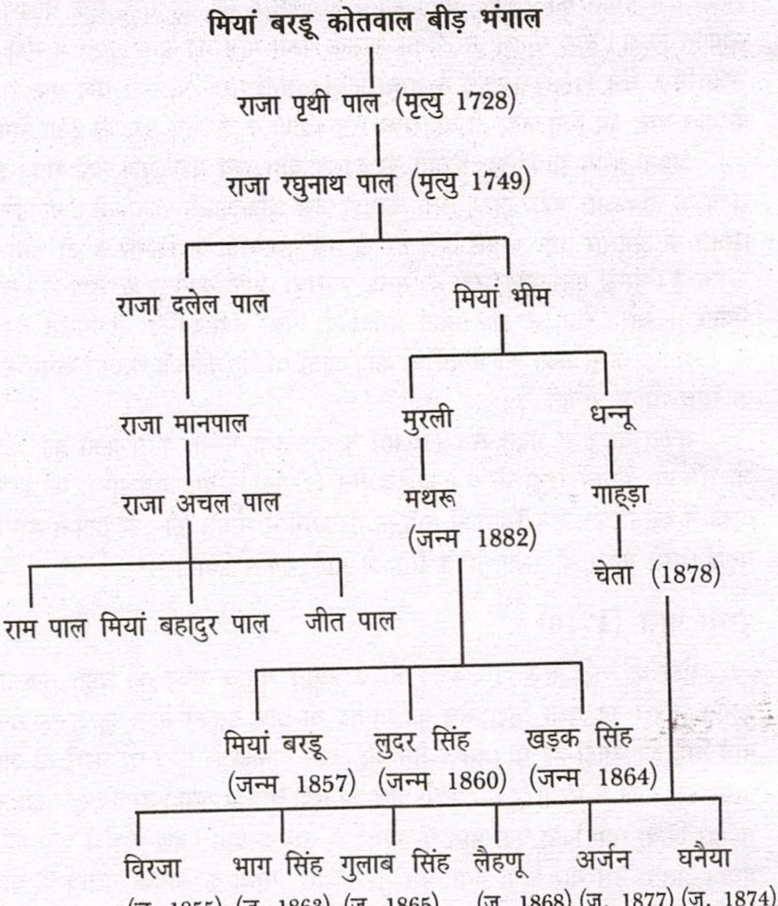
मंडी के सिद्ध सेन (1684-1728) के समय भंगाल राज्य का बहुत नुकसान हुआ। भंगाल का राजा सिद्ध सेन का दामाद था और इसकी बहन कुल्लू के राजा मान सिंह को ब्याही हुई थी। सिद्ध सेन की अपने दामाद के राज्य पर नजरें थी और उसने उसे धोखे से मरवा दिया। पृथ्वी पाल को मंडी बुलाया गया। उसका खूब आदर-सत्कार किया गया किंतु एक मास के भीतर ही उसे दमदमा महल में बंदी बना दिया गया। अंततः उसे मार दिया गया और उसका सिर महल के सामने तालाब के बीच (वर्तमान घंटाघर) दबा दिया गया जहां रात को दीपक जलाया जाने लगा।

सिद्ध सेन ने अब भंगाल पर विजय के लिए सेना भेजी। पृथ्वी पाल की मां ने कुल्लू के राजा से सहायता मांगी। मंडी की सेनाएं पीछे हटा दी गईं किंतु राजा

मान सिंह ने भंगाल का बड़ा क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया।

राजा भंगालिये की मौत का हृदयविदारक किस्सा आज भी कांगड़ा की ओर गाकर सुनाया जाता है। लोक गाथा में उसे मंडी के देश न जाने की हिदायत दी जाती है–

मत जांदा ओ मंडिया दे देस
ओ राजेया भंगालिया।



मियां बरड़ू कोतवाल या जैलदार बीड़ भंगाल के राजाओं की संतानों में से था। राजा पृथीपाल की अपने ससुर मंडी नरेश राजा सिद्धसेन द्वारा हत्या के बाद मंडी-कुल्लू तथा भंगाल में संघर्ष चलता रहा। संसार चंद के समय कुल्लू तथा मंडी ने संसार चंद को पांच लाख रुपए देकर भंगाल पर कब्जा कर लिया। अचल पाल की संतानें राजा संसार चंद के पास पलीं। अचल पाल का पुत्र राम पाल निःसंतान पर गया। छोटे भाई बहादुर पाल ने इलाका वापस लेने का प्रयास जारी रखा।

मियां बरड़ू अपने भतीजे मियां बहादुर पाल के लिए अंग्रेजी सरकार से 500 रुपए वार्षिक की पेंशन लेने में कामयाब हुआ। यह पेंशन इसे मृत्यु तक मिलती रही।

कर्नल मैसी ने लिखा है कि मियां बरड़ू अपने इलाके का नंबरदार और कोतवाल (जैलदार) है। वह स्थानीय डिस्ट्रिक बोर्ड का सदस्य है। इसके परिवार की बीड़ तथा बीड़ भंगाल में अस्सी एकड़ भूमि की मिल्कियत है जिसकी वार्षिक आय 2200 रुपए है।

वजीर गोसाऊं (बीड़)
(मृत्यु 1871)
|
वजीर कर्म सिंह
(जन्म 1854)
|
भूप सिंह
(जन्म 1879)

वजीर कर्म सिंह प्रांतीय दरबारी था। इसका पिता गोसाऊं मंडी का राजस्व सलाहकार और रीजेंट था। विलय के समय वजीर गोसाऊं एक प्रभावशाली व्यक्ति था। गोसाऊं ने कांगड़ा किले को सौंपने का मामला बिना लड़ाई-झगड़े के सुलझाया। सन् 1857 में उसने रीजेंट की हैसियत से रियासत मंडी का तमाम माल और रुपया अंग्रेजी सरकार के सुपुर्द किया। उसने 125 तोड़ेदार बंदूक भी होशियारपुर के हाकिमों को दिए और पचास आदमी जालंधर के कमिश्नर को। आवश्यकता पड़ने पर 500 आदमियों का और भी प्रबंध रखा था।

अतः इन कारनामों के बदले गोसाऊं को बीड़, कोढ़ और संसाल दिए गए जो तहसील पालमपुर में थे और जिनकी आय 2000 रुपए थी। यह जागीर पुरुष संतान

को दी भी गई।

गोसाऊं की मृत्यु पर कर्म सिंह को उत्तराधिकार मिला किंतु फिजूलखर्ची के कारण जागीर का बड़ा हिस्सा कर्जे में ले लिया गया।

रघुनाथ पाल (1720)

पृथ्वी पाल के बाद उसका पुत्र रघुनाथ पाल राजा बना जिसने मंडी का हमला दो बार नाकाम किया। सिद्ध सेन ने कर्णपुर लेना चाहा किंतु कामयाब न हुआ। दूसरी बार वह कथारलू गलू तक बढ़ गया किंतु कुल्लू की सहायता से वापस भेजा गया। कुछ समय बाद सिद्ध सेन के पुत्र शमशेर सेन ने कर्णपुर जीत लिया जब रघुनाथ पाल पंजाब मुगल वायसराय से मिलने गया था। रघुनाथ पाल की मृत्यु 1735 में हुई।

दलेल पाल (1735)

रघुनाथ पाल के बाद उसका पुत्र दलेल पाल शासक बना। वह अपने पूर्वजों की शेष सीमाओं को सुरक्षित रखने में सफल रहा। मंडी, कुल्लू, कहलूर, नालागढ़, गुलेर तथा जसवां ने भंगाल पर आक्रमण किया जिसे बहुत हानि उठाने के बाद नाकाम किया जा सका। दलेल सिंह की 1749 में मृत्यु हो गई। बड़ा तथा छोटा भंगाल का अधिकांश इलाका कुल्लू तथा मंडी के अधीन आ गया।

मान पाल (1749)

अंतिम शासक मान पाल का राज्य केवल संदोह, पपरोला तथा रजेढ़ पर रहा। उसकी दिल्ली जाते हुए मृत्यु हो गई जहां वह मुगल बादशाह से सहायता लेने जा रहा था। राजा की अनुपस्थिति में गुलेर तथा कांगड़ा के राजाओं ने शेष इलाका भी छीन लिया। संदोह तथा पपरोला कांगड़ा ने तथा शेष क्षेत्र गुलेर ने छीना।

मान पाल की विधवा और छोटा बच्चा निहाल पाल चंबा के राजा राज सिंह के पास चले गए जहां राजा ने एक छोटी जागीर दे दी। सन् 1785 में राजा संसार चंद ने मान पाल की लड़की से विवाह किया और उसके राजकुमार उछल पाल को सेना दी ताकि वह मंडी से अपना राज्य वापस ले सके। वह सफल नहीं हुआ। बाद में कुल्लू तथा मंडी के राजाओं को भंगाल के बदले पांच लाख रुपए देने पड़े।

उछल पाल की शीघ्र ही मृत्यु हो गई। उसके तीन लड़के तथा एक लड़की संसार चंद के पास रहे। लड़की सीबा के राजा को ब्याही गई। उछल पाल का बड़ा लड़का रामपाल सन् 1843 में निःसंतान मर गया। उसके छोटे भाई बहादुर पाल की सन् 1854 में मृत्यु हो गई। इन्हीं का एक वंशज बीड़ भंगाल में रहता था।

कुटलैहड़

कुटलैहड़ चौकी तथा कुटलैहड़ को मिलाकर बना। जसवां की पहाड़ियों में फैला यह कांगड़ा का सबसे छोटा राज्य था। राज्य में राजाओं की चालीस पीढ़ियों ने राज किया। कहा जाता है कि यह राजवंश पहले ब्राह्मण था जो बाद में राजपूत कहलाया। बारनेस के अनुसार राजा मुरादाबाद के समीप सांभल से आया। किंतु रिकॉर्ड के अनुसार वह पूना राजवंश से संबंधित था।

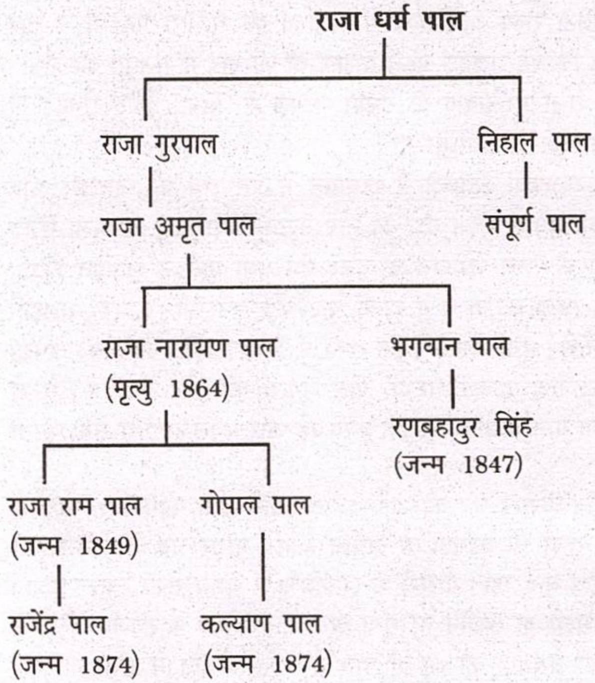
लगभग दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में जसपाल ने इस क्षेत्र को जीतकर कोट कुटलैहड़ को राजधानी बनाया। इस वंश का नाम कुटलैहड़िया हुआ। शिमला हिल्ज में भज्जी तथा कोटी के राज्य जसपाल के दूसरे पुत्र तथा पोते ने स्थापित किए।

मुगल काल के समय इस राज्य में चौकी, कुटलैहड़, मनखंडी (नादौन), तलहटी (होशियारपुर) शामिल थे। मुगल काल में इस राज्य में कांगड़ा, गुलेर आदि की अपेक्षा शांति रही यद्यपि कुटलैहड़ राजपरिवार के पास मुगलों की कुछ सनदें हैं। मुगल बादशाहों ने उन्हें राजा माना यद्यपि वे उनके करद रहे और मुगल सेना में सेवा करनी पड़ी।

सन् 1758 में जब घमंड चंद को अहमदशाह दुर्रानी द्वारा कांगड़ा का सूबेदार बनाया गया तो यह राज्य भी कांगड़ा के अधीन हुआ। संसार चंद के शक्तिशाली होने पर यहां भी प्रभुत्व बना रहा। गोरखों के आक्रमण के समय राज्य स्वतंत्र हुआ। सन् 1809 से यह सिखों के अधीन हो गया और सन् 1825 में रणजीत सिंह ने कोटवालबाह किले की घेराबंदी की जो दो मास तक चली। अंत में राजा नारायण पाल ने समर्पण किया और उसे 10,000 रुपए की जागीर बख्शी गई। 1845 के सिख युद्ध के समय राजा ने सिखों को खदेड़ दिया। अतः जागीर के अतिरिक्त 10,000 रुपए की आजीवन ग्रांट दी गई और ये ग्रांट उत्तराधिकारियों तक चलती रही। इसके बदले 1,188 रुपए का नजराना देना पड़ता था। जंगलों की आय का तीन-चौथाई हिस्सा भी दिया जाता था। मूल जागीर होशियारपुर में मिली थी किंतु बाद में इसे एक जगह ताल्लुका कुटलैहड़ में ही बदला गया।

राजा नारायण पाल की मृत्यु 1864 में हुई। उसका उत्तराधिकारी राजा राम पाल बना। राजा राम पाल के बाद राजेंद्र पाल तथा बृजमोहन पाल उत्तराधिकारी हुआ।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची



राजा नारायण पाल की मृत्यु के समय (1864) जागीर कर्ज में दब गई थी अतः कोर्ट ऑफ वाड्र्ज के सुपुर्द की गई। राजा राम पाल की नाबालगी तक (1869) यह कोर्ट ऑफ वाड्र्ज के अधीन रही। मैसी ने लिखा है कि राजा राम पाल ने अच्छी शिक्षा पाई है। इसे फौजदारी तथा दीवानी अधिकार प्राप्त हैं। राज्य की आय 1200 रुपए वार्षिक है और वायसीगरल दरबारियों में राज्य का पांचवां स्थान है।

बैजनाथ (कांगड़ा) का प्रथम शिलालेख

ओं स्व (स्ति ओं) नमश्शिवाय
(आशास्यं वो गजास्यो) वितरतु हरता (त् तार) कारिर्विकारं
नंदी सानंद (नो) यं भवतु स (च) महाकालशूलस्य (ध) र्ता
...ीना¨ (रच) यतु कु (रुतां) वीरभद्रोपि (भि) द्रं
सर्व वोखवंगर्वा विदधतु कुशलं किङ्कराश्शंङ्करस्य।। (1)
सा पातु वो (म) हादेवा¨ भक्तिचुम्बितः (?)
आत्मानं मु (हु) रीक्षन्ते यत्पादनखदर्पणे।। (2)
काष्ठोद्दीपनक (मे) जगति या या निर्निमेषेक्षणैस्
सत्पक्षैरुपजीव्यते द्विजजनं या विभ्रती शस्य (ते) (।)
देवस्याहुतिलम्पटस्य परमा पुष्टिर्यतो (जा) यते
ताभिर्मूर्तिभिरष्टभिर्भवतु वो भूत्यै भवानीवि (भुः)।। (3)
अेतेनै (व) शरत्वममूयुपगतं प्लोषाय पूर्व पुरा
संप्राप्त (ा) धनुषश् श्रियं तनुरियं संप्रत्यमुष्यैव च।
व्यानग्रे हसतीव य (त्सु) र रिपावित्थं मुहुर्विस्मयाद्
भस्मस्मेरमुपास्महे स्मरजित पादद्वयं (त) द्ववयम्।। (4)
पद्यप्यचेतनत्वाद् वक्तुमशक्तस्सुरालयस्तदपि।
अथ केन (कृतोहमिति प्रशस्तिपृथुजिह्वया वदति।। (5)
ज (ा) लंधराधिराजो जयति गुणानां निधिजेयच्चंद्रः
ईदृशि यस्य राज्ये देवायतनना नि जातानि।। (6)
वित्तं शिवे प्रयुक्तं येषां कालेन भवति को हि गुणम्।
ग (ण्यास्त अे) व वणिजश् शेषै किं स्तोकवा (र्धु) षिकैः।। (7)
अनने वक्ष्यमाणेन सुकृतेन महा नयौ
गण्यौ गणेषु भ्रातरौ भूयास्तां मन्युकाहुकौ।। (8)
तौ भ्रातरौ कृतज्ञौ याभ्यां शमदम (प) योधरयुतायाः।
शि (व) भक्तिजनन्या (अ) पि रसं स्समास्वादितस्सार्धम्।। (9)
शैलस्याड् च्चलित्वा रुचिरनववया खेलतोयं सहेलं

कुल्या कन्येव यत्र स्फुरदुरलहरी कंदुकाविंदुकाख्या।
को रग्रामो भिरामो गुणगणनिलयो वर्तते धित्रिगर्ते
सोयं राजानकेन प्रबलभुजयु (जा रक्षि) तो लक्ष्मणेन।। ह द (10)
अतुलकुलवकुलपा (दप) कंद प रिपन्थिभित्पुरा स्कंदः
राजानकोत्र कंद प्रथममभू (द्गु) येमस्कंदः।। (11)
बुद्धो विशुद्धबुद्धधिस्तस्य सुतो जनयदुद्दुरं तनयम्
विग्रह इतिकृतविरहश शत्रुबधूनां ततो यज्ञे।। (12)
विग्रहविग्रहजातो ब्रह्मेति बभूव भूबधूदयितः
विग्रहनिग्रहकरणे शक्तिर्यस्य (ा भ) वद् रि पुषु।। (13)
हस्तालम्बकमुन्नताद् विलुठताभाराधितंत्र्यम्बकं
शत्रुश्रीपरिचुम्बकं परतिमिस्वीकारचिंतांधकम् (।)
क्रांतग्रामकदम्बकं नृपतिभिस्सद्बंधु (कौ) टुम्बकं
(स्वा) कारप्रतिबिम्बकं स च कृती लेमे सुतं डोम्बकम्।। (14)
नारीमोहनयौवनं नवनवत्यागोर्मिभि (पा) वनं
(उद्दा) मद्विषदालयीकृतवनं युद्धोग्रसिंहस्वनं
पुत्रं सापि समाससाद भुवनं शम्भौ बृहत्सावनम्।। (15)
गुणमणिनिकुरुम्बरोहणं (स) भजनययत् प्रव हणमापदगाधवारिधौ।
कृतसुमहशिरोधिरोहणं (स) मजनयत् तनयं स कल्हणम्।। (16)
(जा) लंधराधीश्वरपादपद्मम निश्छद्मभक्ति प्रचुरात्मशक्तिः।
बलोल्वणेविल्हणनामधेयस्तस्यांत्मजो जायत सद्विधेयः।। (17)
तनयायां सनयस्य त्रिगर्तभ (र्तृ) हृदयचंद्रस्य (।)
(स) च रामलक्ष्मणाख्यौ लक्ष णिकायां सुतौ लेभे।। (18)
ज्येष्ठे गुणैर्गरिष्ठे बिम्बौष्ठीभिस्समं द्युपुरि गोष्ठीम्।
अधितिष्ठिति निष्ठुरधी (स्तस्य) कनिष्ठोत्र सुप्रतिष्ठोभूत्।। (19)
त्रिगर्तनृपतीनां या पादमद्मोपजीविभिः (।)
कंदादि (भिरा) संदारिसंदारिभिरभुज्यत।। (20)
परिपालितवास्तव्यस्तस्य निर्मलकर्मणा।
साधुना साधुना भूमिलक्ष्मणेनोपभुज्यते।। (21)
यस्य प्रेयस्य भवन्मयतल्ले (त्य) तुलरुपभृद्रमणी
तस्मिन् कीरग्रामं लक्ष्मणचंद्रेनुपालयति।.। (22)
सिद्धाख्यवणिक्पुत्रौ धर्मप्रवणाविह स्थितौ कृतिनौ।
(ज्ये) ष्ठो मन्युकनामा कनिष्टमप्याहुकं प्राहुः।। (23)

भवतरुकुठारधारा प्रविषमतमजन्ममरुमरुल्ल (ह) री।
प्ररुरोह मोह (हं) त्री (मन) सि तयो (श् शा) म्भवी भक्तिः।। (24)
ताभ्यां शिवलिङ्गमिदं निरालयं वीकष्य वैद्यनाथाख्यम् (।)
पुर्या सहितं विहितं पुरतोस्य च मंडपो रचित (:)।। (25)
इति मन्यु (का) हुकाभ्यांमुदरे स्थित्वा पुरा किलैकत्र
पुनरुदरसम्प्रवेशप्रतिषेधविधि (स्स) सह विहितः।। (26)
यद्यपि पितेव कुरुते करुणां शम्भुस्तथापि पितुरधिकः (।)
जन्मनिमित्तं हि पिता शशिमौलिरजन्मनो हेतुः।। (27)
शालिपाहिल (क) ाहिलसिद्धास्स्वलोकगामिनस्संतु।
पूर्वे पुरुषा क्रमशश्चत्वारो मन्युकाहुकयोः।। (28)
किम्बहुना (प्यु) र्युदिषा पुरुषाणामे (व) विंशतिर्यातु।
(सुकृ) तेनानेन दिवं स्वयं च परमास्तु गतिरनयोः।। (29)
राजानकेन चास्मै लक्ष्मणचंद्रेण वैद्यनाथाय।
मंडपिकोत्पत्तिधानाद् द (त्ताष्ष) ट् प्रत्यहं द्रम्माः।। (30)
ग्रामात् प्रलम्बनाम्नो (म्नो) मात्रा राजानकस्य लक्षणया।
अकेहलवाहनीया दत्ता भूमिर्महेशाय।। (31)
लक्ष्मणस्य सुकृतं सुकृती य पालयिष्यति तदन्वयधर्मा।
तस्य पुण्यमुपयातु विबृद्धिं यो हरिष्यति स गच्छतु चाधः।। (32)
तैलोत्पीडनयंत्रं करिग्रामेस्ति मन्युकाहुकयोः।
ताभ्यां तदपि शिवाय ओं प्रदीपनिष्पत्तये दत्तम्।। (33)
अेका च पण्यशाला ताभ्यां स्वीया शिवस्य भोगार्थम्।
भूमिश्च हलचतुष्ठयं योग्या दत्ता नवग्रामात्।। (34)
इति ये न यद् यत् सुकृतं विहितं शिवं समुद्दिश्य।
इह तस्य तस्य तत् तत् तिष्ठतु यादव् धरित्रीयम्।। (35)
यस्याविस्मृत (ज) ननीस्तन्यसमास्वादनस्य वदनाब्जे।
परिशुद्धकवित्वफला सरस्वती भगवती न्यवसत्।। (36)
श्रीभृंङ्गकस्य स सुत (कश्मी) रिनृपप्रभातुरनघस्य (।)
प्रथमवयास्सर (लाथा) व्यधत्त राम प्रशस्तिमिमा (म्)।। (37)
चवेढक्शैत्रात् हर¨¨क्षेत्राम् वक्तण (दे) वाद (ग्र) भूमि (च्छ)
गुहकेन य (?) शसि भदी (?) ना
शककालालगताब्दाः 7 (26)

बैजनाथ का दूसरा शिलालेख :

ओं (स्वस्ति ओं) नम (ो ग) णपयो (:)
यद्यप्यहं पशुपते कुमति (द्र) अेव, पर्याप्तभक्तिवि (शे) न मया त (था) पि
आस्यां स्तुतौ (श्र) वणले (हृयर) सांशभाजि गौ (र्य) ा सहैव परमेश निमंत्रितोसि
पा (शच्छेद) न (क) र्तरि प्र (ण) मतां मोहांधकूपब्रुड (ल्लोक)
लोक (प्रोद्धरणक्षेमे) निरुपमानदैक (सं) दायिनि
दुर्गे द्वार... हारिणि हरिब्र (ह् म) ा) दिदेवस्तुते,
भक्तिः क्षेमविधायिनि त्रिनयने त्वय्येवन (स्त्वा) मिनि।
व्यापद्बल्लि (समू) ल (पा) टनकरी त्वं गीयसे सर्वदा (र्वदा),
मा ता त्वं जगतस्तवास्ति न मिति (स्मवे) षां (महि) म्नामिह
उक्ति केवलमेव (शो) भत इयं नो देव (मा) तेतिते,
संसर्गपि (तृ) काननैरु (पचि) तै (रा) श्रीयते च (त्वया)।।
यस्या (ा) हिमालयो (त्कर्ष) पोषिणी (मू) र्तिरुत्तमा।
तस्या नमंति चरणौ धन्याः केचन जंतवः।
ध (न्यै) (र्न) रैरु (ग्र) बधूस्सदैव (त्व) मुद्यसे (भ) क्ति भराभिरामैः।
क्लेशापहारीति मनोहराभिर्वा (ग्मि) क (वीना) मुपगीय (से) च।
व्याससन्नमृत्युत्वदशामुपेयुषां पुरेषु नास्थाममरेषु कुर्वताम्।
सत्यं भवानीशरणाभिलाषिणां मनोरथं पूरयितुं प्रगल्भते।।
मुहुस्सामुद्रासिन अेव यु (द्ध) क्री (ड) ानिकृत्तासुरस (र्म) प (स्य)।
सत्यं हरेरप्युपरि त्वमेव संतिष्ठसे नि (ष्ठु) रवीर्यधाम्नः।।
(मा) लादिहृदयाह्लादिद (र्श) नता दिने दिने।
बहुदेहांतर (स्था) णु (स्वत्व) मेव किल कथ्यसे।।
प्रसरन्मरीचिचयचंद्रचारुणा वदनेन राजसितरामतिश्रिणा।
बहुशोणिमादिगुणसम्पदालयौ परिपूजयन्ति चरणौ तवामराः।।
त्रैलोक्यजनन्यां त्वयि करुणावति युज्यते नृणां भक्तिः।
त्रैलो (क्या) न्तर्निलयं त्वं हि (जनं) नयसि परमपदम्।।
गिरिजेशाधिखिन्नो (स्मि) त्वं गतिर्भवव साम्प्रतम्।।
संसारसागराच्चेतो भीरु मे नीयतां शमम्।।
शिवायैकविनन्तव्युपण्यपादाग्रपांसवै।
तुभ्यं (क्षभ्य) दूरिपुध्वंसम हाशकितमते नमः।।
च चच्चापलसद्दृष्टिर्विषमेषु प्रयोजक (:)।
त्रैलो (क्ये) स्त्रीजनो योत्र तस्य त्वमधिदैवतम्।।

(शोभि) ता (नां) त्रिभिन्नेत्रैर्मृ (डा) नि शरणैषिणाम (।)
वपुश्श्रीमदविध्वंसं विधातु प्रजगल्मिषे।।
आपत्मलापमेलापपरितापपरितापप्रलापिनम् (।)
गौरीशस्ति विमोहात्कं (कस्त्रा) तुम परः क्षमः।।
शर्वाणि मानं त्वद्‌भक्त्या याांति सर्वातिशायिनम्
प्रसीद मातस्संसाराच्छोघ्रमेव विमोचय।।
गाढा गजानने प्रीतिस्स (र्वमो) हि व पुस्सदा।
उद्‌दीपितस्मरा दृष्टिर्यस्यास्ते तत्पदं नुमः।।
इति रामेण निरामयसममुमया यन्मया स्तुतोसि विभो (।)
श्रुत्वा तममोधीकुरु परिश्रमं परमकारुणिक।।
अेकोकत्या स्तोत्रमिदं गौरीश्वरयो पठंति ये भक्त्या।
तशोमप्यभिलाषस्सिध्यतु शिवयो प्रसादेन।।
इति गौरीश्वरस्तोत्रम्।।
अस्ति शीतलगभस्तिशेखर त्वत्प्रशस्तिकरणे कुतकोर्हता।
किन्तुपावकमयाक्ष तावकी भक्तिरेव जडतां भनक्ति नः।।
अद्‌यापि विस्मापयिता र अेते विद्यंत अेवेश्वरभक्तिमंत्रः (।)
विचित्रचारित्रनिधियैथैष राजानको लक्ष्मणचंद्रनामा।।
केदारयात्रां विरचय्य येन विशोधनीं प्राक्त नदुष्कृतस्य।
इतः परं सर्वपरस्त्रियो मे स्वसार इत्येव कृता प्रतिज्ञा।।
किमेतदाश्चर्यमवार्यवीर्येदेष योधैर्युधिदुष्प्रघ (र्ष): (।)
धनुधेराणां धुनि यो मनोभूर्बभूव तस्याप्यविधेय अेव।।
अद्‌येश्वरा मंदपराक्रमत्वं मत्वा विपक्षैरवधारिताज्ञाः (।)
(वा) स्तव्यनारीहठसड्‌गमेन पुराधिपत्यं बहव प्रियड्‌कराः (।)
तथापि चेत परदारवर्जि चेत् किमस्ति दुस्साधमतः परं तपः।
राजानकस्य प्रविशुद्धबुद्धेः पाणिः कृपाणग्रहणप्रवीणः (।)
विवर्जयामास विगर्हितानि तस्य (ा) न्यनारीस्तनमर्दनानि।।
तस्यास्ति देसेत्र वणिक्प्रसिद्धात्मजो मन्युकनामधेयः (।)
छिन्नेत्यविच्छिन्नमहेशभक्तेर्मातावदातचरितस्य य (स्य)।।
यस्याहु (का) ख्योस्त्यविभक्तवित्तो भ्राता कनिष्ठस्सुकृतैकनिष्ठः (।)
वृयग्रा समग्रातिथि पूजनाय गुल्हेति गर्हारहिता च भार्या।।
भक्ति (द्रुवाहे) मसलेन ते (न) (स) भ्रातृकेन त्रिपु रांतकस्य।
द्वारस्थगड्‌गायमुनार्दिमूर्ति कृता परीयं सह मंडपेन।।

मस्त्रागर्भगृहीतसर्वविभवा नेदिष्टदेशे क्वचिद्,
ये कुर्वन्ति गतागतानि वणिजो गण्या वराका क्व ते।
धन्यो मन्युकनामधेय इह हि श्रीकंठर ज्यन्मनः
पोपप्रोतविवेकवेतनधनो मोहार्णवं तीर्णवान्।।
देवद्विजगुरुभक्तस्सौजन्यनिधिर्गुणप्रियो दाता।
आसुकसुतोस्ति विप्रो रल्हणनामा सुशर्म पुरे।।
तेन दैवज्ञधुर्येण धान्यद्राणद्वयं शिवे।
वहमान (स्व) भूपृ ष्ठान्नवग्रामात् समर्पितम्।।
इहत्येन नवग्रामाद्दत्ता चा (व्र) ह (लाधं) भूः
गणेश्वरेण गोविंदद्विजपुत्रेण धीमता।।
देपिकाड्.गजनितेन मल्हिका सूनुना विततवित्तशालिना।
जीवकेन वणिजा निजा च भू प्राङ्गणाय पुरतश्शिवेर्पिता।।
(या) वदे (ष) भगवान् (न्भुवाम्प) तिर्वृयोम कोम (लरु) चिश्च गा (ाह ते)।
मन्युकाहु (क कृत) श्शिवालयस्तावदस्तु सममन्यसासनः।।
आसिकात्मज उ (दा) रघी (वें) सन् सूत्रधारधुरि नायकामिघः।
श्री सुश (र्म) नगरादिहाययौ (सम्म) नस्य तनयश्च ढोढ्ढकः।।
तेन तेन च सहैव टड्किता प्रोन्नता शिवपुरी समंडपा।
(शा) मुदृष्टिमनुसृत्य नि (र्मि) ता यत्र भांति गणवर्गमू (र्तयः)।।
शृडगारभृडकौ यस्यपितरौ पुण्यशालिनौ।
स प्रश स्तमिमां चक्रे रामनामा क (वी) द्धरः।।
संवत्सरेशीतितमे (प्र) स (न्ने) (ज्येष्ठ) स्य शुक्लप्रतिपत्तिथौ च।
(श्री) म (जूज) यच्चंद्रनरेंद्रराज्ये रवे (र्दि) ने रामकृता प्रशस्तिः।।
ओं नमः शिवाय

कवि मोला राम द्वारा कांगड़ा युद्ध का वर्णन

किला कांगड़ा हमहूं जैहें। फते तहां हम कैसे पैहें।।
सो तुम हमको भेद बताओ। चित्र तहां को लिखि दिखलाओ।।
तब हों चित्र लेखि दिखलायो। बुद्धि अनुमान भेद बतायो।।

एक एक ग्यारा करे, ग्यारा ग्यारा एक।
वह जीते गढ़ कांगड़ो, याको करे विवेक।।

परजा कों जो नर परचावे। मुल्क परायो सो नर पावे।।
धींग-धांग जो करत है नाई। ताके सब होवें बस भाई।।

धींग-धांग जो कोई करते। तिनके ग्रामहि ऊजड़ पड़ते।।
बिरता गूंठ जगीर जो हरिहें। कुंभी नरक नृपति सो भरिहें।।
तिनको राज भ्रष्ट सब होई। बंस चले तिनको नहिं कोई।।
अपकीरत तिनकी जग मांही। मरिके अति तिनको कछु नाही।।
जो काजो तुम पच्छिम जाओ। एक एक करि राज दबाओ।।
परजा को आस्वासन दीजो। बिरता सब बहाल ही कीजो।।
गाउं जगीर तगीर न कीजै। रोजीना सब हीका दीजै।
परजा को परचाय के रखिये। भली-बुरी काहू नहिं बकिये।।
नीत न्याय सब ही का कीजै। जथापराध दंड ही दीजै।।
सबकों होय तुमारी आसा। सुनै सुजस सब आवैं पासा।।
या बिध स ही राज दबाओ। किला कांगड़ा तब तुम पाओ।।
हमें हुकम महाराज को, सरासरी तुम जाव।
पूरब सों पच्छिमहिं लौं, हमरो हुकम चलाव।।
मिले जो कोई ताहि मिलाओ। लड़े जो कोई मार हटाओ।।
चांड़ किला कांगड़ा हाणो। पुन लाहौर दिल्ली हम जाणो।।
इह आज्ञा स्वामी नै दीनी। तब हम बाट पछम की लीनी।।
अब हम दूण छुड़ावें जाई। गढ़ के राजा संग लड़ाई।
फौज लेइ गढ़ राजा आयो। हेड़ी-खेड़ी के संग लायो।।
तिनको जातहि सारध पावैं। पुनि नाहण हम जाय छुटावैं।।
तुमरे मुख मंहि सरसुति जो है। तुम जो कहो सोई कुछ होहै।।
तुम कवि हो हमको वर दीजै। फते होय यह किरपा कीजै।।
इह काजी जब कविसों बोली। कविजन तबैं सारदा तोली।।
कहे सारदा सतलुज ताईं। तुमको कोई रोके नाईं।।

कांगड़ा पर आक्रमण

नैन सिंह सिंहा ज्यों आये। देखि कांगड़ा लोक डराये।।
नैन सिंह काजी जबैं, पहुंचे पच्छिम जाय।
महा त्रास सबकौं भयो, भाजे लोक डराय।।
चल्यो सिंह ज्यों नैनसिंहाहि काजी। रहे और पाछे फते माहिं साझी।।
कई मोरचा मारि के तोरि डारे। परी लोथ पै लोथ ही भीत सारे।।
धरे पैर आगे नहीं फेर पाछे। निमक्के हलाली तिलंगाहि आछे।।
लड़ी खूब पलटन पलट शत्रु दीन्यो। रहे देख सब ही किनाराहि लीन्यो।।

मनो इंद्र चढ़ि स्वर्ग तें आप आयो। चहूं ओर तें घोर घनसार छायो।।
किला से छुटैं तोप ही कांप सेती। परे वज्र ज्यों इंद्र के रोष सेती।।
मनो इंद्र गोपाल को जुद्ध लाग्यो। चढ्यो बीर नेपाल कट्टोच भाग्यो।।
महासिंह ज्यों नैनसिंहाहि गाजें। चले भाजि कट्टोच ज्यों मृग्गराजें।।
दयो भीतरें बाढ़ ताकों किला के। दये सीघ्र ही पाट मानो सिला के।।
फिरें झूमते घूमते बीर बांके। खुले काहुसे नाहिं जो पाट बांके।।
धंसे आप ही बीर नहिं फौज जाथी। अकस्मात् गोली तहां आन लागी।।

नैन सिंह की मृत्यु

पड़्यो मत्त मातंग ज्यों भूमि माहीं। कहे जाओ आगे थमो कोउ नाहीं।।
महासिंह ज्यों नैनसिंहा हि गाजे। सबें फौज कट्टोच ही की जो भाजे।।
करै मार ही मार ललकार सेती। करै हाय तोबाहि संसार जेती।।
न ऐसो कोई बीर बांको निहार्यो। महासूर सावंत दिल को करारो।।
महा मौज दरिया वही दान दाता। कबी कों सबी कों जगतमाहिं ख्याता।।
किधौं तारिका बूंदसों चंद छुट्यो। किधौं इंद्र इंद्रासेन इंद्र छुट्यो।।
किधौं राहु नव जायके युद्ध लायो। गिर्यो भानु बेवामसौं भूमि आयो।।
पर्यो खेत महिं चैत नहिं प्रेत लागे। लखै नैनसो नैनहीं भूक भागे।।
खरे जार ही जार सरदार रोवें। सबैं आपनो आपनो मूंह धोवें।।
मनो आज वर्षा हि रितु रीत लागी। झरैं नेन सों नीर झरना झरागी।।
भयो भूमिका पे सबे त्रास भारी। रही बीर के चित्त की चित्त धारी।।
चढ़े व्योम बेवान सब दैव आये। लखे नै ही सिंह नैना भराये।।
अचंभा इहे देखि रंभा' कुलानी। इते शत्रु की फौज सब ही पलानी।
किला ही न खाली लग्यो कांगड़ाई। इतें जाय किनहूं हकीकत सुनाई।।

काजीकों गोली लगी, तुम क्यों भाजी जाय।
खबरदार ने खबर दी, राखो फौज थमाय।।
नैन सिंह जब ही हतै, पाई फतह कटोच।
अमर सिंह काजी कियो, हर्ष सोक ही सोच।।

हर्ष इहे मन माहीं कीन्यो। नैन सिंह ने किला न छीन्यो।
इह जस जो अब हममी पावैं। इक दिन किला इहे जो छितावे।।
शोक इहै कीन्यो मन माहीं। गोत घाव लाग्यो तन पाहीं।।
सोच भई जो नृप सुन पावें। निमकहराम हमहिं ठहरावें।।

गई खबर नेपाल यह, कांतीपुर दरबार।

नैनसिंह काजी गिर्‌यो, करी खूब तलवार।।
प्राण दये पर खेत न छाड़्यो। खेत दये अरि जस जग बाढ़्यो।।
महाराज सुनि उत्तर दीन्यो। जो इत कहि गयो सो उत कीन्यो।।
नैनसिंह के बीर कहां अब। जो मुख कहैं करैं सोई सब।।
सीस दियो पर पीठ न दीनी। निमक-हलाली जग महिं कीनी।।
भीमसेन सेती कह्यौ, महाराज भरि स्वास।
जो तुम जाओ कांगड़े, कौन हमारे पास।।
तुम बिन इत कैसे निभै, तुमरे सिर सब भार।
निमक-हलाली में रहो, निसि-दिन ही दरबार।।

कांगड़ा पर फिर आक्रमण

रुद्रबीर चौतरिया आये। दलभंजन संग मांहि पठाये।।
लियो कांगड़ा तिनहुं घिराई। चहूं तरफ फौजहीं पिलाई।।
फिरैं तिलंगा चहुं तरफ, आठों जाम अथाह।
देखि पेखि संसार को, भयो महाभय त्रास।
संसारचंद तब ही मिल्यो, आन दुहून के पास।।
पांच लाख धन-पुत्रिका, कीनी आन कबूल।
किला कांगड़ा सहित ही, लेहो मुलक मसूल।।
संसारचंद ने इह कही, बैठ एकांतहि माहिं।
दलभंजन पांडेहि से, और चौतरा ताहिं।।
संसारचंद बहुत घूसहि दीनी। दलभंजन चौतरिया लीनी।।
किला छाड़ि मिलि बैठे दोई। करी हमारी सबही खोई।।
जो इह पलटि तहां को जावैं। किला कांगड़ा हमहुं छुटावैं।।
अमरसिंह ने तंत्र इह, लिखि भेज्यो दरबार।
महाराज ने सुनत ही, भज्यो भारादार।।

कांगड़ा पर गोरखों का अंतिम आक्रमण

दलभंजन और चौतरा, दोनों लये बुलाय।
कुंवर वीर ही भद्र जो, दीन्यो सीघ्र पठाय।।
बीरभद्र तुम वीर हो, करौ काज इहि आज।।
किला कांगड़ा फौज ले, जाव कह्या महाराज।।
कियो प्रवेश वीर ने, श्रीनग याहि भांत सों।

सिघ्रता बुला हमें, दई जो भ्हौर हाथ सों।।
अनेक भांत की कृपा, हमें जो भूप की भई।।
धाम ग्राम बाग ही, जगीर थाम सब दई।।
राग रंग नृत्य फाग, सहूर में मचाइयौ।।
अबीर औ गुलाल बीर, बहुत ही उड़ाइयौ।।
मृदंग खंजरी झंजाल, और बीन बाजती।
सरंग हि सितारतार, बांसुरी हि गाजती।।
नचै नरी परीहि ज्यों, बरांगनाहि रंग में।
अबीर आस-पास बीर ही सवैं तरंग में।।
महराज गीरवाण जुद्ध को प्रताप गावते।
बीरभद्र ध्यान धर प्रेम सों लड़ावते।।
देत रोज मौज दर्ब सबे ही गुनीन कौं।
प्रसन्न होई के बुलाय देत विप्र दीन कौं।।
अमर सिंह काजी कह्यौ। जो दूहूं सिरमौर।
प्रथम मोरनी तोड़नी, बीरभद्र रणजोर।।
बली बीर रणजोर सज सेन आये। कंवर बीरभद्र हि संग में पठाये।।
घटा भूमि के झूमि के ज्यों भराई। मिली दामनी सामनी सेन आई।।
लड़ैं गोरखे बीर बांके तिरंगी। लगी बाजने-गाजने तोप जंगी।
धरी सामने तोप छूटैं कराल। दुहुं ठौर सेती मनौ ज्वाल-माल।।

धस्यो फौज कों चीर कै बीरभद्रे। गये खासिया भाजिकें ढांट छुद्रे।।
खड़े खेत में खेंच तलवार षुंडा। दये काटि ही कूटि अरि-रुंडमुंडा।।
कहूं खूंखरी षुंड तलवार गाजें। मनो भूमि भूकंप आकास गाजें।।
करैं मोर ज्यों सोर पहुंच ओर सेती। लई मोरनी मारि कै जोर सेती।।
अटा की छटा पै खड़ी नार देखें। कहूं भाजने को नहीं राह देखें।।
भजैं जा दिसां बांह ऐंचें तहाही। कहूं भाजने कौं मिली बाट नाहीं।।
जितैं बीर रणजोर काजी हि जौहैं। जो देखे छबी वाहि को चित्त मोहें।।
भई आन के नार सब पास ठाड़ी। मिट्यो त्रास तिनको महानंद बाड़ी।।
लगी टकटकी धकधकी मूर्च्छाई। मनों गोपिनें भेंट पायो कन्हाई।।
सबै बीर मैं धीर बलि बीरभद्रैं। किधों दक्षप्रजापति हेत रुद्रैं।।
लड़्यो एकलो जंगमहिं दंग कीन्यों। महा मोरनी दुर्ग गढ़ तोड़ दीन्यों।।
इहै भांत सब ही भये तहं प्रहारी। पड़्यो सहर सिरमौर आतंक भारी।।

सबैं बीर महि बीरभद्रैं महाई। धंस्यो आप ही मोरनी जा छुटाई।।
भजो कर्मपरकास भी कर्मनासा। रही रत्नपरकास को नाहिं आसा।।
लड़ें आपनी भूमि पै भूपती जो। मरै तो तरै होय ताकी गती तो।।
इहे साह प्रद्युम्न गढ़राज कीनी। दये आपने प्राण नहिं लाज दीनी।।
भयो भ्रष्ट सिरमौरिया राज बाको। बचे प्राण उपहासभ्यो लोक ताको।।
मिट्यो त्रास तिनको भयोजी हुलासा। चल्यो पंथ मंमथ्य सर्वत्र खासा।।
सबै मुल्क बाजार गुल्जार कीन्यो। महादान सन्मान सौं विप्र दीन्यो।।
महादुंदुभी भेर झंकार बाजी। बजै मारफा तास बंदूक गाजी।।
सबें सहूर सिरमौर नाहण बसाई। फिरी साह गिर्वाण जूकी दुहाई।।
रची तहं सभामंडली सुद्ध सारी। महातंत्र ही जंत्र मंत्राधिकारी।।
लहें नैन ही औ कहें मधुर बानी। करे दूध को दूध पानी को पानी।।
विचारी अचारी रची नीत सारी। रहें सिंह ही मृग सभा एक सारी।।
रहें बैठ बारादरी न्याय माहीं। रचे चारों ही वर्ण नीके तहां ही।।

किला कांगड़ा घेरि के, कीन्यो सब मजबूत।
अकुलाये तब ही तहां, सब रांडी के पूत।।

रस्त बंद सब करी तहां ही। खलबल पड़ी किले के मांही।।
खाली भये भंडार कुठारा। बाहर अन्न न आवे भारा।।
त्राहि-त्राहि गढ़ भीतर भई। नर-नारी सब मूर्च्छित रही।।
घास-फूस सब खानहि लागे। एक एक कर जात हैं भागे।।
जो कोई दिन जीया चाहो। काजी में कुछ सूत्र मिलाओ।।
प्रान काहु विध सों रख लीजें।
प्रान रहे जो घट के मठ ही। फेर करें हम हूं नटखट ही।।
सो परतीत शत्रु को दीजे। अपनो काम काढ़ि सब लीजे।।
कह्यो वचन मृदु मधुर महाई। हों राजा ने दियो पठाई।
कायल हो नृप बिनती कीनी। इह आरती करि तुमसों दीनी।।
किला-कांगड़ा हम हूं छाड़्यो। अब हमको तुम बाहर काढ्यो।।
अपना करि के हम कों राखो। बचन यहै नौरंगा भाखो।।

किला-कांगड़ा छाड़ि के, आओ हमरे पास।
रहो चाकरी मांहि तुम, पूर्न होय सब आस।।

किला गोरखा जो इह पावें। धुर काशी कस्मीर दबावें।।
पुनि लहौर में लगे न बारा। लेहि पिसोर हिंद इह सारा।।
ताते तुम जो किला बचाओ। रणजीत सिंह को सिघ्र बुलाओ।।

किला सौंपि पालायन कीजै। अपनौ बोझ ताहि सिर दीजै।।
किला-कांगड़ा सिंह दबावें। तो कोई दिन में हम पावें।।
इह मसलत सबके मन भाई। पाती सिंह पे सिघ्र पठाई।।
पाती महिं हाथी लिखि दीन्यो। आसपास ही कीचर कीन्यो।।
कीचहिं बीच फंसे जब हाथी। काढ़े गधा न, काढ़े साथी।।
सिंह सिंह को काज सुधारें। सूर सूर सोंही ललकारें।।
साह साह को काज चलावें। राजा राजा मदत को आवें।।
हमहूं बहोत आज लों थामी। पूरब वेरी पश्चिम जामी।।
ताते याको करो विचारा। पाती बांचि लगे नहिं बारा।।
किला-कांगड़ा तुमको दीन्यो। नातर इहे गोरखा लीन्यो।।
तुपक तीर तलवार सिरोही। लीने चक्र चढ़े सब कोई।।
तोफन की गिनती कछु नाई। अंधाधुंध सरबत्रहि छाई।।
फौजन को कछु नाहिं सुमारा। जित कित सिंह फिरे असवारा।।
तबें गोरखा बात चिताई। फौंजें जब सिर पे चढि आई।।
दल-बादल चहुंदिस चढ़ि आये। बरषा रितु ज्यो नभ घन छाये।।
सिंह कहे उठि घर कों जाओ। के तो लड़ने सनमुख आओ।।
रस्त बंद चहुं गिरद सों कीनी। पौन सरीखी जान न दीनी।।
जल बिन सब ही अत अकुलावें। अन्न मिले नहिं भासहिं खावें।।
सबे गोरखा अति अकुलाये। काजी सहित मिलन तब आये।।
रणजितसिंह को सीस नवायो। कर सलाम सतलुज को आयो।।
सूबी ठौर में बैठ्यो जाई। कांतीपुर इह खबर पोंछाई।।
किला कांगड़ा सिंह ने लीन्यो। हम को सतलुज वारहि दीन्यो।।
हम सूखे अब ठौरहि आये। सतलुज वार सब राज दबाये।।
रणजोरसिंह सिरमौर के मांहीं। बलभद्र गयो दूण के ताहीं।।
श्रीनगर बहादुर भंडारी। दसरथ खत्री संग तिन हारी।।
हमें हुक्म अब जो कछु होई। करें चाकरी हम हूं सोई।।
रणजितसिंह संग फौज घनेरी। थके आंख वा तर्फ जो हेरी।।
लीनी जिन कसमीरहि सारी। सुरासान मुलतानहि भारी।।
इह अरजी नेपाल पठाई। भीमसेन जर्नैल बंचाई।।
महाराज सुनि के जो रिसाये। बखतावर वसन्यात पठाये।।
कह्यो जावो श्रीनग्र के मांही। बैठ करो तुम काज तहां ही।।

जालंधर पीठ माहात्म्य के कुछ अंश
(सौजंन्य : पृथुराम शास्त्री)

अथ जालंधर-पीठ-माहात्म्यम्
प्रथमोऽध्यायः

शौनक उवाच–

सूत सूत महाभाग सदागमविदाम्वर।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पश्य ते मतिरीदृशी।।1।।
भवदीय-मुखम्भोजान् निःसरद् वचनामृतम्।
आस्वाद्याऽओ न तृप्यामः कलिकल्मष-नाशनम्।।2।।

1. शुनक पुत्र शौनक ने नैमिषारण्य में दृषद्वती नदी के तट पर द्वादश-वर्षीय यज्ञों का आयोजन किया था। ये साठ हजार ऋषियों के नेता थे। यज्ञ में आमंत्रित सूत जी ने शौनक के अनुरोध पर पुराण-कथा सुनाई थी। 2. सूत जी भगवान् व्यास के शिष्य थे। गुरु से पुराणविद्या पढ़कर ये पुराणों के आद्य कथाकार बने। एक बार कथा करते समय इनके सत्र में बलराम जीं आ पहुंचे। सभी ने उठकर उनका स्वागत किया किंतु व्रतस्थ होने से सूत जी न उठे। इसे अपना अपमान समझकर बलराम ने इनकी हत्या कर दी। ततः इनके पुत्र उग्रश्रवा कथावाचक बने। पौराणिक साहित्य प्रायः शौनक-सूत-सम्वादात्मक है। 3. कीद्दशी, सं. पा.।

सत्तामय-निसर्गोऽयं परोपकृतये सदा।
श्रुतं धनं वचश्चैव तथा श्रीरपि नश्वरा।।3।।

शौनक बोले–

सत्-शास्त्रों के ज्ञाता और विद्वानों में श्रेष्ठ हे सूत जी! आप और आपकी बुद्धि, दोनों धन्य हैं। आपके मुखकमल से निकले वचनामृत का पान करके हमारी तृप्ति नहीं हो रही है। अहा! इस कथामृत के श्रवण से कलिकाल के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। हमने यही सुना है कि संसार का यह धन, संपत्ति आदि सभी कुछ नश्वर है। उस परम सत्ता पर आश्रित यह संसार (मानव जीवन) केवल मात्र परोपकार के लिए है।

जालंधरस्य माहात्म्यं श्रावितं कुलसत्तम।
पुनश्च श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः किञ्चिन् महाव्रत।।4।।
यानि तीर्थानि देवाश्च त्ववशिष्टा वसन्ति हि।
माहात्म्यञ्चैव तेषां हि विपाशायास्तथैव च।।5।।
तथा च बाणगङ्गायाः सेतिहासकथानकम्।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् सद्यः कल्मषनाशनम्।।6।।
कलौ नष्टदृशां पुसां सूत ह्रस्वाऽऽयुषां तथा।
एष एव परो लाभः सतां सङ्गः सुदुर्लभः।।7।।
सत्सङ्गतिश्च सद्वार्ता जाता कालमथापि वा।
सद्य एव नृणां सूत हन्ति कल्मषमात्मनः।।8।।
श्रवण सत्पुराणानां भगवन्नामकीर्तनम्।
सुपुण्य-क्षेत्र-वासश्च महद्भाग्यात् प्रजायते।।9।।
वचनमेवमाकर्ण्य ऋषिवर्यस्य सत्तमः।
सूतः संश्रावयामास पूर्वं सर्व यथाश्रुतम।।10।।

हे महाव्रत सूत जी! आपने जालंधर क्षेत्र का माहात्म्य तो सुना दिया, किंतु इसके संबंध में हम कुछ और भी सुनना चाहते हैं। इस पीठ के जो पवित्र तीर्थ, देवस्थान तथा विपाशा, बाणगंगादि पवित्र नदियां रह गई हैं, उनके पापनाशक माहात्म्य को ऐतिहासिक कथानक के साथ हमें सुनाने की कृपा कीजिए। कलियुग में मनुष्यों की आयु कम होती है और उनके पास ज्ञानदृष्टि भी नहीं होती। ऐसी स्थिति में सुदुर्लभ सत्संगति और सद्वार्ता (कथा) का श्रवण ही इस युग का परम लाभ है। अल्पकालिक सत्संगति और सुनी हुई सत्कथा पाप को धो डालती है। पुराण-श्रवण, भगवान्नाम कीर्तन और पुण्य क्षेत्र में निवास, ये बड़े भाग्य से मिलते हैं। शौनक की प्रार्थना को सुनकर सूत जी अपने ज्ञान के अनुसार श्रोतृ-वृंद को सुनाने लगे–

अहो शौनक धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि सुव्रत।
सर्व वः श्रावयिष्यामि यथाऽधीतं गुरोर्मुखात्।।11।।
माहात्म्यं हि विपाशाया शृणु पूर्वमृषीश्वर।

हे शुभव्रती शौनक! आप धन्य हैं और आपका जीवन भी कृतकृत्य है। मैं आपको गुरुमुख से पढ़ा-सुना सभी कुछ सुनाता हूं। सर्वप्रथम आप विपाशा (व्यास) नदी का माहात्म्य सुनिए–

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच–

अप्सरातीर्थ-माहात्म्यं श्रृणुत वच्मि भूसुराः।
(पुरूरवस्-उर्वशी कथानकम्)
आसीत् पुरूरवा नाम चैलो विख्यात-कीर्तिमान्।।1।।
उर्वशी चाऽप्सरा नाम रूपसौंदर्य-गर्विता।
दुर्वाससश्च शापेन मर्त्यलोकमुपेयुषी।।2।।
सदृशमात्मरूपेण त्विच्छंती वरमुत्त्मम्।
स्वकीयोपवनस्यांते वृत्तं कतिपयेर्जनैः।।3।।
ददर्श चैलभूमीशं क्रीडंतमकुतोभयम्।

सूत जी पुनः सुनाने लगे–

हे द्विज वृंद! अब आप अप्सरातीर्थ (अच्छर कुंड-कांगड़ा) का माहात्म्य सुनिए। निजरूप-गर्विता उर्वशी नाम की एक अप्सरा दुर्वासा ऋषि के शाप से मर्त्यलोक में आ गई और अपने जैसे वर की कामना करने लगी। अति विख्यात एवं यशस्वी ऐल राजा पुरूरवा, जो उपवन में निर्भय होकर अपने मित्रों के साथ खेल रहा था, पर उसकी नजर पड़ी।

(कांगड़ा के अन्य देव-स्थान)

बाणगङ्गा च पातालगङ्गा ह्यत्र सरिद्वरे।।21।।
तयोश्च सङ्गमे स्नात्वा पापहानिः प्रजायते।
सूर्यकुंडस्य च स्नानं सूर्यप्रीतिकरं परम्।।22।।
कर्मनाशापरे पारे कुरुक्षेत्रं प्रकीर्तिततम्।
यत्र वै स्नानमात्रेण पापहानिः प्रजायते।।23।।
तत्र चार्धगया पुण्या फग्गुतीर्थ च सत्तमाः।
सहस्रं तत्र धारणां सर्वकामफलप्रदम्।।24।।
ततश्च गुप्तगङ्गायां स्नानं सर्वार्थसिद्धिदम्।
गुप्तगङ्गान्तिके चैव ख्याता च मणिककर्णिका।।25।।
यस्याश्च स्पर्शमात्रेण महापातककोटयः।
नाशमायान्ति च क्षिप्रं तूलराशिरिवाग्निना।26।।

हे मुनिवृंद! पातालगंगा और बाणगंगा नदियों के संगम पर स्नान करने से पाप नष्ट हो जाते हैं एवं सूर्यकुंड में स्नान करने से भगवान् भास्कर प्रसन्न होते हैं।

कर्मनाशा नदी के परले पार कुरुक्षेत्र अर्धगया, फल्गुतीर्थ, धारासहस्र और गुप्तगंगा तीर्थ हैं। इनका स्नान सर्वार्थसिद्धिदायक है। गुप्तगंगा के निकट मणिकर्णिका के जल के स्पर्शमात्र से पापसमूह वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे आग से रुई का ढेर।

अत्र चैव हरिद्वारदर्शनं मुक्तिदायकम्।
क्रोशार्धे चंद्रकूपात् तु ह्युदीच्यां पुष्करं स्मृतम्।। 27।।
स्नानमात्रेण वै सर्वाभीष्टप्रदायकं खलु।
जानकीरामयोः कुंडे कुंडं लक्ष्मणस्य च।। 28।।
तथैव गिरिजाकुंड सर्वपापहरं परम्।
अन्यानि चैव तीर्थानि मुने संति बहूनि च।। 29।।
चक्रतीर्थान्तिके चैव ब्रह्मकुंड प्रकीर्तितम्।। 30।।
अतः सर्वोत्तमं क्षेत्रं जालंधरं हि वै स्मृतम्।। 31।।

।। इति जालंधरमाहात्म्ये अप्सरातीर्थवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।

यहीं पर हरिद्वार, चंद्रकूप से उत्तर की ओर आधे कोस पर पुष्करतीर्थ और सीता, राम, लक्ष्मण एवं गौरी के पृथक्-पृथक् कुंड हैं। चक्रतीर्थ के पास ब्रह्मकुंड है। यहां ब्रह्मा ने पाप-प्रक्षालनार्थ स्नान किया था। इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत सारे तीर्थ हैं। ये सभी स्नान मात्र से पापों को धो डालते हैं। इन्हीं तीर्थों एवं देव-स्थानों के कारण इस पीठ को सर्वोत्तम क्षेत्र कहा गया है।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

शौनक उवाच—

क्षेत्रमाहात्म्यकञ्चैव श्रोतव्यं हि कथं बुधैः।
यथा सम्यक् फलप्राप्तिर्नृणां स्यादतिदुर्नृर्लभा।। 1।
एतानि चैव तीर्थानि कथं श्रेयानि सुव्रत।
तत्सर्व वै समाचक्ष्व सूत वाक्याविदाम्बर।। 2।।
श्रुत्वा शौनकवाक्यं तु सूतः प्रोवाच भक्तितः।।

मुनि शौनक जिज्ञासा से फिर पूछने लगे—

हे धर्मज्ञ सूत जी! इस जालंधर क्षेत्र का माहात्म्य कैसे सुनना चाहिए? इसको सुनने का पूरा फल कैसे मिल सकता है? साथ ही यह भी बताने की कृपा कीजिए कि इन तीर्थों का ज्ञान कैसे हो सकता है? शौनक की जिज्ञासा को सुनकर सूत जी भक्ति के साथ कहने लगे—

(तीर्थ-परिचयः)

(पीठस्यास्य रूपं हि श्रूयतां वै यथाविधि।)

जालंधराभिधं क्षेत्रं चतुर्द्वार-समन्वितम्।।3।।
न्यस्तानि ह्यत्र कीलानि चतुर्दिक्षु च वेधसा।
द्वारपालाश्च तत्रापि स्थापिता दिक्षु वै मुने।।4।।
पूर्वादिक्-पालकश्चैव महाकालो मुनीश्वराः।।
कालेन स्थापितं लिङ्गं पश्चाद् वक्ष्ये यथामति।।5।।
पूर्वस्यां दिशि सम्पूज्यो महाकालाभिधो गणः।
दक्षिणस्यां तथा चैव दिशि कालीश्वरः शिवः।।6।।
तत्र चेश्वरचतुष्टयर्थं महाकाल्यचरत्तपः।
विपाशायास्तटे रम्ये पारे दक्षिणतस्तथा।।7।।
शैवञ्चैव महालिङ्गं भक्त्याभीष्टप्रदायकम्।
ये जनास्तदनभ्यर्च्य तीर्थयात्रां चरन्ति वै।।8।।
तेषाञ्चैव फलं सम्यङ्. मुने नैव प्रजायते।

हे मुनिवृंद! पहले इस क्षेत्र का स्वरूप सुन लीजिए। इसका नाम जालंधर-पीठ (क्षेत्र) है। ब्रह्मा ने इसकी चारों दिशाओं में चार कीलक और इतने ही द्वारपाल भी स्थापित किए हैं। पूर्व दिशा के द्वारपाल महाकाल हैं। महाकाल द्वारा स्थापित महाकाल नाम के शिव-विग्रह का वर्णन यथामति बाद में किया जाएगा। इनकी पूजा करनी चाहिए। दक्षिण दिशा के द्वारपाल कालीश्वर (कालेश्वर) महादेव हैं। यहां महाकाली ने प्रभु को प्रसन्न करने के लिए तप किया था। यह देवस्थान इस पीठ की दक्षिण दिशा में बह रही विपाशा (व्यास) नदी के परले पार सुंदर तट पर स्थित है। यहां पर शिवजी का भव्य विग्रह विद्यमान है। इसकी पूजा से अभीष्ट की प्राप्ति होती है। इसकी पूजा किए बिना जो यात्री यात्रा करते हैं उन्हें उसका पूरा फल नहीं मिलता।

पश्चिमद्वारपालस्तु गणाख्यातः कुलेश्वरः।।9।।
तञ्चापि पूजयित्वा तु नरः सर्वफलं लभेत्।
उत्तरद्वारपालस्तु नंदिकेश्वर उच्यते।।10।।
यत्रैव नंदिना तप्तं तपः परमदुष्करम्।
तपसा तस्य तुष्टो हि त्र्यम्बकः प्रददौ वरम्।।11।।
गणानामीश्वरत्वञ्च स सम्प्राप्य मुनीश्वराः।
(अद्यावधि रमते तत्र बाणगङ्गा-तटे शुभे।)
तमनभ्यर्च्य यात्रां यः प्रकरोति मुनिश्वराः।।12।।
न सम्यक् फलमाप्नोति ततस्तं पूजयेन्नरः।

पश्चिम दिशा के द्वारपाल कुलेश्वरगण हैं। यात्री को इनकी पूजा करके यात्रा का पूरा फल पाना चाहिए। इसी प्रकार उत्तर दिशा के द्वारपाल नंदिकेश्वर हैं। यहां नंदीगण ने दुष्कर तप किया था और उससे प्रसन्न होकर प्रभु त्र्यम्बक (शिवजी) ने उन्हें गणाधिपति बनाया था। वे भगवान् नंदिकेश्वर आज तक बाणगंगा के रम्य तट पर रहते हैं। इनकी पूजा किए बिना जो यात्रा करता है उसे उसका पूरा फल नहीं मिलता। यह अवश्य करनी चाहिए।

बालुका च नदी तत्र बाणगङ्गा च सत्तमाः।।13।।
अनयोरन्तराऽऽख्यातौ गौरी पुत्र गणेश्वरौ।
स्नात्वा तु बाणगङ्गायां पूजनीयोऽम्बिका-सुतः।।14।।
वज्रेश्वरी च तत्रास्ति सार्धके क्रोशपुण्यके।
पार्थिर्दक्षितश्चास्ते सर्वविघ्ननिवारणः।।15।।
तमनभ्यर्च्य ये चापि यात्रां कुर्वन्ति मानवाः।
तेषां विघ्नविनाशस्तु कथं भवति सत्तमाः?।।16।।

बालुका और बाणगंगा, इन दोनों नदियों के मध्यभाग में गौरी पुत्र गणेश और नंदीगण विराजमान हैं। बाणगंगा में स्नान करके इनकी पूजा करनी चाहिए। भगवती वज्रेश्वरी का स्थान यहां से लगभग डेढ़ कोस की दूरी पर है। वज्रेश्वरी मंदिर से दक्षिण की ओर विघ्न-विनाशक अर्जुनेश विराजमान हैं। इनकी पूजा किए बिना ही जो यात्रा करते हैं उनके विघ्नों का नाश कैसे हो सकता है?

गणेशं पूजयित्वा च गंतव्यं चक्रतीर्थके।
पश्चिमोत्तरयोर्मध्ये पादक्रोशमितेऽध्वनि।।17।।
वज्रेश्वर्या महादेव्यास्तीर्थं सवोत्तम शुभम्।
स्नात्वा च तत्र संशुद्धो देवीदर्शनमादरात्।।18।।
प्रकुर्वीत नरस्तत्र चतुर्वर्ग-फलप्रदम्।

ततः भगवती वज्रेश्वरी से पश्चिमोत्तर दिशा में चौथाई कोस की दूरी पर चक्रकुंड है। यह भगवती का सर्वोत्तम शुभ घाट है। यहां स्नान द्वारा शुद्ध होकर यात्री आदर के साथ भगवती के दर्शन करें, इससे पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्त होता है।

जयन्तयास्तु ततो देव्याः कर्तव्यं दर्शनं शुभम्।।19।।
देवीतश्चास्ति नैर्ऋत्यां योजनप्रतिमेऽध्वनि।
यस्याः संदर्शनात् सद्यः कृतकृत्यो भवेन्नरः।।20।।

तत्पश्चात् जयंती माता के दर्शन करने चाहिए। यह स्थान भगवती वज्रेश्वरी से दक्षिण-पश्चिम दिशा में लगभग चार कोस की दूरी पर स्थित है।

पूजनञ्चाम्बिकायाश्च वटुकस्य तथैव हि।।
देव्याश्च नैर्ऋतीकोणे गव्यूत्यर्धमितऽध्वनि।।21।।
अंबिकां पूजयित्वा च सर्वाभीष्ट-फलप्रदाम्।
गच्छेज्जवालामुखीं देवीं ज्वालाभिः परिवेष्टिताम्।।22।।
देव्या दक्षिणतश्चैव सार्धयोजन-युग्मके।
नित्यं सा वर्तते देवी चतुर्वर्गफलप्रदा।।23।।
तस्याश्च पूजनं कृत्वा कुर्याच्च हवनं नरः।

भगवती वज्रेश्वरी से दक्षिण-पश्चिम दिशा में एक कोस के अंतर पर दुर्ग में स्थित सर्वाभीष्ट प्रदायिनी अंबिका देवी और वटुक भैरव की पूजा करके ज्वालामाला से परिवेष्टित (जगमगाती) भगवती ज्वालामुखी की यात्रा करनी चाहिए। यह स्थान वज्रेश्वरी से दक्षिण दिशा में लगभग अठारह कोस की दूरी पर है। देवी की पूजा के पश्चात् हवन भी करना चाहिए। इससे चतुर्वर्गरूपी फल की प्राप्ति होती है।

देव्याश्चोपरि लिङ्गञ्च ह्यम्बिकेश्वर-नामकम्।।24।।
तस्यापि पूजनं कार्य सद्यः सिद्धिमभीप्सता।

देवी ज्वालामुखी से ऊपर पहाड़ में अंबिकेश्वर नामक देव-स्थान है। तत्काल सिद्धि के इच्छुक यात्री को अत्र स्थित शिवजी की पूजा अवश्य करनी चाहिए।

ततश्चैवाञ्जनी देव्याः कार्य दर्शनमादरात्।।25।।
देवीतः कोण ईशाने योजन-प्रतिमेऽध्वनि।
वर्तते सा महादेवी भक्त्याऽभीष्ट-प्रदायिनी।।26।।

यहां से लौटकर वज्रेश्वरी के मंदिर से ईशान कोण में लगभग एक योजन (चार कोस) की दूरी पर स्थित अंजनी माता के दर्शन करें। यह भक्त की कामना को पूरा करती है।

वीरभद्रेश्वरं देवं पूजयेद् भक्तिमान्नरः।
यज्ञकुंडं च तत्पार्श्वे यत्र सत्या शरीरकम्।।27।।
दग्धमस्ति महेशानप्रियया परमक्रुधा।
देव्या दक्षिणतश्चैव क्रोश-पाद-मितेऽध्वनि।।28।।

तदनंतर वीरभद्रेश्वर की पूजा करनी चाहिए। वीरभद्रेश्वर के पास ही वह यज्ञकुंड भी है जिसमें शिवप्रिया सती ने दक्ष यज्ञ में शिवजी के असम्मान से क्रुद्ध होकर अपना शरीर जला दिया था। यह स्थान देवी वज्रेश्वरी के मुख्य मंदिर से दक्षिण दिशा की ओर चौथाई कोस पर स्थित है।

ततश्च कालिकां देवीं देवीतो वायुकोणगाम्।
समर्चेत्तु सुभक्त्या वै सकलाभीष्टदां मुने।।29।।
गव्यूतिमति मार्गे हि देवीतो वर्तते च सा।

पुनः वीरभद्र से चलकर वज्रेश्वरी से उत्तर-पश्चिम दिशा में दो कोस की दूरी पर स्थित कालिका देवी की पूजा करनी चाहिए। इससे सभी कामनाएं पूरी होती हैं।

वीरभद्रेश्वराच्चैव वायुकोणे तदन्तिके।।30।।
ख्याता चार्धगया सद्यः पितृणां मुक्तिदायिका।
तस्याश्चानल्पपादेन वर्तन्ते प्रमितेऽध्वनि।।31।।
सीताया रामचंद्रस्य लक्ष्मणस्यापि वा मुने।
समाख्यातानि कुंडानि स्नात्वा पापहराणि च।।32।।

वीरभद्रेश्वर के पास ही वायु कोण में पितरों को तत्काल मुक्ति देने वाली अर्धगया और वहां से अनुमानतः चौथाई कोस पर सीता, राम और लक्ष्मण के कुंड हैं। इनमें स्नान करने से पाप नष्ट होते हैं।

देव्या नैर्ऋतीदिग्भागे देव इंद्रेश्वरो मतः।
तस्मादेव हि गङ्गाऽपि गुप्ताख्या दक्षिणे स्मृता।।33।।
उत्तरे सूर्यकुंडञ्च वीरभद्रेश्वरात् स्मृतम्।
गौरीकुंडञ्च तत्रैव सर्वाभीष्टप्रदायकम्।।34।।
चक्रतीर्थं प्रतीच्यां च क्रोशार्ध-प्रमितेऽध्वनि।
पञ्चार्णस्य तु मंत्रस्य प्रजपात् सिद्धिदायकम्।।35।।

देवी से दक्षिण-पश्चिम दिशा में देव इंद्रेश्वर स्थित हैं और वहां से दक्षिण में गुप्तगंगा है। वीरभद्र से उत्तर दिशा में सूर्यकुंड और गौरीकुंड हैं। इनकी यात्रा से मनोरथ पूरे होते हैं। पश्चिम की ओर लगभग आधे कोस पर चक्रकुंड है। यहां पंचाक्षर मंत्र के जप से सिद्धि मिलती है।

अम्बिकाऽऽग्नेय कोणे तु पञ्चाशद् दंड-सम्मिते।
(कर्पूरसागरस्तीर्थं जपात् सिद्धिप्रदायकम्।)

अम्बिका से आग्नेय कोण में लगभग दो सौ पचास गज की दूरी पर कर्पूरसागर नाम का तीर्थ है। यहां पर स्नान करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

प्रतीच्युदिग्-दिशोर्मध्येऽम्बिकातः क्रोशमात्रतः।।36।।
(तत्रैव सङ्गमस्थानं प्रोच्यते मुनिसत्तमाः।)
यत्र च स्नानामात्रेण नरो निष्पापतामियात्।

पश्चिम और उत्तर दिशाओं के मध्य में अंबिका देवी से लगभग एक कोस की दूरी पर किले के नीचे (बाणगंगा और माझी) संगम स्थान है। यहां पर स्नान करने से यात्री निष्पाप हो जाता है।

अत्र ते कथयिष्यामि पुराणमिति हासकम्।।37।।

(फलश्रुतिः)

सङ्गमस्नान-माहात्म्यान् महालक्ष्मी-प्रसादतः।
इंद्राच् छतगुणां लक्ष्मीमवाप्नोन्नृपसत्तमः।।102।।
अस्नात्वा सङ्गमे चैव ये गच्छन्ति प्रयागकम्।
लभन्ते ते न पूर्ण वै फलञ्चैवर्षिसत्तमाः।।103।।
तस्माज्जालंधरे पीठे गत्वा वै मनुजोत्तमः।
कुर्याच्च सङ्गमस्नानं ततः पूर्णफलं लभेत्।।104।।
तत्रैव हि महालक्ष्मी-मंत्रञ्च प्रयतो नरः।
जपेत् सद्यो महालक्ष्मीः प्रसन्ना भवति ध्रुवम्।।105।।

।। इति श्रीजालंधर-पीठ-माहात्म्ये सङ्गमतीर्थवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।

जालंधर पीठ के इस संगम तीर्थ पर स्नान करने से और महालक्ष्मी की कृपा से राजा मरुत ने इंद्र से भी सौ गुणा अधिक संपत्ति पाई थी। जो यात्री इस संगम पर स्नान किए बिना तीर्थराज प्रयाग की यात्रा को जाते हैं उन्हें उसका आधा-अधूरा ही फल मिलता है। इसलिए आस्थाशील यात्री जालंधर पीठ की यात्रा अवश्य करें तथा संगम-स्नान द्वारा यात्रा का पूर्ण फल पाएं और भगवती महालक्ष्मी के मंत्र का जप भी अवश्य करें। इससे महालक्ष्मी अवश्य प्रसन्न होती हैं।

अथ षष्ठोऽध्यायः

कापालि-भैरवश्चापि वज्रेश्वर्यास्तथाऽन्तिके।
यस्य वै दर्शनात् सद्यो विघ्नास्ते प्रचुरा अपि।।1।।
नाशमायान्त्यतश्चैव भैरवं पूजयेन्नरः।
अधुना कथयिष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः।।2।।
चामुण्डायाश्च माहात्म्यं श्रवणात् पापनाशम्।

सूत जी बोले—

हे मुनिवृंद! भगवती वज्रेश्वरी के पास भवन में ही कापाली भैरव हैं। उनके दर्शन करने से बड़े-बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं। अतः उनकी पूजा करनी चाहिए।

अब मैं आपको चामुंडा का पापनाशक माहात्म्य सुनाता हूं—

(चामुंडा-कथानकम्)

नंदीश्वरस्य पार्श्वे हि वर्तते भुवनेश्वरी।।3।।
शुम्भश्चैव निशुम्भोऽपि द्वावेव भ्रातरौ खलु।
यदाज्ञाकारका जाताः सर्वे सेन्द्रादयः सुराः।।4।।
अमात्यौ च तयोरेव विख्यातौ चंडमुंडकौ।
द्वावेव भ्रातरौ तौ स्तो देवेंद्राणां भयप्रदौ।।5।।
निग्रहीतुं तदा देवीमाज्ञप्तौ चंडमुंडकौ।
उभौ देव्यन्तिके तौ तु तां ग्रहीतुं प्रजग्मतुः।।6।।
देवी देहात् तदा शक्तिर्निगता चारुहासिनी।
द्वीपि-कपाल-खट्वाङ्गचर्मवरैश्च संयुता।।7।।
शुष्कैर्मासैर्महाभीमा वक्त्रे जिह्वासहस्रका।
नृमुंडमाल्यभूषा च घोरदंष्ट्रा महेश्वरी।।8।।

भगवती चामुंडा का स्थान नंदिकेश्वर के पास ही है। एक समय की बात है कि शुम्भ और निशुम्भ नामक दोनों दैत्य भाई अति प्रचंड थे। इंद्रादि देवगण को भी उन्होंने अपना दास बना लिया था। उधर चंड-मुंड नामक दोनों दैत्य भ्राता शुम्भ-निशुम्भ बंधुओं के विख्यात मंत्री थे। देवसमुदाय उनसे डरता था। एक बार उन दैत्य बंधुओं ने अपने मंत्रियों को देवी को पकड़ लाने का आदेश दिया। वे ज्योंही देवी के पास पहुंचे त्योंही देवी के शरीर से एक महाशक्ति (महाकाली) निकली। उसके एक हाथ में खप्पर, दूसरे में खोपड़ी-जड़ा डंडा, छाती पर हाथी के चमड़े की ढाल और गले में मुंडमाला थी। उसका शरीर सूखा हुआ अतः डरावना था और दाढ़ें महाभयंकर थीं। उसके अनेक मुखों में हजारों जिह्वाएं भी लपलपा रही थीं।

देव्याज्ञया द्वयोश्चैव शिरसी चंडमुंडयोः।
उत्कृत्य देहतः सा हि देव्यग्रे चानयद्यदा।।9।।
देवी तत्कर्म दृष्ट्वा तु सुप्रसन्नता बभूव ह।
उवाच वचनं तस्यै महाकाल्यै ततोम्बिका।।10।।

भगवती की आज्ञा से महाकाली ने उन दोनों, चंड-मुंड नामक असुरों के सिरों को काट डाला और लाकर देवी को सौंप दिया। महाकाली के इस वीरोचित कार्य को देखकर देवी प्रसन्न हुई और बोली—

(फलश्रुतिः)

यतश्चण्डञ्च मुडञ्च हत्वैवेहागतासि त्वम्।
अतस्त्वन्नामलोकेऽस्मिन् चामुंडेति भविष्यति।।11।।
गत्वा जालंधरे पीठे त्वन्मंत्रेण महेश्वरि।
पूजयिष्यन्ति ये मर्त्यास्तेषां सिद्धिः करे स्थिता।।12।
मनुं सप्ताक्षरं ये च जपिष्यन्ति त्वदन्तिके।
चतुर्वर्गस्तदा तेषां करगस्तु भविष्यति।।13।।
अतो जालंधरे पीठे चंडिकाऽर्चनमादरात्।
प्रकर्तव्यं विधानेन सद्यः सिद्धि-विधायकम्।।14।।

हे महाकालिके! तू चंड-मुंड को मारकर आई है, अतः तेरा नाम चामुंडा ही इस लोक में प्रसिद्ध होगा। जो यात्री यहां जालंधर पीठ में आकर तेरे सप्ताक्षर मंत्र का जप कर तेरी पूजा किया करेंगे उन्हें सरलता से ही सिद्धि मिल जाया करेगी और वे मानव जीवन के लक्ष्यभूत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चतुर्वर्ग को भी पा लिया करेंगे। अतः जालंधर पीठ में सिद्धिदात्री महाकाली चामुंडा की पूजा यथाविधि करनी चाहिए।

(नदी परिचयः)

पीठे जालंधरे चैव सद्यः पापहरा परा।
विपाशा च नदीश्रेष्ठा वर्तते लोकपावनी।।15।।
वज्रेश्वर्यास्तथाऽग्रे च बाणगङ्गा सुपुण्यदा।
बाणगङ्गाग्रतश्चैव निर्गुणाख्या सरिद्वरा।।16।।
भैरवा वै तदग्रे च सर्वपापविनाशिनी।
मालिनी च तदग्रे च सर्वपापविनाशिनी।
मालिनी च तदग्रे वै पापहानिकराऽपरा।।17।।
आस्वाख्या ह्यऽपरात्रैव पापहा पुण्य-वर्धिनी।
पुण्याख्या पुण्यदा चैव तदग्रे स्नान-पानतः।।18।।
तस्या अग्रे समाख्याता नदी वेणुमती शुभा।
क्षीरगङ्गाऽपि तत्रास्ति पापसङ्घविनाशिनी।।19।।

इस जालंधर पीठ में परा शक्ति की प्रतीक एवं पापहरा भगवती वज्रेश्वरी साक्षात् वास करती हैं और लोक पावनी व्यास नदी भी यहीं बहती है। भगवती वज्रेश्वरी के मंदिर के साथ थोड़ी सी दूरी पर पूर्व दिशा में पुण्यदात्री बाणगङ्गा तदुत्तरोत्तर नदी श्रेष्ठा निर्गुणा (न्युगल), पापनाशिनी भैरवा (भिरल), मालिनी (मौल), आसु (आवा), पुण्या (पूनणी) और कल्याणकारिणी वेणुमती (बिनवा), ये नदियां बहती हैं। विनोदा के तट

पर क्षीर गंगा तीर्थ भी स्थित है।

देव्यास्तथोत्तरे चैव मनूना च नदी स्मृता।
तदुत्तरं च पापानां मार्जनीयं सरिद्वरा।।20।।
तदुत्तरं च गर्जिता तस्याश्चैवोत्तरे तथा।
नदी शुचिजला चैव समाख्याता मुनीश्वराः।।21।।

भगवती वज्रेश्वरी से उत्तर दिशा की ओर उत्तरोत्तर मनूना (मनूणी), मार्जनी (माझी), गर्जिता (गज) और शुचिजला नाम की नदियां बहती हैं।

(अन्य देव स्थान)

सिद्धिनाथोऽपि तत्रस्ति पाप-पञ्जरभेदकः।
श्रीमद्विजयनाथाऽऽख्यस्ततश्चैवोत्तरे हरः।।22।।
पल्लिकेश्वर-नामा च सर्वलोकप्रियङ्करः।
यस्य संदर्शनादेव देहसंस्थानि यानि च।।23।।
पापानि विलयं यान्ति तूलराशिरिवाऽग्नना।

यहीं पर पापहारी महेश्वर सिद्धिनाथ हैं और उत्तर दिशा की ओर भगवान् विजयनाथ (बैजनाथ) विराजमान हैं तथा निकट ही जनकल्याणकर्ता पल्लिकेश हैं। इनके दर्शन मात्र से शरीरस्थ पाप वैसे ही भस्म हो जाते हैं जैसे आग से रुई का ढेर।

असङ्.ख्यातानि तीर्थानि देवताश्च महामुने।।24।।
(अत्र पीठे विराजन्ते पीठोत्तममिदं ततः।)
एवं सूतवचः श्रुत्वा मुनिः पप्रच्छ सादरम्।

हे मुनिवृंद! इनके अतिरिक्त और भी असंख्य तीर्थ और देव स्थान इस पीठ में विद्यमान हैं। इन्हीं से यह पीठ पवित्र है। सूत जी का कथन सुनकर शौनक ने आदर के साथ पुनः प्रश्न किया—

सूत सूत महाभाग भवता च महात्मना।।25।।
कथामृत-तरङ्गिण्या प्लाविताः स्मो न संशयः।
पुनश्च श्रोतुमिच्छामस्त्वतो वाक्यविदाम्बर।।26।।
क्षेत्रमाहात्म्यकञ्चैव श्रोतव्यं हि कथं मुने।
यथा सम्यक् फलप्राप्तिर्नृणां स्याद् भुवि दुर्लभा।।27।।
एवं मुनिवचः श्रुत्वा सूतः प्रोवाच भक्तितः।

हे महाभाग सूत जी! आपके कथामृत के प्रवाह ने हमें आप्यायित कर दिया है। आप सचमुच धन्य हैं। अब हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि इस पीठ का माहात्म्य कैसे सुनना चाहिए, ताकि श्रोता उसे यथाविधि सुनकर उसका पूर्ण फल

पा सकें। शौनक की जिज्ञासा सुनकर भक्त सूत जी से पुनः कहने लगे–

श्रुत्वा माहात्म्यकञ्चैव गौरीशङ्करयोस्तथा।
प्रतिमां कारयित्वा च पृथक्-पृथगुपस्करैः।।46।।
सुवर्णानां सहस्रेण सौवर्णीमथ निर्मिताम्।
(पूजयित्वा च तां मूर्ति तस्यै देयानि वै खलु।)
भूषणानि च सर्वाणि सौभाग्य-द्रव्यमेव च।।47।।
सूक्ष्माणि चैव वस्त्राणि कौशेयान्यपराणि च।
एवं पुरुषभूषादिवस्त्रैश्चैव तथा-विधैः।।48।।
महेश्वरञ्च सम्पूज्य स्वर्णसिंहासनास्थितम्।
पुस्तकोपरि विन्यस्य पूजयित्वा विधानतः।।49।।
वाचकाय च तत्सर्वं देयं त्रिदशसत्तम्।
दक्षिणां गुरवे दद्यात् कपिलां गां सुलक्षणाम्।।50।।
स्वर्णशृङ्गीं सवस्त्राञ्च रौप्यखुरीं पयस्विनीम्।
मुक्ता लाङ्.गूलसंयुक्तां तथा कांस्योपदोहनीम्।।51।।
वस्त्रछन्नां सवत्साञ्च मुक्ताग्रैवेयकां खलु।
दत्त्वा गामथ संतोष्य भूमिदानदिभिस्तथा।।52।।

जालंधर पीठ का माहात्म्य सुनकर एक हजार ग्रेन (175 ग्रेन-3 स्वर्ण) सोने की शिव-पार्वती की युगलमूर्ति विभिन्न तथा यथायोग्य उपस्करणों से बनाना। पार्वती को स्त्रीजनोचित सारे भूषणों, सौभाग्यसूचक प्रसाधनों, रेशमादि के विधि वस्त्रों से तथा शिवजी को पुरुषोचित वस्त्राभूषणों से सजाकर उस युगलमूर्ति को सोने के सिंहासन पर रखना और सिंहासनसहित उसे पुस्तक पर रखकर उसकी पूजा करना तथा कथावाचक को यथाविधि दान दे देना। दक्षिणा के साथ भूमिदान एवं गोदान भी करना। देय गौ सुंदर, दुधारू, कपिला और सवत्सा हो। उसके सींग सोने जड़े, पीठ कपड़े (झूल) से ढकी, खुर चांदी जड़े, पूंछ मोतियों की माला से सजी, गला मोतियों की माला से भरा हुआ और दोहनपात्र कांसे का होना चाहिए।

ततः पश्चादथो गत्वा क्षेत्रे जालंधराविधे।
तंमंत्रैस्य ततो देवी पूजनीया पुरंदर।।53।।
मंत्रस्य च नवार्णस्य जपः कार्यो सुभक्तितः।
तद्दशांशेन वै होमं ज्वालामुख्यान्तिके प्रभो।।54।।
यथाविधि दशांशं च कुर्याद् वै तर्पणादिकम्।
तदा भगवती देवी प्रसन्ना च भविष्यति।।55।।

तुष्टायामथ देव्यां तु किञ्चिन्न दुर्लभं नृप।
श्रुत्वा दुर्वाससो वाक्यं प्रोवाच त्रिदशेश्वरः।।56।।

हे देव! जालंधर पीठ का माहात्म्य सुनकर तुम जालंधर पीठ को चले जाना। वहां देवी के मंत्रों से देवी की पूजा करना, नौ वर्णों वाले देवी मंत्र का भक्तिपूर्वक जप करना और ज्वालामुखी के हवनकुंड में किए गए जप का यथाविधि दशांश हवन एवं उत्तरोत्तर तर्पण एवं मार्जन आदि करना, इससे भगवती प्रसन्न होगी। उसके प्रसन्न होने पर कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता। दुर्वासा का कथन सुनकर इंद्र ने पुनः पूछा–

ततः कतिपये काले व्यतीते देवसत्तमः।
सुरेज्यसन्निधौ गत्वा माहात्म्यञ्चाऽश्रृणोत्तदा।।69।।
गत्वा जालंधरे क्षेत्रे पूजां कृत्वा यथाविधि।
दानं कृत्वा तु पुण्याहे पुस्तकस्य यथाविधि।।70।।
नवार्णमंत्रजाप्यं हि कृत्वा भक्तिसमन्वितः।
हवनं तर्पणं कृत्वा दशांशक्रमसम्भवम्।।71।।
सम्यक् पूजाविधानं हि चकार त्रिदशेश्वरः।
ततो भगवती देवी तस्मै वज्रेश्वरी शुभा।।72।।
ददौ हि दर्शनं सद्यः देवेंद्राय महेश्वरी।
दर्शनाद् देवदेवेंद्रो दंडवत् पतितो भुवि।।73।।
उवाच वचनं चैनां सम्प्रहृष्टतनूरुहः।

कुछ समय बीत जाने पर इंद्र ने अपने गुरु बृहस्पति के पास जाकर जालंधर पीठ का माहात्म्य यथाविधि सुना, पुनः पीठ में जाकर यथाविधान भगवती की पूजा की, शुभ मुहूर्त में पुस्तक का दान दिया, भक्तिभाव से नवाक्षर मंत्र का जप किया और यथाविधि क्रम से हवन, तर्पणादि भी किया। इससे भगवती वज्रेश्वरी ने प्रसन्न होकर इंद्र को दर्शन दिए। इंद्र ने चरणों पर लेटकर प्रणाम किया और प्रसन्न होकर कहा–

अथ दशमोऽध्यायः

सूत उवाच–

वज्रेश्वरी जयंती चाम्बिका ज्वालाऽञ्जनी तथा।
एतासां नैव भेदोऽस्ति सर्वा एव समाः स्मृताः।।1।।

उत्तरस्यां हि देवास्तु सार्धगव्यूतिके पथि।
सर्वाभीष्टप्रदो नित्यं तत्रास्ते गङ्गभैरवः।।2।।
यस्य संदर्शनाच्चैव पापहानिः प्रजायते।
तथा शोभाऽधिनाथस्य महेशस्याऽपि दर्शनम्।।3।।
ये कुर्वन्ति नराः प्रीत्या न ते कल्मषभागिनः।
नंदिकेश्वरदेवस्य दर्शनाद् विघ्नकोटयः।।4।।
सद्या वै नाशमायान्ति तूलराशिरिवाग्निना।

सूत जी पुनः सुनाने लगे–

हे मुनिवृंद! भगवती वज्रेश्वरी, जयंती, अम्बिका, ज्वालामुखी और अंजनी, इनमें पारस्परिक कोई भी भेद नहीं है, अपितु ये सभी समान ही हैं। भगवती वज्रेश्वरी से उत्तर दिशा की ओर लगभग तीन कोस की दूरी पर अभीष्टदाता भगवान् गंगभैरव विराजमान हैं। उनके दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जो यात्री प्रभु शोभानाथ के दर्शन बड़े समादर के साथ करते हैं, उन्हें भी पाप नहीं लगता। भगवान् नंदिकेश्वर के दर्शनों से करोड़ों विघ्न-बाधाएं भी उसी प्रकार तत्काल नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार आग के द्वारा रुई का ढेर।

(रावण कथानकम्)

अथातः संप्रवक्ष्यामि सर्वलोकहिताय च।।5।।
श्रीमद् विजयनाथस्य माहात्म्यं पापनाशनम्।
अत्र विश्रवसः पुत्रो रावणो नाम राक्षसः।।6।।
तपश्चकार घोरं वै त्रैलोक्य विजिगीषया।
जजाप परमं जाप्यं मनुं शैवं षडक्षरम्।।7।।
पित्राऽनुशिक्षितं सम्यक् स्वयं विश्रवसा यतः।
शतवर्ष निराहारो तपश्चर्यामथाऽकरोत्।।8।।
ततो महेश्वरो देवो तस्याऽनुग्रह-काम्यया।
राक्षसां रावणे नाथे स्वयं साक्षाद् बभूव ह।।9।।
रावणोऽपि महेशानं दृष्ट्वा स्तोत्रमुदीरयन्।
ननाम दंडवद् भक्त्या प्राञ्चलिः प्रयतः स्थितः।।10।।

हे मुनिवृंद! अब मैं लोकहित की कामना से भगवान् विजयनाथ (बैजनाथ) के पापनाशक माहात्म्य को सुनाता हूं। इस स्थान पर तप-पूत विश्रवा के पुत्र रावण ने विश्वविजय की कामना से शिवजी के षडक्षर मंत्र का पुरश्चरण विधि से जप करके दुष्कर तप किया था। उसे इस मंत्र की दीक्षा उसके पिता ने ही दी थी। रावण लगातार सौ वर्षों तक निराहार रहकर इसका जप करता रहा। तप से प्रसन्न होकर देव देवेश्वर

स्वयं प्रकट हुए और उसे दर्शन देकर अनुगृहीत किया। रावण भी महादेव को सामने देखकर उठा, दंडवत् प्रणाम किया और हाथ बांधकर स्तुति पाठ करने लगा।

(ओं) प्रभो नमः शिवा ते महेश्वराय जिष्णवे।
मखच्छिदे भविच्छदे स्मरच्छिदे नमो नमः।।
अपार-विश्व-सागर-प्रतारणे तरीमिव।
नगेंद्रजापते विभो नतोऽस्मि ते पदाम्बुजम्।
हिमांशुशेखरं हरं नतोऽस्म्यहं सदा वरम्।
धरा-धरेंद्र-नंदिनी-विलास-लास्य-लालसम्।।
नतोऽस्म्यशेक्ष लेखक स्तुतं वरप्रदं विभुम्।
नृमुंडमालयाऽन्वितं स्थितं च लोक-सुंदरम्।
गजेंद्रकृत्तिवाससं नमामि शङ्करं प्रभुम्।
महेश भो परेश भो सुरेश ते कृताञ्जलिम्।।
पदाम्बुजद्वये गतं विभो सदाव मां प्रभो।
त्वमीश मे पिता विभो जनन्यहो त्वमेव च।।
सुधार्द्रया दृशा विभो निरीक्ष मां पुरद्विष।
एवं स्तुतस्तदा देवः पुरत्रयहरोऽव्ययः।
उवाच राक्षसं ब्रूहि यथेप्सितं वरं हि त्वम्।।11।।
त्वद्भक्ति-हेतवे नित्यमस्मिन् लिङ्गें ह्यहर्निशम्।
स्थास्यामि मां सुराः सर्वे मुनयश्चैव सर्वदा।।12।।
विजयनाथनाम्ना हि कथयिष्यन्ति सुव्रत।
अनेन त्वत् कृत-स्तोत्र-वर्येणाऽजस्रमेव च।।13।।
मां स्तोष्यन्ति जना ये च तेषां विजयदोऽस्म्यहम्।
निशम्य वचनं चैवं राक्षसश्च महेशितुः।।14।।
दंडवत् प्राणिपत्याह प्राञ्जलिः प्रयतेन्द्रियः।

अविनाशी एवं मोक्षदाता त्रिपुरारि भगवान् शिवजी स्तुतिपाठ सुनकर रावण से बोले—'हे राक्षसराज! तुम अपना ईप्सित वर मांग लो। मैं तुम्हारे द्वारा स्थापित इस पार्थिव विग्रह में सदा रहा करूंगा। मेरे इस पार्थिव विग्रह को देवता तथा ऋषि सदा विजयनाथ नाम से पुकारा करेंगे। जो लोग तुम्हारे द्वारा रचित इस स्त्रोत के पाठ से लगातार मेरी स्तुति किया करेंगे वे सदा विजयी हुआ करेंगे।' तब रावण ने प्रणाम करके कहा—

देव देव महादेव मह्यं चेद् दीयते वरः।।15।।
विना नरैः समैः जीवैः सुराऽसुर-महोरगैः।
गंधर्वादिभिरन्यैश्च ह्यजेयः स्यामहं विभो।।16।।
रक्षाभक्ष्या मनुष्याश्च ह्यतस्तेषां तु का कथा।
एवं रक्षोवचः श्रुत्वा प्रोवाच वृषभध्वजः।।17।।

हे देवेश्वर! यदि मैं वर के योग्य हूं तो मुझे यही वर दीजिए कि मनुष्यों के अतिरिक्त देव, दानव, नाग, गंधर्वादि कोई भी मुझे जीत न सके। मानव तो राक्षसों की खुराक हैं। उनकी भला क्या गिनती? रावण के अनुरोध को सुनकर शिव जी बोले—

यत् त्वयोकतं वचश्चैव तत् तथैव भविष्यति।
एवमीशाद् वरं प्राप्य संप्रहृष्टमनास्तदा।।18।।
दंडवत् प्रणिपत्येशं जगाम भवनं पितुः।

हे रावण! जो कुछ तुमने मांगा है वह तुम्हें अवश्य मिलेगा। यह वर पाकर रावण प्रसन्न हुआ, शिव जी को लेटकर प्रणाम किया और अपने पिता के घर चला गया।

वज्रेश्वर्याश्च पूर्वस्यां चतुर्योजनदूरके।।19।।
लिङ्गं विजयनाथस्य सर्वेषामर्थसाधकम्।
अतो विजयनाथस्य दर्शनं दुर्लभं नृणाम्।।20।।
पूजनञ्चैव तस्यापि सर्व पाप प्रणाशनम्।
तस्यापि कल्मषं नैव (यो जनस्तमुपासते)**।।21।।**
दर्शनात् पूजनाच् चैव सर्वान् कामान् नरो लभेत्।

वज्रेश्वरी से पूर्व दिशा में सोलह कोस की दूरी पर इष्टसाधक भगवान् विजयनाथ हैं। उनके दुर्लभ दर्शन एवं पूजन से पाप धुल जाते हैं। अतः भक्त ऐसा करके अपनी मनःकामना प्राप्त करें।

तत्राऽस्ति क्षीरगङ्गा च सर्व-कल्मष-नाशिनी।।22।।
तथा वेणुमती चाऽस्ति नदी सर्वार्थ-सिद्धिदा।।
स्नानेन दर्शनेनैव ह्येषऽस्ति पापनाशिनी।।23।।
निगुणाख्या नदी चैवोत्तरे विजयनाथतः।
मध्ये च मालिनी पुण्या भैरवा पुण्यवर्धिनी।।24।।

वैद्यनाथ के पास ही सर्व-पाप-निवारक क्षीरगंगा तीर्थ और सर्वार्थ सिद्धिदायिनी वेणुमती (बिन्वा) नदी है। इनके दर्शन-स्नान से सब पाप मिट जाते हैं। विजयनाथ से

उत्तर की ओर निर्गुणा (न्युगल) नदी है। वेणुमती और निर्गुणा नदियों के मध्य पुण्या (पूनणी), मालिनी (मौल) और भैरवा (भिरल) नामक नदियां भी पुण्यवर्धक हैं।

वज्रेश्वर्याश्च पूर्वे तु निर्गुणा योजनद्वये।
तस्यां वै विधिवत् स्नात्वा सद्यो निर्गुणामियात्।।25।।

वज्रेश्वरी मंदिर से पूर्व दिशा में आठ कोस की दूरी पर निर्गुणा नदी है। उसमें यथाविधि स्नान करने से गुणातीत अवस्था प्राप्त होती है।

दक्षिणे विजयेशाद् धि चैवार्धयोजनाध्वनि।
महाकालस्य लिङ्गं हि यत्र काल्यचरत् तपः।।26।।
महाकालेशितुर्मत्रं द्वादशार्णमितं तदा।
जजाप च निराहारा हायनानां सहस्रकम्।।27।।
महाकालेश्वरो देवा दर्शनं स्वयं ददावथ।
उवाच भो वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽहं च भक्तितः।।28।।
एवमुक्ते तु वाक्ये वै महाकाल्यब्रवीद् वचः।

विजयनाथ से दक्षिण दिशा में दो कोस पर भगवान् महाकाल का मंदिर है। यहीं पर भगवती महाकाली ने लगातार एक हजार वर्षों तक निराहार रहकर महाकाल के द्वादशाक्षर मंत्र का जप करते हुए कठोर तप किया था। तब जाकर महाकाल ने उसे दर्शन देकर कहा था--'हे महाकाली! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूं। तुम अपना मनचाहा वर मांग लो।' यह सुनकर महाकाली बोली--

देव त्वं यदि तुष्टोऽसि याचेऽहं प्राञ्जलिर्विभो।।29।।
ब्रह्माण्डस्य च सर्वस्य त्वत्प्रसादान्महेश्वर।
प्रभुः स्यामिति मे नित्यं निश्चयो वर्तते हृदि।।30।।
एवं कालीवचः श्रुत्वा वाढमित्यूचिनावन् भवः।
अस्मिन् त्वत्स्थापिते लिङ्गे वत्स्यामि हि निरंतरम्।।31।
ये मामर्चयिष्यन्ति लिङ्गे त्वत्स्थापिते शुभे।
तेषां मद्भक्ति युक्तानां सर्वकाम-प्रदोऽस्म्यहम्।।32।।

हे प्रभो! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझे समूचे ब्रह्माण्ड की स्वामिनी बनाइए। यह सुनकर महाकालेश्वर ने 'अच्छा' कहकर उसे यही वर दे दिया और कहा कि मैं तेरे द्वारा स्थापित इस लिंगरूप निज विग्रह में सदा ही रहा करूंगा। जो व्यक्ति भक्ति के साथ यहां आकर इसकी पूजा करेंगे, मैं उनके अभीष्ट को पूरा करूंगा।

श्रीमद्-विजयनाथस्य महाकालेश्वरस्य च।
मध्येऽस्ति शीतला देवी सर्वोपद्रव-नाशिनी।।33।।
यस्या नाम जपन्मर्त्यो दद्रु-स्फोटक-कुष्ठकैः।
सद्यो मुक्तो भवेल्लोके सर्वाधि-व्याधिभ्यस्तथा।।34।।

विजयनाथ और महाकाल, देव स्थानों के बीच में उपद्रवनाशिनी शीतला देवी का मंदिर है। वह वहां जप करने वाले को दाद, फोड़ा, कोढ़, आधि, व्याधि आदि सभी उपद्रवों से मुक्त कर देती हैं।

वज्रेश्वर्याः प्रतीच्यां तु योजनार्धे च कालिका।
वर्तते सर्वलोकानां सर्वाभीष्ट-प्रदायिनी।।35।।

भगवती वज्रेश्वरी से पश्चिम की ओर दो कोस के अंतर पर सर्वाभीष्टदात्री कालिका देवी है।

देवीतस्त्वग्निकोणे हि चतुर्योजन-दूरके।
आशाप्रपूरिता देवी सर्वस्याऽऽशा-प्रपूरिका।।36।।
तस्याश्च दर्शनं मर्त्यो पूजां कुर्यात् सदाशयः।
सर्वाशा-पूरिके देवि ममाशां पूरय प्रभो।।37।।
अतस्त्वामर्चयिष्यामि देवि तुभ्यं नमो नमः।
इति मंत्रेण तस्यास्तु पूजां चैव करोति यः।।38।।
तस्याशाः सफलाः सर्वा जायन्ते नात्र संशयः।

वज्रेश्वरी मंदिर से आग्नेय कोण में सोलह कोस की दूरी पर आशापुरी देवी है। जो यात्री सद्भाव से उसकी पूजा और दर्शन करता है उसकी सभी आशाएं अवश्य पूरी होती हैं। अतः यात्री प्रार्थना करके कि हे देवि! अद्यावधि मैं तेरी पूजा करूंगा। तुझे बार-बार नमस्कार है।

याश्चैवात्र महानद्यः शुद्धनद्यश्च ताः स्मृताः।।39।।
देवताश्चैव याः सर्वा यानि कुंडानि चात्र हि।
एतानि चापि सर्वाणि त्रिपुरायाः प्रसादतः।।40।।
सर्व कल्मष हन्तृणि प्रोक्तानि मुनिसत्तमाः।

इस पीठ में जो बड़ी-बड़ी नदियां हैं वे सभी पवित्र हैं तथा जितने सरोवर, कुंड आदि तीर्थस्थल और देवस्थान हैं, वे सारे भगवती की कृपा से पापनाशक हैं।

(उमा-महेश्वर-कथानकम्)

सूत उवाच–

अम्बिकेश्वर-माहात्म्यं कथयामि तवाग्रतः।।41।।
गोपनीयं न किञ्चिन्मे श्रद्धालुभ्यः कदाचन।
हिमालयस्य कन्याऽभूदुमा-नाम्ना पतिव्रता।।42।।
स्मरणात् पूर्वदेहस्य शिवे रक्ता बभूव ह।
इंद्राणि-दैवतैः सर्वेः साक्षान् नारायणेन च।।43।।
याचिता शम्भुना सार्धं विवाहार्थञ्च सा शुभा।
(स्वीचकारानुरोधं सा देवानां च हितेच्छया)
मां वृणुयात् सदाशम्भुरिति निश्चित्य सा तदा।।44।।
आजगाम महाप्रीत्या क्षेत्रं जालंधराभिधम्।
सदाशिवं पतित्वेन वाञ्छन्ती पतिदेवता।।45।।
जजाप परमं जाप्यं मंत्रञ्चैव षडक्षरम्।
द्वादशाब्दान्निराहारा ततापं परया मुदा।।46।।
पुरश्चरणकं कृत्वा तद्दाशांशेन वै हुतम्।
जुहाव परमप्रीत्या ज्वालामुख्याञ्च पार्वती।।47।।
तद्दशांशक्रमप्राप्तं तर्पणञ्चाऽकरोत् तदा।
तद्दशांशक्रम प्राप्तं मार्जनं ब्रह्मभोजनम्।।48।।
चकार विधिवद्देवी शिवप्रीति-विवृद्धये।

सूत जी ने फिर कहा—

(फलश्रुतिः)

अतोऽम्बिकेश्वरस्यैव पूर्वं दर्शनमाचरेत्।
अकृते देवदेवस्य दर्शने फलभाङ्. न हि।।63।।
तस्मात् सर्वात्मना कार्यमम्बिकेश्वर-पूजनम्।
ततः प्राप्नोति वै सम्यङ्. नरः कामञ्च दुर्लभम्।।64।।

यात्री देवी दर्शन से पूर्व अम्बिकेश्वर के दर्शन करें। इनके दर्शनों के बिना यात्रा का फल नहीं मिलता। अतः अम्बिकेश्वर की पूजा करनी चाहिए। इससे यात्री दुर्लभ मनोरथों को भी पा लेता है।

यत्पृष्टं मुनिशार्दूलास्तत् सर्वं कथितं मया।
भवतामेव सङ्गेन पूतोऽहमपि सर्वतः।।65।।
अन्च्व सर्वमाख्यास्ये तन्मां पृच्छत सत्तमाः।।66।।

इति जालंधर माहात्म्ये वैद्यनाथ, महाकाल, शीतला, आशापुरी, अम्बिकेश्वर-वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः।

कुल्लू

पौराणिक संदर्भ

कुल्लू के संबंध में प्राप्त पौराणिक संदर्भ संदेहास्पद हैं। आज के कुल्लू या प्राचीन कुलूत का सीधा-सीधा संदर्भ नहीं मिलता, यद्यपि यह निश्चित होता है कि यह एक पर्वतीय क्षेत्र था और यहां के लोग अनार्य जातियों से संबंध रखते थे। आर्यों ने इन्हें दास या म्लेच्छ कहा।

कोल

आर्यों का सर्वप्रथम जिस संघ से संघर्ष हुआ, वह कोल संघ या कोल से इतर या कोई दूसरा संघ था, यह निश्चित नहीं है। ऋग्वेद में कहा गया है :

उतं दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि। अवाहित्रंद्र शम्बरम।। (ऋ. 4.30.14)

शम्बर कोल से इतर या किसी अन्य संघ का शासक हो सकता है किंतु कोल संघ भी उस समय विद्यमान था। शम्बर के पत्थर से निर्मित सौ दुर्ग थे और उसका राज्य संपन्न था। अतः भरत कुल के दिवोदास ने उससे युद्ध छेड़ दिया। यह युद्ध चालीस वर्ष चला और अंततः शम्बर उदब्रज नामक स्थान में मारा गया। यह युद्ध पर्वतीय क्षेत्र में हुआ। ऋग्वेद में उल्लेख है :

त्वं तदुकथमिद्र वर्हणकः प्रयच्छता सहस्रा शूर दर्षि।
अब गिरेर्दास शम्बरं हनू प्रावो दिवोदासं चित्रमिरुति।। (ऋ. 5.6.26)

किरात

किंतु कुल्लू वासी कोल नहीं, किरात हैं। कोल समुदाय शिल्पी था। कोल नृत्य, वादन, धातु शिल्प, मूर्तिकला, बांस की वस्तुएं बनाने में प्रवीण थे। इतिहासकारों ने इन्हें पंचनद का पर्वतवासी माना है। इन लोगों को कोली जाति से संबद्ध माना जाता है जो बिखरे रूप में हिमाचल के निचले क्षेत्रों, उत्तर प्रदेश के गढ़वाल, देहरादून क्षेत्रों में अब भी विद्यमान हैं। इनका एक 'मुण्डा' वर्ग बिहार के संथालों में भी देखा जा सकता है। इन्हें काला, भद्‌दी नाक वाला, नाटे कद, हृष्ट-पुष्ट शरीर और गालों की

उभरी हड्डियों वाला, ऊन जैसे बालों वाला कहा गया है जबकि किरात चपटी नाक, छोटी-छोटी दाढ़ी, मूंछविहीन, रोम रहित, नाटे कद के बताए हैं। अतः कुल्लू वासी कोल नहीं किरात रहे होंगे। किरातों का उल्लेख अथर्ववेद, तांडव ब्राह्मण, बृहत्संहिता से लेकर कालिदास तक हुआ है।

यह भी धारणा है कि पहले पर्वतों में कोल ही बसते थे जिन्हें किरातों ने नीचे धकेल दिया और कोल पर्वतों की तलहटियों में बिखर गए।

ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में इंद्र से प्रार्थना की गई है : 'हे देव! जो लिंग को देवता मानते हैं (शिश्न देव हैं), उन्हें हमारी सीमा में प्रवेश न करने दो।' कोल यदि शिश्न पूजक थे तो किरातों ने इससे आगे बलि प्रथा का प्रचलन किया। शिश्न पूजा शिव पूजा का ही एक पुरातन रूप है। कुल्लू के एक मूल उत्सव काहिका में लिंग पूजा की जाती है। लकड़ी का बना एक लिंग लोगों को दिखाया जाता है। मजाक में कइयों के हाथ में थमा दिया जाता है। किन्नौर में भी एक उत्सव में गले में लकड़ी का लिंग लटकाकर नृत्य करने की प्रथा है।

किरातों के दो वर्ग माने जाते हैं, भिल्ल किरात और राज्य किरात। हिमालय के निचले क्षेत्र में, जहां खशों ने बसना ठीक नहीं समझा, वहां भिल्ल किरात बसे। बाराही संहिता में किरातों की भूमि चीन प्रदेश का मध्यवर्ती क्षेत्र बताया गया है। भिल्ल किरात मध्य हिमालय में बसे।

बाणभट्ट ने किरातों का आवास कैलास के समीप हेमकूट पर्वत माना है :

कैलास समीपचारिणां हेमकूट नाम्नां किरातांना सुवर्णपुरनाम निवासस्थानम।
उत्तरेण सुपर्णपुरं कैलास गिरिदिति।

कुल्लू में भी हामटा या हेमकूट पर्वत है। कुल्लू तथा स्पीति के बीच के पर्वत को इंद्रकील कहा जाता है। जगतसुख के ऊपर अर्जुन गुफा है। लोकास्था के अनुसार किरातार्जुनीय का प्रसंग यहां हुआ जब किरात वेशधारी शिव का युद्ध अर्जुन से हुआ। पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के उद्देश्य से जब अर्जुन इंद्रकील पर्वत के समीप पहुंचे तो उन्हें एक आवाज सुनाई दी, 'खड़े हो जाओ!' अर्जुन ने देखा, एक वृक्ष के नीचे तपस्वी बैठा है। यह तपस्वी किरात वेशधारी शिव थे। किरात और अर्जुन का युद्ध हुआ और अर्जुन ने हारकर पाशुपतास्त्र प्राप्त किया।

जगतसुख के पास शुरू में शबरी का मंदिर है। अतः कुल्लूवासी किरात थे जो किन्नरों के समीप रहते थे।

किरात और किराती (कणाशी) का उदाहरण 'मलाणा' आज भी विद्यमान है। वैदिक सुरा की भांति कुल्लू में भी सुर बनाई जाती है, जो आज भी प्रचलित है।

नाग

किन्नर-किरातों के सहजातीय नागों के अवशेष भी कुल्लू में विद्यमान हैं। नाग पूजा के रूप में इस संस्कृति के चिह्न आज भी विद्यमान हैं। जलस्रोत के साथ नाग पूजा भी जुड़ी है। ऋग्वेद के इंद्र-वृत्र युद्ध में वृत्र को 'अहि' या नाग माना गया है।

नाग भी किरात की भांति एक अनार्य जाति थी जिसे इंद्र से युद्ध करना पड़ा। यह जाति जलस्रोतों पर अपना अधिकार रखती थी। जलस्रोतों पर अधिकार करने के लिए आर्यों का नागों से संघर्ष हुआ। नाग जलस्रोतों के स्वामी, पशुधन के रक्षक माने गए हैं। कुल्लू में सभी नागों की उत्पत्ति जलस्रोतों से मानी जाती है।

पांडु पुत्र अर्जुन ने नाग कन्या उलूपी से विवाह किया। भीम को नागों ने विष से मुक्ति दिलाई। महाभारत के बाद जनमेजय ने सर्पयज्ञ कर नागों का संहार किया। जनमेजय के शत्रु नाग तक्षक का राज्य यमुना के तट पर था। गोमती के तट पर, चंपावती, काशी आदि स्थानों में भी नाग वंश के राजाओं का आधिपत्य रहा।

कुल्लू में नाग जलस्रोतों के स्वामी हैं। लोकास्था के अनुसार यहां नागों की उत्पत्ति वासुकि नाग तथा स्थानीय कन्या के संसर्ग से हुई। अट्ठारह नाग पैदा हुए और विभिन्न दिशाओं में गए। वासुकि नाग की अन्य पत्नी भोटंती का भी उल्लेख आता है जिसके सात पुत्र हुए। छह उसने स्वयं ही मार दिए और सातवां बच निकला।

नाग पूजा के साथ-साथ कुल्लू में लगभग सभी मंदिरों के द्वारों पर नाग उकेरे गए हैं। यद्यपि इस समय नाग जाति के कोई अवशेष नहीं बचे हैं। नाग जाति यदि यहां कभी रहती थी तो वह कहां लुप्त हो गई, यह ज्ञात नहीं।

कुलूत

त्रिगर्त के बाद प्राचीन जनपदों में कूलूत का नाम आता है। व्यास घाटी के ऊपरी भाग में स्थित इस जनपद के एक ओर त्रिगर्त, दूसरी ओर औदुम्बर तथा तीसरी ओर कुलिंद था।

कुलूत का उल्लेख महाभारत तथा अन्य पुराणों में मिलता है जिनमें 'कुलूत' न होकर 'उलूक' शब्द है। केवल मिलता-जुलता नाम होने से उलूक को कुलूत मान लेना संदेहास्पद है। यद्यपि उलूक जनपद किन्हीं पर्वतीय कंदराओं में ही था।

विशाखादत्त कृत मुद्राराक्षस के अनुसार यह जनपद 'म्लेछ पंचगण संघ' में से एक था। यहां के शासक चित्रवर्मा ने चंद्रगुप्त मौर्य का विरोध किया। इस क्षेत्र के लोगों को म्लेच्छ कहा गया।

ह्यूनसांग का कुल्लू (629-645)

ह्यूनसांग ने अपनी यात्रा (635 ई.) में जालंधर के बाद कुल्लू का उल्लेख किया है। ह्यूनसांग ने कियू-लो-तो को जालंधर से 700ली अर्थात् 117 मील उत्तर-पूर्व की ओर बताया है। कुल्लू का घेरा 3000ली अर्थात् 500 मील बताया है जो संभवतः उस समय रहा होगा। यात्री ने कहा है कि घाटी के बीच एक बौद्ध स्तूप था, बीस के लगभग बौद्ध विहार थे जिनमें लगभग एक हजार महायानी भिक्षु वास करते थे। पंद्रह देव मंदिर थे और कई गुफाएं थीं जिनमें ऋषि लोग वास करते थे।

कुल्लू में वनोषधियां, सोना-चांदी-तांबा विद्यमान था। यहीं से ह्यूनसांग लाहौल गया। कुल्लू उस समय सम्राट हर्षवर्धन के अधीन रहा होगा अतः यात्री ने राजाओं का उल्लेख नहीं किया।

कुल्लू, व्यापार मार्ग पर स्थित होने के कारण भी महत्त्वपूर्ण था।

ह्यूनसांग ने लिखा है–

'देश का घेरा लगभग 3000ली है और यह चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ है। मुख्य नगर का घेरा लगभग 14 या 15 ली है। भूमि उपजाऊ है और फसलें बोई तथा काटी जाती हैं। यहां सोना, चांदी तथा तांबा पाया जाता है। मौसम सामान्यतः ठंडा है और ओले तथा बर्फ लगातार गिरती है। लोग देखने में भद्दे और एक से

हैं और अधिकतर को गिल्लड़ और ट्यूमर हैं। उनकी प्रकृति सख्त और खूंखार है, वे बहादुरी और न्याय का बहुत आदर करते हैं। यहां लगभग बीस संघाराम हैं और लगभग एक हजार बौद्ध पुजारी हैं। वे लगभग सभी महायान का अध्ययन करते हैं, कुछेक दूसरी धाराओं के नियम अपनाते हैं। यहां पंद्रह देव मंदिर हैं जहां विभिन्न संप्रदाय बिना किसी भेदभाव के रहते हैं।

'पर्वतों की खतरनाक ढलानों तथा चट्टानों में एक-दूसरे के आमने-सामने गुफाएं हैं। यहां ऋषि लोग निवास करते हैं। देश के मध्य में अशोक द्वारा निर्मित स्तूप है। तथागत अपने शिष्यों सहित धर्म प्रचार तथा लोगों को बचाने के लिए पुराने समय में आए थे। यह स्तूप उनकी उपस्थिति का स्मारक है।'

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि जहां उस समय बौद्ध धर्म के अवशेष बौद्ध भिक्षुओं सहित कुल्लू में विद्यमान थे, वहां देव मंदिर भी थे और ऋषि लोग गुफाओं में साधना में डटे हुए थे। बौद्ध धर्म के पतन के बाद यहां विभिन्न स्थानों में ऋषि आश्रम विकसित हुए।

कुलांत पीठ

कुलूत का कुलांत पीठ बनना बहुत बाद की घटना है। एक प्राचीन पांडुलिपि जिसकी तिथि ज्ञात नहीं है, में इसे जालंधर पीठ की भांति कुलांत पीठ कहा गया है। यह पांडुलिपि उस समय के बाद की है जब यहां आर्य या ऋषि-मुनियों की संस्कृति पूरी तरह हावी हो गई। अट्ठारह नागों के मुकाबले अट्ठारह नारायण बने। अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रम मंदिरों में बदले।

पांडुलिपि चार सौ वर्ष पुरानी हो सकती है जिसे 'कुलांत पीठ माहात्म्य' कहा गया है। इसका आरंभ निम्न श्लोक से होता है–

ब्रह्मोवाच *अथातः संप्रव ग्यामि कुलांत पीठ मुत्तमम।*
यत्पीठे समासृत्य मुनयो सिद्धि मागताः। (1)

ब्रह्मा बोले, अब मैं उत्तम कुलांत पीठ का वर्णन करता हूं जिस पीठ का आश्रय लेकर मुनि लोग सिद्धि को प्राप्त हुए।

इस माहात्म्य में व्यास, पार्वती नदियों, महादेव-अर्जुन युद्ध (किरातर्जुनीय), महादेव, शबरी तथा ऋषियों कें स्मरण के साथ मणिकर्ण माहात्म्य भी लिखा गया है। कुलांत पीठ को जालंधर पीठ से ईशान्य में हेमकूट (हामटा) के दक्षिण में स्थित बताया गया है। कुल्लू को दस योजन (90 मील) लंबा तथा तीन योजन (27 मील) चौड़ा बताया गया है।

कुलांत पीठ बनने पर यहां बौद्ध संस्कृति अवशेष बनकर रह गई। कई स्थानों

पर बौद्ध मूर्तियां अनजाने में हिंदू ऋषियों की मूर्तियां मानकर पूजी जाने लगीं। उदाहरणतः क्लाथ में कपिल मुनि के मंदिर में अवलेकीतेश्वर की मूर्ति हैं। निरमंड के परशुराम मंदिर में बुद्ध की अद्वितीय प्रतिमा है। इसके साथ दो अन्य मूर्तियां, जिन्हें इंद्र-इंद्राणी कहा गया, बुद्ध की प्राचीन मूर्तियां हैं।

कुल्लू में रघुनाथ जी के आगमन (1637-1662) से पूर्व राजा लोग नाथ या शैव थे। नाथों की मुद्राओं की पूजा होती थी। नाथ ही राजाओं के गुरु थे। राजा जगत सिंह के समय सत्रहवीं सदी में एकाएक परिवर्तन हुआ और राजा वैष्णव हुए। रघुनाथ जी का आगमन हुआ और दशहरा, वनविहार, जलविहार, बसंत पंचमी, होली आदि त्योहार राजसी ठाट-बाट से मनाए जाने लगे। सभी देवता रघुनाथ जी के अधीन हुए।

मूल देवता

कुल्लू की वर्तमान देवव्यवस्था, जिसमें रघुनाथ जी का आधिपत्य है, से पहले कौन मूल देवता थे, यह बता पाना बहुत कठिन है। ऋषि-मुनि, देवी-देवताओं के प्रभुत्व से मूल देवता पृष्ठभूमि में चले गए।

यहां के मूल देवता 'सेमिगॉड्ज' या 'डेविल गॉड्ज' थे जैसा कि कुछ यूरोपियनों ने भी महसूस किया है। अर्थात् आधे दानव, आधे देवता। यह भी कहा जाता है कि पहले यहां 'दानव' ही देवता थे। आज भी किसी मनुष्य के भीतर जब देवशक्ति प्रवेश करती है तो उससे पूछा जाता है : 'देऊ सा कि दानु सा' अर्थात् तुम देवता हो या दानव? इन दानवों का या दानव-देवताओं का प्रभुत्व आरंभ में कुल्लू क्षेत्र में रहा, यह निश्चित है।

दानवों के साथ-साथ या बाद में नागों का अस्तित्व भी रहा।

इस तरह के विश्लेषण से कहा जा सकता है कि मलाणा का जमलू, लाहौल का घेपङ्, ढूंगरी की हिरमा पुरातन देव हैं। घेपङ् जो नाग है, अपने भाई जमलङ् से मिलने आता है। घेपङ् का एक बड़ा लक्कड़, जो देवता का प्रतीक है, उठाकर मलाणा लाया जाता है। जमलङ् भी कभी नाग रहा होगा, जो आर्य संस्कृति ने ऋषि जमलू या जमदग्नि बना दिया। एक अन्य देवी भोटंती भी पुरातन देवी है, जो वासुकि नाग की पत्नी मानी जाती है, जिससे नाग उत्पन्न हुए।

हिरमा को, जो बाद में हिडिम्बा कहलाई, आज भी राजपरिवार अपनी 'दादी' मानता है जिसने कुल्लू का राज्य इन्हें बख्शा। अर्थात् इससे पहले यह राज्य हिरमा का था। हिरमा का भाई तांदी माना जाता है। लोक में हिरमा का भाई पौराणिक या महाभारतकालीन हिडिम्ब नहीं, तांदी है। जमलू भी हिरमा का भाई माना जाता है।

मलाणा का जमलू आज भी दशहरा में अपनी 'हाजरी' लगाने नहीं आता। हिडिम्बा के आगमन के बिना दशहरा आरंभ नहीं हो सकता। उसे विशेष आमंत्रण

पर बुलाया जाता है। इसी प्रकार भेखली माता भी दशहरे में कटोरी में टीका भेजती हैं। जमलड़्. जैसे बहुतेरे देवता बाद में ऋषियों में परिवर्तित हो गए। जमलङ् जमलू या जमदग्नि हो गए, वैसे ही सकीरणी देऊ (बंजार) पता नहीं कब शृंगी ऋषि कहलाने लग गए। जमलू के तो अनेक स्थान बने। उधर निरमंड की ओर परशुराम का आधिपत्य हुआ। अट्ठारह नागों के समक्ष अट्ठारह नारायण आ खड़े हुए। पौराणिक ऋषियों के नाम पर असंख्य मंदिर खड़े हुए।

लिंग पूजा भी यहां मूल पूजा रही है। अधिकांश मंदिरों में 'पिंडी' का उल्लेख किया जाता है। मंदिरों में कोई मूर्ति न होकर 'पिंडी' मात्र होती है। देवता पिंडी में वास करता है। शिवलिंग को भी पिंडी कहा जाता है। शिवलिंग एक गढ़ा हुआ पत्थर होता है जबकि पिंडी अनगढ़ या प्राकृतिक पत्थर भी हो सकता है। यह लिंग पूजा का दूसरा रूप है।

कुल्लू के अधिकांश देवता पिंडी में वास करते हैं। वे चाहे ब्रह्मा हों, विष्णु हों, शिव हों। इन्हें देऊ कहा जाता है। ग्राम देवता के मंदिर में कौन सा देवता मूर्तिमान होकर स्थापित है, इससे ग्रामीणों को कोई सरोकार नहीं, वह ग्राम देवता या देऊ है। पिंडी की यह मान्यता भी एक पुरातन मान्यता है। पिंडी स्वरूप मूल देवता बाद में कई नामों से जाने जाने लगे।

देऊ या देवता एक सामान्य और सटीक संबोधन है जो अब भी विभिन्न देवताओं को दिया जाता है। देऊ मात्र देवता ही नहीं है, राजा भी है। ग्रामीण उसकी पूजा करते हैं। वह स्वामी है, रक्षक हैं। पालक है, संहारक भी वही है। वही न्याय करता है, दंड देता है। विपत्तियों से बचाता है, राह दिखाता है। यहां देवता में धार्मिक तथा राजनीतिक दोनों शक्तियां निहित है।

इतिहास

राजा वीरयश की मुद्रा के विषय में सर्वप्रथम कनिंघम ने 'पुरातन भारत की मुद्राओं' में प्रकाश डाला।

कुल्लू से प्राप्त मुद्रा में 'राजनः कुलूतस्य वीरयश' लिखा है। यह ब्राह्मी लिपि में है। खरोष्ठी में 'राणा' शब्द भी मिलता है। यह मुद्रा पहली शताब्दी की मानी जाती है। इसका शुद्ध पाठ रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जरनल (1900) में छपा।

वीरयश नाम का राजा कुल्लू की वंशावली में नहीं मिलता। अतः इससे मात्र यही अंदाजा लगता है कि प्रथम या द्वितीय शताब्दी में कुल्लू नाम का कोई राज्य अस्तित्व में था। इस संदर्भ में इतिहासकारों को और शोध करना होगा। प्रयाग के एक शिलालेख में समुद्रगुप्त द्वारा पराजित जनपदों में कुल्लूत का नाम भी आता है।

इतिहास के स्रोत

कुल्लू में इतिहास के लिखित तथा पांडुलिपि के रूप में पर्याप्त स्रोत हैं। किंतु एक वंशावली दूसरी से पूरी तरह मेल नहीं खाती। कैप्टन ए.एफ.पी. हारकोट ने (1869) में इतिहास संबंधी जानकारी एकत्र की जिसमें से कुछ का उपयोग उन्होंने 'द हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स ऑफ कुल्लू, लाहौल एंड स्पीति' में किया। कैप्टन हारकोट तीन वर्ष तक (1869-71) कुल्लू के अस्सिटेंट कमिश्नर रहे। हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' में उल्लेख है कि उन्होंने बहुत सी सामग्री अपनी मृत्यु से पहले हचिसन तथा वोगल को दी जिसका उपयोग उन्होंने अपने इतिहास में किया।

मौखिक इतिहास के अतिरिक्त कुल्लू के इतिहास से संबंधित दीवान हरदयाल (तहसीलदार मैनेजर कोर्ट ऑफ लार्ड्स राय दलीप सिंह) द्वारा लिखित इतिहास, चंद्रशेखर द्वारा आनी से उतारा इतिहास, हारकोट की पुस्तक, हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स (हचिसन-वोगल) कुछ पट्टे, देवताओं के मोहरों पर लेख आदि दस्तावेज हैं।

एक इतिहास 'हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ हिमालयन स्टेट्स' (सुखदेव सिंह चरक) भी लिखा गया है। इस इतिहास में हिमाचल संबंधी विवरण 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' से दिया गया है। प्रायः पूरा इतिहास ज्यों का त्यों उतार दिया है। उदाहरणतः कुल्लू के राजा सिद्ध सिंह का विवरण (पृ. 238, 245) शब्दशः वही है जो 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' में है। इतिहासकारों ने इसे अपने शब्दों में लिखने की जहमत भी नहीं उठाई।

कुल्लू क्षेत्र में यद्यपि बहुत से महत्त्वपूर्ण ताम्रपत्र, दस्तावेज, मूर्तियां हैं किंतु इन्हें विधिवत् तथा वैज्ञानिक ढंग से किसी इतिहासकार ने शृंखलाबद्ध नहीं किया। ये साक्ष्य बिखरे हुए हैं जिन्हें एक लड़ी में पिरोने की आवश्यकता है।

निरमंड ताम्रपत्र

निरमंड ताम्रपत्र एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है इतिहास का, जिसमें खोज आवश्यक है।

निरमंड ताम्रपत्र 32×40 सें.मी. है। कनिंघम ने इसे बारहवीं शताब्दी का, जबकि डॉ. जे.एफ. फ्लीट ने सातवीं शताब्दी का माना है। इस पत्र की तिथि शुदी दस, बैशाख मास, संवत् छह है।

पत्र में चार महासामंत महाराजाओं की वंशावली दी है—वरुणसेन, संजयसेन, रविसेन और समुद्रसेन। इसमें उल्लेख है कि कपालेश्वर मंदिर महाराज सर्ववर्मन द्वारा बनवाया गया और इसमें समुद्रसेन की माता परमदेवी महाभट्टारिका मिहिरलक्ष्मी ने मिहिरेश्वर की मूर्ति की स्थापना की। मिहिरेश्वर की पूजा-अर्चना के लिए महाराजा

समुद्रसेन ने शूलिश ग्राम और उससे संलग्न भूमि व जंगल निरमंड के अथर्ववेदी ब्राह्मणों को अग्रहार के रूप में दिया।

निरमंड के शासक सेन वंश, महासामंतों, महाराज सर्ववर्मन के विषय में इतिहास खामोश है। क्या ये महासामंत गुप्त सम्राटों के करद थे या इनका संबंध मौर्य काल से था, यह कहना कठिन है।

प्रयाग के एक शिलालेख में समुद्रगुप्त द्वारा पराजित जनपदों में मद्र, त्रिगर्त, औदुम्बर, कुल्लूत और कीर्तिपुर का वर्णन मिलता है। इससे लगता है मौर्य सम्राट ने इन जनपदों को जीतकर इन्हें करद बना स्वतंत्र छोड़ दिया।

अन्य दस्तावेजों में कुल्लू के राजा अपने को महाभट्टारक लिखते रहे हैं। यहां लगभग ग्यारह ताम्रपत्र उपलब्ध हैं जिनमें ब्राह्मणों तथा मंदिरों को दान का उल्लेख है।

कालांतर में निरमंड की परशुराम मंदिर व्यवस्था इतनी परिवर्तित हुई है कि अवशेषों के संपर्क सूत्र ढूंढ़ना बहुत कठिन है।

महत्त्वपूर्ण मूर्तियां, मंदिर

निरमंड भुंडा उत्सव में सन् 1919 में एच.सी. शैटलवर्थ ने रानी का हैड मैटल निकलने का उल्लेख किया है। रानी मां की यह आवक्ष प्रतिमा सितंबर, 1981 के भुंडे के बाद अन्य मूर्तियों सहित चोरी हो गई। इन मूर्तियों को पुलिस द्वारा पुनः बरामद कर लिया गया। रानी मां की आवक्ष प्रतिमा में दो लेख हैं। लंबा लेख संस्कृत में है, छोटा टाकरी में जो संभवतः बाद में लिखा गया। संस्कृत लेख में दस आषाढ़ संवत् सात खुदा है।

परशुराम मंदिर से ही चोरी के सामान की बरामदगी के समय बुद्ध की दो महत्त्वपूर्ण मूर्तियां सामने आईं। एक मूर्ति बहुत ही कलात्मक है जिसके पैरों में पहिए लगे हैं और आंखें चांदी की हैं। दूसरी कमलासन पर खड़ी है। दो अन्य बुद्ध मूर्तियां सन् 1981 के भुंडे में भी बाहर निकाली गईं। यहीं पर निकला परशुराम का त्रिमुखी मोहरा या मास्क भी महत्त्वपूर्ण है।

निरमंड में ही मंजूनी देवी के मोहरे पर एक लेख है जो नौवीं शताब्दी का माना जाता है।

जगतसुख का शिव मंदिर, नग्गर में मिनिएचर शिव मंदिर सातवीं-आठवीं के शताब्दी के माने जाते हैं। इसी प्रकार बजौरा का शिव मंदिर, यहां से प्राप्त सूर्य तथा विष्णु प्रतिमाएं उत्तर गुप्तकाल की हैं।

कुल्लू के कई देवताओं के मोहरों पर महत्त्वपूर्ण लेख हैं जिनकी खोज आवश्यक

है। हिडिम्बा देवी के मोहरे पर संवत् 94 (1418 ई.) तथा संवत् 176 (1500 ई.) के लेख हैं। सजला गांव में विष्णु के मोहरे पर संवत् 176 (1500 ई.) का लेख है।

इन साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि गुप्तकाल तथा उत्तर गुप्तकाल में यहां वैभवशाली राज्य रहे होंगे जिन्होंने इतने मंदिर तथा मूर्तियों का निर्माण किया। इससे पूर्व मौर्य तथा कुशाण काल में यहां बौद्ध मठ रहे।

किंतु इन सबके बावजूद इतिहास से इनका तालमेल नहीं बैठता। कुछ राजाओं की अटकलों के अतिरिक्त गौरवशाली अतीत अंधकारमय है।

पुरालेख

कुल्लू से संबंधित एक शिलालेख का उल्लेख आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया वार्षिक रिपोर्ट : 1907-08 (कलकत्ता 1911) में किया गया है। यह शिलालेख सलाना के पास सलारी में बताया गया है। शिलालेख में वर्तमान सलारी गांव के पास सालिपुरी में वत्स वंश के महाराजा ईश्वर हस्तिन के पुत्र श्री चंद्रशेखर हस्तिन का उल्लेख है।

संध्या गायत्री मंदिर जगतसुख के प्रांगण में प्रवेश द्वार पर लगी दो शिलाओं में एक लेख है जिसमें महाराजा उद्धरण पाल (सन् 1428) का नाम लिखा है। ढूंगरी (मनाली) की हिडिम्बा देवी के मोहरे पर सं. 94 (1418) लिखा है।

एक पट्टे में राजा बहादुर सिंह (सन् 1559) ने चंबा के राजगुरु रामपति को हाट (बजौरा) के समीप सासा में जागीर बख्शी जिससे पता चलता है कि हाट, जो लग राज्य की सीमा में था, राजा बहादुर सिंह ने अपने अधीन किया।

हाट में ही मिली विष्णु प्रतिमा में टाकरी में लेख है जिसमें श्री परमभट्टारक लिखा है। शिव मंदिर बजौरा के दरवाजे पर लेख में मंडी के राजा श्याम सेन (सन् 1673) का उल्लेख है जिससे पता चलता है उस समय बजौरा मंडी के अधीन था।

देवताओं के मोहरों पर उद्धरण पाल तथा सिद्ध पाल (सन् 1500) का उल्लेख होने के साथ मुगलकाल के विभिन्न फरमान भी ऐतिहासिकता के क्रम को जोड़ते हैं। राजा जगत के 1061-1068 हिजरी (1650-1658) के फरमान, शांगरी के राय हीरा सिंह की सनदें भी महत्त्वपूर्ण हैं। इन सनदों में चार मूल हैं, नौ प्रतिलिपियां हैं। बारह सनदें दारा शिकोह की मुहर और एक औरंगजेब की मुहर से जारी हुई है।

कोठी चैहणी में मुरलीधर मंदिर की दीवार पर एक शिलालेख है जो राजा विधि सिंह (1674-75) के समय का है।

पांडुलिपियां

दीवान हरदयाल का इतिहास तब से आरंभ होता है जब यह क्षेत्र निर्जन था :

'यह प्रदेश प्राचीन काल में निर्जन था। सर्वप्रथम कुछ वनवासी लोग आकर बसे, जो पशुओं की भांति जीवन काटते थे। तीन हजार वर्ष हुए कि परशुराम अवतार ने पंजाब में आकर पांच गांव बसाए। अर्थात् कुल्लू, सीलनगर, मरहटा, निरमंड और पहरट। ये पांचों सतलुज नदी के तट पर बसे हैं और कुल्लू में धरमोट, जगतसुख, चणसारी, टिपरी, तरांवली इन गांवों में अधिकांश ब्राह्मण लोग प्राचीन काल से रहते आए और अब भी हैं।

'कुछ साल पीछे जब कुरुक्षेत्र में कौरव-पांडवों के बीच महायुद्ध हुआ तो बहुत से ऋषि-मुनि जो गंगातट पर तप करते थे, युद्ध विभीषिका से दुखी होकर इन पहाड़ों में चले आए। परंतु यहां के बनवासी, जो असभ्य और डरपोक थे, अपने बाहुबल के बूते पर किसी को अपने बीच बसाना नहीं चाहते थे, इनको सुख से रहने नहीं दिया। उन्हें कष्ट पहुंचाए परंतु वे महात्मा इन बातों को झेलते हुए अपने जप-तप में मस्त रहे।

'समय ने पलटा खाया। महाभारत में पांडवों की जीत हुई और वे शान के साथ इंद्रप्रस्थ के सिंहासन पर बैठकर धूमधाम के साथ राज करते रहे, परंतु उन्होंने सिंहासन को लात मारकर हिमालय की गोद में जीवन यापन करना चाहा और यहां के वनवासियों को समाप्त किया। फिर क्या था। एकदम शांति हो गई, और भी बहुत से लोग आकर बस गए। कुछ समय पीछे पांचों भाई हिमालय में जाकर गल गए और तत्पश्चात् वह स्थान तपोभूमि बन गई। जहां इनके बनाए हुए मंदिर और मूर्ति अब भी विद्यमान हैं।'

इतिहास का यह पहला अंश किंवदंतियों तथा प्रचलित कथाओं के आधार पर लिखा गया है।

मकड़सा और मकड़ाहर

कुल्लू की राजधानी पुराने समय मकड़ाहर में होने का उल्लेख आता है। इस विषय में हरदयाल द्वारा लिखित इतिहास में यह कथा दी गई है :

'पांडवों से पहले इस प्रदेश का क्या नाम था यह तो मालूम नहीं परंतु पांडवों के बाद मकड़सा नाम रखा गया और इसका कारण यह है कि जब पांडव इधर आए तो इनके साथ विदुर नाम का एक व्यक्ति आया। इस वंश के भक्त ने यहां एक स्त्री से विवाह कर लिया। उससे दो पुत्र 'मकड़ और भोट' जन्मे। परंतु यह नाम उसका भोटंत की एक स्त्री सरंगी से विवाह करने के उपरांत हुआ। उससे पहले का नाम ज्ञात नहीं। एक दिन उस स्त्री ने गाय का मांस स्वयं भी खाया और अपने पति को भी खिलाया। उस समय मकड़ा घर पर नहीं था। जब वह घर आया तो उसने वह मांस नहीं खाया क्योंकि उसके गुरु व्यास ऋषि ने इस विषय में उसे पहले ही

सचेत कर दिया था। मकड़ा ने उस मांस को ग्रहण न करके अपने भाई और भावज को अपवित्र और पतित घोषित करके गांव से निकाल दिया और उस स्थान का स्वयं मालिक बन बैठा। यह गांव उसके नाम पर मकड़ाहर प्रसिद्ध हुआ और इलाके का नाम मकड़सा पड़ गया। अतः आज भी देवता संबंधी बातों में मकड़सा ही बोला जाता है जो कि बिगड़कर गड़सा हो गया। इसके पश्चात् कुल्लू राजवंश के काल में इस प्रदेश का नाम कुलांत पीठ पड़ा। उसका संक्षेप और बिगाड़ शब्द कुल्लू हुआ।'

एक रूपांतर के अनुसार विदुर ने तांदी की लकड़ी से विवाह किया जिससे भोट और मकर पैदा हुए।

इस कथा से कुल्लू क्षेत्र के पुराने नाम 'मकड़ाहर' का पता चलता है जिसकी राजधानी मकड़ के नाम पर मकड़सा थी। विदुर के स्थानीय स्त्री से पुत्र का नाम मकर था जिसे मकड़ भी कहा गया।

संधि पत्रों में बाद तक मकड़ाहर नाम आता रहा। सन् 1775 के एक संधि पत्र में उल्लेख है कि मंडी, कांगड़ा, चंबा के राजाओं ने मिलकर मकड़ाहर पर हमला किया। मूरक्राफ्ट ने भी इसे मकड़सा कहा है।

हारकोट तथा कैलवर्ट ने नग्गर को 'मकड़सा' कहा है क्योंकि यह पुरातन राजधानी थी।

मकड़ाहर हुरला तथा गड़सा की ओर भी आज एक गांव है। मकड़ाहर के साथ गड़सा है जैसा कि इतिहास में मकड़सा को ही गड़सा कहा है। अतः संभव है कि पहले राजधानी इस ओर रही हो, जो बाद में नग्गर हुई।

वर्तमान मकड़ाहर व्यास तथा हुरला नदी के संगम के पास बजौरा के ठीक सामने है। यह संभव है कि 'मकड़सा' नाम से राजधानी कभी इस स्थान पर रही हो जो बाद में जगतसुख और नग्गर बदली गई। पूरे राज्य का नाम मकड़ाहर था। हरदयाल के इतिहास में भी मकड़ाहर हुरला में बताया गया है जहां मकड़ा राज करता था। मकड़े के भाई भोट का राज्य जगतसुख व मनाली में था।

दूसरा इतिहास, जो शांगरी से प्राप्त हुआ, राजा भादर सिंह या बहादुर सिंह से आरंभ होता है :

'भादर सिंह से पहले जो राजे हुए उनका राज परोल वजीरी पर ही रहा। रूपी की वजीरी में ठाकुरों का राज था, जो सुकेत के राजा को नजराना दिया करते थे।'

इन्हीं प्रमुख दो इतिहास स्रोतों से हारकोट ने तथा बाद में हचिसन तथा वोगल ने राजवंशों का वर्णन किया। हारकोट ने समस्त एकत्रित सामग्री हचिसन-वोगल को दी।

राज्य की सीमाएं

पुरातन कुल्लू राज्य की सीमाएं विस्तृत थीं। लाहौल तो कुल्लू का एक भाग था ही, स्पीति भी बीच-बीच में कुल्लू के अधीन रही। 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' में उल्लेख है कि इसका क्षेत्रफल 6607 वर्ग मील था जो कुछ क्षेत्र जीतने पर कभी 10,000 वर्गमील भी रहा। पूरा क्षेत्र सात वजीरियों में विभाजित था :

1. वजीरी परोल : यह वजीरी रोहतांग से लेकर फोजल नाला, मलाणा घाटी, पार्वती के दाईं ओर का भूभाग, व्यास तथा मलाणा नाला के संगम के पश्चिम तक फैली हुई थी।
2. वजीरी लग-सारी : व्यास के दाईं ओर फोजल और सरवरी के बीच का भाग।
3. वजीरी लग-महाराज : सरवरी नदी से सुलतानपुर तथा व्यास के दाईं ओर बजौरा तक।
4. वजीरी रूपी : व्यास के बाईं ओर पार्वती तथा सैंज नाले के बीच का भूभाग जिसमें ऊपरी पार्वती घाटी, जिसे कनावर कहते हैं, आती थी।
5. वजीरी भंगाहल : इसमें भंगाहल का एक भाग सम्मिलित था।
6. वजीरी लाहौल : लाहौल का पूरा क्षेत्र।
7. वजीरी स्पीति : हरदयाल के इतिहास में सातवीं वजीरी स्पीति भी गिनाई गई है जो राजा मान सिंह ने स्पीति क्षेत्र को जीतकर बनाई।

हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स में वजीरियों का क्षेत्रफल भी दिया गया है :

वजीरी परोल : 496 वर्ग मील

वजीरी लग-सारी : 94 वर्ग मील

वजीरी लग-महाराजा : 84 वर्ग मील

वजीरी रूपी : 677 वर्ग मील

वजीरी भीतरी सराज : 308 वर्ग मील

वजीरी बाहरी सराज : 275 वर्ग मील

वे वजीरियां कोठियों में विभाजित थीं। हरदयाल ने अपने इतिहास में लिखा है :

'आरंभिक काल में जब ठाकुरों के पास प्रदेश था तो उस समय तहसील आदि का प्रबंध नहीं था। केवल एक-एक, दो-दो गांव एक-एक ठाकर के पास थे जिस पर उनका स्वतंत्र राज्य था। परंतु जब से कुल्लू राजवंश का शासन हुआ तो वे जो-जो क्षेत्र जीतते गए, कोठियों का सूत्रपात करते गए। वहां का भूमिकर केंद्रीय गांव में एकत्र होता था। उन कोठियों का नाम प्रायः गांव के नाम पर ही पड़ गया। कहीं गढ़ों के नाम पर कोठियों के नाम पड़े। फिर जब राजा जगत सिंह के काल में राज्य का विस्तार हो गया तो कुछ-कुछ कोठियां जुदा-जुदा वजीरों को सौंपकर कोठियों की

वजीरियां बनाई गईं। राजा जगत सिंह के काल में सात वजीरियां थीं।'

राजस्व के बारे में इसी इतिहास में लिखा है :

'ठाकुरों के शासनकाल में राजस्व की कोई मात्रा नियत नहीं थी। ठाकुर अपनी इच्छानुसार कर संग्रह करते थे, बहुत काल तक राजा लोग ऐसा ही करते रहे। परंतु राजा मान सिंह जिसको तीन सौ बरस हुए, ने सरसरी बंदोबस्त करके भार, जेउला के अनुसार किया। उस पर जमाबंदी लिखाई। जिस जमीन में बीस पत्था बीज जाता था उसका एक भार अनाज राजा लेते थे। जेउला कहीं छह भार था, कहीं बारह भार होता था। एक जेउला जमीन जिसको दी जाती थी, आधी का तो वह कर देता था और आधी नौकरी के वेतन में काटी जाती थी। कर की निम्नलिखित दर नियत थी :

'रोपा की (चार पत्था की एक कांस) जमीन देखकर कांसी का पांच, चार, तीन या दो भार अन्न लिया जाता था और सिक्खों के काल में बाथल भूमि का एक रुपया प्रतिभार और रोपा का तीन भार पर एक रुपया लिया जाता था (यह उलटा जान पड़ता है)। यह शरह स्थायी नहीं थी। कभी-कभी घट-बढ़ भी हो जाया करती थी क्योंकि तब सारा अधिकार कारदारों का होता था, वे जैसा चाहते थे, कर डालते थे।

'अंग्रेजों ने पहला जो बंदोबस्त किया वह सरसरी सिखों के प्रबंध में कुछ सुधार करके भूमि कर निश्चित किया गया और जब वैध बंदोबस्त हुआ तो पड़ता के अनुसार किस्म-बार जमा हर साल एक मालि जमीन के नाम नियत हुई और सुधार बंदोबस्त में भी यही क्रम नियत रहा।'

राजवंश

प्रथम शासक विहंगमणिपाल

लोकास्था, मौखिक व लिखित इतिहास तथा वंशावली के अनुसार कुल्लू में प्रथम शासक का नाम विहंगमणिपाल आता है। हरदयाल द्वारा लिखित इतिहास में प्रथम शासक की कथा इस प्रकार है :

'इस राजकुल का संबंध मायापुरी के राजकुल से मिलता है। यह एक प्राचीन राजधानी बद्रीनारायण के मार्ग पर थी, जो अब उजड़ चुकी है। कहते हैं खंडहर अब भी हैं। इस वंश का एक राजकुमार विहंगमणिपाल भी था। इसके सात भाई और भी थे। विपत्ति आने पर आठों बिछुड़ गए। विहंगमणिपाल अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर कुल्लू चला आया और इधर-उधर अपनी जान बचाता रहा। एक दिन गांव जगतसुख में एक कुम्हार के घर सो रहा था कि एक कश्मीरी पंडित ज्वालानामी ने इसे देखकर पूछा : 'तुम कौन हो?' तो उसने उत्तर दिया : 'मैं एक गरीब यात्री हूं।' 'तुम कोई राजपुत्र जान पड़ते हो और मेरा अनुभव बताता है कि तुम शीघ्र राजा बनने वाले हो।' इस पर विहंगमणिपाल ने निवेदन किया : 'महाराज! पंडित जी, राज मिलने की बात तो आप जानें, परंतु यदि यहां के राणा ठाकुरों के कान में यह भविष्यवाणी पहुंची तो मेरी कुशल नहीं।' परंतु पंडित ने डंके की चोट पर कहा कि तुम इसी जगतसुख के राजा बनने वाले हो। तब विहंगमणिपाल ने कहा कि यदि यह सत्य हुआ तो मैं यहां के आसपास की सिंचित भूमि आपको दान में दूंगा।

'इसके उपरांत ब्राह्मण तो चला गया, विहंगमणि वहां रहा। कोई कहता है कि वह किसी कुम्हार का नौकर होकर गया था। जिस पत्थर पर वह सोया हुआ बताया जाता है वह अब भी नगर मनाली सड़क पर जगतसुख में विद्यमान है (लोग उसे जगतीपट कहते हैं। कहते हैं इसे मधुमक्खियां उठाकर लाई थीं)।

'इन दिनों इस क्षेत्र में बड़ा अंधेर मचा हुआ था। लोग ठाकुरों के अत्याचारों से दुखी थे। स्पीति का ठाकुर सर्वाधिक अत्याचारी था। यहां तक कि बच्चों को मरवाकर उनकी माताओं के दूध की खीर खाया करता था। जगतसुख में भी उसी का राज था। उसके महल के अवशेष अब तक वहां हैं। लोगों ने निर्णय लिया कि

स्पीति के ठाकुर को हटाकर नया राजा नियत करना चाहिए, सो गांव के आज तक प्रसिद्ध चचौहली मेले के समय एकत्र लोगों ने विहंगमणिपाल को अपना राजा बनाया। क्योंकि इसकी कद-काठी और रूप अनुकूल थे। फिर स्पीति के ठाकुर पर आक्रमण करके उसे मार डाला। इस युद्ध के अवसर पर विहंगमणिपाल आशंकाओं के कारण पास के गांव शुरू में देवी के मंदिर में छिपा रहा। स्पीति के लोग बदला लेने के लिए उसे ढूंढ़ते रहे, पर वह हाथ न आया और वातावरण ठीक होने पर जगतसुख आकर राजकाज संभाला। जब यह समाचार ज्वाला पंडित ने सुना तो वह बधाई देने के लिए त्रिलोकनाथ से आया। तब राजा ने वचनानुसार वह भूमि उसे प्रदान की जो आज तक उसके वंश के पास है जो सुलतानपुर में फलझोटू पंडित के नाम से प्रसिद्ध हैं। विहंगमणिपाल ने अपनी प्रजा के सहारे मनाली के ठाकुर को भी मारकर उसका राज्य भी ले लिया।'

इस कथा के कई रूपांतर प्रचलित हैं। एक रूपांतर के अनुसार विहंगमणिपाल जब कुम्हार के बर्तन मेले में छोड़ सो रहा था तो एक ब्राह्मण ने उसके पैर में राजचक्र देख शोर मचाया और मेले में उसे राजा घोषित कर दिया। दूसरे रूपांतर में जब राजकुमार जगतसुख के पास नाला पार कर रहा था तो एक बुढ़िया ने उसे नाला पार करवाने को कहा। राजकुमार ने बुढ़िया को पीठ पर या किलटे में डाल नाला पार करवाया। इस पर बुढ़िया ने उसे दूर दृष्टि की सीमा तक राज्य बख्शा। यह बुढ़िया देवी हिडिम्बा थी। कुल्लू का राजवंश आज भी हिडिम्बा को अपनी 'दादी' मानता है।

इन कथाओं से सिद्ध होता है कि विहंगमणिपाल से पहले कुल्लू का ऊपरी क्षेत्र (जगतसुख, मनाली) स्पीति के अत्याचारी शासकों के अधीन था जिसके कारण प्रजा ने विद्रोह किया और विहंगमणिपाल को शासक बनाया। देवी हिडिम्बा भी इससे पहले यहां विद्यमान थी जिसने राज्य बख्शा। या दूसरे शब्दों में हिडिम्बा शासक थी जिसने स्पीति के ठाकुरों से तंग आकर विहंगमणिपाल की सहायता की और उसे राज्य दिया। यह प्रजा के संघर्ष की भी एक कहानी है।

हरदयाल द्वारा लिखित इतिहास में उल्लेख है :

'जब मकड़ा और भोट का राज्य समाप्त हुआ तो आपाधापी यानी ठाकुरी का दौर चला। जहां-तहां थोड़े बहुत क्षेत्र पर अधिकार करके एक आदमी अधिपति (ठाकुर या राजा) बन बैठता था। ये लोग लंबे समय तक अढ़ाई चावल की खिचड़ी पकाते रहे। उस समय उनका कोई भी अधिपति नहीं था। परस्पर तालमेल भी नहीं था। अंततः वर्तमान राजवंश ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया और ठाकुरों को समाप्त करके अपना अधिकार जमाया।'

काल निर्धारण

राहुल सांकृत्यायन को छोड़कर प्रथम शासक विहंगमणिपाल का काल निर्धारण किसी ने नहीं किया। वास्तव में काल निर्धारण राजा बहादुर सिंह से आरंभ होता है। कुल्लू गजेटियर (1897) में तो इतिहास खंड ही बहादुर सिंह के पिता सिद्ध सिंह से आरंभ होता है। शांगरी से प्राप्त पांडुलिपि भी राजा बहादुर सिंह से आरंभ होती है। हरदयाल के इतिहास में भी सिद्ध सिंह से ही काल निर्धारण हुआ है। गजेटियर, हचिसन-वोगल, हारकोट सबके इतिहास के लिए यही इतिहास व पांडुलिपियां आधार रही हैं अतः सिद्ध सिंह से पहले के राजाओं का क्या समय रहा होगा, यह अज्ञात है। तिथि का पहला प्रमाण उद्धरण पाल (1428 ई.) का है।

यद्यपि राहुल ने विहंगमणिपाल को न जाने किस आधार पर 360 ई. का बताया है। सन् 360 के बाद आगामी राजाओं की तिथियां भी राहुल ने निर्धारित कीं।

विहंगमणिपाल अपनी रानी तथा पुत्र पछपाल के साथ कुल्लू आया। इनके साथ इनका पुरोहित उदय राम भी था। विहंगमणिपाल के बाद पछपाल राजा बना जो राणा तथा ठाकुरों से लड़ता रहा। पछपाल ने गोजरा तथा बबेली के राणाओं को हराया। पछपाल का छोटा भाई नरेंद्र पाल लड़ाई में मारा गया।

राजधानी

कुल्लू की मूल या पहली राजधानी नस्त थी, जिसे जगतसुख माना जाता है। यहां राजाओं ने बारह पीढ़ियों तक राज किया। राजा वसुधा या विशुद्ध पाल के समय राजधानी जगतसुख से नग्गर लाई गई। राजा जगत सिंह इसे सुलतानपुर लाया।

पाल वंश के राजा सिद्ध सिंह तक की सूची

एक पांडुलिपि	दूसरी पांडुलिपि	हरदयाल का इतिहास
1. विहंग	1. विहंग	1. विहंगमणि
2. पछ पाल	2. रुद्र पाल	2. पछपाल
3. भग पाल (विहग)	3. भग पाल	3. विहंग पाल
4. हीन पाल	4. हीन पाल	4. हीन पाल
5. स्वर्ग पाल	5. सर्ग पाल	5. स्वर्ग पाल
6. शक्ति पाल	6. शक्ति पाल	6. शक्ति पाल
7. महिधर पाल	7. महिधर पाल	7. महिधर पाल
8. ओं पाल	8. ओं पाल	8. ओं पाल
9. अनंत पाल	9. अनंत पाल	9. अनंत पाल
10. राजेंद्र पाल	10. राजेंद्र पाल	10. राजेंद्र पाल
11. बसरा पाल	11. बसरा (वसुंधरा) पाल	11. बसरा पाल
12. उत्तम पाल	12. वसोधा पाल	12. उत्तम पाल
13. ध्वजा पाल	13. उत्तम पाल	13. ध्वजा पाल
14. चक्र पाल	14. ध्वजा पाल	14. चक्र पाल
15. कर्ण पाल	15. चक्र पाल	15. कर्ण पाल
16. सूर्य पाल	16. कर्ण पाल	16. सूरज पाल
17. रछ पाल	17. सूर्य पाल	17. रछ पाल
18. रुद्र पाल	18. रथ पाल	18. रुद्र पाल
19. हमीर पाल	19. रुद्र पाल	19. हमीर पाल
20. प्रसिद्ध पाल	20. हमीर पाल	20. प्रसिद्ध पाल
21. हरिचंद पाल	21. प्रसिद्ध पाल	21. हरिचंद पाल
22. सुभट पाल	22. हरिचंद पाल	22. सुभट पाल
23. संसार पाल	23. सुभट पाल	23. सोम पाल
24. भोग पाल	24. संसार पाल	24. संसार पाल
25. मही पाल	25. भोट पाल	25. भोग पाल

26. ब्रह्म पाल	26. महीपाल	26. महीपाल
27. गणेश पाल	27. ब्रह्म पाल (620 ई.)	27. ब्रह्म पाल
28. यज्ञ पाल	28. गणेश पाल	28. गणेश पाल
29. भूमि पाल	29. वज्र (यज्ञ) पाल	29. यज्ञ (वज्र) पाल
30. यज्ञ (वज्र) पाल	30. भूमि पाल	30. शील पाल
31. शील पाल	31. वकेसा पाल	31. झड़ीशेर पाल
32. झरीशर पाल	32. शैल पाल	32. प्रकाश पाल
33. प्रकाश पाल	33. झड़ीशर पाल	33. अजय पाल
34. अजय पाल	34. प्रकाश पाल	34. तप्तेश्वर पाल
35. तप्तेश्वर पाल	35. अजमेर पाल	35. तपेश्वर पाल
36. तपेश्वर पाल	36. तपतीश्वर पाल	36. परम पाल
37. नपेश्वर पाल	37. मनीश्वर पाल	37. नागेंद्र पाल
38. परम पाल	38. फणीश्वर पाल	38. नारद पाल
39. नागेंद्र पाल	39. परम पाल	39. नरोत्तम पाल
40. नारद पाल	40. नागेंद्र पाल	40. सुख पाल
41. नरोत्तम पाल	41. नारद पाल	41. भूपाल
42. सुख पाल	42. नरोत्तम पाल	42. ज्ञान रुद्र पाल
43. भूपाल	43. सुख पाल	43. (सुर) श्रीपाल
44. ज्ञान रुद्रपाल	44. भूपाल	44. संतोष पाल
45. हस्त पाल	45. ज्ञान रुद्र पाल	45. चत पाल
46. श्री पाल	46. हस्त पाल	46. चंद्र पाल
47. संतोष पाल	47. श्रीसुर पाल	47. सरस पाल
48. तेपा पाल	48. संतोष पाल	48. सहदेव पाल
49. चत (गोजीत) पाल	49. तेगपाल	49. महादेव पाल
50. चंद्र (सिकंदर) पाल	50. गोजीत (गो) पाल	50. नरेश पाल
51. सरस पाल	51. चंद्र पाल	51. वन पाल
52. सहदेव पाल	52. सरस पाल	52. अतीत पाल
53. महादेव पाल	53. सहदेव पाल	53. मानिसूदन पाल
54. नरेश पाल	54. महादेव पाल	54. नरेंद्र पाल
55. वन पाल	55. कीर्ति पाल	55. संतोष पाल
56. अतीत पाल	56. मीन पाल	56. नंद पाल
57. सही पाल	57. हेमंत पाल	57. इंद्र पाल

58. गंभीर पाल
59. निषूदन पाल
60. नरेंद्र पाल
61. संतोष पाल
62. नंद पाल
63. इंद्र पाल
64. महीचक्र पाल
65. बुध पाल
66. रत्न पाल
67. खराहल पाल
68. अगस्त पाल
69. मदन पाल
70. बुध पाल
71. धन पाल
72. केशव पाल
73. सिद्ध पाल (सिंह)

58. साही पाल
59. गंभीर पाल
60. निसूदन पाल
61. नरेंद्र पाल
62. संतोष पाल
63. नंद पाल
64. धृति पाल
65. इंद्र पाल
66. चक्र पाल
67. बुध पाल
68. रत्न पाल
69. खराहल पाल
70. हंस पाल
71. अगस्त पाल
72. मदन पाल
73. बुद्ध पाल
74. उर्धन पाल
75. कश्यप पाल
76. सिद्ध पाल (सिंह)

58. महीचक्र पाल
59. बुध पाल
60. रत्न पाल
61. खराहल पाल
62. हंस पाल
63. अगस्त पाल
64. मदन पाल
65. बुध पाल
66. धन पाल
67. कैलास या केशव पाल
68. सिद्ध पाल (सिंह)

इन सूचियों से स्पष्ट है कि कुछ राजाओं के नामों में मतभेद के अलावा अधिकांश नाम तथा क्रम लगभग समान हैं।

हारकोट ने जहां सिद्ध सिंह तक 74 शासक गिनाए हैं, हचिसन-वोगल ने 73 शासक। हचिसन-वोगल की सूची में 71वें शासक माधोपाल का नाम नहीं दिया गया है। दो पांडुलिपियों के अनुसार एक में 73 तो दूसरी में 76 शासक हैं। हरदयाल ने मात्र 68 शासकों का ही वर्णन किया है।

सिद्ध सिंह से पहले काल निर्धारण भी किसी ने नहीं किया; बीच-बीच में चंबा के शासकों के आधार पर काल निर्धारण का प्रयास किया गया है। उर्धन या उद्दरण पाल का नाम हिरमा के मोहरे में मिलता है जिस पर संवत् 94 (1418) है। दूसरा लेख संध्या गायत्री मंदिर जगतसुख में है जिसमें 'श्री महाराजा उधरण पाल संध्या देवी काली महामाई से 4 बा, ति. (1428)' लिखा है।

राजवंश की सूची

हारकोट की सूची

1. विहंगमणि
2. पछ पाल
3. विहंग पाल
4. दूरहीन (हीन) पाल
5. सुर्ग पाल
6. शक्ति पाल
7. महिद (महिधर) पाल
8. ओम पाल
9. राजेंद्र पाल
10. वसुध पाल
11. वसुधा पाल (राजधानी जगतसुख से नग्गर लाई गई)
12. उत्तम पाल
13. ध्वजा पाल
14. चक्र पाल
15. कर्ण पाल
16. सूरज पाल
17. रक्ष पाल
18. रुद्र पाल
19. हमीर पाल
20. प्रसिद्ध पाल
21. हरिचंद पाल
22. सुभट पाल
23. सोम पाल
24. संसार पाल
25. बाघ पाल

हचिसन-वोगल की सूची

1. विहंगमणि
2. पछ पाल
3. विहंग पाल
4. दूरहीन या हीन पाल
5. स्वर्ग पाल
6. शक्ति पाल
7. महेश्वर या महेंद्र पाल
8. ओम पाल
9. राजेंद्र पाल
10. विसद पाल
11. विसुध पाल
12. उत्तम पाल
13. द्विज पाल
14. चक्र पाल
15. कर्ण पाल
16. सूरज पाल
17. रक्ष पाल
18. रुद्र पाल
19. हमीर पाल
20. प्रसिद्ध पाल
21. हरिचंद पाल
22. सुभट पाल
23. सोम पाल
24. संसार पाल
25. भोग पाल

26. विभय पाल	26. विभय पाल
27. ब्रह्म पाल (राजा निःसंतान मर गया। किंवदंती है कि चंबा, लद्दाख, सुकेत, बुशहर, कांगड़ा और भंगाल के राजाओं ने गणेश पाल को उत्तराधिकारी बनाया।)	27. ब्रह्म पाल
28. गणेश पाल	28. गणेश पाल
29. गंभीर पाल	29. गंभीर पाल
30. भूमि पाल	30. भूमि पाल
31. श्री दत्त वैशूद पाल (इसके शासनकाल में चंबा से लड़ाई हुई और उग्र सिंह चंबा के राजा के हाथों श्रीदत्त मारा गया। इस समय इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) का राजा गोवर्धन था।)	31. श्री दतेश्वर पाल
32. उग्र पाल (चंबा से लड़ाई की और शीतल के अलावा सभी पुत्रों सहित मारा गया)	32. अमर पाल
33. शीतल पाल	33. शीतल पाल
34. श्री जेरशुर पाल (बुशहर की सेना की सहायता से राजा ने चंबा की सेनाओं को कुल्लू से खदेड़ दिया। शीतल पाल देश से बाहर था और राज्य करता प्रतीत नहीं होता, यह संभव है कि कुल्लू कुछ समय तक, श्री जरेशुर पाल से पहले चंबा के अधीन रहा हो।)	34. श्री जरेश्वर पाल
35. प्रकाश पाल	35. प्रकाश पाल
36. अजम्बा पाल	36. अचम्बा पाल
37. तपनेशूर पाल	37. तपनेश्वर पाल
38. परम पाल	38. परम पाल
39. नजेंद्र पाल	39. नगेंद्र पाल
40. नारद पाल (इसके शासनकाल में चंबा से लड़ाई हुई और चंबा की सेनाएं मजना कोट, रोहतांग पास के समीप एक गांव तक आ पहुंची और वहां चंबा के राजा ने किला बना दिया। लड़ाई बारह वर्ष तक जारी रही, फिर शांति कायम हुई और कुल्लू की प्रजा ने चंबा के	40. नारद पाल

सैनिकों को दावत के लिए बुलाया जो रात को होनी थी। चंबा के सैनिकों को धोखे से व्यास के किनारे उतारा गया जहां राह्ला के निकट वे तीक्ष्ण ढलान से नीचे गिर गए और समाप्त हो गए।)

41. नरोत्तम पाल	41. नरोत्तम पाल
42. शेष पाल	42. शेष पाल
43. भूब पाल	43. भूपाल
44. जनिरुद्ध पाल	44. अनिरुद्ध पाल
45. हस्त पाल	45. हस्त पाल
46. सूरती पाल	46. सूरत पाल
47. संतोष पाल	47. संतोष पाल
48. तेग पाल	48. तेग पाल
49. उक्त या कुचत पाल	49. उचित पाल
50. सचिंद्र पाल (कहा जाता है कि राजा, दिल्ली के राजा से शिकायत करने गया कि चीन द्वारा हमला किया जा रहा है, दिल्ली के राजा ने स्वयं सेनाओं का नेतृत्व किया और कुल्लू के रास्ते जाकर मानतलाई (मानसरोवर) तक बलतिस्तान में गैमूर खान (?) पर अधिकार किया।)	50. सिकंदर पाल
51. सरस पाल	51. सरस पाल
52. सहदेव पाल	52. सहदेव पाल
53. श्री महादेव पाल	53. श्री महादेव पाल
54. नृतिपाल (इस काल में कश्मीर पर अलीशेर खान का राज्य बताया जाता है।)	54. नृति पाल
55. बहन पाल	55. *सूचना नहीं है*
56. हस्त पाल	56. हस्त पाल
57. शशि पाल	57. शशि पाल
58. गंभीर पाल	58. गंभीर पाल
59. निशोधन पाल	59. निशोधन पाल
60. नरेंद्र पाल	60. नरेंद्र पाल
61. संतोष पाल	61. संतोष पाल
62. नंद पाल	62. नंद पाल
63. धरती पाल	63. धरती पाल

64. इंद्र पाल	64. इंद्र पाल
65. महिचक्र पाल	65. महिचक्र पाल
66. यौद्धरू पाल	66. जयधर पाल
67. केरल पाल	67. केरल पाल
68. हंस पाल	68. हंस पाल
69. अगस्त पाल	69. अगस्त पाल
70. मदन पाल	70. मदन पाल
71. माधो पाल	71. *नाम नहीं दिया*
72. उधम पाल	72. उर्धन पाल
73. कैलास पाल	73. कैलास पाल
74. सिद्ध पाल (इस शासक ने 'सिद्ध सिंह' की उपाधि धारण की)	74. सिद्ध सिंह
75. बहादुर सिंह (कुल्लू राज्य का बंदोबस्त हुआ और राज्य विस्तार किया गया।)	75. बहादुर सिंह
76. प्रताप सिंह	76. प्रताप सिंह
77. पर्वत सिंह	77. पर्वत सिंह
78. पृथी सिंह	78. पृथी सिंह
79. कल्याण सिंह	79. कल्याण सिंह
80. जगत सिंह (कहा जाता है जगत सिंह ने साठ वर्ष तक राज किया। वह एक शक्तिशाली शासक था जिसने पर्याप्त राज्य विस्तार किया। वह अवध से रघुनाथ जी की मूर्ति लाया और कुल्लू में विष्णु पूजा आरंभ की। उसने शाहजहां के अंतिम समय और औरंगजेब के आरंभिक काल में शासन किया। सुलतानपुर को राजधानी बनाया गया।)	80. जगत सिंह
81. बुध सिंह (बुध सिंह के समय कुल्लू राज्य वास्तव में महत्त्वपूर्ण बन गया। समस्त कुल्लू, वजीरी रूपी, सराज, लाहौल स्पीति, बुशहर, भंगाल, मंडी और सुकेत का बहुत बड़ा भाग, शिमला के समीप के पहाड़ी राज्य, इस शासक के अधीन आ गए।)	81. विधि सिंह
82. मियां सिंह (मियां सिंह ने मंडी को पूरी तरह अपने	82. मान सिंह

अधीन कर लिया किंतु फिर से छोड़ना पड़ा।)	
83. राज सिंह	83. राज सिंह
84. जय सिंह (जय सिंह मंडी के विरुद्ध सहायता लेने के लिए लाहौर गया।)	84. जय सिंह
85. टेढ़ी सिंह	85. टेढ़ी सिंह
86. प्रितम सिंह (शासन के दौरान देश भीतरी विद्रोहों के कारण टूट गया)	86. प्रितम सिंह
87. विक्रम सिंह (शासन के दौरान सिक्खों ने हमला किया। यह 1812 के लगभग हुआ।)	87. विक्रम सिंह
88. जीत सिंह (कुल्लू का अंतिम शासक सन् 1840 में सिक्खों द्वारा हराया गया।)	88. अजीत सिंह (अंतिम शासक)
ठाकुर सिंह (महाराजा शेर सिंह ने ठाकुर सिंह को राजा की उपाधि दी और वजीरी रूपी का जागीरदार बनाया।)	ठाकुर सिंह
ज्ञान सिंह (ज्ञान सिंह के उत्तराधिकारी होने में कुछ शंकाएं थीं और पिता की जागीर देने में ब्रिटिश सरकार ने केवल राय की उपाधि दी।)	ज्ञान सिंह
दलीप सिंह (दिलीप सिंह नाबालिग था। वह पंडित नत्थू राम के पास पढ़ रहा था और अच्छा निकलने की संभावना थी।)	दलीप सिंह
	मेघ सिंह
	भगवंत सिंह

हारकोट तथा हचिसन-वोगल की सूची एक सी है। हचिसन-वोगल ने 54वें राजा नृतिपाल के बाद एक राजा के विषय में सूचना नहीं दी है। 70वें राजा मदन पाल के बाद भी एक राजा माधो पाल का नाम नहीं दिया है। अतः हचिसन-वोगल की सूची में दो राजा कम हैं।

हचिसन-वोगल ने हारकोट द्वारा दिए गए नामों में सुधार किया है। जैसे 'महिद' को महेश्वर या महेंद्र लिखा, 'बाघ' को भोग पाल, 'श्री जरेशुल पाल' को श्री जरेश्वर पाल, 'नजेंद्र' को नगेंद्र ठीक किया।

वास्तव में हारकोट ने जो सामग्री कुल्लू में असिस्टेंट कमिश्नर होने के समय एकत्र की, वह सब की सब हचिसन-वोगल को दे दी। हचिसन-वोगल ने 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' (पृष्ठ 414-रीप्रिंट भाषा संस्कृति विभाग : 1988) में

लिखा है :

The late Colonel (then Captain) Harcourt was the first to draw attetion to the Vansavali, in his book, 'Kooloo, Lahoul and Spiti', published in 1871. Colonel Harcourt was for three years Assitant Commissioner of Kullu, and thus possessed special advantages for inquing and research, of which he fully availed himself. it was his intetion, as he states, to have writeen a history of Kullu, for which he had collected large amount of material. This however, he was unable to do, and some time before his death he placed the whole of his manuscripts at our disposal. To colonel Harcourt, therefore, we are under very special obligation, which we desire to acknowledge."

अतः इस इतिहास में हारकोट की पूरी सामग्री प्रयोग में लाई गई जो हारकोट ने हरदयाल के इतिहास से ली। हरदयाल, हारकोट द्वारा दी गई सूची के अंतिम राय दलीप सिंह के पास तहसीलदार थे।

विहंगमणि पाल का समय

राहुल सांकृत्यायन एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने विहंगमणि पाल का समय 360 ई. दिया है। इस काल निर्धारण का आधार क्या है, यह ज्ञात नहीं। सिद्ध सिंह का काल अधिकांश इतिहासकारों द्वारा 1500 ई. माना गया है। सिद्ध पाल या सिद्ध सिंह विभिन्न वंशावलियों में 67वें से लेकर 76वें शासक माने गए हैं। यदि विहंगमणिपाल से लेकर 70 शासक गिनें और प्रत्येक का औसत शासनकाल 15 वर्ष लगाएं तो कुल 1050 वर्ष बनते हैं। अतः विहंगमणिपाल 450 ई. के लगभग रहा होगा। इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि प्रथम शासक चौथी या पांचवीं शताब्दी में आया होगा।

लोककथा को सही मानें तो विहंगमणि पाल मायापुरी से यहां आया। निश्चित है, कुछ सैनिक भी उसके साथ रहे होंगे, उसने कुछ ठाकुरों को हराया और पहले मणिकर्ण और फिर नस्त या जगतसुख में राजधानी बनाई।

बिना किसी ठोस प्रमाण के विहंगमणि पाल का समय देना उचित नहीं होगा।

पछ पाल

विहंगमणि पाल के पछ पाल और नरेंद्र पाल दो पुत्र थे। पिता की मृत्यु पर पछ पाल राजा बना। पछ पाल ने गोजरा और बबेली (मनाली के आसपास) को जीता। इसकी बुरुआ के ठाकुर से लड़ाई हुई जिसमें बुरुआ का ठाकुर मारा गया किंतु

इस लड़ाई में नरेंद्र पाल भी मारा गया।

पछ पाल की मृत्यु के बाद क्रमशः विहंग पाल और हीन पाल राजा बने।

स्वर्ग पाल

स्वर्ग पाल कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर पाया। उसके दो पुत्र थे—शक्ति पाल और जंग पाल (या जनक)। पिता की मृत्यु पर दोनों राजा बनने का दावा करने लगे। प्रजा ने दोनों में राज्य बांटने का निश्चय किया किंतु राज पुरोहित ने शक्ति पाल को बड़ी रानी का पुत्र होने के कारण राजा बनाया। शक्ति पाल का दूसरा नाम महिमानंद था।

शक्ति पाल के बाद महिधर पाल, ओम पाल, अनंत पाल और राजेंद्र पाल राजा बने।

राजेंद्र पाल

राजेंद्र पाल के समय बरसाई कोठी में सूरत चंद ठाकुर का राज था जिसकी मृत्यु हो गई। सूरत चंद के सरूप सुंदरी नाम की एक कन्या थी, उत्तराधिकारी कोई नहीं था। अतः जगत सुख के शासक राजेंद्र पाल ने सरूप सुंदरी को अधीनता स्वीकार करने के लिए लिख भेजा। सरूप सुंदरी नहीं मानी, फलतः लड़ाई हुई। इस लड़ाई में राजा के ग्यारह पुत्र मारे गए। अंत में राजेंद्र पाल ने अपने बारहवें पुत्र को राजदूत बनाकर भेजा। सरूप सुंदरी ने उसे पहरे में रख लिया और यह जान लिया कि वह राजकुमार है। सरूप सुंदरी ने अब शर्त रखी कि यदि राजकुमार उससे विवाह कर लेगा तो वह सारा राज्य उसे दे देगी। राजा ने स्वीकार कर लिया और विवाह हो गया। फलतः यह राज्य भी अधिकार में आ गया। यह युद्ध एक वर्ष तक चला था। अतः इस स्थान को बरसाई कहते हैं।

इसके बाद राजेंद्र पाल ने कोठी नग्गर पर हमला कर नग्गर के ठाकुर कर्म चंद को हराकर नग्गर पर अधिकार कर लिया। कर्म चंद भाग गया और चार वर्ष बाद पुनः लड़ाई में मारा गया। राजा ने नग्गर को अपनी राजधानी बनाया।

वसुध पाल

राजेंद्र पाल के बाद बसरा या वसुध पाल राजा बना। हारकोट ने वसुध के बाद वसुधा पाल भी राजा गिनाया है जिसके काल में राजधानी नग्गर लाई गई किंतु हरदयाल के इतिहास में राजधानी राजेंद्र पाल ही नग्गर को जीतकर यहां लाया। संभवतः राजेंद्र पाल ने नग्गर को जीत यहां राजधानी लाने का निर्णय लिया हो जिसे वसुध या वसुधा पाल ने कार्यान्वित किया। हचिसन-वोगल ने नग्गर के ठाकुर को

हराने की घटना वसुध पाल के समय बताई है।

वसुध या वसुधा पाल के बाद उत्तम पाल, ध्वजा पाल राजा बने। ध्वजा पाल ने रूमसू के ठाकुर को जीतकर अपने राज्य में मिलाया। इसके बाद चक्र पाल, कर्ण पाल, सूरज पाल राजा बने।

रक्ष पाल, रुद्र पाल

सूरज पाल की मृत्यु के बाद इसके भाइयों में सत्ता के लिए संघर्ष हुआ और दो भाई मारे गए। इस गृह कला से आसपास के शासक लाभ उठाने लगे। इस समाचार से भाई संभल गए और पहले रक्ष पाल और फिर रुद्र पाल राजा बना। रुद्र पाल ने पुनः ठाकुरों तथा राजाओं को हरा दिया।

रुद्र पाल के समय स्पीति के राजा राजेंद्र सेन का आक्रमण हुआ और रुद्र पाल को स्पीति का करद बनना पड़ा। एक पांडुलिपि में उल्लेख है कि लाहौल पर उस समय चंबा का राज था और चंबा के शासकों से रुद्र पाल हार गया और कर देना स्वीकार किया। यह भी संभव है कि चंबा तथा स्पीति के शासकों ने मिलकर कुल्लू पर हमला किया हो।

रुद्र के बाद हमीर पाल भी चंबा या स्पीति को कर देता रहा। यह कर एक रुपए में छह आने वार्षिक था।

प्रसिद्ध पाल

प्रसिद्ध पाल ने स्पीति (या चंबा) के राजेंद्र सेन के बेटे को कर देना बंद कर दिया। प्रसिद्ध पाल तथा चंबा या स्पीति की लड़ाई रोहतांग जोत पर हुई जिसमें प्रसिद्ध पाल विजयी हुआ।

प्रसिद्ध पाल के बाद हरिचंद पाल, सुभट पाल, सोम पाल और संसार पाल राजा हुए।

संसार पाल

कहा जाता है कुल्लू द्वारा स्पीति के शासक चेत सेन की हार के बाद स्पीति पर लद्दाख या रूपशू के गया-मूर-ओर का हमला हुआ जिसमें चेत सेन मारा गया। अतः स्पीति में हिंदू राजवंश का राज समाप्त हो गया। गया-मूर-ओर के शासक ने कुछ गांव चेत सेन के पुत्र को जागीर के रूप में दिए और तीन गांव संसार पाल को दिए जिसने स्पीति पर हमले में सहायता की थी।

अतः स्पीति में बौद्ध धर्म से पहले हिंदू शासकों का शासन समाप्त हुआ और स्पीति तिब्बती शासन के अधीन हो गई। यह घटना 600-650 के लगभग हुई होगी।

संसार पाल के बाद भोग पाल तथा विभय पाल में सत्ता के लिए लड़ाई हुई जिसमें भोग पाल मारा गया और विभय पाल राजा बना। इसके बाद भोग पाल का पुत्र मही पाल राजा बना जिसने भोग पाल को मारकर पिता के वध का बदला लिया। इसके बाद ब्रह्म पाल राजा बना।

गणेश पाल

ब्रह्म पाल का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। एक दासी पुत्र था गणेश पाल। मंत्रियों ने सुकेत, चंबा, लद्दाख, कांगड़ा, भंगाल तथा बुशहर के राजाओं की सम्मति से गणेश पाल को राजा बनाया किंतु नरेशों ने इसे असल राजा स्वीकार नहीं किया।

गणेश पाल के सिंहासनारूढ़ होने के समय पहली बार पड़ोसी राज्यों का उल्लेख आता है किंतु यह तथ्यों पर आधारित न होकर बाद में जोड़ा लगता है क्योंकि चंबा का नाम उस समय ब्रह्मपुर होना चाहिए था। लद्दाख तो तिब्बत का एक भाग था। सुकेत तथा भंगाल नाम के राज्य भी उस समय अस्तित्व में आए उचित प्रतीत नहीं होते।

गणेश पाल के बाद हारकोट के राजा का नाम गंभीर पाल दिया गया है जबकि अन्य ऐतिहासिक पांडुलिपियों में यह यज्ञ पाल है। गंभीर पाल या यज्ञ पाल के दो पुत्र हुए—भूमि पाल तथा सुग या सुख पाल। सुख पाल संभवतः राजगद्दी की लड़ाई में मारा गया अतः भूमि पाल राजा बना।

भूमि पाल का बेटा या उत्तराधिकारी परंपरा में यज्ञ (वज्र) पाल है जबकि हारकोट ने श्री दतेश्वर पाल बताया है।

श्री दतेश्वर पाल

श्री दतेश्वर पाल की लड़ाई चंबा से हुई। चंबा की सेनाएं रोहतांग पार कर आईं। चंबा का राज्य जो कभी ब्रह्मपुर या भरमौर तक सीमित था, अब सीमाएं बढ़ा रहा था। यह घटना मेरू वर्मन के समय (680-700 ई.) की हो सकती है। इस लड़ाई में श्री दतेश्वर पाल की मृत्यु हो गई। पिता की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अमर पाल पुत्रों सहित लड़ाई में गया किंतु वह भी पुत्रों सहित मारा गया। केवल एक पौत्र शील पाल बचा जो सहायता के लिए बुशहर के राजा के पास गया और वहीं मर गया। हचिसन-वोगल ने अमर पाल को चंबा का राजा माना जो गलत है। अमर पाल श्री दतेश्वर पाल का पुत्र था जो पौत्रों सहित लड़ाई में मारा गया। शील पाल के बाद झड़ीशेर पाल या श्री जरेशुर पाल या श्री जरेश्वर पाल राजा बना।

श्री जरेश्वर पाल

श्री जरेश्वर पाल संभवतः बुशहर रहा हो और अवसर की तलाश में हो। यह घटना तब की भी हो सकती है जब ब्रह्मपुर पर कीरों का आक्रमण (780-800 ई.) हुआ था और चंबा का राजा मारा गया था। इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्री जरेश्वर पाल ने चंबा की सेनाओं को कुल्लू से खदेड़ दिया।

श्री जरेश्वर पाल के बाद प्रकाश पाल, अजय पाल या अचम्भा पाल, तप्तेश्वर पाल, परम पाल, तपेश्वर पाल या नगेंद्र पाल गद्दी पर बैठे। श्री जरेश्वर पाल से नारद पाल तक राजाओं के क्रम एक से नहीं हैं।

नारद पाल

नारद पाल के समय चंबा से एक ओर लड़ाई का उल्लेख है। चंबा की सेनाएं रोहतांग के नीचे मजनकोट तक आ गईं और वहां एक किला बना लिया। यह लड़ाई बारह वर्ष तक चली। अंततः संधि हो गई। कुल्लू के राजा ने चंबा की सेना को खाने की दावत दी। उन्हें मनाली आने का आमंत्रण दिया। व्यास नदी का पुल उखाड़कर घास बिछा दी और अंधेरी रात में राह्ला के निकट जो पुल पार करता गया, नीचे गिरकर मरता गया। जब एक ढोली बहने लगा तो ढोल की आवाज से चंबा वाले चौंके और भाग खड़े हुए। यह घटना कोठी के पास पुल की है जहां व्यास बहुत संकरी और गहरी घाटी से बहती है।

मनाली के राणा को हराकर जहां किला बनाया उसे 'गद्दी पधर' कहा जाता है। चंबा की सेना को गद्दी सेना कहा जाता था।

नारद पाल के बाद नरोत्तम पाल शेष पाल या सुखपाल और भूपाल या भूप पाल के नाम आते हैं।

भूप पाल

भूप पाल के समय कुल्लू पर सुकेत का आक्रमण हुआ। सुकेत में परंपरा के अनुसार राजा का नाम वीर सेन था। वीर सेन सुकेत राज्य का संस्थापक था जिसने 765 ई. में सुकेत राज्य की नींव रखी। कुल्लू परंपरा कहती है कि सुकेत के राजा ने कुल्लू पर आक्रमण किया। परोल, लग, सारी पर आक्रमण कर जीत लिया। भूप पाल हार गया और बंदी बना लिया गया। कुल्लू करद राज्य बन गया।

यह घटना लगभग सन् 900 की हो सकती है किंतु उस समय वीर सेन सुकेत का राजा नहीं हो सकता जो सुकेत का संस्थापक था।

भूप पाल के बाद अनिरुद्ध पाल या ज्ञानरुद्र पाल भी सुकेत को कर देता रहा।

अनिरुद्ध पाल के बाद हस्त पाल राजा बना। सुकेत परंपरा में हस्त पाल को हेत पाल कहा गया है। कथा है कि सुकेत का राजा विक्रम सेन, जो वीर सेन का पौत्र था, धार्मिक प्रवृत्ति का था। वह गद्दी पर बैठने के बाद हरिद्वार तीर्थयात्रा पर चला गया। वह दो वर्ष तीर्थयात्रा पर रहा था। इस बीच उसके भाई त्रिविक्रम सेन ने कुल्लू के राजा हेत पाल से सहायता चाही। हेत पाल ने अपने राज्य को करमुक्त किए जाने की शर्त पर सहायता स्वीकार की। जब दो वर्ष बाद विक्रम सेन वापस आया तो इस धोखे का पता चला। वह अपने संबंधी क्योंथल के राजा के पास चला गया। राजा क्योंथल की सेना की सहायता से ज्यूरी (सतलुज के किनारे) में त्रिविक्रम तथा कुल्लू और विक्रम तथा क्योंथल की सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ। इस युद्ध में त्रिविक्रम तथा हेत पाल मारे गए। विक्रम सेन ने पुनः कुल्लू पर अधिकार कर लिया। उसने हेत पाल के वंशजों—धनी राम, गोपाल दास और लक्ष्मी दास को तीन पीढ़ियों तक जागीरदार बनाए रखा।

हरदयाल के इतिहास में उल्लेख है कि सुकेत के राजा ने हेत पाल के पुत्र श्री पाल को थोड़ी जागीर देकर शेष राज्य अपने अधिकार में कर लिया।

विक्रम सेन के बाद उसका पौत्र लक्ष्मण सेन, जो नाबालिग था, राजा बना। इस समय कुल्लू के राजा ने, जिसका नाम सूरत पाल या हमीर पाल था, स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। परंपरा के अनुसार श्री पाल ने ही सराज, रूपी, लग तथा परोल को छोड़ स्वतंत्र करवा लिया। सुकेत परंपरा में श्री पाल या सूरत पाल को हमीर पाल लिखा है। जब लक्ष्मण सेन बालिग हुआ तो उसने रूपी, लग सारी और परोल वजीरी का कुछ भाग पुनः अपने अधीन कर लिया। यह बात कुल्लू परंपरा में नहीं है।

संतोष पाल

संतोष पाल ने लद्दाख से ग्या-मुर-ओर तथा दूसरे क्षेत्र जीत लिए। चंबा के अधीन लाहौल भी ठाकुरों से छीन लिया। उनसे चंवर, कस्तूरे, गूंठ (घोड़े) कर-स्वरूप लिए। इसके पुत्र तेग पाल ने राजा बनने पर बलतिस्तान के मुहम्मद खां को मार दिया और उसके पुत्र को करद बनाया।

इसके बाद उचित पाल राजा बना जिसने तिब्बत पर आक्रमण किया।

चंद्र पाल या सचिंद्र पाल

जब चंद्र पाल अपने पिता का क्रियाकर्म कर रहा था तब चंबा के राजा ने सुअवसर जानकर ल्हासा और बलतिस्तान के राजाओं के साथ मिलकर आक्रमण कर दिया। चंद्र पाल को पकड़कर बंदी बनाया गया और मोहन गढ़ (भूभू पास के पास) में रखा।

इस आक्रमण का उल्लेख लद्दाख के इतिहास में भी है अतः संभव है यह आक्रमण लद्दाख की ओर से ही हुआ हो। उस समय लद्दाख में संभवतः ल्हा-येन-उत्पाल राजा था। यह बात 1125-50 ई. की हो सकती है। कुल्लू के राजा से संधि हुई और तब तक कर देने का वादा हुआ जब तक कैलास का हिमखंड पिघल न जाए और मानसरोवर का पानी सूख न जाए। यह संधि सेंगे नमग्याल (1590-1620 ई.) तक लागू रही। कुल्लू राजा को याक और लोहा कर के रूप में देना पड़ा। याक लाहौल से दिए गए होंगे। कुल्लू का राज्य तब लाहौल तक रहा होगा और पांगी चंबा में। कुल्लू पर आक्रमण भी लाहौल के रास्ते हुआ होगा जिसमें चंबा ने भी सहायता की होगी।

यह भी उल्लेख है कि चंद्र पाल छूटकर दिल्ली के राजा के पास गया कि चीन द्वारा हमला किया जा रहा है। दिल्ली का बादशाह स्वयं सेनाओं का नेतृत्व करता हुआ आया और बहुत से राजाओं को मार दिया। बादशाह ने कुल्लू के रास्ते मानतलाई (मानसरोवर) तक बलतिस्तान में ग्या-मुर-ओर पर अधिकार किया। ये सभी दिल्ली के बादशाह को राजा कुल्लू के माध्यम से कर देने लगे। राजा ने चंबा और तिब्बत से अपना क्षेत्र वापस ले लिया।

चंद्र पाल के बाद सरस पाल, सहदेव पाल, महादेव पाल, नृति पाल या नरेश पाल, वन पाल और अतीत पाल गद्दी पर बैठे। नृति पाल या नरेश पाल के समय कश्मीर पर अली शेर खान का राज था जिसका काल संभवतः 1351-63 था। वन पाल या वैन पाल के बाद हस्त पाल का नाम भी आता है जिसके समय बुशहर का आक्रमण हुआ और कुल्लू को कर देना पड़ा। यह कर सही पाल या शशि पाल तक दिया जाता रहा। गंभीर पाल ने सुकेत की सहायता से बुशहर से युद्ध किया और सतलुज नदी के तट तक का क्षेत्र जीतकर सतलुज नदी को सीमा बनाया।

गंभीर पाल के बाद मनिसूदन या निसूदन पाल गद्दी पर बैठा। इसके बाद नरेंद्र पाल के समय कुल्लू की भंगाहल के साथ युद्ध में पराजय हुई और दस वर्ष तक यह राज्य भंगाहल के अधीन रहा। इसके बाद संतोष पाल और नंद पाल गद्दी पर बैठे।

नंद पाल के समय कांगड़ा ने आक्रमण किया और कुल्लू से लगता मंडी का क्षेत्र जीतकर चंवर तथा घोड़ों का कर निर्धारण किया। नंद पाल के बाद इंद्र पाल ने कर समय पर नहीं भेजा। इस पर कांगड़ा द्वारा उगाही के लिए सेना भेजी गई जो खाली हाथ वापस लौटी। दोबारा सेना नहीं भेजी गई।

इंद्र पाल के बाद महीचक्र पाल, बुध पाल (या जयधर पाल), रत्न पाल तथा केरल पाल राजा हुए। हरदयाल ने केरल पाल को खराहल पाल लिखा है। केरल पाल

के समय सुकेत ने आक्रमण किया और लग का कुछ क्षेत्र सुकेत में मिला लिया। मनाली के सिउंसा गांव को सीमा निर्धारित किया गया।

सुकेत के इतिहास में राजा का नाम मदन सेन (लगभग 1240 ई.) था। सुकेत के राजा ने मनाली में कोठी तथा वजीरी रूपी में पार्वती नदी पर सीमा बढ़ा ली। यह भी कहा जाता है कि उसने व्यास के दाईं ओर सिउंसा नाला से बजौरा तक का भूभाग एक स्थानीय राणा भौसल को दे दिया और सुकेत की एक राजकुमारी से उसका विवाह कर दिया। राणा भौसल ने बड़ाग्रां के पास किला बनाया। राणा के बारे में कई कथाएं प्रचलित हैं जो उसकी मूर्खता तथा धूर्तता का परिचय देती हैं। राणा भौसल के मंत्री टीटा मेहता को रानी से प्रेम हो गया किंतु रानी ने स्वीकार नहीं किया अतः टीटा ने रानी से बदला लेने की सोची। उसने राणा भौसल को कहा कि राणा के धान के खेतों की कुहल के लिए पानी तभी आएगा जब रानी को वहां जीवित बलि किया जाएगा। राणा ने रानी को जीवित कुल्ह में दफना दिया। इस दुःखद समाचार को सुन सुकेत के राजा ने हमला बोलकर टीटा मेहता को मार दिया और राणा को गद्दी से उतार दिया। यह इलाका अपने अधिकार में कर लिया।

एक पांडुलिपि में यह भी उल्लेख है कि सुकेत ने इलाका लग, जो बजौरा से डोभी तक था, किसी प्रायश्चित्त के कारण अपने पुरोहित को दान कर दिया। पातक के प्रायश्चित्त के लिए यह इलाका दान दिया था, पातक को 'लाग' कहते हैं अतः कुल्लूई में 'लाग' का उच्चारण 'लौग' हो गया। इसीलिए इस क्षेत्र का नाम लौग हुआ। बाद में सर्वरी नदी को सीमा बनाकर ढालपुर से बजौरा तक वजीरी 'लग महाराजा' और सुलतानपुर से डोभी तक लग-सारी कहलाई। यह भी धारणा है कि सुकेत के राजा ने अपने पुरोहित को इस क्षेत्र का वजीर नियुक्त किया किंतु वह अधिपति बन बैठा। कुछ भी हो, 'लग' एक स्वतंत्र इकाई थी जिसकी राजधानी सुलतानपुर थी। इसका अंतिम शासक राजा जोग चंद था जो डुग्घी लग में रहता था।

केरल पाल के बाद हंस पाल, अगस्त पाल, मदन पाल, बुध पाल या माधो पाल, उधम पाल या उर्धन पाल राजा हुए।

उर्धन पाल

उर्धन पाल के समय के दो लेख मिलते हैं। एक तो हिरमा देवी के मोहरे पर है जो संवत् 94 (1418 ई.) का है। दूसरा संध्या गायत्री मंदिर की शिला पर है। इस लेख में 'श्री महाराजा उर्धन पाल संध्या देवी काली मुरैही संवत् 4 बा, ति. 1' लिखा है जो सन् 1428 है।

कैलास पाल

उर्धन पाल के बाद कैलास पाल या केशव पाल राजा हुआ। इसने अपने महल जगतसुख में बनाए परंतु राजा अधिकतर नग्गर में ही रहा।

कैलास पाल के बाद, जो 'पाल' नामक अंतिम शासक था, पचास वर्ष का इतिहास अंधकारमय है। कैलास पाल के बाद सीधा सिद्ध सिंह का नाम आता है।

सिद्ध सिंह की वंशावली से पहले अंतिम 'पाल' शासक कैलास या केशव पाल के पिता उद्धरण पाल के शासन काल का प्रमाण हिरमा देवी के मोहरे पर लिखित विधि सं. 94 (1418 ई.) और संध्या गायत्री देवी के शिलालेख 'श्री महाराजा उर्धन पाल संध्या देवी काली मुरैही सं. 4 बा, ति. 1 (1428 ई.), के आधार पर उर्धन या उद्धरण पाल का समय सन् 1418-1428 निश्चित किया गया है।'

कैलास या केशव पाल 1429 में राजगद्दी पर बैठा होगा। इस अंतिम पाल शासक के समय तथा इसके बाद (1428-1450) कुल्लू राज्य परतंत्र रहा। सुकेत ने कुल्लू के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया। कश्मीर के शासक जै-उल-अबिदीन (1420-70) द्वारा कुल्लू के शहर (नग्गर) की चमक-दमक तथा गौरव को लूटा। इसी बीच 'लग' एक अलग राज्य स्थापित हुआ। सुकेत के राजा ने लग तथा सारी वजीरी पुरोहित को प्रायश्चित्त हेतु दान दी।

अतः अंतिम पाल शासक के बाद लगभग पचास वर्षों का इतिहास कुल्लू राज्य के पतन का इतिहास है। इस अंतराल में कौन-कौन राजा हुए, यह भी ज्ञात नहीं है। इसके बाद सिद्ध सिंह से एक नए युग का आरंभ हुआ।

नाग सुखराम की सूची

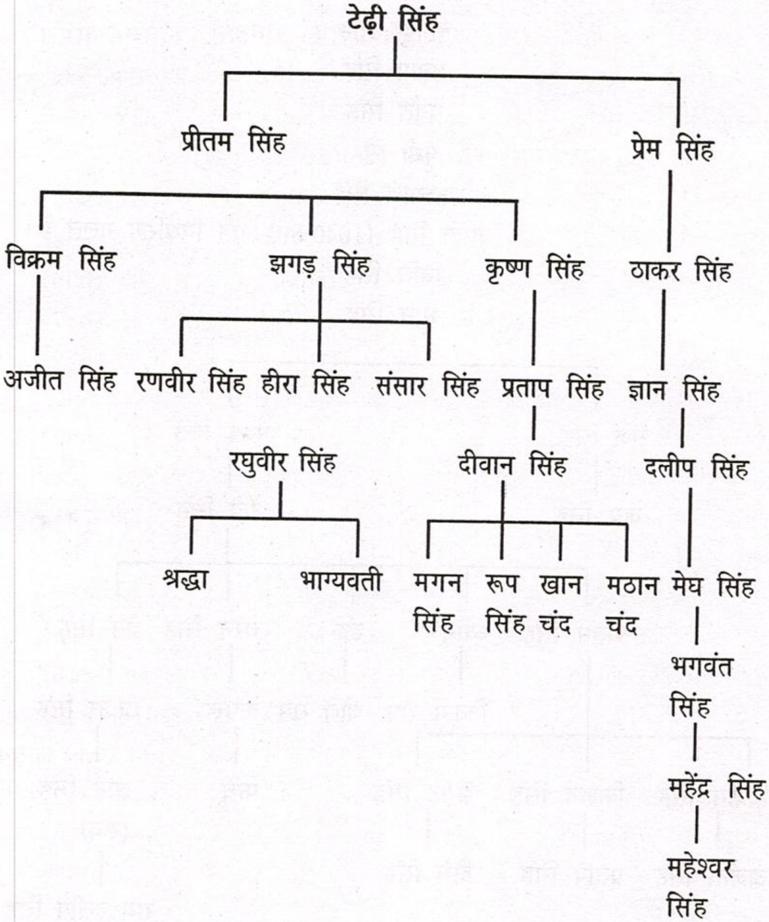
भूपाल या विहंगमणि पाल : 850-900

1. सिद्ध सिंह	(1500-1546)	
2. बहादुर सिंह	(1546-1569)	(पुत्र)
3. प्रताप सिंह	(1569-1584)	(पुत्र)
4. पर्व सिंह	(1584-1618)	(पुत्र)
5. पृथी सिंह	(1618-1635)	(पुत्र)
6. मान सिंह	(1635-1637)	(भाई)
7. जगत सिंह	(1637-1662)	(पृथी सिंह का पुत्र)
8. हरि सिंह	(1662-1663)	(पुत्र)
9. विधि सिंह	(1663-1672)	(भाई)
10. मान सिंह	(1672-1717)	(पुत्र)
11. राज सिंह	(1717-1735)	(पुत्र)
12. जय सिंह	(1735-1744)	(पुत्र)
13. टेढ़ी सिंह	(1744-1767)	(चचेरा भाई)
14. प्रीतम सिंह	(1767-1806)	(पुत्र)
15. विक्रम सिंह	(1806-1816)	(पुत्र)
16. जीत सिंह	(1816-1841)	(पुत्र)

सिद्ध सिंह के बाद राजाओं की सूची

	हरदयाल का इतिहास	हचिसन-वोगल
1. सिद्ध सिंह	(1500-1546)	(1500-1532)
2. बहादुर सिंह	(1546-1569)	(1532-1559)
एक पट्टे के अनुसार पर्वत सिंह भी एक राजा हुआ।		
3. प्रताप सिंह	(1569-1584)	(1559-1575)
4. पर्व (पर्वत) सिंह	(1584-1618)	(1575-1608)
5. पृथी सिंह	(1618-1635)	(1608-1635)
6. मान सिंह (या कल्याण सिंह)	(1635-1637)	(1635-1637)
7. जगत सिंह	(1637-1662)	(1637-1672)
8. हरि सिंह	(1662-1663)	-- --
9. विधि सिंह	(1663-1672)	(1672-1688)
10. मान सिंह	(1672-1717)	(1700-1718)
11. राज सिंह	(1717-1735)	(1719-1731)
12. जय सिंह	(1735-1741)	(1731- --)
13. टेढ़ी सिंह	(1741-1767)	(1742-1767)
14. प्रीतम सिंह	(1767-1806)	(1767-1806)
15. विक्रम सिंह	(1806-1816)	(1806-1816)
16. जीत सिंह	(1816-1840)	(1816-1840)
		अंतिम स्वतंत्र शासक
17. ठाकुर सिंह		(1842-1852)
18. ज्ञान सिंह		(1852-1870)
19. दलीप सिंह		(1870-1892)
20. मेघ सिंह		(1892-1921)
21. भगवंत सिंह		(1921-1960)
22. महेंद्र सिंह		(1960-)
23. महेश्वर सिंह		(वर्तमान वंशज)

एक पांडुलिपि में वंशावली



पंजाब गजेटियर (कांगड़ा) में वंशावली (1897)

सिद्ध सिंह
बहादुर सिंह
प्रताप सिंह
पर्वत सिंह
पृथी सिंह
कल्याण सिंह
जगत सिंह (1640-80) : यह निर्धारण गलत है।
विधि सिंह
मान सिंह

- राज सिंह
  - जय सिंह
- पदम सिंह
  - टेढ़ी सिंह
    - प्रीतम सिंह
      - विक्रम सिंह
        - अजीत सिंह
      - किशन सिंह
        - प्रताप सिंह
      - झगड़ सिंह
        - हीरा सिंह
    - ध्यानू
      - टिकम राम
    - इंद्र
      - बोले राम
    - चरन सिंह
      - कपरू
        - फचू
    - प्रेम सिंह
      - ठाकर सिंह
        - ज्ञान सिंह (राय)
          - राय दलीप सिंह (1892 में मृत्यु)
            - मेघ सिंह

सिद्ध सिंह (1500 ई.)

सिद्ध सिंह क्या पाल वंश का ही एक उत्तराधिकारी था या किसी अन्य वंश से संबंधित, यह निश्चित नहीं है। यह राजा 'सिंह' नाम से नए राजवंश का संस्थापक राजा था। इस राजा के कुल्लू आगमन के संबंध में भी विहंगमणि पाल की तरह कथा प्रचलित है। सिद्ध सिंह भी विहंग की तरह मायापुरी या हरिद्वार से आया हुआ माना जाता है। मायापुरी से आने पर सर्वप्रथम सिद्ध सिंह बजौरा के निकट हाट में आया। राजा के सामने बिजली महादेव के बारे में बताया गया कि यदि कोई व्यक्ति व्यास और पार्वती के संगम से पवित्र जल लेकर मूर्ति के ऊपर चढ़ाता है तो उसे इसका पुरस्कार मिलेगा। सिद्ध सिंह ने पवित्र संगम के जल से बिजली महादेव को स्नान कराया और रात भर मंदिर में रहा। उसे स्वप्न में देवता ने बताया कि जगतसुख जाओ, वहां तुम्हें पुरस्कार मिलेगा। जगतसुख पहुंचने पर जब एक दिन राजा पालथी मार बैठा था, एक ब्राह्मण ने उसके पैर में पद्मिनी या राजचिह्न देखा। ब्राह्मण ने कहा कि तुम राजा बनोगे और एक देवी तुम्हें मिलेगी। सिद्ध पाल ने उसे चुप रहने के लिए कहा। ब्राह्मण को उसके वचन सत्य होने पर अनुदान दिए जाने का राजा ने वचन दिया। सिद्ध सिंह जब जगतसुख जातरा को जा रहा था तो उसे एक बुढ़िया किलटा उठाए मिली। राजा ने बुढ़िया को किलटे में डालकर नाला पार करवाया। वह बुढ़िया देवी हिडिम्बा थी जिसने उतरकर राजा को दूर दलासणी तथा थरोट तक दृष्टि की सीमा तक राज्य वरदान में दिया। राजा जब मेले में पहुंचा तो लोगों ने 'जै देवा' कहकर उसका स्वागत किया।

सिद्ध सिंह स्थानीय राणाओं के भय से एक ब्राह्मण के घर छिप गया। रात को जब ब्राह्मणी गाय दुहने गई तो एक बाघ ने बछड़े पर आक्रमण कर दिया। राजा ने उसे मार गिराया जिससे राजा का नाम सिद्ध पाल से सिद्ध सिंह हो गया।

यह कथा लगभग वही है जो विहंगमणि पाल की है। विहंग से पहले भी कुल्लू में छोटे-छोटे राणा-ठाकुरों का आतंक था, सिद्ध सिंह से पहले भी वही स्थिति थी।

सिद्ध सिंह ने सबसे पहले हाट (बजौरा) को जीता। हाट का स्वामी राजा भौसल था जिसने अपने वजीर टीटा मेहता के कहने पर अपनी रानी रूपणी को जीवित चिनवा दिया। यह रानी सुकेत से थी। भौसल के बेटा-बेटी नाना के घर चले गए। सुकेत के राजा ने भौसल को भी हराया। हाट के साथ बड़ागढ़ भी जीता। इसके बाद सधोर गढ़ (कोठी हुरंग) को जीता। इन्हें जीतने की कहानियां हरदयाल के इतिहास में हैं।

इस तरह हाट आदि स्थानों को जीतकर राजा आगे बढ़ा। कोठी काइस, बंदल,

गाहर के ठाकुरों को हराया। ये क्षेत्र सुकेत के अधीन थे अतः राजा ने इन सभी को सुकेत से भी छुड़ाया।

जगतसुख से ऊपर मदनकोट और मनाली पर एक शक्तिशाली राणा झीना का अधिकार था। इसे जीतने के लिए सिद्ध सिंह ने कूटनीति से काम लिया। राणा झीना के पास एक डागी जाति का मुछयाणी सेवक था जिसकी मूंछें बड़ी लंबी थीं। वह धनुर्विद्या में प्रवीण था। राणा ने उसकी मूंछें कटवाने को कहा जो उसने नहीं काटीं। अंत में प्रतिरोध में आकर राणा ने एक गाय की पीठ पर बैठी मक्खी को मारने के लिए कहा जिससे गाय को कोई क्षति न पहुंचे, नहीं तो उसकी मूंछें काट दी जाएंगी। मुछयाणी ने यह कर दिखाया तो सिद्ध सिंह ने अच्छा मौका जान मुछयाणी को राणा का वध करने के लिए प्रेरित किया। राणा जब वशिष्ठ के पास धान के खेत से वापस आ रहा था, मुछयाणी ने तीर चलाकर उसे मार गिराया। राणा मदनकोट की ओर भागने में सफल भी हुआ किंतु बैराकुट के पास पानी पीते हुए मारा गया। राणा की मृत्यु पर रानी सहित सभी महिलाएं किले में सती हो गईं। मुछयाणी को वही धान के खेत पुरस्कार में दिए गए जहां राणा को तीर मारा गया था।

राणा की मृत्यु के समय एक रानी गर्भवती थी जो सती नहीं हुई। उसके पुत्र को राजा सिद्ध सिंह ने हिडिम्बा देवी को भैंसे की बलि के समय बेकाबू भैंसे को मारने के लिए पुरस्कारस्वरूप मनाली के समीप जागीर दी।

झीना राणा की कथाएं आज भी कुल्लू में बखानी जाती हैं। उसकी एक रानी जोगणी मानकर मदनकोट में पूजी जाती है, जो सती हुई थी। मदनकोट के पास गुफा में उसका खजाना रखा माना जाता है।

सारे क्षेत्र को जीतने के बाद सिद्ध सिंह ने पिति के अत्याचारी ठाकुर को जीता जो महिलाओं का दूध पीने और उस दूध की खीर खाने के लिए छोटे बच्चों को मरवा देता था।

वास्तव में सिद्ध सिंह ने उन तिब्बती सूबेदारों को खदेड़ा जो कुल्लू में कब्जा जमाए थे।

पिति (स्पीति) के लोग हामटा दर्रे के नीचे प्रीणी मंदिर में जमलू के अनुयायी थे। स्पीति के लोग उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक वहां पूजा करने आते थे। उस समय भी इस देवता का संबंध मलाणा से था।

सिद्ध सिंह ने राज्य की सीमाएं बढ़ाकर एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया। सिद्ध सिंह का कार्यकाल हचिसन-वोगल ने 1500-1532 गिनाया है जबकि हरदयाल ने 1500-1548 किंतु एक पांडुलिपि के अनुसार यह 1500-1546 है जो अधिक तर्कसंगत है।

बहादुर सिंह (1546-1569)

बहादुर सिंह ने अपने पिता के राज्य का विस्तार किया और अपने कार्यकाल का अधिकांश समय युद्ध क्षेत्र में बिताया।

शांगरी से प्राप्त इतिहास, जिसे पुरोहित चंद्रशेखर ने उतारा था, बहादुर सिंह से ही आरंभ होता है :

'भादर सिंह से पहिले जो राजे हुए उनका राज परोल वजीरी पर ही रहा। रूपी वजीरी में ठाकुरों का राज था, जो सुकेत के राजा को नजराना दिया करते थे।'

पांडुलिपि में उल्लेख है कि बहादुर सिंह ने हरकंठी, कोठी कनाउर, कोठी चुंग, कोट कंठी, भोसा, सेंसर, कोठी भलाण, कोठी चैहणी पर आक्रमण कर उनके ठाकुरों को मार दिया या अपने अधीन कर छोड़ दिया।

यह भी उल्लेख है कि रूपी के राणे ठाकुर अपनी समस्याएं लेकर सुकेत के राजा के पास गए किंतु सुकेत नरेश ने उनका मजाक उड़ाया। फिर वे नग्गर में बहादुर सिंह के पास गए जिसने उनका मान-सम्मान किया। उन्होंने बहादुर सिंह की अधीनता स्वीकार की।

बहादुर सिंह की जीत के कई किस्से मशहूर हैं। जब बहादुर सिंह ने भोसा पर हमला किया तो ठाकुर भाग गया। तीन दिन बाद भगोड़े ठाकुर को पकड़कर जिया में ठाकुर के पास लाया गया। राजा ने भोसा का क्षेत्र उसे देकर छोड़ दिया। भोसा जाकर ठाकुर फिर विद्रोही हो गया। फिर पकड़कर लाया गया तो क्षमा मांगी। भोसा जाकर फिर विद्रोही हो गया। तब राजा ने भोसा की मिट्टी मंगवाई। जब ठाकुर को भोसा की मिट्टी पर बिठाया जाता तो वह अधीनता स्वीकार नहीं करता, जब वहां से उठा देते तो क्षमा मांगता। अतः राजा ने जान लिया यह चमत्कार मिट्टी का ही है। वहां की भूमि को खोद डाला और लोगों में बांट दिया।

रूपी, हरकंठी, चोंग, कनावर, कोटकंढी, भोसा, भलाण, शेंशर जीतने के बाद बहादुर सिंह ने मकड़ाहर में बेढ़े (महल) बनाए। पांडुलिपि में उल्लेख है :

'मकड़ाहर जगा में अपणे बेढ़े बणाए। बेढ़े बणाई के उहां सेहर बसाऊ।'

मकड़ाहर राजधानी बनाने के बाद राजा ने सराज के तीन ठाकुरों को जीता। इसके बाद कोठी बणोगी में मनाहरी और बसाहरी ठाकुरों को हराया। कोठी तुंग, कोठी शरची, कोठी चैहणी को जीतकर सराज के क्षेत्र में भी अपना अधिकार कर लिया।

यद्यपि मुख्य राजधानी नग्गर ही थी, बहादुर सिंह मकड़ाहर में भी रहता था। यह भी कहा जाता है कि मकड़ाहर में ही राजा की मृत्यु हुई। मकड़सा या मकड़ाहर का प्रयोग पूरे कुल्लू के लिए भी होता रहा है। मकड़ाहर, जो एक स्थान या नई राजधानी का नाम था, व्यास के बाएं किनारे बजौरा के पार हुरला के पास था।

बहादुर सिंह के शासनकाल के प्रमाण

बहादुर सिंह ने सन् 1559 में चंबा के राजगुरु रामपति को एक पट्टा जारी किया जिसमें उसे सांसा में भूमि प्रदान की जो बजौरा तथा हाट के समीप स्थित थी। हाट का क्षेत्र 'लग' में था जिसे राजा ने जीता होगा। एक ताम्रपत्र में बहादुर सिंह को 'सुलतान राजा' कहा गया है।

बहादुर सिंह के समय (सन् 1559) में चंबा तथा कुल्लू राज्यों के बीच विवाह संबंध कायम हुए। इसका उल्लेख एक ताम्रपत्र में है। यह पट्टा चंबा के राजगुरु रामपति को दिया गया है जिसने विवाह संबंध कायम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी। चंबा के राजा का नाम संभवतः गणेश वर्मन था जिसके पुत्र प्रताप सिंह को कुल्लू की तीन राजकुमारियां ब्याही गईं। रामपति को तब तक जागीर बख्शी गई जब तक यह धरती, सितारे तथा सूर्य विद्यमान हैं।

हिडिम्बा मंदिर ढूंगरी मनाली के द्वार पर खुदे टाकरी लेख के अनुसार मंदिर का निर्माण बहादुर सिंह ने सन् 1553 में करवाया। एक पांडुलिपि में भी उल्लेख है :

'इस राजा ने ढूंगरी कोठी मनाली में हिडिम्बा देवी का मंदिर बनवाया जो एकदम नए नमूने का है अर्थात् केली की लकड़ी का तीन छत्तों का बना हुआ है। तभी से ऐसे मंदिरों की नींव पड़ी। इसके अतिरिक्त इस राजा ने मंदिरों को इतनी अधिक जागीरें माफियां दीं कि अब भी किसी का प्रमाण पत्र नष्ट हो जाए तो बड़े अधिकार से कहता है कि यह जागीर राजा भादर सिंह की दी हुई है और उस समय के पट्टे प्रायः कई लोगों के पास अब तक हैं।'

बहादुर सिंह की मृत्यु हचिसन-वोगल ने सन् 1559 दी है। हरदयाल के इतिहास के अनुसार राजा की मृत्यु मकड़ाहर में क्षय रोग से सन् 1569 में हुई।

प्रताप सिंह (1569-1584)

प्रताप सिंह के समय कोई युद्ध नहीं हुआ। राज्य में शांति रही। जनश्रुति है कि इस राजा ने जिया (व्यास-पार्वती के संगम पर) में बेढ़े (महल) बनवाए।

पर्व सिंह (1584-1618)

इस राजा के समय भी कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी।

पृथी सिंह (1618-1635)

इस राजा के समय भी कोई घटना नहीं हुई। इस राजा का पुत्र छोटा होने के कारण इसका भाई मान सिंह राजा बना।

मान सिंह या कल्याण सिंह (1635-1637)

हचिसन-वोगल ने राजा का नाम कल्याण सिंह दिया है। पृथी सिंह की मृत्यु पर उत्तराधिकारी (संभवतः जगत सिंह) छोटा होने पर उसके भाई मान सिंह या कल्याण सिंह ने राज किया।

इन राजाओं का काल निर्धारण हरदयाल की पांडुलिपि में सही है क्योंकि यह ठीक राजा जगत सिंह तक (1637) पहुंचाता है। जबकि हचिसन-वोगल ने प्रताप सिंह (1559-1575), पर्वत सिंह (1575-1608), पृथी सिंह (1608-1635) तथा कल्याण सिंह (1635-1637) बताया है।

ये सभी राजा अकबर, जहांगीर और शाहजहां के समकालीन थे।

जगत सिंह (1637)

जगत सिंह कुल्लू के इतिहास में एक प्रतापी राजा हुआ जिसके समय राज्य की सीमाएं बढ़ीं। राजा तथा प्रजा के वैष्णव होने की ऐतिहासिक घटना भी इसी राजा के समय घटी।

सबसे पहले राजा ने लग पर आक्रमण किया। पांडुलिपि में उल्लेख है :

'उसके पीछे मंडियाल के साथ रल के लग के राजे जोग चंद ने उग्र हंगामा किया। मंडी का जो राज था सो मंडी वाले ने लिया। राजे जगत सिंह ने बैरकोट, गरड़चुला, कोटगढ़, बंगा, गढ़गयालपुर, कोठी पल्हरचा, गढ़ सकारी, तलोकपुर, फतेपुर, जलोड़ी, जेजा-एह राजे जगत सिंधे लिए। फेर सनोर-बदार मंडी वाले ने लिया।...डुघी लग में राजे जोग चंद के बेढ़े थे—इहा सुलतानपुर जोग चंद का छोटा भाई सुलतानचंद अंदरले सहर में रहता था।'

इस लड़ाई में सुलतान चंद मारा गया। जगत सिंह ने मदन पुर, हाथीपुर, तारा पुर, देवगढ़ आदि क्षेत्र अपने राज्य में मिला लिए। जगत सिंह ने सारी गढ़, शोझा गढ़ पर आक्रमण कर डुघी लग पर धावा बोला। जोग चंद भी युद्ध में पकड़ा गया और मार दिया गया। कहा जाता है कि सुलतानचंद ढालपुर मैदान में बिना सिर भी लड़ता था। जब उसका धड़ चरणपादुका से टकराया तो वह गिर गया। जगत सिंह ने जोगचंद के पोते तथा सभी मियों को कैद कर दिया।

जोग चंद की मां ने दारा शिकोह को संदेश भेजा कि राजा ने इलाका छीनकर सबको कैद कर लिया है। इस पर दारा शिकोह ने सन् 1657 में शाही फरमान भेजा :

'बवक्त पहुंचने पर इस फरमान के जोगचंद का मुल्क वापस कर दो और इसके परिवार को छोड़ दो। वरना राजा राजरूप, जहांगीर कुली बेग के नाम, जो अब शाही सेना के वास्ते (तादीब लखवाया) गया हुआ है, हुकुम फरमाया जाएगा कि तुमको

नेस्तनाबूद कर देवे।'

राजा राजरूप नूरपुर का राजा था और जहांगीर कुली बेग कांगड़ा किले का फौजदार था।

इसके बाद दो फरमान और भी भेजे गए। एक फरमान 1066 हिजरी का है जिसमें लिखा है—तुमने जो दो पत्र भेजे हैं, वह खराब हैं। हमारा इरादा था कि वापस कर दें। आइंदा उमदा हुआ करें। कान को तुम अपने मुतलक समझो कि वह तुम बख्शी हुई है।

दूसरा फरमान 19 मुहर्रम का है जिसका मजमून है—जो टुकड़ा बिलौर तुमने भेजे हैं, अच्छे नहीं हैं। आइंदा को बहुत खूब बड़े उम्दा टुकड़े होने चाहिए।

जगत सिंह ने फरमान की ओर ध्यान नहीं दिया। दारा शिकोह तथा उसके भाइयों के झगड़े का भी उसे फायदा मिला। किंतु बाद में कुल्लू भी अन्य पहाड़ी राज्यों की भांति मुगलों के अधीन हो गया।

जगत सिंह को तेरह फरमान मिले जिनमें से बारह सन् 1650-1658 के बीच के हैं। इनमें राजा को 'कुल्लू का जमींदार' कहा गया है। जगत सिंह ने बाद में दिल्ली दरबार में भेंट भेजनी आरंभ की। अपने पुत्र को दिल्ली दरबार भेजा।

राजा ने सराज में नारायणगढ़, श्रीगढ़, हीमरी के गढ़, जो सुकेत के अधीन थे, अपने राज्य में मिलाए।

सुलतानपुर लग के राजा जोग चंद के भाई सुलतान चंद ने अपने नाम पर बसाया था। ढालपुर मियां ढाल सिंह के नाम पर पड़ा। जगत सिंह ने सन् 1660 में सुलतानपुर राजधानी बनाई और रघुनाथ जी का मंदिर बनवाया। पांडुलिपि में उल्लेख है :

'फेर राजा मकड़ाहर से उठेया होर रघनाथ जी भी सुलतानपुर आई गे। रघनाथ जी का मंदर पाऐआ, होर मेहल पाये होर सेहर बसाऐया। उसके पीछे कभी राजा में सुलतानपुर में रहे, कभी नगर में रहे। ठाउए में रहता था। उहां झिड़ी में महापुरुष साधु रहते थे।'

धर्म-संस्कृति

जगत सिंह वैष्णव हुआ जिससे सारी प्रजा भी वैष्णव हो गई। राजा के वैष्णव होने के पीछे एक कथा लोक में प्रचलित है। इतिहास में कहा गया है :

'इसके काल में यहां वैष्णव मत का चलन हुआ। इससे पूर्व देवी पूजा अर्थात् शाक्त मत का प्रभाव था और राजा लोग नाथ साधुओं की इतनी अधिक मानता करते थे कि जब तक नाथों के दर्शन, पूजा और उन्हें भोजन नहीं करा देते, स्वयं भी भोजन

नहीं करते। पर वैष्णव मत आ जाने के बाद देवी पूजा और नाथों की मान्यता जाती रही। इसका प्रमाण मंदिर भी हैं। पुराने मंदिर प्रायः शिव और देवी के और वैष्णव मंदिर प्रायः इसके उत्तर काल के हैं। जगत सिंह के ही काल से वैष्णव उपासना और वैरागियों का आगमन हुआ।'

राजा द्वारा रघुनाथ जी की मूर्ति लाने के पीछे मणिकर्ण की ओर टिपरी में एक ब्राह्मण दुर्गादास की कथा है जिसके पास एक पत्था मोती होने की बात उसके शरीकों ने राजा से की। राजा ने मोती मांगे। मोती तो थे नहीं इसलिए राजा की मणिकर्ण से वापसी से पहले ही ब्राह्मण ने अपना घर जला डाला। जब आग भड़क उठी तो वह अपना मांस काटकर आग में डालता गया और कहता रहा—'ले राजा मोती! ले राजा मोती!' जब राजा इस दुर्घटना के बाद मकड़हार अपने महलों में आया तो उसे भात की जगह कीड़े और पानी की जगह रक्त दिखने लगा। राजा घबराया और प्रायश्चित्त का उपाय ढूंढ़ने लगा। कोठी नगर के पास झीड़ी गांव में बाबा कृष्णदास पयहारी रहता था। वह वैरागी सिद्ध था। राजा ने उससे प्रायश्चित्त पूछा तो उसने वैष्णव मत ग्रहण करने तथा अयोध्या से रघुनाथ जी की मूर्ति लाने, कुल्लू का राज्य उनके नाम करने के लिए कहा। बाबा कृष्णदास ने सुकेत निवासी अपने चेले दामोदर को इस काम के लिए उपयुक्त बताया। दामोदर अपने गुरु के आदेश से अयोध्या गया और पुजारियों की अनुपस्थिति में मूर्ति उठा लाया। पुजारियों ने पीछा किया और हरिद्वार में दामोदर को पकड़ लिया। दामोदर ने राजा कुल्लू की ओर से पुजारियों को गुजारा दिलवाने की बात कही तब उसे छोड़ा गया।

रघुनाथ जी की मूर्ति कुल्लू आई। राजा रघुनाथ जी का एक कर्मचारी या छड़ीबरदार बना। दामोदर दास को चौरासी खारी जमीन, एक मंदिर, भूंतर कोठी कोटकंढी में दिया। कोठी जगतसुख की कुछ आमदनी ठाकुर जी के नाम धर्मार्थ लगा दी। ठाकुर की ध्यानग जुदा करके एक रुपया एक टका दैनिक नियत करके कुछ उत्सवों के खर्च के लिए भी लगाया। कुल पांच रुपए वार्षिक अयोध्या में जोधवीर पुजारी को पहुंचाया जाने लगा। अयोध्यावासियों को कुल्लू में ताम्रपत्र एक मुआफी दिया गया। इस मुआफी को वे राजा जीत सिंह के समय तक खाते रहे। इनके पास अब भी पट्टा मौजूद है।

बाबा कृष्ण दास पौहारी या पयहारी के आदेश से सारे इलाके में वैष्णव मत फैल गया। राजा ने बाबा को गुरु बनाकर उनकी कंठी धारण कर ली। एक नृसिंह जी की मूर्ति दी कि इनको भोग लगाकर मांस भी खा लिया करें। राजा दो पक्षी का मांस नृसिंह जी को भोग लगाकर खाने लगे। कृष्ण दास का एक वाक्य प्रचलित हुआ :

आठ पीढ़ी मकड़सा नउ पीढ़ी पंडोरी
उसके पीछे जो राज खाये रघनाथ जी साथ रखे डोरी।

इस घटना के बाद दशहरा, बसंतपंचमी, होली, जलविहार, वनविहार आदि उत्सव मनाए जाने लगे।

यह घटना जगत सिंह के अंतिम समय की रही होगी जब उसने आसपास के क्षेत्र जीत लिए थे।

जगत सिंह की मृत्यु हचिसन-वोगल ने सन् 1672 और हरदयाल ने सन् 1662 बताई है।

हरि सिंह (1662-63)

राजा जगत सिंह के तीन पुत्र थे—हरि सिंह, फकीर सिंह, विधि सिंह। हरि सिंह मूर्ख था तो फकीर सिंह चतुर। उसे जगत सिंह ने सन् 1651 में दिल्ली दरबार भेजने का आदेश दिया। संभवतः वह दिल्ली नहीं गया। दारा शिकोह का तिथि 28 शवान हिजरी सन् 1066 का एक परवाना है जिसमें लिखा है—हमने इब्राहिम बेग को लिख दिया है सो रास्ते में कोई तुम्हारे बेटे का मुतरात न होगा। जगत सिंह ने सन् 1658 के अंतिम दिनों में फकीर सिंह को दिल्ली भेजा। वह दारा शिकोह और औरंगजेब की आपसी लड़ाई में कहीं मारा गया।

हरि सिंह से लोग अप्रसन्न थे अतः षड्यंत्र द्वारा कर्मचारियों तथा प्रजाजनों ने उसे मार दिया। पहले उसे पालकी में बिठा पहाड़ से गिराने का निश्चय किया। ऐसा न कर पाने पर रुमसू गांव के लोगों ने उसे मार डाला। हरि सिंह ने हरिपुर गांव बसाया।

हचिसन-वोगल ने हरि सिंह का नाम राजा के रूप में नहीं गिनाया।

विधि सिंह (1663-1672)

विधि सिंह ने अपनी सीमाएं सतलुज तक बढ़ाईं। लाहौल को लद्दाख के कब्जे से छुड़ाकर अपने अधीन किया। बाहरी सिराज के कोठी कोट, कंढी राजा बुशहर से जीते। विधि सिंह की सेना राहन तक पहुंच गई। कोठी भलाण के थ्रास में देवता के भंडार में एक मोहरे में यह अंकित है। यह भी माना जाता है कि राजा चंबा ने अपनी दो लड़कियों का विवाह विधि सिंह से किया और इलाका लाहौल दहेज में दिया।

विधि सिंह की मृत्यु हचिसन-वोगल के अनुसार 1688 या 1672 में हुई।

मान सिंह (1672)

मान सिंह के समय कुल्लू की सीमाएं लाहौल, बड़ा और छोटा भंगाल, मंडी तथा लगभग महासू तक फैलीं।

मान सिंह ने मंडी पर आक्रमण किया और द्रंग की नमक खानों तक कब्जा किया। कहा जाता है रानी राजा के पांव में आ पड़ी तब राजा ने छोड़ दिया किंतु मंडी का इतिहास कहता है कि राजा को हराकर उसें खदेड़ दिया गया। इस अवसर पर मान सिंह द्वारा एक तलवार राजा मंडी को भेंट की गई थी जो अब भी सुरक्षित है।

मान सिंह ने दोबारा लगभग 1700 में मंडी पर आक्रमण किया। भंगाल के राजा पृथी पाल की दो बहनें राजा मंडी और राजा कुल्लू (मान सिंह) को ब्याही हुई थीं। एक बार पृथी पाल राजा मंडी के यहां मेहमान बनकर गया। मंडी वालों ने उसे मरवा दिया और उसका सिर तालाब (घंटाघर) के बीच दबा दिया। राजा मंडी ने भंगाल पर हमला कर दिया। पृथी पाल की मां ने मान सिंह को सहायता के लिए संदेश भेजा। मान सिंह उस समय बुशहर की सीमा पर था। राजा पांच दिन की रसद लेकर चल दिया। तीसरे दिन भंगाल पहुंच वहां अधिकार कर लिया। एवज में मंडी-कुल्लू की सीमा निर्धारित हुई।

भंगालिए राजा की गाथा आज भी मंडी, कांगड़ा में गाई जाती है।

मान सिंह ने पंद्राबीश कोठी बुशहर से छुड़वा ली और डांगा, वुंदका आदि में गढ़ बनाए। मान सिंह लाहौल होता हुआ लद्दाख तक गया। पित्ती पर चढ़ाई कर इसे जीता। मंडी में सिद्ध सेन से युद्ध कर मंडी की सेना गुम्मा, द्रंग तक भगाई। सिद्ध सेन को संधि में भारी रकम देनी पड़ी।

राजा ने लूटपाट के धन को मणिकर्ण मंदिर बनाने में लगा दिया। मंदिर के ऊपर चांदी की चादर चढ़ाई।

मान सिंह ने श्रीकोट, सलाचनी, रत्तू, पांगी में किले बनाए। कालागढ़ में किला बनाया। कोटगढ़, कुमारसेन, बलसन से कर लिया।

बंदोबस्त

राज्य का बंदोबस्त मान सिंह का उल्लेखनीय कार्य है। यह बंदोबस्त सफल सिद्ध हुआ और कई वर्ष चलता रहा। अट्ठारह सेर जौ के माप को कुल्लू में एक 'भार' कहते हैं। भार का सोलहवां हिस्सा एक पथा होता है। राजा मान सिंह ने छह-छह और बारह-बारह भार के ज्योला (या जेउला) नियत किए। ज्योलाबंदी में छह भार का ज्योला डागी और नीच जातों के लिए और बारह भार कनैत आदि ऊंची जात वालों के लिए या जमींदारों के लिए। जहां-जहां रोपा नहरी जमीन थी वहां

चार-चार पथा की एक कांसी और चार कांसी का जेउला नियत किया। यह भी यथा सामर्थ्य जमींदारों को बांटा क्योंकि छह-छह भार के जेउला पर डागी लोग नौकरी पर मिल जाते थे। इन्हें छह भार जमीन पर नौकरी दी जाती थी और कर नहीं लिया जाता था। कनैत लोगों से बारह भार जेउले छह भार नौकरी के बदले मुआफ थे और आधे का कर लिया जाता था।

कर की दर कुल्लू तथा सराज में भिन्न थी। इलाका कुल्लू में प्रति जेउला एक 'रसोकड़ू' अर्थात् बकरा, एक रुपया, तेल पांच सेर, घी पांच सेर कच्चा लिया जाता था और प्रति भार दो सेर घी, दो सेर तेल, एक ढउआ नकद लिया जाता था।

सराज, लाहौल आदि स्थानों में यह दर अलग-अलग थी। जो नौकरी करने के अयोग्य हो उसे 'बठाकपी' अर्थात् घर बैठने के अतिरिक्त रुपए देने पड़ते थे। लाहौल में गूंठ जाति के घोड़े होते थे अतः घोड़े का बछेरा राजा को और बछेरी मालिक को देनी होती थी। यदि कोई मालिक नर रखना चाहे तो बदले में पंद्रह रुपए राज्य को दे। बछेरे कुल्लू मंगा लिए जाते थे और वजीरों के पास पालने को दे दिए जाते। उसे दो जेउला जमीन मिलती। राजा इस घोड़े को जरूरत पड़ने पर ही मांगता।

मान सिंह ने निम्न पदाधिकारी नियत किए :

वजीर, श्रीवजीर, नेगी, दरोगा, घरंटों, बतूंगड़ू, ढलैतु, हाजरी, पंचूहड़ू, जलालू, डाकू, बाठ, पाणिहारी, हार, भंडारी, जलहरू, चराकसी, जनपाल, मापरा, कठपाला, तरीड़ु, गणाकरू, मिसल, बचोली आदि।

बंदोबस्त के समय जमींदारों की उपज का भी ठीक अनुमान लगवाया गया। इसी के अनुसार कर निर्धारण किया। यह बंदोबस्त राजा जीत सिंह (अंतिम शासक) तक जारी रहा।

अंतिम समय

हरदयाल के इतिहास में उल्लेख है :

'फिर जब इसकी (मान सिंह) दोस्ती रानी कुम्हारसेन से लगी तो सिरिकोट चला आया और वहां रहने लगा। क्योंकि यह बात राणा कुम्हारसेन को असह्य लगी तो उसने बुशहर से सलाह करके (जो कुल्लू के अधीन था) मान सिंह के वध का षड्यंत्र रचा। उन्होंने अपनी सेना रढोह और सिरिकोट के मध्य छुपा रखी थी। इन दिनों मान सिंह सुकेत से युद्ध कर रहा था और इसकी सेना किला बहरागकोट घेर रही थी। एक दिन राजा थोड़े से आदमी साथ लेकर आ रहा था कि बशहर वालों ने जंगल से उस पर धावा बोल दिया। यद्यपि उसने वीरता से मुकाबला किया पर मारा गया। जहां उसका शव पड़ा था वहां अब तक भी घास नहीं उगती। यह घटना 13 प्रविष्टे

आषाढ़ सं. 1774 तदनुसार 25 जून 1717 की है।'

मान सिंह का सिर बुशहर वाले ले गए और सराहन दरबार में अपने राजा को समर्पित किया। कुल्लू का एक आदमी लक्ष्मण दास इसे अपनी कुशलता से वहां से ले आया और सिर के साथ नग्गर में मशाड़ा नामक स्थान पर राजा की सोलह रानियां सती हुईं।

राज सिंह (1717)

मान सिंह की तीन रानियों से राज सिंह, पद्म सिंह, इंद्र सिंह तीन पुत्र हुए। इंद्र सिंह की बचपन में ही मृत्यु हो गई। मान सिंह को पद्म सिंह की मां प्रिय थी जो उसे राजा बनने के लिए प्रेरित करती रहती थी किंतु राज सिंह बड़ा था। राज सिंह के वध का षड्यंत्र भी रचा गया किंतु वजीर उदय राम, जिसे राज सिंह के वध का काम सौंपा था, प्रकटतः प्रयत्नशील रहा। चुपके से उसने राज सिंह को खबर कर दी। राज सिंह बीजापुर (कांगड़ा) चला गया। वहां के राजा ने उसका विवाह अपने कुल में करवा दिया। वहीं उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम जय सिंह रखा। जय सिंह के नाम पर जयसिंहपुर बसाया। अतः मान सिंह की मृत्यु तक राज सिंह बीजापुर रहा। मान सिंह की मृत्यु पर राज सिंह कुल्लू आया और प्रजाजनों तथा वजीरों की सहायता से राजगद्दी प्राप्त की।

राज सिंह ने सलाचणी और बागी के किले, जो मान सिंह की मृत्यु पर कुम्हारसेन के राणा ने बुशहर की सहायता से अपने कब्जे में कर लिए थे, छुड़ा लिए। बुशहर पर धावा बोलकर सराहन नगर लूटा और स्मरण के लिए राजा बुशहर के महल का एक पत्थर उठा लाया जो कुछ समय तक कचहरी (वर्तमान स्कूल भवन) में लगा रहा। इस पत्थर पर लिखा था—'राज सिंह द्वारा सराहन से लाया गया।'

राज सिंह ने मंडी से युद्ध कर गढ़ और कोठी राघोपुर जीते।

यह भी कहा जाता है कि राज सिंह के समय गुरु गोबिंद सिंह कुल्लू आए। राजा ने उनकी विशेष आवभगत नहीं की। मंडी के राजा सिद्ध सेन ने गुरु का स्वागत किया।

राजा जय सिंह की मृत्यु 1735 (वोगल के अनुसार 1731) में हुई।

जय सिंह (1735)

जय सिंह के समय कुल्लू राज्य का पतन आरंभ हुआ। जय सिंह ने अपने चाचा पद्म सिंह के पुत्र टेढ़ी सिंह को राज्य से बाहर निकाल दिया क्योंकि पंडितों ने कह दिया था कि टेढ़ी सिंह के भाग्य में राजा होना लिखा है। टेढ़ी सिंह सीबा में अपने मामा के घर रहा।

जय सिंह ने जिया के पास प्रतापपुर बनाना चाहा जिसके लिए राज्य भर के स्त्री-पुरुष बेगार पर लगा दिए गए। गर्भवती महिलाओं को भी कुछ दिन के लिए छोड़ा जाता लड़की होने पर लड़की को वहीं मारकर मां को काम पर लगा दिया जाता। इससे प्रजा दुखी हो गई।

राजा ने दयार के कालू नामक वजीर को किसी कारण निकाल दिया। वह कोटगढ़ के कैथू के गांव कीरटी में रहने लगा। उसने विद्रोह कर दिया। विद्रोह की आग ऐसी भड़की कि जब राजा महल का काम देखने प्रतापपुर आया तो किसी ने उसे जै देवा नहीं की। यह घटना सन् 1738 की है। राजा घबरा गया और पांच सौ सिपाही लेकर लाहौर चला गया।

इस बात का लाभ उठाकर मंडी के राजा शमशेर सेन ने कुल्लू पर हमला किया और चुहार का इलाका छीन लिया।

जय सिंह ने लाहौर पहुंचकर सूबेदार से मदद मांगी। सूबेदार उसे देख बहुत प्रसन्न हुआ। उसे उपहार दिए और मदद का भी वादा किया। कहा जाता है जय सिंह बहुत सुंदर था। सूबेदार भी उसकी सुंदरता से स्तब्ध रह गया। सूबेदार की लड़की राजा पर मोहित हो गई और उससे विवाह करना चाहा। सूबेदार ने राजा को कहा कि यदि तुम मुस्लिम हो जाओ तो अपनी बेटी का विवाह तुम्हारे साथ करूंगा और सहायता भी करूंगा। राजा यह सुन घबरा गया और पचास सिपाहियों के साथ वहां से भागने में सफल हुआ।

जय सिंह ने एक पत्र टेढ़ी सिंह को भेजा जो कांगड़ा में था कि तुम आकर राज संभालो, मैं तीर्थयात्रा को जा रहा हूं। ऐसा ही पत्र वजीरों, रानियों को भी भेजा।

यह भी कहा जाता है कि वह विलासी प्रकृति का था। लाहौर जाती बार भी एक अपनी प्रिया वेश्या को साथ ले गया था। अयोध्या में भी उसका संपर्क एक वेश्या से हो गया।

जय सिंह की मृत्यु प्रथम मार्च, 1744 को अयोध्या में हुई।

टेढ़ी सिंह (1741)

जय सिंह का पत्र पाकर टेढ़ी सिंह सीबा से कुल्लू चला किंतु रास्ते में कटोचों ने पकड़ लिया। जय सिंह उनका भानजा था अतः उन्होंने सोचा टेढ़ी सिंह जय सिंह की अनुपस्थिति में गड़बड़ करेगा। किंतु टेढ़ी सिंह भागने में सफल हुआ और बीड़ भंगाल के रास्ते कुल्लू आ पहुंचा।

टेढ़ी सिंह को प्रजा ने राजा नहीं माना और सब अपनी मनमानी करने लगे। वैसे भी जय सिंह के जाने के बाद 'स्याणे' चार-चार, पांच-पांच गांवों का प्रबंध करने लगे। इन स्याणों में एक मोती सिंह प्रमुख था। यह स्थिति 1743 तक चलती रही।

जब राजा का प्रभाव बढ़ा तो उसने स्याणों को मारने की सोची। राजा ने मोती सिंह को सुलतानपुर बुलाया और मरवा दिया और भी स्याणे मरवाए गए।

कहा जाता है, उन्हीं दिनों वैरागी साधुओं की एक जमात वहां आई जो राजा जगत सिंह के समय से आती थी। राजा ने इन साधुओं की एक सेना बनाई और विरोधियों को मरवा दिया। कांगड़ा के राजा ने भी टेढ़ी सिंह को चौरी-मुठा भेज राजा मान लिया।

इस बीच एक नया विवाद खड़ा हो गया। जय सिंह के साथ जो वेश्या लाहौर गई थी वह लौट आई और मंडी में ठहरी। कहा जाता है मंडी वालों ने एक संन्यासी को राजा जय सिंह बना दिया जिसकी शक्लोसूरत जय सिंह से मिलती थी। इन दोनों को मंडी के राजा ने पंडोह पहुंचा दिया जहां संन्यासी बाहर बैठा रहता और वेश्या भीतर से उसे मिलने वालों के बारे में सूचना देती। वह संन्यासी पड़ाव-पड़ाव आगे बढ़ने लगा। अंत में जब जय सिंह के साथ अयोध्या गए लोग वापस लौटे और बताया कि जय सिंह की मृत्यु हो चुकी है, तब उसे राज्य से बाहर निकाल दिया।

कांगड़ा में इस समय घमंड चंद का शासन था। मुगलों का पतन हो गया था तो अहमदशाह दुर्रानी ने घमंडचंद को जालंधर खंड का सूबेदार नियुक्त किया था।

टेढ़ी सिंह की मृत्यु दस जनवरी 1767 को हुई। राजा के साथ चौंसठ रानियां व वांदियां सती हुईं।

प्रीतम सिंह (1767)

हरदयाल के अनुसार टेढ़ी सिंह के अट्ठारह लड़के थे किंतु राजा की मृत्यु के समय केवल दो ही जीवित थे—प्रीतम सिंह और नरा सिंह। हचिसन-वोगल के अनुसार असली वारिस कोई नहीं था किंतु अविवाहित रीत से तीन लड़के थे—प्रीतम सिंह, चरण सिंह और प्रेम सिंह। प्रीतम सिंह बड़ा था अतः उत्तराधिकारी बना।

इसके समय कांगड़ा के राजा घमंड चंद ने कुल्लू पर हमला बोला। शमशी में लड़ाई हुई। किंतु बरसात के कारण कांगड़ा की सेना की पीछे से रसद आनी बंद हो गई अतः घमंड चंद वापस लौट गया। बुशहर के राजा ने मान सिंह के समय से जीता हुआ किला सिरीकोट वापस ले लिया। प्रीतम सिंह के वजीर अंगद ने गामू का किला जीत लिया। प्रीतम सिंह के वजीर अंगद तथा बुशहर के वजीर रणजीत में सुलह हो गई और सिरिकोट वापस लेकर गामू दे दिया।

इसके बाद प्रीतम सिंह ने मंडी पर हमला कर एक वर्ष तक घेराबंदी रखी और देओगढ़, मस्तपुर, सारी, अमरगढ़ वापस ले लिए। इस पर राजा मंडी ने संसार चंद से सहायता मांगी। घमंड चंद की हार का बदला लेने के लिए संसार चंद ने कुल्लू

पर हमला बोल दिया। संसार चंद बजौरा तक आ गया और बीस हजार रुपए नजराना लेकर वापस लौटा।

चंबा अभिलेखों में एक अभिलेख प्रथम माघ वि. सं. 1834 (1778) का है जिसमें मंडी के राजा शमशेर सेन उसके पुत्र मियां सूरम सेन, कांगड़ा के राजा संसार चंद और चंबा के राजा राज सिंह के बीच समझौते का उल्लेख है। समझौते में मकड़सा (कुल्लू) पर आक्रमण कर भंगाल राज्य को अपनी-अपनी सीमाओं का निकटवर्ती इलाका छीनने की बात है। अतः उस समय भंगाल कुल्लू में था जिसे तीनों राज्य छीनना चाहते थे। यह भी उल्लेख है कि चंबा के राजा राज सिंह ने कुल्लू के वजीर भाग चंद को बंदी बना लिया और प्रीतम ने 1778 में एक पत्र में भाग सिंह को छुड़ाने के लिए पंद्रह हजार रुपए देने स्वीकार किए।

एक अन्य अभिलेख के अनुसार (1786) चंबा, मंडी तथा कहलूर राज्यों ने मकड़सा को जीतने और आपस में बराबर बांटने की योजना बनाई। इस समझौते का संभवतः कार्यान्वयन नहीं हुआ क्योंकि उस समय राजा संसार चंद शक्तिशाली हो गया था। संसार चंद के पास इस समय शक्तिशाली रोहिला, अफगान और राजपूत फौज थी।

सन् 1792 में संसार चंद ने मंडी से चौहार जीतकर कुल्लू को दिया किंतु फिर वापस मंडी को दे दिया। सन् 1801 में प्रीतम सिंह ने चंबा के राजा को कांगड़ा के विरुद्ध इकट्ठा आक्रमण करने के लिए पत्र लिखा किंतु यह संभव नहीं हो पाया।

प्रीतम सिंह को भवन निर्माण का बड़ा शौक था। सुलतानुपर में नए महल बनाए गए। कहा जाता है कि एक बंगले को राजा ने तीन बार गिराकर बनवाया, फिर भी उसे पसंद नहीं आया।

सन् 1781 में जरी के पास एक सिक्के की खान मिली। राजा ने इसमें से कुछ जागीर ठाकुर जी को दी। राजा ने अपनी रियासत में टकसाल खोलकर 'औरंगजेब आलमगीर' नाम से सिक्के चलाए। इस सिक्के का भार दिल्ली के सिक्के से कुछ कम रखा। यह सिक्का प्रीतम सिंह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। टकसाल का कर्ताधर्ता ईसरू सुनार था। कहा जाता है जो यह सिक्का लेता था, उसे वापस नहीं करता था। अतः धीरे-धीरे सिक्के समाप्त होने लगे। इस टकसाल में मान सिंह द्वारा मणिकर्ण मंदिर पर चढ़ाई चांदी की चद्दर, टेढ़ी सिंह की माता के भंडार का सारा चांदी-सोना खर्च हो गया किंतु कुछ ही समय में ये सिक्के लुप्त हो गए। कुछ समय पहले तक चैहणी के गहरू सुपुत्र धर्म सिंह के पास ये सिक्के थे।

प्रीतम सिंह ने लंबे समय 39 वर्ष तक राज किया। राजा की मृत्यु प्रथम दिसंबर 1806 में हुई। राजा के साथ 35 रानियां तथा वांदियां सती हुईं।

विक्रम सिंह (1806)

विक्रम सिंह का जन्म सन् 1780 में हुआ था।

विक्रम सिंह के समय मंडी ने हमला किया और चुहार के देवगढ़, मस्तपुर के किले जीत लिए। अमरगढ़ का किला भी घेर लिया जहां कुल्लू की सेनाएं जमा थीं। बैशाख में जोत खुल गए और चरण सिंह के नेतृत्व में कुल्लू वालों ने हमला किया। इस लड़ाई में मंडी के बड़े सरदार मियां राम सिंह तथा बालक सिंह मारे गए। अतः अमरगढ़ मंडी के हाथ नहीं आया। कुल्लू द्वारा बगड़ा का क्षेत्र जीता गया और तीन वर्ष तक कुल्लू के अधीन रहा।

विक्रम के समय सन् 1803 में गोरखे नेपाल से कुमाऊं गढ़वाल होते हुए सतलुज तक आ गए। कुम्हारसेन को भी गोरखों ने अपने अधीन कर लिया। विक्रम सिंह ने वजीर मनीराम और झगडू की सरदारी में पांच हजार फौज भेजकर अपना क्षेत्र छुड़वा लिया। गोरखा सरदार अमर सिंह था। यह भी उल्लेख है कि गोरखों द्वारा सांगरी के कुछ भाग के लिए कर वसूल किया गया। सन् 1806 में संसार चंद के खिलाफ बिलासपुर द्वारा गोरखों को आक्रमण के लिए आमंत्रण देने के फलस्वरूप गोरखों का आगमन हुआ। कुल्लू भी संसार चंद को कर देता था।

इन्हीं दिनों बाद में अंग्रेजी फौज जनरल एक्टर लोनी की कमान में राजगढ़ में आई। कुम्हारसेन द्वारा अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार की गई। कांगल का किला और शांगरी की ठकुराई अंग्रेजों को छोड़नी पड़ी। गोरखों को भी इस क्षेत्र से भगा दिया गया। अंग्रेज सरकार ने शांगरी की ठकुराई के लिए पट्टा दिया और यह क्षेत्र मियां हीरा सिंह तथा झगड़ सिंह को सौंपा गया। झगड़ सिंह विक्रम सिंह का भाई और प्रीतम सिंह का पुत्र था।

19 दिसंबर, 1810 को कंवर जीत सिंह का जन्म हुआ। इस बीच पंजाब में महाराजा रणजीत (1780-1830) का उदय हो चुका था। सन् 1809 में संसार चंद के आमंत्रण पर रणजीत सिंह ने गोरखों को भगा दिया किंतु रणजीत सिंह का वहां अधिकार हो गया और पहाड़ी राजाओं से कर उगाहना आरंभ कर दिया।

सन् 1812 में महाराजा रणजीत सिंह ने दलीप सिंह को नजराना लेने कुल्लू भेजा। वह चालीस हजार रुपए ले गया। 1814 में फिर सिक्खों का अफसर भंगाल तक नजराना लेने आया, तब कुल्लू वालों ने नजराना देने से इनकार कर दिया। तब दीवान मोहकचंद सीबा, नत्थू वजीर चंबा, नौरंग वजीर कांगड़ा बजौरा पहुंचे। राजा ने अपने कुछ आदमी बजौरा भेजे। पचास हजार देना स्वीकार हुआ। किंतु कोठी बड़ागढ़ के ज़मींदारों और प्रजा ने नजराना देने से इनकार कर दिया। फलस्वरूप सिक्खों का आक्रमण हुआ। सुलतानपुर का महल, खजाना, नगर लूटा गया। राजा

भागकर नग्गर पहुंच गया। वजीर सोभा राम को सिख सेना को लौटाने के लिए कहा। तब सोभा राम, कर्मदास, संगतराम ने दो लाख रुपए फौज का खर्च दिया। एक लाख हुकम चंद को दिया गया तब सिख सेना वापस लौटी। इस चढ़ाई में लगभग बीस लाख का नुकसान हुआ।

बीमारी के बाद अक्तूबर, 1816 में विक्रम सिंह की मृत्यु हो गई।

जीत सिंह (1816)

जीत सिंह का जन्म सन् 1810 में हुआ।

जीत सिंह जब छह वर्ष का था तो उसे रघुनाथ मंदिर में अयोध्यावासी रामलाल द्वारा राजतिलक किया गया। विक्रम सिंह का भाई झगड़ सिंह (जन्म 1785) तो शांगरी का शासक था। तीसरे भाई कृष्ण या किशन सिंह (जन्म 1790) को वजीरों तथा प्रजा ने शासक नहीं माना। मंडी के शासक ईश्वरी सेन ने स्वयं आकर जीत सिंह के राजतिलक के समय चौरी-मुठा दिया। पहले ये काम कांगड़ा वाले करते थे अतः कांगड़ा से आए नौरंग वजीर तथा पुरोहित रास्ते से वापस लौट गए।

जीत सिंह क्योंकि नाबालिग था अतः वजीर सोभा राम ही शासक था। कहा जाता है कि उसने किशन सिंह की संपत्ति लुटवा दी। किशन सिंह कांगड़ा चला गया।

कांगड़ा की सहायता से किशन सिंह ने कुल्लू पर हमला किया। जीत सिंह भागकर मंडी चला गया। यह सितंबर, 1820 की बात है जब जीत सिंह दस वर्ष का था। राजा मंडी तथा कुल्लू ने मिलकर किशन सिंह को हराकर बंदी बना लिया। बदले में मंडी के राजा ईश्वरी सेन (1788-1826) ने चौहार तथा दो किले लिए।

किशन सिंह पहले बूंगा किला (पलाच) में कैद रहा और वहीं उसकी मृत्यु हो गई। किशन सिंह की पत्नी गर्भवती थी जिसे सन् 1821 में पुत्र हुआ जिसका नाम प्रताप सिंह था। जब महाराज रणजीत का ज्वालामुखी आना हुआ तो प्रताप सिंह को ज्वालामुखी ले गए। रणजीत सिंह उसे अपने साथ लाहौर ले गया। बाद में उसे गांव पंडल जागीर में दिया गया।

सन् 1816-17 के लगभग काबुल का अमीर शाहशुजाह कुल्लू से होकर ब्रिटिश सीमा में गया। शाहशुजाह लाहौर में रणजीत सिंह ने बंदी बनाकर रखा था। वहां से भागकर वह दो वर्ष किश्तवाड़ में रहा। किश्तवाड़ में जस्कर, बारालाचा तथा रोहतांग दर्रे से होता हुआ कुल्लू पहुंचा। राजा ने रायसन में शाहशुजाह से भेंट की और तीन सौ अशरफियां भेंट कीं। जब तक वह कुल्लू की सीमा में रहा, हर पड़ाव पर उसका प्रबंध किया जाता रहा। वह पलाच होकर जलोड़ी के रास्ते शिमला चला

गया। शाहशुजाह के ब्रिटिश सीमा में जाने की सूचना पर रणजीत सिंह ने कुल्लू पर 80,000 रुपए जुर्माना कर दिया जो राजा को देना पड़ा।

मूरक्राफ्ट पहला यूरोपियन था जो कुल्लू होकर लद्दाख गया। मंडी पहुंचने पर सिक्खों ने उसे वहां से गुजरने की अनुमति नहीं दी अतः वह टिहरा और नादौन लौट गया और राजा संसार चंद का अतिथि बना। वहां से बैजनाथ, गुम्मा, बजौरा होते हुए कुल्लू पहुंचा। मूरक्राफ्ट ने लिखा है कि जब वह कुल्लू से गुजरा तो सिखों के लिए मामला वसूल हो रहा था जिसे 'फांट' कहते थे। इस फांट में प्रत्येक जमींदार से लगान के अतिरिक्त उगाही करके पांच हजार रुपए प्रति वर्ष लाहौर ले जाना पड़ता था। जिसके पास हजार भार जमीन थी उसे छह रुपए फांट भरनी पड़ती थी, जिसके पास सौ भार थी वह भी छह रुपए देता था।

सन् 1840 में लोगों ने फांट देने से इनकार कर दिया और कहा कि सारी फांट तुलसू नेगी भरे। तुलसू नेगी राजा का मित्र और हितैषी था। राजा को विवश किया गया कि वह तुलसू को ऐसा आदेश दे। राजा नहीं माना। हरदयाल के इतिहास में उल्लेख है कि तुलसू भागकर सतलुज के पास ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र में चला गया। इस गड़बड़ी में फांट नहीं दी जा सकी अतः सिक्खों ने बुशहर के रास्ते कुल्लू पर हमला कर दिया।

हचिसन-वोगल का कथन है कि दयारी वजीर कपूरू की तुलसू नेगी से शत्रुता थी जो राजा का चहेता था। कपूरू को मारने की योजना बनाई गई। कपूरू को इस बात का पता चल गया और उसने ढालपुर से अपनी जगह अपने एक सेवक को पालकी में भेजा। स्वागत के लिए चलाई बंदूकों से वह सेवक मारा गया और कपूरू सराज भाग गया जहां राजा के खिलाफ 'दुह्म' (बगावत या विद्रोह) कर दिया और सिक्खों को आमंत्रित किया।

सन् 1840 में ही वंचूरा के नेतृत्व में सिख सेना ने मंडी को हराकर राजा बलवीर सेन को बंदी बनाकर गोबिंदगढ़ किला अमृतसर में कैद कर लिया। कपूरू के आमंत्रण पर सिख सेना सिंधनवाला के नेतृत्व में बड़ी आसानी से सुलतानपुर पहुंच गई। पहले की तरह सुलतानपुर में लूटपाट न हो इसलिए राजा ने शमशी जाकर भेंट और नजर की। सिख सेना ने राजा को बंदी बना दिया और शर्त रखी कि यदि वह सारा कुल्लू छोड़ दे तो उसे वजीरी परोल की जागीर दे दी जाएगी। विवश होकर राजा ने स्वीकार कर लिया। सरदार गुरमुख सिंह ने सेना सहित कई किले कब्जे में कर लिए।

अब सिख सेना सराज पर हमला करने गई। उन्होंने राजा को भी साथ लिया ताकि लड़ाई न हो और लोग खुद ही हथियार डाल दें। अब कपूरू वजीर को अपने

किए पर पछतावा हुआ। कहा जाता है कि उसने तुंग के किले के नीचे अपने लोगों को छिपा दिया। सिख सेना जैसे ही तंग रास्ते से गुजरी, उन्होंने राजा को छुड़ा लिया और पहाड़ पर ले गए। सिख सेना पर पत्थर और गोलियां बरसाकर बहुतों को मार दिया। बचे खुचे लोग तुंग किले में वापस लौट गए जहां खाद्य सामग्री समाप्त होने पर उन्हें बाहर निकलना पड़ा। उन पर पहाड़ों से आक्रमण किया गया। बहुत से मर गए, कुछेक ही अपनी जान बचा पाए। राजा को शांगरी के क्षेत्र में ले जाया गया जो अब ब्रिटिश संरक्षण में था। यह 1840 की घटना रही होगी। राजा जीत सिंह की यहीं सितंबर 1848 में मृत्यु हो गई।

मुख्य सिख सेना सुलतानपुर थी जो लूटपाट करती थी। राजा की दो रानियों को छुड़ाने का प्रयत्न किया गया किंतु कामयाबी नहीं मिली। कुल्लू में विद्रोह भी हुआ। किलों में बहुत सी सिख सेना मारी गई। भेखली धार के ऊपर, कोठी काइस, डोभी में भी सिखों को हराया गया। उल्लेख है कि रानियों को भोज देने के बहाने किसी तरह आम औरतों के वेश में निकालकर शांगरी ले जाया गया किंतु तब तक राजा की मृत्यु हो चुकी थी। अंग्रेजों द्वारा यहां सती प्रथा बंद कर दी थी अतः सती होने की आज्ञा नहीं मिली। वे कुछ समय बाद वापस कुल्लू आ गईं जहां सिखों ने जीवन निर्वाह के लिए कुछ जमीन दे दी। रानी क्योंथली सिख शासन के दौरान ही मर गई। कटोची रानी की मृत्यु अंग्रेजी शासन के समय सन् 1866 में हुई।

ठाकुर सिंह (1842-1852)

जीत सिंह के पलायन तथा मृत्यु से कुल्लू में अव्यवस्था फैल गई। विहंगमणि पाल के समय स्थापित तथा बहादुर सिंह के समय व्यवस्थित यह राज्य बिखर गया। जीत सिंह अंतिम स्वतंत्र शासक साबित हुआ।

सराज में लूटपाट के बाद सिखों ने यह क्षेत्र मंडी को दे दिया। शेष सारा इलाका नादौन को सौंपा। लाहौर में ध्यान सिंह के बाद लैहणा सिंह मजीठा की कमान हुई। लैहणा सिंह राजा मंडी को साथ लेकर जब बजौरा पहुंचा तो राजा जीत सिंह के मरने की खबर सुनी। लैहणा सिंह के साथ किशन सिंह का पुत्र प्रताप सिंह भी आया जो बचपन में लाहौर चला गया था। प्रताप सिंह ने राजा बनना चाहा किंतु लोग नहीं माने। अतः लैहणा सिंह ने ठाकुर सिंह को राजा बनाने के लिए कुल्लू बुलाया जो उस समय केपू में था। वजीर कपूरू ने उसे नहीं आने दिया किंतु वह भागकर कुल्लू आ पहुंचा।

लैहणा सिंह, ठाकुर सिंह, बुद्धिगिर गोसाईं और कुछ वजीर, नेगियों को लाहौर के महाराजा शेर सिंह के पास ले गया और वहां ठाकुर सिंह को राजा कुल्लू घोषित

किया। ठाकुर सिंह ने अपने वजीरों तथा नेगियों के परामर्श से रूपी वजीरी मांगी। अतः राजा रूपी की सनद उसे दी गई और हुक्म हुआ कि कुल्लू के सारे लोग प्रतिघर एक रुपया राजा को नजराना दिया करें। ठाकुर सिंह सर्दियों में लाहौर जाता और गर्मियों में कुल्लू आता।

सन् 1846 में जब सिख-अंग्रेजों का युद्ध हुआ तो ठाकुर सिंह सिखों की ओर से लड़ा। इस समय किशन सिंह का लड़का प्रताप सिंह भी वहां मौजूद था, वह लड़ाई में मारा गया या जीवित रहा, यह ज्ञात नहीं। इस युद्ध में सिंध तथा सतलुज के मध्य का पहाड़ी इलाका अंग्रेजों के हाथ आ गया। सतलुज तथा रावी के बीच का क्षेत्र तथा लाहौल स्पीति अंग्रेजों ने अपने पास रखा, जम्मू-कश्मीर का भाग राजा गुलाब सिंह को बेच दिया। अंग्रेजों ने भी ठाकुर सिंह को राजा मान वजीरी रूपी के सारे अधिकार दे दिए। सन् 1852 में ठाकुर सिंह की मृत्यु हो गई।

शांगरी में शिमला हिल स्टेट्स के सुपरिंटेंडेंट मि. एर्स्किन ने मियां झगड़ सिंह के नाबालिग पुत्र रणवीर सिंह को गद्दी सौंपी।

ज्ञान सिंह (1852-1870)

ठाकुर सिंह की चार रानियां थीं जिनमें से केवल एक रानी की संतान थी। पिता की मृत्यु के समय ज्ञान सिंह ग्यारह वर्ष का था। ज्ञान सिंह का जन्म 9 फरवरी, 1841 को हुआ था। अंग्रेज सरकार ने राजा को 'राय' की उपाधि देकर सारी राजनीतिक शक्तियां छीन लीं।

प्रताप सिंह का आगमन

किशन सिंह का पुत्र प्रताप सिंह (जन्म 1821-22), जो सिख-अंग्रेज युद्ध के बाद गायब हो गया था, सन् 1857 की क्रांति से ठीक कुछ समय पहले कुल्लू में प्रकट हो गया। किशन सिंह ने 1820 में राजगद्दी के लिए कांगड़ा की सहायता से कुल्लू पर हमला किया था और नाबालिग राजा जीत सिंह को मंडी भागना पड़ा था। बाद में राजा मंडी की सहायता से किशन सिंह को हराकर बंदी बना लिया जहां उसकी मृत्यु हो गई। किशन सिंह की गर्भवती पत्नी से पति की मृत्यु के बाद प्रताप सिंह का जन्म हुआ। रणजीत सिंह के ज्वालामुखी आगमन पर प्रताप सिंह के साथ लाहौर ले जाया गया था। सिख-अंग्रेजी युद्ध में उसे मरा हुआ समझ लिया गया था।

सन् 1856 में एक फकीर कोठी काईस में आया जिसने प्रताप सिंह की एक औरत की बांदी के घर जाकर पुकारा। उस फकीर ने अपने को प्रताप सिंह बताया। दूसरे दिन गांव बदाह कोठी महाराजा में प्रताप सिंह के औरत को खबर की गई

जिसने अपने भाई वीर सिंह को जांच के लिए भेजा, वीर सिंह ने उसकी शक्लोसूरत प्रताप सिंह की तरह बताई तो बहन ने उसे वहां लाने के लिए कहा। बदाह में औरत ने पुष्टि कर दी कि यह प्रताप सिंह ही है। उसका फकीरी वेश बदला गया, सिर मुंड़वाया गया।

सन् 1857 की क्रांति, जिसे इतिहास में 'गदर' कहा गया है, के समय प्रताप सिंह ने वजीर सूरत के साथ मिलकर राय ज्ञान सिंह को हराकर राजा बनने की योजना बनाई क्योंकि नीचे अंग्रेजों का संहार हो रहा था। सूरत राम को पता था कि सुलतानपुर के महलों में सिखों के समय का बहुत सा असला पड़ा हुआ है। उसने प्रताप सिंह को यह बात बताई। प्रताप सिंह ने अंग्रेज कप्तान से शिकायत की और सुलतानपुर महलों से असला व्यास में फिंकवा दिया। प्रताप सिंह इससे अंग्रेज सरकार का शुभचिंतक बन गया।

हरदयाल के इतिहास में लिखा है :

'उन दिनों शहर में हैजा था। एक दिन एक औरत इससे मर गई। सांझ समय लोग इसे जलाने को ले गए। रात को वापसी पर लकड़ी की मशालें जलाकर लौट रहे थे। किसी ने कप्तान हेय को खबर दी कि आपने जो ज्ञान सिंह की औरतों को कैद कर रखा है उनको छुड़ाने के लिए सराजी लोग आ रहे हैं। साहब ने तत्काल तहसीलदार को पता दिया और हमले की तैयारी कर दी। सूबेदार ने कहा, इनको मारना तो मुश्किल नहीं, जब चाहो मारे जा सकते हैं। इतने में साहब हथियार लेकर आ गया और सब मुकाबले को गए। तब साहब ने एक आदमी को पता करने भेजा। तब पता चला कि ये लोग मुर्दा जलाकर घरों को लौट रहे हैं।

'इसके आठ रोज बाद प्रताप सिंह ने जमींदारान सराज को लिखा कि मुलक मैदान में अंग्रेज मारे गए और हिंदुओं का राज हो गया। तो अगर तुम सब जमा होकर इस तरफ आ जाओ तो ज्ञान सिंह और हे साहब, कर्मचारियों को मारकर कुल्लू राज ले लें। वह चिट्ठी तहसीलदार पलाच ने पकड़ ली और फौरन हे साहब को खबर कर दी कि कुछ आदमी रख लो। जब हमला होगा तो देखा जाएगा और प्रताप सिंह को कंपनी भेजकर पकड़ लिया और जेलखाने में कैद किया और ज्ञान सिंह के नौकरों को छोड़ दिया और प्रताप सिंह को बाद तहकीकात अमल जिसमें वह सरकार दौलत गद्दार के मुकाबला में साबित हुआ। फांसी दी गई और इसके साथियों को मुआफिक हजूर के कैद किया गया।'

प्रताप सिंह तथा उसके साले वीर सिंह को 3 अगस्त, 1857 को धर्मशाला में फांसी हुई। प्रताप सिंह की जागीर जब्त कर ली गई। उसकी पत्नी रानपतू और पुत्र को देशनिकाला दिया गया।

दलीप सिंह सिंह (1870-1892)

पिता की मृत्यु के बाद राय दलीप सिंह हकदार हुआ। दलीप सिंह बहुत दिनों तक कोर्ट ऑफ वार्ड्स के अधीन रहा। इस समय कैप्टन हारकोट कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर बने। रियासत की आय बढ़ी। बंदोबस्त हुआ और कर्ज उतारा गया। राय दलीप सिंह को अच्छी तालीम दी गई। बालिग होने पर सन् 1883 में राज्य सौंपा गया। नौ वर्ष बाद दलीप सिंह की शीतला से मृत्यु हो गई।

हरदयाल ने इतिहास में लिखा है (अंत में) :

'...घोड़सवारी के बड़े शौकीन हैं और शिकार का बहुत शौक है। इनकी शादी नादौन में हुई है जो बड़ी धूमधाम के साथ हुई थी। ...मेरे पहले पंडित नथू राम साहब सुपरडंट थे और सुप्रबंध करने में कोई कसर नहीं रखी। वे सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं। जब उनकी बदली उन्नत पद पर रियासत सुकेत के सुपरडंट के रूप में हुई तो अपना चार्ज मुंशी गोबिंद राम को देकर इस रियासत को अच्छी स्थिति में हर्षपूर्वक छोड़ा। फकत खात्मा।'

मेघ सिंह (1892-1920)

दलीप सिंह की मृत्यु के बाद मेघ सिंह गद्दी पर बैठा। अंग्रेजों ने मेघ सिंह को जागीर सौंपे रखी। मेघ सिंह चीफस कॉलेज में शायद मैट्रिक तक पढ़ा। इसका विवाह नालागढ़ की दो सगी बहनों से हुआ। बारात को लौटते हुए हैजा हुआ जिसमें बहुत लोग मारे गए। बड़ी रानी के पहले लड़की हुई जो बहरी थी। सन् 1960 में टिका भगवंत सिंह का जन्म हुआ। दूसरी रानी से धनवंत सिंह, दुर्गा सिंह तथा एक लड़की हुई।

सन् 1905 में आए भूकंप से सुलतानपुर के महल गिरे। उस समय सामने की गुंबदाकार ड्योढ़ी नादौन के हरदयाल मिस्त्री ने बनाई। मेघ सिंह को अंग्रेजों ने राय का खिताब दिया। सन् 1920 में मेघ सिंह की मृत्यु हो गई।

भगवंत सिंह (1921-1960)

भगवंत सिंह चीफस कॉलेज में थोड़ा ही पढ़ा। मंडी की राजमाता ने अपनी दो भतीजियां सन् 1925 के आसपास ब्याहीं जिनमें से एक की मृत्यु हो गई। दूसरी से महेंद्र सिंह और कुबेर सिंह दो पुत्र हुए। सन् 1939 में रघुवीर सिंह को हटाकर पंजाब कौंसिल मेंबर बना और 1940 तक रहा।

शांगरी शाखा

जब कुल्लू का राज्य सिख शासन के अधीन आ गया और ठाकुर सिंह को राजा कुल्लू घोषित किया गया, शांगरी का इलाका अंग्रेजों के अधीन आ गया। शिमला

हिल स्टेट्स के सुपरिंटेंडेंट मि. एर्स्किन ने मियां झगड़ सिंह के नाबालिग पुत्र रणवीर सिंह को उत्तराधिकारी बनाया।

सन् 1840-50 के बीच झगड़ सिंह का एक और पुत्र हुआ—हीरा सिंह। हीरा सिंह के बाद संसार सिंह, हरि सिंह दो और पुत्र भी हुए। जब हीरा सिंह बड़ा हुआ तो उसे कटोची रानी ने कुल्लू के बेढ़े में बुला, जनेऊ आदि संस्कार किया। ढालपुर के पुरोहित जीतराम को गुरु बनाया और उत्तराधिकारी के रूप में रखा। हीरा सिंह जनेऊ के समय भिक्षा मांगता हुआ निकल गया और 1870 के लगभग सारे देश में तीर्थयात्रा करके लौटा। तब तक रानी कटोची मर चुकी थी और कुल्लू की गद्दी पर ज्ञान सिंह था। हीरा सिंह जब रघुनाथ मंदिर में गया तो और पुरोहित ने धक्के मार बाहर निकाल दिया, इस पर हीरा सिंह ने किशना पुरोहित पर, जिसने धक्का दिया था, अंग्रेजी अदालत में मानहानि का दावा कर दिया। किशना पुरोहित को कैद हुई जिससे वह कठिनाई से छूटा।

मेघ सिंह के समय भी हीरा सिंह ने मुकदमा किया कि यह दलीप सिंह का लड़का नहीं है। दलीप सिंह की रानी के बयान पर फैसला मेघ सिंह के हक में हुआ।

प्रताप सिंह की बहन देई साहिबा उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक बदाह में अपनी पैतृक संपत्ति तक काबिज रही। उसकी मृत्यु पर यह संपत्ति हीरा सिंह को मिली। हीरा सिंह को बड़ा गढ़ दूर पड़ता था अतः अंग्रेजों से इसके बदले सराज की श्रीगढ़ कोठी ले ली।

26 अगस्त, 1900 (लगभग) हीरा सिंह के रानी गुलेरी से रघुवीर सिंह का जन्म हुआ। इसके बाद दो पुत्र श्याम सिंह और राम सिंह भी हुए। रघुवीर सिंह के चूड़ा कर्म (1912-18) पर कुल्लू से श्रीनृसिंह पूरे ठाट-बाट के साथ राय मेघ सिंह सहित गए। रघुवीर सिंह शिमला में रियासत शांगरी के वकीलखाने में रहकर पढ़ता रहा। हीरा सिंह ने रघुवीर सिंह को लाहौर से वापस बुलाकर कानूनगोई, तहसीलदारी, मजिस्ट्रेटी और जजी का प्रशिक्षण दिया और 1926 में शांगरी में वजीर के अधीन फौजदारी व दीवानी अधिकार दिए। मार्च 1926 में हीरा सिंह की मृत्यु हुई तो डी. सी. शिमला की देखरेख में प्रबंध का दायित्व रघुवीर सिंह को सौंपा गया।

महेन्द्र सिंह के टिक्का महेश्वर सिंह तथा कंवर कर्ण सिंह हैं। महेश्वर सिंह (जन्म : 2 फरवरी, 1949) 1977 में जनता पार्टी, 1982 में भाजपा से विधायक; 1992-98 राज्यसभा सदस्य; 9वीं, 12वीं तथा 13वीं लोकसभा के सदस्य। 1977-80 में मुख्य संसदीय सचिव भी रहे। 2012 में नई पार्टी हिलोपा के मुखिया तथा विधायक निर्वाचित। छोटे भाई कर्ण सिंह 1990 तथा 1998 में भाजपा से विधायक तथा राज्य मंत्री प्राथमिक शिक्षा रहे। वर्तमान में 2012 से कांग्रेस पार्टी से विधायक।

पं. रुद्रमणि रामकृष्ण उपाध्याय मणिकर्ण द्वारा प्रकाशित :

मणिकर्ण माहात्म्य

प्रथम अध्याय

संस्कृत पाठ का उदाहरण :

नारायणं नमस्कृत्य, तत्रैव गंगा यमुना।

ब्रह्मोवाचः-

अथातः संप्रवक्ष्यामि कुलांतं पीठ मुत्तमम्।
तत्पीठे चे स्मास्मृत्य मुनयो सिद्धिमागतः।।1।।

ब्रह्मा जी बोले! अब मैं कुलांत पीठ, जो सबसे उत्तम है, उसको कहूंगा। जिस पीठ का स्मरण मात्र करने से ही मुनि सिद्धि को प्राप्त हो गए।

यत्र पीठे महादेव भवान्या सह नारद।
अर्जुनस्य प्रसादाय दधामि शवरं वपुः।।2।।

जिस पीठ में हे नारद! भगवान् शंकर ने पार्वती सहित अर्जुन की प्रसन्नता के लिए भील का रूप धारण किया।

विपाशा च नदी यत्र नदी यत्र च पार्वती।
उपयोः संगमं यत्र स्वर्गस्तत्र न दुर्लभः।।3।।

जहां पर व्यास नदी है और जहां पार्वती नदी भी प्रवाहित होती है, जहां इन दोनों का संगम होता है, वहां से स्वर्ग प्राप्त होना भी दुर्लभ नहीं।

यत्र व्यासेन तपस्तपृं वशिष्ठेन च धीमतः।
शवरी पार्वती देवी तत्रैव च भवत् पुरः।।4।।

हिंदी अनुवाद

जहां पर व्यास तथा बुद्धिमान ऋषि वशिष्ठ ने तपस्या की और जहां पर बहुत प्राचीन काल में पार्वती भीलनी के रूप में प्रगट हुई।

सब योगों से सजा हुआ और सब सिद्धियों को प्रदान करने वाला यह स्थान है। उसका आश्रय लेकर ही रूपवान शंकर-पार्वती वहां निवास करते हैं।

जहां हजारों प्रेत और कुष्मांडा और योगिनियां वहां रहती हैं। यह पीठ महान्

सत्य है और देवताओं तथा दैत्यों को दुर्लभ है।

हे पुत्र! यह कुलांत नाम से प्रसिद्ध और मोक्ष को देने वाला है। जैसे मैंने पीठों का राजा पीठ कुलांत में कहा है।

नारदोवाच–

हे पितामह! आपने जो कुलांत पीठ कहा है वह कहां है! उसका क्या प्रमाण है?

उस तीर्थ में किस देवता या देवी का निवास है, उसका पुण्य क्या है? वह पवित्र स्थान कौन है और वहां कौन सी पवित्र नदी बहती है? किस कारण से भगवान् शंकर ने भील का रूप धारण किया? अर्जुन को प्रसन्न करने के लिए महादेव ने क्या किया? हे पितामह! किसलिए पार्वती ने वहां शबरी का रूप धारण किया? मैं यह सब विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूं।

ब्रह्मा जी बोले–हे पुत्र! सावधान होकर सुन! वह उत्तम कुलांत पीठ जालंधर पीठ के ईशान्य में और हेमकूट के दक्षिण में स्थित है।

यह पीठ दस योजन लंबा और एक योजन चौड़ा है। उसके उत्तर में व्यास का पुण्य तीर्थ है, दक्षिण में बंधन पर्वत है।

व्यास नदी पश्चिम भाग में बहती है और पूर्व में स्वयं पशुपति महादेव हैं। पास में इंद्रकील पर्वत पर शबरी रूप में पार्वती अधिष्ठात्री शक्ति का निवास है।

भीलनी रूप में पार्वती सब सिद्धियों को प्रदान करने वाली है। वहां कथा सुनकर और जप करके मनुष्य देवलोक को प्राप्त हो सकता है।

द्वितीय अध्याय

ब्रह्मा जी बोले–

हे पुत्र, मैं बताता हूं–शंकर ने पार्वती के साथ विहार करने के लिए इस पर्वतीय सुंदर तट के स्थान को अपनाया।

मणिकर्ण नाम से सुप्रसिद्ध तीर्थ है, जहां गरम और ठंडे जल में वहां शंकर के साथ उस पार्वती ने जल-क्रीड़ा की।

वह गरम और ठंडे जल का स्थान नाना प्रकार के फूलों से सुशोभित है, जहां नित्य भ्रमर नाना रूपों से सजे हुए पर छाया करते रहते हैं।

वहां पर महादेव ने पार्वती के साथ ग्यारह हजार वर्ष तक क्रीड़ा की, परंतु फिर भी तृप्ति को प्राप्त न हुए।

क्रीड़ासक्त भवानी की वहां भूमि पर मणि गिर गई। इसलिए यह क्षेत्र बहुत

ही पुण्यकारक तथा पापनाशक है।

वहां भगवान शंकर ने पार्वती के साथ विहार करने के लिए और लोगों को अभय करने के लिए किरात (भील) रूप धारण किया था। अर्जुन की परीक्षा के लिए ही वहां शंकर ने भील रूप में युद्ध किया था और उसे अपने शस्त्रों को देकर निर्भय कर दिया था।

इस काम के लिए ही शंकर ने भील रूप धारण किया था और वहां ही अपराजिता, त्रिपुरा देवी चामुंडा निवास करती है। वहां पर ही भूतनाथ शिव बंधुमार पर्वत के उत्तर में रहते हैं। वहां पर ही पार्वती नदी और स्वर्ग को प्रदान करने वाली व्यास नदी प्रवाहित होती है।

इन दोनों नदियों के मध्य में भूतों के पति स्वयं शंकर शोभायमान हैं। उनके दर्शनमात्र से ही मनुष्य निष्पाप हो जाता है। इस संसार में ऐश्वर्य भोगकर दूसरे लोक में शिव रूप बन जाता है और बैजनाथ तथा गंगा पर मृत्यु होने पर भी शिव रूप को प्राप्त होता है।

इति श्री ब्रह्मांड पुराणे ब्रह्म नारद संवादे भूतनाथ क्षेत्र वर्णन प्रथम अध्यायः।

यह क्षेत्र अपुत्रों को पुत्र देने वाला और निर्धनों को धन देने वाला कहा गया है। ऊर्ध्व धार और पार्वती के संगम में स्नान करने से ही विशेष पुण्य मिलता है।

पहले दोनों तीर्थों में स्नान कर फिर पीछे पूजन करें, फिर ब्राह्मणों को गौ, सोना और चांदी दान करें।

हे पापरहित नारद! प्रसन्नतापूर्वक हविष्य का भक्षण करके रात्रि जागरण करें। इस प्रकार मणिमय क्षेत्र मणिकर्ण तुम्हारे लिए कहा है।

नारद बोले—हे देव! मेरी प्रीति के कारण मणिकर्ण तीर्थ के माहात्म्य को विस्तारपूर्वक कहें कि भवानी ने वहां क्या किया? उस क्षेत्र की सीमा क्या है? और पार्वती को यह मणि कब याद आई और कैसे पुनः प्राप्त हुई? पहले यह स्थान कैसा था।

ब्रह्मा जी बोले—हिमालय के चरणों में हरिंद्र नाम का पर्वत है, वहां आश्रम में गरम और शीतल जल के तालाब हैं। पार्वती के उस क्रीड़ा-स्थान में ही कान के भूषण की मणि भूमि पर गिर गई। इसलिए शंकर ने वहां तपस्या की।

सुंदर भवानी के साथ उस भ्रष्ट (गुम हुई) मणि को बहुत देर से याद करके महादेव ने अपने गणों और भूतों को उसे खोजने की आज्ञा दी। जब मणि भूतों और गणों को न मिली तब शंकर ने ढूंढ़ने के लिए अत्यंत क्रोध प्रकट करके सब शून्य करने के लिए तैयार हो गए।

जब भगवान् शंकर अपने नेत्र की अग्नि से भस्म करने के लिए तैयार हुए,

उस समय शीघ्र ही योगियों ने शेषनाग को जगाया। तब भगवान् भूतों के रक्षक शेषनाग शंकर को क्रुद्ध सुन और जान भयभीत हो गए और मणि-मणि पुकारने लगे।

सहसा वह मणि यहां आकर पड़ी और वहां उस पवित्र ऊर्ध्वधार में आकर निकली। उस अद्भुत बात को आकर देखने पर भगवान् शंकर ने उसे अपना क्षेत्र बना लिया।

महादेव जी बोले—मैं विष्णु द्वारा निंदित धर्म और अर्थ के लिए निंदित की गई काशी में नहीं जाऊंगा। वहां विष्णु की उपासना मुझसे की जाती है। महादेव शंकर लोक कृपा के कारण तथा इस क्षेत्र को ऊंचा उठाने के लिए स्वयं विष्णु को बोलने लगे और कहा कि सुनो, 'देव'! यहां दैवयोग से अकस्मात् पार्वती की मणि गिरी थी। मुझसे वह शेषनाग के द्वारा छोड़ी हुई परम अद्भुत हो गई और स्थान को सुहावना बना गई।

आपके अनुग्रह मात्र से ही हे पुरुषोत्तम! यह क्षेत्र मेरा है, ऐसा मेरे हृदय का भाव जानो। कलियुग में इस स्थान पर मेरी पूजा होगी। जो भी यहां इस स्थान पर मेरा जाप करेगा, वह निसंदेह मुक्त हो जाएगा। यहां जो कोई भी मनुष्य अपने प्राणों को छोड़ेंगे, वह फिर सदा के लिए मुक्त हो जाएंगे। उनको मेरे पूजन करने की भी विशेष आवश्यकता नहीं रहती।

पश्चिम दिशा में सीमा के रूप में गरम और ठंडे जल के विष्णुकुंड हैं। सब लोगों में और महान् पुण्य को देने वाले हैं, जिनमें स्नान करने के पश्चात् मनुष्य विष्णु लोक को प्राप्त होता है। पूर्व दिशा की सीमा को प्राचीन काल में ब्रह्मा ने बनाया है। वहां पर ही ब्रह्मनील नाम वाली नदी प्रसिद्ध है, जिसमें स्नान करने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं। जो वहां पर पूजन नहीं करता है वह महान् अशांति को प्राप्त होता है। महीना, सात दिन अथवा तीन दिन भी विष्णुकुंड में स्नान करने पर मनुष्य जीवनमुक्त हो जाता है। वहां कहीं भी मरा हुआ मनुष्य मुक्त है। इसमें संदेह नहीं। उत्तर में हरिंद्र नाम का पर्वत है, जिसके दर्शन मात्र से ही समस्त पाप दूर हो जाते हैं और दक्षिण में पार्वती नदी बहती है, जो सब लोगों को प्रसन्न करती है।

जहां स्नान करके और जल पीकर मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है, ऐसा यह मणिकर्ण क्षेत्र का साधन प्राचीन काल से है। यह काशी क्षेत्र के समान ही है, इसमें कोई संदेह नहीं। पीठों में सबसे श्रेष्ठ कुलांत पीठ है। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! इस कुलांत पीठ में भी सबसे बड़ा श्रेष्ठ तीर्थ मणिकर्ण और मणिकर्ण में भी विष्णुकुंड अत्यंत पवित्र है। शंकर जी परम प्रसन्न होकर यहां रहते हैं यह बिलकुल सत्य है और मैं बार-बार कहता हूं कि परम सत्य है। ऊर्ध्वधार कुंडों से बढ़कर इस संसार में और कोई भी स्थान अधिक पवित्र नहीं। ऊर्ध्वधार कुंड के एक बिंदु मात्र जल से मनुष्य

के पाप छूट जाते हैं। हे नारद! शंकर के नेत्र के प्रभाव के समान यही यहां क्रोध और पाप को यह क्षेत्र हर लेता है। यहां कोई भी कार्य अविचारणीय नहीं, यह सुंदर जल की कथा मैंने तेरे लिए कही। जो भी इस संसार में यहां के गरम उबलते हुए जल के पके अन्न का भोजन करता है, वह परम धाम विष्णुलोक को प्राप्त होता है।

शुभ संवत् 1933 ज्येष्ठ प्रविष्टे 15 स्वर्गीय प्रेमदास उपाध्याय द्वारा लिखित मणिकर्ण माहात्म्य समाप्त हुआ।

कुलांत पीठ माहात्म्यम्

कुलांत पीठ नामक संस्कृत पांडुलिपि का उल्लेख हारकोट ने किया है। मणिकर्ण मंदिर के पुजारियों के पास भी 'मणिकर्ण माहात्म्य' नाम से पांडुलिपि थी जिसे बदरीदत्त अवस्थी द्वारा पं. रुद्रमणि रामकृष्ण उपाध्याय मणिकर्ण के माध्यम से प्रकाशित करवाया गया। अलीगढ़ से मुद्रित इस पुस्तिका (मूल्य 30 पैसे) में शम्मी शर्मा की भूमिका तथा अन्य लेखों सहित 'मणिकर्ण माहात्म्य' संस्कृत में (अनुवाद सहित) दिया गया है। इस माहात्म्य में दो अध्याय हैं। पहले अध्याय में 21 श्लोक तथा दूसरे में 28 श्लोक हैं।

कुलांत पीठ में भी द्वितीय अध्याय मणिकर्ण माहात्म्य का ही है। यद्यपि इन दोनों में थोड़ा-थोड़ा अंतर है। दोनों पांडुलिपियों के पाठ का अंतर निम्न प्रकार से है :

अथ पुत्र पुनः वक्ष्ये पार्वत्या सह शंकराः।
विहारार्थ कृतं स्थानं, पार्वत्यास्तु तटे शुभे।। —कुलांत पीठ
पुत्रमहं वक्ष्ये भवान्या सह शंकराः।
विहारार्थ कृतं स्थायं पार्वत्याया तटे शुभै।। —मणिकर्ण माहात्म्य
मणिकर्णेति विख्यातं शीतोष्णजलसंयुतम्।
तत्र गत्वा कृता क्रीड़ा, शिवेन सुखरूपिणी।। —कुलांत पीठ
मणिकर्णेति विख्यातं शीतोष्ण जल समान्र्वतम्।
तत्र गत्वा कृत क्रीड़ा शिवेन सा रूपसी।। —मणिकर्ण माहात्म्य

कुलांत पीठ माहात्म्य को कुल्लू निवासी पुरोहित चंद्रशेखर द्वारा राजा रघुवीर सिंह 'आनी' की पांडुलिपि से उतारा गया। यहां इसे ज्यों का त्यों दिया जा रहा है। यह माहात्म्य सोसमी के जुलाई 88 अंक में छप चुका है।

कुलांत पीठ माहात्म्य

प्रथम अध्याय

मूल संस्कृत का उदाहरण :

नारायणं नमस्कृत्य, नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीर्यते।।1।।

प्रथम श्री परमेश्वर, भगवान् विष्णु, श्री अर्जुन तथा देवी सरस्वती, महामुनि व्यास को नमस्कार करके पुराण का बखान करते हैं।

तत्रैव गंगा यमुना त्रिवेणी, गोदावरी सिंधुः सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र, यत्राच्युतोदार-कथाप्रसंगः।।2।।

गंगा, यमुना, गोदावरी, सिंधु, सरस्वती और प्रयाग आदि सारे तीर्थ वहां निवास करते हैं जहां भगवान् विष्णु की श्रेष्ठ कथा होती है।

अथातः संप्रवक्ष्यामि कुलांतं पीठमुत्तमम्।
यत्पीठं समाश्रित्य, मुनयो सिद्धिमागताः।।3।।

अब मैं पीठों में श्रेष्ठ कुलांत पीठ का वर्णन करता हूं, जिस पीठ का आसरा लेकर मुनि लोग सिद्धि को प्राप्त हुए।

अर्जुनस्य प्रसादायं, दाधार शवरं वपुः।
विपाशा च नदी यत्र, नदी च यत्र पार्वती।।4।।

अर्जुन को प्रसन्न करने के लिए शवर (जंगली जाति) का शरीर धारण किया (शिव जी ने) जहां कि विपाशा और पार्वती नदियां हैं।

यत्र व्यासेन संतप्तं वसिष्ठेन च धीमता।
शवरी पार्वती देवी तत्रैव चाभवतपुरा।।5।।

जहां मुनि व्यास और बुद्धिमान् वशिष्ठ ने तप किया वहीं पूर्व काल में शबरी देवी प्रकट हुई थी।

यज्ञोपलक्षितं सर्वं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
तमाश्रित्य च तिष्ठंति देवाः देव्यश्च नित्यशः।।6।।

संपूर्ण यज्ञों का लक्ष्य स्वरूप और सारी सिद्धियों का दाता जिसका आश्रय लेकर देव और देवियां सदा यहां रहते हैं।

तत्र प्रेताः सकूष्मांडा योगिन्यश्च सहस्रशः।
महत् सत्त्वं हि तत्पीठं सुरासुरसुदुर्लभम्।।7।।

जहां प्रेतों सहित कूष्मांडा तथा हजारों योगिनियां रहती हैं, सचमुच वह पीठ सत्यवान् देवों व दानवों के लिए दुर्लभ है।

कुलांतमिति विख्यातं अंते मोक्षप्रदायकम्।
यच्चोक्तं मया पुत्र, कुलांतपीठ राजकम्।।8।।

कुलांत नाम से प्रसिद्ध यह पीठ अंत में मोक्षदायक है। हे पुत्र! इसीलिए मैंने इसे पीठों का राजा कुलांत पीठ कहा है।

नारदोवाच :

कुलांतपीठमाख्यातं त्वयोक्तं च पितामह।
कस्मिन् देशे समीपे च किं प्रमाणं च तत्पुनः।।9।।

नारद बोले—हे पितामह! आपने जो कुलांत पीठ नाम से प्रसिद्ध कहा है, वह कहां, किसके पास और कितने विस्तार का है?

तत्र को देव देवी च किं पुण्यं तत्र चोत्तमम्।
कीदृशं हि महास्थानं का नदी तत्र चोत्तमा।। 10।।

वहां कौन से देवी-देवता हैं, कैसा स्थान है, कौन वहां नदी है और क्या वहां का माहात्म्य है!

हिंदी अनुवाद

जिस कारण से शिव जी ने जंगली आदमी का रूप धारण किया और अर्जुन को किसलिए प्रसन्न करना पड़ा?

उस पीठ में पार्वती जंगली भीलनी के रूप में क्यों है? हे पितामह! यह मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूं।

ब्रह्मा जी बोले—हे पुत्र! उत्तम कुलांत पीठ का हाल सावधान होकर सुनो। जालंधर के ईशान दिशा में और हेमकूट पर्वत के दक्षिण की ओर दस योजन तक फैला लंबा और तीन योजन चौड़ा क्षेत्र है, जिसके उत्तर में व्यास तीर्थ और दक्षिण

में बंधुक पर्वत है। जिसके पश्चिम में विपाशा (व्यास) नदी और पूर्व में स्वयं पशुपति (शिव) तथा क्षेत्र की अध्यक्षा शबरी देवी और इंद्रकील पर्वत हैं।

भीलनी रूप वह देवी सारी सिद्धियां देने वाली है, वहां जन और हवन करने से देवलोक प्राप्त होता है।

महादेव ने इसी स्थान पर पिछले काल में शबरी रूप धारण किया था, देवी के साथ विहार और जनता को निर्भय करने के लिए।

पृथ्वी और अर्जुन का भय नष्ट करने के निमित्त तथा अर्जुन की परीक्षा के लिए शिव जी ने संग्राम किया।

उस (अर्जुन) के लिए वर और अभयदान तथा उच्चकोटि के शस्त्र दिए इस कारण से महादेव ने भील का रूप धारण किया था।

वहां पर त्रिपुरा-चामुंडा तथा अपराजिता देवियां और वहीं बंधुमार (पर्वत) के उत्तर में भूतनाथ शिव हैं।

वहीं स्वर्ग देने वाली विपाशा और पार्वती नदियां हैं। इनके माध्यम में भूतनाथ शंभु स्वयं विराजते हैं।

वहां दर्शन मात्र से मनुष्य पापरहित हो जाता है और इस लोक में ऐश्वर्य व परलोक में मोक्ष पाता है।

वैद्यनाथ और गंगा में मरने से जो फल मिलता है वही भूतनाथ के पास से मिलता है।

ब्रह्मांड पुराण के ब्रह्म-नारद संवाद का क्षेत्रवर्णन नाम का पहला अध्याय समाप्त हुआ।

द्वितीय अध्याय

अब पुत्र! आगे बताता हूं, पार्वती सहित शंकर ने पार्वती नदी के किनारे विहार करने के लिए स्थान बनाया। जो स्थान तप्त और शीतल जल वाला मणिकर्ण नाम से प्रसिद्ध है, वहां जाकर शिव ने सुखमयी क्रीड़ा की थी। गरम और ठंडे जल वाला अनेक प्रकार के फूलों तथा भंवरों से युक्त छायादार वह स्थान था। जहां छह हजार पचास वर्षों तक पार्वती सहित क्रीड़ा करने पर भी महादेव तृप्त नहीं हुए और खेलते-खेलते भवानी के कान का रत्न गुम हो गया, इसी से इस क्षेत्र को पुण्य देने और सारे पापों का नाशक बनने का संयोग हुआ।

यह तीर्थ पुत्रहीनों को पुत्र और धनहीनों को धन देता है, ऊर्ध्वधारा और पार्वती नदी के संगम में मनुष्य स्नान करे। पहले दोनों तीर्थों में स्नान करके फिर पूजा करे

और ब्राह्मण को गाय, सोना तथा चांदी का दान करे। हे पापरहित नारद! प्रसन्नतापूर्वक सात्त्विक भोजन करे और रात को जागरण करे ऐसा यह मणियों वाला तीर्थ मैंने तुम्हें बताया। ऐसा यह अर्धनारीश्वर क्षेत्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है।

तृतीय अध्याय

नारद ने कहा–हे देवों के देव! मुझे स्नेहपूर्वक मणिकर्ण का माहात्म्य विस्तार से बताइए कि भवानी ने वहां क्या किया? उस क्षेत्र की सीमा तथा पूर्व काल में स्थिति क्या थी, पार्वती ने यह रत्न कब खोया, याद किया और कैसे प्राप्त किया था?

ब्रह्मा जी बोले–हिमाचल का चरणस्वरूप हरिंद्र नाम का पर्वत है, वहां ठंडे और गर्म पानी के कुंड और निवास स्थान हैं। कान का आभूषण भूतस्थ (भूमिगत) हो गया था, अपने ही विहार स्थल में गिरा था इसलिए पार्वती ने शिव का मन से स्मरण किया था। तत्काल भवानी की मणि का स्मरण करके शिव ने इस मणि की खोज के लिए भूतों और गणों को आदेश दिया।

हे नारद! खोजने पर भी जब भूत मणि को न पा सके तो शिव ने क्रुद्ध होकर सर्वत्र शून्यता व्याप्त कर दी। जब सदाशिव मणि के लिए नेत्राग्नि का प्रयोग करने लगे तो योगिनियों ने जाकर शेषनाग को बताया। शिव के क्रुद्ध होने का समाचार सुनकर शेष डर के मारे मणि-मणि पुकारने लगा। तब पृथ्वी से फूटकर पवित्र जल की धार ऊपर को उठी, इस चमत्कार को देखकर महादेव ने स्वयं नेत्र को रोक लिया।

महादेव बोले कि अब मैं वैष्णव धर्म की निंदा करने वाली काशी में नहीं जाऊंगा और उमा सहित वृषभध्वज (महादेव) वहीं पर विष्णु की पूजा करने लगे और संसार पर कृपा करते हुए बोले, हे देवों के देव विष्णु! मैंने इस क्षेत्र को उत्तम क्षेत्र घोषित कर दिया। बड़े ही संयोग से भवानी का मणि गिर जाना और शेष का उसे हमें लौटाना यह सब परम चमत्कार-सा हुआ है।

हे पुरुषोत्तम! आपके अनुग्रह से यह क्षेत्र मेरा हुआ। हे महादेव! पूर्व काल में ये मेरे हृदय का जल था। कलियुग में यह मेरे पूजा स्थानों में से होगा। यहां जो मेरी पूजा करेगा वह मोक्ष को प्राप्त हुआ ही जानो, इसमें संदेह नहीं। यहां जो लोग प्राण त्याग करते हैं, वे मुझे पूजे बिना भी निश्चय ही मुक्त हो जाते हैं और यहां मुझे पूजे बिना भी कलियुग में पूजा का फल मिले। इसी क्षेत्र की सीमा के अंदर जाने पर स्वास्थ्यवर्धक विष्णुकुंड है।

पश्चिम दिशा में स्थित यह कुंड बहुत तप्त जल वाला है। यह संसार का अति पवित्र तीर्थ मानवों को महापुण्य के फल का देने वाला है। जिसमें स्नान करने से

जीव विष्णुलोक को प्राप्त करता है, दक्षिण दिशा की सीमा पर ब्रह्म ने पूर्व काल में नदी बनाई है।

ब्रह्म-नाली नाम से प्रसिद्ध वह समस्त पापों की नाशक है जिसमें स्नान करने से महापापी लोग भी पूज्यता को प्राप्त करते हैं। जो महीना, सात दिन या तीन दिन ही विष्णुकुंड में स्नान करे तो जीव मोक्ष भी पा सकता है।

हे नारद! जीव जहां कहीं भी मरे (विष्णुकुंड में नहाने वाला) निसंदेह मुक्ति पाता है। उत्तर की सीमा पर हरिंद्र नाम का पर्वत है जिसके दर्शन से ढेर सारे पाप भी नष्ट हो जाते हैं। दक्षिण में संसार को प्रसन्न करने वाली पार्वती नदी बहती है। जहां स्नान और पान करने से मनुष्य स्वर्ग पाता है। मणिकर्ण नाम का यह क्षेत्र पूर्व काल में मोक्ष का साधन घोषित किया गया है।

विशेषतया काशी में मणिकर्ण क्षेत्र का बहुत महत्त्व है और समस्त पीठों में उत्तम कुलांत पीठ महान् एवं श्रेष्ठ है। कुलांत पीठ में भी मणिकर्ण और वहां भी विष्णुकुंड श्रेष्ठ है। इस प्रकार हे द्विजोत्तम! शिव ने मुझे यह आदेश दिया है। ऐसा परम आनंददायक क्षेत्र जहां है, वह मैंने तुम्हें बार-बार सत्य बता दिया। यहां के ऊर्ध्वधारा (फव्वारा) कुंड से अधिक पवित्र पृथ्वी पर कोई कुंड नहीं है। इस ऊर्ध्वधारा के जल की बूंद मात्र देहधारियों के पांचों पातकों को हरती है, इसमें संदेह नहीं करना। हे पुत्र! यह रुद्र के नेत्र के प्रभाव से युक्त है।

सुकथा च जलं शिष्टं बहुशः कथयते त्वया।
... ... ।।29।।

यह शुभ कथा और जल का महत्त्व तुमको सुनाया।

इस गरम पानी में पका अन्न पृथ्वी पर जो मनुष्य खाता है, वह विष्णुलोक पाने के पश्चात् परम धाम वैकुंठ को प्राप्त करता है।

यह ब्रह्मांड पुराण में ब्रह्मा और नारद के संवाद का मणिकर्ण संबंधी तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

चतुर्थ अध्याय

ब्रह्मा जी कहते हैं—अब मैं सब स्थानों में श्रेष्ठ स्थान का वर्णन करता हूं जहां इंद्रकील का आश्रय लेकर भुवनेश्वरी देवी ठहरी हैं।

नारद बोले—हे पितामह! इस पर्वत का नाम इंद्रकील कैसे पड़ा? यह सब वृत्तांत मुझे बताइए, यदि मुझ पर आपकी कृपा है।

ब्रह्मा जी बोले—हे तपोधन पुत्र! सुनो, विस्तार से बतलाता हूं कि इस पर्वत का नाम इंद्रकील कैसे पड़ा?

पूर्व काल में यह सारे पर्वत पंखों वाले थे। इन पंखों से वे उड़ते थे और जहां कहीं जाते तथा पृथ्वी पर गिरते-पड़ते रहते थे।

उनके बैठने से नगर, ग्राम, गोचर, भूमि और धर्मशालाएं आदि के निवासी चूर-चूर होने लगे। यह देखकर देवराज इंद्र ने अपने वज्र को आज्ञा दी।

इंद्र—हे वज्र! देवता और असुरों का दमन और भक्तों को अभयदान तथा देवताओं और यज्ञों की अभिवृद्धि करने इधर आओ।

देखो, पर्वतों ने लोकों को विशेषतः पृथ्वी पर पीस डाला है। तुम वहां जाओ और सबका कल्याण करो। तुम्हारा भला होगा।

त्रिभुवनपति देवराज इंद्र वज्र को ऐसी आज्ञा देकर देवताओं सहित बड़े कुपित हुए। वज्र ने पृथ्वी पर जाकर पहाड़ों के पंखों को काटा, सबके पंखों को काट चुकने पर अपने स्थान पर आ बैठा। परंतु शबरी देवी वाले पर्वत के पंख पूर्ववत् बने रहे। शबरी देवी के प्रभाव से वज्र उन्हें काटने में असमर्थ रहा।

ऐसा सुनकर इंद्र बहुत विस्मित हुए और फिर देवी शबरी का माहात्म्य जानकर अपने शस्त्र वज्र को रोक दिया।

देवताओं के देव, इंद्र ऐरावत पर चढ़कर वहां आ गए जहां शबरी के रूप में पार्वती स्थित थीं।

अपने सिर से देवी के चरणों की वंदना कर हाथ जोड़कर बोले—हे दैत्य और दानवों को मारने वाली देवी! मेरी भक्ति से प्रसन्न हो जाइए।

हे सृष्टि की रचना, रक्षा और अंत करने वाली देवों को सिद्धिदायिनी देवी, आप अभयरूपा और सर्वरूपा शबरी हो।

आप विशाल रूपा तथा विष्णु-रूप में मानी गई महाभय विनाशिनी और सर्वार्थ सिद्ध करने वाली देवी हैं।

हे देवों की देवी भद्रकाली! प्रसन्न हो जाइए। आपको नमस्कार है। इस प्रकार वह देवी बुद्धिमान देवराज द्वारा सराही गई।

संतुष्ट होकर देवी ऐसे वचन बोली—

देवी कहती हैं—हे देवेंद्र! मैं प्रसन्न हुई हूं। हे सुव्रत! तुम्हारे स्तुतिगान से संतुष्ट हूं। कहो तुमको किस वर की अभिलाषा है?

इंद्र ने कहा—देवी, मैंने सभी पर्वतों के पंख काट डाले, परंतु आपके पर्वत के पंख काटने में सफलता नहीं मिली।

इस पर्वत के पंखों के बने रहने से प्रजा को बड़ा भय बना रहेगा, इसलिए मेरे

आग्रह को स्वीकार करके पंखों का उपाय कीजिए।

देवी ने कहा—हे इंद्र! इस पर्वत के पंखों का इलाज आप करो, जिससे प्रजाजनों को कभी किसी प्रकार का कष्ट न हो।

इंद्र ने कहा—हे देवी! आप मुझ पर कृपा करें। इस गिरि को इंद्रकील का रूप दे दोनों का सामीप्य और कल्याण जैसे हो सकता है, वैसा करो।

जो लोग चंदन-पुष्प आदि उपचारों से यहां पूजन करेंगे वे सब प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करेंगे। हे शोभने! उनको आप सब सिद्धियां देंगी।

देवी—हे भद्र! तुमने जो कुछ कहा वही करूंगी, निस्संदेह इससे भिन्न नहीं करूंगी।

तुम्हारे नाम में कीलक विशेषण लगाकर इस पर्वत का इंद्रकीलक नाम होगा।

तब इंद्र, देवी को बार-बार प्रणाम करके उठा और ऐरावत (हाथी) पर चढ़कर स्वर्गलोक को चला गया।

इंद्र के स्वर्गलोक को चले जाने पर देवी इंद्रकील का रूप दिए गए उस पर्वत के पास ही ठहर गईं। क्योंकि इस पर्वतराज को इंद्र ने कीलित किया इसलिए तीनों लोकों में यह इंद्रकील नाम से विख्यात हुआ।

सब लोगों को सब कामों में सिद्धि तथा स्वर्ग व मोक्ष देने वाली शबरी देवी वहीं पर विराजमान हैं।

यह श्री ब्रह्मांड पुराणांतर्गत ब्रह्मा-नारद संवाद का शबरी महातम नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ।

पंचम अध्याय

नारद कहते हैं—हे देव पितामह! यह तो आपने विस्तार से कह दिया, अब आगे महात्मा वशिष्ठ का (वृत्तांत) सुनना चाहता हूं।

यहां महात्मा वशिष्ठ का किस स्थान और देश में कैसे आना हुआ? प्रभो! मुझे यह सब बताइए।

ब्रह्मा जी बोले—पूर्व काल में वशिष्ठ के सौ बेटे राक्षसों ने खाए थे, उनके शोक से व्याकुल वशिष्ठ तब यहां आए थे।

वह हिमालय पर जाकर देह त्यागने को तत्पर हुए परंतु हिमालय पर जाकर भी देह का नाश नहीं हो सका।

हिमालय की चोटी पर चढ़कर जब पृथ्वी पर गिरे तब भी महात्मा वशिष्ठ के देह का नाश नहीं हो सका।

फिर वे नदी के किनारे गए तो नदी को भयंकर देखा। जब नदी के मध्य में

गए तो प्रातः ही श्रेष्ठ ब्राह्मण को वहीं देखा।

हे नारद! वह थी तीनों लोकों में विख्यात शतद्रु (हमारे विचार में व्यास) फिर उठकर वशिष्ठ पुण्यदायिनी नदी की ओर गए।

वहां उन्होंने प्रमोद-कल्लोल करती पवित्र नदी देखी, अपने शरीर को भली प्रकार नाग के पाश में बांधकर जीवन त्यागने की इच्छा से नदी के बीच में जाकर शरीर को डाल दिया परंतु नदी के बीच जाते ही उनके पाश खुलकर मुक्त हो गए।

हे नारद! फिर वे नदी के बीच से उठकर विचारने लगे, हाय-हाय बड़ा भारी दुःख हो गया, किसी प्रकार भी प्राण नहीं निकल रहे।

अरे ! यह तो काल का माहात्म्य है, अब इसके आगे क्या किया जाए, नदी के तट पर महामुनि मन में इस प्रकार सोचने लगे।

शोक से संतप्त मुनि लोकोपकार का मन बनाने लगे। उस नदी के बीच में सदा व्यास का गान होता था।

हे नारद! तभी वह तीनों लोकों में विपाशा कही गई। पहले काल से जो व्यास-गंगा नाम से तीनों लोगों में प्रसिद्ध है।

वशिष्ठ का फिर पालन (पा.छेदम) होने से विपाशा कहलाई। तब महात्मा वशिष्ठ ने व्यास पर ही आसन जमाया।

तपस्या करने का मन बनाकर जहां उन्होंने बड़ा अद्भुत तप किया, वह स्थान तप्त और शीतल जल से युक्त और अनेक प्रकार के फूलों से शोभित था।

वह स्थान अनेक शुभ लक्षणों वाला शुद्ध स्फटिकमणियों से जुड़ा हुआ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जनों से भरा हुआ था और उसमें मणियों की सीढ़ियां बनी हुई थीं।

महात्मा वशिष्ठ का यह तीर्थ बड़ा अद्भुत है जहां वशिष्ठ ने महामुनियों के साथ तप किया।

क्योंकि पूर्व काल में इस कुलांत नाम के पीठ में तप किया गया था, इस कारण वशिष्ठ का यहां आना हुआ।

यहां पहले कुंड में स्नान करने से मनुष्य सब पापों से छूटता है, ऐसा यह महात्मा वशिष्ठ का अद्भुत तीर्थ है।

वशिष्ठाश्रम वर्णन नाम का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।

षष्ठ अध्याय

नारद–आपने व्यासकुंड को महान् और अद्भुत तीर्थ कहा, जिससे यहां व्यास क्षेत्र और बड़े विस्तार वाली व्यास-गंगा उत्पन्न हुई।

हे पितामह! मैं यह सब विस्तार से सुनना चाहता हूं। हे महाप्रभु! मैं धन्य हूं कि आप मेरे पिता हुए।

ब्रह्मा—हे श्रेष्ठ नारद! सुनो, महात्मा व्यास ने तीनों लोकों में रोंगटे खड़े कर देने वाली रोमहर्षक तपस्या की।

कलियुग आरंभ हो जाने पर सत्यवती के पुत्र व्यास के रूप में विष्णु ने लोक कल्याण के निमित्त अवतार लिया।

कलियुग में लोग थोड़ी आयु और थोड़ी बुद्धि वाले वेद तथा धर्म से विमुख होंगे ऐसा सोचकर भगवान् ने नारायण का रूप धारण किया।

वह पराशर योगीपुत्र चंद्रभागा नदी के निकट हेमकुंड के दक्षिण में तप करने को उद्यत हुआ।

वहां व्यास ने यत्नपूर्वक आश्रम बनाया और बुद्धिमान व्यास ने वहीं पर व्यास-कुंड का निर्माण किया और फिर वहां दान-दक्षिणा सहित यज्ञ किया।

उस कुंड से पापों और विषों का नाश करने वाली विपाशा सबके पापों का नाश करने के लिए उत्पन्न हुई।

उस गिरा रूपी विपाशा में स्नान मात्र से हमेशा पापों का नाश हो जाता है और उस कुंड के किनारे सब कालों में हमेशा सिद्धि की प्राप्ति होती है।

इसलिए सब तीर्थों में व्यास का तीर्थ तीनों लोकों में दुर्लभ है क्योंकि यहां समाधि लगाकर तप और बड़ा अद्भुत यज्ञ किया गया है।

फिर यह तीनों लोकों में दुर्लभ विपाशा कहलाई, विपाशा के तट पर जो स्नान और पूजा करता है वह इक्कीस युगों तक परम स्थान में जाता है। गया, गोदावरी, गंगा, गोमती और ऐरावती, केदार, कुरुक्षेत्र, गंगा और काशी तथा विपाशा इन तीर्थों में प्रतिदिन स्नान करे।

गंगा के भास्कर तीर्थ और गंगा और सागर के संगम पर तथा संक्रांति आदि पूर्व काल में स्नान और दान से जो फल मिलता है, वही विपाशा में प्रत्येक दिन स्नान करने से प्राप्त होता है।

सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में स्नान का जितना फल प्राप्त होता है उतना ही विपाशा में स्नान से प्रतिदिन मिलता है क्योंकि काशी तो सर्वव्यापी है और विपाशा पापों को काटने वाली।

गया में पिंडदान अथवा क्षयाह में पितृकर्म करने से जो फल मिलता है वह सब विपाशा में स्नान करने से मिलता है।

यह विपाशा-वर्णन नामक छठा अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तम अध्याय

नारद बोले—हे शक्तिमान विभो! बीते समय में महादेव ने किसलिए तपस्या की? चार मुखों वाले, वह सब मैं विस्तार से सुनना चाहता हूं।

ब्रह्मा बोले—पूर्वकाल में शिव ने देवता, राक्षस और दैत्यों की रचना की तथा बड़ी विचित्र और महत्त्वपूर्ण वस्तुएं तथा आकाशादि बनाए।

(मूल पांडुलिपि में अनुवाद नहीं है)

इस प्रकार पूर्वकाल में सबको मारकर महादेव हुए, तब उन्होंने सबकी निर्भयता के लिए समाधि लगाकर तप किया।

हिमाचल से व्याप्त महादेव को देवताओं और ऋषियों ने शीश झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—

देवता बोले—हे देवताओं के स्वामी! सब देवों के अधिदेव! आपको नमस्कार है। सबको निर्भय करने वाले महादेव आप शरण में आए हुए हमारी रक्षा करें। जहां शास्त्रविहित विधि से शिव की पूजा होती है इसी से सारे गंधर्व और किन्नर दुखी हैं।

हम इसलिए आपका अभिवादन करते हैं। शरण में आए हुए की रक्षा करें।

महादेव ने सोचकर कहा—मैंने आप सभी देवताओं और ऋषियों का काम जान लिया है।

इस त्रिपुरासुर शत्रु के मारने का प्रयत्न कीजिए और सारे शस्त्र, कवच और भूषण एकत्र कीजिए।

सबके भय दूर करने के लिए इस त्रिपुर शत्रु को मारूंगा तब सभी धातुएं मिलाकर वहां सरोवर बनाऊंगा।

सरोवर बनाकर सोने-चांदी और स्फटिक मणियों से उसे सजाया गया, ऐसा वह सुरेश क्षेत्र सारे पापों का नाशक हुआ है।

ब्रह्मा आदि सारे देवताओं ने सुरेश क्षेत्र में आकर महात्मा शिव की पूजा की।

इसलिए उस क्षेत्र का नाम सुरेश क्षेत्र पड़ा था।

संक्रांति अथवा पूर्णिमा को श्रावण और कार्तिक महीनों में इस तालाब में नहाने से सब पापों से मुक्ति होती है।

सुरेश नाम का वह क्षेत्र सब पापों का नाशक है, वहां जाकर स्नान करके जप करें।

ब्रह्मचर्यपूर्वक पवित्र भोजन करके गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से शास्त्र विधि से वहां शिव का पूजन करें।

नाच, गीत और बाजे मात्र से मन संतुष्ट नहीं होता। अतः ब्राह्मण के लिए

गौ, सोना और चांदी दान करें।

पात्रता का ध्यान रखता हुआ अन्न, कपड़ा और भूमिदान भी करें। ऐसा वह क्षेत्र सब सिद्धियां देने वाला है।

वहां पूर्वकाल में शिव जी ने बड़ा अद्भुत तप किया था जो पुत्रहीनों को पुत्र और धनहीनों को धन देता है।

यह ब्राह्मण को विद्या-निष्णात और क्षत्रियों को विजय दिलाने वाला है।

वशिष्ठ तीर्थ और व्यास को बैशाख में, मणिकर्ण को माघ में और उत्तम तीर्थ को फाल्गुन में करें।

पशुपति (कदाचित् बिजली महादेव) को पौष महीने में तथा शबरी को आश्विन और चैत्र में पूजे। वशिष्ठ और व्यास कुंडों में संक्रांति व पूर्णमासी के दिन पूजन करें।

माघ महीने के शुक्ल पक्ष, उसमें भी सप्तमी तिथि में विशेषतया मणिकर्ण का जो अर्चन करे वह अश्वमेध यज्ञों का फल पावें।

आश्विन अथवा चैत्र के नवरात्रों में महिलाएं फलाहार अथवा निराहार रहा करें और फल भेंट आदि उपहारों तथा धूप, दीप, नैवेद्य आदि से दिन अथवा रात में शबरी की पूजा करें।

इससे धर्म और धन सहित सब सिद्धियां संपन्न होती हैं। इस लोक में देवभक्ति से सुख पाती हैं।

क्षमा, तप, इंद्रिय-निग्रह सब जीवों पर दया, ये सब तीर्थ ध्यान से उत्तम तीर्थ हैं।

यह पांचवां तथा छठा तीर्थ सारे देहधारियों में बसता है। इनमें स्नान अर्थात् इनका सेवन करें।

यह श्री ब्रह्मांड पुराण में ब्रह्मा-नारद संवाद में शबरी-माहात्म्य पीठ वर्णन नामक सातवां अध्याय समाप्त हुआ। कुलांत पीठ माहात्म्य भी संपूर्ण हुआ।

लाहौल

संस्कृतियों का सम्मिश्रण

आज के लाहौल में कई जातियों-जनजातियों के रक्त का सम्मिश्रण हुआ है। यह सम्मिश्रण आज भी यहां की चार प्रमुख बोलियों से पता चलता है। इन सभी बोलियों की मूल विशेषताएं, पुरातन शब्दावली उन पुरानी जातियों की ओर इंगित करती है जो यहां पहले अलग अस्तित्व रखती थीं। लाहौल में गारी या बुनन, तोद-रंगलोई, तिननी, पटनी और चनाली बोलियां प्रचलित हैं।

भागा नदी का गार क्षेत्र मूलतः तिब्बती का है। तोद-रंगलोई क्षेत्र में लद्दाखी (ठाकुरों की बोली), चंद्रा नदी के क्षेत्र में तिननी, जिसमें तिब्बती शब्द कम पटनी अधिक हैं, पटनी चंद्रभागा का क्षेत्र है जिसमें हिंदी, पहाड़ी अधिक है, चनाली (हरिजनों की भाषा) संस्कृत-बहुल भाषा है। अतः लाहौल में ऊपर की ओर तिब्बती, एक ओर लद्दाखी तथा दूसरी चम्बयाली व कुल्लूई संस्कृति का समावेश हुआ। चनाल संभवतः बाहर से निचले क्षेत्र से आए जो अपने साथ मूल संस्कृत भाषा लाए।

हारकोट ने लाहौल के मूल धर्म को 'लूङ्.-पई-छोस' कहा। ये लोग प्रकृति पूजा करते थे जिसमें वृक्ष पूजा, जल पूजा, पाषाण पूजा शामिल हैं। निम्न जाति के लोगों में ऐसी रहस्यमयी पूजाएं की जाती रही हैं जिनमें ब्राह्मण या लामा भाग नहीं लेते। भूदेव पूजा, लिंग पूजा इसी मूल धर्म के रूप हैं। घेपङ्. देवता इस प्रकृति पूजा का उदाहरण हैं। देवता की कोई मूर्ति न होकर एक लंबा लक्कड़ है। यह लक्कड़ जो पूरा शहतीर है, नाग का प्रतीक है। कथाओं के अनुसार घेपङ्. ने ही लाहौल बसाया। वही यहां जौ तथा गेहूं के बीज मुंह में छिपाकर लाया। उसने बारालाचा दर्रे पर राक्षसों से युद्ध किया और उन्हें मार भगाया। घेपङ् देवता बलि स्वीकार करता है।

मलाणा का जमलू या जमलङ् इस देवता का भाई है। मलाणा के लोग भी इसी तरह अपनी मूल जनजाति से किसी कारण भटककर मलाणा के दूरस्थ और कटे हुए गांव में जा बसे। उनकी भाषा में स्पीति के शब्द हैं। देवता का पुजारी बताता है कि प्रीणी का जमलू देवता भोटंत और चिन (चीन), पांगू या पांगी या मानसरोवर से आया।

पहले यहां मोन लोग रहते थे। यहां के लोगों को तिब्बती में मोन कहा जाता है। जंस्कर कभी मोन लोगों के अधिकार में था। लद्दाख में आज भी कुछ मोन परिवार हैं। गुगे में भी मोन लोगों द्वारा निर्मित पुराने किले हैं। जंस्कर में भी मोन किले के अवशेष हैं। मोन, जो तिब्बती का शब्द है, यहां किरात कहलाते थे। फ्रेंके का मानना है कि मोन आर्य थे। वे कश्मीर के लोगों से, जिन्हें 'किर' कहा गया है, भिन्न थे। किरात, आज भी लाहौल, कनावर, मलाणा में विद्यमान हैं।

किन्नौर की भांति लाहौल में भी कब्रें पाई जाती हैं। हल चलाती बार या घर बनाती बार ये कब्रें मिलती हैं। हारकोट ने इन कब्रों को मुस्लिम कब्रें बताया है जो चंगेज खां के समय की बताई गई हैं। किंतु ये कब्रें मुस्लिम कब्रें नहीं हैं। किन्नौर की भांति इन कब्रों में भी पानी तथा खाद्य सामग्री के लिए बर्तन रखे मिलते हैं। लद्दाख में इन्हें 'दरद' की कब्रें बताया जाता है जो मृतकों को दबाते थे। फ्रेंके ने भी इन्हें 'दरद' की कब्रें माना है, तिब्बती या मुस्लिम नहीं। दरद इंडो-ईरानी जाति थी। इन कब्रों को पहली से पांचवीं शताब्दी तक का माना गया है। राहुल ने इन्हें ईसा से आठवीं शताब्दी के पहले का माना। किंतु इन कब्रों तथा वहां उपलब्ध सामग्री का वैज्ञानिक परीक्षण आवश्यक है जो कभी नहीं हुआ है।

लाहौली परंपरा में हमलावर यारकंद से आए माने गए हैं। हचिसन-वोगल ने हमलावरों को मध्य एशिया की ये-था (हूण) जनजाति माना जो 400-500 ई. के लगभग आए।

लाहौल के 'ल्हो-थुल' (दक्षिण देश), गरजा आदि नाम बाद के हैं।

कुशाण काल में जब संपूर्ण उत्तर भारत कनिष्क के अधीन था, लाहौल भी कुशाणों के अधीन रहा होगा। जंस्कर में भी कनिष्क के समय का स्तूप मिला है अतः लद्दाख तथा लाहौल भी कुशाणों के अधीन रहे हैं।

गुप्तकाल में लाहौल संभवतः सीमाओं से दूर रहा। समुद्रगुप्त का साम्राज्य व्यास घाटी तक रहा। हर्षवर्धन (606-664 ई.) के समय लाहौल ब्रह्मपुर (चंबा) तथा कुल्लू के अधीन रहा। अतिदुर्गम तथा दूरस्थ होने के कारण लाहौल का क्षेत्र बड़े साम्राज्यों द्वारा उपेक्षित छोड़ा गया। संभवतः लाहौल पर व्यावहारिक रूप से हमला करने वाले चंबा तथा कुल्लू ही थे। चंबा ने कुगती जोत से होकर चंद्रभागा तलहटी पर कब्जा किया और इसी रास्ते रोहतांग से कुल्लू पर आक्रमण किए। इसी प्रकार कुल्लू ने भी रोहतांग के परे अपना अधिकार रखने के लिए लगातार संघर्ष किया। लाहौल के ठाकुर चंबा, कुल्लू, लद्दाख तथा बाद में सिख साम्राज्य को कर देते रहे। ठाकुर या शासक को 'जौ' कहते थे जिसका तिब्बती में अर्थ स्वामी है।

ह्यूनसांग ने (630-645 ई.) अपनी यात्रा के दौरान कुल्लू में लाहौल के बारे

में सुना कि लाहौल 1800 या 1900 ली. की दूरी पर है। यह दूरी (300-320 मील) अधिक है। इस यात्री ने लाहौल में बौद्ध धर्म के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया।

यह भी कहा जाता है कि उत्तर की ओर से किसी जाति ने लाहौल पर आक्रमण किया और दस वर्ष तक लाहौल को अपने अधिकार में रखा। ऐसा ही एक वर्णन चंबा के इतिहास में भी आता है। इन लोगों को 'किर' कहा गया है। सन् 800 में 'किर' या 'कीरों' का आक्रमण लक्ष्मीवर्मन के समय हुआ। ये हमलावर कश्मीरी माने जाते हैं। कश्मीर का बैजनाथ तक प्रभाव रहा जिसे 'किरग्राम' कहा जाता था। कश्मीर की कला का प्रभाव मृकुलादेवी उदयपुर तथा त्रिलोकीनाथ मंदिरों में भी देखा जा सकता है।

लद्दाखी शासन तथा बौद्ध धर्म

लाहौल में बौद्ध धर्म आठवीं शताब्दी के लगभग आया।

सातवीं शताब्दी के मध्य तिब्बत के शासक स्रों-त्सन-गम्पो (617-650) ने लद्दाख को अपने अधीन कर लिया। यह शासक हर्षवर्धन का समकालीन था। लाहौल तथा स्पीति का क्षेत्र इसके अधीन आ गया।

स्रों-त्सन-गम्पो ने लगभग 632 में अपने मंत्री संभोट को सोलह छात्रों के साथ कश्मीर भेजा। इसने नालंदा तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालयों से भी बौद्ध भिक्षु तिब्बत आमंत्रित किए। शांतरक्षित के आमंत्रण पर पद्मसंभव यहां आने को तैयार हुए। पद्मसंभव का यहां आगमन हुआ। पद्मसंभव की जीवनी पेमा कातङ्. में जोहार (मंडी-रिवालसर) तथा गारजा (लाहौल), गुरुघंटाल का नाम आता है जिससे पता चलता है कि तंत्रयान के अनुयायी पद्मसंभव ने मंडी-रिवालसर तथा लाहौल (गुरुघंटाल) में बौद्ध मठ स्थापित किए। यह भी कहा जाता है कि पद्मसंभव ने लगभग 779 ई. में तिब्बत में समये नाम से मठ की स्थापना की।

स्रों-त्सन-गम्पो का पौत्र राल-या-चैन (817-36) बौद्ध धर्म का तीसरा प्रबल समर्थक था किंतु इसे विद्रोही भाई लंग द्रामा (899-902) ने मार दिया। लंग द्रामा बौद्ध धर्म का शत्रु था अतः इसके काल में बौद्ध भिक्षु तथा पंडित जहां-तहां भागकर छिप गए। लंग द्रामा को सन् 902 में एक लामा पाल दोर्जे ने मार दिया। इसके बाद उसका भतीजा वारिस बना जिसका छोटी रानी के वारिस ओद-स्रुंग से संघर्ष चलता रहा। ओद स्रुंग का पौत्र की-दे-निमा-गों अनुयायियों सहित पश्चिम तिब्बत चला गया जहां वैवाहिक संबंधों से शक्ति प्राप्त कर लद्दाख तथा गुगे के क्षेत्र को मिलाकर राज्य विस्तार किया।

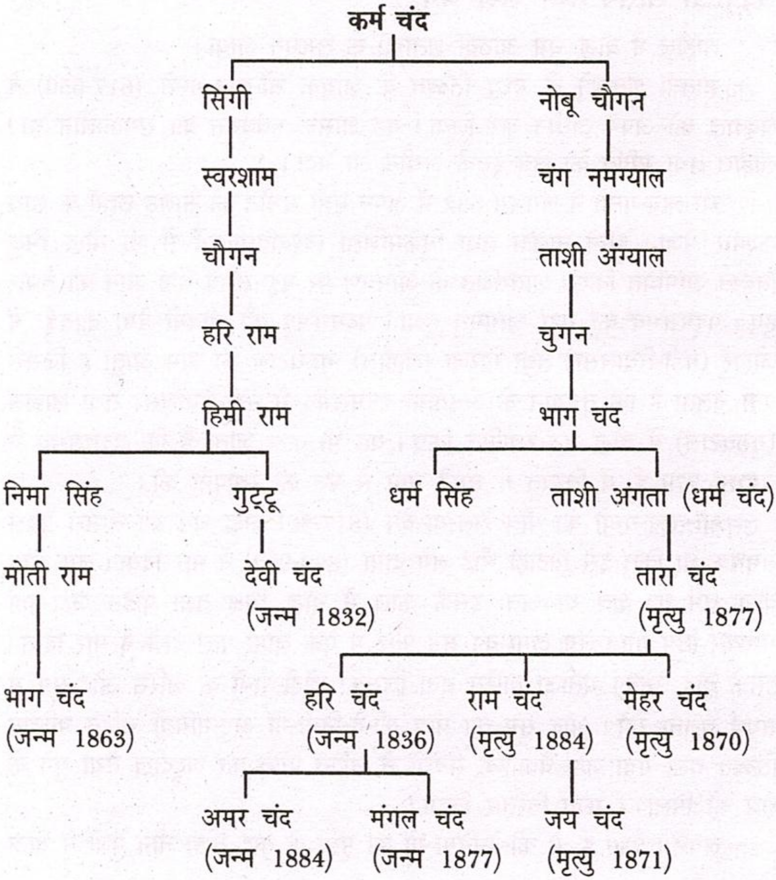
लगभग 930 ई. में की-दे-निमा-गों की मृत्यु के बाद राज्य तीन पुत्रों में बांटा

गया। बड़े पुत्र पालगी-गों को लद्दाख तथा दोनों भाइयों पर शासन मिला। दूसरे पुत्र टशी-गों को पुरंग तथा तीसरे देत्सु-गों को जंग्सर तथा स्पीति। अतः लद्दाख (लाहौल) पालगी-गों के अधीन रहा।

इसी राजवंश में ल्हा-चेन-उत्तपाल (1080-1110) ने कुल्लू पर आक्रमण किया और कुल्लू को लोहा तथा सुरा गाय कर में देने के लिए बाध्य किया। इससे पहले के समय में लाहौल कुल्लू के अधीन रहा होगा, ऐसा भी माना जाता है। चंबा और कुल्लू दोनों राज्य लाहौल पर अधिकार करते रहे।

ल्हा-चेन उत्तपाल के समय ही मरगुल के मृकुला देवी मंदिर को वज्रेश्वरी मंदिर (या मठ) में बदला गया तथा इसकी मरम्मत की गई। इस समय लाहौल के 'जौ'

ठाकुर हरि चंद वजीर रईस लाहौल



सीधे लद्दाख के प्रति उत्तरदायी बने।

कुल्लू के शासक सिद्ध सिंह के समय लद्दाख के शासक टशे-बांग-नमग्याल (1535-1575) ने लाहौल के रास्ते कुल्लू पर आक्रमण किया। यह मात्र एक हमला था, जिसमें लाहौल पर प्रभाव नहीं पड़ा। जब तिब्बती शासक कमजोर हुए तो कुल्लू के राजा बहादुर सिंह ने लाहौल पर अपना अधिकार कर लिया। इससे पहले लाहौल लद्दाख राज्य का एक भाग था।

सत्रहवीं शताब्दी में मंगोलों द्वारा लद्दाख पर आक्रमण के समय एक टुकड़ी लाहौल में भी आई किंतु मार्ग में ग्लेशियर गिरने से वे मर गए। इस बीच कुल्लू के राजा विधि सिंह ने लगभग 1672 ई. में लाहौल पर अधिकार कर लिया। सभी 'जौ' को जागीरें दीं और वे कुल्लू की भांति ठाकुर कहलाए। बाद में ये ठाकुर अपने को राजपूत कहने लगे।

राजा मान सिंह ने लाहौल की सीमा लींगटी तक बढ़ा दी। राजा मान सिंह से लेकर अंतिम शासक जीत सिंह (सन् 1840) तक लाहौल कुल्लू के अधिकार में रहा। इसके बाद सन् 1846 तक सिख शासन के अधीन और 1846 में सिक्खों के हार के बाद ब्रिटिश राज्य का एक अंग बना।

पुरानी कब्रों के वैज्ञानिक विश्लेषण, किलों में पाई जाने वाली पुरातात्त्विक सामग्री, ठाकुरों के पास उपलब्ध मूर्तियां, पुरासामग्री, पट्टन घाटी के जलस्रोतों के अभिलेखों, फ्रेंके द्वारा देखे चट्टानों पर 23 अभिलेखों, स्तूपों की खोज-खबर से लाहौल के इतिहास पर और प्रकाश पड़ सकता है।

कर्नल मैसी ने लिखा है कि ताराचंद राजा कुल्लू तथा सिखों की ओर से शासक था। प्रबंध व्यवस्था के लिए इसे 'नेगी' कहते थे, बाद में यह खिताब बदलकर 'वजीर' कर दिया गया। सन् 1861 में इसे ऑनरेरी एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर भी नियुक्त किया गया। सन् 1871 में इसकी मृत्यु के बाद बड़ा बेटा हरि चंद उत्तराधिकारी बना। अंग्रेज सरकार 1858 में मि. शिलजेंट पैट (अफसर महकमा सर्वे) की खबर हरि चंद द्वारा देने पर (जिसे वली खां कोकान ने यारकंड में कत्ल किया) अच्छा बर्ताव किया गया। हरि चंद ने सन् 1863-64 में तिब्बत की यात्रा कर आय, मार्ग तथा व्यापार की उन्नति पर एक रिपोर्ट तैयार की।

जिला कांगड़ा के वायसरीगल दरबारियों में इसका 15वां स्थान था। लाहौल में इसे न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। इसे लाहौल की आय का चौथाई (550 रुपए) मिलता था। आय लगभग 2000 रुपए थी।

इसी वंश की घुमसंग शाखा का मुखिया देवी चंद था। हीरा चंद गोंधला की तीसरी शाखा का मुखिया था।

स्पीति

स्पीति में बौद्ध धर्म के आगमन से पूर्व यहां 'बों-छोस' धर्मानुयायी 'बों पा' लोग रहते थे। ताबो मठ के ऊपर चट्टानों में चित्र विद्यमान हैं। इन चित्रों की ओर सर्वप्रथम सन् 1909 में फ्रेंके का ध्यान गया। लरी तथा ताबो में ये चित्र अब भी विद्यमान हैं। चट्टानों में घोड़े या चीते जैसे पशु, स्वस्तिक चिह्न, सूर्य, योनि, नृत्य मुद्रा में मनुष्यों के चित्र हैं। किरात लोग स्पीति के पश्चिम तथा दक्षिण में रहते थे जिनके अवशेष मलाणा, लाहौल तथा कनावर में मिलते हैं।

स्पीति में सातवीं शताब्दी से पूर्व एक हिंदू राज्य था जिसका प्रमाण निरमंड का ताम्रपत्र है। ये शासक अपने को 'सेन' कहते थे। निरमंड के ताम्रपत्र को डॉ. जे.एफ. फ्लीट ने सातवीं शताब्दी का माना है। ताम्रपत्र में उल्लेख है कि कपालेश्वर मंदिर महाराज सर्ववर्मन द्वारा बनवाया गया। इसमें समुद्रसेन की माता परमदेवी महाभट्टारिका मिहिर लक्ष्मी ने मिहिरेश्वर की मूर्ति स्थापित की। मिहिरेश्वर की पूजा-अर्चना के लिए महाराज समुद्रसेन ने शूलिशग्राम और उससे संलग्न भूमि व जंगल निरमंड के अथर्ववेदी ब्राह्मणों को अग्रहार के रूप में दी। लेख में चार महासामंत महाराजाओं की वंशावली दी है—वरुण सेन, संजय सेन, रवि सेन, समुद्र सेन।

यह संभव है कि यह क्षेत्र उस समय जालंधर का करद रहा होगा।

कुल्लू के इतिहास में उल्लेख है कि स्पीति के शासक राजेंद्र सेन ने रुद्रपाल (लगभग 600-650 ई.) पर आक्रमण किया और इसे अपने अधीन कर लिया। कुल्लू के राजा प्रसिद्ध पाल ने रोहतांग जोत पर लड़ाई कर स्पीति को हराया। लोकास्था है कि इसी समय या इसके कुछ समय बाद लद्दाखी राजा ने आक्रमण किया जिससे चेत सेन मारा गया और हिंदू राज्य का अंत हुआ। इस युद्ध में कुल्लू के राजा संसारपाल ने लद्दाख की सहायता की। हार के बाद चेतसेन के पुत्रों को जागीर सौंपी गई।

बौद्ध धर्म तथा इतिहास

सातवीं शताब्दी के मध्य तिब्बत के शासक स्रों-त्सन-गम्पो (617-650) ने लद्दाख को अपने अधीन कर लिया, अतः स्पीति भी तिब्बत का एक भाग बन गई।

स्रों-त्सन-गम्पो का विवाह चीन तथा नेपाल की राजकुमारियों से हुआ था। इन राजकुमारियों द्वारा अक्षोभ्य तथा शाक्य मुनि की प्रतिमाएं दहेज में लाई गई थीं। अतः चीन से आई रानी ने कोड.-जो-नेर-मो-छे तथा नेपाल की रानी ने ठि-चुन-ने-ठुल-नंड. विहार बनवाए। राजा ने लगभग सन् 632 में अपने एक मंत्री संभोट को सोलह छात्रों सहित कश्मीर भेजा। बौद्ध धर्म के प्रबल समर्थक इस राजा ने नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों में बौद्ध भिक्षुओं को तिब्बत आने हेतु प्रेरित करने के लिए दूत भेजे। शांतरक्षित ने रिमपोचे पद्मसंभव को आमंत्रित किया। पद्मसंभव यहां आए। कहा जाता है कि तंत्रयान के अनुयायी पद्मसंभव ने 779 ई. में तिब्बत में समये या सम-यास नाम से मठ का निर्माण किया।

स्रों-त्सन-गम्पो का पौत्र राल-पा-चैन (817-36) बौद्ध धर्म का तीसरा प्रबल समर्थक था। किंतु इसे विद्रोही भाई लंग द्रामा ने मार दिया। लंग द्रामा (899-902) बौद्ध धर्म का कट्टर शत्रु था जिसने भिक्षुओं को मार डाला, भारतीय पंडितों को निकाल दिया। संभवतः इसी समय 'बुछैन' परंपरा का जन्म हुआ। राजा की निर्दयता से प्रजा अत्यधिक दुखी हुई। लोकास्था है कि राजा के घर एक देवता अवतरित हुआ। इस शिशु का नाम ग्यालपो था। बौद्ध धर्म की रक्षा के लिए वह बुछैन बन घर से निकल गया और कई अद्भुत करिश्मे दिखाकर धर्म प्रचार में लग गया। यह बुछैन परंपरा अब भी स्पीति के सगनम में प्रचलित है जहां ये लोग छाती पर पत्थर तोड़ना, तलवार की नोक पर लटकना आदि चमत्कार दिखाते हैं।

सन् 902 में लंग द्रामा को पाल दोर्जे लामा की सुनियोजित योजना द्वारा मार दिया गया। अब लंग द्रामा का भतीजा राजा बना। इसके साथ छोटी रानी के वारिस ओद-स्रुंग के साथ संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष के कारण ओद-स्रुंग का पौत्र की-दे-निमा-गों अपने अनुयायियों सहित पश्चिम तिब्बत चला गया। वैवाहिक संबंधों से की-दे-निमा-गों ने शक्ति प्राप्त की और गुगे व लद्दाख के क्षेत्रों को मिलाकर राज्य विस्तार किया। लगभग 930 ई. में इसकी मृत्यु के बाद राज्य तीन पुत्रों में बांट दिया गया। बड़े पुत्र पालगी-गों (930-960) को लद्दाख तथा दोनों भाइयों पर शासन, दूसरे पुत्र टशी-गों को पुरंग तथा तीसरे भाई देत्सु-गों को जंगसर व स्पीति।

पालगी-गों (930-960) की मृत्यु के बाद शासक का दर्जा टशी-गों को मिल गया। टशी-गों बिना उत्तराधिकारी के मर गया अतः गुगे तथा पुरंग का शासन देत्सु-गों के पुत्र खोर-रे (चक्रसेन) को मिल गया। खोर-रे को ही ये-शेस-ओद था जिसे 'लो-चेन' अर्थात् पंडित और गुरु भी कहते थे।

ये-शेस-ओद (967-1040) ही गुगे का वह शासक था जो अपने दो पुत्रों नागराज और देवराज सहित बौद्ध भिक्षु बन गया। इसने राजपाट अपने भतीजे

स्रोन-ने को सौंप स्वयं धर्म प्रचार में जीवन लगाया। इसने इक्कीस युवाओं को भारत भेजा जिनमें रिन-चेन-जंग-पो (रत्नभद्र) भी एक था। इन इक्कीस युवाओं में केवल रिन-चेन-जंग-पो तथा लेक-पाई-शे-रेप ही अपना अध्ययन पूरा करने के लिए बच पाए। रिन-चेन-जंग-पो कई वर्षों तक कश्मीर में रहे तथा भारत के दूसरे स्थानों का भी भ्रमण किया। ये-शेस-ओद ने सन् 1005 में रिन-चेन-जंग-पो सहित दूसरा दल कश्मीर भेजा। ये वहां से पहली यात्रा में रह गई पुस्तकें लाए और इनके साथ बत्तीस कश्मीरी मूर्तिकार तथा कलाकार भी आए, जो बौद्ध थे।

स्रोन-ने के बाद उसका पुत्र चंग-छुव-ओद शासक बना जिसे बौद्धिप्रभ भी कहते हैं। इसने भी राजपाट त्यांग दिया और अपने भाई जी-बा-ओद सहित विक्रमशिला महाविहार से दीपंकर श्री को गुगे आमंत्रित करने के अपने चाचा ये-शेस-ओद के ध्येय में जुट गया। अतः दीपंकर श्री सन् 1042 में गुगे पहुंचे। चंग-छुव-ओद ने ही सन् 1042 में ताबो मठ का जीर्णोद्धार या पुनर्निर्माण किया। चंग-छुव-ओद ने शासन अपने बड़े भाई ल्हा-इद-होद-हद के सुपुर्द किया हुआ था। इसके शासनकाल में रिन-चेन-जंग-पो सन् 989 में कश्मीर तथा भारत भ्रमण के बाद गुगे लौटा। ल्हा-हद-होद-इद ने विद्वानों की एक सभा बौद्ध ग्रंथों के अनुवाद के लिए बुलाया। रिन-चेन-जंग-पो को महाअनुवादक (महालोचावा) भी कहा जाता है क्योंकि उन्होंने समस्त बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया और स्पीति में 108 बौद्ध मठों का निर्माण किया। दूसरी भारत यात्रा से रिन-चेन-जंग-पो सन् 1005 में वापस लौटे जब बत्तीस बौद्ध कलाकार साथ आए जिन्होंने ताबो सहित अन्य मठों में कलाकृतियों का निर्माण किया। ल्हा-चेन-उत्तपाल (1080-1110) के समय भी स्पीति लद्दाख के अधीन रही। स्पीति यद्यपि गुगे राज्य में थी किंतु यह लद्दाख के अधीन रही। लद्दाख के शासकों ने एक लंबे समय तक शासन किया। छै-द्पल-दोन-गुव (1710-1840) डोगरा सेनापति ने लद्दाख को जीता और कश्मीर में मिला दिया। लद्दाख का स्पीति पर शासन होते हुए भी स्पीति अपने में स्वतंत्र रहा। स्पीति का प्रबंध ग्याल्पों के अधीन रहा जो स्थानीय सामंत या शासक थे।

जब बालतियों ने लद्दाख को हराया, उस समय स्पीति लद्दाख से अलग हो गया किंतु जमयङ् नमझाल (1560-90) के पुत्र सेंगे नमझाल (1590-1620) ने बालतियों को हराकर पुनः लद्दाख स्वतंत्र किया। सेंगे नमझाल के बाद उसके छोटे पुत्र देछोग (1620-40) को स्पीति दी गई किंतु शासक लद्दाख का ही रहा। देलग नमझाल (1645-80) के समय या सन् 1681 में लद्दाख तथा गुगे का युद्ध हुआ। स्पीति गुगे सहित तिब्बत के अधिकार में आ गया। सन् 1642 में तिब्बत में दलाई लामा का शासन आरंभ हो गया था। किंतु देलग नमझाल ने तिब्बत के सेनापति

की पुत्री से विवाह कर स्पीति को पुनः दहेज में ले लिया। अतः फिर से यह लद्दाख का अंग बनी।

बुशहर के राजा केहरी सिंह (1639-96) के समय ल्हासा के सेनापति ग्यालदन छड. तथा केहरी सिंह के बीच संधि हुई। इस संधि के अनुसार दोनों राज्यों के व्यापारिक संबंध बने। सन् 1681 में हुई यह संधि 1947 तक कायम रही।

सन् 1672-1717 के मध्य कुल्लू के राजा मान सिंह ने भी स्पीति पर आक्रमण कर यहां से कर वसूल किया।

अतः स्पीति, लद्दाख, कुल्लू और बुशहर के अधीन रही। सन् 1821 में विलियम मूरक्राफ्ट और ट्रेबेक के समय स्पीति लद्दाख के अधीन थी। किंतु कुल्लू को भी कर दिया जाता था। महाराज गुलाब सिंह के सेनापति जोरावर सिंह ने 1835 में लद्दाख पर अधिकार किया और बसंत ऋतु आने पर लेह पर भी अधिकार कर लिया। लद्दाख के शासक ने बुशहर में शरण ली। अतः स्पीति का क्षेत्र भी जम्मू के अधिकार में आ गया। महाराजा गुलाब सिंह ने सन् 1841 में रहीम खां को स्पीति का गवर्नर नियुक्त किया। सेनापति जोरावर सिंह 1841 के ग्रीष्म में तिब्बत पर आक्रमण के समय रहीम खां को भी साथ ले गया। युद्ध में जोरावर सिंह मारा गया और रहीम खां पकड़ा गया। उसे ल्हासा ले जाकर मार दिया गया। इसी बीच (1841) सिक्खों ने कुल्लू को अपने अधिकार में कर लिया और सेना स्पीति भी भेजी गई किंतु इस सेना को वापस लौटना पड़ा। यह भी कहा जाता है कि स्पीति के लोग घरों को छोड़ पहाड़ों में भाग गए और सिक्खों द्वारा गांव तथा मठों को लूटा गया। मठों को जलाया गया।

सन् 1846 में पंजाब का रावी से सिंधु नदी तक पहाड़ी क्षेत्र, लद्दाख तथा स्पीति जम्मू के राजा गुलाब सिंह को मिला। अंग्रेजों ने स्पीति को कुल्लू में मिलाया और स्पीति के बदले अन्य भूभाग दिया गया। अतः कुल्लू, लाहौल-स्पीति को मिलाकर एक डिवीजन बनाया गया। सन् 1849 में कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर मेजर हे ने स्पीति जाकर शासन संभाला और इस बारे में एक विस्तृत रिपोर्ट दी गई जिसे कांगड़ा के डिप्टी कमिश्नर ईगर्टन ने 1864 में प्रकाशित किया। सन् 1846 में कनिंघम ने स्पीति, लद्दाख और तिब्बत की सीमाएं निर्धारित कीं।

स्पीति के ग्याल्पों को अब तक नोनो कहा जाने लगा था। अंग्रेजों ने स्थानीय शासन नोनो के हाथ में दे दिया। नोनो को मजिस्ट्रेट और सब जज का अधिकार भी दिया गया।

नोनो कलजुंग
|
नोनो तनजान लमग्याल
|
नोनो दुर्जी चेतन
(जन्म 1833)

कर्नल मैसी ने लिखा है कि नोनो (श्रेष्ठ सज्जन) दुर्जी चेतन स्पीति के शासक वंश का मुखिया है। स्पीति पहले एक बहुत ही दुर्गम दक्षिणी जिला था और अब जिला कांगड़ा के सबडिवीजन कुल्लू का एक भाग है।

तनजान लमग्याल के बुढ़ापे के कारण सन् 1878 में रियासत का प्रबंध छोड़ दिया तो उत्तराधिकार पुत्र नोनो दुर्जी चेतन को मिला। इसे फौजदारी अधिकार प्राप्त थे तथा मालगुजारी भी वसूल करता है। मालगुजारी का 6/16 भाग इसे मिलता था जो 282 रुपए के बराबर थी। नोनो पचास एकड़ भूमि का मालिक था।

दुर्जी चेतन का जिला कांगड़ा के वायसरीगल दरबारियों में 16वां स्थान था।

सुकेत

कुछ संदर्भ

सुकेत के उत्तर में मंडी, पूर्व में सराज (कुल्लू), दक्षिण में शांगरी, भज्जी, बाघल, मांगल तथा पश्चिम में बिलासपुर है। हचिसन-वोगल ने उस समय में सुकेत का क्षेत्रफल 420 वर्गमील और जनसंख्या 58,408 बताई है।

सुकेत की राजधानी सुकेती खड्ड के किनारे स्थित रही है जिसका नाम सुक्षेत्र था।

कनिंघम ने सर्वप्रथम सुकेत की वंशावली की ओर ध्यान दिलाया और आर्कियोजिकल सर्वे में छापा। एक इतिहास सरदार हरदयाल सिंह द्वारा छापा गया। मंडी तथा कुल्लू के इतिहास में भी कुछ संदर्भ मिलते हैं। मुस्लिम इतिहासकारों ने केवल एक बार सुकेत का उल्लेख किया है।

सुकेत का पुराना इतिहास अन्य इतिहासों की भांति है। यहां छोटे-छोटे राजा राणा राज करते थे। इनकी आपस में छोटी-मोटी लड़ाइयां चलती रहती थीं।

सुकेत का राजवंश मंडी, क्योंथल, किश्तवाड़ की भांति सेन वंश से संबंधित है। ये अपने को चंद्रवंशी राजपूत कहते हैं जो महाभारत के पांडवों के वंशज थे। ये तीन भाई—वीर सेन सुकेत, गिरि सेन क्योंथल तथा हमीर सेन किश्तवाड़ के शासक बने। कनिंघम के अनुसार यह राजवंश 765 ई. में स्थापित हुआ। बंगाल के सेन वंश में वीर सेन सातवीं शताब्दी में शासक हुआ। इससे यह सेन वंश स्थापित हुआ। सुकेत का राजा अर्जुन सेन (1540) कुल्लू के राजा बहादुर सिंह (1530-59) का समकालीन था। अतः वंशावली के अनुसार अर्जुन सेन से पहले पैंतीस पीढ़ियां हुईं। एक पीढ़ी को बाईस वर्ष दिए जाएं तो 770 वर्ष बनते हैं, अतः राज्य की स्थापना अनुमानतः 770 ई. में हुई।

चंबा वंशावली में भी सुकेत का संदर्भ आता है। लगभग 800 ई. में ब्रह्मपुर (भरमौर) में बाहरी आक्रमण हुआ, आक्रमणकारियों को 'किर' कहा गया जिसमें राजा की मृत्यु हो गई। उसकी रानी को सुरक्षित निकाल लिया गया। रास्ते में मूषक वर्मन का जन्म हुआ। नन्हे राजकुमार और रानी ने सुकेत में शरण ली। बड़ा होने पर मूषक वर्मन का विवाह राजा की पुत्री से हुआ और दहेज में पांगणा जागीर के रूप में दिया।

मूषक वर्मन को सेना भी दी गई जिसके द्वारा उसने कीरों को बाहर निकाल राज्य पुनः वापस लिया।

परंपरा में उल्लेख है कि उस समय के सुकेत नरेश के दूसरे पुत्र को सेना के साथ मूषक वर्मन की सहायता के लिए भेजा गया जो बाद में चन्हौंता में बस गए। चन्हौंता से वे बाद में खनियारा (धर्मशाला) आए और वहां बसे।

सुकेत का संदर्भ बिलासपुर के इतिहास में भी आता है। राजा वीरचंद के समय (लगभग 800 ई.) में निम्न कवित्त गाई जाती है :

'पहले बागल जित्ते कुनिहार ठकुराई। बेजा, धामी मारकर क्योंथल पाई धाय।'

इससे स्पष्ट है कि क्योंथल राज्य उस समय विद्यमान था। क्योंथल तथा सुकेत राज्य एक ही राजवंश से थे। कुल्लू के इतिहास में भी सुकेत की बात आती है। कुल्लू के राजा भूपाल या भूपपाल के समय कुल्लू पर सुकेत का हमला हुआ और राजा को बंदी बनाया गया। यह संदर्भ सुकेत के इतिहास में आता है। भूपाल के बाद तीन पीढ़ियों तक कुल्लू सुकेत के अधीन रहा। कुछ समय के लिए कुल्लू स्वतंत्र हुआ किंतु पुनः आक्रमण से अगली तीन पीढ़ियों तक फिर सुकेत के अधीन रहा। यह घटनाएं 900 ई. से पहले की रही होंगी।

सुकेत राजवंश की एक शाखा, जो किश्तवाड़ में गई, के संदर्भ 1087 ई. में राजतरंगिनी में मिलते हैं। राजा उत्तम चंद अन्य सात करद शासकों के साथ कश्मीर में उपस्थित था। उत्तम चंद वंशावली में दसवां राजा था और यह घटना लगभग 900 ई. की रही होगी।

सुकेत के राजाओं में राजा को 'सेन' लगाया जाता है किंतु राजा के अतिरिक्त अन्य 'सिंह' भी लगाते हैं।

सिखों के समय कांगड़ा को तो नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। कांगड़ा के राजा तीन शाखाओं में बांट दिए गए किंतु मंडी-सुकेत को विशेष अंतर नहीं पड़ा। कर्नल मैसी ने लिखा है :

'मंडी और सुकेत के राजाओं की कुछ खास सूरत है। सिखों ने इनके मुल्क को तो जरूर फतेह कर लिया था मगर इंतजाम इन्हीं के हाथ में रहने दिया था। इस वजह से बहुत हद तक सरकार इनके साथ ज्यादा मेहरबानी से बर्ताव करने के लिए तैयार होगी।

'अगर मंडी, सुकेत के राजाओं को आम कायदे से, जो औरों पर लागू होता है, अलग रखा जाए तो इसमें कुछ शक नहीं कि और राजाओं को, जिन्हें अपने बुजुर्गों का मुल्क नहीं मिलेगा, अवश्य दुःख पहुंचेगा, मगर सुकेत और मंडी के राजाओं की हालत औरों से बेशक जुदा है और यह बात मैं सब राजाओं पर जाहिर कर चुका

हूं।...राजा सुकेत और मंडी के बारे में भी मेरी यह राय है कि मुल्क का इंतजाम परीक्षा के तौर पर इनके सुपुर्द किया जाए। मेरा खयाल है कि सिवाय लोहा और नमक की खानों के, जिन पर थोड़ा सा महसूल लगाना वाजिब है, सरकार को और हर एक चीज का महसूल खत्म कर देना चाहिए।'

मैसी साहब ने लिखा है कि सुकेत का क्षेत्रफल 400 वर्गमील और जनसंख्या 55000 है। आमदनी 1888 ई. तक डेढ़ लाख रुपए पर पहुंच गई थी जिसमें 11000/- रुपए अंग्रेजी सरकार को कर के रूप में दिया जाता है। राजा साहब को ग्यारह तोपों की सलामी दी जाती है और पंजाब के राजाओं में उनका पंद्रहवां नंबर है।

राजवंश

वीर या बीर सेन (765)

कहा जाता है कि ज्यूरी में सतलुज पार करने के बाद बीर सेन अन्य राजपूत साथियों सहित आगे बढ़ता गया और उसने राणा तथा ठाकुरों को जीत लिया। सबसे पहले करोली के ठाकुर को जीता गया। उसके बाद बटवाड़ा का राणा श्रीमंगल हराया गया जो करोली के ठाकुर की सहायता कर रहा था। यहां से बीरसेन कोट तथा परगना की ओर बढ़ा। उसने चुराग के ठाकुर को अपने अधीन किया। चिंडीवाला ठाकुर भी करद बना। बीर सेन के आगे बढ़ने पर खुनु का राणा भाग गया और कांजू व धियारकोट को संघर्ष के बाद जीता गया। यहां के राणा को जागीर दी गई जो श्याम सेन (1627-58) के समय तक रही।

इन सब इलाकों को जीतने के बाद बीर सेन ने कुनु धार पर महल बनवाया और अपने परिवार को, जो सतलुज के पूर्व में था, वहां बुला लिया। इस महल को बहुत समय तक 'नरोल' कहते रहे जिसका अर्थ पर्दा या प्राइवेसी होता है।

इसके बाद बीर सेन ने सतलुज के पश्चिम में छोटे-छोटे राणाओं-ठाकुरों को जीतना आरंभ किया। कांजू की सहायता से उसने कोटी डेहर के ठाकुर को हराया और नांज, सलाऊ, बेलू आदि को शामिल किया। कांजू तथा मागरा में किले बनाए गए। इसके बाद उसने दक्षिण-पश्चिम में कांडली कोट के ठाकुर को जीता। इसके बाद चांदमारी, जहोर तथा पांगणा इलाके के ठाकुर को हराया। इस ठाकुर ने राजा को हड़याड़ा के ठाकुर को हराने को उकसाया। ठाकुर वहां से भाग गया। वहां टिकर में किला बनाया गया।

बीर सेन ने इन सब इलाकों को जीतने के बाद पांगणा में लगभग पांच हजार फुट की ऊंचाई पर एक किला तथा महल बनाया। इसे ही राजधानी बनाया गया। यह

किला अभी तक पांगणा में विद्यमान है और काष्ठ वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

बीर सेन ने क्वासी का किला भी बनाया। कुमारसेन की सीमा पर बीरकोट का किला भी जीता। इसके बाद सराज क्षेत्र में श्रीगढ़, नारायणगढ़, रघुपुर, जंज, माधोपुर, बंगा, चंगवाला, मगरू, मानगढ़, टुंग, जलोड़ी, हिमरि, रायगढ़, फतेहपुर, रायसन, कोट मनाली के किले जीते जो उस समय कुल्लू के अधीन थे। बीर सेन ने कुल्लू के परोल, लग, रूपी, सारी, डुमरी इलाकों पर भी हमले किए। कुल्लू का राजा भूपाल या भूपपाल था जिसने बीरसेन का मुकाबला किया किंतु हार गया। उसे बंदी बनाया गया और बाद में कर देने पर छोड़ दिया गया।

कुल्लू के इलाकों पर विजय के बाद बीर सेन ने पंडोह, नाचन, चच्योट तथा सतगढ़, नंदगढ़ आदि जीते। इसके बाद वह बल्ह क्षेत्र की ओर बढ़ा और सिकंदर धार तक पहुंच गया। हरली का राणा हराया गया और वहां अपने नाम से बीरकोट नामक किला बनाया। बीर सेन ने सिर खड्ड में किला बनाकर कांगड़ा के साथ सीमा निर्धारित की।

अतः बीर सेन का राज्य सतलुज से लेकर व्यास तक फैल गया।

बीर सेन का पुत्र धीर सेन हुआ जिसने बहुत कम समय राज किया। इसके शासनकाल की कोई घटना पता नहीं चलती। धीर सेन के बाद विक्रम सेन शासक बना।

विक्रम सेन

विक्रम सेन धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसने अपने भाई त्रिविक्रम सेन को गद्दी सौंपी और खुद धर्मयात्रा पर हरिद्वार चला गया। दो वर्ष वह यात्रा पर ही रहा। इस समय कुल्लू का राज्य हस्तपाल के अधीन था जिसे त्रिविक्रम ने स्वतंत्र कर दिया ताकि वह उसके शासक बनने में सहायक हो। अतः विक्रम सेन की वापसी तक त्रिविक्रम ने अपनी गद्दी सुरक्षित कर ली। जब विक्रम सेन को इस बात का पता चला तो वह अपने संबंधियों के यहां क्योंथल चला गया, जिन्होंने इसे सेना दी। अतः विक्रम सेन तथा त्रिविक्रम की सेनाएं सतलुज के किनारे ज्यूरी में एकत्र हुईं। हस्तपाल ने त्रिविक्रम का साथ दिया किंतु विक्रम सेन जीत गया और पुनः राजा बना।

विक्रम सेन ने पुनः कुल्लू पर हमला किया और हराने के बाद जागीर देकर अपने अधिकारी तैनात किए।

विक्रम सेन की मृत्यु पर उसका पुत्र धरित्रि सेन राजा बना किंतु इसके शासनकाल का कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है। इसके दो पुत्र थे जो राजा के जीते-जी

मर गए। इनमें से छोटे का नाम खड़क सेन था। खड़क सेन का पुत्र लक्ष्मण सेन, जो मात्र दो वर्ष का था, धरित्रि सेन के बाद राजा बना।

लक्ष्मण सेन

लक्ष्मण सेन दो वर्ष की आयु में राजा बना अतः अवसर का लाभ उठाते हुए कुल्लू के राजा हशीर या हमीर पाल ने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। चौदह वर्ष बाद जब लक्ष्मण सेन युवा हुआ तो उसने कुल्लू पर हमला किया और रूपी, लगसारी, परोल के एक भाग को जीत पुनः करद राज्य बना दिया।

लक्ष्मण सेन के बाद के राजाओं का विवरण नहीं मिलता। लक्ष्मण सेन के बाद उसका पुत्र चंद्रसेन राजा बना। यह निःसंतान मर गया। इसका भाई विजय सेन उत्तराधिकारी बना जिसने संभवतः लंबे समय तक राज किया किंतु कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है।

साहु सेन (1000 ई.)

विजय सेन के दो पुत्र थे—साहु सेन तथा बाहु सेन। साहु सेन बड़ा था अतः उत्तराधिकारी बना। दोनों भाइयों के संबंध आपस में अच्छे नहीं रहे अतः आंतरिक कलह चलती रही। अंततः बाहु सेन कुल्लू के मंगलौर में चला गया जहां उसने छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया। बाहु सेन की बारहवीं पीढ़ी में मंडी राज्य की स्थापना हुई और सुकेत का भाग छीनकर एक बड़ा राज्य अस्तित्व में आया।

रतन सेन (1020)

रतन सेन के समय का विवरण उपलब्ध नहीं है। रतन सेन के बाद उसका बड़ा पुत्र बिलास सेन राजा बना। बिलास सेन एक क्रूर शासक साबित हुआ। चार वर्ष के शासन के बाद उसे दरबारियों ने जहर दे दिया और उसके भाई समुद्र सेन को गद्दी पर बिठाया। बिलास सेन का एक छोटा पुत्र सेवंत सेन था जिसे लेकर रानी सराज के एक जमींदार के यहां छिपकर रही। एक बार एक जोगी ने उस बालक को देखा और घोषित किया कि वह एक दिन राजा बनेगा। जमींदार ने रानी से पूछा तो उसने रहस्य बता दिया। किंतु किसी को भी बताने के लिए मना किया।

समुद्र सेन ने चार वर्ष तक राज किया। समुद्र सेन के दो पुत्र हेवंत सेन तथा बलवंत सेन थे। दोनों को गद्दी पर बिठाया गया किंतु दोनों की मृत्यु हो गई। अतः गद्दी उत्तराधिकारी के बिना हो गई। दरबारियों को ज्ञात था कि बिलास सेन का एक बालक था। उसे खोजा गया और राजगद्दी सौंपी गई।

सेवंत सेन (1120)

सेवंत सेन ने राजा बनने पर उस जमींदार को जागीर सौंपी जिसके यहां वह रहा था। उस गांव में 'रानी का कोट' नाम से किला बनवाया। अभी भी उस इलाके को रानी का कोट कहते हैं यद्यपि किला ध्वस्त हो चुका है। सेवंत सेन ने लंबे समय तक राज किया किंतु कोई घटना ज्ञात नहीं है।

सेवंत सेन के बाद चार राजा हुए—दिलावर सेन, बिलादर सेन, उगर सेन, विक्रम या वीर सेन। इनके शासनकाल के बारे में कोई जानकारी नहीं है। उन्होंने बारहवीं शताब्दी में राज किया होगा।

अगला राजा मंत्र सेन बिना उत्तराधिकारी के मर गया। उत्तराधिकार वंश के एक व्यक्ति लियूं फियूं को गया, जो राजा बनने के योग्य नहीं था। अतः उत्तराधिकारी ढूंढ़ने के लिए सभी राजवंश के सदस्यों, मियों को दावत दी गई। दावत में घोषणा की गई कि राज्य के एक हिस्से में राणाओं द्वारा विद्रोह कर दिया गया है। लियूं फियूं ने कहा कि दावत के बाद कोई कार्यवाही की जाएगी। मियां मदन ने दावत छोड़ दी और कहा कि यह समय दावत का नहीं है। दरबारी उसकी बहादुरी से कायल हो गए और उसे वापस ले आए। उसे लियूं फियूं के बाद राजा बनाया गया।

मदन सेन (1240)

मदन सेन ने लंबे समय तक राज किया। मदन सेन ने सबसे पहले नाचन के विरुद्ध अभियान छेड़ा। उसने पांगणा से दो कोस उत्तर की ओर मदनकोट नामक किला बनवाया जिसे बाद में मदनगढ़ कहा जाने लगा। उसने अपने राज्य का विस्तार किया। उसने व्यास के पास द्रंग के राणा को हराकर नमक की खानें अपने अधीन कर लीं। उसने हर घर से एक पत्था अनाज नाविकों के लिए लगाया जो व्यास पार करते थे। यह प्रावधान मंडी राज्य में भी चलता रहा।

द्रंग के आगे गुम्मा के राणा ने मदन सेन से कड़ा संघर्ष किया किंतु बाद में हार हुई। मदन सेन यहां से लकड़ी का एक बड़ा पात्र ले गया जो पांगणा किले में रखा गया। इसके बाद राजा ने कुल्लू को जीता और मनाली के पास कोठी में सीमा निर्धारित की। पार्वती घाटी में सीमा वजीरी रूपी बनी। वापसी पर कोठी खोखण में उसने मदनपुर का किला बनवाया।

कुल्लू के इतिहास में उल्लेख है कि सुकेत के राजा ने (संभवतः मदन सेन) व्यास के दाएं किनारे मनाली से बजौरा तक का इलाका राणा भोसल को दिया जिसने सुकेत की राजकुमारी ब्याही हुई थी। नग्गर के पास बैरागढ़ का किला प्रमुख केंद्र था। राणा भोसल अपनी मूर्खता के लिए प्रसिद्ध था। उसने वजीर की सलाह पर रानी

को एक कुल्ह या नहर के लिए जिंदा बलि कर दिया। यह सुनकर सुकेत के राजा ने सेना सहित आकर वजीर को मार दिया। राणा को हटा दिया। मौखिक परंपरा में राणा का नाम मदन सेन की जगह रूपचंद दिया है। संभवतः रूपचंद सुकेत के राजा का प्रतिनिधि रहा होगा।

कुल्लू के इतिहास में उल्लेख है कि सुकेत के राजा ने इस पाप के प्रायश्चित्त के लिए लग तथा सारी की वजीरी पुरोहित को दे दी। किंतु यह सुकेत इतिहास के अनुसार सही नहीं है। सुकेत के इतिहास के अनुसार यह दान राजा पर्दत सेन के समय बाद में दिया गया।

मदन सेन ने भज्जी तथा कुमार सेन के विरुद्ध भी अभियान छेड़ा क्योंकि इन्होंने कर देना बंद कर दिया था। इन्हें हराया गया। इसके बाद बटवाड़ा के राणा श्रीमंगल ने कहलूर के साथ मिलकर विद्रोह किया जिसे मदन सेन ने हराकर सतलुज के पार भगा दिया। यहां उसने मांगल नाम से एक छोटा राज्य स्थापित किया।

मदन सेन ने हटली, महल मोरियां (कांगड़ा), गलोड़ी (कहलूर) के राणाओं को हराया और कुटलैहड़ की सीमा तक पहुंच गया। बिलासपुर की ओर सियोनी, तियोनी तक पहुंचने के बाद डेहर में किला बनवाया। अंत में वह बल्ह से होकर पांगणा लौटा।

मदन सेन के शासनकाल में एक घटना हुई बताई जाती है जिसके कारण राजा ने पांगणा छोड़ दिया। कहा जाता है कि एक बार राजा पांगणा किले में सोया था, उसे वहां की देवी के दर्शन हुए। देवी ने कहा कि जहां राजा सोया है वह उसका स्थान है अतः वह उसे छोड़ दे अन्यथा अच्छा नहीं होगा। जब राजा सुबह जागा तो उसने सिंहासन पर एक मूर्ति देखी जिसके साथ तलवार रखी थी। अतः राजा ने वहां मंदिर बनवाया जो अभी तक है।

इस घटना के बाद उसने पांगणा छोड़ने का निश्चय किया और राजधानी मंडी तथा सुकेत के बीच बल्ह में लोहारा बदल दी। पांगणा में अष्ठम्बनाथ का मंदिर भी बनाया।

मदन सेन ने संभवतः तेरहवीं शताब्दी के मध्य से अंत तक शासन किया। इसके शासनकाल में सुकेत अपनी चरम सीमा तक पहुंची। मदन सेन के बाद कभी राज्य का इतना विस्तार नहीं हुआ।

मदन सेन के बाद दरिर सेन, धरित्रि सेन, पर्वत सेन, काम सेन तथा तीन और शासक हुए जिनका कोई रिकॉर्ड नहीं मिलता। इनके नाम भी वंशावली में नहीं हैं। आठवां राजा संग्राम सेन था, जो वीर सेन से 28वां था। संग्राम सेन के बाद महान सेन राजा बना।

मदन सेन के बाद के समय में मंडी के राजाओं को अपनी सीमाएं बढ़ाने का अवसर मिला। उधर कुल्लू ने भी अपने क्षेत्र छुड़ाए।

महान सेन (1480)

महान सेन के विषय में कहा जाता है वह एक ब्राह्मण की पत्नी के प्रेम में अंधा हो गया। जब ब्राह्मण बाहर जाता था वह उसके घर चला जाता। एक बार ब्राह्मण को किसी ने इस बारे में बता दिया। वह एक रात बाहर जाने के बहाने घर में ही छिपा रहा। उसने महान सेन को मार दिया। बाद में पता चला कि यह तो राजा था अतः उसने सारी बात रानी को बताई। रानी ने बिना कुछ कहे राजा को मृत्यु के बाद जला दिया।

महान सेन का कोई पुत्र नहीं था अतः उसका चाचा हैवत सेन राजा बना किंतु उसका शासन कुछ ही समय के लिए रहा। इसके बाद अमर सेन तथा अजिमर्दन सेन। एक वंशावली में पर्वत सेन और पदम सेन राजा लिखे हैं।

पर्वत सेन (1500)

पर्वत सेन के विषय में कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है किंतु कुल्लू के इतिहास में इस समय का उल्लेख आता है। कहा जाता है कि राजा ने बिना किसी प्रमाण के पुरोहित को सजा दे दी। उसे एक बांदी के साथ संबंध होने की सजा दी गई। पुरोहित ने आत्महत्या कर ली और आत्महत्या से पहले राजा को शाप दिया। इसके बाद पर्वत सेन का स्वास्थ्य गिरने लगा। उसने ब्राह्मण के परिवार को लग तथा सारी की जागीर दी। किंतु शीघ्र ही राजा की मृत्यु हो गई।

इस पुरोहित परिवार ने लग तथा सारी की वजीरी ली और बाद में स्वतंत्र शासक बने। उन्होंने रायसन से बजौरा तक सीमा बढ़ाई जिसमें सराज तथा भंगाल के हिस्से भी थे। इनका राज राजा जगत सिंह (1650) तक रहा।

करतार सेन (1520)

सुकेत की राजधानी लोहारा को ब्राह्मण की आत्महत्या से शापित समझा जाने लगा, अतः उसे छोड़कर राजा ने तारामारी के जंगल में महल बनाया। महल के नीचे एक शहर बसाया जिसका नाम करतारपुर रखा। यह स्थान वर्तमान राजधानी सुंदरनगर से दो मील उत्तर में पुराना नगर था।

करतार सेन की रानी जसवां की राजकुमारी थी। वह धार्मिक स्थानों तथा ब्राह्मणों के प्रति बहुत उदार थी। करतार सेन ने बीस वर्ष तक राज किया।

अर्जुन सेन (1540)

अर्जुन सेन कुल्लू के राजा बहादुर सिंह का समकालीन था। कुल्लू परंपरा में अर्जुन सेन को सिद्ध सिंह का समकालीन बताया है जो गलत है। सिद्ध सिंह को राणा ठाकुरों ने पहाड़ियों में खदेड़ दिया था जहां से उसने पुनः इलाके जीतने आरंभ किए जिनमें अधिकांश सुकेत में थे। बड़ागढ़ जीतने के बाद जब वजीरी रूपी की बारी आई तो वहां के जमींदार अर्जुन सेन के पास गए। अर्जुन सेन ने उन्हें कुछ दिन इंतजार कराया और फिर उलाहना दिया कि रूपी की गायें मेरे पास क्यों आई हैं और उनकी सहायता करने से मना कर दिया। अतः वे अब बहादुर सिंह से मिल गए जो सिद्ध सिंह का उत्तराधिकारी बना था। बहादुर सिंह ने उनका स्वागत किया। अतः वे स्वेच्छा से कुल्लू के अधीन हो गए। अर्जुन सेन के कार्यकाल में कई राणा तथा ठाकुरों ने भी विद्रोह किया। उधर मंडी की ओर से भी राज्य विस्तार की नीति आरंभ हो गई थी। अतः इस राजा के समय आधा राज्य जाता रहा जो कभी दोबारा वापस नहीं आया।

उदय सेन (1560)

अर्जुन सेन के बाद उसका पुत्र उदय सेन उत्तराधिकारी बना। उदय सेन ने अपने पिता के समय हुई हानि को कुछ हद तक पूरा किया। उसने छोटे-छोटे राणाओं को हराया। छेदूदी के राणा को हराकर उसने उदयपुर नाम से किला बनाया। वह अकबर का समकालीन था किंतु मुगलों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। किंतु लगभग सभी पहाड़ी रियासत मुगलों के अधीन थी अतः संभवतः यह क्षेत्र भी मुगलों के अधीन था।

दीप सेन (1590)

कहा जाता है दीप सेन ने लंबे समय तक राज किया किंतु उसके समय की कोई घटना ज्ञात नहीं है। हचिसन-वोगल का मत है कि अर्जुन सेन के बाद किसी भी राजा का काल तीस वर्ष से कम नहीं रहा होगा।

श्याम सेन (1620)

राजा श्याम सेन की दो रानियां थीं, एक गुलेर से और दूसरी बुशहर से। वे दोनों एक ही समय गर्भवती हुईं अतः एक-दूसरे से ईर्ष्या करने लगीं। गुलेरी रानी से एक पुत्र पहले हुआ जिसे टिक्का घोषित किया गया। इसी रानी के एक और पुत्र हुआ जिसका नाम पृथी सिंह था और एक लड़की हुई जिसे कहलूर के राजा को ब्याहा गया। बुशहरी रानी को भी पुत्र हुआ जिसका नाम हरि सिंह रखा गया। वह

गुलेरी रानी के टिक्का राम सेन को रास्ते से हटाने का षड्यंत्र रचने लगी। उसने मियां जघनुन से मिलकर षड्यंत्र रचा और मौका मिलते ही राम सेन को तहखाने में धकेल दिया। जब बालक गायब हो गया तो राजा के छोटे भाई नौरंग सिंह ने उसे तहखाने से ज़िंदा खोज निकाला। अतः बुशहरी रानी को पुत्र तथा मियां जघनुन सहित देश-निकाला दे दिया।

मुगलों का प्रथम बार उल्लेख श्याम सेन के समय हुआ है। कहा जाता है कि औरंगजेब ने राजा तथा उसके भाई नौरंग को लाहौर बुलाया और एक किले पर कब्जा करने का आदेश दिया जिसमें वे सफल रहे। अतः राजा को बादशाह द्वारा खिल्लत देने के साथ अपनी मुद्रा चलाने की भी अनुमति दी गई।

श्याम सेन के समय कहलूर के साथ लड़ाई हुई। राजा की गुलेरी रानी से हुई राजकुमारी का ब्याह कहलूर के राजा कल्याण चंद से किया गया था। कहा जाता है एक बार राजा कल्याण चंद रानी के साथ सारपासा खेल रहा था। उसी समय किसी ने उसे 'सात धारों का राजा' कहकर संबोधित किया। इस पर रानी ने कह डाला कि इनमें से एक धार तो सुकेत राज्य में है। इससे राजा को गुस्सा आ गया और उसने चैस बोर्ड माथे पर मारा जिससे खून निकल आया। इसके बाद सुकेत पर हमले का एलान किया और मंडी के राजा सूरत सेन से सहायता मांगी। रानी ने माथे से निकले खून से पिता को इस बारे में चेतावनी देते हुए गुप्त पत्र लिख दिया। अतः दोनों सेनाओं का महादेव में युद्ध हुआ जिसमें मंडी तथा कहलूर की हार हुई और सूरत सेन भाग गया। कल्याण चंद का लड़ाई के आरंभ में ही घोड़ा जख्मी हो गया। उसने मियां संघवाल से घोड़ा मांगा जिसने इनकार कर दिया। उस पर सुकेत के पठान सैनिकों ने हमला कर दिया और जख्मी हालत में बंदी बना लिया गया। यह भी कहा जाता है कि बिलासपुर जाने से पहले कल्याण चंद ने सुकेत के तालाब में अपने घोड़े को पानी पिलाने की कसम खाई थी अतः श्याम सेन ने आदेश दिया कि जख्मी राजा को सुकेत लाया जाए। उसे पालकी में लाया जा रहा था किंतु रास्ते में ही दम तोड़ गया। जहां कल्याण चंद की मृत्यु हुई उस स्थान को 'कल्याण चंद की द्वारी' कहा जाता है। जो ब्राह्मण राजा के मृतक शरीर को बिलासपुर ले गया उसे नौका कर से मुक्त किया गया। मियां संघवाल जिसने राजा को घोड़ा देने से इनकार किया, के परिवार को घुड़सवारी से वंचित कर दिया गया।

श्याम सेन संभवतः नूरपुर के राजा जगत सिंह का समकालीन था। राजा जगत सिंह पहाड़ी राजाओं को जीतना चाहता था। मुगल दरबार में भी उसकी अच्छी पहुंच थी। चंबा और बसोहली को अपने अधीन करने के बाद उसकी नजरें मंडी-सुकेत पर लगीं। जम्मू में विद्रोह को दबाने के लिए एक अभियान भेजा गया जिसके लिए

श्याम सेन ने जम्मू के राजा से अच्छे संबंध होने के कारण मना कर दिया। अतः नूरपुर के जगत सिंह ने मुगल दरबार में उसकी शिकायत कर दी। श्याम सेन तथा उसके भाई नौरंग को दिल्ली बुलाया गया और कैद कर दिया। गुलेर के मान सिंह को भी ऐसी ही शिकायत के कारण जेल में बंद कर रखा था। दिल्ली में कैद होने पर श्याम सेन ने अपने देवता मांहुनाग से प्रार्थना की जो मधुमक्खी बनकर प्रकट हुआ और राजा को छुड़ाने का वचन दिया। बाद में दोनों राजाओं को सन् 1641 में जगत सिंह द्वारा विद्रोह किए जाने के समय छोड़ दिया गया।

दिल्ली से वापसी पर राणा बुशहर द्वारा श्याम सेन को रोका गया, क्योंकि राज्य ने बुशहरी रानी को देश-निकाला दिया था। राणा बुशहर हार गया और 50,000 रुपए नजराना देने पर राजा की उपाधि दी गई। इस राशि से सुकेत से बारह मील उत्तर में मानगढ़ नाम का किला बनाया गया। राजा का भाई नौरंग संभवतः जेल में ही मर गया।

दिल्ली से वापसी पर मांहुनाग की कृपा के कारण राजा ने चार सौ रुपए वार्षिक जागीर मंदिर को दी। बाद में यह जागीर तीन सौ रुपए कर दी गई थी।

श्याम सेन के कारावास के समय राजा कुल्लू तथा मंडी की संयुक्त सेनाओं ने सराज पर आक्रमण किया। ये राजा संभवतः जगत सिंह (कुल्लू) और सूरज सेन (मंडी) थे। राजा कुल्लू ने श्रीगढ़, पीरकोट, नारायणगढ़, जांजी, जलोड़ी, रघुपुर, डुमरी, मदनपुर, भामरी के इलाके जीत लिए और मंडी ने गढ़ (सराज-मंडी), रायगढ़, मगरू, तुंगासी, माधोपुर, बुंगा, फतेहपुर, बाज थाज, बंसी, गुडाह आदि इलाके जीते। इस लड़ाई में स्थानीय राणाओं ने हमलावरों का साथ दिया अतः बहुत सा क्षेत्र सुकेत के हाथ से निकल गया जिसमें मदन सेन द्वारा जीता कुटलैहड़ का क्षेत्र भी था।

कारावास से वापसी पर इन हारे हुए क्षेत्रों के बारे में राजा ने सरहिंद के नवाब के माध्यम से इलाकों को वापस लेने हेतु बादशाह से गुहार की जिसके लिए आदेश भी दे दिए गए। किंतु आदेशों के लागू होने से पहले ही नवाब की मृत्यु हो गई अतः मामला खत्म हो गया।

श्याम सेन ने बुशहर और कहलूर के खिलाफ लड़ाइयां लड़ीं किंतु बाद में शीघ्र ही सुकेत राज्य का पतन हो गया। कहा जाता है कि श्याम सेन के राज्य में एक योगी आया था। इस योगी या जोगी ने राजा को एक चोला दिया और कहा कि इसे पहनकर यदि लड़ाई लड़ोगे तो अवश्य जीत होगी। राजा ने बिना सोचे-समझे यह चोला अपने किसी सैनिक अधिकारी को दे दिया जिसे पहनते ही वह भस्म हो गया। इससे जोगी नाराज हो गया। उसने राजा को शाप दिया जिसके बाद उसकी मृत्यु

हो गई। राजा ने जोगी के मरने के बाद मंदिर बनाया, मंदिर के लिए हर घर से एक पत्था अनाज लगाया किंतु वह शापमुक्त नहीं हो सका।

राम सेन (1650)

राम सेन के समय के बाद मंडी द्वारा निरंतर अपने राज्य का विस्तार हुआ और सुकेत का राज्य सिकुड़ता गया। व्यास के उत्तर का सारा क्षेत्र मंडी में मिल गया था, सराज-मंडी तथा कमलाहगढ़ के आसपास का क्षेत्र भी मंडी में था। अतः मंडी के राजाओं की नजरें अब बल्ह की उपजाऊ भूमि की ओर थीं। सर लेपेल ग्रिफिन ने कहा है कि मंडी और सुकेत सदा प्रतिद्वंद्वी और शत्रु रहे। जब सुकेत में शक्तिशाली राजा आया तो उसने मंडी की दीवारों तक कब्जा किया और जब मंडी में राजा शक्तिशाली हुआ तो सुकेत की सीमाएं सिकुड़ीं। बल्ह की भूमि झगड़े का कारण बनी रही।

राम सेन के समय भी बल्ह को लेकर संघर्ष जारी रहा। माधोपुर को बचाए रखने के लिए राजा ने अपने नाम से रामगढ़ किले का निर्माण किया।

राम सेन लंबे समय तक राज नहीं कर पाया और उसका अंतिम समय अच्छा नहीं बीता। कुछ पुरोहितों के कहने पर राजा को अपनी पुत्री के चरित्र पर संदेह हो गया। राजा ने उसे पांगणा के किले में भेज दिया। यह संदेह आधारहीन था अतः राजकुमारी ने जहर खा लिया। शीघ्र ही वह राजा के सपने में आई और राजा को पुरोहितों के बारे में चेतावनी दी। पुरोहित शक्तिशाली थे अतः राजा उन्हें छेड़ नहीं पाया। अतः वह पागल हो गया और मर गया।

जीत सेन (1663)

जीत सेन राम सेन का पुत्र था किंतु एक वंशावली में राजा का नाम जयचंद सेन भी आता है जो राम सेन का भतीजा बताया गया है।

राम सेन के पागलपन के कारण जीत सेन को प्रशासक नियुक्त किया गया। जीत सेन को स्नायु की बीमारी थी जिससे बेहोश हो जाते हैं। कहा जाता है कि बंगाल के एक भाट ब्राह्मण ने उसे ठीक कर दिया जिसे जागीर दी गई। यह बीमारी तथा दुर्भाग्य पांगणा में मृत राजकुमारी के कारण माना गया। अतः जीत सेन ने राजकुमारी की पांगणा में मूर्ति स्थापित की और जागीर सौंपी। एक घर से एक पैसा भी लगाया गया जो उगर सेन तक चला रहा। जो पुरोहित राजकुमारी की मौत का कारण बने थे उन्हें पांगणा जाने की मनाही की गई। पुरोहित शक्तिशाली थे अतः उन्हें सजा नहीं दी जा सकी अतः राजकुमारी का शाप पूरी तरह नहीं हट पाया। जीत सेन की बाईस संतानें बचपन में ही गुजर गईं और उसके कार्यकाल में बहुत सी

सीमाएं खोनी पड़ीं। कहा जाता है कि जीत सेन हर उस लड़ाई में हारा जो उसने लड़ी।

जीत सेन के समय मंडी का राजा श्याम सेन था जो रंग का काला था। जीत सेन उसे ठीकरनाथ कहता था। एक बार श्याम सेन का संदेशहवाक सुकेत आया तो जीत सेन ने पूछा कि ठीकर नाथ क्या कर रहा है। संदेशवाहक भी हाजिरजवाब था। उसने कहा, इस समय लाल हो गया और चने भूनने को तैयार है। इस संवाद से दोनों ओर आग भड़की और दोनों राज्यों की सेनाएं बल्ह में लौहारा में मिलीं। शीघ्र ही सुकेत की हार हुई और जीत सेन भाग गया। उसे एक कटोच सैनिक ने, जो मंडी राजा की सेना में था, पकड़ लिया। जीत सेन ने प्राणों की भीख मांगी तो कटोच सैनिक ने राजा का मुकुट छीनकर उसे जाने दिया। यह मुकुट राजा श्याम सेन को दिया गया जिसके बदले उसके परिवार को द्रंग की खान से नमक लाया गया। मंडी द्वारा सुकेती खड्ड तक बल्ह का क्षेत्र मंडी में मिलाया गया।

इसके तुरंत बाद श्याम सेन के पुत्र गौर सेन ने कहलूर के राजा से मिलकर गढ़ धनयारा, बेरा तथा पेरी को जीत लिया। मंडी के आगामी शासक सिद्ध सेन ने कहलूर के भीम चंद के साथ मिलकर सुकेत पर हमला किया और बीरकोट, हरलीधार को मंडी में तथा मरयाऊली को बिलासपुर में मिलाया। सुकेत को एक धक्का तब लगा जब राज्य के एक पुरोहित अनूप ने गुप्त रूप से मंडी के राजा सिद्ध सेन से वार्ता की और कहा कि राजा नाचन के राणा पर हमला कर दे तो सुकेत की ओर से कोई सहायता की जाएगी। नाचन का राणा अपने बूते पर नहीं लड़ सकता था। उसने सुकेत को सहायता के लिए पत्र लिखे जो पुरोहित अनूप ने आगे नहीं जाने दिए। फिर भी राणा बहादुरी से लड़ा और दो वर्ष तक सामना करने के बाद वह मारा गया और उसका पुत्र हरनाथ कहलूर भाग गया। अतः नाचन के साथ चूरियां, राहियां, मदनगढ़, नंदगढ़, राजगढ़ तथा शिवपुरी (हाट) भी मंडी के कब्जे में आए।

गरुड़ सेन (1721)

जीत सेन 58 वर्ष के शासन के बाद निःसंतान मरा अतः हरि सिंह का पौत्र गरुड़ सेन उत्तराधिकारी बना। हरि सिंह को श्याम सेन के समय मां सहित देश-निकाला दिया गया था। कुछ समय तक इसे राजा मानने से इनकार किया गया। इस समय प्रशासन का कार्य पृथ्वीपुर के मियों के पास था जिन्होंने एक समिति बना रखी थी। राजा बुशहर के कुछ लोगों को लिखा कि गरुड़ सेन उत्तराधिकार के लिए उचित व्यक्ति है। श्याम सेन ने तो उस समय पृथ्वी सिंह को उत्तराधिकारी बनाया था।

कुछ अधिकारियों तथा लोगों ने गरुड़ सेन को नगर में लाकर नृसिंह मंदिर

में बिठा दिया किंतु मियां तथा पुरोहितों के भय से राजधानी के लोगों ने उसे राजा मानने से इनकार किया। अतः लोगों के भय से कुल्लू चला गया जहां उसे सम्मानपूर्वक सुकेत का राजा घोषित किया गया। कांगड़ा जाने पर भी उसे वैसा ही स्वागत मिला। रास्ते में उसने राणा हिमरी की पुत्री से विवाह किया। अतः कुल्लू व कांगड़ा के दबाव में उसे राजा माना गया। पृथ्वीपुर के मियां गढ़वाल भाग गए।

गरुड़ सेन के समय नगर से दो मील दक्षिण में बनेड़ को राजधानी बनाने का निश्चय किया गया। भीखम सेन के समय यह राजधानी बनी जिसे अब सुंदरनगर कहते हैं। गरुड़ सेन की रानी एक बुद्धिमान और सक्षम महिला थी। इसने सूरजकुंड मंदिर का निर्माण करवाया। गरुड़ सेन के इस रानी से दो पुत्र हुए, भीखम सेन तथा बहादुर सिंह। जीत सेन की पुत्री, जिसने पांगणा में जहर खा लिया था और जो अपने पिता के सपने में आई थी, गरुड़ सेन के भी सपने में आई और पुरोहित के विरुद्ध राजा को चेतावनी दी। पहले ये पुरोहित बहुत ताकतवर थे और कोई इन्हें छेड़ने की हिम्मत नहीं कर पाया। मियों के गढ़वाल भागने से ये लोग कमजोर पड़ गए। वजीर अनूप भी इनमें से एक था जो मंडी के राजा से मिला हुआ था। अतः इन पुरोहितों को बिरादरी बाहर कर दिया और अछूत करार दिया गया। इन पुरोहित वजीरों को सजा की खबर सुन नाचन के राणा का पुत्र हरनाथ, जो कहलूर भाग गया था, सुकेत वापस आया और उसे चुराग में एक जागीर दी गई जो उग्र सेन तक कायम रही। इस वंश का अंतिम राणा भगवान सिंह निःसंतान मरा अतः तीन सौ रुपए का वार्षिक भत्ता उसकी विधवा को जागीर के बदले लगाया गया।

गरुड़ सेन की मृत्यु सन् 1748 में हुई।

भीखम सेन (1748)

इस राजा के शासनकाल में पंजाब में महत्त्वपूर्ण राजनीतिक उथल-पुथल हुई। अहमदशाह दुर्रानी ने सन् 1747 में आक्रमण किया और सन् 1752 में यह दिल्ली के अहमदशाह के पास चला गया। इस अवसर का लाभ उठाते हुए सुकेत सहित कई पहाड़ी राज्य स्वतंत्र हो गए और लगभग 1765-70 तक स्वतंत्र रहे। बीच में 1758 में लगभग सभी राज्य अदीना बेग खान के अधीन रहे। यह पंजाब का सूबेदार बना। इसने पठानकोट के पास अदीनानगर बनाया। सन् 1758 में ही इसकी मृत्यु हो गई।

इसी बीच सिख शक्तिशाली हुए। जस्सा सिंह रामगढ़िया ने कांगड़ा पर हमला किया और सुकेत भी उसके अधीन आया होगा। सुकेत के इतिहास में सिखों का कोई उल्लेख नहीं है। भीखम सेन के दो पुत्र थे रणजीत सेन तथा किशन सिंह। भीखम सेन की मृत्यु सन् 1762 में हुई।

रणजीत सेन (1762)

भीखम सेन का बड़ा पुत्र रणजीत सेन सन् 1762 में गद्दी पर बैठा। इस राजा के समय मंडी से नाचन को वापस लेने का प्रयत्न हुआ और राजा के छोटे भाई किशन सिंह ने सेना का नेतृत्व किया। वह संघर्ष के बाद शिवपुरी या हाट को लेने में सफल हुआ किंतु उसके पास गोला-बारूद कम हो गया जिसे लेने के लिए सुकेत संदेशवाहक भेजा गया। ये लोग मंडी से मिले हुए थे अतः उनके मन में यह बात बिठा दी कि किशन सिंह नाचन को अपने लिए लेना चाहता है। अतः गोला-बारूद नहीं भेजा गया और किशन सिंह को अभियान बंद करना पड़ा। वह फिर कांगड़ा के संसार चंद के पास गया जो उसका दामाद था। उसने संसार चंद से सहायता लेकर सुकेत को जला दिया। यह घटना सन् 1775 के बाद घटी। इसके बाद वह जगन्नाथ चला गया।

इससे पहले पहाड़ी राज्य जस्सा सिंह रामगढ़िया के अधीन आ चुके थे जो सन् 1775 तक रहे। इसके बाद सन् 1786 तक जय सिंह कन्हैया के पास गए।

रणजीत सिंह के समय प्रशासन व्यवस्था नरपत वजीर के हाथ थी जिस पर राजा का बहुत विश्वास था। नरपत का समय सुकेत के लिए शांति तथा समृद्धि वाला रहा। कुछ समय बाद नरपत तथा टिक्का विक्रम सेन के बीच मनमुटाव हो गया। एक समय टिक्का वजीर सेन ने गुस्से में तलवार निकाल ली और वजीर को मारने ही वाला था कि राजा ने बीच-बचाव किया। इसके बाद विक्रम सेन बिलासपुर के महल मोरियां चला गया और पिता की मृत्यु तक वहीं रहा। रणजीत सेन सन् 1761 में वैद्य की गलत दवाई के कारण मर गया।

रणजीत सिंह के समय में कांगड़ा में बहुत उथल-पुथल हुई। सैफ अली खान कांगड़ा में अंतिम मुगल किलेदार था। घमंड चंद को अहमदशाह दुर्रानी ने सन् 1758 में कांगड़ा या जालंधर का सूबेदार नियुक्त किया। घमंड चंद तथा उसके पौत्र संसार चंद ने कांगड़ा किले को जीतने के प्रयास किए किंतु असफल रहे। अंततः जय सिंह कन्हैया को बुलाया गया। अतः 1783 में नवाब की मृत्यु पर किला जय सिंह के कब्ज़े में आया जो उसकी मैदानों में हार तक (1761) रहा। जय सिंह की मैदानों में हार पर संसार चंद ने किला प्राप्त किया और पहाड़ी राज्यों में उच्च शक्ति प्राप्त की। संसार चंद ने सभी पहाड़ी राजाओं को अपने दरबार में पेश होने के लिए कहा और बीस वर्ष तक निष्कंटक राज किया। इस दौरान सुकेत राज्य अन्य राज्यों की अपेक्षा कम क्षतिग्रस्त हुआ। संभवतः यह राजा के छोटे भाई किशन सिंह के संसार चंद से संबंधों के कारण हुआ।

विक्रम सेन (1791)

पिता की मृत्यु पर विक्रम सेन महल मोरियां से वापस आया और राजगद्दी संभाली। पिता के संस्कार के बाद उसने पहला काम नरपत वजीर को बटवाड़ा के किले में बंदी बनाने का किया। शीघ्र ही उसे मृत्युदंड दिया गया।

सन् 1792 में संसार चंद ने मंडी पर आक्रमण किया। विक्रम सेन ने उसकी सहायता की। संसार चंद की सेना में किशन सिंह भी था जो जगन्नाथ से वापस आ गया था। उसने भी अपने भतीजे को 80,000 रुपए देकर सहायता की। संसार चंद की सहायता से उसने सुकेत के लिए छह किले जीते। इस लड़ाई में मंडी का राजा ईश्वरी सेन, जो अस्वस्थ था, बंदी बनाया गया और राजधानी को लूटा गया। ईश्वरी सेन नादौन में बारह वर्ष तक बंदी रहा और दोनों राज्यों के बीच युद्ध जारी रहा।

सिकंदरधार की लड़ाई में पुन्नु वजीर मारा गया जहां मंडी की सहायता कहलूर ने की थी। पुन्नु के भाई गोरखा को वजीर बनाया गया किंतु उसे शिकार खेलते समय मियां किशन के लड़के मियां बिशन सिंह ने मार दिया।

विक्रम सेन राजधानी बनेड़ ले गया जिसे अब सुंदरनगर कहते हैं। सुकेत से दो मील दक्षिण में इसे गरुड़ सेन ने बसाया था। सुकेत को पुराना नगर कहा जाने लगा जिसे अब भोजपुर कहते हैं।

इस बीच सतलुज की पहाड़ियों में नेपाल से गोरखे आ पहुंचे। उनकी नजरें संसार चंद के राज्य से लेकर कश्मीर तक लगी थीं।

सन् 1805 तक संसार चंद के भय से सभी पहाड़ी राजा इकट्ठे हो गए और राजा बिलासपुर ने गोरखा कमांडर अमर सिंह थापा को निमंत्रण दे डाला ताकि वह कांगड़ा पर आक्रमण करे। अतः संसार चंद को गोरखा सैनिकों तथा बिलासपुर ने महल मोरियां में हराया और गोरखों ने कांगड़ा किला घेर लिया। नादौन पहुंचकर गोरखों ने मंडी के राजा ईश्वरी सेन को छुड़ाया और मंडी भेजा। ईश्वरी सेन ने सुकेत द्वारा छीने अपने राज्य को वापस लेने के लिए बिलासपुर की सहायता मांगी।

विक्रम सेन को बिलासपुर बुलाया गया। गोरखा के भाई अबलू वजीर ने उसे जाने के लिए मजबूर किया क्योंकि उसे भाई गोरखा की मृत्यु की रंजिश थी। बिलासपुर जाने पर उसे छह मास तक गोरखा सैनिकों के घेरे में रखा गया और हटली तथा बल्ह सहित छह किले देने के लिए विवश किया गया। फिर भी राजा को छोड़ा नहीं गया अतः राजा कुछ अपने अधिकारियों की सहायता से रात को भागने में सफल हो गया। वह खटनाऊ द्वारा सतलुज पार की ओर अपने राज्य की सीमा में डेहर आ गया।

अब तक (1808) हटली तथा बीरकोट के किले मंडी द्वारा ले लिए गए थे। संसार चंद कांगड़ा के किले में था किंतु अब तक गोरखों के कब्जे में नहीं आया

था। अंत में संसार चंद ने रणजीत सिंह की सहायता ली और गोरखों को सतलुज के पार भगा दिया गया। किला तथा राज्य रणजीत सिंह के हाथ आ गया। अतः सुकेत भी सिखों के अधीन आ गया। सुकेत के कर की दर 10,000 रुपए नियत की गई जो बाद में बढ़ाकर 15,000 कर दी। किंतु कर लेते समय सिखों ने 22,000 रुपए कर इकट्ठा कर लिया।

विक्रम सेन के दो पुत्र थे, उग्र सेन तथा जगत सिंह। एक पुत्री थी जिसका विवाह नूरपुर में हुआ। बड़ा होने पर उग्र सेन प्रशासन में सहायता करने लगा। नजराने की राशि बहुत भारी पड़ रही थी। उग्र सेन तथा किशन सिंह के पौत्र नरेंद्र सिंह ने पटियाला तथा लाहौर जाने की सोची। नरेंद्र सिंह महाराजा रणजीत सिंह को जानता था अतः नजराना 11,000 नियत किया गया जो मंडी के माध्यम से देने के बजाय सीधा लेना माना गया।

राजा के समय मंडी से बचाव के लिए पाली तथा दुदर में किले बनाए गए। विक्रम सेन के समय सन् 1820 में मूरक्राफ्ट कुल्लू तथा लद्दाख जाते हुए सुकेत से होकर जाने वाला संभवतः पहला यूरोपियन था। मि. फोर्स्टर 1783 में बिलासपुर से नूरपुर गया था किन्तु वह संभवतः सुकेत नहीं गया। मूरक्राफ्ट ने अपनी यात्रा में सुकेत का उल्लेख किया है। मूरक्राफ्ट सुकेती खड्ड के समीप एक झरने के पास ठहरा। जब मूरक्राफ्ट का पहला दल सुकेत पहुंचा तो लोग इधर-उधर भागने की तैयारी में थे क्योंकि यह खबर फैल चुकी थी कि फिरंगी लूटपाट मचाने आ रहे हैं। जब उन्हें पता चला कि ये लोग वैसे नहीं थे और उन्होंने चीजों के बदले रुपए-पैसे भी दिए तब धीरे-धीरे उन्हें विश्वास हुआ। उन्होंने कभी यूरोपियन नहीं देखा था और साहिब लोगों के देखने के लिए भीड़ की भीड़ उमड़ पड़ी। रात को वहां गोलाबारी हुई। मूरक्राफ्ट संभवतः राजा को नहीं मिला। उसने राजधानी के बारे में भी कुछ नहीं लिखा।

सुकेत में सिख शासन का कोई विवरण नहीं मिलता। सुकेत के सिखों के अधीन आने पर शांति रही।

विक्रम सेन लंबा और आकर्षक व्यक्तित्व का था। प्रशासन में कड़ा था। उसने चोरी, डकैती और महिला अत्याचार को सख्ती से दबाया। सन् 1838 में 47 वर्ष के लंबे शासन के बाद विक्रम सेन की मृत्यु हुई।

उग्र सेन (1838)

उग्र सेन ने चार विवाह किए। कहलूर की रानी से उसके दो पुत्र हुए–शिव सिंह और राम सिंह। एक पुत्री हुई देई शारदा जिसका सन् 1853 में चंबा के राजा श्री सिंह से विवाह हुआ। उसकी जमुआली रानी से रुद्र सेन हुआ जो उत्तराधिकारी

बना। पटियाला रानी से मियां नारायण सिंह हुआ।

राजा के प्रारंभिक काल में कहलूर में आंतरिक विद्रोह हुआ। यद्यपि दोनों राज्यों में मधुर संबंध नहीं थे तथापि उग्र सेन ने कहलूर को 25,000 रुपए उधार दिए जिससे कहलूर के राजा ने पठानों की सेना बनाई और विद्रोह दबाया। उसने कहलूर से संबंध भी सुधारे।

सन् 1839 में विगने भी सुकेत आया। विगने संभवतः राजा से नहीं मिला किंतु उसने सुकेत की भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया है।

सन् 1840 तक सुकेत में शांति रही किंतु इसी वर्ष रणजीत सिंह के पोते नौनिहाल सिंह ने जनरल वेंचूरा के नेतृत्व में मंडी, कुल्लू तथा सुकेत को जीतने के लिए सेना भेजी। वे तिब्बत पर आक्रमण की योजना बना रहे थे। उग्र सेन ने सिख सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया।

इसके तुरंत बाद उग्र सेन तथा उत्तराधिकारी रुद्र सेन के बीच मतभेद हो गए। रुद्र सेन उस समय मात्र चौदह वर्ष का था। रुद्र सेन नाराज होकर मंडी चला गया। उग्र सेन भी मंडी गया और मंडी के राजा बलवीर सेन की मध्यस्ता में सुलह हो गई और रुद्र सेन सुकेत वापस आ गया। इसी वर्ष सन् 1843 में टिक्का रुद्र सेन का विवाह कटोच राजकुमारी से हुआ। इसके बाद रुद्र सेन और बिशन सिंह के पुत्र नरेंद्र सिंह में घनिष्ठता हुई और रुद्र सेन का पुनः राजा से मनमुटाव हो गया जिसका कारण नरेंद्र सिंह था।

नरेंद्र सिंह ने अपनी पुत्री का विवाह लाहौर के महाराजा शेर सिंह से किया था। अतः रुद्र सेन को बल मिला। पुरोहित देवीदत्त, गोवर्धन कायस्थ, मियां केसू, ठाकुर दास खत्री आदि भी उसी के पक्ष में हो गए। शिव दत्त राजा का विश्वासपात्र था और ये लोग उसे हटाना चाहते थे। नरोत्तम पाधा तथा धारी ने गोवर्धन द्वारा लिखे कुछ पत्र पकड़े जिसमें राजा को विष देने की बात थी। अतः टिक्का रुद्र सेन कैद कर लिया गया, नरेंद्र सिंह उस समय वहां था नहीं। कोटवाली वजीर पत ने गोवर्धन, पाधा, देवीदत्त को भी बंदी बना लिया। गोवर्धन को पुरोहिताई से हटा दिया, उसके घर को लूटा गया। नरोत्तम को पुरोहित बनाया गया। नरेंद्र सिंह को देशनिकाला दिया, उसकी जागीर जब्त की गई। जब रुद्र सेन को छोड़ा गया तो वह 1844-45 में कहलूर चला गया। मि. जी.सी. बारनेस ने पिता पुत्र में समझौता करवाया अतः रुद्र सेन वापस सुकेत लौटा। फिर वजीर पत को बंदी बनाकर उसे 10,000 रुपए जुर्माना किया गया और उसके स्थान पर नरोत्तम को लगाया गया। ये घटनाएं 1844-45 में हुईं।

सन् 1845 के पतझड़ में सिख सेना ने सतलुज के पार अंग्रेजी सेना पर आक्रमण किया। सुकेत से भी सिखों ने सेना मांगी किंतु राजा ने सिखों को सुकेत

से निकाल दिया और मंडी के राजा बलवीर सेन के साथ एक पत्र मि. आर्स्किन को भेजा। मंडी तथा सुकेत के राजा 21 फरवरी, 1846 को बिलासपुर में आर्स्किन से मिले भी।

सिख और अंग्रेजों के बीच 9 मार्च, 1846 को संधि हो गई अतः सतलुज और व्यास के मध्य का क्षेत्र अंग्रेजों के हिस्से आया। अतः मंडी और सुकेत भी अंग्रेजी शासन में आ गए। इन्हें जालंधर के कमिश्नर के अधीन रखा गया। सन् 1846 (अक्तूबर) में उग्र सेन को सरकार की ओर से एक पट्टा दिया गया। सुकेत की ओर से जो 11,000 रुपए सिखों को दिए जाते थे, वे अब अंग्रेज सरकार को दिए जाने लगे।

सन् 1857 में पुनः आंतरिक कलह हुई। नरोत्तम वजीर ने एक ब्राह्मण को जुर्माना किया जिसे राजा ने माफ कर दिया किंतु वजीर ने फिर भी वसूली कर ली। अतः रुद्र सेन तथा उसके लोगों ने वजीर को गिरफ्तार करने की मांग उठाई। राजा ने मान तो लिया किंतु डेढ़ वर्ष तक टालता रहा। अतः रुद्र सेन पुनः नाराज होकर जालंधर और फिर लाहौल चला गया। इसमें वजीर पत और ईशरिया कायस्थ ने भी विरोध किया और वे लोग भी सुकेत छोड़ मंडी चले गए।

1859 में रुद्र सेन मंडी के राजा विजय सेन (1851-1902) के विवाह पर आया और मंडी ठहरा। उसने सुकेत से अपनी रानियों को बुलाया। सुकेत के करीब आने पर राजा उग्र सेन को समस्या हो गई। राजा ने जालंधर के कमिश्नर लेक से शिकायत की। अतः रुद्र सेन मंडी से पटियाला स्थित हरिपुर चला गया। बाद में उसकी रानी कहलूरी भी वहां चली गई। वहां (1863 में) एक पुत्र हुआ जिसका नाम अरिमर्दन रखा गया। सन् 1866 में दूसरा पुत्र हुआ दुष्टनिकंदन।

नरोत्तम वजीर ने विधवा बेचने का एक कानून बनाया। इससे जो आय होती थी वह नृसिंह मंदिर में जाती थी। वह नृसिंह मंदिर का वजीर भी था। उसने इसी राजस्व से दुर्गा मंदिर भी बनाया।

नरोत्तम वजीर ने लौंगू को पहाड़ी क्षेत्र का कार्यभार दे रखा था। किंतु शीघ्र ही लौंगू के भाई धुंगल को वजीर बना दिया गया। धुंगल अत्याचारी साबित हुआ। उसने प्रतिष्ठावान लोगों से भी 'दंड' यानी जुर्माना लेना शुरू कर दिया। लोग दुखी हो गए अतः एक बार जब वह पहाड़ी क्षेत्र में गया हुआ था तो उसे बारह दिन तक चवासी के किले में कैद रखा। वहां से उसे राजा के कहने पर ही छोड़ा गया।

इस घटना के बाद शीघ्र ही जब उग्र सेन पहाड़ों में गया तो लोगों ने वजीर के विरुद्ध शिकायत की अतः उसे निकाल दिया गया। नौ महीने जेल के बाद उसे 20,000 रुपए जुर्माना किया गया। संभवतः उसकी जगह उसका भाई लौंगू नियुक्त किया गया। किंतु 1873 में जब राजा ने पुनः पहाड़ों का दौरा किया तो लोगों को

72,000 रुपए जुर्माना किया हुआ था। अतः कुछ लोग रुद्र सेन के साथ बात करने हरिपुर (गुलेर) चले गए थे। इस मामले में लौंगू वजीर तथा बंसी लाल मंडी भागते हुए पकड़े गए और बंदी बनाए गए।

उग्र सेन ने सन् 1876 में, जब उसे अधरंग हो गया था, अमला बिमला में शिव मंदिर बनाया। इसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गई। उग्र सेन को तमाम कमियों के बावजूद लोग साहस, स्वाधीनता के लिए सम्मान भी देते थे। वह संस्कृत ज्ञाता था और संगीत तथा आयुर्वेद भी जानता था।

रुद्र सेन (1876)

पिता की मृत्यु की खबर सुन रुद्र सेन हरिपुर से सुकेत आया और जालंधर के कमिश्नर कर्नल डेविस ने उसे राजा बनाया। उसने धुंगल को पुनः वजीर नियुक्त कर दिया और रामदित्तामल को राज्य लेखाकार। इसके बाद वह हरिपुर जाकर अपने परिवार को ले आया। उसने अर्की के जयसिंह का लड़की से विवाह किया था। वापसी पर उसने आठ 'खार' पर चार रुपए, राजस्व निर्धारित किया जिसे 'ढाल' कहते थे और लगभग 540 का 'शासन' निर्धारित किया गया।

रुद्र सेन का शासन दमनकारी होता गया और राजस्व बढ़ता गया। जमींदारों की शिकायतें बढ़ती गईं किंतु उनका कोई उत्तर नहीं मिल पाया। कुछ मियां लोगों तथा राजपरिवार के लोगों ने विद्रोह की योजना बनाई किंतु उन्हें राज्य से निष्कासित कर दिया गया। अंततः स्थिति इतनी शोचनीय हो गई कि जालंधर के कमिश्नर को हस्तक्षेप करना पड़ा। जांच के बाद दंड भी दिए गए किंतु राजा संतुष्ट न हुआ और वह लाहौर चला गया।

सन् 1879 में रुद्र सेन को हटा दिया गया। वह कुछ समय लाहौर और जालंधर रहा और होशियारपुर बस गया जहां सन् 1887 में उसकी मृत्यु हुई।

अरिमर्दन सेन (1879)

राजा बनने के समय अरिमर्दन केवल पंद्रह वर्ष का था। अतः रुद्र सेन के चाचा जगत सिंह तथा मियां शिव सिंह (भाई) को राज्य का रिजेंट नियुक्त किया गया। कांगड़ा के सरदार हरदयाल को तहसीलदार बनाया गया जो तीन वर्ष बाद सुपरिंटेंडेंट बना। अरिमर्दन की शीघ्र ही धर्मशाला में मृत्यु हो गई अतः उसका भाई दुष्टनिकंदन उत्तराधिकारी बना।

दुष्टनिकंदन सेन (1879)

राजा के अवयस्क होने के कारण वयस्क होने तक शक्तियां सुपरिंटेंडेंट के हाथ

में रहीं। वयस्क होने पर शक्तियां सौंपी गईं। सरदार हरदयाल के सन् 1884 रिटायर होने पर मि. डोनाल्ड वजीर बना जो 1891 तक रहा। सन् 1888 में कर की मात्रा रुपए में ढाई आने चवासी, बगड़, राजगढ़ तथा कजोन और दो आने शेष राज्य में कम कर दी गई।

मार्च 1891 में मि. सी.जे. हेलीफेक्स को सलाहकार नियुक्त किया गया जो मई 1893 तक रहा।

इस राजा ने अपने समय में काफी सुधार किए। कार्यभार संभालने के बाद बनेड़ में एक डिस्पेंसरी खोली गई और 1893 में भोजपुर में एक स्कूल खोला गया। सन् 1900 में डाकघर तथा 1906 में तारघर खोला गया। अनावश्यक पद समाप्त किए गए जिससे काफी बचत हुई। कर्जे वापस किए गए और राज्य की वित्तीय स्थिति में सुधार हुआ। लोक निर्माण के कार्य किए गए। सड़कों की मरम्मत की गई। पुलिस के आवास के साथ एक जेल भी बनाई गई।

राजा दुष्टनिकंदन सेन का विवाह सन् 1881 में अर्की के राजा ध्यान सिंह की भतीजी से हुआ। सन् 1885 में टिक्का भीम सेन तथा 1894 में लछमन सिंह का जन्म हुआ। राजा की मृत्यु सन् 1908 में हुई और टिक्का भीम सेन उत्तराधिकारी बना।

भीम सेन (1908)

भीम सेन की शिक्षा चीफ कॉलेज लाहौर में हुई और पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर लुइस डेन द्वारा राजा बनाया गया। अपने कार्यकाल में राजा ने अनेक सुधार कार्य किए। बनेड़ में 'किंग एडवर्ड अस्पताल' नाम से एक पूरा अस्पताल बनाया गया। बनेड़, सेरी, डेहर में बंगले (आराम गृह) बनाए गए तथा सुकेत से मंडी तक मोटर रोड बनाई गई।

महायुद्ध के समय भीम सेन नें ब्रिटिश सरकार की मदद करके 'नाइटहुड' पाई। अक्तूबर 1919 में राजा भीम सेन की निमोनिया से मृत्यु हो गई। राजा की कोई संतान नहीं थी। अतः छोटे भाई कंवर लक्ष्मण सेन को उत्तराधिकारी बनाया गया।

लक्ष्मण सेन (1919)

मार्च, 1920 में सर एडवर्ड मेकलेगन द्वारा लक्ष्मण सेन को राजा स्थापित किया गया। लक्ष्मण सेन ने भी राज्य में कई सुधार किए। भू-बंदोबस्त आरंभ किया गया। लड़के तथा लड़कियों के लिए स्कूल खोले गए। लक्ष्मण-भीम क्लब, प्रिंस ऑफ वेल्स अनाथाश्रम, मुख्य न्यायालय खोले गए। प्रथम नवंबर 1921 को सुकेत का नियंत्रण पंजाब सरकार से भारत सरकार को चला गया।

रियासत सुकेत : कर्नल चार्लिस फ्रांसिस मैसी साहिब की सूची

- **राजा भीखम सेन**
  - राजा रणजीत सेन
    - राजा विक्रम सेन
      - राजा उग्र. सेन (मृत्यु 1875)
        - राजा रुद्र सेन (मृत्यु 1886)
          - मियां अरिमर्दन सेन (मृत्यु 1878)
            - राजा दुष्टनिकंदन सेन (जन्म 1865)
              - एक पुत्र हुआ
    - अमर सिंह
    - ध्यान सिंह
  - किशन सिंह
    - बिशन सिंह
      - नरेंद्र सिंह

नोट : तिथियां हचिसन-वोगल द्वारा दी तिथियों से भिन्न हैं। मैसी उस समय स्वयं मौजूद थे, अतः उक्त तिथियां सही हो सकती हैं।

मंडी

कुछ संदर्भ

मंडी क्षेत्र उत्तर में कुल्लू तथा कांगड़ा, दक्षिण में सुकेत और पश्चिम में कांगड़ा से घिरा हुआ है। मंडी राज्य की राजधानी भी मंडी ही रही है। मंडी का अर्थ मंडी या बाजार, मंडप, मांडव्य आदि से लिया जाता है। पुराने समय में यह यारकंद, लद्दाख से कुल्लू होकर होशियारपुर आदि में जाने के लिए व्यापार का केंद्र रहा अतः मंडी नाम सार्थक होता है।

बौद्ध धर्म के ग्रंथों में इस क्षेत्र को 'जोहार' कहा गया है। 'जोहार' (वर्तमान रिवालसर) गुरु पद्मसंभव (750-800) से जुड़ा हुआ है। तिब्बती शासक स्रोन इंद-जान के समय पद्मसंभव तिब्बत गए। अब भी बहुत से बौद्ध अनुयायी रिवालसर आते हैं जहां छेश्चू मेला फरवरी मास में मनाया जाता है। हिंदू लोग यहां लोमश ऋषि की तपोस्थली मानते हैं। कहा जाता है जोहार से बहुत से धर्मग्रंथ तिब्बत ले जाए गए। लंगद्रामा (900 ई.) के समय, जो बौद्ध धर्म का प्रबल विद्रोही था, बहुत से धर्मग्रंथ तिब्बत से जोहार लाए गए। ऐसा विश्वास है कि ये ग्रंथ अभी भी मंडी में कहीं छिपाए हुए हैं।

मंडी के विषय में सबसे पुराना उल्लेख त्रिलोकीनाथ मंदिर में 2264 कलियुग, 1442 शाका अर्थात् 1520 ई. का है।

एलेक्जेंडर कनिंघम पहला व्यक्ति था जिसने मंडी के इतिहास को लिपिबद्ध किया। वंशावली के अतिरिक्त मंडी के इतिहास के विषय में बहुत कम जानकारी है।

मंडी के इतिहास स्रोत मुख्यतः सरदार हरदयाल द्वारा लिखित इतिहास 'मजमा-इ-तवारीख-रियासत-है-कोहिस्तान-ई-पंजाब', सर लेपन ग्रिफ्रिंज का 'द राज़ाज ऑफ द पंजाब', कर्नल मैसी कृत 'चीफ्ज एंड फेमिलीज ऑफ नोट इन द पंजाब', सन् 1888 में विक्रम कायस्थ द्वारा टाकरी में लिखित इतिहास हैं।

पुराने समय में मंडी तथा कुल्लू के क्षेत्र में छोटे-छोटे राणे-ठाकुरों का राज था जिनमें आपस में लड़ाइयां चलती रहती थीं। व्यास नदी मंडी के बीचोबीच बहती है। तीन शिखर या धारें एक-दूसरे के समानांतर स्थित हैं जो नारगू, घोघड़ तथा सिकंदर धार कही जाती हैं। सिकंदर धार जनास्था के अनुसार सिकंदर लोधी (1489-1517) के आक्रमण

से जुड़ी हुई है। उधर तत्तापाणी में सतलुज नदी सीमा निर्धारित करती है।

मंडी की राजधानी पहले पुरानी मंडी में थी जो बाद में व्यास के बाएं किनारे वर्तमान मंडी में बनी। सन् 1931 की जनगणना के अनुसार मंडी राज्य का क्षेत्रफल 1200 वर्गमील था तथा जनसंख्या 207,465 थी। जबकि 1901 की जनगणना में जनसंख्या 54676 थी।

सुकेत तथा मंडी के राजा एक ही वंश के थे। सुकेत की एक शाखा ने मंडी राज्य स्थापित किया। सुकेत के राजा साहु सेन के समय उसका छोटा भाई बाहु सेन भाई से झगड़ पड़ा और उसने कुल्लू क्षेत्र में मंगलौर में राजधानी बनाई। कनिंघम ने यह घटना लगभग 1000 ई. की बताई है। मंगलौर में बाहुसेन ने राज्य स्थापित किया और वहां का राणा बन गया।

बाहु सेन के बाद निमाता सेन, नरवाहन सेन, कानवाहन सेन, सुवाहन सेन, वीर सेन, समुद्र सेन, केनशान सेन, मंगल सेन, जय सेन, करंचन सेन राजा हुए।

निरमंड के ताम्रपत्र में भी समुद्र सेन का नाम आता है। कनिंघम ने इसे मंडी का समुद्र सेन माना है। कनिंघम ने निरमंड ताम्रपत्र तथा मंडी के राजाओं की सूची दी है तथा उन्हें मिलता जुलता बताया है :

निरमंड ताम्रपत्र	**वंशावली**
1. वरुण सेन	नरवाहन सेन, कानवाहन सेन
2. संजय सेन	सुवाहन सेन
3. रवि सेन	वीर सेन
4. समुद्र सेन	समुद्र सेन

कनिंघम ने ताम्रपत्र की तिथि 1170 ई. मानी है। किंतु डॉ. जे.एफ. फ्लीट ने इसे गलत माना। यह ताम्रपत्र सातवीं शताब्दी का है। अतः ताम्रपत्र का समुद्र सेन मंडी का समुद्र सेन नहीं हो सकता। समुद्र सेन स्पीति का राजा था।

राजवंश

करंचन या कर्णचन सेन (1278)

बाहुसेन से दसवां राजा करंचन सेन था। इसकी रानी मंडी से लगभग दस किलोमीटर दूर शिवकोट से थी। करंचन सेन ने आसपास के क्षेत्रों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इसने थूजरी, काओकोठी, बन, नेरू, बागी, थाच को जीता। ये सभी इलाके कुल्लू के अधीन थे अतः उन्होंने कुल्लू के राजा से अपील की और कुल्लू नरेश के साथ मिलकर हमला बोल दिया। इस लड़ाई में करंचन सेन मारा

गया। मंगलौर का किला जला दिया गया। रानी गर्भवती थी। वह अपने पिता के घर शिवकोट की ओर भागी। घने जंगल में वह रास्ता भूल गई। जंगल में ही बान के पेड़ के नीचे वह प्रसूता हुई और पुत्र को जन्म दिया। प्रातः शिवकोट के राणा के आदमी वहां से गुजरे तो रानी को देखकर राणा के पास ले गए। राणा की कोई संतान नहीं थी अतः अच्छी शिक्षा-दीक्षा देकर उसे उत्तराधिकारी बनाया गया। इस राजा का नाम बाण सेन हुआ।

बाण सेन ने व्यास के दाएं किनारे भिऊली में अपना आवास बनाया। उसने केलटी, सगूर, पंडोह, खोखण के राणाओं को हराकर राज्य विस्तार किया। बाण सेन ने पराशर झील के किनारे पराशर का प्रसिद्ध काष्ठ मंदिर बनवाया। बाण सेन की मृत्यु हचिसन-वोगल के अनुसार सन् 1300 में, मनमोहन के अनुसार 1346 में हुई।

कल्याण सेन (1300)

बाण सेन का पुत्र कल्याण सेन उत्तराधिकारी बना। इसने व्यास के दाएं किनारे बटोहली (पुरानी मंडी) में महल बनाया। यह स्थान उसने एक राणा से लिया जो सुकेत के अधीन था। कल्याण सेन ने केलटी, सनोर को जीता। सगूर का राणा लड़ाई में मारा गया अतः यह क्षेत्र भी राज्य में मिला लिया। कल्याण सेन की मृत्यु सन् 1332 या इसी समय के आसपास हुई। यह भी विश्वास है कि उसने 41 वर्ष राज किया।

कल्याण सेन के बाद हीरासेन (1332 में) शासक बना। गंधर्व के राणा के साथ लड़ाई में यह 1360 या 1405 ई. में मारा गया। इसने कनहवाल क्षेत्र जीता। हीरा सेन के बाद उसका छोटा भाई धृति सेन राजा बना। धृति सेन (1360) के बाद नरेंद्र सेन (1400), हरजय सेन (1440) तथा दिलावर सेन (1470) राजा हुए।

दिलावर सेन (1470)

दिलावर की तिथि यदि सही हो तो वह सिकंदर लोधी (1478-1517) का समकालीन था। सिकंदर लोधी ने मंडी पर आक्रमण किया। उसके नाम पर मंडी की एक धार का नाम सिकंदर धार पड़ा। कहा जाता है वह सिकंदर धार के पास मंडी में आया। सभी राणे दुर्गों में छिप गए। क्षेत्र को खाली कर वह वापस लौट गया। उसकी सेना की एक टुकड़ी नौ वर्ष तक यहां रही। दिलावर सेन का काल 1499 तक माना जाता है।

अजबर सेन (1500)

अजबर सेन 1499 या 1500 में राजा बना। यह तिथियां अनुमान पर

आधारित हैं। अजबर सेन से पहले मंडी की राजधानी पुरानी मंडी में बटाहुली में थी। बटाहुली (पुरानी मंडी) के सामने व्यास के दाएं किनारे राणा गोकल का राज्य था जिसे सधियाना कहते थे। अजबर सेन की बढ़ती शक्ति से गोकल राणा सतर्क हो गया किंतु शीघ्र ही घंडा बिष्ट के भड़काने पर दोनों में लड़ाई हुई जिसमें गोकल राणा मारा गया। घंडा बिष्ट को मुआफी दी गई। अजबर सेन ने व्यास के दाएं किनारे राजधानी बसाई जिसे अब मंडी कहा जाता है।

अजबर सेन के विरुद्ध मराटु, काहनवाल, गंधर्व के ठाकुर इकट्ठे हुए। उन्होंने 1300 सैनिक तथा 700 धनुर्धर इकट्ठे कर बल्ह की ओर से आक्रमण किया जिसे अजबर सेन ने विफल कर दिया। गंधर्व के राणा की इस लड़ाई में मृत्यु हो गई। अजबर सेन के बड़े पुत्र चतरसेन ने मराटु के राणा पर हमला किया। चतर सेन घायल हो गया और तीन खत्री मारे गए। राजा ने उनकी बहादुरी से प्रसन्न होकर उनके चौथे भाई मकसूदन को एक ताम्रपत्र दिया। सन् 1527 (1584 वि.) के इस ताम्रपत्र के अनुसार वह भूमि उनके अधिकार में रही। इस पट्टे में राजा के पुत्र चतरसेन ने हस्ताक्षर किए।

सन् 1527 में अजबर सेन ने विधिवत् मंडी को राजधानी बनाया। यहां चार मंजिला महल बनाया गया जिसे चौकी कहा जाता है। शहर के मध्य भूतनाथ का मंदिर बनाया गया। रानी सुलतान देवी ने त्रिलोकीनाथ के मंदिर का निर्माण करवाया।

लोकास्था यह भी है कि राजा ने कमलाह तथा कलर के राणाओं को अपने अधीन कर लिया। चतरसेन ने कलर में लक्कड़गढ़ नामक किला बनाया।

अजबर सेन ने लंबे समय (35 वर्ष) तक राज किया और सन् 1534 में मृत्यु हुई।

चतर सेन (1534)

मनमोहन के इतिहास के अनुसार चतरसेन की मृत्यु अजबर सेन के जीवन काल में ही हो गई। कनिंघम ने कहा है कि चतरसेन ने बीस वर्ष राज किया। किंतु इसके शासनकाल में कोई घटना नहीं मिलती। उसके हस्ताक्षरों से सन् 1527 में पट्टा जारी हुआ जो उसकी जान बचाने में शहीद हुए तीन खत्री भाइयों के चौथे भाई मकसूदन के नाम है।

साहिब सेन (1554)

साहिब सेन चतरसेन के बाद उत्तराधिकारी बना। इसका विवाह राजा कहलूर की पुत्री से हुआ। रानी प्रकाश देई बहुत धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी।

कहा जाता है, रानी के संतान न होने पर उसने हुरंग नारायण से प्रार्थना की कि यदि पुत्र होगा तो वह अपने गहनों से देवता का मोहरा बनाएगी। रानी को पुत्र हुआ और उसने हुरंग नारायण का मोहरा बनवाया। रानी ने पुरानी मंडी तथा मंडी के बीच नाव चलवाई। सड़कों के किनारे पानी का प्रबंध किया, बावड़ियां बनवाईं।

साहिब सेन भी रानी के अधिक प्रभाव में था। उसने रानी के कहने पर द्रंग के राणा पर हमला किया और उसे भगा दिया। इस तरह द्रंग की नमक की खानों पर राजा का अधिकार हो गया।

सर लेपेल ग्रिफिन ने कहा है कि साहिब सेन ने लग के राजा के विरुद्ध लड़ाई में कुल्लू के राजा जगत सिंह की सहायता की। अतः विजय के बाद साहिब सेन को सराज का इलाका मिला। किंतु यह घटना यदि साहिब सेन के समय हुई हो तो कुल्लू का राजा जगत सिंह नहीं हो सकता। जगत सिंह का समय 1637 है। उस समय कुल्लू में राजा बहादुर सिंह हो सकता है जिसने सराज जीता था। इस अभियान में सनोर बदार के क्षेत्र मंडी को मिले जबकि कुल्लू को पीरकोट, मदनपुर तथा बारह साथ लगते गांव मिले।

यह घटना कुल्लू के राजा बहादुर सिंह (1532) या प्रताप सिंह (1559) के समय की हो सकती है।

साहिब सेन का उल्लेख मुस्लिम इतिहासकारों ने नहीं किया है अतः मंडी उस समय अन्य पहाड़ी राजाओं की भांति मुगलों के अधीन हुआ। मंडी के लिए पांच सौ रुपए कर तय हुआ और मंडी की ओर से भी एक दूत मुगल दरबार में रखा गया।

साहिब सेन के समय हुमायूं ने ईरान से लौटकर फरवरी,1555 में सिकंदर सूरी को हराया। सिकंदर सूरी कांगड़ा की पहाड़ियों की ओर भागा। हुमायूं ने अकबर को सेना सहित सिकंदर सूरी का पीछा करने भेजा। उसने सुलतानुपर के पास कांगड़ा में प्रवेश किया। सिकंदर सूरी का मानकोट किले में घेराव किया गया। जहां उसने 1557 में आत्मसमर्पण किया। अकबर के कांगड़ा की सीमा में प्रवेश पर सभी पहाड़ी राजा मुगलों के अधीन हुए। अतः मंडी भी उस समय मुगलों के अधीन हुआ।

नारायण सेन (1575)

नारायण सेन बीमार था और शारीरिक रूप से विकलांग था। कहा जाता है कि उसे सिद्ध चुनी मुनी ने ठीक किया जो उन दिनों मंडी आए हुए थे। सिद्ध के शिष्यों ने एक मंदिर बनवाया। मंदिर के लिए राजा ने राज्य के प्रत्येक गांव से एक पत्था अनाज लगवाया। इसे पीर पत्था कहते थे। नारायण सेन के समय में भी राज्य विस्तार होता रहा। नेर, पंडोह तथा चुराह के राणाओं को अधीन किया गया। सुकेत का बड़ा

भाग राज्य में मिलाया गया जिसकी सीमा बल्ह तथा लोहारा में बनी। वहां नारायणगढ़ नाम से किला बनाया गया। राजा की मृत्यु लकवे की बीमारी से हुई।

केशव सेन (1595)

केशव सेन के राज्य की कोई विशेष घटना पता नहीं चलती। केशव सेन के समय में मंडी मुगलों के अधीन आ गया। अकबर के समय पहाड़ी रियासतों को करद बनाकर स्वतंत्र छोड़ा गया था। इस राजा के गद्दी पर आसीन होने के समय नजराना दिया गया और मुगलों की ओर से सनद दी गई।

केशव सेन की मृत्यु संभवतः 1623 में हुई।

हरि सेन (1623)

हरि सेन के समय वरसल्ले या स्मारक बनाने की परंपरा पड़ी। सती-स्मारकों की भांति राजाओं द्वारा भी अपनी स्मृति में या पूर्वजों की स्मृति में स्मारक बनाए जाते थे। मंडी-सुकेत तथा कुल्लू में ऐसे स्मारक बनाए गए जिन्हें बरसल्ले कहा जाता है। कुल्लू में शमशी बाजार के पीछे ऐसे ढेरों स्मारक अभी भी रखे पड़े हैं। इसी प्रकार हरि सेन ने स्मारक परंपरा आरंभ की। ये बरसल्ले सुकेती खड्ड के किनारे वर्तमान सुकेती पुल के नीचे की ओर हैं। इनमें से कुछ छह-सात फुट ऊंचे हैं। प्रत्येक राजा को इन पाषाण शिलाओं में बैठे हुए दिखाया गया है। राजा के साथ रानियां भी पंक्ति में बैठी हैं। साथ में दासियां भी चित्रित की हैं। रानियों के साथ रखैल या दासियों के सती होने की परंपरा भी थी। शिलालेखों में राजा के जन्म तथा मृत्यु की तिथियां भी दी गई हैं। सती रानियों तथा दासियों की संख्या भी है। ये स्मारक राजाओं की तिथियां निर्धारित करने में भी सहायक हैं।

हरि सेन के समय नूरपुर का राजा जगत सिंह (1619-46) शक्तिशाली राजा था। जहांगीर ने सन् 1618 में उसे कांगड़ा का फौजदार नियुक्त किया। जगत सिंह ने मुगल दरबार में प्रभाव के कारण अपने को पहाड़ों का प्रमुख शासक बनाने का प्रयास किया। उसने चंबा, बसोहली तथा गुलेर पर आक्रमण किए। सन् 1623 में उसने चंबा पर हमला किया और चंबा के शासक जनार्दन (1613-1623) को मार दिया। चंबा के शासक का पुत्र पृथ्वी सिंह उस समय मात्र चार वर्ष का था जिसे एक धाय महल से निकालने में सफल हुई और मंडी ले आई। पृथ्वी सिंह मंडी में सत्रह वर्ष तक रहा। सन् 1640 में जगत सिंह तथा उसके पुत्र राजरूप सिंह ने शाहजहां के विरुद्ध विद्रोह किया जिसे दबाने के लिए मुगल सेना भेजी गई। इस अवसर का लाभ उठाते हुए पृथ्वी सिंह ने मंडी की सहायता से नूरपुर की फौजों को बाहर कर चंबा पर पुनः अधिकार कर लिया।

यह भी कहा जाता है कि मंडी का कर भी राजा जगत सिंह के माध्यम से मुगलों को दिया जाता था। यह राजा जगत सिंह के फौजदार बने रहने तक (1640-41) रहा होगा।

हरि सेन की मृत्यु सन् 1637 में हुई।

सूरज सेन (1637)

सूरज सेन के बाद मंडी के इतिहास की सही तस्वीर सामने आती है। तिथियां भी मेल खाती हैं। जब सूरज सेन गद्दी पर बैठा तो शासन का कार्यभार करोड़िया खत्री के हाथों रहा।

सूरज सेन जब बड़ा हुआ तो करोड़िया खत्री के हाथों से सत्ता निकलने लगी। कहा जाता है कि उसने तथा नूरपुर के राजा जगत सिंह ने सूरजसेन के विरुद्ध षड्यंत्र रचा। राजा जगत सिंह ने अपनी पुत्री का विवाह सूरज सेन से तय किया और उसे नूरपुर बुलाकर विवाह के समय मारने का षड्यंत्र रचा। सूरज सेन ने जगत सिंह की रानी का संकेत समझ लिया और दुल्हन को वहीं छोड़ भाग आया। जगत सिंह ने जब देखा कि भेद खुल गया है तो वह अपने पुत्र राजरूप सिंह के साथ दुल्हन को मंडी भेजने पर विवश हुआ। मंडी में विवाह के रस्मोरिवाज पूरे किए गए। करोड़िया खत्री तथा उसके परिवार को दंडित किया गया।

सन् 1641 में जब जगत सिंह के विद्रोह को दबाने के लिए मुगल सेनाएं राजा गुलेर के साथ जगत सिंह से रानीताल में लड़ीं तो सूरज सेन ने जगत सिंह का साथ दिया। जगत सिंह हार गया तो सूरज सेन मंडी भागा। इस समय सूरज सेन की मंडी के एक लाला नरपाल ने सहायता की। नरपाल लाला जगत सिंह के पास नौकरी करता था। मंडी में यह खबर फैल गई थी कि सूरज सेन लड़ाई में मारा गया है। रानी सती होने को तैयार थी। राजा का संदेश लेकर नरपाल मंडी आया कि राजा अभी जीवित है। अतः रानी ने नरपाल लाला को अपना धर्मभाई बनाया।

सूरज सेन ने अपने राज्य की सीमाएं बढ़ानी चाहीं। उसने भंगाल के राजा पर आक्रमण किया। भंगाल के राजा ने कुल्लू के जगत सिंह (1637-1672) से सहायता ली। अतः भंगाल और कुल्लू की सेनाओं से सूरज सेन की पराजय हुई। मंडी के शाहपुर, कर्णपुर, शमशेरपुर किलों पर कुल्लू का अधिकार हो गया और देवल, संसाल, बीड़, भंगाल को मिले। कुछ समय बाद राजा ने पुनः इन क्षेत्रों को वापस लेने के लिए कुल्लू पर हमला किया किंतु पुनः हार हुई और गुम्मा तथा द्रंग पर भी कुल्लू का अधिकार हो गया। संधि होने पर कुल्लू की सीमा बीड़ तथा एहजू तक बनी।

सूरज सेन ने गुलेर के राजा मान से भी लड़ाई की जिसमें उसकी पराजय हुई।

गुलेर के राजा मान सिंह ने दो बार मंडी में लूटपाट की और इसे जलाया। उसने कलाह क्षेत्र तथा कमलाह किले पर भी अधिकार कर लिया। कमलाह किले का निर्माण सन् 1625-30 के बीच हुआ।

कमलाह किले का वर्णन सर लेपेल ग्रिफिन ने किया है। पहाड़ी, जिस पर किला बना है, उत्तर तथा दक्षिण में छह से आठ मील लंबी है जो जनेतरी देवी के पूर्व तथा बकड़ खड्ड के पश्चिम में लगभग दस मील समानांतर चलती है। पहाड़ी 150 से 200 फुट ऊंची है। पहाड़ी पर जाने के लिए केवल दो रास्ते हैं–एक अनंतपुर, दूसरा कमलाह में। अतः यह स्थान हथियार आदि ले जाने के लिए बहुत कठिन है और सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत सुदृढ़ है। अनंतपुर की ओर पांच किले स्थित हैं–अनंतपुर, समीरपुर, बख्तपुर, प्रताप पुर, नयागिला। इस क्षेत्र में पर्याप्त पानी, घास तथा जंगल है। कमलाह में छह किले थे–कमलाह, चौकी, चाबड़ा, पदमपुर, शमशेरपुर, नरासिंघपुर। मंडी में 360 किले बताए जाते थे, हचिसन-वोगल के समय इनमें से दस ही शेष थे।

कई जगह पराजय के बावजूद सूरज सेन छोटे-छोटे राणाओं को जीतने में सफल हुआ। सन् 1653 में उसने पतरी तथा सुलाणी सुकेत से जीते। गुम्मा, नेर, पद्मपुर के राणाओं को भी अपने अधीन कर लिया। कांगड़ा के राजा की पुत्री से विवाह करने पर कनवाहल का क्षेत्र मिला। जगत सिंह (नूरपुर) की पुत्री से विवाह पर संधोल का क्षेत्र दहेज में मिला।

अनंतपुर के राणा को उसने धोखे से जीता। अनंतपुर का राणा किले में रहता था। राजा सूरज सेन ने अपने वजीर जालपू से सलाह की कि वह उसे सबके सामने राज्य से निकाल दे। राजा ने जालपू को मुंह काला कर सबके सामने मंडी से निकाल दिया। जालपू अनंतपुर चला गया और राणा के यहां नौकरी कर ली। धीरे-धीरे वह विश्वास जीतने में सफल हुआ और रानी का धर्मभाई बन गया। एक दिन उसने रानी को कहा कि वह सब महिलाओं को देवी के दर्शन के लिए ले जाना चाहता है। अतः रानी ने आदेश दिया कि महिलाओं की पालकियों को बिना रोके किले में आने दिया जाए। जालपू ने अब मंडी आकर सूरज सेन से सलाह-मशविरा किया। अतः बहुत सी पालकियों में शस्त्र रखकर सैनिकों को कहार बनाकर उठाने के लिए लगाया गया। किले के भीतर घुसकर सैनिकों ने हमला बोल दिया। इस लड़ाई में अनंतपुर का राणा मारा गया। रानी सती हो गई। सती होते हुए रानी ने जालपू को शाप दिया कि उसके परिवार में लूले-लंगड़े पैदा होंगे जो कहते हैं कि पूरा हुआ।

सूरज सेन ने मंडी में महल बनवाया जिसे दमदमा महल कहते हैं। कहा जाता है उसने भू-राजस्व लेने के लिए नियम बनाए जिनका रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है।

सूरज सेन के अट्ठारह पुत्र हुए किंतु सभी उसके सामने मर गए। कोई उत्तराधिकारी नहीं बचा। अतः निराश होकर उसने गद्दी भगवान माधोराय को समर्पित कर दी और स्वयं उनका सेवक बना। माधोराय की चांदी की मूर्ति बनवाई। मंदिर का कार्य चलाने के लिए तुंगल में भूमि दी। माधोराय की मूर्ति के ऊपर एक लेख है जिसमें लिखा है, 'सूर्य सेन, पृथ्वी के स्वामी, शत्रु नाशक ने इस पावन और चक्रधारी, सभी देवताओं के स्वामी माधोराय की मूर्ति भीमा सुनार द्वारा वीरवार 15 फागुन 1705 विक्रमी को बनवाई।' वि. 1705 की तिथि मार्च 1648 है।

शिवरात्रि के समय इन्हीं माधोराय की शोभायात्रा निकाली जाती है जिसमें राजा भी भाग लेते हैं। इलाके के सभी राजा पहले माधोराय को और फिर राजा को माथा नवाते हैं। कुल्लू के दशहरे की भांति मंडी में भी शिवरात्रि का प्रादुर्भाव हुआ।

अपने अंतिम दिनों में राजा का स्वास्थ्य खराब रहने लगा। वह गुस्से में रहता और राजकाज के कार्यों में भी अपने को असमर्थ पाता। कुछ लोगों ने कहा कि यह भाई श्याम सेन द्वारा किया जादू-टोना है क्योंकि निःसंतान होने के कारण उत्तराधिकारी श्याम सेन ही था। श्याम सेन इससे बहुत दुखी हुआ और तीर्थयात्रा पर निकल गया। बनारस, जगन्नाथ आदि जाने के बाद वह मंडी वापस न आकर अपने मित्र चंबा के राजा पृथ्वी सिंह के पास चला गया। सूरज सेन ने अंतिम समय आने पर भाई को बुलवा भेजा कि वह मुंह देख जाए। श्याम सेन मंडी के लिए चल पड़ा किंतु जब वह रास्ते में ही था कि सूरज सेन की मृत्यु हो गई।

इस प्रकार विवादास्पद समय बिताने के बावजूद 27 वर्ष राज करने के बाद सन् 1664 में सूरज सेन की मृत्यु हुई। सूरज सेन की मृत्यु के समय की एक करुणाजनक कहानी कही जाती है। जब राजा की मृत्यु के बाद रानियां सती होने लगीं तो उन्होंने दान देने के लिए खजाने में आदमी भेजे किंतु खजाने में ताला लगा था। अतः उन्होंने गुस्से में दमामा महल की दीवार पर कटार फेंकी जिसका निशान आज तक मौजूद है। उन्होंने शाप दिया कि 'मंडी नमकहरामों की परोल' है।

सूरज सेन का समय पराजयों, षड्यंत्र और धोखाधड़ी का समय बीता जिसमें शाप ही शाप मिले।

श्याम सेन (1664)

श्याम सेन राजा बनने पर अधेड़ हो चुका था। अतः वह लंबे समय तक राज नहीं कर पाया। उसने पुराने दरबारियों तथा मंत्रियों की सहायता से ही राज किया। इसी समय मुगल सेना ने कहलूर पर हमला बोला। राजा श्याम सेन से सहायता मांगी गई जो उसने तुरंत दे दी। इस लड़ाई में पर्याप्त नुकसान हुआ और राजा ने इस लड़ाई

में मरने वालों के परिवारों को भूमि प्रदान की। ये सारी जागीरें पांच लाख के लगभग थीं।

श्याम सेन के समय किसी राणा या ठाकुर के विद्रोह की बात सामने नहीं आती। सुकेत के राजा मंडी की बढ़ती हुई शक्ति से ईर्ष्या करते थे अतः दोनों की शत्रुता बढ़ गई। लेपेल ग्रिफिन ने उल्लेख किया है कि ये दोनों एक-दूसरे के शत्रु थे अतः एक-दूसरे के इलाके छीनने में लगे रहते थे। दोनों के मध्य झगड़े की जड़ मंडी के आगे फैला बल्ह का उपजाऊ क्षेत्र था। श्याम सेन के समय सुकेत में जीत सेन (1663-1721) शासक था जो उसे रंग का काला होने के कारण 'ठीकरनाथ' कहता था।

सुकेत के इतिहास में उल्लेख है कि चुंगी के विवाद को मिटाने के लिए श्याम सेन ने अपना एक अधिकारी सुकेत भेजा। जब वह अधिकारी सुकेत गया तो राजा ने व्यंग्य से पूछा कि ठीकरनाथ क्या कर रहा है? वह अपने राजा के विरुद्ध ये शब्द सह न सका अतः उसने बताया कि इस समय लाल हो गया है और चने भूनने के लिए तैयार है। जब श्याम सेन को इस बात का पता चला तो उसने सुकेत पर हमले की तैयारी कर दी। अपने पुत्र गोर सेन सहित वह बल्ह के मैदान में आ गया और लौहारा में युद्ध हुआ। सुकेत की सेना भाग खड़ी हुई। जीत सेन राजधानी की ओर भागा किंतु मंडी के एक सैनिक कटोच ने पकड़ लिया। उसने जीवन की भीख मांगी तो छोड़ा गया किंतु वह राजा का मुकुट ले आया। इस बहादुरी के बदले उसे श्याम सेन द्रंग की खान से नमक लगाया गया। लोहारा का क्षेत्र मंडी में मिलाया गया। इस युद्ध में गोर सेन जख्मी हुआ। इस जीत में पानी गर्म करने का ताम्रपत्र भी लूटकर लाया गया जिसे निशानी के तौर पर सुरक्षित रखा गया। इस लड़ाई के बाद मंडी का स्थान सुकेत से अधिक प्रतिष्ठाजनक हो गया।

इस युद्ध से पहले श्याम सेन ने प्रण किया था कि यदि विजयी हुआ तो मंडी की पहाड़ी पर देवी का मंदिर बनाएगा। अतः मंडी नगर से ऊपर 3000 फुट की ऊंची पहाड़ी पर श्यामा काली का मंदिर बनाया गया। इस मंदिर में नवरात्रों में मेले लगते हैं।

श्याम सेन के समय नाचन के एक व्यक्ति द्वारा पंडोह की एक ब्राह्मण औरत को भगाने का किस्सा भी प्रचलित है। उस व्यक्ति ने अपनी पत्नी को वापस लेने के लिए राजा से प्रार्थना की। राजा ने नाचन के राणा को इसके लिए पत्र भेजा। नाचन के राणा ने पत्र पाकर राजा को बुरा-भला कहा। ब्राह्मण ने सब बातें राजा को सुनाईं। अतः श्याम सेन ने नाचन पर हमला बोल दिया और राणे को पकड़कर मंडी ले आए। नाचन के राणे को छुड़ाने के लिए सुकेत के जीत सेन ने बड़ा प्रयत्न

किया किंतु असफल रहा। श्याम सेन के पुत्र गोर सेन को बतखों के शिकार का बड़ा शौक था। वह बल्ह में शिकार के लिए जाता था। सुकेत तथा नाचन ने गोर सेन को पकड़ने की योजना बनाई। सैनिकों ने गोर सेन को घेर लिया। एक सैनिक ने उसे अपने कपड़े पहनाकर घोड़े पर बिठाकर भगा दिया। यह सुन श्याम सेन सेना लेकर बल्ह गया और सन् 1669 में लोहारा दुर्ग का घेराव किया गया। दुर्ग के सैनिकों ने मंडी की सेना को पांच बार पीछे किया। इस बीच आग का एक गोला किले के भीतर गोला-बारूद के बीच जा गिरा और धमाके में सैनिकों सहित किले का एक भाग ध्वस्त हो गया। इस घटना का लाभ उठा मंडी के सैनिक किले में घुस गए। इसी लड़ाई में भागते हुए जीत सेन को मंडी के कटोच सैनिक ने पकड़ा और मुकुट लेकर छोड़ दिया।

मनमोहन के इतिहास में यह भी उल्लेख है कि श्याम सेन की रानी की मृत्यु पर गोर सेन अपनी माता की अस्थियां लेकर हरिद्वार गया तो वापसी में वह सिरमौर से होकर आया। सिरमौर के राजा बुद्ध प्रकाश (1664-1689) ने अपनी पुत्री का विवाह गोर सेन से करने के उद्देश्य से उसे रोक लिया। उसे विवाह के बाद ही सिरमौर नरेश ने भेजा।

अपने अंतिम चार वर्षों में राजा विलासिता में डूब गया। अतः कुल्लू के राजा ने बागीथाच, बांस आदि क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया। जब राजा को इस बात का पता चला तो उसने कुल्लू की ओर धावा बोला और सनोरगढ़, बजोरा को जीत शमशी पहुंच गया। कुल्लू के राजा से युद्ध में स्थिति कमजोर होते देख संधि की गई। कुल्लू द्वारा जीते हुए दुर्ग वापस कर एक लाख रुपए हरजाना देना स्वीकार किया गया। राजा वापसी में कंढी होते हुए आया। एक एकांत मार्ग पर कुल्लू के छिपे हुए सैनिकों ने आक्रमण कर दिया। साथी सैनिक मारे गए। एक लाख रुपए भी लूट लिए। राजा को भी मारना चाहते थे कि किसी ने कहा कि इसका युवा पुत्र गोर सेन बदला लेगा। अतः राजा को डोली में बिठा मंडी के सैनिकों के पास छोड़ा गया। इस घटना के बाद श्याम सेन का स्वास्थ्य गिर गया।

श्याम सेन की मृत्यु सन् 1679 में हुई।

गोर सेन (1679)

गोर सेन ने बिलासपुर की सहायता से धनयारा, बेरा तथा पटरी के किले तथा इलाके सुकेत से छीन लिए। इसके कार्यकाल में नाचन के राणे को छुड़ाने के लिए सुकेत ने कुल्लू तथा सरहिंद के मुगल सूबेदार नवाब हुसैन खान से बातचीत की। तीनों सेनाएं मंडी की ओर बढ़ने लगीं तो गोर सेन भी बल्ह और पंडोह से एक हजार

योद्धा लेकर तलीयाहर पहुंच गया। कमलाह तथा अनंतपुर के दुर्गों में भी सैनिक भेज दिए। मुगल सेना के साथ जाफिर बेग था। उसने मंडी पहुंचकर राजा को कहा कि राणा नाचन को छोड़ दिया जाए। गोर सेन ने नाचन के राणा को मरवा दिया।

मनमोहन ने अपने इतिहास में लिखा है कि मंडी के एक बहुरूपिए ने नकली फरमान बनाकर जाफिर बेग को दिया कि उसे सुलतान ने विद्रोह के कारण तुरंत वापस बुलवाया है। अतः मुगल सेना तुरंत लौट गई। हचिसन-वोगल ने लिखा है कि सरहिंद के नवाब की मृत्यु का समाचार सुन सेना वापस लौटी।

मनमोहन ने लिखा है कि मंडी के बिलासपुर तथा बुशहर से अच्छे संबंध थे। उक्त संगठन के विरुद्ध बिलासपुर तथा बुशहर के राजा हरि सिंह ने सहायता की। राजा हरि सिंह सेना लेकर मंडी आया और गुटकर में उसका भव्य स्वागत किया गया। इन सेनाओं ने सुकेत के कई किलों पर अधिकार किया और क्षेत्र को मंडी में मिलाया। गोर सेन ने पिता की हार का बदला भी कुल्लू से लेना चाहा किंतु पराजित हुआ। गोर सेन ने दोबारा आक्रमण किया जिसमें कुल्लू की पराजय हुई। कुल्लू नगर को लूटा गया। जीते हुए किले वापस लिए गए। क्षतिपूर्ति के लिए दो लाख रुपए वसूला गया। कुल्लू तथा मंडी की सीमा बजौरा के पास निश्चित हुई। संभवतः यह लड़ाई सिद्ध सेन के समय हुई।

पिता की भांति गोर सेन ने भी धार्मिक स्थानों की यात्रा की। वह जगन्नाथ धाम गया और वहां से एक मूर्ति लाया जिसे मंडी शहर के बाहर एक मंदिर में स्थापित किया गया।

गोर सेन ने मात्र पांच वर्ष राज किया। उसकी मृत्यु सन् 1684 में हुई।

सिद्ध सेन (1684)

सिद्ध सेन बहुत बड़ा योद्धा था जिसने अपनी सीमाओं को तीन ओर बढ़ाया। कुल्लू, भंगाल तथा सुकेत के बहुत से इलाके अपने राज्य में मिलाए। सन् 1688 में सुकेत के नाचन, हटली तथा लद के क्षेत्र मिलाए गए। मस्तगढ़, मदनगढ़, धंगियारा तथा आलदगढ़ के किले कब्जे में किए। सन् 1690 में धनेसरगढ़, सरकपुर तथा शिवपुर के किले जीते गए। सिद्धकोट का किला बनाया गया। सन् 1698 में सुकेत से रायपुर तथा माधोपुर लिया गया। सन् 1706 से हटली जीती गई तथा हमीरचंद कटोच से लद का इलाका जीता।

भंगाल का एक हिस्सा भी मंडी में मिलाया गया। भंगाल के राजा पृथीपाल ने मंडी के राजा की पुत्री ब्याही हुई थी जबकि उसकी बहन कुल्लू के राजा मान सिंह को ब्याही थी। भंगाल में छोटा भंगाल, पपरोला, लंदोह के क्षेत्र के साथ रावी के किनारे

बड़ा भंगाल का इलाका था। सिद्ध सेन ने यह क्षेत्र षड्यंत्र द्वारा हथियाना चाहा। पृथी पाल को मंडी आमंत्रित किया गया ताकि सुकेत के विरुद्ध सहायता ली जा सके। उसे सम्मानपूर्वक मंडी बुलाया गया और दमामा महल में बंदी बना दिया गया। अंततः उसे मार दिया गया। उसके सिर को महल के सामने दबाया गया। जहां एक तालाब बनाया गया।

कुल्लू के राजा मान सिंह को इस हत्याकांड का पता चला तो उसने बड़ा भंगाल तथा छोटा भंगाल पर अधिकार जताया। इसी प्रकार कांगड़ा ने बीड़ भंगाल पर कब्जा किया। मंडी के हाथ बहुत कम आया।

सिद्ध सेन ने कुल्लू पर भी आक्रमण किया किंतु कुल्लू का राजा मान सिंह मंडी के उत्तरी भाग से द्रंग तथा गुम्मा तक पहुंच गया। संधि के बाद नकद नजराना देकर मान सिंह को लौटाया जा सका। किंतु मनमोहन ने अपने इतिहास में लिखा है कि मंडी के सेनापति वीर सिंह ने उसे वापस भेजा।

कहा जाता है कि सन् 1701 में औरंगजेब के विरुद्ध पहाड़ी राजाओं से सहयोग लेने के लिए गुरु गोबिंद सिंह कुल्लू गए। कुल्लू के राजा मान सिंह की उनसे अनबन हो गई और उन्हें बंदी बना लिया। गोबिंद सिंह किसी तरह मंडी आ गए जहां उनका खूब आदर-सत्कार किया गया। गुरु जी ने जाती बार राजा से कुछ मांगने को कहा तो राजा ने कहा कि मंडी नगर पर कभी शत्रु न आएं। गुरु जी ने कहा :

'मंडी को जब लूटेंगे, आसमानी गोले छूटेंगे।'

अतः मंडी जब सिख साम्राज्य के अधीन हुई तो सिख शासकों ने गुरु के वचनों का मान रखा और कर वसूली के लिए कभी मंडी में प्रवेश नहीं किया। सन् 1839 में बलवीर सेन के समय जब विगने आया तो उसने देखा कि किसी अंधविश्वास के कारण रणजीत सिंह के सेवक मंडी प्रवेश नहीं करते हैं। वे मंडी शहर के बाहर रहकर कर इकट्ठा करते हैं। जब तक विगने वहां रहा, कोई भी प्रतिनिधि मंडी शहर के भीतर नहीं आया।

कहा जाता है कि सिद्ध सेन एक विशालकाय आदमी था। उसके कपड़े मंडी के महल में रखे हुए थे जिन्हें कोई दैत्याकार व्यक्ति ही पहन सकता था। सिद्ध सेन तांत्रिक भी था और उसके पास चमत्कारी शक्तियां थीं। विश्वास है कि रहस्यमयी शक्तियों के ऊपर उसका प्रभाव था। उसके पास एक रहस्यमयी किताब थी जिसे उसने मरने से पहले व्यास नदी में फेंक दिया। सर लेपेल ग्रिफिन ने कहा है :

'सत्य यह प्रतीत होता है कि सिद्ध सेन अन्य लोगों से अधिक बुद्धिमान था और उसकी निरंतर सफलता ने उसे अतिमानवीय शक्ति का प्रतीक बना दिया।'

सिद्ध सेन ने सिद्धकोट किले के अतिरिक्त मंडी से दो मील दूर सिद्ध गणेश

तथा नदी के साथ सिद्ध भद्रा का मंदिर बनवाया। इसके अतिरिक्त त्रिलोकीनाथ, पंचवक्तर, बटुक भैरव, सिद्ध सैंार, सिद्ध जालपा, शम्भु महादेव आदि कुल चौदह मंदिरों का निर्माण किया।

सिद्ध सेन ने इकतालीस वर्ष राज किया और मृत्यु के समय उसकी आयु सौ वर्ष बताई जाती है।

मनमोहन के इतिहास के अनुसार सन् 1683 में मंडी में अकाल पड़ा। अतः राज्य के अन्न के भंडारों से अन्न बांटा गया। सन् 1717 में सुकेती खड्ड में बाढ़ आई जिससे बहुत हानि हुई।

सुधार कार्य

सिद्ध सेन ने गद्दी पर बैठने के बाद अपने पिता की रखैल के पुत्र मियां जप्पू को वजीर बनाया। मियां जप्पू बहुत बुद्धिमान और चतुर व्यक्ति था, उसने राज्य में कई सुधार किए :

1. भूमि बंदोबस्त करवाया गया जो सन् 1917 तक चलता रहा।

2. विवाह उत्सव में मंगनी तथा विवाह के नियम बनाए ताकि अधिक व्यय न हो सके।

3. राज्य में अन्न के भंडार बनाए गए जहां से प्रजा अन्न उधार ले सकती थी।

4. राज्य के कोष से भी ऋण की व्यवस्था की गई। ब्याज एक पैसा प्रति रुपए रखा गया।

5. भू-राजस्व अन्न के स्थान पर नकद देने की व्यवस्था भी की गई। जो चांदी की नकदी न दे पाएं, उन्हें छह पैसे प्रति रुपए तांबे की मुद्रा में कर देने की छूट दी गई।

6. पुराने कागज-पत्रों, पट्टों की पड़ताल के बाद धोखाधड़ी से ली जागीरें समाप्त की गईं।

7. आय बढ़ाकर आर्थिक स्थिति सुधारी गई।

सिद्ध सेन का सेनापति मियां बीरू सिंह या वीर सिंह था। उसने सेना को नए ढंग से संगठित किया और सुकेत के कई क्षेत्र जीते।

कनिंघम ने सिद्ध सेन के बाद उसके पुत्र शिव ज्वाला सेन का शासनकाल 1727 से 1750 तक गिनाया है। मंडी की परंपरा में विश्वास है कि शिव ज्वाला सेन ने तीन वर्ष तक राज किया। किंतु शिव ज्वाला सेन की मृत्यु सन् 1722 में हो गई। उसकी मृत्यु पिता सिद्ध सेन से पांच वर्ष पूर्व हो गई। अतः यह संभव है कि वह अपने जीवनकाल में पिता के साथ सहशासक रहा हो।

कहा जाता है कि शिव ज्वाला सेन के दो रानियों से दो पुत्र थे जिनका जन्म भी एक ही समय हुआ था। इनमें से उत्तराधिकारी कौन बने, यह जानने के लिए सिद्ध सेन ने एक तलवार तथा धूल उन दोनों के सामने रखी। एक शिशु ने तलवार को हाथ लगाया तो दूसरे ने धूल को। अतः जिसने तलवार छुई उसी को उत्तराधिकारी माना और उसका नाम शमशेर रखा और दूसरे का 'धूड़चाटिया' अर्थात् धूल चाटने वाला।

शमशेर सेन (1727)

दादा की मृत्यु के बाद शमशेर सेन जब गद्दी पर बैठा तो उसकी आयु पांच वर्ष थी। अतः शासन का कामकाज मियां जप्पू चलाता रहा। शिक्षा-दीक्षा के प्रबंध के बाद युवा होने पर शमशेर सेन का विवाह चंबा के राजा उगर सिंह (1720-35) की राजकुमारी से करवाया गया।

शमशेर सेन के समय कुल्लू में जयसिंह (1731-42) का राज था। जयसिंह के समय दयारी वजीर ने विद्रोह कर दिया। अतः जयसिंह को सहायता के लिए लाहौर जाना पड़ा। शमशेर सेन ने इसका लाभ उठाकर कुल्लू पर हमला कर चौहार का इलाका जीत लिया। अमरगढ़, देवगढ़, मस्तपुर तथा सारी भी जीते गए। सन् 1755 में बीड़ पर हमला किया गया किंतु चंबा के राजा उमेदसिंह ने बीच-बचाव कर पहले की स्थिति कायम की। मंडी तथा सुकेत के बीच भी झड़पें होती रहीं। मंडी का ठाकुर राम सिंह तथा सुकेत के वजीर सलाहू की मौत इन लड़ाइयों में हुई।

अब तक राज्य का कामकाज मियां जप्पू ही देख रहा था। मियां जप्पू तथा रानी हटली राजकाज कुशलतापूर्वक चला रहे थे। राजा शमशेर सिंह मंद बुद्धि था तथा घटिया लोगों से घिरा रहता था जिससे उसे हानि उठानी पड़ी। मियां जप्पू के विरोधियों ने रानी के कान मियां के विरुद्ध भरने शुरू कर दिए। हरदास और धर्मनाथ मियां जप्पू के विरुद्ध थे। एक बार रानी हटली रिवालसर के ऊपर नैणा देवी के दर्शन के लिए गई। वापसी पर रानी अपने संबंधियों से मिलने हटली गई। उनकी करुणाजनक स्थिति देख रानी ने उन्हें उनका राज्य लौटाने का निर्णय लिया। मियां जप्पू ने इस बात का विरोध किया तो रानी रुष्ट हो गई। अतः दरबार में दो दल बन गए। एक में मियां जप्पू, मियां वीर सिंह, पुरोहित देव दत्त थे तो दूसरी ओर हरदास, धर्मनाथ, सिद्ध सेन की रखैलों के पुत्र सेनू, गेनू, आसू, ईश्वर तथा हटली रानी के कुछ रिश्तेदार। अतः मियां जप्पू को मारने का षड्यंत्र रचा गया। एक बार जब मियां जप्पू महल में जा रहा था तो प्रवेश द्वार पर उसे गिराकर छिपे हुए लोगों ने मार दिया। राजा को इस बात का जब पता चला तो उसने धर्मनाथ को उसी स्थान

पर गिराया और मृत्युदंड दिया। अतः रानी हटली डर के मारे भागकर घासणू में जाकर रहने लगी।

मियां जप्पू की मृत्यु पर राजा का भाई धूड़चाटिया आगे आया और अपना प्रभाव बढ़ाने लगा। वह वास्तविक राजा बन गया जबकि शमशेर सिंह नाममात्र का ही राजा रह गया। धूड़चाटिया का विवाह गांव कास के चौहानों में हुआ था। उसने अपने ससुराल वालों को अच्छी नौकरियां दिलाईं और सब जगह गुप्तचर बिठा दिए। शमशेर सेन का पुत्र सूरम सेन जैसे-जैसे युवा होने लगा, धूड़चाटिया को सत्ता खिसकती नजर आने लगी। धूड़चाटिये के इरादे सूरम सेन की मां कटोची रानी ने भांप लिए। अतः उसने सूरम सेन तथा उसके शिक्षक को सुकेत के गांव तांडा में भेज दिया। वहां से वे बिलासपुर चले गए किंतु बिलासपुर के राजा ने उन्हें रखने से मना कर दिया। अतः वहां से वे कांगड़ा जाकर महल मोरियां में रहे। कांगड़ा का राजा तेग चंद उन्हें महल मोरियां से साथ ले आया। कुछ समय बाद वह सेना लेकर मंडी आया और धूड़चाटिया तथा उसके साथियों को सुकेत भगाया।

सन् 1743-44 में जालंधर के नवाब अदीना बेग ने अपनी नियुक्ति के बाद 1745-46 में गुलेर के राजा दलीप सिंह पर आक्रमण किया। दलीप सिंह ने आत्मसमर्पण किया। उसने जसवां, मानकोट, नूरपुर, कुटलैहड़, भंगाल, बीजापुर आदि सब पहाड़ी राजाओं को अपने अधीन किया। गुलेर के राजा दलीप सिंह ने उसे कमलाह गढ़ तथा मंडी की विकट स्थिति से अवगत करवा दिया था किंतु शमशेर सेन ने स्वयं ही अधीनता स्वीकार करने का संदेश भेज दिया। अदीना बेग ने 1758 तक समस्त पहाड़ी शासकों को अपने अधीन किया। अदीना बेग की मृत्यु के बाद 1759 में कांगड़ा के राजा घमंड चंद को गवर्नर बनाया गया। मंडी भी अन्य पहाड़ी राज्यों की तरह रहा होगा। यद्यपि इतिहास में कोई उल्लेख नहीं है। सन् 1767 में अहमदशाह अब्दाली का अंतिम आक्रमण हुआ। उसकी वापसी पर लाहौर में सिखों ने अधिकार किया। जस्सा सिंह ने 1770 में जालंधर के दोआबे पर अधिकार किया अतः पहाड़ी रियासतों पर भी सिखों का प्रभाव बढ़ा। जस्सा सिंह के बाद ये क्षेत्र जयसिंह के प्रभुत्व में आ गए।

शमशेर सेन का अंतिम समय अच्छा नहीं बीता। उसका छोटा भाई धूड़चाटिया तथा मंत्री अपनी शक्ति बढ़ा चुके थे और वह नाममात्र का शासक रह गया था। एक समय यह भी आया कि उसने (धूड़चाटिया) सूरम सेन को भी किनारे करने का प्रयास किया।

54 वर्ष के लंबे शासन के बाद 1781 में राजा की मृत्यु हुई।

सूरम सेन (1781)

सूरम सेन ने सबसे पहले मियों तथा अपने संबंधियों को सही जगह बताई और उसके राज्य में सभी मियां शक्तिहीन हो गए। दूसरे प्रतिद्वंद्वी भी भयभीत हो गए। चाचा धूड़चाटिया को सुकेत भागना पड़ा।

सूरम सेन ने अपने शिक्षक वैरागी राम को वजीर बनाया और बुद्धिमत्ता से शासन संभाला।

कुल्लू के राजा प्रीतम सिंह (1767-1806) ने हमला कर देओगढ़, मस्तपुर, सारी तथा अमरगढ़ वापस छीन लिए किंतु मंडी के इतिहास के अनुसार सन् 1781 में कुल्लू के राजा ने गढ़, छेटी और त्रिलोकपुर जीते। मंडी ने अन्य राजाओं की सहायता से सेहल में लड़ाई की। इस लड़ाई के बाद कुल्लू द्वारा पुनः आक्रमण हुआ। इस आक्रमण के समय मंडी ने अनंतपुर, हटली तथा गुम्मा से सैनिक इकट्ठे कर भेजे किंतु भारी हिमपात होने से आक्रमण असफल रहा। अतः वजीर वैरागी राम ने जसवां, गुलेर, दतारपुर से सहायता लेकर धर्मचरी, त्रिलोकपुर पर आक्रमण कर कुल्लू की सेनाएं खदेड़ दीं। कुल्लू की सेना ने धर्मचरी को आग लगा दी और धमकपुर पर अधिकार कर लिया। किंतु इस अभियान में मंडी की सेना कुल्लू वालों को भगाने में सफल रही।

सूरम सेन के समय सुकेत में रणजीत सेन (1762-91) शासक था। रणजीत सेन के भाई किशन सिंह ने बल्ह और नेर क्षेत्र को मिलाने के लिए बिलासपुर से मिलकर नेर पर आक्रमण किया। नेर के लोगों ने उसे भगा दिया। उसने दोबारा आक्रमण किया तो मंडी के सैनिकों ने उसे गिरा दिया। उसके बेहोश होने से सेना भाग गई।

इस बीच कांगड़ा नरेश ने अपना सारा राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। राजा संसार चंद ने जय सिंह कन्हैया से मिलकर नगरकोट किले का घेराव किया किंतु किला जय सिंह के हाथ चला गया। सन् 1786 में जय सिंह मैदानों में हारने पर पहाड़ों से भी जाता रहा। अतः किले पर संसार चंद का अधिकार हो गया। संसार चंद ने अब सभी पहाड़ी राज्यों को अपने अधीन कर लिया। मंडी द्वारा भी कांगड़ा की सत्ता स्वीकार की गई। मंडी द्वारा कुल्लू पर आक्रमण के लिए कांगड़ा को सैनिक देने पड़े।

सूरम सेन की सन् 1788 में मृत्यु हो गई।

ईश्वरी सेन (1788)

जब सूरम सेन की मृत्यु हुई तो ईश्वरी सेन की आयु मात्र चार वर्ष थी। अतः शासन व्यवस्था वजीर वैरागी राम के हाथ रही। राजा के नाबालिग होने के कारण मियां लोग फिर सिर उठाने लगे। अतः वजीर वैरागी राम ने राजा संसार चंद से

सहायता लेनी चाही। लगभग 1792 में संसार चंद ने मंडी पर हमला बोला और राजधानी को लूटा। सुकेत नरेश ने अधीनता स्वीकार की और उसे हटली का क्षेत्र दिया गया। कुल्लू को चुहार दिया गया और अनंतपुर संसार चंद ने अपने पास रखा। ईश्वरी सेन को सुजानपुर टिहरा ले जाया गया और बारह वर्ष तक वहां बंदी के रूप में रखा गया। राज्य को मंत्रियों के आसरे छोड़ दिया और एक लाख रुपए कर लिया जाने लगा। राजा के बिना तथा संपन्न इलाके खोने पर मंडी का राज्य श्रीविहीन हो गया। यद्यपि संसार चंद कमलाह किले पर कब्जा नहीं कर सका।

संसार चंद पहाड़ी क्षेत्र का सशक्त शासक बन चुका था। उसका सामना करने में किसी पहाड़ी शासक में क्षमता नहीं थी। सन् 1803-04 में संसार चंद ने दो बार होशियारपुर के पास मैदानों पर आक्रमण किया किंतु दोनों ही बार संसार चंद सफल नहीं हुआ। अतः 1805 में संसार चंद ने कहलूर का एक भाग सतलुज के दाएं किनारे जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इससे कहलूर नरेश ने गोरखों को आमंत्रण दे दिया। नेपाल घाटी में गोरखा एक नई शक्ति के रूप में उभरे थे। अतः गोरखों का आगमन कांगड़ा में हुआ। महल मोरियां में संसार चंद की हार हुई। गोरखा सेना ने नादौन पहुंचकर राजा ईश्वरी सेन को कैद से छुड़ाया और मंडी भेज दिया।

ईश्वरी सेन के मंडी पहुंचने तक सुकेत द्वारा मंडी के छह किले और हटली का क्षेत्र हथिया लिया था। ईश्वरी सेन ने कहलूर की सहायता से ये क्षेत्र तथा किले वापस छुड़ा लिए।

संसार चंद ने कांगड़ा किले से लड़ाई लड़ी और गोरखों ने सन् 1806 से 1809 तक किले के बाहर घेरा डाले रखा। अंततः संसार चंद ने महाराजा रणजीत सिंह से सहायता ली। संसार चंद के न चाहते हुए रणजीत कांगड़ा किले में कब्जा करने में सफल हो गया। अतः कांगड़ा पर रणजीत सिंह का कब्जा हो गया। गोरखा सैनिक भगा दिए गए। कांगड़ा के साथ सभी पहाड़ी रियासतें भी रणजीत सिंह के अधीन हो गईं। सरदार देस्सा सिंह मजीठिया कांगड़ा का पहला सूबेदार नियुक्त हुआ जिसने मंडी का तीस हजार रुपए कर नियत किया। सन् 1815 में नजराने की राशि एक लाख कर दी गई। इसे लेने के लिए जमादार खुशहाल सिंह को नियुक्त किया गया। नजराने की राशि घटाने के लिए लाहौर दरबार में फरियाद की गई। कुछ उपहार भेजे गए। अतः सन् 1816-17 में यह राशि कम करके पचास हजार कर दी गई। मंडी को वे क्षेत्र भी लौटाए गए जो संसार चंद ने कुल्लू तथा सुकेत को दिए थे।

ईश्वरी सेन का छोटा भाई जालिम सेन राजा के विरुद्ध षड्यंत्र करने में लगा रहता था। जालिम सेन ने राज्य को बहुत हानि पहुंचाई। कर की राशि बढ़ाने में

New Image

From Scanner



Click Scan

भी जालिम सेन का हाथ था। वह रणजीर सिंह के पास लाहौर पहुंच गया और फरियाद की कि यदि उसे राजा बना दिया जाए तो वह एक लाख नजराना देगा। यद्यपि बाद में दोनों भाइयों में मेल हो गया और मामला टल गया।

ईश्वरी सेन के समय बुशहर के राजा उग्र सेन ने वहां गोरखों का अधिकार होने पर शरण ली। कहा जाता है उग्र सेन की मृत्यु भी मंडी में ही हुई। नागपुर का राजा अप्पा साहब भी सन् 1822 में मंडी आया और ईश्वरी सेन की मृत्यु के बाद वापस चला गया।

विलियम मूरक्राफ्ट पहला यूरोपियन था जो मार्च 1820 में मंडी आया। वह बिलासपुर-सुकेत होकर आया। अपने मित्र ट्रेबेक को मंडी छोड़ वह रणजीत सिंह से आज्ञा पत्र लेने के लिए लाहौर गया और नादौन, सुजानपुर टिहरा, बैजनाथ, गुम्मा होते हुए कुल्लू गया। कुल्लू से वह लद्दाख गया।

ईश्वरी सेन की मृत्यु सन् 1826 में हुई।

मूरक्राफ्ट ने अपने संस्मरणों में मंडी सहित इन स्थानों के बारे में बहुत कुछ लिखा है। मंडी की सीमा में घुसने से पहले नेर के किले में इन्हें रोक लिया गया। जब राजा को संदेश भेजा गया तो पता चला कि राजा को रणजीत सिंह से धमकी मिली थी कि इन्हें यहां से होकर जाने न दिया जाए। मूरक्राफ्ट ने बताया कि वे तो व्यापारी हैं अतः उन्हें रोके जाने का कोई कारण नहीं है। बात न बनने पर मूरक्राफ्ट अपने साथियों को छोड़ लाहौर गया। राजा मंडी ने ट्रेबेक तथा अन्य साथियों की सुरक्षा का जिम्मा लिया। मूरक्राफ्ट लाहौर गया और नादौन, सुजानपुर टिहरा, बैजनाथ होता हुआ वापस लौटा। वे मंडी से 11 जुलाई (1820) को चले। उन्होंने मंडी को कुल्लू से तीन गुना आकार का बताया है जिसके बीच राजा का महल था। नगर में ऊंची सफेद इमारतें थीं जिनके छतें सलेटों से छाई थीं। घर अल्मोड़ा के घरों की भांति थे। नगर के प्रवेश के पास मंडी के राजाओं के लंबे और छोटे पत्थर रखे हैं जो राजाओं के मरने पर रखे जाते हैं। हर पत्थर में राजा के साथ रानियां भी बनी हैं जो सती हुई थीं। नदी में जाने के लिए घाट बना है। सामान खटनालू के द्वारा पार ले जाया गया। वे आगे लिखते हैं :

'मंडी के निकट, सुकेती नदी के पार एक बड़ा मंदिर है जिसकी मूर्ति पांच पीढ़ियां पहले या लगभग दो शताब्दियां पहले राजा के किसी पूर्वज द्वारा जगन्नाथ में सात सौ रुपए में खरीदी गई थी और बहुत कीमत चुकाकर यहां लाई गई। मंडी का राजा ईश्वरी सेन एक छोटे कद का सुगठित व्यक्ति है जिसकी उम्र लगभग पैंतीस वर्ष होगी, एक सीमित समझ वाला और डरपोक है।'

जालिम सेन (1826)

ईश्वरी सेन का कोई उत्तराधिकारी नहीं था अतः उसका भाई जालिम सेन उत्तराधिकारी बना। गद्दी पाने का जालिम सेन को एक लाख रुपया देना पड़ा और कर की रकम 75,000 तय की गई।

जालिम सेन बहुत जालिम था। कर इकट्ठा करने में उसकी क्रूरता अब भी याद की जाती है। कहा जाता है, जब गद्दी पर बैठने का एक लाख चुकाना था तो खजाने में धन नहीं था और यह राशि साहूकारों और व्यापारियों तथा धनिकों से ली गई। ग्रामीणों से, स्थानीय अधिकारियों से कर लिया गया जिससे लोग असंतुष्ट हो गए। उसने वजीर धरी खत्री को भी मरवा दिया जो जालिम सिंह का सहायक था।

जालिम सेन के समय मंडी तथा कहलूर के बीच लड़ाई हुई जिसमें दोनों सेनाओं के सेनापति मारे गए। सूलपुर, जिसके लिए झगड़ा हुआ, मंडी के पास ही रहा। कुल्लू में इन दिनों दो वर्गों में राजगद्दी के लिए झगड़ा चला हुआ था। जालिम सेन ने सरदार लेहना सिंह को लाहौर दरबार में 70,000 रुपए देना तय किया ताकि कुल्लू का कुछ भाग हथिया सके। अतः वह थारा और रघुपुर के बीच के भाग को हथियाने में सफल हुआ।

अपने अंतिम समय में जालिम सेन ने अपने भतीजे बलवीर सेन को प्रशासन सौंप दिया। बलवीर सेन, ईश्वरी सेन के छोटी (अवैध) संतानों में एक था। जालिम सेन ने अपने जीवनकाल में ही उत्तराधिकारी घोषित कर दिया अतः लाहौर दरबार को भी कोई आपत्ति नहीं हुई। जालिम सेन की मृत्यु सन् 1839 में हुई।

बलवीर सेन (1839)

बलवीर सेन के उत्तराधिकारी बनने का बहुत विरोध हुआ। धूड़चाटिया के उत्तराधिकारियों ने अधिक विरोध किया। बलवीर सेन उस समय बाईस वर्ष का था। इसके राजा बनने के दो मास बाद विगने मंडी आया। विगने ने लिखा है : 'युवा राजा छोटे कद का और गठीला है। वह हंसमुख, अच्छे स्वभाव वाला और यूरोपियनों की तरह मुखमुद्रा वाला है। वह बहुत ही सामाजिक और अंग्रेजों से मित्रता करने में बढ़-चढ़कर है। अन्य राजाओं से हटकर उसने मुझे मेरी सहूलियत देखते हुए एक दिन भी अधिक रुकने के लिए विवश नहीं किया।'

बलवीर सेन के गद्दी पर बैठने के तुरंत बाद 27 जून 1839 को रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई। रणजीत सिंह का पुत्र खड़क सिंह राजा बना। वह अयोग्य साबित हुआ अतः अराजकता फैल गई। उसके पुत्र नौनिहाल सिंह ने सारी शक्ति समेटी

किंतु सिख सेना वश में न रही। अतः सेना को व्यस्त रखने के लिए मंडी, कुल्लू तथा सुकेत पर आक्रमण की योजना बनी। लद्दाख और तिब्बत सेना भेजने के लिए इन इलाकों को जीतना उचित समझा गया। अतः फ्रांसिसी जनरल बेंचूरा के नेतृत्व में एक सेना जून 1840 में मंडी भेजी गई। सेना ने सिकंदर धार पार कर बल्ह में डेरा डाला। जनरल ने नजराने की बकाया राशि मांगी जो राजा ने भेज दी।

मंडी में इतनी बड़ी सेना देख राजा डर गया और उसने सपाटु में पोलिटिकल एजेंट कर्नल टेप को राजा तथा उसके परिवार को राजनीतिक शरणार्थी रखने के लिए अनुरोध किया किंतु कर्नल टेप ने यह बात स्वीकार नहीं की।

जनरल वेंचूरा ने राजा को एक व्यक्ति अयोध्या प्रसाद के पास संदेश देकर भेजा कि वह सेना के कैंप में आए, वहां उसे खिल्लत दी जाएगी। वजीरों के सचेत करने पर भी राजा अयोध्या प्रसाद के साथ हाथी पर बैठ कैंप में चला गया जहां उसे मान-सम्मान के साथ कैंप में ठहराया गया और बाहर पहरा बिठा दिया। राजा को विवश किया गया कि सभी किले सिखों को दे दिए जाएं। वेंचूरा ने राजा से हस्ताक्षर करवाकर सभी किले ले लिए। इन कागजों में सभी किले सिखों को सौंपने की बात थी। तथापि मस्तगढ़, शाहपुर, बैराह किलों के किलेदारों ने विरोध किया किंतु आत्मसमर्पण करना पड़ा। कमलाह किला आसानी से नहीं लिया जा सका। सितंबर 1840 में किले का घेराव किया गया। बीमारी और शीत से सैनिकों को कठिनाई आई अतः लाहौर से और सेना मंगवाई गई। इसी बीच नौनिहाल सिंह की मृत्यु हो गई। किंतु किले का घेराव जारी रखा गया। 29 नवंबर, 1840 को कमलाह किले पर सिखों का अधिकार हो गया।

राजा बलवीर सेन को अमृतसर भेज गोबिंदगढ़ में बंदी बनाकर रखा गया। जनरल वेंचूरा मंडी को अधीन कर कुल्लू चला गया और उसके बाद दिसंबर में 200 पहाड़ी किले जीतने के बाद लाहौर लौट गया।

वेंचूरा के लौटने पर कर्नल फौल्कस के नेतृत्व में सिख सेना की एक टुकड़ी रही। बाद में इस सेना में विद्रोह हो गया और कर्नल फौल्कस मार दिया गया। कहा जाता है, उसे चिता जलाकर जिंदा उसमें डाल दिया।

लाहौर दरबार से शेख गुलाम महई-उ-दीन को नजराना वसूलने के लिए भेजा गया। उसने 2,35,000 रुपए वसूले। उसे अप्रैल 1841 में कश्मीर का सूबेदार बनाया गया।

जनवरी 1841 में शेर सिंह लाहौर का महाराजा बना। थोड़े दिन बाद शेर सिंह गोबिंदगढ़ गया तो उसने बलवीर सेन को छोड़ने के आदेश दिए। बलवीर सेन को कमलाहगढ़ से सिख सेना द्वारा लाई रूपेश्वरी देवी की मूर्ति भी वापस कर दी। अतः

बलवीर सेन मई 1841 में वापस लौटा।

महाराजा शेर सिंह और उसके पुत्र के वध के बाद दलीप सिंह गद्दी पर बैठा जो मात्र पांच वर्ष का था। अतः अराजकता की स्थिति हो गई। बलवीर सेन ने पहाड़ी रियासतों के सुपरिंटेंडेंट आर्स्किन से गुप्त वार्ता जारी रखी ताकि सुरक्षा मिल सके। दिसंबर 1845 में जब सिख सेना ने सतलुज के पार अंग्रेजी क्षेत्र पर हमला बोला तो बलवीर सेन को भी गुसाऊं वजीर के नेतृत्व में तीन सौ सैनिक भेजने पड़े। इस लड़ाई के बाद सुकेत के राजा ने आर्स्किन के पास एक व्यक्ति पंडित सिब्बू भेजा ताकि वे ब्रिटिश के साथ हो सकें। अतः 21 फरवरी, 1846 को दोनों राजा (मंडी तथा सुकेत) बिलासपुर में मि. आर्स्किन से मिले।

बलवीर सेन ने इस युद्ध के नतीजे की प्रतीक्षा करने से पहले ही सिखों पर हमला बोल दिया। कमलाहगढ़ के सिवा सभी किलों से सिखों को खदेड़ दिया। कमलाहगढ़ लड़ाई खत्म होने पर लिया गया।

9 मार्च, 1846 को सिख तथा अंग्रेजों के बीच संधि हुई जिसके अनुसार सतलुज तथा व्यास नदियों के बीच का क्षेत्र अंग्रेजों को मिला। अतः मंडी और सुकेत का क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन आ गया और इसे जालंधर के कमिश्नर के अधीन किया गया।

मंडी के अंग्रेजी शासन के अधीन आने पर धूड़चाटिया के एक वंशज मियां भूप सिंह ने गद्दी पर अपना अधिकार ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखा किंतु यह मांग ठुकरा दी गई। 24 अक्तूबर, 1846 को राजा बलवीर सेन को सनद देकर राजा स्वीकारा गया।

मियां भूप सिंह की मांग अंग्रेजी राज द्वारा ठुकराए जाने पर उसने कहलूर से तीन हजार आदमी लेकर मंडी में लूटपाट मचाई। गुम्मा की खान भी लूटी गई। राजा ने सुपरिंटेंडेंट ऑफ हिल्ज से सेना मंगवाकर विद्रोह दबा दिया। मियां भूप सिंह तथा उसके भाई को शिमला में कैद कर लिया जिन्हें बाद में रिहा कर दिया गया।

जालंधर का कमिश्नर जॉन लारेंस सन् 1846 में मंडी आया। उसने राजा से राज्य में अच्छी सड़कें बनाने को कहा। कांगड़ा के जिलाधीश वार्नेस ने मंडी, सुकेत तथा कांगड़ा की सीमाएं निर्धारित कीं। मंडी का वजीर गुसाऊं था जो सन् 1839 में वजीर बनाया गया। उसने राजा को गोबिंदगढ़ में जेल से छुड़ाने के लिए भी बहुत प्रयास किया था। उसने प्रशासन की दृष्टि से राज्य में बहुत सुधार किया।

26 जनवरी, 1851 को बलवीर सेन की मृत्यु हुई।

विजय सेन (1851)

जब बलवीर सेन की मृत्यु हुई, विजय सेन मात्र चार वर्ष का था। बलवीर सेन

की मां ने शासन संभालने का यत्न किया किंतु सफल नहीं हुई। गुसाऊं वजीर योग्य प्रशासक था और प्रभावशाली था अतः रानी की नहीं चली। गुसाऊं को वित्त के अनुभव के साथ राज्य का पूरा ज्ञान था। किंतु उसके कई शत्रु भी थे। मामला काउंसिल ऑफ रीजेंसी के सामने आया। जिलाधीश वार्नेस ने गुसाऊं को काउंसिल ऑफ रीजेंसी का अध्यक्ष और मियां भाग सिंह और पुरोहित शिव शंकर को सलाहकार नियुक्त किया।

सन् 1851 में धूड़चाटिया के वंशजों तथा मियां भूप सिंह ने भत्ते की मांग की। भत्ते की रकम तीन हजार रुपए मांगी गई। अंततः 1220 रुपए वार्षिक देने की मंजूरी हुई बशर्ते वे कोई गड़बड़ न करें।

सन् 1859 में राजा विजय सेन की तेरह वर्ष की आयु में दतारपुर के राजा की पौत्री से तथा बाद में राजा गुलेर की भतीजी से विवाह हुआ। राजा की पढ़ाई के लिए पुरोहित शिव शंकर को रखा गया था किंतु ठीक प्रकार शिक्षा नहीं हुई। अतः पुरोहित शिव शंकर को कांगड़ा भेजा गया और वजीर को 2000 रुपए जुर्माना किया गया। सन् 1868 में शिक्षा विभाग के एक अधिकारी मि. क्लार्क को शिक्षा के लिए नियुक्त किया गया।

नवंबर, 1863 में लॉर्ड एलगिन, भारत के प्रथम वायसराय का पहाड़ों का दौरा हुआ। कुल्लू जाते हुए राजा, राजमाता सहित द्रंग में वायसराय से मिला। वायसराय को निमोनिया हो गया और चौंतड़ा में मृत्यु हो गई। 20 नवंबर को वायसराय को धर्मशाला में दफनाया गया।

सन् 1864 में सरकार द्वारा राजा को ग्यारह तोपों की सलामी दी गई और 12 अक्तूबर, 1866 को वयस्क होने पर सर डॉगलस फॉर्सिथ ने शासन की शक्तियां दे दीं। डॉगलस फॉर्सिथ जालंधर डिवीजन का कमिश्नर था। इस खुशी के अवसर पर रियासत में लोक कल्याण के कामों के लिए एक लाख रुपए दिया गया। मंडी शहर में एक स्कूल, एक अस्पताल और डाकघर खोले गए। बैजनाथ से मंडी होकर भूभू दर्रे से सुलतानपुर (कुल्लू) के लिए खच्चर मार्ग बनाया गया। यात्री सरायों का निर्माण किया गया।

जालंधर के कमिश्नर ने मंडी, सुकेत तथा हटली के बीच सीमा विवाद को भी समाप्त कर दिया।

राजा को पूर्ण अधिकार मिलने पर प्रशासन कार्य ठीक नहीं चल पाया। गुसाऊं वजीर तथा शिक्षा सलाहकार मि. क्लार्क की आपस में नहीं बनी। फरवरी 1870 में वजीर गुसाऊं की मृत्यु हो गई। मि. क्लार्क 21 जून, 1870 में स्थानांतरित कर दिया गया और उसकी जगह मि. ई. हेरिसन को लगाया गया। हेरिसन एक योग्य

अधिकारी था अतः उसने राज्य में कई सुधार किए। हेरिसन ने फिजूल के भत्ते बंद कर दिए और वेतन बढ़ाए। सन् 1872 में हरिसन की पदोन्नति हो गई और वह चला गया अतः प्रशासन का कार्य राज्य के अधिकारियों को ही दिया गया।

अब राजा स्वयं भी प्रशासन संभालने योग्य हो गया था। अतः वजीरों की सहायता से वह कार्य करता रहा।

राजा विजय सेन के समय कई अंग्रेज अधिकारी मंडी आए। अक्तूबर, 1871 में भारत के वायसराय लार्ड मेयो का मंडी आना हुआ। वायसराय बिलासपुर तथा सुकेत होता हुआ आया। वायसराय के पालमपुर में लगे दरबार में राजा भी उपस्थित हुआ। सन् 1874 में लेफ्टिनेंट गवर्नर पंजाब सर हेनरी डेविस मंडी आया। अक्तूबर, 1880 में लेफ्टिनेंट गवर्नर पंजाब सर रोबर्ट ईगर्टन का कुल्लू जाते हुए मंडी आना हुआ। राजा ने झटींगरी में भेंट की। सन् 1883 में सर चार्ल्स एटकिसन मंडी आया। वह शिमला से बिलासपुर होकर मंडी आया और मंडी तीन दिन ठहरा। सितंबर, 1899 में लॉर्ड एलगिन का धर्मशाला से मंडी आना हुआ। वह कुल्लू जाते हुए ढेलू, उरला, द्रंग तथा कटौला में ठहरा। राजा ने उससे कटिंढी में भेंट की। नवंबर, 1901 में सर डब्ल्यू मेकवार्थ, कमिश्नर उरला तथा द्रंग में ठहरा। इस प्रकार अनेक अंग्रेज अधिकारी समय-समय पर मंडी आते रहे।

गुसाऊं वजीर की सन् 1870 में मृत्यु के बाद मंडी में कई वजीर रहे। राजा का भाई मियां प्रधान सिंह (1872-1875), मियां उत्तम सिंह (1875-78), मियां मान सिंह (1878-80), मियां उत्तम सिंह (1880-88), जवाहर सिंह (1888), सरदार ज्वाला सिंह (1888-93), मियां उधम सिंह (1893-1901), पाधा जीवानंद (1901) वजीर रहे।

जनवरी, 1877 में राजा विजय सेन दिल्ली दरबार में उपस्थित था अतः उसने मंडी में व्यास के ऊपर रस्सों का पुल इस अवसर की खुशी में बनाने की घोषणा की। सन् 1878 में पुल तैयार हो गया। इस पर एक लाख रुपए लागत आई।

सन् 1881 में कुछ नई सड़कों का काम आरंभ हुआ। मि. ई. डब्ल्यू पुर्किस की देखरेख में मंडी से कुल्लू 31 मील सड़क, उहल नदी के ऊपर पुल 40,000 रुपए की लागत से बनाए गए। बैजनाथ से मंडी सड़क तथा मंडी से सिकंदर तक 25 मील लंबी सड़क बनाई गई।

मि. एच.जे. मेनार्ड (आई.सी.एस.) एक वर्ष के लिए राजा की मांग पर मंडी नियुक्त किया गया। उसने न्यायालयों के लिए निर्देश निर्धारित किए। बेगार प्रथा के नियम बनाए गए। किसानों के जंगलों में अधिकार निर्धारित किए गए। मेनार्ड मार्च 1890 में चला गया और उसके सुझाव पर राजा ने मि. सी.ई. फेंडाल को

सुपरिंटेंडेंट ऑफ वर्क्स तैनात किया। सन् 1894 में सर डेनिस फिट्ज़पाट्रिक मि. स्मिथ के साथ मंडी आया। मंडी के पास सुकेती खड्ड के ऊपर संस्पेंशन पुल का उद्घाटन फिट्ज़पाट्रिक द्वारा हुआ और नाम भी इसी के नाम पर रखा गया।

जून 1893 में सराज क्षेत्र में टीकों में भैंस की चर्बी के प्रयोग पर विद्रोह हो गया। इस विद्रोह को समझा-बुझाकर दबा दिया गया। सन् 1884 में विजय सेन की दो राजकुमारियों का विवाह बुशहर के राजकुमार से हुआ जिस पर 2,77,000 रुपए खर्च किए गए जिसमें एक लाख रुपए नकद उपहार में दिया गया। इस खर्च में से 60,000 लोगों द्वारा परंपरा के अनुसार दिया गया।

सन् 1894 से 1900 तक का समय मंडी के लिए अच्छा नहीं रहा। राजा के यहां दो बेटों का जन्म हुआ किंतु दोनों ही शैशव में चल बसे। राजा स्वयं अस्वस्थ रहने लगा। दोनों आंखें खराब हो गईं। अतः राजकाज चलाना कठिन हो गया। वजीर मियां उधम और मि. फेंडाल में भी मनमुटाव हो गया। सन् 1901 में मियां उधम सिंह तथा फेंडाल दोनों को हटा दिया गया। जोधपुर से पाधा जीवानंद को बुलवाकर वजीर नियुक्त किया गया। पाधा जीवानंद ने प्रशासन में पर्याप्त सुधार किए और सरकार द्वारा रायबहादुर की उपाधि दी गई।

सन् 1902 में विजय सेन की मृत्यु हो गई। विजय सेन प्रजा में बहुत प्रिय रहा। अच्छी सरकार तथा प्रशासन देने के लिए राजा को सम्राट एडवर्ड सप्तम के राज्य संभालने के समय के.सी.एस.आई. की उपाधि दी गई और इसे राजपत्र में छापा गया। यह घटना राजा की मृत्यु के तीन सप्ताह बाद हुई।

विजय सेन की कोई संतान नहीं थी और सन् 1897 में ही उसकी अवैध संतान कंवर भवानी सेन को उत्तराधिकारी मान लिया गया था।

भवानी सेन (1903)

भवानी सेन नाबालिग था और अभी पढ़ता था अतः मि. मिलर (आई.सी.एस) को 30 नवंबर, 1903 को राज्य का सुपरिंटेंडेंट बनाया गया। युवा राजा ने चीफ्ज कॉलेज लाहौर में पांच वर्ष तक ट्यूटर मि. ई.एम. एटकिंसन की देखरेख में शिक्षा पाई। 17 अप्रैल, 1904 को शिक्षा पूरी होने के बाद भवानी सेन कराची तथा मुंबई के छोटे दौरे के बाद मंडी आया। राजगद्दी संभालने पर 1,10,000 रुपए नजराना सरकार को दिया गया। शेष 4 अप्रैल, 1905 के भूकंप की क्षति के कारण माफ कर दिया गया।

4 अप्रैल, 1905 के भूकंप के समय मि. मिलर तथा राजा पालमपुर के डाक-बंगले में थे और बाल-बाल बचे। वे मलबे में दब गए थे जहां से कठिनाई से निकाले

गए। भूकंप से बहुत नुकसान हुआ। बैजनाथ से मंडी तक केवल एहजू का गांव बचा था। बल्ह, सराज, सनोर तथा चुहार में भी काफी नुकसान हुआ। कुल 1500 जानें गईं किंतु संपत्ति का बहुत नुकसान हुआ। गुम्मा की नमक की खान कुछ समय के लिए बंद हो गई। सड़कों, पुलों को बहुत नुकसान हुआ। कुल नुकसान दस लाख रुपए आंका गया। इस अवसर पर राज्य द्वारा अनाज दिया गया। एक लाख रुपए के मूल्य से ज्यादा लकड़ी बांटी गई।

7 अक्तूबर, 1905 को मि. एच.ए. एंडरसन ने राजा को पूरी प्रशासनिक शक्तियां दे दीं और मि. मिलर चले गए। नवंबर, 1905 में राजा पंजाब के अन्य राजाओं के साथ प्रिंस ऑफ वेल्सज से मिलने गया। इसके तुरंत बाद लॉर्ड किचनर शिमला से कांगड़ा आता हुआ मंडी ठहरा।

सन् 1906 में 30,000 रुपए की लागत से दरबार हॉल बनाया गया और उससे अगले वर्ष 20,000 रुपए की लागत से बिजली लगाई गई।

आगामी तीन वर्ष पाधा जीवानंद, वजीर की देखरेख में अच्छा कामकाज चलता रहा। अधिक वर्षा से फसलें नष्ट हो गईं जिससे कीमतें बढ़ गईं।

प्रथम मार्च, 1907 से नमक पर कर कम कर दिया गया। सन् 1908 में लेफ्टिनेंट गवर्नर सर लुईस डेन मंडी आया जिसने मंडी का प्रबंध संतोषजनक पाया।

1909 का वर्ष विद्रोह का वर्ष था जिसे 'दुम्ह' कहते थे। कई जमींदार कुछ अधिकारियों के दुर्व्यवहार से राजा के पास मंडी आए। भूमि संबंधी असंतोष ने क्रांति का रूप धारण कर लिया। इस दुम्ह का नेता शोभा राम था। शोभा सरकाघाट के गधियाणी गांव का था और सैनिक रह चुका था। उसने किसानों के पक्ष में आवाज उठाई और सशस्त्र क्रांति कर दी। राजा भवानी सेन अब तक पाधा जीवानंद के अधीन था। वर्षा न होने के कारण फसल अच्छी नहीं हुई किंतु लगान कड़ाई से वसूला जा रहा था। बेगार प्रथा भी थी। जब जनता ने राजा से शिकायत की तो राजा ने नहीं सुनी। जीवानंद ने कई किसानों को जमीन से बेदखल कर दिया था। जीवानंद का भाई बलिराम सेनाध्यक्ष था अतः जनता परेशान थी। अतः शोभा राम ने महावीर दल की नींव रखी। इस क्रांति में शोभा राम के पिता गुरध्यान कनैत ने भी भाग लिया।

शोभा राम से राजा नहीं मिला तो वह दूसरी बार तीन सशस्त्र आदमी लिए मंडी आया। राजा इस बार भी नहीं मिल पाया और जीवानंद के आदेश पर उसके भाई ने क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए। शोभा राम भाग निकला और उसने लेफ्टिनेंट गवर्नर तथा गवर्नर जनरल को इस बारे में टेलिग्राम दिए। शोभाराम ने तीसरी बार सैनिक तैयारी के साथ मंडी प्रस्थान किया। अब बीस हजार के लगभग लोग हो गए। शोभा राम ने राजा को हराने की मुहिम चलाई और जेल रोड पर गुप्त बैठक की।

मंडी पहुंच शोभा राम ने तहसीलदार हरदेव सिंह, मिरी नेगी तथा जीवानंद तथा साथियों को बंदी बना लिया। अब राजा भवानी सेन ने जालंधर के कमिश्नर एच.एस. डेविस को सहायता के लिए कहा। इस क्रांति को कुचलने के लिए जालंधर के कमिश्नर ने 32वीं पायनियरर्ज की दो कंपनियां मंडी भेजी। साथ ही कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर तथा कांगड़ा के डिप्टी कमिश्नर को भी सेना सहित मंडी पहुंचने के आदेश दिए। कांगड़ा तथा कुल्लू के कमिश्नर मंडी पहुंच जालंधर के कमिश्नर के आदेश की प्रतीक्षा करने लगे क्योंकि दोनों ओर की फायरिंग से कई लोग मर गए। अंततः शोभा राम को आत्मसमर्पण करना पड़ा। शोभा राम, उसके पिता तथा चौबीस व्यक्तियों को पकड़कर धर्मशाला ले जाया गया जहां मुकदमे के बाद शोभा राम को काला पानी तथा शेष को लाहौर जेल भेजा गया।

पाधा जीवानंद को अब हटाकर उसकी जगह इंद्र सिंह को वजीर बनाया गया जो पूर्व वजीर उत्तम सिंह का पुत्र था। इसके बाद कुटलैहड़ के टिक्का राजेंद्र पाल को मुख्य सलाहकार बनाया गया और मुंशी अमर सिंह को अस्थायी वजीर बनाया गया। अंततः सन् 1911 में सर कौलिन गारबैट को माल अधिकारी तथा सलाहकार नियुक्त किया गया। गारबैट ने बड़ी लगन से काम किया किंतु वह बीमार हो गया और उसे जाना पड़ा। अब गोर्डन वाकर सलाहकार बना।

दिसंबर, 1911 में दिल्ली में जॉर्ज पंचम का दरबार लगा जिसमें भवानी सेन को भी आमंत्रित किया गया। दिल्ली से लौटने पर भवानी सेन बीमार हो गया और मात्र 29 वर्ष की आयु में 9 फरवरी, 1912 को मृत्यु हो गई।

जोगेंद्र सेन (1913)

भवानी सेन की असमय मृत्यु के बाद कोई उत्तराधिकारी नहीं था। अतः कुछ समय बाद सरकार ने राजा के निकट संबंधी मियां जोगेंद्र सेन को राजा चुना। जोगेंद्र सेन मियां किशन सिंह का पुत्र था। पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर लुईस डेन ने 10 अप्रैल, 1913 को दरबार में मियां जोगेंद्र सिंह को जोगेंद्र सेन के नाम से राजा बना दिया। उस समय जोगेंद्र सेन की आयु मात्र साढ़े आठ वर्ष थी। अतः शिक्षा के लिए उसे क्वीन मेरी कॉलेज, लाहौर भेजा गया। सरकार ने मि. ए.एल. गार्डन वाकर को राज्य का सुपरिंटेंडेंट नियुक्त कर दिया। मुंशी अमर सिंह को सहायक बनाया गया।

सन् 1916 में जोगेंद्र सेन को चीफ्ज कॉलेज, लाहौर में डाला गया जहां सन् 1923 तक मि. टी.वी. गिलेमार के पास शिक्षा ग्रहण की और डिप्लोमा प्राप्त किया। इसके बाद न्यायिक, अधिशासी तथा राजस्व की ट्रेनिंग ली।

फरवरी, 1925 में उसे पंजाब के गवर्नर जनरल के एजेंट कर्नल ए.बी. मिंचिन ने शासक की पूरी शक्तियां प्रदान कीं। राजा के अवयस्क होने के लंबे समय में राज्य ब्रिटिश अधिकारियों के अधीन रहा।

मि. ए.एल. गार्डन वाकर मार्च, 1915 तक रहा। उसके तीन मास की छुट्टी के समय मि. स्ट्रिकलेंड ने जनवरी से मार्च, 1914 तक काम किया। मि. गार्डन वाकर ने मंडी में कई प्रशासनिक सुधार किए। आखेट नियम, मछली पकड़ने पर नियम, हराबाग क्षेत्र में बेगार समाप्त करना, उर्दू को सरकारी कामकाज की भाषा बनाना, बैजनाथ-मंडी सड़क को चौड़ा करना, मंडी में पशु चिकित्सालय खोलना, 1914 में सभी जातियों के बारह सदस्य लेकर नगरपालिका को सुदृढ़ करना आदि कार्य वाकर द्वारा किए गए।

मार्च, 1915 में मि. एच. डब्ल्यू इमरसन ने कार्यभार संभाला। इमरसन ने भी उल्लेखनीय कार्य किए। मंडी के लोगों की एक समिति बनाकर विवाह तथा मृत्यु में किए जाने वाले व्यय को नियंत्रित किया। हटली, बैरा, बगड़ा, हटगढ़ क्षेत्रों को तहसील सदर में मिलाया। मंडी शहर में दस हजार रुपए की लागत से एंग्लो वर्नेक्यूरल मिडिल स्कूल का भवन निर्माण किया। द्रंग, गुम्मा, भंगरोटू, खंडोली, धर्मपुर, टिहरा और कटौला में सात नए स्कूल खोले गए। मई, 1914 में भारतीय वन विभाग के असिस्टेंट कंजरवेटर एच.एल. राइट की सेवाएं मंडी राज्य के लिए ली गईं। उसने जंगलों का बंदोबस्त किया। भू-बंदोबस्त के काम को पूरा किया गया। वाजिब-उल-अर्ज तैयार किया गया जिसमें हक-हकूक रखे गए। बेगार प्रथा समाप्त की गई जिसके कारण निम्न स्तर के मजदूरों के वेतन में बढ़ोतरी की गई।

इमरसन के समय हरिदेव पंजाब के कुछ क्रांतिकारियों के साथ काम करके मंडी लौटा। पंजाब पुलिस द्वारा छापा मारने पर हरिदेव भाग निकला और बद्रीनाथ पहुंच साधु बनकर कृष्णानंद नाम रखा। जवाहर सिंह, सिद्धू खराड़ा, जो बड़सू गांव के थे, एक टोली बनाकर सभाएं करने लगे। मंडी राज्य के पूर्व थानेदार जवाहर सिंह, जिसे इमरसन ने निकाला था, इसमें शामिल हुआ। राजा भवानी सिंह की परित्यक्ता रानी खैरागढ़ी भी इस दल में मिली। इन्होंने दिसंबर, 1914 में बड़सू में सभा कर मंडी पुल को उड़ाने की योजना बनाई। निधान सिंह चुग्घा ने मार्च, 1915 में कुछ बम भी बनाए।

मि. इलिस ने इस षड्यंत्र में मियां जवाहर को आजीवन कारावास, बदरी, जवाहर नरयाल, लौंगू, पिंडू को चौदह वर्ष का कारावास तथा रानी खैरागढ़ी को देशनिकाला दिया। सिद्धू खराड़ा भाग निकला। इमरसन ने सिद्धू खराड़ा को काले पानी की सजा दी।

इमरसन के बाद सन् 1917 में मि. जे.आर.एस. पारसन आया। उसने सचिवालय, लोक निर्माण, पुलिस तथा शिक्षा विभागों को नए ढंग से संगठित किया। सरकाघाट अलग तहसील बनाई। हराबाग, सदर, चच्योट तहसीलों की सीमाओं में फेरबदल किया गया। चुंगी समाप्त की गई।

मई 1920 में पारसन के छुट्टी जाने पर पं. महाराज कृष्ण को कार्यवाहक सुपरिंटेंडेंट बनाया गया, लाला श्री गोपाल सहायक।

सन् 1921 में मंडी के स्कूल को हाई स्कूल बनाया गया। सन् 1922-23 में पनबिजली सर्वेक्षण विभाग ने ऊहल नदी का सर्वेक्षण कर कर्नल बी.सी. बैटी ने एक योजना रखी और मंडी दरबार के साथ एक राजीनामा किया गया।

राजा जोगेंद्र सेन सन् 1923 में इमरसन से न्यायिक तथा राजस्व प्रशिक्षण के बाद 9 मई, 1924 को यूरोप यात्रा के लिए गया। छह मास के बाद मंडी लौटने पर पुनः 3/17 डोगरा रेजिमेंट ट्रेनिंग हेतु कलकत्ता चला गया।

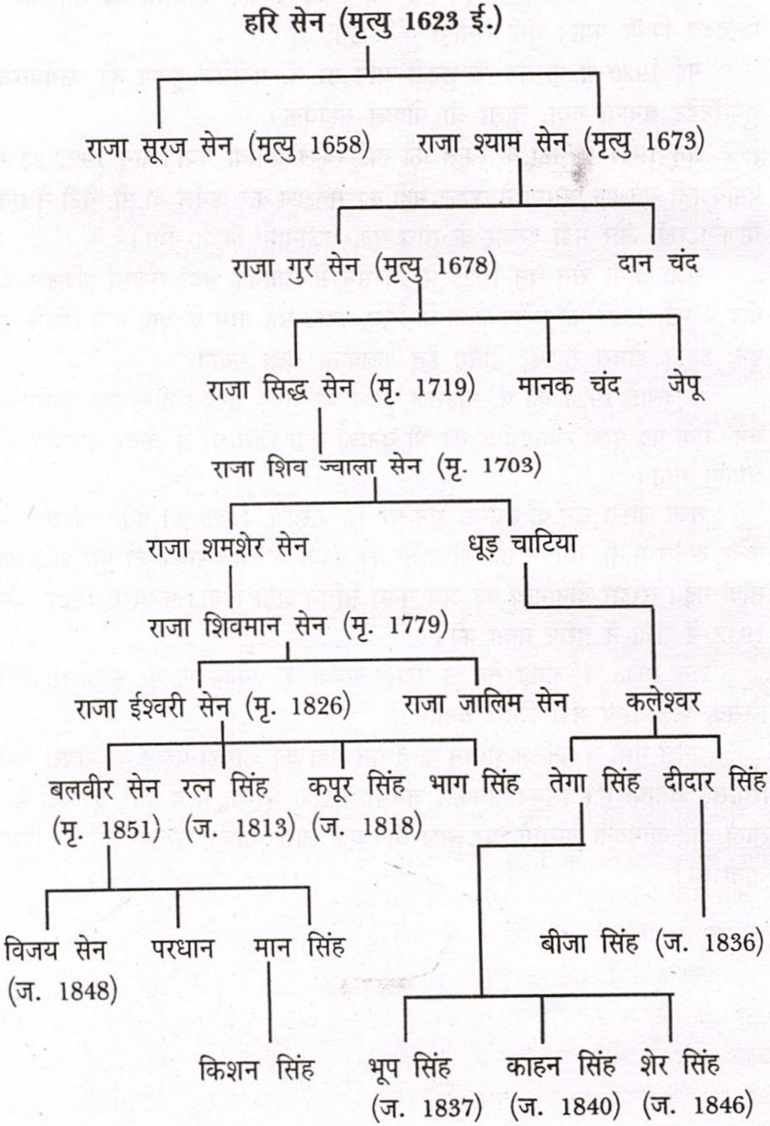
3 जुलाई 1924 को पं. महाराज कृष्ण की जगह सरदार दीनानाथ सुपरिंटेंडेंट बने। एक पद मुख्य न्यायाधीश का भी बनाया गया जिस पर पं. कंवर नारायण को लगाया गया।

राजा जोगेंद्र सेन के वयस्क होने पर 13 फरवरी, 1925 को गर्वनर जनरल के एजेंट कर्नल ए.बी. मिंचिन को लेफ्टिनेंट की पदवी के साथ राज्य की पूरी शक्तियां सौंपी गईं। सरदार दीनानाथ को अब मुख्य सचिव लगा दिया। फरवरी, 1927 और 1932 में राजा ने यूरोप यात्रा की।

सन् 1948 में जोगेंद्र सेन ने पहाड़ी राज्यों के एकीकरण पर हस्ताक्षर किए जिसके फलस्वरूप मंडी जिला बना।

कर्नल मैसी ने ब्रिटिश शासन के दौरान मंडी को कांगड़ा पहाड़ की सबसे बड़ी रियासत बताया है। इसका क्षेत्रफल लगभग 1200 मुरब्बा मील और आबादी डेढ़ लाख थी। आमदनी लगभग चार लाख थी। एक लाख वार्षिक सरकार को कर दिया जाता था।

रियासत मंडी : कर्नल चौर्लेस फ्रांसिस मैसी साहिब की सूची



नोट : राजाओं के जन्म-मृत्यु की तिथियां हचिसन-वोगल से मेल नहीं खातीं।

चंबा

कुछ संदर्भ

त्रिगर्त और कुल्लू के बाद चंबा प्राचीन राज्यों में आता है। पुरालेखों के अनुसार राज्य की नींव 550 या 600 ई. में पड़ी यद्यपि यह राज्य इससे पूर्व भी रहा होगा जिसके बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती।

चंबा के उत्तर-पश्चिम में जम्मू-कश्मीर, उत्तर-पूर्व में लद्दाख, लाहौल तथा बड़ा भंगाल, दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण में कांगड़ा तथा पठानकोट जिले हैं। चंबा के गजेटियर (1904) के अनुसार चंबा का क्षेत्रफल 3216 वर्ग मील तथा जनसंख्या 1,27,834 थी। सन् 1931 की जनगणना में यह 1,46,872 थी। सन् 1916 में 2,10,579 हो गई।

चंबा में मुख्यतः रावी तथा चंद्रभागा घाटियां हैं। रावी के किनारे राजधानी चंबा बसी है, चंद्रभागा घाटी में पांगी तथा चंबा लाहौल। पूरा क्षेत्र पर्वत शिखरों से भरपूर है जिसमें दो हजार से इक्कीस हजार फुट तक शिखर हैं जिनमें दस हजार फुट की ऊंचाई तक आबादी है। व्यास तथा रावी घाटी में धौलाधार, पांगी में मध्य हिमालय की पर्वत शृंखलाएं हैं। भीतरी हिमालय की जंस्कर पर्वत शृंखला लद्दाख को लाहौल स्पीति से विभाजित करती हुई उत्तरी सीमा में चंबा लाहौल के जंस्कर तथा कश्मीर घाटी से अलग करती है। पांगी पर्वत शृंखला चंबा को मणिमहेश शृंखला में छूती है और रावी के किनारे चंबा को बड़ा भंगाल से अलग करती है। चंबा और भद्रवाह के बीच की धार दामणी धार कहलाती है। धौलाधार व्यास के दाएं किनारे से आरंभ होकर मंडी-कुल्लू की सीमाओं से होती हुई बड़ा भंगाल में मध्य हिमालय से मिलती है और चंबा को छूती है। यह कांगड़ा और चंबा के बीच सीमा निर्धारित करती है। पूर्वी किनारे यह हाथीधार तक जाती है।

चंबा के ऊंचे क्षेत्रों में रहने वाले गद्दी भेड़पालक हैं। ये लोग शिव के उपासक भी हैं। यह परंपरा इस क्षेत्र को पुरातन औदुम्बरगण से जोड़ती है। औदुम्बरों का भेड़ पालन मुख्य व्यवसाय था। यहां की ऊन बढ़िया समझी जाती थी और इसका व्यापार होता था। औदुम्बर महादेव उपासक थे। पठानकोट आदि स्थानों से मिली औदुम्बरों की मुद्राएं महादेव को समर्पित हैं। इन मुद्राओं में एक ओर मनुष्य की आकृति है जो बाघ का चमड़ा ओढ़े है। इस पर 'देवस़ राजो धर घोषस औदुम्बरिस' खरोष्ठी में

लिखा होने के साथ वृक्ष तथा त्रिशूल भी अंकित हैं। अतः धराघोष शिवभक्त था। इसी प्रकार तांबे की मुद्राओं में वृक्ष, हाथी और त्रिशूल के चिह्न अंकित हैं। ये मुद्राएं मैदानी इलाके में मिली हैं अतः संभव है पठानकोट, नूरपुर आदि क्षेत्र, जो इस गणराज्य में शामिल थे, मैदानी भाग में होने से व्यापार का केंद्र रहे। ऊन आदि वस्तुओं का मुख्य स्रोत चंबा तथा इसका ऊपरी भाग था जहां से ऊन नीचे लाई जाती थी।

चंबा जालंधर का भी भाग रहा। चीनी यात्री ह्यूनसांग (630 ई.) ने जालंधर की लंबाई 1000 ली (167 मील) तथा चौड़ाई 800 ली (133 मील) बताई है जिससे स्पष्ट होता है कि चंबा से लेकर मंडी-सुकेत तक जालंधर में रहे होंगे। चंबा मौर्य, कुशाण और गुप्त राजाओं के समय करद राज्य रहा होगा।

चंबा के इतिहास का मुख्य स्रोत वंशावली है। वंशावली में कुछ ऐतिहासिक संदर्भ भी दिए हुए हैं। इस इतिहास की प्रासंगिकता पुरालेखों से भी पुष्ट होती है। ताम्रपत्र, शिलालेख तथा पट्टे दूसरा प्रमुख स्रोत है इतिहास का। चंबा ऐसा एकमात्र राज्य है जहां पुरालेख, शिलालेख, ताम्रपत्र, पट्टे इतनी बहुतायत में हैं। ये अवशेष मुगल आक्रमणों से भी बचे रहे।

एलेक्जेंडर कनिंघम ने सर्वप्रथम 1839 में इन पुरावशेषों की ओर ध्यान दिलाया। लगभग 130 शिलालेखों में 50 मुगलकाल से पहले के हैं, 80 मुगलकाल के। सबसे पुराना शिलालेख सातवीं शताब्दी का गुप्तकालीन है। कुछ लेख शारदा, टाकरी तथा भोटी में है। शिलालेखों के साथ मूर्तियों पर लेख, ताम्रपत्र तथा पट्टे हैं। शिलालेख अधिक पुराने हैं किंतु पढ़ना आसान नहीं। मूर्तियों पर लेखों की शृंखला में राजा मेरूवर्मन के समय (700) भरमौर में है। पनघट शिलाओं पर लेख भी महत्त्वपूर्ण हैं। ये लेख राणा तथा ठाकुरों द्वारा लिखवाए गए। ये वरुण देवता को समर्पित रहे तथा पूर्वजों की स्मृति में बनवाए गए। चंबा में 150 से ऊपर ताम्रपत्र हैं जिनमें से पांच मुगलकाल से पहले के हैं। ताम्रपत्र मंदिरों तथा ब्राह्मणों को दिए गए। चीनी यात्री फाहियान ने भी ऐसे ताम्रपत्रों का उल्लेख किया है अतः ये पांचवीं शताब्दी में भी रहे होंगे। ऐसे ताम्रपत्रों में सबसे पुराना साहिल वर्मन के पुत्र युगाकार वर्मन का है जिसने चंबा को राजधानी बनाया। तीन ग्यारहवीं शताब्दी के हैं जो उन राजाओं के नामों का उल्लेख करते हैं जो वंशावली में नहीं हैं। बारहवीं, तेरहवीं शताब्दी का कोई ताम्रपत्र नहीं है जबकि 1330 ई. से लेकर कई ताम्रपत्र मिलते हैं।

चंबा के मूल वासी कौन रहे होंगे, यह ज्ञात नहीं है। कहा जाता है कि ये लोग मैदानों से आए। चंबा में कोली, हाली, सिघी, चमार, डूमणा, मेघ, रिहाड़ा, दरेई, लोहार, बरवाल, धौगरी पूरी जनसंख्या का चौथा भाग रहे हैं। कनिंघम का मत है कि पश्चिमी हिमालय कोल समुदाय का केंद्र रहा है और हाली, सिघी, मेघ, डागी उसी कोल

समुदाय के लोग हैं। यह जाति अनार्य थी किंतु बाद में आर्य-अनार्यों का ऐसा परस्पर संबंध बना कि अंतर करना कठिन हो गया। ये अनार्य जाति कृषक या शिल्पी थी और बहुत समय तक यही व्यवसाय करती रही। खेतों में काम तथा मजदूरी करने के लिए इन्हें पहाड़ों में 'कामा' भी कहा जाने लगा। पांगी की ओर चनाल कहे जाने वाले लोग भी उच्च वर्ग नहीं माने जाते।

चंबा के भरमौर क्षेत्र के लोगों को गद्‌दी कहा जाता है। गद्दियों में ब्राह्मण, राजपूत, खत्री, ठाकुर तथा राठी जातियां हैं। इनमें खत्री ज्यादा हैं। गद्‌दी भरमौर में रहते हैं जिन्हें गधेरन कहा जाता है।

प्रथम शासक तथा राजवंश

चंबा के शासक सूर्यवंशी कहे जाते हैं। उनकी वंशावली नारायण से प्रारंभ होती है। विष्णु या नारायण से ब्रह्मा, ब्रह्मा से मरीचि, मरीचि से प्रजापति तथा मनु से होते हुए वंशावली रामचंद्र तक से कुश तक पहुंचती है। ये लोग अपने मूल स्थान अयोध्या से चलकर ऊपरी गंगा घाटी में आए। वहां से ये कलाप ग्राम में रहने लगे। वंशावली में राजा मरू का नाम आता है। वंशावली में उल्लेख है :

'बहुत वर्ष बीतने पर योगसिद्ध राजा मरू ने एक राजकन्या से विवाह किया और उससे सद्‌गुण संपन्न पुत्रों को पैदा किया। उनमें से एक पुत्र को कलाप ग्राम में स्थापित करके स्वयं अपनी वृद्धि के लिए दो पुत्रों सहित वहां से निकल पड़ा और एक को हिमालय पर्वत में स्थापित किया। तब अपने बड़े पुत्र जयस्तंभ के साथ कश्मीर पहुंचकर उसने उसके लिए वर्मपुर की स्थापना की और उसे वहां के राजा पद से अभिसिक्त किया। स्वयं वह वहां योगसिद्धि में लग गया। जयस्तंभ का पुत्र जलस्तंभ और उसका पुत्र महास्तंभ हुआ।'

अतः मरू अपने पुत्र जयस्तंभ को ब्रह्मपुर में स्थापित कर स्वयं कलाप लौटा और सिद्धि में लीन हो गया। यह घटना 540-550 ई. की मानी जाती है। जयस्तंभ के बाद जलस्तंभ और उसके बाद महास्तंभ हुआ। ब्रह्मपुर नाम बुढल घाटी की ब्रह्माणी देवी के नाम पर रखा गया माना जाता है। आरंभ के राजाओं का समय अनुमानित है।

आदित्य वर्मन (620 ई.)

वंशावली में राजा का नाम आदि वर्मन है। आदित्य वर्मन ने अपने नाम के साथ 'वर्मन' लगाया। भरमौर के लेखों में आदित्य वर्मन का नाम दो बार आया है। यह शिलालेख उसके प्रपौत्र मेरू वर्मन ने खुदवाए।

कुल्लू के इतिहास में भी चंबा का उल्लेख आया है। कुल्लू का राजा ब्रह्मपाल

(लगभग 600 ई.) का कोई उत्तराधिकारी नहीं था अतः ब्रह्मपुर, लद्दाख, बुशहर तथा कांगड़ा के राजाओं ने गणेश पाल को उत्तराधिकारी बनाया। इससे यह भी पता चलता है कि ब्रह्मपुर राज्य पड़ोसी राज्यों द्वारा मान्यताप्राप्त राज्य था।

बाला वर्मन (640 ई.)

बाला वर्मन का नाम वंशावली में नहीं है। संभवतः यह उतारना रह गया है। बाला वर्मन का नाम दो लेखों में आता है जिसमें बाला वर्मन को मेरू वर्मन का दादा कहा गया है।

दिवाकर वर्मन (660 ई.)

भरमौर लेख में दिवाकर वर्मन का नाम सही लिखा है किंतु वंशावली तथा छतराड़ी लेख में यह नाम देव वर्मन है।

मेरू वर्मन (680 ई.)

मेरू वर्मन वंशावली में पांचवां शासक है। मेरू वर्मन एक योग्य शासक था जिसने अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाया। इसने छतराड़ी का क्षेत्र जीता। इस जीत की स्मृति में छतराड़ी में शक्ति देवी का मंदिर बनाया। देवी की मूर्ति में एक लेख है। लेख में उल्लेख है :

'विशुद्ध कुल प्रसूतों में अग्रणी श्री देव वर्मन की कीर्ति सर्वत्र फैली थी। उनके पुत्र श्री मेरू वर्मन सर्वगुणसंपन्न तथा पृथ्वी पर प्रख्यात थे। उन्होंने अपने माता-पिता की तृप्ति के लिए तथा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के बाद अपनी भक्ति को मां शक्ति के चरणों में प्रकट करने के लिए, जिनकी कृपा से उन्हें विजय मिली, गुग्गा कार्मिक के द्वारा माता की मूर्ति का निर्माण करवाया।'

गूं कोठी में एक शिलालेख है जिसमें मेरू वर्मन के सामंत आषाढ़ देव द्वारा शिवपुरी के मध्य संकलीश मंदिर बनवाए जाने का उल्लेख है। आषाढ़ देव मेरू वर्मन का सामंत था। अतः मेरू वर्मन का राज्य रावी नदी की घाटी तक फैल गया था।

कुल्लू के इतिहास में उल्लेख है कि कुल्लू के राजा दतेश्वर पाल के समय ब्रह्मपुर के राजा अमर ने कुल्लू पर हमला किया। इस लड़ाई में चंबा के राजा अमर द्वारा कुल्लू का राजा मारा गया। चंबा में अमर नाम का कोई राजा नहीं है। कुल्लू के इतिहास में यह भी जिक्र है कि कुल्लू का राजा अमरपाल ब्रह्मपुर के साथ लड़ाई में मारा गया, उसके पांच पुत्र भी मारे गए। एक पुत्र सीतल पाल बच गया जो बुशहर में जा छिपा और उसके वंशज पांच पीढ़ी तक बुशहर में ही रहे। अतः ब्रह्मपुर का अधिकार कुल्लू पर रहा होगा।

मेरू वर्मन ने भरमौर में मणिमहेश, लखना देवी, गणेश तथा नृसिंह मंदिर बनवाए। लक्षणा देवी, गणेश तथा नंदी की मूर्तियों का लेख है। लखना या लक्षणा देवी मंदिर मूर्ति के आधार पर लेख में इसे आदित्य वर्म देव के प्रपौत्र बल वर्म देव के पौत्र तथा दिवाकर वर्म देव के पुत्र मेरू वर्मा ने पुण्य वृद्धि हेतु बनाने का उल्लेख है। इसी प्रकार नंदी में इसे मेरू वर्मन द्वारा बनवाए जाने का जिक्र है।

यह भी कहा जाता है कि मेरू वर्मन ने सूरजमुखा मंदिर भी बनवाया जो अब विद्यमान नहीं है। इन मंदिरों को भूमि भी दी गई जिसके पट्टे अब उपलब्ध नहीं हैं।

मेरू वर्मन के बाद मंदर वर्मन, कंवर वर्मन, प्रगल्भ वर्मन राजा हुए जिनके बारे में कुछ ज्ञात नहीं है।

अजय वर्मन (760 ई.)

भरमौर की गद्दी जनजाति की मान्यता है कि वे अजय वर्मन के समय दिल्ली से आकर भरमौर आ बसे। यह राजा बहुत धर्मात्मा था। जब राजा का पुत्र बड़ा हुआ तो राज्य उसे सौंपा। वह साधु बन गया और रावी तथा बुढ़ल नदियों के संगम पर रहने लगा। उसने अपना शेष जीवन शिव की आराधना में लगा दिया।

अजय वर्मन का पुत्र स्वर्ण वर्मन 780 ई. में राजा बना किन्तु इस राजा के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है।

लक्ष्मी वर्मन (800 ई.)

लक्ष्मी वर्मन के समय राज्य में हैजा फैला जिसमें बहुत से लोगों की मृत्यु हो गई। कई लोग महामारी के डर से भाग गए। इस संकट के समय का लाभ उठाते हुए उत्तर की ओर से 'किर' लोगों ने ब्रह्मपुर पर आक्रमण कर दिया। इन्होंने लक्ष्मी वर्मन को मार दिया और ब्रह्मपुर पर अधिकार कर लिया।

ये 'किर' लोग कौन थे, इस बारे में मतभेद है। सर ऑरेल स्टीन का मत है कि ये लोग उत्तर-पूर्व कश्मीर की ओर से आए थे अतः तिब्बती या यारकंदी रहे होंगे। अन्य मत के अनुसार ये लोग कश्मीरी थे। राजतरंगिनी तथा बृहतसंहिता में इन्हें कश्मीर का वासी माना गया है। किर लोग बैजनाथ तक पहुंचे। बैजनाथ को 'किरग्राम' के नाम से भी जाना जाता है।

ब्रह्मपुर में आक्रमण होने पर कुल्लू ने भी लाभ उठाया और स्वतंत्र हो गया। बुशहर की सहायता से ब्रह्मपुर की सेनाओं को खदेड़ दिया।

मूषक वर्मन (820 ई.)

लक्ष्मी वर्मन की मृत्यु के समय रानी गर्भवती थी। अतः वजीर और पुरोहित

रानी को पालकी में उठाकर कांगड़ा की ओर ले गए। ऊपरी रावी घाटी में घरोह के पास देओल गांव में पहुंचने पर रानी को प्रसव पीड़ा हुई। वह पालकी से उतरकर एक गुफा में चली गई जहां उसने एक शिशु को जन्म दिया। वह शत्रुओं के भय से शिशु को गुफा में छोड़ वापस आ गई। पुरोहित तथा वजीर को शक हो गया। वे गुफा में गए तो वहां शिशु पड़ा था जिसे चूहों ने घेर रखा था। वे उसे ले आए और शिशु का नाम चूहों द्वारा रक्षा करने पर मूषक वर्मन पड़ा क्योंकि चूहे को 'मूषा' कहते हैं। रानी कांगड़ा में आकर एक ब्राह्मण के घर में रहने लगी जिसे उसने गुरु बना लिया। एक दिन ब्राह्मण के घर में आटा गिरा था जिस पर बालक के पैर पड़ गए। ब्राह्मण ने जब आटे पर पांव के निशान देखे तो वह जान गया कि यह बालक किसी राजकुल का है। रानी ने सच-सच बता दिया कि वह ब्रह्मपुर की रानी है।

ब्राह्मण रानी तथा राजकुमार को सुकेत ले गया। सुकेत के राजा ने उन्हें स्वागतपूर्वक अपने राज्य में रखा। मूषक वर्मन को शिक्षा-दीक्षा दी गई। वह युवा होने पर बुद्धिमान तथा बहादुर बना। राजा ने अपनी कन्या का विवाह राजकुमार से कर दिया। उसे पांगणा का परगना दहेज में दिया। मूषक वर्मन को सेना भी दी गई। वह ब्रह्मपुर वापस गया और किरों को राज्य से खदेड़ पुनः राज्य प्राप्त किया।

सुकेत के राजा का नाम 'परबोग' कहा गया है किंतु सुकेत की वंशावली में इस नाम का कोई राजा नहीं है।

मूषक वर्मन के समय की कोई घटना ज्ञात नहीं है। किंतु इस घटना के बाद चूहों के मारने पर मनाही कर दी गई। राज्य परिवार द्वारा अब भी चूहों को मारा नहीं जाता।

मूषक वर्मन के बाद हंस वर्मन, सार वर्मन, सेन वर्मन, सज्जन वर्मन, मृत्युंजय वर्मन राजा हुए। मृत्युंजय वर्मन का नाम धौलाधार में परौली रगाला में शिलालेख में मिलता है। वंशावली में इस राजा का नाम नहीं है।

साहिल वर्मन (920 ई.)

चंबा के इतिहास में साहिल वर्मन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहिल वर्मन ने रावी की निचली घाटी जीतकर राज्य में मिलाई। चंबा की राजधानी ब्रह्मपुर से बदलकर चंबा लाना इस राजा का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है।

साहिल वर्मन के समय कुल्लू से लड़ाई हुई। बारह वर्ष तक लड़ाई जारी रही। कुल्लू के लोगों ने चंबा की सेनाओं को रात्रि भोज के लिए बुलाया जो रोहतांग दर्रे के नीचे पहुंच चुकी थी। रात के अंधेरे का लाभ उठाकर कुल्लू के सैनिकों ने राहला के निकट पुल तोड़ दिया और चंबा के सैनिक व्यास में गिरकर मर गए। बाद में संधि हो गई।

कहा जाता है कि राजा साहिल वर्मन के सिंहासनारूढ़ होने पर ब्रह्मपुर में चौरासी योगी आए। राजा ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। राजा के उस समय संतान नहीं थी। उन्होंने राजा को दस पुत्र होने का वर दिया। राजा ने उनसे पुत्रों की उत्पत्ति तक ब्रह्मपुर रहने का अनुरोध किया। राजा के दस पुत्र हुए। सबसे बड़े पुत्र का नाम युगाकार वर्मन और पुत्री का चंपावती रखा।

साहिल वर्मन ने राज्य विस्तार जारी रखा और छोटे-छोटे राणाओं को हराकर रावी के निचले क्षेत्र तक राज्य विस्तार कर लिया। एक बार अभियान में राजा के साथ रानी, पुत्री चंपावती तथा योगी चरपट नाथ भी थे। चंबा का क्षेत्र उस समय एक स्थानीय राणा के अधीन था जिसने इस भूमि को एक ब्राह्मण को उपहार में दिया था। चंपावती को यह क्षेत्र बहुत पसंद आया और उसने राजा से यहीं राजधानी बनाने का अनुरोध किया। अतः ब्राह्मण से बातचीत की गई। ब्राह्मण ने भूमि इस शर्त पर दी कि जब कभी कोई विवाह हो तो ब्राह्मण को आठ कली (ब्रह्मपुर की मुद्रा) दी जाए। अतः भूमि दे दी गई और राजा ने अपनी पुत्री चंपावती के नाम पर इस राजधानी का नाम 'चंपा' रखा। यह भी कहा जाता है कि इस स्थान का नाम चंपा वृक्ष के नाम पर रखा गया होगा, जो यहां बहुतायत में होता है, या इसका नाम बिहार की चंपावती के नाम पर रखा गया होगा। यह भी संभव है कि पहले से ही राणा के समय इस स्थान का नाम चंबा हो। साहिल वर्मन के पुत्र तथा पौत्र द्वारा जारी दो ताम्रपत्रों में इसे 'चंपक' कहा गया है।

बाद में इसे चंबा कहा जाने लगा। कल्हण की 'राजतरंगिनी' में नाम चंपापुरी है। चंबा राजधानी बसने के साथ दो त्रासदियां जुड़ी हुई हैं।

चंपा जब राजधानी बनी तो वहां पानी की कमी थी। अतः पानी के लिए चंबा से दो मील दूर सरोथा नाले से कुल्ह द्वारा पानी लाने की योजना बनाई। कुल्ह तैयार हो गई किंतु उसमें पानी नहीं आया। बहुत प्रयत्न करने पर भी पानी राजधानी में पहुंच नहीं पाया। एक रात राजा को स्वप्न आया कि पानी तभी आएगा यदि राजा अपनी रानी या बड़े पुत्र को जिंदा दफना दे। राजा ने प्रातः अपना स्वप्न सुनाया। अतः रानी की बलि देने का निर्णय हुआ। एक दूसरे मत के अनुसार उस समय के अंधविश्वास के अनुसार पानी कुल्ह में न चढ़ने पर बलि देने का विधान था। ब्राह्मणों या पुरोहितों ने बताया कि बलि रानी या राजकुमार की हो तभी पानी चढ़ेगा। राजा अपने पुत्र की बलि के लिए तैयार था किंतु रानी ने अपने को प्रस्तुत किया। अतः रानी की बलि का निश्चय हुआ। रानी अपनी दासियों सहित बलोआ नामक स्थान में गई जहां पानी मुख्य धारा से चंबा के लिए आना था। यहां गढ़ा खोदकर रानी को जिंदा दफनाया गया। लोकविश्वास है कि रानी के दफनाए जाने पर पानी चंबा

की ओर बहने लगा। तभी से इस कुल्ह में पानी बराबर बहता रहा।

राजा ने रानी की याद में कुल्ह के किनारे समाधि बनाई। यहां अब भी प्रति वर्ष पंद्रह चैत्र से प्रथम बैशाख तक मेला लगता है जिसे रानी सूही का मेला कहते हैं। मेले में स्त्रियां तथा बच्चे जाते हैं। सूही रानी की याद में आज तक लोकगीत गाए जाते हैं।

साहिल वर्मन के उत्तराधिकारी तथा पुत्र युगाकर वर्मन की एकमात्र ताम्र प्लेट में मां का नाम आता है। ताम्रपत्र में रानी का नाम नीना देवी लिखा है जो संभवतः रानी सूही ही थी। इसे रानी सूही या लंकेश्वरी भी कहा जाता है। रानी सूही की समाधि बाद में राजा अजीत सिंह (1794-1808) की रानी शारदा ने बनवाई।

राजधानी की स्थापना के बाद दूसरी त्रासद घटना राजकुमारी चंपावती से संबंधित है। चंपावती धार्मिक प्रवृत्ति की राजकुमारी थी। वह ज्ञान-चर्चा के लिए एक साधु के पास जाती थी। लोगों ने राजा से चंपावती के साधु से संबंधों की शिकायत कर दी। राजा को भी पुत्री के चरित्र पर संदेह हो गया। एक बार राजकुमारी साधु के पास मिलने गई तो राजा ने तलवार लिए उसका पीछा किया। उसने भीतर देखा तो घर खाली था। उसी समय आवाज सुनाई दी कि तुम्हें अपनी पुत्री पर भ्रम हो गया है अतः सजा के तौर पर तुम्हारी पुत्री तुम से छीन ली जाती है। राजा को आदेश हुआ कि वह उसी स्थान पर मंदिर निर्माण करे, जहां खड़ा है। राजा ने वहां मंदिर निर्माण किया जिसका नाम राजकुमारी के नाम पर चंपावती मंदिर पड़ा। इसे अब चमेसणी मंदिर भी कहते हैं। यहां भी प्रथम बैशाख से 21 बैशाख तक मेला लगने लगा। राजा को मेले के दौरान चमेसणी मंदिर से आरंभ कर हर मंदिर में जाना जरूरी था।

साहिल वर्मन ने चंबा में बहुत से मंदिरों का निर्माण किया। कहा जाता है कि राजा और सिद्ध चरपट नदी में नहा रहे थे तो उन्हें पानी में दो शिव प्रतिमाएं मिलीं। अतः चंद्रगुप्त (शिव) तथा कामेश्वर मंदिरों का निर्माण किया गया।

राजा द्वारा निर्मित लक्ष्मी नारायण मंदिर महत्त्वपूर्ण मंदिर है जिसके साथ कुछ कथाएं जुड़ी हुई हैं। यह भी एक त्रासद कथा है जिसके बाद मंदिर निर्माण हुआ। मंदिर में मूर्ति निर्माण के लिए राजा ने अपने नौ पुत्रों को विंध्याचल पर्वतों से संगमरमर लाने के लिए भेजा। उन्हें संगमरमर मिल गया किंतु जब वे उसे काटने लगे तो पत्थर के नीचे मेढक दिखा। अतः यह पत्थर मुख्य मूर्ति बनाने के लिए उपयोगी नहीं समझा गया। अतः इससे अन्य मूर्तियां बनाई गईं जिनमें त्रिमुख शिव, गणपति (जो अब चंद्रगुप्त मंदिर में है), लक्ष्मी शामिल हैं। राजकुमारों को पुनः दूसरा पत्थर लाने भेजा गया किंतु रास्ते में उन्हें डाकुओं ने मार दिया। यह दुखद खबर

मिलने पर राजा ने युगाकर वर्मन को भेजा। युगाकर वर्मन पर भी डाकुओं का हमला हुआ किंतु वह संन्यासी तथा गोसाइयों की सहायता से डाकुओं को भगाने में सफल हुआ और संगमरमर शिला ले आया जिससे विष्णु की मूर्ति बनाई गई। लक्ष्मी नारायण मंदिर का निर्माण हुआ।

इन सभी मंदिरों को जागीरें दी गईं किंतु इनका कोई दस्तावेज नहीं मिलता है। साहिल वर्मन द्वारा चंबा में महल भी बनाया गया होगा। किंतु यह कहां था, यह कहा नहीं जा सकता।

चंबा में मंदिर निर्माण आदि के सभी कामों में योगी चरपट नाथ का परामर्श रहा। चरपट नाथ के लिए भी लक्ष्मी नारायण मंदिर के साथ एक मंदिर बनाया गया। यह मंदिर अब भी विद्यमान है जो साहिल वर्मन के समय का प्रतीत नहीं होता (संभवतः यह बाद में बनाया गया)।

चंबा के सिक्के को चकली कहा जाता था। पांच चकली का एक आना होता था। साहिल वर्मन इस सिक्के पर योगी का चिह्न फटा हुआ कान बनाया जो चरपट नाथ के सम्मान में था। बाद के राजाओं ने इसमें विष्णुपाद जोड़ा। चंबा में चांदी के सिक्कों का रिवाज नहीं रहा। अस्त वर्मन (1080) द्वारा एक बार चांदी का सिक्का भी चलाया गया।

साहिल वर्मन चंबा का प्रतापी राजा हुआ जिसका कार्यकाल कई घटनाओं से भरा हुआ रहा। यद्यपि उसके पुत्र युगाकर वर्मन ने ताम्रपत्रों में उसका विशेष उल्लेख नहीं किया किंतु दो ताम्रपत्र ऐसे हैं जिनमें उसका उल्लेख हुआ है। साहिल वर्मन के पुत्रों सोम वर्मन तथा अस्त वर्मन के समय के इन ताम्रपत्रों में राजा का उल्लेख किया गया है।

ताम्रपत्र में उल्लेख है कि साहिल वर्मन ने किर सेनाओं के लिए ज्वलंत अग्नि के समान रूप धारण किया। उसकी संधियों को त्रिगर्त नरेश ने माना। कुल्लूत का राजा जिसे श्रद्धा से नमन करने आया। वह सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र गया।

ताम्रपत्र में किरों का पुनः उल्लेख हुआ है जो लक्ष्मी वर्मन के समय ब्रह्मपुर में आए थे। ताम्रपत्र में कहा गया है कि इस समय किरों की सहायता डुग्गर के राजा ने की। अतः संभव है किरों ने पुनः आक्रमण किया हो जिसे राजा ने विफल कर दिया। त्रिगर्त के साथ राजा ने संधि की। ताम्रपत्र में तुरुष्का का उल्लेख है। ये संभवतः उत्तर-पश्चिम के हमलावर थे। 'तुरुष्का' तुर्कीशाही वंश भी हो सकता है जो काबुल, पेशावर में थे।

अपने अंतिम दिनों में साहिल वर्मन चंपक में नहीं रहा। यहां हुई त्रासदियों से त्रस्त होकर या अपने पैतृक स्थान के प्रति मोह ने उसे ब्रह्मपुर की ओर आकर्षित

किया। एक लंबे समय तक राज करने के बाद तथा कई कार्य करने के बाद उसने राज्य अपने पुत्र युगाकर वर्मन को सौंप दिया और स्वयं ब्रह्मपुर चला गया। वह वहां साधु बनकर योगी चरपट नाथ तथा अन्य सिद्ध योगियों के साथ रहा। ब्रह्मपुर में चौरासी सिद्धों की समाधियां आज भी विद्यमान हैं।

युगाकर वर्मन (940 ई.)

युगाकर वर्मन के समय का कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है। उसके समय का एक ताम्रपत्र मिलता है। यह राजा के दसवें वर्ष में जारी किया गया और चंबा का सबसे पुराना ताम्रपत्र है। इसमें अपने माता-पिता तथा रानी त्रिभुवन देवी का उल्लेख है। राजा ने ताम्रपत्र में तीन स्थान मंदिर को दिए। रानी त्रिभुवन रेखा द्वारा निर्मित नृसिंह मंदिर के लिए समर्पित किए गए। इस ताम्रपत्र की तिथि संवत् 10, बैशाख तिथि 10 है। इस पत्र को लिखने वाले का नाम जस्ट दिया है।

यह भी कहा जाता है कि युगाकर वर्मन ने लक्ष्मी नारायण मंदिर के साथ चंबा में गौरीशंकर मंदिर का निर्माण किया।

विदग्ध वर्मन (960 ई.)

विदग्ध वर्मन के समय चौथे वर्ष में एक ताम्रपत्र जारी किया गया। इसमें पिता युगाकर वर्मन, माता भोगमती देवी के नाम हैं। राजा ने अपने को मूषन गोत्र का कहा है। विदग्ध वर्मन का शिलालेख वासु के निकट पाया गया जो संभवतः किसी राणा ने स्थापित किया।

वंशावली में राजा का नाम दोग्ध है। विदग्ध, दोग्ध का पुत्र हुआ।

डोडक वर्मन (980 ई.)

वंशावली में विदग्ध वर्मन के बाद डोडक वर्मन नाम आता है। बासु के पास मिले शिलालेख में युगाकर, विदग्ध के बाद डोडक का नाम है जिसके आदेश से यह शिलालेख खुदवाया गया। वंशावली में नाम डोडक वर्मन न होकर दोगध वर्मन है। अतः संभव है कि वंशावली में नाम गलत लिखा गया हो।

डोडक वर्मन के बाद विचित्र वर्मन और धैर्य वर्मन हुए। धैर्य वर्मन विचित्र वर्मन का छोटा भाई था जिसने जम्मू की ओर रामनगर राज्य बनाया।

सालवाहन वर्मन (1040 ई.)

वंशावली में धैर्य वर्मन के बाद सीधे अस्त वर्मन का नाम आता है किंतु

ताम्रपत्रों के अनुसार सालवाहन तथा सोमवर्मन दो राजा बीच में हुए। हरिराय मंदिर के निर्माता का नाम 'सालकारा' लिखा है जो संभवतः सालवाहन ही था।

कश्मीर की ओर से रावी के पार छोटे-छोटे राज्यों पर अधिकार रहा किंतु सालवाहन ने किसी आक्रमणकारी को इस ओर आने नहीं दिया। सन् 1028 में कश्मीर में अनंतदेव शासक बना। वह उस समय अवयस्क था। जब वह वयस्क हुआ तो उसने इन पहाड़ी शासकों पर अधिकार जताया। राजतरंगिनी के अनुसार चंबा उस समय 'साला' नाम के राजा के अधीन था जो सालवाहन ही था। उसने कश्मीर का प्रभुत्व स्वीकार नहीं किया। अतः आक्रमण हुआ जिसमें सालवाहन संभवतः मारा गया। यह घटना 1050 तथा 1060 के बीच हुई होगी क्योंकि उसी समय अनंतदेव ने रावी के दूसरी ओर बल्लपुर पर भी आक्रमण किया था।

सालवाहन के समय की दो पनघट शिलाएं चुराह के साई तथा तीसा में मिली हैं। इनमें राजा त्रैलोक्यदेव का नाम है। त्रैलोक्यदेव का नाम चंबा वंशावली में नहीं है किंतु यह बलोर (बसोहली) में है। एक पनघट शिला 1028-29 की है तो दूसरी 1041 की। एक शिला त्रैलोक्यदेव और एक ब्राह्मण द्वारा बनवाई गई है। इन शिलाओं से पता चलता है, उस समय चुराह बलोर राज्य का एक भाग था। इन शिलाओं से पता चलता है कि सालवाहन के दो पुत्र थे—सोम वर्मन तथा अस्त वर्मन।

सोम वर्मन (1060 ई.)

सोम वर्मन का नाम भी वंशावली में नहीं है। संभवतः कश्मीर के राजा अनंतदेव ने सालवाहन की मृत्यु के बाद यहां सोम वर्मन को राजा बनाया। इस राजा का नाम भी दो ताम्रपत्रों में आता है। पहला ताम्रपत्र उसने अपने राजकाल के सातवें वर्ष में जारी किया। यह संभवतः सितंबर, 1066 में सूर्यग्रहण के समय भूमिदान का है। इस पत्र में सालवाहन के हस्ताक्षर हैं। संभवतः सालवाहन स्वयं यह दान करना चाहता था किंतु उसका वध कर दिया गया। इसमें 'राजनकों' का उल्लेख भी है। दूसरा ताम्रपत्र शिव तथा विष्णु मंदिरों को भूमि दान संबंधी है। इस पत्र में सोम वर्मन तथा अस्त वर्मन दोनों के हस्ताक्षर हैं। यह पत्र अस्त वर्मन के पहले तथा ग्यारहवें वर्ष का है। इसमें साहिल वर्मन के पराक्रम का उल्लेख है, केवल 'तुरुष्का' का उल्लेख इसमें नहीं है।

अस्त वर्मन (1080 ई.)

अस्त वर्मन सोम वर्मन का भाई था। अस्त वर्मन ने अपने शासन के पांचवें

वर्ष एक ताम्रपत्र भूमिदान हेतु जारी किया। इसमें भी सालवाहन का उल्लेख है।

राजतरंगिनी में उल्लेख है कि 'चंबा के राजा अस्त' ने अनंतदेव के पुत्र राजा कलश (1063-89) के समय 1087-88 में कश्मीर यात्रा की। कश्मीर के राजा अनंतदेव की भांति उसके पुत्र कलश का भी इस ओर प्रभुत्व रहा। कश्मीर में उस समय अस्तदेव के साथ सात पहाड़ी राजा दरबार में उपस्थित हुए।

इसके बाद कश्मीर तथा चंबा के राजाओं के आपसी विवाह संबंध भी हुए। अस्त वर्मन की बहन बाधिका का विवाह कलश से हुआ। बाधिका का पुत्र हर्ष बाद में कश्मीर का शासक बना।

जस्ट वर्मन (1105 ई.)

जस्ट वर्मन का नाम वंशावली में है किंतु राज्य के बारे कोई विवरण नहीं दिया गया है। राजतरंगिणी (सप्तम तरंग) से पता चलता है कि सन् 1101 में जस्ट वर्मन ने लोहार वंश के सुस्सल के विरुद्ध कश्मीर के राजा हर्ष की सहायता की। जस्ट वर्मन की हार हुई और उसे सुस्सल ने विजयेश्वर मंदिर में बंदी बनाया। उस समय जस्ट वर्मन गद्‌दी का उत्तराधिकारी था। यह शिलालेख से पता चलता है। पांगी के लुजपनघट लेख में जस्ट वर्मन के गद्‌दी पर बैठने का पहला वर्ष (1105) दिया है। लोह टिकरी (चुराह) के पनघट शिलालेख में नौवां वर्ष (1114) दिया है। ये दोनों शिलालेख स्थानीय राणाओं के हैं।

धरवास से लगभग दो किलोमीटर दूर लुज गांव का शिलालेख भाटलौ या भटागिरी के पुत्र नागरा द्वारा खुदवाया गया। यह धरवास का एक राजस्व अधिकारी, जो ब्राह्मण था, माना जाता है। लेख के पहले वाक्य में इसे श्री महाराजा जासठ के प्रथम वर्ष में स्थापित बताया है। इसी प्रकार लोह टिकरी (चुराह) में राजा का नौवां वर्ष लिखा गया है।

राजतरंगिणी में उल्लेख है कि सन् 1112 में जस्ट को हर्ष के पौत्र भिक्षाचर की सुस्सल के विरुद्ध सहायता करना बताया है और वह चार-पांच वर्ष तक राजा का अतिथि रहा।

शिलालेखों से स्पष्ट है कि पांगी और चुराह चंबा के अधीन आ चुके थे। ऐसा लगभग 1090 में हुआ होगा। यह ललित वर्मन के समय भी रहा। इसकी पुष्टि बैरागढ़ की देवी कोठी पनघट शिला से होती है जो ललित वर्मन (1143-75) के सत्रहवें वर्ष का है। एक दूसरे पनघट शिला में राणापाल का नाम आता है। राणापाल चंबा में कोई राजा नहीं है। अतः संभव है कि सन् 1161 के बाद बलोरिया राजा ने पुनः इसे अपने कब्जे में ले लिया होगा।

ढाल वर्मन (1118 ई.)

ढाल वर्मन, जस्ट वर्मन का भाई था जिसने बहुत कम समय राज किया।

उदय वर्मन (1120 ई.)

उदय वर्मन का नाम वंशावली में जस्ट के बाद पांचवां आता है। वंशावली में जस्ट के बाद ढाल वर्मन, अजित, दैत्यारि, पृथ्वी वर्मन के बाद उदय वर्मन आता है।

राजतरंगिनी (अष्टम तरंग) में उदय वर्मन को सन् 1122 में कश्मीर में बताया गया है। उदय वर्मन ने भिक्षाचर का साथ छोड़ दिया और सुस्सल के साथ हो गया जिसका जस्ट ने विरोध किया था। उसने अपनी दो पुत्रियों देवलेखा और तरललेखा का विवाह सुस्सल से किया। सुस्सल की 1128 ई. में मृत्यु पर वे दोनों सती हो गईं। अतः कश्मीर में अव्यवस्था फैल गई जिसका फायदा उठाते हुए उसने अपने को मुक्त कर लिया। कश्मीर के राजा हर्ष की पुत्र भोज सहित सन् 1101 में हत्या कर दी गई और राजगद्दी लोहारा के राजकुमारों उच्छल तथा सुस्सल के हाथ चली गई। राज्य छिनने और पिता की मृत्यु पर भोज के पुत्र भिक्षाचर को मालवा ले जाया गया जो अभी बच्चा था। सन् 1112 में वापसी पर जस्ट सहित अन्य राज्यों ने उसे अपना राज्य वापस लेने के लिए प्रयत्न करने को कहा। इस अभियान में उसे जस्ट, बल्लपुर तथा चंद्रभागा के ठाकुरों से सहायता मिली। हारने पर वह चंबा में जस्ट वर्मन के पास रहा। दूसरा प्रयास सन् 1120 में किया गया जिसमें वह छह मास तक राज्य पाने में कामयाब रहा। संभवतः सन् 1121-22 में जब सुस्सल ने पुनः सत्ता पाई तो उदय वर्मन ने सुस्सल का साथ दिया। कश्मीर की शक्ति इस आंतरिक संघर्ष और मुस्लिम आक्रमणों से क्षीण हुई अतः चंबा ने भी स्वाधीनता पाई।

राजतरंगिणी में इस घटना के बाद चंबा का कोई उल्लेख नहीं है।

उदय वर्मन के बाद अजित वर्मन, दैत्यारि वर्मन, पृथ्वी वर्मन राजा हुए जिन्हें वंशावली में पहले गिनाया गया है। किंतु इन राजाओं के बारे कोई में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

ललित वर्मन (1143 ई.)

ललित वर्मन के समय की दो पनघट शिलाएं मिलती हैं। इनमें से एक राणा नागपाल द्वारा देवी कोठी में बनवाई गई। यह सत्रहवें वर्ष की है और इसमें राजा द्वारा राणा को 'राजनक' की उपाधि मिली। दूसरा पांगी के सेचू नाले में सेहली पनघट शिलालेख है। यह सताईसवें वर्ष का है (1170)। अतः राजा ने अपना कार्यकाल 1143-44 से आरंभ किया होगा और 1175 तक रहा होगा। दूसरी पनघट शिला

को राणा लुद्रपाल ने बनवाया।

सेहली लेख की प्रथम पंक्ति में स्तुति के बाद राज्यकाल का सं. 27 और शास्त्र संवत् 46 दिया गया है। दूसरी पंक्ति में स्थानीय अधिकारियों के नाम हैं जिनमें से दो को 'शेगाण' कहा है जो संभवतः तिब्बती का शब्द है। पहला शेगण कालू है जिसे 'पांगती' भी कहा गया है। दूसरा नेणकु है। इसके बाद दंडवासिक कुतुक है। अंतिम पंक्ति में जलस्रोत की स्थापना राणा लुदरपाल की पत्नी रानी देल्ही द्वारा किए जाने का उल्लेख है।

विजय वर्मन (1175 ई.)

कहा जाता है विजय वर्मन एक कुशल योद्धा और लोकप्रिय शासक था। यह भी कहा जाता है कि राजा ने कश्मीर, लद्दाख पर आक्रमण किया और वहां से खूब माल लूटा। राज्य की सीमाओं को बढ़ाया गया। उस समय बहुत सा राजनीतिक परिवर्तन आ रहा था। विशेषकर उत्तरी भारत में। सन् 1191 में मुहम्मद गौरी ने भारत पर हमला बोला। पृथ्वीराज ने उसे परास्त किया। सन् 1192 में वह पुनः सेना सहित आया। इस बार पृथ्वीराज की हार हुई। अतः कुछ इतिहासकारों का मत है कि इस राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाते हुए विजय वर्मन ने लूट-खसोट की होगी। यह भी मत है कि वंशावली में जो उसके शौर्य का बखान है, वह संभवतः उसके पूर्वज उदय वर्मन का रहा होगा।

चुराह के दो शिलालेख, जो बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के हैं, राणापाल और अजयपाल के हैं। ये दोनों बलौर (बसोहली) की वंशावली में हैं। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में चंबा तथा बलौर में झगड़ा चलता रहा। ग्यारहवीं शताब्दी में यहां त्रैलोक्यपाल राजा था। यह क्षेत्र सोम वर्मन से ललित वर्मन तक चंबा के अधीन रहा। विजय वर्मन के समय चुराह का एक भाग बलौर के अधीन रहा अतः राजा का कश्मीर के विरुद्ध अभियान तथा उसे लूटना संभव नहीं लगता।

विजय वर्मन के बाद राजा वर्मन, सार वर्मन, कीर्ति वर्मन, अजित वर्मन, मदन वर्मन, नरकंजर वर्मन, आशा वर्मन, जीमूत वर्मन राजा हुए।

वंशावली में मदन वर्मन का पुत्र मुद्रा वर्मन, मुद्रा वर्मन का नारी वर्मन, उसका नागरी वर्मन, उसका अय्यांश, उसका जीमूत वर्मन बताया है।

वैरासी वर्मन (1330 ई.)

वंशावली में नाम वैरी वर्मन दिया गया है किंतु एक ताम्रपत्र में नाम वैरासी वर्मन है। ताम्रपत्र की तिथि शास्त्र 6, वि. 1387 (1330 ई.) है जो संभवतः शासन का प्रथम वर्ष था। वैरासी वर्मन संभवतः 1370 में मरा।

माणिक्य वर्मन (1370 ई.)

राजा का नाम ताम्रपत्रों में आता है। माणिक्य वर्मन के पुत्र का नाम 1397 में आता है अतः संभवतः 1397 में माणिक्य वर्मन की मृत्यु हुई होगी।

भोट वर्मन (1397 ई.)

भोट वर्मन का उल्लेख 1397 के ताम्रपत्रों के अतिरिक्त एक अन्य में भी आता है जो सं. 12 (1436 ई.) का है। भोट वर्मन के पुत्र द्वारा एक पट्टा दिया गया जिसमें लगता है भोट वर्मन की मृत्यु 1442 में हुई होगी।

संग्राम वर्मन (1442 ई.)

इस समय के पट्टों से तिथि निर्धारण नहीं हो पाती। अतः निश्चय से इतिहासकार कुछ नहीं कह पाए।

आनंद वर्मन (1475 ई.)

आनंद वर्मन द्वारा सं. 57 (1481 ई.) में ताम्रपत्र जारी किया गया किंतु इसका कार्यकाल पहले रहा होगा। इसकी मां का नाम संपूर्णदिवी था। आनंद वर्मन बहुत धार्मिक था और कहा जाता है कि इसे चमत्कारपूर्ण शक्तियां प्राप्त थीं। इसने कांगड़ा की राजकुमारी से विवाह किया। विवाह समारोह में भोजनादि राजा की पहुंच से बहुत बाहर था किंतु मान्यता है कि अपनी चमत्कारिक शक्तियों के कारण राजा को कोई कठिनाई नहीं हुई। आनंद वर्मन की मृत्यु सन् 1512 में हुई।

गणेश वर्मन (1512 ई.)

इस राजा के समय पहला ताम्रपत्र सं. 88 शाका 1434 (सन् 1512) में तथा अंतिम सं. 35 (सन् 1559) में जारी किया गया। इसके समय के कुछ ताम्रपत्रों में इसके पुत्र प्रताप सिंह वर्मन को युवराज तथा महाराज-पुत्र संबोधित किया गया है। युवराज द्वारा 'सिंह' लगाना चंबा के इतिहास में प्रथम बार हुआ है। कुछ लेखों में राजा के छह पुत्रों के नाम लिखे गए हैं।

गणेश वर्मन ने मौथिला में गणेशगढ़ का किला बनाया ताकि धौलाधार की ओर सीमाओं को सुदृढ़ कर सके। चंबा का यह सौभाग्य रहा कि वह चार सौ वर्षों से अधिक मुगलों के आक्रमण से बचा रहा। मुगलों की गतिविधियां शिवालिक की पहाड़ियों तक ही सीमित रहीं। अकबर चौदह वर्ष की आयु में 1556 में गद्दी पर बैठा। वह सिकंदर शाह सूरी का पीछा करते हुए पहाड़ों के भीतर तक गया। सन् 1558 में सिकंदर शाह माऊ कोट किले में जा छिपा। नूरपुर ने उसकी सहायता की।

इस युद्ध में सिकंदर शाह हार गया और नूरपुर का राजा भी पकड़ा गया जिसे लाहौर ले जाकर मार दिया।

एक ताम्रपत्र के अनुसार कुल्लू के राजा बहादुर सिंह ने चंबा के राजगुरु रामपति को कुल्लू में कुछ भूमि दान की। रामपति गणेश वर्मन, उसके पुत्र प्रताप सिंह तथा पौत्रों का गुरु था। ताम्रपत्र से यह भी ज्ञात होता है कि बहादुर सिंह ने अपनी तीन पुत्रियों का विवाह गणेश वर्मन के पुत्र प्रताप सिंह से किया। इस विवाह संबंध में राजगुरु रामपति का हाथ था।

गणेश वर्मन के छह पुत्र थे—प्रताप सिंह, जीत सिंह, बीर बहादुर, हरि सिंह, शत्रुघ्न सिंह, रूप आनंद सिंह। युवराज प्रताप सिंह के साथ 'सिंह' आरंभ हुआ। गणेश वर्मन की मृत्यु 1559 में हुई।

प्रताप सिंह वर्मन (1559)

ताम्रपत्रों में प्रताप सिंह वर्मन को गणेश वर्मन तथा साहिब देवी का पुत्र कहा गया है। प्रताप सिंह एक दयावान और धार्मिक प्रवृत्ति का राजा था। वह लक्ष्मी नारायण तथा अन्य मंदिरों की मरम्मत करवाना चाहता था किंतु धनाभाव के कारण यह कार्य संभव नहीं था। मंत्रियों द्वारा कर लगाने का सुझाव दिया गया किंतु उसने स्वीकार नहीं किया। वह इस बारे में बहुत चिंतित था कि अगली सुबह उसके दरबार में एक व्यक्ति दुल इलाके से एक तांबे का टुकड़ा लाया। उसने बताया कि वहां तांबे की खान है। राजा ने खान को खोदने का आदेश दिया। इस खान से जो आय हुई उससे उसने मंदिरों की मरम्मत कराई। बाद में यह खान समाप्त हो गई या बंद कर दी गई।

शीघ्र ही प्रताप सिंह और कांगड़ा के बीच लड़ाई हो गई। वंशावली में कांगड़ा के राजा का नाम चंद्रपाल दिया है। संभवतः यह भंगाल का राजा भी हो सकता है जिनके साथ 'पाल' लगता था। कांगड़ा ने भंगाल की सहायता की होगी। इस लड़ाई में कांगड़ा सेना हार गई और कांगड़ा राजा का छोटा भाई जीत चंद मारा गया। अतः यह भी संभव है कि भंगाल के राजा की सहायता के लिए कांगड़ा नरेश ने अपने छोटे भाई जीत चंद को भेजा हो। इस जीत के साथ बहुत सा धन, हाथी-घोड़े चंबा के हाथ आए और चड़ी तथा घरोह का क्षेत्र भी चंबा के अधिकार में आया। यह भी उल्लेख है कि चंबा ने राजधानी गुलेर पर भी अधिकार कर लिया। अतः यह लड़ाई कटोच वंशीय गुलेर नरेश के साथ हुई होगी। किंतु संस्कृत वंशावली में इसे नगरकोट का राजा 'चंद्र' बताया गया है।

प्रताप सिंह के समय सम्राट अकबर (1559-1605) ने पहाड़ी राजाओं को अपने अधीन कर लिया अतः चंबा भी उनके अधीन हुआ। जब अकबर ने अपने

वित्त मंत्री टोडरमल को भू-संपत्ति प्राप्त करने भेजा तो उसने कांगड़ा नरेश से अच्छी भूमि लेने के साथ चंबा से रिहलू का क्षेत्र लिया। अतः चंबा राज्य लंबे समय तक मुगलों के अधीन हो गया। चड़ी और घरोह जो कांगड़ा से जीता था, वह भी टोडरमल ने हथिया लिया।

मुगल सम्राटों ने राजकाज के काम में हस्तक्षेप नहीं किया। वे केवल नजराना लेते थे। कभी-कभी उन्हें सैनिक सहायता भी देनी पड़ती थी। नए राजा को गद्दी पर बैठने के समय नजराना देना पड़ता था।

प्रताप सिंह के समय के कई ताम्रपत्र मिलते हैं। एक ताम्रपत्र सं. 62 (सन् 1686) का है। एक में सं. 55 वि. 1635 (सन् 1579) है जिसमें बलभद्रदेव (राजा का पौत्र) को प्रवर राज और टिक्का कहा है। बलभद्र देव (पौत्र) को युवराज कहा गया है जबकि राजा का पुत्र वीरवाह्नु जीवित था। अतः संभव है वीरवाह्नु को गद्दी न देकर बलभद्रदेव को ही युवराज घोषित किया गया हो।

वीरवाह्नु (1586)

वीरवाह्नु संभवतः कम समय (लगभग चार वर्ष) तक राजा रहा क्योंकि बलभद्र ने 1589 में गद्दी संभाली। यह भी संभव है कि दादा और पिता के समय वास्तविक राजा बलभद्र ही रहा हो क्योंकि पिता के होते हुए युवराज बलभद्र को कहा गया है। वीरवाह्नु की मृत्यु 1589 में हुई।

बलभद्र वर्मन (1589)

बलभद्र वर्मन धार्मिक और उदार प्रवृत्ति का था। उसके उदार और दानी होने के किस्से बखाने जाते हैं। वह रोज भूमि दान करता था। अतः उसे बलि तथा कर्ण कहा जाने लगा। ब्राह्मणों को दान किए गए 42 ताम्र पत्र चंबा तथा कांगड़ा और नूरपुर क्षेत्र में मिलते हैं। राजा बिना दान दिए सुबह अन्न ग्रहण नहीं करता था। कोई भी याचक राजा के पास से खाली हाथ नहीं लौटता था। राजा अपने पास या समीप रखी कोई भी वस्तु दान कर देता था चाहे वह कितनी भी मूल्यवान क्यों न हो। राजा ने लक्ष्मी नारायण मंदिर को भूमि तथा जवाहरात आदि बहुमूल्य वस्तुएं दान दीं जो अभी भी मंदिर में विद्यमान हैं। ये सभी एक सोने की डिबिया में एक मूर्ति सहित, जिसमें वि. 1675 (1619) अंकित है, रखी गई हैं।

इस तरह दान करने से खजाना खाली हो गया। दरबारी तथा राज्य के प्रमुख अधिकारी चिंतित हो गए। किंतु राजा को आगाह करने पर वह नाराज हो गया। अंततः राज्य में प्रशासन का व्यय चलाना कठिन हो गया। इस समय तक राजा का बड़ा पुत्र जनार्दन वयस्क हो गया, अतः अधिकारियों ने उसे इस संकट के बारे में

सचेत किया।

जनार्दन ने हस्तक्षेप करके राजा को रानी के दूसरी ओर बराइया में भेज दिया और घर व जमीन दी। वहां भी राजा दान करता रहा और सारी भूमि दान कर दी। केवल एक घर ही रह गया जिसमें वह रहता था। बिना अन्न-जल ग्रहण किए दान देने की प्रवृत्ति से विवश अब राजा एक-एक फुट के हिसाब से घर का दान देने लगा। इस तरह पूरा बरांडा और कमरा भी दान में चला गया। धीरे-धीरे पूरा घर दान में चला गया और राजा घर के बाहर खुले में रहने लगा और खाना-पीना भी छोड़ दिया। जब यह समाचार पुत्र जनार्दन को दिया गया तो उसने दान का क्रम जारी रखने के लिए और जागीर दी।

जनार्दन

बलभद्र वर्मन को हटाने के बाद जर्नादन ने कब सत्ता संभाली, यह ज्ञात नहीं है। किंतु यह घटना सन् 1613 से पहले नहीं हुई होगी। बलभद्र वर्मन का समय वि. 1670-80 (1613-23) दिया गया है। कुछ ताम्रपत्रों से भी इस घटना पर प्रकाश पड़ता है। सन् 1613 के एक ताम्रपत्र में बलभद्र वर्मन को राजा लिखा है और जर्नादन को 'महाराज-कुमार', 'महाराज-पुत्र' कहा गया है। सन् 1599 से 1607 तथा 1620 से 1629 के बीच के ताम्रपत्रों में बलभद्र को राजा कहा गया है।

जनार्दन द्वारा सत्ता लेने के तुरंत बाद चंबा और नूरपुर में लड़ाई शुरू हो गई। जहांगीर (1605-27) के समय नूरपुर के राजा सूरजमल (1613-18) के भाई जगत सिंह से संबंध अच्छे थे। अतः राजा जगत सिंह ने मुगलों की सहायता से चंबा से लड़ाई छेड़ दी। लड़ाई के समय नूरपुर का राजा जगत सिंह नहीं था। जगत सिंह भाई सूरजमल द्वारा विद्रोह तथा उसकी मृत्यु के बाद 1618-19 में राजा बना। यह लड़ाई छिटपुट झड़पों द्वारा बारह वर्ष तक जारी रही। संभवतः बीच-बीच में संधि या शांति भी रही। सन् 1618 में बलभद्र द्वारा राजा जगत सिंह के पुरोहित को एक शासन (ग्रांट) दिया।

सन् 1618 में राजा सूरजमल ने मुगल सम्राट के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जब मुगल सेना इस विद्रोह को दबाने आई तो सूरजमल चंबा के दुर्ग में जा छिपा। यहां से वह चंबा चला गया। उसका छोटा भाई माधो सिंह भी कोटला दुर्ग छोड़कर चंबा गया। मुगल सेना जब चंबा की ओर जाने लगी तो ज्ञात हुआ कि सूरजमल की मृत्यु हो चुकी है। अतः चंबा के राजा को आदेश दिया गया कि सूरजमल की सारी संपत्ति वापस सौंपी जाए। जनार्दन ने सारी संपत्ति सौंपने के साथ-साथ उसके भाई माधो सिंह को भी मुगलों के हवाले कर दिया। सूरजमल की मृत्यु के बाद जगत

सिंह को बंगाल से बुलाकर राजा बनाया गया। जहांगीर ने जगत सिंह को कांगड़ा अभियान में भेजा और सन् 1620 में कांगड़ा दुर्ग जीत लिया गया।

जब जहांगीर कांगड़ा आया और नूरपुर होता हुआ वापस लौटा तो नूरपुर में उसे मिलने पहाड़ी राजा आए। तुजुके जहांगीरी के अनुसार यहां चंबा का राजा भी आया और बादशाह को उपहार दिए। यह राजा संभवतः जनार्दन ही था। इसके साथ इसका भाई विश्वम्भर भी था।

तुजुक-ए-जहांगीरी में लिखा है, 'इस समय राजा चंबा द्वारा लाई गई भेंट मेरे सामने रखी गई। उसका मुल्क कांगड़ा से 25 कोस है। इससे बड़ा इन पहाड़ियों में कोई दूसरा जमींदार नहीं है।'

इसके बाद नूरपुर और चंबा में पुनः युद्ध हुआ। जगत सिंह की सहायता मुगल सूबेदार ने की। ढलोग में हुए युद्ध में चंबा की सेना हार गई। जनार्दन का भाई विश्वम्भर मारा गया। जगत सिंह ने चंबा नगर को लूटा। जगत सिंह ने जनार्दन को संधि के लिए संदेश भेजा। जनार्दन ने विश्वास कर लिया किंतु जगत सिंह के मन में खोट था। जगत सिंह ने मौका पाते ही जनार्दन को मार दिया। यह घटना संभवतः 1623 में हुई। यह दुखद घटना चंबा के महल में हुई।

वंशावली में लिखा है कि जनार्दन का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। किंतु जनार्दन की हत्या के समय रानी गर्भवती थी। जगत सिंह को जब पता चला तो उसने महल में निगरानी रखने के आदेश दिए। उसने कहा कि यदि रानी को राजकुमार का जन्म होता है तो उसे तुरंत मार दिया जाए, यदि राजकुमारी हो तो उसका विवाह नूरपुर के राजपरिवार में किया जाए। कहा जाता है जब राजकुमार का जन्म हुआ तो उसकी धाय बाटलू ने पहरेदारों की नजर बचा उसे मंडी पहुंचा दिया। यह भी माना जाता है कि राजकुमार के जन्म की यह कहानी सत्य नहीं है। जनार्दन द्वारा माघ सं. 1559 (फरवरी, 1619) के ताम्रपत्र के अनुसार उसने अपने पुत्र पृथ्वी सिंह के जन्म पर एक ब्राह्मण को शासन (भूमिदान) दिया। अतः इस ताम्रपत्र के अनुसार पृथ्वी सिंह का जन्म पिता की मृत्यु से पहले हो चुका था। यद्यपि इसे मंडी ले जाने की बात सत्य है।

जनार्दन की मृत्यु पर चंबा बीस वर्ष तक नूरपुर के अधीन रहा। जगत सिंह ने चंबा की सीमा में तारागढ़ बनाया। कहा जाता है कि एक तारा नाम के किसान की बलि दी गई थी अतः यह तारागढ़ कहलाया, जैसी परंपरा थी कि किलों के निर्माण के समय आदमियों को जिंदा दफना दिया जाता था। यह किला चंबा नूरपुर सीमा पर था।

नूरपुर द्वारा चंबा की पराजय के बाद बलभद्र की क्या स्थिति रही होगी, यह

ज्ञात नहीं है किंतु यह माना जाता है कि जनार्दन की मृत्यु के बाद बलभद्र को राजा बनाया गया होगा और वह मृत्यु तक राजा बना रहा होगा। सन् 1620 से 1629 तक कोई ताम्रपत्र नहीं मिलता है किंतु सन् 1629 से 1614 तक पुनः ताम्रपत्र जारी हुए। अतः बलभद्र की मृत्यु सन् 1641 के लगभग हुई होगी जब इन्हीं गर्मियों में पोता पृथ्वी सिंह वापस लौटा।

पृथ्वी सिंह (1641)

पृथ्वी सिंह संभवतः चार वर्ष का था जब नूरपुर के राजा ने आक्रमण किया और उसके पिता जनार्दन को धोखे से मार दिया। वह युवा होने तक और राज्य वापस लेने के लिए मौके की तलाश तक मंडी में ही रहा। पृथ्वी सिंह को सन् 1641 में अवसर मिला जब राजा जगत सिंह व उसके पुत्र राजरूप सिंह ने शाहजहां के विरुद्ध बगावत कर दी। शाहजहां ने इसे दबाने के लिए अपने पुत्र मुरादबख्श को भेजा। मुगल सेना पठानकोट में एकत्र हुई।

उपयुक्त अवसर जानकर पृथ्वी सिंह ने मंडी तथा सुकेत से सहायता लेकर कुल्लू के रोहतांग होते हुए लाहौल और पांगी की ओर से चंबा में प्रवेश किया। चुराह पर कब्जा करने के बाद चंबा पहुंचकर पृथ्वी सिंह ने जगत सिंह के आदमियों को भगा दिया और सन् 1641 में राज्य पर कब्जा कर लिया।

सन् 1641 के दिसंबर मास में वह पठानकोट गया और मुरादबख्श से मिला। मुरादबख्श ने उसे 16 दिसंबर, 1641 को शाहजहां के पास दिल्ली में पेश किया। यह भी माना जाता है कि वह बादशाह के पास लाहौर में गया। मुगल दरबार में राजा को खिल्लत दी गई तथा जड़ाऊ तलवार, एक हजारी मनसब, घोड़ा तथा राजा की उपाधि दी।

जगत सिंह के विद्रोह के समय जब मुगल सेना आई तो वह माउकोट में जा बैठा। उसके अन्य सैन्य अधिकारी नूरपुर दुर्ग में रहे। मुगल सेना जब माउकोट में जा पहुंची तो जगत सिंह चंबा के तारागढ़ में चला गया।

पृथ्वी सिंह मुगल दरबार में था। बादशाह ने उसे चंबा की ओर से तारागढ़ पर हमला करने के लिए कहा। पृथ्वी सिंह ने चंबा आकर बसौली के राजा संग्रामपाल से सहायता ली जिसके बदले में उसे भलई कोठी देनी पड़ी। दोनों सेनाओं ने कलानौर में मुगल सूबेदार से भी सहायता ली और तारागढ़ का घेराव कर दिया। गुलेर का राजा मान सिंह भी जगत सिंह का शत्रु था, अतः पृथ्वी सिंह व संग्रामपाल, गुलेर के राजा मान सिंह ने और मुगल सेना ने तारागढ़ पर घेरा डाले रखा। सन् 1642 (मार्च) में जगत सिंह ने समर्पण किया। मुगल दरबार में पेश होने पर उसे क्षमा कर

दिया गया और मुगल सेना में रखा गया। तारागढ़ में मुगल सेना रख दी गई।

पृथ्वी सिंह ने अब पांगी के क्षेत्र को, जो छोटे-छोटे राणा-ठाकुरों के पास था, अपने अधीन कर लिया। पांगी में अपने अधिकारी नियुक्त किए। किलाड़ तथा साच के बीच सं. 18 (1642) के शिलालेख में पृथ्वी सिंह का नाम मिलता है। इसी राजा ने सर्वप्रथम कोठियां बनाईं। चुराह तथा पांगी में सरकारी कार्यालय बनाए।

जगत सिंह के आत्मसमर्पण के बाद पृथ्वी सिंह का बसौली के राजा संग्रामपाल से भलई के इलाके को लेकर विवाद हो गया जो पृथ्वी सिंह ने सैन्य सहायता के बदले संग्रामपाल को दिया था। अंततः यह विवाद मुगल दरबार तक जा पहुंचा और मुगल दरबार ने निर्णय चंबा के पक्ष में दिया।

अपने राज्य की व्यवस्था करने के बाद पृथ्वी सिंह प्रयाग, काशी और गया में धर्मयात्रा पर गया। वह नौ बार मुगल दरबार में भी उपस्थित हुआ और शाहजहां ने उसकी स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर 16000 रुपए की जागीर जसवां दून में दी जो नब्बे वर्ष तक चलती रही। यह जागीर जहांगीर ने कांगड़ा किला जीतने के बाद ले ली।

भरमौर के गद्दियों (खत्रियों) का विश्वास है कि वे पृथ्वी सिंह के समय लाहौर से आकर यहां बसे। कहा जाता है कि पृथ्वी सिंह बहुत सुंदर और सजीला युवक था। उसकी इस खासियत की खबर दिल्ली में फैल गई और राजपरिवार की महिलाओं ने उसे देखने की इच्छा प्रकट की। उसे आंखों पर पट्टी बांध हरम में ले जाया गया।

खजियार में खजि नाग, मैहला में हिडिम्बा, चंबा में सीता राम के मंदिर पृथ्वी सिंह की धाय बाटलू द्वारा बनाए माने जाते हैं। रावी के ऊपर नेल्होरा के पास पुल भी उसी के द्वारा बनवाया माना जाता है जिसका नाम उसने अपने पति के नाम पर 'डाकू' पुल रखा।

पृथ्वी सिंह के आठ पुत्र थे—शत्रु सिंह, जय सिंह, इंद्र सिंह, महीपत सिंह, रघुनाथ सिंह, राम सिंह, शाक्त सिंह, राज सिंह।

पृथ्वी सिंह के समय से 'वर्मन' के स्थान पर 'सिंह' लगाया जाने लगा।

साच परगने में चंद्रभागा नदी के बाएं किनारे मिंधल माता लेख (जो भूरि सिंह संग्रहालय चंबा में है) बैशाख शुक्ल अष्टमी वि. सं. 1698 (8 अप्रैल, 1641) का लेख है। लेख के अनुसार राजा पृथ्वी सिंह ने मिंधल गांव प्रजा सहित देवी चामुंडा को दिया। यह माना जाता है कि पृथ्वी सिंह ने कुल्लू से चंबा जाते हुए यह कार्य किया। सन् 1641 की गर्मियों में राजा ने नूरपुर के अधिकारियों को निकाल चंबा का राज्य संभाला था। लेख में राजा का नाम पृथ्वी सिंह वर्मा लिखा है, इस राजा के साथ 'सिंह' उपनाम चलाया गया।

चतर सिंह (1664)

विधि सिंह के बाद बड़ा पुत्र शत्रु सिंह राजा बना। ताम्रपत्रों में राजा का नाम शत्रु सिंह ही है किंतु संभवतः राजा को सामान्यतः चतर सिंह कहा जाता था। सिंहासनारूढ़ होते ही राजा ने अपने भाई जय सिंह को वजीर बनाया और उसे बसोली के संग्रामपाल के पास भलई इलाका वापस लेने भेजा। यह मांग मानी नहीं गई। अतः चतर सिंह ने बसोली पर हमला किया और भलई को जीत लिया। मुगल दरबार का निर्णय संभवतः संग्रामपाल ने नहीं माना होगा। अतः वह इलाका वापस करने से मुकर गया था।

चतर सिंह ने पांगी क्षेत्र में अपने अधिकारी तैनात किए। मैदानी इलाके में चतरगढ़ नाम का किला बनाया। मध्य एशिया से व्यापार के कारण जंस्कर तथा लद्दाख जाने वाले व्यापारी नूरपुर तथा चंबा होकर जाते थे। सन् 1836 तक चतरगढ़ फला-फूला किंतु बाद में डोगरों ने इसे बर्बाद कर दिया और इसका नाम गुलाबगढ़ रख दिया।

सन् 1678 में बादशाह औरंगजेब ने हुकम दिया कि चंबा के सभी हिंदू मंदिरों को गिरा दिया जाए। चतर सिंह ने हुक्म नहीं माना उल्टे मंदिरों पर कलश चढ़वा दिए। इस पर बादशाह बहुत नाराज हुआ और राजा को दिल्ली तलब किया गया। स्वयं दिल्ली जाने के बजाय उसने अपने भाई शाक्त सिंह को भेज दिया। शाक्त सिंह के साथ गुलेर का राज सिंह भी था। किन्हीं कारणों से वे दिल्ली न जाकर बजवाड़ा से ही वापस लौट आए। चतर सिंह बादशाह के कोप का भाजन अवश्य बना होगा किंतु यह मामला कैसे रफा-दफा हुआ, यह ज्ञात नहीं है। ये कलश मंदिरों पर लगे रहे।

चतर सिंह के कार्यकाल में पंजाब का सूबेदार मिर्जा रजिया बेग कलानौर में रहता था। वह पहाड़ी राजाओं पर छापे मारा करता था जिससे पहाड़ी राजा दुखी थे। अतः चतर सिंह, गुलेर के राज सिंह, बसोली के धीरज पाल, जम्मू के कृपाल देव ने मिलकर उसके विरुद्ध संघ बनाया। जम्मू के कृपाल देव ने पठान सैनिक भेजे। अतः इन्होंने मिलकर सूबेदार को हरा दिया।

चतर सिंह के प्रारंभिक दिनों की बात रही होगी कि लाहौल अंततः चंबा और कुल्लू में बांट लिया गया। पहले चंबा की सीमा चंद्रभागा के संगम तक थी और लाहौल का शेष भाग कुल्लू तथा लद्दाख में था। सन् 1646-47 में पूर्वी तिब्बत के लद्दाख पर हमले के कारण लद्दाख की शक्ति क्षीण हो गई थी। कुल्लू के राजा विधिचंद (1663-74) ने इसका लाभ उठाते हुए लद्दाखी अधिकारियों को लाहौल से खदेड़ दिया। इसके शीघ्र बाद चंबा के हाथों से ऊपरी घाटी का मुख्य भाग निकल गया। कुल्लू के इतिहास में उल्लेख है कि लाहौल चंबा की राजकुमारी के दहेज में

मिला था किंतु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। यह संभव है कि चंबा तथा कुल्लू ने मिलकर गुगे के शासकों को बाहर खदेड़ा और फिर लाहौल को आपस में बांटा।

चतर सिंह की मृत्यु 1690 में हो गई। चतर सिंह के दो पुत्र थे, उदय सिंह तथा लक्ष्मण सिंह।

उदय सिंह (1690-1720)

चतर सिंह के बाद उदय सिंह राजा बना। जय सिंह मंत्री बना रहा और जय सिंह तक राजकाज ठीक-ठाक चलता रहा। राज्य संपन्न था। प्रजा प्रसन्न थी।

उदय सिंह के राज्य संभालने के कुछ ही समय बाद जय सिंह की मृत्यु हो गई। इन्हीं दिनों गुलेर के राजा राज सिंह की भी मृत्यु हो गई। राज सिंह का पुत्र दलीप सिंह अभी छोटा था अतः उदय सिंह को उसका अभिभावक बनाया गया। गुलेर के राजा दलीप सिंह की बाल्यावस्था का लाभ उठाते हुए बसौली तथा जम्मू के राजाओं ने गुलेर पर हमला बोल दिया। चंबा के राजा उदय सिंह ने सीबा, कहलूर और मंडी से सहायता लेकर इस हमले को बेकार कर दिया और सेनाएं खदेड़ दीं।

मंत्री जय सिंह की मृत्यु के बाद प्रशासन ढीला हो गया। राजा विलासी हो गया। उसे एक नाई की लड़की से प्रेम हो गया और राजा ने उस लड़की के पिता को ही मंत्री बना दिया। अतः दरबारी नाराज हो गए। अंततः दरबारियों ने राजा के चाचा महीपत सिंह के पुत्र उगर सिंह को गद्दी पर बिठा दिया। उगर सिंह जम्मू भाग गया।

उदय सिंह ने अपने को नहीं बदला तो दरबारियों ने उसे मारने का षड्यंत्र रचा। उन्होंने उसके छोटे भाई को राजा बनाने का झांसा दिया। कुछ सैनिक रात को उदयपुर भेजे गए। उदय सिंह को भी आखेट के लिए वहां ले गए। दोपहर को सैनिकों ने गोलियां चलाईं तो उदय सिंह तलवार लिए बाहर निकला। बाहर अपने ही सेवक देखे तो उन्हें चारों ओर खड़ा कर दिया। इस दृश्य से छोटे भाई लक्ष्मण सिंह का मन पसीज गया और उसने बड़े भाई का साथ देने का मन बनाया। यह भांपकर दरबारियों ने लक्ष्मण सिंह को मार दिया। इस लड़ाई में उदय सिंह भी घायल हो गया। कुछ समय बाद उदय सिंह की मृत्यु हो गई। उदय सिंह की कोई संतान नहीं थी। उदय सिंह की मृत्यु 1720 में हुई। उसका भाई लक्ष्मण सिंह भी निःसंतान मरा।

हारकोट ने लिखा है (पृष्ठ 39) कि उदय सिंह अपने शासन के प्रारंभिक दिनों में संभवतः सीमा निर्धारण हेतु लाहौल आया। त्रिलोकीनाथ के पास उदयपुर का नाम उसके नाम पर रखा गया।

उगर सिंह (1720)

उगर सिंह जब जम्मू भागा था तो वह वहां जम्मू के राजा ध्रुवदेव के पास सेना में भर्ती हो गया। उसने यह नहीं बताया कि वह कौन है।

कहा जाता है कि एक बार वह तवी में नहाकर आया तो उसके हाथ में पानी का लोटा था। उसे सामने से आता हुआ मस्त हाथी मिल गया। हाथी ने उस पर हमला किया तो उगर सिंह ने लोटा उसे दे मारा। इतना समय मिलने पर उसने फुर्ती से तलवार निकाल ली और हाथी का सिर धड़ से अलग कर दिया। यह बात राजा तक पहुंची तो उसे बुलाया गया। तब उसने बताया कि वह राजपरिवार से है।

शीघ्र ही जब उदय सिंह की हत्या या मृत्यु की खबर पहुंची तो ध्रुवदेव ने उसे चंबा वापस भेज दिया और राजा बनाया गया।

कहा जाता है कि राजा का भूत उगर सेन के सामने आने लगा। उगर सेन जब अधिक भयभीत हो गया तो उसने उदयपुर में, जहां राजा की हत्या की गई थी, मंदिर बनवाया। मंदिर के रखरखाव के लिए कर लगाया गया जिसे 'तिरसेरा उदय सिंघयाना औतरियाना' कहा जाता था। औतर, निःसंतान व्यक्ति को कहते हैं।

गद्दी संभालने के बाद उगर सिंह के मन में चचेरे भाई दलेल सिंह के प्रति शंका हो गई। दलेल सिंह उसका चचेरा भाई था और रघुनाथ सिंह का पुत्र था। वह जम्मू में अपने मामा के पास रहता था। उगर सिंह ने लाहौर के सूबेदार की सहायता से उसे लाहौर में कैद करवा दिया।

कुछ समय बाद राजा से दरबारी नाराज हो गए। अधिकारियों ने दलेल सिंह को राजा बनाने की चाल चली। लाहौर के सूबेदार को एक लाख रुपए देकर उन्होंने दलेल सिंह को कैद से छुड़ाया और एक सनद भी ली कि उसे चंबा का राजा माना जाए। उसकी सहायता के लिए एक सैनिक टुकड़ी भी भेजी। जब दलेल सिंह सेना सहित चंबा पहुंचा तो उगर सिंह भयभीत हो गया। उसने रावी नदी के पुल को तोड़ दिया, नगर में आग लगा दी और स्वयं चामुंडा देवी के मंदिर में जाकर नजारा देखने लगा। फिर वह रावी नदी की भीतरी घाटी में भाग गया। जब वह चन्होता के पास गांव में जा रहा था तो गरूला के पास गरूला के राजा ने उसे जांघ में गोली मारकर घायल कर दिया। वह कांगड़ा तक भागने में सफल हो गया। कांगड़ा के एक गांव में सन् 1735 में उसकी मृत्यु हो गई। उसके दो पुत्रों उमेद सिंह और शेर सिंह को बसोली भेज दिया गया।

पृथ्वी सिंह के समय दून तथा नादौन में चंबा के राजा को मुगल बादशाह की जागीर मिली थी, वह वापस ले ली गई।

दलेल सिंह (1735)

दलेल सिंह ने गद्दी पर बैठते ही उगर सिंह के पुत्रों—उमेद सिंह और शेर सिंह को लाहौर में बंदी बनवा दिया। जिन्होंने उसे राजा बनाने में मदद की थी, उन्हें ईनाम दिए गए, कर मुआफ किए गए।

उमेद सिंह तेरह वर्ष तक बंदी रहा। चंबा में उसका एक सेवक था जो रंग-रूप में उसी जैसा था। एक बार उसने उमेद सिंह को अपने कपड़े पहना बाहर भेज दिया, स्वयं भीतर रहा। दरोगा को पता चला तो उसने सेवक को सूबेदार के पास पेश किया। सेवक ने मान लिया कि उसने अपने स्वामी के कारण ऐसा किया है। सूबेदार ने उसकी वफादारी का ईनाम दिया और उसे रिहा किया गया। उमेद सिंह भी भाग नहीं पाया और उसे भी पकड़कर सूबेदार के पास लाया गया। सूबेदार को पता चला कि उमेद सिंह ही वास्तविक वारिस है और गद्दी का हकदार है। अतः सूबेदार ने उसे चंबा के राजा होने का प्रमाणपत्र दिया और साथ में सेना की टुकड़ी भी दी। उमेद सिंह का विवाह जसरोटा की राजकुमारी से हुआ था। अतः वह जसरोटा और बसोली होता हुआ चंबा आया। दलेल सिंह के समर्थकों ने उसे लड़ाई करने को कहा किंतु वह नहीं माना और असली वारिस समझ आत्मसमर्पण कर दिया। उमेद सिंह ने भी बदला नहीं लिया। दलेल सिंह कुछ समय चंबा में ही रहा। बाद में वह साधु बन गया। उसकी मृत्यु ज्वालामुखी में हुई। दलेल सिंह को दून तथा नादौन की जब्त हुई जागीर के बदले 1774 में पठियार (कांगड़ा) में 9500 रुपए की जागीर मिली।

उमेद सिंह (1748)

उमेद सिंह के समय मुगल साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया। पहाड़ी राजाओं ने भी अपने को स्वतंत्र घोषित करना आरंभ कर दिया। उमेद सिंह ने भी स्थिति का लाभ उठाते हुए धौलाधार के दक्षिण का क्षेत्र वापस ले लिया और भंगाल तक बढ़ गया। पठियार में राजा ने अपनी सेना रखी। चड़ी पर अधिकार करने के विरोध में दिल्ली के मुगल शासक अहमदशाह ने राजा को विरोध भरा पत्र भी लिखा।

चंबा संग्रहालय में अहमदशाह दुर्रानी का एक पत्र है जिसमें धौलाधार के दक्षिण भाग की सीमाओं के साथ मिलाने को लिखा है। यह पत्र सन् 1762 का है। ऐसा सन् 1752 के बाद हुआ होगा। इसी समय पंजाब तथा पहाड़ी क्षेत्र मुगलों से निकलकर अहमदशाह दुर्रानी के पास चला गया। अफगानों का प्रभाव दूरस्थ क्षेत्रों तक कम था अतः चंबा अपने में स्वतंत्र रहा। सन् 1767 तक चंबा स्वतंत्र रहा होगा जब तक कि यह सिख प्रभाव में नहीं आया।

उमेद सिंह ने अखंड चंडी महल बनवाया। उसने रावी घाटी से आठ मील दूर

राजनगर नाम देते हुए एक महल भी बनवाया। यहां सन् 1755 में उसके पुत्र राज सिंह का जन्म हुआ। चंबा में रंगमहल की नींव भी इसी राजा द्वारा दी गई।

उमेद सिंह की मृत्यु 13 बैशाख वि. 1820 (1764) में 39 वर्ष की उम्र में हुई। उसने किसी भी रानी को सती होने के लिए मना कर रखा था।

राज सिंह (1764)

उमेद सिंह की मृत्यु के बाद जब राज सिंह गद्दी पर बैठा तो वह मात्र नौ वर्ष का था। कांगड़ा के राजा घमंड चंद ने स्थिति का लाभ उठाते हुए पठियार दुर्ग पर अधिकार करके बीड़-भंगाल से चंबा की सेनाएं भगा दीं। राज सिंह की माता ने जम्मू के राजा रणजीत देव की सहायता ली जो राजमाता का पिता था। जम्मू के राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र बज्रराय देव को सेना के साथ भेजा जिसने घमंड चंद की सेना को भगाकर अपना क्षेत्र वापस ले लिया।

जम्मू के राजा का राजमाता का भाई होने से चंबा के राजकाज में बहुत हस्तक्षेप रहता था। जम्मू का राजा संभवतः चंबा को अपने अधीन करना चाहता था। किंतु राजमाता की मृत्यु के बाद इस आशंका को भांपते हुए राज सिंह के जम्मू से संबंध बिगड़ गए। इसका कारण यह भी था कि रणजीत देव ने अपने एक व्यक्ति को जिसका नाम अकलू था, चंबा का वजीर बना दिया। राज सिंह ने अकलू को कैद कर दिया। रणजीत देव ने अपने को अपमानित समझ बसोली के राजा अमृतपाल को सेना सहित चंबा भेजा। इस समय राज सिंह पंजाब के सूबेदार से मिलने कलानौर गया हुआ था। वापसी पर नूरपुर में उसे आक्रमण का पता चला। उसने सरदार रामगढ़िया से संपर्क किया। राज सिंह ने रामगढ़िया को एक लाख रुपए दिए। अतः रामगढ़िया की सहायता से राज सिंह ने तीन मास पश्चात् अमृतपाल को चंबा से निकाल दिया। यह सन् 1775 की घटना है।

सन् 1775 में ही राज सिंह के यहां पुत्र हुआ जिसका नाम अजीत सिंह रखा गया।

सन् 1782 में राज सिंह ने बसोली पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। बसोली के राजा विजय पाल ने एक लाख रुपए राज सिंह को देकर राज्य छुड़ाया। सन् 1786 में राज सिंह ने अपने पुत्र अजीत सिंह को किश्तवाड़ भेजा। उसने किश्तवाड़ पर विजय पाई और राजा को हराकर राजपरिवार के एक व्यक्ति कुंदन सिंह किश्तवाड़ी को राजा बनाया। कुछ समय बाद उसने विद्रोह कर दिया। अतः पकड़वाकर चंबा बुलाया गया। उसके स्थान पर अब तेग सिंह किश्तवाड़ का राजा बना। किंतु यह व्यवस्था अधिक देर न चली। कश्मीर से सहायता लेकर किश्तवाड़ स्वतंत्र हो गया। इस समय भद्रवाह का राजा दयापाल भी चंबा के अधीन था।

सन् 1783 में कांगड़ा जिले का अंतिम सूबेदार सैफ अली खां मर गया। कांगड़ा किला राजा संसार चंद के हाथ न आकर जय सिंह के कब्जे में चला गया। सन् 1786 में जब जय सिंह की मैदानों में हार हुई तो कांगड़ा किला संसार चंद के पास आ गया।

मुगलों के पतन पर भी पहाड़ी राजा स्वतंत्र हो गए। मुगल सूबेदार ने रिहलू का क्षेत्र लिया हुआ था। राजा स्वयं रिहलू गया और किले में सेना बिठा दी क्योंकि लड़ाई संभावित थी। संसार चंद ने गुलेर के एक वज़ीर से संधि की और रिहलू पर आक्रमण की योजना बनाई। गुलेर के वजीर ध्यान सिंह ने उन दिनों कोटला पर कब्जा किया हुआ था। चंबा की सेना कई दिशाओं में थी जबकि स्वयं राज सिंह शाहपुर के निकट नेरटी में था। इसके साथ अपनी सेना और नूरपुर की सेना थी। संसार चंद को इस योजना का पता चल गया था अतः वह अचानक चंबा की सेना पर टूट पड़ा। नूरपुर के सैनिक इस अकस्मात् हमले से टिक नहीं पाए और भाग खड़े हुए। राजा केवल 45 सैनिकों के साथ रह गया। सैनिक अधिकारियों ने पीछे हटने को कहा किंतु राजा नहीं माना। राजा के निजी सैनिक और रक्षक भी मारे गए और उसे स्वयं टांग में गोली लगी। वह बहादुरी से लड़ता रहा। अंततः एक व्यक्ति, जिसका नाम जीत सिंह पूर्बिया था, ने पीछे से सिर पर वार किया। इस व्यक्ति का नाम जीत सिंह पूर्बिया या अमर सिंह बताया जाता है। राजा वहीं ढेर हो गया।

राजा राज सिंह की बहादुरी से लड़ने के किस्से आज भी गाथाओं में गाए जाते हैं। राज सिंह की मृत्यु 7 आषाढ़ वि. 1850 (1794) में हुई जब उसके शासन का तीसवां वर्ष था और उसकी आयु चालीस वर्ष थी। राज सिंह ने चामुंडा मंदिर की मरम्मत कराई और सीढ़ियां बनवाईं।

चुराह का क्षेत्र बसोली और चंबा के बीच विवाद का मामला था। अंतिम समय में यह विवाद जुंध तथा भलई इलाके के लिए ही रह गया था। पृथ्वी सिंह ने भलई (1641) बसोली के संग्रामपाल को दिया था। मुगल सूबेदार ने सन् 1648 में इसे चंबा को वापस करने की सनद दी थी। संग्राम सिंह इसे अपने पास रखना चाहता था। चतर सिंह द्वारा यह 1666 में वापस लिया गया। उगर सिंह ने संभवतः 1730 में जुंध इलाका खो दिया। उमेद सिंह ने 1758 में यह वापस ले लिया। बसोली द्वारा इस इलाके को लेने के लिए 1774 में राज सिंह के समय प्रयास किया गया। अंत में राज सिंह की मृत्यु के बाद 1794 में भी ऐसा प्रयास हुआ।

जीत सिंह (1794)

राज सिंह के युद्ध में मरने के बावजूद चंबा की सेना ने रिहलू पर अधिकार

बनाए रखा। संसार चंद ने सीमावर्ती कुछ गांव अपने अधीन किए। इसके बाद लड़ाई बंद हो गई। पिता की मृत्यु के समय जीत सिंह उन्नीस वर्ष का था। गद्दी संभालने के तुरंत बाद उसका बसोली में युद्ध हो गया। बसोली का विजय पाल जुंध तथा भलई के इलाके में लूटपाट मचाता था। सन् 1800 में जीत सिंह ने यह क्षेत्र जीत लिया और पिता की भांति लड़ाई का हर्जाना लेकर राज्य छोड़ दिया।

जीत सिंह ने बलौर में देवी मल की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। राजा बसोली, भाडु और रामनगर को भय हो गया कि कहीं राजा आक्रमण न कर दे, अतः उन्होंने पचास हजार रुपए भेंट किए ताकि राजा आगे न बढ़े।

संसार चंद द्वारा कांगड़ा किला जीत लेने पर वह आसपास के राज्यों में अधिकार करने लगा। संसार चंद ने पहाड़ी क्षेत्र का एकमात्र सम्राट बनने का सपना देखा। पंजाब, लाहौर में रणजीत की शक्ति का उदय होने से संसार चंद मैदानों की ओर बढ़ने में असफल रहा। अतः सतलुज की ओर रुख कर उसने बिलासपुर पर सतलुज के दाहिने किनारे अधिकार कर लिया। अतः बिलासपुर ने गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा को आमंत्रित कर लिया। अमर सिंह थापा के कांगड़ा पर आक्रमण के समय चंबा की ओर नत्थू वजीर ने सहायता की। संसार चंद ने कांगड़ा किले में शरण ली। अंततः संसार चंद को रणजीत सिंह से सहायता लेनी पड़ी। ज्वालामुखी में संसार चंद की भेंट रणजीत सिंह से हुई। रणजीत सिंह ने गोरखों को खदेड़ दिया किंतु कांगड़ा किले पर अपना अधिकार कर लिया। इस घटना से अन्य पहाड़ी रियासतों का भी नुकसान हुआ और सन् 1869 में सभी पहाड़ी रियासतें रणजीत सिंह के अधीन हो गईं।

जीत सिंह की मृत्यु सन् 1808 में हुई जब कांगड़ा किले पर गोरखा का घेराव जारी था। उसकी मृत्यु 33 वर्ष की आयु में हुई। उसके समय बहुत समस्याएं रहीं। राज्य की सुरक्षा के लिए बड़ी सेना रखनी पड़ी किंतु राज्य कर्जदार नहीं रहा। जीत सिंह के दो पुत्र थे—चढ़त सिंह तथा जोरावर सिंह।

चढ़त सिंह (1808)

पिता की मृत्यु के समय चढ़त सिंह मात्र छह वर्ष का था। दरबारियों ने उसे राजा घोषित कर दिया। राजा के अवयस्क होने के समय सत्ता राजमाता (जो जम्मू की राजकुमारी थी) तथा जीत सिंह के समय नियुक्त वजीर नत्थू के हाथ रही। राजमाता शारदा एक बुद्धिमान तथा दूरदर्शी महिला थी। राजमाता ने 14 बैशाख वि. 1882 (1825) में राधाकृष्ण का मंदिर बनवाया। उसने रानी सूही की समाधि तक सीढ़ियां बनवाईं। नत्थू वजीर भी कुशल प्रशासक था। आज भी चंबा में नत्थू

वजीर का नाम सम्मान से लिया जाता है।

अवयस्क राजा के गद्दी संभालने के तुरंत बाद रणजीत सिंह के आक्रमण का खतरा था। उसने जसरोटा तथा बसोली को अपने अधीन कर लिया। जब वह चंबा की ओर बढ़ने लगा तो उसका स्वागत बहुत भेंट आदि देकर किया गया। यह सन् 1808-09 की बात रही होगी। राज्य सिखों के अधीन हो गया किंतु स्वतंत्र रहा। वैसे भी चंबा के लिए पहाड़ी रास्ता कठिन था, दूसरे नत्थू वजीर के रणजीत सिंह से अच्छे संबंध थे।

भद्रवाह चंबा के अधीन था। सन् 1810 के लगभग पारिवारिक झगड़े के कारण दयापाल को भद्रवाह छोड़ भागना पड़ा। अतः गद्दी पहाड़ चंद के पास आ गई। सन् 1820 में उसने चंबा को कर देना बंद कर दिया अतः नत्थू वजीर ने हमला किया किंतु हार गया। वह रणजीत सिंह के पास गया और सहायता लेकर पुनः हमला किया। पहाड़ चंद भाग गया। अतः भद्रवाह पुनः चंबा के अधीन हो गया।

कांगड़ा में रणजीत सिंह ने देस्सा सिंह को सूबेदार नियुक्त किया। देस्सा सिंह ने रिहलू पर अधिकार जताते हुए घेराव कर दिया। चंबा की सेना ने मुकाबला किया। वजीर नत्थू ने भी रिहलू किले को न छोड़ने के लिए कहा। वह रणजीत सिंह के पास गया और सेना वापस बुलाने का आग्रह किया। कुछ समय तक लड़ाई के बाद राजमाता ने किला छोड़ने का आदेश दिया। रिहलू देस्सा सिंह के अधिकार में आ गया। नत्थू वजीर ने रिहलू को वापस करने के लिए रणजीत सिंह से अनुरोध किया। रणजीत ने रिहलू तो नहीं लौटाया, रानीताल का भाग, जो रानी चंबा की जागीर थी, वापस कर दी। रिहलू का क्षेत्र निकलने पर नत्थू वजीर ने चंबा के नजराने की राशि तीस हजार प्रति वर्ष माफ करवा ली। रिहलू के बदले रणजीत सिंह ने सन् 1821 में एक पट्टा देकर भद्रवाह का भाग भी चंबा को दे दिया। पहाड़ चंद को तीन हजार की जागीर दी गई।

नूरपुर का राजा वीर सिंह चढ़त सिंह का बहनोई था जिसे सन् 1815 में रणजीत सिंह ने भगा दिया। वह चंबा जा छिपा। वीर सिंह ने अपना राज्य लौटाने का असफल प्रयास किया। बाद में सतलुज पार कर अंग्रेजों के क्षेत्र में चला गया। सन् 1826 में वह पुनः नूरपुर लौटा। सिख सेना के पीछा करने पर वह फिर से चंबा आ छिपा। सिख सेना ने चढ़त सिंह को उसे पकड़ने के लिए मजबूर किया। वीर सिंह को गोबिंदगढ़ में बंदी बनाया गया। वह सात वर्ष तक बंदी रहा। चढ़त सिंह ने चौरासी हजार रुपए देकर गोबिंदगढ़ से छुड़ाया और चंबा ले आया। सन् 1846 में वीर सिंह ने पुनः अपना राज्य लेना चाहा किंतु मारा गया। सन् 1839 में विगने चंबा आया तो वीर सिंह चंबा में था। उसकी मृत्यु सन् 1846 में हुई।

सन् 1820-25 के दौरान पदर का पालसरा रतनू जंस्कर गया और इसे चंबा का करद बनाया। इससे पहले यह एक राजा के अधीन था जो लद्दाख के अंतर्गत आता था। बाद में जंस्कर हाथों से निकल गया।

महाराजा गुलाब सिंह (जम्मू) ने सन् 1835 में जोरावर सिंह कहलूरिया को लद्दाख विजय हेतु भेजा। लद्दाख विजय के बाद जब सेना वापस लौटी तो लखपत राय को जंस्कर जीतने के लिए भेजा गया। यह सेना पदर होती हुई जम्मू वापस जा रही थी तो पदर के लोगों को संदेह हो गया कि कहीं चंबा-विजय की उनकी मंशा न हो। अतः उन्होंने सेना का विरोध किया। सेना के जाने के बाद तीस व्यक्ति चतरगढ़ में शेष थे। चंबा के अधिकारी रत्नू ने लोगों को उकसाया अतः इन सैनिकों को पकड़कर चंबा भेज दिया गया। चढ़त सिंह ने इस बात से इनकार किया किंतु जोरावर सिंह ने सन् 1836 में इस अपमान का बदला लेने के लिए चंबा पर चढ़ाई कर दी। रत्नू ने चंद्रभागा पुल उड़ा दिया अतः जोरावर सिंह की सेना तीन मास नदी के पार रही। अंततः झूले द्वारा सैनिक पार किए गए। चतरगढ़ गिराकर ध्वस्त किया गया। उसका नाम गुलाबगढ़ रखकर जम्मू में मिलाया गया। रत्नू पकड़ा गया और बंदी बनाकर जम्मू भेजा गया। बाद में उसे छोड़कर किश्तवाड़ में जागीर दी गई। गुलाब सिंह रत्नू की अपने राजा के प्रति स्वामिभक्ति से खुश हुआ।

सन् 1836 में जोरावर सिंह ने भद्रवाह पर आक्रमण किया किंतु किले में पर्याप्त चंबा सैनिक थे जिन्होंने मुकाबला किया अतः डोगरा सेना को वापस जाना पड़ा।

वजीर नत्थू की 1838 में मृत्यु से राज्य को बहुत हानि हुई। उसके बाद भागा वजीर बना।

फरवरी, 1839 में पहली बार किसी यूरोपियन ने चंबा में पदार्पण किया। यह यूरोपियन विगने था। वह बसोली तथा संधारा होकर आया और चौरी तथा नूरपुर से गया। विगने ने चढ़त सिंह को मझोले कद, हल्के रंग, भारी शरीर, बड़ी-बड़ी आंखों तथा कमजोर आवाज वाला बताया है। जोरावर सिंह को उसने सुंदर किंतु अप्रभावी चेहरे का बताया। विगने ने बताया है कि राजा प्रातःकाल पूजा में बिताता है, फिर नाश्ता लेता है। कुछ समय दरबार को देकर वह अपने भाई के साथ हाथी पर सवारी करता है।

राजा के भाई जोरावर सिंह को लोग आज भी याद करते हैं। दोनों भाइयों में प्रेम भी बहुत था। चढ़त सिंह स्वयं लाहौर नहीं गया किंतु सदा जोरावर सिंह को भेजा। जोरावर सिंह को छोटा राजा कहा जाता था।

चढ़त सिंह की मृत्यु सन् 1844 में हुई जब वह 42 वर्ष का था। उसने 36

वर्ष शासन किया। दो रानियां और छह दासियां सती हुईं। राजा के तीन पुत्र थे–श्री सिंह, गोपाल सिंह तथा सुचेत सिंह। श्री सिंह का जन्म 1839 में हुआ।

श्री सिंह (1844)

पांच वर्ष की आयु में श्री सिंह को गद्दी पर बिठाया गया। राजकाज का काम राजमाता (जो कटोच राजकुमारी थी) तथा वजीर भागा के हाथ में रहा। कुछ समय बाद जोरावर सिंह पर राजमाता को संदेह हो गया और उसे बंदी बनाने का प्रयास किया गया किंतु वह भद्रवाह भाग गया। उसे चढ़त सिंह ने भद्रवाह का राजा बनाया था। भद्रवाह से वह जम्मू गया जहां 1845 में उसकी मृत्यु हो गई। उसका बेटा पराक्रम सिंह फिर भद्रवाह का राजा बना किंतु जम्मू के गुलाब सिंह ने शीघ्र ही भद्रवाह को अपने अधीन कर लिया।

श्री सिंह के गद्दी पर बैठने के तुरंत बाद एक घटना घटी जो राज्य के लिए घातक थी। चढ़त सिंह के कार्यकाल में बसोली का एक आदमी नारायण शाह चंबा में लकड़ी का व्यापारी था। लक्कड़शाह नाम से जाने जाने वाले इस आदमी के संबंध जाला पंडित से बहुत अच्छे थे। जाला पंडित जम्मू के राजा ध्यान सिंह के पुत्र हीरा सिंह को अच्छी तरह जानता था। जाला पंडित लाहौर दरबार में था और उसका वहां बड़ा प्रभाव था। इस संपर्क के कारण चढ़त सिंह की मृत्यु के बाद नारायण शाह राजकाज के कामों में हस्तक्षेप करने लगा। उसने अपनी एक मुद्रा चला दी जिसे लक्कड़शाही कहते थे। दरबारियों ने रानी से मिलकर उसे हटाना चाहा। अंततः उसे पकड़ा और साहू घाटी ले जाकर मार दिया। भागा वजीर और अन्य दो लोग हीरा सिंह को समझाने-बुझाने गए क्योंकि उन्हें इस काम के परिणाम ज्ञात थे। लाहौर में जाला पंडित ने इन्हें बंदी बनवा दिया और सिख सेना को चंबा पर हमला करने के लिए भेज दिया। सिख सेना नूरपुर होती हुई आई। चंबा की सेना तारागढ़ में थी। चंबा की सेना ने सिख सेना को जाजरी में रोके रखा किंतु गणेशगढ़ पर सिखों ने अधिकार कर लिया। इसी समय खबर मिली कि जाला पंडित को किसी सैनिक ने 21 दिसंबर, 1844 को मार दिया। अतः सिख सेना लौट आई। लाहौर में वजीर भागा तथा साथियों को भी छोड़ दिया गया। सिखों के आक्रमण के समय रानी श्री सिंह को लेकर रावी घाटी में बासु में चली गई थी जो शांति होने पर लौट आई।

महाराजा रणजीत सिंह के बाद सिख साम्राज्य अव्यवस्था का शिकार हो गया। सन् 1845 में प्रथम सिख-अंग्रेज युद्ध हुआ जिसमें सिखों की हार हुई। युद्ध के बाद संधि के फलस्वरूप मैदानों में जालंधर दोआब तथा पहाड़ों में सतलुज तथा व्यास के मध्य का इलाका अंग्रेजों को मिला। लड़ाई के हर्जाने के रूप में सिखों को डेढ़ करोड़

रुपए देना पड़ा। सिखों के लिए इतनी राशि देनी संभव न थी। अतः 9 मार्च, 1846 की संधि के अनुसार व्यास तथा सिंध के बीच का सारा भाग एक करोड़ में अंग्रेजों को दिया गया और पचास लाख नकद देना तय किया गया। एक अन्य संधि 16 मार्च को हुई जिसके अनुसार अंग्रेजों ने एक करोड़ रुपए के बदले रावी और सिंध नदियों के बीच का भाग जम्मू के गुलाब सिंह को दे दिया। इस क्षेत्र में चंबा भी था और रावी नदी की सीमा तय हुई। चंबा इस समय सिखों के अधीन था। वे गुलाब सिंह के अधीन रहने को रजामंद नहीं थे। चंबा ने भद्रवाह पर भी अपना अधिकार जताया। अतः रावी के दोनों ओर चंबा राज्य का प्रश्न था कि क्या चंबा का सारा राज्य अंग्रेजों को दिया जाए या मात्र रावी के पश्चिम का भाग। अतः भागा वजीर लाहौर गया और हेनरी लॉरेंस से मिला। सहमति के अनुसार गुलाब सिंह को रावी के इस ओर के क्षेत्र के बदले लखनपुर मिला और चंबा द्वारा भद्रवाह पर अधिकार छोड़ जम्मू को दिया।

ब्रिटिश शासन ने चंबा को 12,000 रुपए वार्षिक कर नियत किया। 6 अप्रैल, 1848 को श्री सिंह को एक सनद दी गई जिसके अनुसार उसे चंबा राज्य प्रदान किया। शर्त यह रखी कि अपना पुत्र न होने पर उत्तराधिकार जीवित बड़े भाई को जाएगा। 11 मार्च, 1862 की सनद में राजा को अपना पुत्र न होने पर गोद लेने का अधिकार भी दिया गया।

सन् 1851 में चंबा के ऊंचे और रमणीक क्षेत्रों में छावनियां, निवास आदि बनाने का विचार हुआ। बातचीत के बाद लॉर्ड नेपियर ने धौलाधार के पश्चिम में सेनेटोरियम बनाने का प्रस्ताव रखा गया। जलवायु आदि की जरूरतों को देखने के बाद सन् 1853 में कटलघ, बखरोटा, भंगोर आदि स्थानों को ले लिया गया जिसके बदले वार्षिक कर में 2000 रुपए की कमी की गई। सर डोनाल्ड मेकलोड की संस्तुति पर नए सेनेटोरियम का नाम 'डलहौजी' रखा गया। सन् 1866 में बलून का क्षेत्र यूरोपीय सेना में लिए और बकलोह गोरखा सेना के लिए लिया गया। इन क्षेत्रों के एवज में वार्षिक कर में 5000 रुपए की कमी की गई। कुछ और जमीन ब्रिटिश सरकार द्वारा लेने पर कर और कम हुआ और अंत में 2008 रुपए किया गया।

सन् 1857 की क्रांति के समय श्री सिंह अंग्रेजों का वफादार बना रहा। उसने अपने सैनिक मियां औतार सिंह के नेतृत्व में भेजकर सहायता भी की। सीमावर्ती क्षेत्रों में सैनिक तैनात किए ताकि विद्रोही चंबा न आ सकें।

श्री सिंह पांच वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा था और उसी समय से राज्य में अव्यवस्था फैल गई थी। उसका विवाह सुकेत की राजकुमारी से हुआ था अतः सुकेत के लोग भी राजकाज में प्रभावी थे। चंबा के कर्मचारी इस बात से नाराज थे। राज्य की आय भी घटती जा रही थी। ऋण बढ़ता गया। अतः सन् 1862 में राजा

ने पंजाब सरकार के एक अंग्रेज अधिकारी की सेवाएं मांगीं जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने मेजर ब्लेयर रीड को सुपरिंटेंडेंट नियुक्त किया। मेजर ब्लेयर रीड प्रथम जनवरी, 1863 को चंबा पहुंचा।

मेजर रीड ने चंबा में महत्त्वपूर्ण सुधार कार्य आरंभ किए। उसने सभी नाकारा नौकरों और कर्मचारियों को निकाल दिया। पूर्बिए और पठान सैनिकों के रुके हुए भत्ते अदा किए। ऋण चुकाए और राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारी। तारागढ़, गणेश गढ़ और पृथ्वीजोर के किलों के सिपाहियों को हटाकर प्रबंध स्थानीय अधिकारियों को दिया गया। रीड ने राज्य के आंतरिक स्रोतों की ओर ध्यान दिया। राज्य के भीतरी भागों में सड़कें नहीं थीं अतः एक यूरोपीय अधिकारी के अधीन लोक निर्माण विभाग स्थापित किया। दुर्गम क्षेत्रों में सड़कें बनाईं। चंबा और खजियार में डाकबंगले बनाए। सन् 1870-71 में राजा के लिए महल बनवाया।

सन् 1863 में चंबा में एक डाकघर खोला गया जिससे चंबा तथा डलहौजी के बीच रोज डाक आती-जाती थी। शिक्षा के लिए इसी वर्ष एक प्राइमरी स्कूल खोला गया जो बाद में हाई स्कूल बना। वन संपदा के दोहन के लिए सन् 1864 में राजा से 99 वर्ष के लिए पट्टे पर वनों को लेने का अनुरोध किया गया जिसके फलस्वरूप सितंबर, 1864 में चंबा के वन पट्टे पर लिए गए। पट्टे की शर्त यह भी थी कि बीस वर्ष बाद लीज पर दोबारा विचार हो सकेगा। इस प्रकार वनों से 22,000 वार्षिक आय होने लगी।

सितंबर, 1866 में एक अस्पताल खोला गया जिसमें अंग्रेज डॉक्टर लगाया गया। कई कर, जैसे विदाह तथा व्यापार पर थे, समाप्त किए गए। कृषि योग्य भूमि बढ़ाकर राज्य की आय बढ़ाई। जनवरी, 1865 में मेजर रीड बाहर गया अतः कैप्टन फोवर्स आया। इसके बाद जून, 1866 में ले. ई.सी. वेस आया और दिसंबर, 1866 में मेजर रीड पुनः वापस आया।

राज्य की स्थिति सुधारने से सन् 1870 में राजस्व 1,73,000 हो गया।

राजा श्री सिंह की बीमारी के बाद 27 सितंबर, 1870 में मृत्यु हो गई। श्री सिंह ने 27 वर्ष राज किया और बत्तीस वर्ष की अल्पायु में मृत्यु हो गई।

श्री सिंह यद्यपि अधिक पढ़ा-लिखा नहीं था तथापि बुद्धिमान शासक था। वह उदार भी था। लोगों में प्रिय था। अल्पायु में मृत्यु के कारण उसका बहुत शोक मनाया गया। उसका एकमात्र पुत्र बचपन में ही चल बसा। एकमात्र पुत्री का विवाह महाराजा जम्मू से हुआ था। श्री सिंह के बीमार होने का गीत आज भी गाया जाता है। 'श्री सिंध कसरी (बीमार) सुणादे हो‥‥।'

गोपाल सिंह (1870)

श्री सिंह की मृत्यु के बाद दो भाइयों से छोटे मियां सुचेत सिंह ने गद्दी पर अपना अधिकार जताया किंतु सन् 1848 की सनद के प्रावधानों के अनुसार बड़े भाई मियां गोपाल सिंह को सही उत्तराधिकारी घोषित किया गया। राजा के उत्तराधिकारी के आदेश 25 अक्तूबर, 1870 को कर्नल ब्लेयर रीड ने खुले दरबार में सुनाए। गोपाल सिंह श्री सिंह का सौतेला भाई था।

मियां सुचेत सिंह राजा बनने का अधिकार जताता रहा। उसकी मृत्यु अगस्त, 1896 में लंदन में हुई।

इस राजा के समय भी कर्नल रीड सुपरिंटेंडेंट रहा। इस समय कुछ नई सड़कें बनाई गईं। चंबा नगर का सौंदर्यकरण किया गया। सन् 1871 में स्कूल को प्राइमरी से मिडिल किया गया और एक यूरोपियन हेडमास्टर नियुक्त किया गया। अस्पताल में ज्यादा संख्या में मरीज आने लगे।

13 नवंबर, 1871 को लॉर्ड मेयो द्वारा चंबा यात्रा की गई। 5 जनवरी, 1872 को कर्नल रीड छुट्टी चला गया और कर्नल जी.ए. मेकएंड्रयू सुपरिंटेंडेंट बना। इसके समय प्रशासन में और परिवर्तन हुए। राजा गोपाल सिंह अपनी तबीयत का आदमी था। सन् 1873 के बसंत में राजा ने अपने को शासन चलाने में अक्षम पाते हुए अप्रैल, 1873 में अपने पुत्र टिक्का शाम सिंह (जो सात वर्ष का था) के पक्ष में गद्दी छोड़ दी। राजा को मंजीर में जागीर तथा भत्ता दिया गया। वहीं मार्च, 1895 में उसकी मृत्यु हो गई। राजा के तीन पुत्र हुए—शाम सिंह, भूरि सिंह और प्रताप सिंह। शाम सिंह का जन्म 8 जुलाई, 1866 को और भूरि सिंह का 18 दिसंबर, 1869 को हुआ।

शाम सिंह (1873)

सात वर्षीय शाम सिंह को 7 अक्तूबर, 1873 को जनरल रेनैल टेलर अमृतसर के कमिश्नर द्वारा राजा बनाया गया। मियां औतार सिंह वजीर बना। अगली जनवरी में कर्नल रीड छुट्टी से वापस आ गया और राज्य का काम संभाल लिया। राजा क्योंकि अवयस्क था अतः सारी शक्तियां वजीर और सुपरिंटेंडेंट में केंद्रित हो गईं। राजा की शिक्षा की व्यवस्था के लिए युवा राजा तथा मियां साहिब को एक योग्य अध्यापक के सुपुर्द किया गया।

अप्रैल, 1874 में लेफ्टिनेंट गवर्नर पंजाब सर हेनरी डेविस चंबा आया। मार्च, 1875 में राजा इम्पीरियल दरबार, लाहौर में उपस्थित हुआ और सन् 1876 में प्रिंस ऑफ वेल्स से लाहौर में मिलने वालों में यह राजा सबसे कम आयु का था। प्रथम जनवरी, 1877 को उसने शाही घोषणा के समय दिल्ली दरबार में भी भाग लिया।

इस बीच राज्य में सुधार के काम जारी रहे। राजस्व अब 2,00,000 रुपए तक बढ़ गया। सन् 1876 में कर्नल रीड ने भू-राजस्व बंदोबस्त आरंभ किया। 5 मार्च, 1877 को कर्नल रीड रिटायर हो गया। रीड ने चंबा में उल्लेखनीय सुधार कार्य किए। कर्नल रीड के बाद मि. आर.टी. बर्ने सी.एस. आया। इसने भरमौर तक लगभग बीस मील लंबी सड़क बनाई कि वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण परियोजना छोड़नी पड़ी। चंबा से चौरी तथा खजियार तक भी सड़क निर्माण कार्य किया गया।

सन् 1878 में मियां औतार सिंह वजीर के पद से रिटायर हो गया। इसी वर्ष शिक्षा विभाग पंजाब से मि. जॉन हार्वे को राजा का शिक्षक नियुक्त किया गया। हार्वे की पदोन्नति पर मि. जी.डब्ल्यू. ब्लैथवायत की नियुक्ति हुई। राजा ने शिक्षा में अच्छी रुचि दिखाई और खेलों की ओर भी ध्यान दिया।

7 अक्तूबर, 1879 को मि. बर्ने की जगह कैप्टन सी.एच.टी. मार्शल आया जो नवंबर, 1885 तक रहा। इसके कार्यकाल में सड़कों का सुधार किया गया। महल में नया दरबार हॉल बनाया गया। सन् 1880 में हॉप की खेती आरंभ की गई जो 1896 तक होती रही किंतु बाद में इसे बंद करना पड़ा क्योंकि सुखाने की समस्या आई। पांगी घाटी हॉप्स के लिए चुनी गई।

सन् 1881 में तीसा में एक डिस्पेंसरी की शाखा खोली गई।

फरवरी 1883 में राजा का विवाह महाराजा जम्मू-कश्मीर की पोती के साथ तथा राजा सिरमौर की चचेरी बहन के साथ हुआ।

नवंबर, 1883 में ले. गवर्नर पंजाब सर चार्ल्स एक्टिसन चंबा आया। मई, 1884 में बीस वर्ष की लीज के बाद वनों को पुनः सरकार द्वारा लिया गया और सरकार ने वनों की आय का दो-तिहाई राज्य को देना तय किया। अब कुल राजस्व 2,50,000 रुपए तक पहुंच गया।

जुलाई, 1884 में आयु पूरी होने पर अक्तूबर में लाहौर के कमिश्नर कर्नल सी.ए. मकमोहन द्वारा राजा को पूरी शक्तियां प्रदान कर दी गईं। दीवान गोबिंद चंद को वजीर बनाया गया। 3 नवंबर, 1885 को सुपरिंटेंडेंट हटाया गया और प्रशासन का पूरा कार्य राजा को दिया गया। राजा ने उत्साह से कार्य संभाला और सभी विभाग अपने पास रखे।

जनवरी, 1887 में डाक कार्य इम्पीरियल पोस्टल सिस्टम के अंतर्गत आ गया। अतः चंबा के अतिरिक्त भरमौर, लिल, सिहुंता, बाथरी, तीसा, भांदल, पांगी में 34 डाकघर खोले गए। विधि विभाग को ब्रिटिश व्यवस्था के अनुसार बनाया गया। अपील की शक्ति वजीर तथा अंत में राजा के पास रखी गई। पुलिस विभाग में कोतवाल सहित सौ सिपाही तैनात किए गए। लोक निर्माण विभाग का पुनर्गठन

किया गया। कर्नल रीड द्वारा 1875 में बनवाया अस्पताल गिराकर 1891 में 'शाम सिंह अस्पताल' बनाया गया जिसमें चालीस रोगी आ सकते थे। एक सेना भी बनाई गई जिसमें 300 पैदल, 30 घुड़सवार तथा 4 तोपें शामिल थीं। कोर्ट हाउस, डाकघर, कोतवाली जेल के भवन बनवाए गए। महल का जीर्णोद्धार किया गया। सन् 1894 में रावी का सस्पेंशन पुल क्षतिग्रस्त हो गया था। इसे आगामी वर्ष में लगभग एक लाख रुपए की लागत से पुनः बनाया गया।

सन् 1895 में भटियात वजारत में विद्रोह हुआ। लोगों की शिकायतों की जांच के बाद शरारती तत्त्वों को बंदी बनाकर सजा दी गई।

जनवरी, 1898 में वजीर गोबिंद चंद रिटायर हो गया और राजा के भाई मियां भूरि सिंह को वजीर बनाया गया। दोनों भाइयों की बचपन से ही बहुत बनती थी और भूरि सिंह प्रशासन से भी वाकिफ था अतः इस नियुक्ति का राज्य में स्वागत हुआ। सन् 1897-98 में उत्तर-पश्चिम फ्रंटियर में गड़बड़ के समय राज्य की ओर से सेना के लिए खाद्यान्न दिया गया। यद्यपि यह सहायता नहीं ली गई तथापि ब्रिटिश सरकार द्वारा इसकी सराहना की गई।

सितंबर, 1900 में वायसराय तथा लेडी कर्जन ने चंबा में एक सप्ताह बिताया। नवंबर 1901 में पंजाब के ले. गवर्नर सर मेकवर्थ यंग चंबा आया। अब चंबा का राजस्व चार लाख रुपए हो गया था।

सितंबर, 1902 में राजा रोगग्रस्त हो गया। राजा को इस समय दिल्ली दरबार में बुलाया गया था। राजा के ठीक होने पर भी वह सरकार का कामकाज करने में अपने को असमर्थ पा रहा था। उसने अपने भाई भूरि सिंह के पक्ष में राज्य छोड़ना चाहा।

भूरि सिंह (1904)

शाम सिंह द्वारा राज्य छोड़ने की बात सरकार द्वारा कुछ समय बाद मान ली गई और लाहौर के कमिश्नर मि. ए. एंडर्सन ने खुले दरबार में 22 जनवरी, 1904 को भूरि सिंह को राजा घोषित किया। मियां भूरि सिंह को राजा के साथ सात वर्ष कार्य करने का प्रशासनिक अनुभव था। भूरि सिंह सुसंस्कृत, न्यायप्रिय और कुशल प्रशासक था।

राजा ने गद्दी संभालते ही सड़कों को चौड़ा करने का कार्य आरंभ किया, आरामगृह बनाने आरंभ किए।

राजा शाम सिंह भी चंबा ही रहता था और उसे भत्ता दिया जाता था। वह बीमारी से छूट नहीं पाया फिर भी ठीक था। किंतु 10 जून, 1905 को 39 वर्ष की आयु

में उसकी अचानक मृत्यु हो गई।

प्रथम जनवरी, 1906 को भूरि सिंह को बादशाह द्वारा नाइटहुड प्रदान की गई। सन् 1906 में ही दो आवासगृह बनाए गए, चंबा क्लब, रीडिंगरूम तथा पुस्तकालय भी स्थापित किया गया। सन् 1907 में राजा आगरा के वायसराय दरबार में अफगानिस्तान के अमीर से भेंट करने के लिए उपस्थित हुआ।

सन् 1908 में वनों की लीज पर तीसरी बार बात हुई और अब वनों का प्रबंध राज्य ने अपने हाथ में ले लिया। सन् 1910 में 2,47,000 रुपए की लागत से जल आपूर्ति तथा नगर में बिजली का कार्य पूरा किया गया।

सन् 1914 में महायुद्ध में भूरि सिंह ने स्वयं को प्रस्तुत कियां और 'मोस्ट एमिनेंट ऑडर' की नाइटहुड मिली। राज्य का राजस्व अब सात लाख हो गया।

18 सितंबर, 1919 में दरबार के समय भूरि सिंह को दिमागी हेमरेज हुआ और चार दिनों के भीतर राजा की मृत्यु हो गई।

भूरि सिंह के दो पुत्र तथा दो पुत्रियां थीं। बड़ी पुत्री का विवाह कुटलैहड़ के टिक्का बृजमोहन से हुआ और छोटी का कश्मीर के राजा हरि सिंह से।

राजा राम सिंह (1919)

पंजाब के गवर्नर सर एडवर्ड मेकलेगन ने मार्च, 1920 में राम सिंह को पूरी शक्तियां प्रदान करते हुए राजा बनाया। राय बहादुर लाला माधो राम को प्राइवेट सेक्रेटरी तथा बाद में मुख्य सचिव बनाया गया। कुछ समय बाद राजा के भाई मियां केसरी सिंह को वजीर बनाया गया।

राजा की शिक्षा मि. ई.एम. एक्सिन द्वारा हुई तथा चीफ्ज कॉलेज, लाहौल के बाद देहरादून में मिलिट्री ट्रेनिंग ली गई। राजा के गद्दी पर बैठने के समय सभी विभाग सुव्यवस्थित थे अतः कोई कठिनाई नहीं आई।

प्रथम नवंबर, 1921 को राज्य सीधा भारत सरकार (ब्रिटिश) के अधीन आ गया। 8 दिसंबर, 1921 को टिक्का लक्ष्मण सिंह का जन्म हुआ।

इस राजा के समय चंबा से नूरपुर सड़क, चक्की में सस्पेंशन पुल, चंबा से भरमौर सड़क, जो बीस वर्ष पहले आरंभ की गई थी, खणी तक ले जाई गई। डाक सेवाओं को और बढ़ाया गया। नगर में जल आपूर्ति तथा बिजली लगाने पर 76,000 रुपए और व्यय किए गए। राज्य का राजस्व अब नौ लाख रुपए तक हो गया।

रियासत चंबा (कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची)

- राजा उगर सिंह (मृत्यु 1735)
  - राजा उमेद सिंह (मृत्यु 1764)
    - राजा राज सिंह (मृत्यु 1794)
      - राजा जीत सिंह (मृत्यु 1808)
        - राजा चढ़त सिंह (मृत्यु 1846)
          - राजा श्री सिंह (मृत्यु 1870)
          - राजा गोपाल सिंह (1873 में रियासत छोड़ी)
            - राजा शाम सिंह (जन्म 1866)
            - मियां भूरि सिंह (जन्म 1869)
          - मियां सुचेत सिंह (जन्म 1847)
        - मियां जोरावर सिंह
          - पराक्रम सिंह (मृत्यु 1888)
            - सोहन सिंह (मृत्यु 1888)
              - करतार सिंह (जन्म 1882)
              - अमर सिंह (जन्म 1885)
            - ध्यान सिंह (जन्म 1869)
  - शेर सिंह

नोट—चम्बा की वर्तमान रानी आशा कुमारी 1985, 1993, 1998, 2003 तथा 2012 में कांग्रेस से विधायक। प्राथमिक शिक्षा राज्यमंत्री (2003-05) रहीं।

वंशावली

मूलपाठ

ओं श्रीगुरवे नमः

विश्वं सृष्ट्व पालयेत्संह्यतं कल्पान्ते मायाया गुणैर्यः प्रणम्य।
तं लाभायेष्टस्य नारायणं संदीता कंठे सूर्यवंशावलीयम्।।1।।

प्रथम भाग

स्वयंभूर्नाभिकमलादासीन्नारायणस्य तु।
मरीचिर्मनसस्तस्य तस्माज्जातस्तु कश्यपः।।2।।
प्रजापतिरतोऽदित्यां विवस्वान्मनुरात्मजः।
विवस्वतः श्राद्धदेवः क्षुवतो घ्राणतो मनोः।।3।।
पुत्र इक्ष्वाकुरभवद्विकुक्षिस्तस्य चात्मजः।
विकुक्षेरभवत्पुत्रः पुरञ्जय इति श्रुतः।।4।।
इंद्रवाहककुत्स्थाभ्यां पर्यायाभ्यामपीरितः।
तस्मादनेनास्ततपुत्रः पृथुः पुत्रः पृथोरपि।।5।।
विश्वगंधिस्ततश्चंद्रो युवनाश्वस्तु चंद्रजः।
शाबस्तस्तत्सुतस्तस्य वृहदश्वोऽस्य कीर्तितः।।6।।
धुंधमारेतिपर्यायः पुत्रः कुवलयाश्वकः।
दृढाश्वंस्तस्य हर्यश्रवो निकुम्भोऽस्व सुतो मतः।।7।।
बर्हिणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽस्य च सेनजित्।
युवनाश्वोऽस्य तनयो मांधाता कुक्षिभेदनात्।।8।।
जातः सम्राटत्रसद्दस्यु पर्यायस्तस्य चात्मजः।
पुरुकुत्सस्तस्य पुत्रसम्रसद्दस्युरितोऽभवत्।।9।।
अनरण्यसतत्सुतोऽभूद्धर्यश्वस्त्वरुणस्ततः।
निबंधन स्ततस्तस्य सत्यव्रतस्त्रिशङ्कुः।।10।।

त्रैशङ्कवो हरिश्चंद्रस्तस्माद्वरुणयज्ञजः।
जातो रोहितभूपालो हरितस्तस्य चात्मजः।।11।।
चम्पस्तस्यात्मजश्चम्पापुरी येन विनिर्मिता।
सुदेवस्तत्सुतस्तस्य विजयस्तस्य चात्मजः।।12।।
भरुक स्तत्सुतः प्रोक्तो वृकस्तस्यापि बाहुकः।
सगरस्तत्सुतश्चक्रवर्त्यासीदसमञ्जसः।।13।।
सागरोऽस्यांशुमानस्य दिलीपोऽस्य भगीरथः।
भगीरथाच्छुतस्तस्य नाभः सिंधुद्वीपस्ततः।।14।।
तस्यायुतायुरस्यापि ऋतुपर्णोऽस्य कीर्तितः।
सर्वकामः सुदासोऽस्य स च सर्वसहस्तथा।।15।।
कल्माषपादपर्यायः सौदासस्याश्मकः स्मृतः।
तत्सुतो मूलको नाम नारीभिः परिरक्षितः।।16।।
नारीकवच इत्युक्तो मूलकः क्षत्रवंशकृत्।
आंसीद्दशरथो मूलकस्य पुत्रस्तदाश्मकेः।।17।।
तस्मादैडविड स्तस्माज्जातो विश्वसहस्ततः।
खट्वाङ्गश्चक्रवर्ती यो मुहूर्तेनात्मतां गतः।।18।।
खटवाङ्गद्दीर्घबाहुस्तु तस्माद्रघू रघोरजः।
तस्माद्दशरथो राजा यतः प्राहुरभूद्धरि।।19।।
रामचंद्रादिरूपेण चतुर्व्यूहावतारवान्।
तस्यात्मजः कुशस्तस्यातिथिर्निषध आतिथिः।।20।।
नैषधस्तु नलो राजा पुंडरीकस्तदात्मजः।
क्षेमधन्वा तस्य सूनुर्देवानीकस्ततः पुनः।।21।।
पारियात्री बलस्तस्माद्बलात्स्थल इतीरितः।
अस्मादर्कांशुसम्भूतो वज्रनाभी महापतिः।।22।।
स्वगुणोऽस्माच्च विधृतिस्तस्माद्राजर्षिसत्तमः।
हिरण्यनाभः शिष्यो यो जैमिनेरभवत्पुरा।।23।।
योगाचार्यो यतो याज्ञवल्क्योऽगात्कौशलो मुनिः।
भेदकं हृद्‌यग्रंथेर्ज्ञानमध्यात्मसंज्ञितम्।।24।।
महा योगोदयकरं यस्यासोत्पुष्यसंज्ञितः।
पुत्रोऽस्माद्ध्रुवसन्धिर्यस्याग्निवर्णः सुतो नृपः।।25।।
शीघ्रस्तस्माद् मरुयोग्गसिद्धो राजाभवत्पुरा।
नष्टस्य सूर्यवंशस्य पुनर्भावयिता कलौ।।26।।

कलापग्राममाश्रित्य तस्य प्रसुश्रुतः सुतः।
संधिस्तस्यामर्षणोऽस्य सहस्वां स्तत्सुतो मतः।।27।।
विश्वसाह्व स्तस्य सुतो यस्य पुत्रो वृहद्वलः।
हतोऽभिमन्युना युद्धे भारते च बृहद्रणे।।28।।
सुतस्तूरुक्रिय स्तस्य वत्सवृद्धोऽस्य सत्सुतः।
प्रतिव्योम स्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः।।29।।
सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान्।
प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकश्च तत्सुतः।।30।।
तस्माच्च मरुदेवाऽस्य सुनक्षत्रोऽस्य पुष्कर।
अंतरिक्षस्ततो राजा सुतपास्तदमित्रजित्।।31।।
बृहभद्भानुस्तस्य तस्माद्वर्हिस्तस्य कृतञ्जयः।
रणञ्जयस्तस्य सुतः सञ्जयस्तस्य चात्मजः।।32।।
तस्माच्छाक्योऽस्य शुद्धोदो लाङ्गल स्तत्सुतो मतः।
ततः प्रसेनकस्तस्मात्क्षुद्रको रणकोऽस्य तु।।33।।
तस्य सूनुस्तु सुरथः सुमित्रस्तस्य चात्मजः।
सुमित्रस्त्वनपतयोऽत्र नष्टप्रायेऽन्वये रवेः।।34।।

द्वितीय भाग

गतेषु बहुवर्षेषु योगसिद्धो मरुन्नृपः।
राजकन्यां विवाह्यास्यां जनयामास सत्सुतान्।।35।।
तेषामेकं कलापे स्थाप्यापराभ्यां स्ववृद्धये।
निष्क्रम्य दम्पतिभ्यां तत्रैक संस्थाप्य रोधसि।।36।।
हिमाद्रेर्ज्येष्ठपुत्रेण यः कश्मीरमवाप्य सः।
तत्र वर्मपुरं नाम कृत्वा पुत्रस्य वृद्धये।।37।।
जयस्तम्भस्य तं तत्राभिषिच्य स्वयमास्थितः।
तपस्यभिरतो योगाचार्यः संगम (?) एव हि।।38।।
जयस्तम्भात्मजस्त्वासीज्जलस्तम्भोऽस्य चात्मजः।
महास्तम्भोऽस्यादिवर्मा देववर्मा च तत्सुतः।।39।।
मंदारस्तत्सुतस्य कांतारोऽस्य प्रगल्भकः।
प्रगल्भस्यात्मजस्त्वाज्यवर्मा वर्मपुरे यदा।।40।।
तदा गतः स योगाचार्यः कृत्वा दुष्करं तपः।
इरावतीवुधसरित्सङ्गमे शिवप्रीतये।।41।।

तदा लिङ्गान्यसंख्यानि प्रादुरासंस्थले स्थले।
राजापि स्वसुतं राजगुणै सर्वैरलङ्कृतम्।।42।।
दृष्ट्वा धुरंधरं तस्मिन्योगाचार्य मते स्थितः।
अभिषिच्य सुतं मेरुवर्माणं राज्यसिद्धये।।43।।
योगमास्थाय तत्रैव क्षेत्रेऽगाच्छिवसन्निधौ।
मेरुवर्मा जयसतम्भाद्दशमोऽभूत्स्थिरतः पुरि।।44।।
योगाचार्यस्य स्वतां (?) सुमेरोरिव चादधात्।
देवदेवस्य स्थितये मूर्ति नरहरेरपि।।45।।
प्रतिष्ठाप्य स्वगुरुण काश्मीरेण महात्मना।
सूर्यांश चात्मना भद्रकालीं तत्र गणाधिपम्।।46।।
संस्थाप्य वृषभस्याधस्त्वलिखद्राजशासनम्।
सुवर्णवर्मा तत्सूनुर्लक्ष्मीवर्मा तदात्मजः।।47।।
तस्य राज्ये निपतिता मारी लोका रुजा हताः।
तदैव कीरैरागत्य राजा रणमुखे हतः।।48।।
राज्ञो गर्भवती नीता मंत्रिभिः सुपरोहितैः।
देवलायां बहिर्भूमौ गच्छन्ती सुषुवे सुतम्।।49।।
कंदरायां तु तं त्यक्तवा गंतुमेव समुद्यता।
पुरोधसोकता दृष्ट्वा तां कथं पुत्रि त्वमीदृशी।।50।।
प्रसूतासि कदास्माकं स्वामी कुत्र निवेशितः।
तिष्ठत्यन्तर्गतोऽ सावेवं श्रुत्वैव पुरोहितः।।51।।
गृहीत्वा दर्शयामास मंत्रिणं तं न संसदि।
ततस्तां परभौगैकदेशे नीत्वा स्थिता बहून्।।52।।
वत्सरांस्तद्गुरोर्गेहे सबाला कंडनाय हि।
धान्यानां सा गता धूल्यां सङ्गतौ चरणौ गुरुः।।53।।
बालस्य दृष्ट्वा चिह्नैस्तां पप्रच्छ नृपतेर्गुरु।
के भवंतः कुतः प्राप्ताः किमर्थमिति पृच्छते।।54।।
नोवाच राज्ञो पुरुषानपृष्ट्वा ज्ञात्वा च तत्कुलम्।
राजलक्षणसंयुक्तं बालं बुद्धा महात्मनः।।55।।
नीत्वा सुखेतनगरं स्वराज्ञो तं निवेद्य तु।
राज्ञीं तपस्विनीं ज्ञात्वा यथायोगं तु सत्क्रियाम्।।56।।
स्थानेन मानदानाभयां चकारादृत्य प्रत्यहम्।
राजा मूषणवर्मासौ यदा यौवनमास्थितः।।57।।

तदा प्रभोगराजासौ तस्मै दुहितरं निजाम्।
दत्त्वा विधिवदस्मै पाङ्गीतिग्रामं महद्धनम्।।58।।
सेनां च महती सार्धं नृपेण नृपतिर्ददौ।
नामना मूषणवर्मासावागत्यैवाशु कीरकान्।।59।।
हत्वा समस्तांस्स्वे राज्ये निषसाद महीपतिः।
माताप्याकारिता राज्ञा ततस्तेनापि प्रेषिता।।60।।
सस्नुषा भूमिपालेन शुल्कदानादिसत्कृता।।
पत्न्या प्रसादितस्यासीत्पुत्रो मूषणवर्मणः।।61।।
सस्ततः सारवर्मा ततः सेनाभिधो मतः।
सैन्यवर्मसुतो राजा सुजन स्तस्य चात्मजः।।62।।
राजा संहिलवर्मासावुग्रे तपसि संस्थितः।
पत्न्यैव धर्मचारिण्योत्सङ्गे हिमगिरेः कृती।।63।।
दक्षिणे योगसिद्धोऽभूत्सिद्धास्तत्र समागताः।
चतुरशीतिसंख्यास्ते वरदानार्थमस्य हि।।64।।
नैच्छन्नरपतिस्तत्र निर्विणस्तैरुदीरितम्।
राज्ञो मनीषितं प्रागेवाभवेयुः सुता मम।।65।।
बहवः सेवको राज्ञो स्वैव कोऽन्योऽस्य चाज्ञया।
प्रजार्थमभविष्यंस्तद्दत्तास्माभिः सुता दश।।66।।
युष्माभिरत्र स्थातव्यं ममात्रगमनावधि।
राज्ञोदितमिदं श्रुत्वैवैवमस्तित्वति ते पुनः।67।।
प्रत्यश्रृण्वन् नृपेणैव योगी चर्पटिरागतः।
युगाकार प्रभृतिभिर्दशभिः सत्सुतैर्नृपः।।68।।
विजित्य क्षत्रियान्युद्धे पुरीं चम्पां चकार ह।
पुरैव चम्केनालङ्कृतां देव्याभिरक्षिताम्।।69।।
चम्पावत्यैव महिषादीन्हत्वेरावतीतटे।
लिङ्गभेदा स्त्विहाप्यासन् शालिकासङ्गमे तथा।।70।।
कुनालसङ्गमे चात्र सरस्वत्या च शालिका।
सङ्गमे तान्समानीय चर्पटेः संसतौ स्थितः।।71।।
गुप्तचंद्रेश्वरौ कूर्मेश्वरश्चेत्यादि नामभिः।
स्थापयामास नृपतिः साहिलाख्यो जितेन्द्रियः।।72।।
चर्पटस्थानमप्यन्ते कारयित्वा सुतान्नव।
प्रेषयामास विंध्यादानीयतां महती शिला।।73।।

गत्वा तैर्महती शुभ्रा शिलानीतात्लैव हि।
गुरुणोक्तं शिलां नेयं लक्ष्मीनारायणोचिता।।74।।
अस्या उदर एकोऽस्ति भेको राज्ञा निरीक्षणे।
कृते जाते तथान्यास्तु प्रतिमाः शङ्करस्य च।।75।।
देव्या गणपतेश्चाप्येकत्र देवालये तु ताः।
स्थापिताः स्वसुता राज्ञा पुनरेव तु प्रेषिताः।।76।।
भावित्वादेवमेवार्थस्यानीयान्यां शिलां पथि।
स्थितास्तदा रणे भूयोभिताईदस्युभिः सुताः।।77।।
श्रुत्वा नृपेण तान्हंतुं युगाकारो धनुर्धरः।
प्रेषितोऽसौ मुकुटकोटादारभ्याहनद्रिपून्।।78।।
यावद्धिमगिरेः पक्षातां न देशोस्ततः परम्।
सद्रत्युक्तवा विरम्यागाच्छिलामादाय स्तवरः।।79।।
कारयित्वा कृतिं लक्ष्मीपतेः संस्थाप्य चादरात्।
संस्थाप्य च युगाकारं चम्पापुर्यां नृपोऽप्यगात्।।80।।
सह चर्पटिना राजा तथैव तपसि स्थितः।
चतुर्भिरधिकाश्चासन्न शीतिः सिद्धमूर्तयः।।81।।
सरस्वत्यद्रवाऽ घापि राजापि शममाप्तवान्।
युगाकारात्मजो दोग्धो विदग्धस्तस्य चात्मजः।।82।।
विचित्रवर्मा तस्यासीद्धैर्यवर्मा च तत्सुतः।
असटस्तस्य पुत्रोऽस्य पुत्रौ जसटढालिकी।।83।।
जसटस्यानपत्यत्वाड्ढालवर्मा नृपोऽभवत्।
अजितस्तस्य सूनुः स्यादस्य दैतयारिरात्मजः।।84।।
पृथ्वीवर्मा तु दैत्यारेरुदयः सूनुरस्य तु।
तस्यासी ललितः पुत्रो यस्यासीद्विजयो नृपः।।85।।
धावित्वा दक्षिणवठो काश्मीरकीरमुद्रलाः।
हता गृहीतो देशो येनानुनीताः सकृज्जनाः।।86।।
दत्तास्तु ब्राह्मणेभ्यो ग्रामाः कृत्वा राजशासनस्।
राणवाटादयो बीजभरणाद्याः स्वराप्तये।।87।।
ब्रह्मणो दानवीरोऽभूत्काश्मीरांश्चनयद्वशे।
राजवर्मा विजय्रवर्मणः पुत्रस्ततस्त्वमूत्।।88।।
सारवर्मा तस्य सूनुः कीर्तिवर्माप्यभून्नृपः।
अजितों मदनश्चेति द्वौ सुतौ कीर्तिवर्मन।।89।।

अजितश्चानपत्यौऽभून्मदनो नृपसत्तमः।
मुद्रा मदनवर्माभिधाना यस्यास्ति दक्षिणे।।90।।
नारीकुञ्जरशाद्रांगुर्ज्जरात्रे द्यापि या लिपि।
नागरी सूनुरय्यांशख्यो त्रीमूतस्तु तत्सुतः।।91।।
वैरिवर्मा सुतस्तस्य माणिक्यस्तस्य चात्मजः।
भोटवर्मा तस्य सूनुः सङ्ग्रामाख्यस्तदात्मजः।।92।।
आनंदवर्मा राजासीत्रिगर्ताधिपतेः सुताम्।
विवाह्य पाकशालायां भोजनाय समाश्रिते।।93।।
तस्मिंस्तु कौतुकार्थं तद्राज्ञोपकरणैः समम्।
चषकादींयत्र हस्ताग्राह्याण्यासादितानि हि।।94।।
तत्र तत्र प्रसार्यैव करमानंदवर्मणा।
सूपवोष्टेन (?) भुक्तवा पानीयपात्रे महत्यपि।।95।।
दूरस्थेऽपि प्रसार्यैं व बाहुं पीते जले नसोः।
जालाभ्यां (?) निःसृतौ सर्पौ लेलिहानौ विलोकितौ।।96।।
राज्ञा जनैः समं पादावभिवंद्य महीपतेः।
गंणेशवर्मा तत्सूनुस्तस्य पुत्रः प्रतापवान्।।97।।
प्रतापसिहं वर्मासीद्युधिष्ठिरसमः कलौ।
लक्ष्मीनारायणादीनां प्रसादारब्धकर्मणः।।98।।
तस्यार्थचिंता तीव्रसीत्कथं मे निर्वहेदिति।
मंत्रयत्यात्मसचिवाद्यैः प्रजापीडनं विना।।99।।
शयानस्यास्य शयने रात्रौ स्वप्ने श्रियः पतिः।
साक्षादिवं समागम्य सोऽवबोध्याह पार्थिवम्।।100।।
राजंश्चिंता न ते जातु सर्वं सम्पादितं मया।
श्रुत्वोत्थायाह राजासौ दंडवत्पतितो भुवि।।101।।
कथं न सम्भवेद्विश्वम्भरस्यार्तार्तिकृंतनम्।
द्वितीयेऽहनि होलाख्याग्रामादागत्य कर्षकाः।।102।।
ताम्रखंडानि सदसि न्यस्योचुः खनिसम्भवम्।
देवालया इमे सर्वे तेन सम्पादितास्तदा।।103।।
राज्यवृद्धिरभूद्युद्धे जितो नागरकोटिकः।
चंद्रेति नाम्ना राजासौ प्रपलायनतत्परः।।104।।
चटीदेशाद्धन्यमानबलो यावत्तु गोपुरम्।
हृतं धनं गाजाश्वादि सर्वं भूश्चि भूयसी।।105।।

सामंतनृपतीनां तेनाहतस्तस्य सोदरः।
जयत्सिंह इति ख्यातोऽभूद्गुणैर्नृपसंमतः।।106।।
प्रतापसिंहपुत्रोऽभूद्वीरभानुर्महीपतिः।
बलिभद्रस्सुतस्तस्य बलिगर्णो गुणैरभूत्।।107।।
बलिभद्र सुतस्त्वासीज्जनार्दन इति श्रुतः।
गुणैरनवमस्त्वासीदर्जुनात्सव्यसाचिनः।।108।।
धर्मे धनुषि शूरत्वे नये भक्तौ नृपस्य च।
द्वादशाब्दं युद्धमासीज्जयत्सिंहेन भूभृता।।109।।
यवनाधीशसचिवाग्रणिना तस्य तेन तु।
पलायिना जितेनापि बहुधा कपटात्मना।।110।।
वञ्चयित्वातः श्रूरेणापि भ्रात्रा समन्वितः।
विश्वम्भरेण जयिना देवादप्युनुतेजसा।।111।।
पित्रादेशात्सबलसिंहानुजेनापि सङ्गतः।
तदैव बलिभद्रस्य दग्धो देशा हृतं धनम्।।112।।
यवनाधीशयोगेन गृहीतं राज्यमेव तत्।
जनार्दनस्य पुत्रो भूत्पृथ्वीसिंहोऽपि बालकः।।113।।
देशान्निःसृत्य स गतो मंडीकोलाचलादिषु।
गतेषु बहुवर्षेषु प्राप्ते भेदे महत्यपि।।114।।
दैवेऽनुकूलतां प्राप्ते सामन्तैः संविधाय तु।
संधिं समागतः पृथ्वीसिंहः कोलाचलात्स्वयम्।।115।।
लङ्घयित्वा भूरिहिमं गिरिदेवानुकूलत्यात्।
स्वदेशस्थान्विधायापि कोटात्तस्यैव सैनिकान्।।116।।
पितृघ्णस्याहनद्युद्धे तत्र तत्राखिलान्कृती।
निःशेषयित्वा चम्पापुर्यां स्थितान्रिपुसैनिकान्।।117।।
गृहीत्वा नासिकाक्षित्वा त्यक्ताऽन्याहनत्प्रभुः।
देशागतांश्च हत्वान्यान्भूमिः शोणितपङ्किला।।118।।
कृत्वा निजाज्ञावशगं सङ्ग्रामं नाम भूमिपम्।
दत्त्वा भलेहीमप्येस्मै पितृघ्णं हंतुमुद्यतः।।119।।
संधिं विधाय यवनाधीशमान्यमठेन सः।।
प्रयक्षेण समाश्रित्य कलानीरपुरे यदा।।120।।

अनुवाद

श्री गुरु को प्रणाम

संसार को उत्पन्न करके तथा अंत में कल्प की समाप्ति पर अपनी माया से ही जो संसार की समाप्ति कर देते हैं, उन सब कुछ देने वाले नारायण को, जिनके गले में सूर्य वंशावली लिपटी है, मैं प्रणाम करता हूं।

भगवान नारायण के नाभिकमल से स्वयंभू (ब्रह्मा) की उत्पत्ति हुई। इसके (ब्रह्मा) मन से मरीचि और मरीचि से प्रजापति कश्यप पैदा हुए। प्रजापति (कश्यप) और अदिति से विवस्वंत पैदा हुए, विवस्वंत के पुत्र मनु हुए जो श्राद्धदेव थे। छींकते हुए मनु की नासिका से उसका पुत्र इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र विकुक्षी था और विकुक्षी का पुत्र पुरञ्जय हुआ जिसे इंद्रवाह और ककुत्स्थ के नाम से भी जाना जाता है। उससे अनेनस् की उत्पत्ति हुई, उस (अनेनस्) का पुत्र पृथु हुआ। पृथु का पुत्र विश्वगंधि था, विश्वगंधि से चंद्रमा की उत्पत्ति हुई और युवनाश्व चंद्र का पुत्र हुआ।

उसका पुत्र शाबस्त और उस (शाबस्त) का पुत्र बृहदाश्व कहलाया। उसका पुत्र कुवलयाश्वक हुआ जिसे धुंधुमार नाम से भी जाना जाता है। दृढ़ाश्व उसका पुत्र हुआ और उसका पुत्रहर्यश्व निकुंभ नाम वाला हुआ। निकुंभ बर्हिणाश्व का पुत्र था और कृशाश्वसेनजित उसका (बर्हिणाश्व) पुत्र था। युवनाश्व उस (कृशाश्व) का पुत्र हुआ और अपनी माता की कोख को बेधकर राजा मांधाता उत्पन्न हुआ जिसे त्रसद्दस्यु के नाम से भी जाना जाता है। मांधाता का पुत्र पुरुकुत्स हुआ और उसका पुत्र त्रसद्दस्यु द्वितीय, उसका पुत्र अनरण्य हुआ, उसका पुत्र हर्यश्व और उससे (हर्यश्व से) अरुण उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र निबंधन हुआ, निबंधन से सत्यव्रत त्रिशङ्कु पैदा हुआ, त्रिशङ्कु का पुत्र हरिश्चंद्र हुआ, वरुण का यज्ञ करने पर उसका पुत्र राजा रोहित हुआ और उसका पुत्र हरित हुआ। हरित का पुत्र चंप हुआ जिसने चंपापुरी का निर्माण किया। उसका पुत्र सुदेव और सुदेव का पुत्र विजय। विजय का पुत्र भरुक, उसका पुत्र वृक कहलाया और उसका पुत्र बाहुक हुआ। बाहुक का पुत्र चक्रवर्ती राजा सगर और सगर का पुत्र असमंजस हुआ, उसका पुत्र अंशुमंत, अंशुमंत

का पुत्र दिलीप, उसका पुत्र भगीरथ हुआ। भगीरथ से पुत्र श्रुत पैदा हुआ, उससे नभ और उससे सिंधुद्वीप पैदा हुआ। उसका पुत्र अयुतायुस् था, उसका पुत्र ऋतुपर्ण हुआ, उसका पुत्र सर्वकाम, उससे सुदास उत्पन्न हुआ और उससे सर्वसह जिसका नाम कल्माष्पाद भी था। सुदास का पौत्र अश्मक था। उसका पुत्र 'मूलक' नारियों द्वारा रक्षित होने के कारण नारीकवच नाम से प्रसिद्ध हुआ और क्षत्रिय वंश का कुलपुरुष हुआ। अश्मक के पुत्र मूलक का पुत्र दशरथ हुआ। उससे ऐडविड उत्पन्न हुआ, उससे विश्वसह की उत्पत्ति हुई। उससे चक्रवर्ती राजा खड्वाङ्ग पैदा हुआ जिसने क्षणमात्र में अध्यात्म ज्ञान प्राप्त किया। खड्वाङ्ग से दीर्घबाहु की उत्पत्ति हुई, उससे रघु और रघु से अज पैदा हुआ। अज से दशरथ द्वितीय की उत्त्पति हुई। उससे हरि (विष्णु) रामचंद्र आदि चार रूपों में अवतरित हुए। रामचंद्र का पुत्र कुश हुआ, उसका पुत्र अतिथि और अतिथि का पुत्र निषध हुए। निषध का पुत्र राजा नल, उसका पुत्र पुंडरीक। क्षेमधन्वन् उसका पुत्र हुआ और क्षेमधन्वन् से पुनः देवानीक पैदा हुआ। उसका पुत्र पारियात्र और उससे बल, बल से स्थल पैदा हुआ। स्थल का पुत्र भूमिपति वज्रनाभ सूर्य के तेज से उत्पन्न हुआ। स्वगुण उससे पैदा हुआ और उससे विधृति। उससे राजर्षि हिरण्यनाभ पैदा हुआ, जो पहले जैमिनी का शिष्य हुआ और योगाचार्य बना, कौशल प्रदेश का मुनि याज्ञवल्क्य कहलाया। जिससे हृदय की सारी ग्रंथियां खुल जाती हैं उस अध्यात्म ज्ञान का सबसे बड़ा ज्ञाता हुआ और महायोग के उदय का कारण बना। उसका पुष्य नामक पुत्र हुआ, उससे ध्रुव संधि उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र राजा अग्निवर्ण हुआ। उससे राजा मरुत् पैदा हुआ जो योग संपन्न था, जिसने नष्ट हुए सूर्यवंश को कलियुग में पुनर्जीवित किया।

कलाप ग्राम में रहते हुए उसके प्रसुश्रुत नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र संधि था, उस (संधि) का अमर्षण और उसका सहसवंत, उसका पुत्र विश्वसाह्व था जिसका पुत्र वृहद्बल हुआ जो महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु द्वारा मारा गया। उसका पुत्र उरुक्रिय हुआ और उरुक्रिय का पुत्र वत्सवृद्ध। उससे प्रतिव्योम और उससे सेनापति भानुदिवाक पैदा हुआ। उससे शूरवीर सहदेव और बृहदश्व-भानुमंत की उत्पत्ति हुई। प्रतीकाश्व भानुमंत का पुत्र और सुप्रतीक उसका पुत्र, उससे मरुदेव की उत्पत्ति हुई। मरुदेव का पुत्र सुनक्षत्र और उसका पुत्र पुष्कर हुआ। उससे महा तपस्वी और शत्रुजित अंतरिक्ष की उत्पत्ति हुई। बृहद्भानु उसका पुत्र हुआ। उससे बर्हि और उसका पुत्र कृतञ्जय। उसका पुत्र रणञ्जय और उसका पुत्र संजय हुआ। उससे शाक्य हुआ, शुद्धोद उसका पुत्र और लाङ्गल शुद्धोद का पुत्र हुआ। उससे प्रसेनक, प्रसेनक से क्षुद्रक और उसका पुत्र रणक हुआ। उसका पुत्र सुरथ था और उसका पुत्र सुमित्र। सुमित्र निस्संतान हुआ इसलिए सूर्यवंश नष्टप्राय हो गया।

बहुत वर्ष बीतने पर योग सिद्ध राजा मरु ने एक राजकन्या से विवाह किया और उससे सद्गुणसंपन्न पुत्रों को पैदा किया। उनमें से एक पुत्र को कलाप ग्राम में स्थापित करके, स्वयं अपनी वृद्धि के लिए अन्य दो पुत्रों के साथ वहां से निकल पड़ा और एक को हिमालय पर्वत पर स्थापित किया। तब अपने बड़े पुत्र जयस्तंभ के साथ कश्मीर पहुंचकर उसने उसके लिए वर्मपुर की स्थापना की और उसे वहां के राजा पद से अभिसिक्त किया। स्वयं योगाचार्य वहां पर योगसिद्धि में लग गया। जयस्तंभ का पुत्र जलस्तंभ और उसका पुत्र महास्तंभ हुआ। उसका पुत्र आदिवर्मन और आदि वर्मन का पुत्र देव वर्मन हुआ। मंदार वर्मन देव वर्मन का पुत्र हुआ, उसका पुत्र कांतार और उसका पुत्र प्रगल्भ था। प्रगल्भ का पुत्र अजय वर्मन था। जब योगाचार्य अजय वर्मन ने शिव को प्रसन्न करने के उद्देश्य से इरावती और बुद्ध नदी के संगम पर कठिन योग का अभ्यास किया तो असंख्य लिंग स्थान-स्थान पर प्रादुर्भूव हुए। राजा भी अपने पुत्र को सभी राजगणों से अलंकृत व योग में एकाग्रचित्त देखकर राज्यवृद्धि के लिए पुत्र मेरु वर्मन को अभिसिक्त करके अपने को योग में आसक्त कर उसी स्थान पर शिव के सान्निध्य में आ गया। मेरु वर्मन, जयस्तंभ से दसवां राजा हुआ जो पुरी में स्थापित हुआ।

देवाधिदेव की स्थापना के लिए अपने गुरु, जो कश्मीर के निवासी थे, के द्वारा नृसिंह की मूर्ति को भी प्रतिष्ठित करवाकर स्वयं सूर्यांश, भद्रकाली, गणाधिप और नंदी की स्थापना करके उसके नीचे राजशासन लिखा। उसका पुत्र सुवर्ण वर्मा और उसका पुत्र लक्ष्मी वर्मा हुआ। उसके राज्य में एक महामारी फैली और उससे अनेक लोग मारे गए व व्याधिग्रस्त हुए। तभी 'कीर' ने आकर राजा को रण में मार दिया। गर्भवती रानी को मंत्री और राजपुरोहित बचाकर ले गए और देवला में पालकी से बाहर निकलकर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र को कंदरा में छोड़कर जाने को तैयार हुई तो उसे देखकर पुरोहित ने कहा, 'पुत्री, तुम ऐसी क्यों हो गई हो? तुम कब प्रसूता हुईं और हमारे स्वामी को कहां रखा है?' और जब उसने उत्तर दिया, 'वह अंदर है (गुफा में)' राजपुरोहित ने उसे लिया और सभा से बाहर मंत्री को दिखाया।

तब वे उसे (रानी को) प्रभोग द्वारा शासित राज्य में ले गए और उसके गुरु के घर में बालक सहित कई वर्ष तक रहे। एक बार वह (रानी) धान को भूसी से वियुक्त करने गई हुई थी। राजगुरु ने मिट्टी पर बच्चे के पदचिह्नों को देखकर रानी से पूछा, 'तुम कौन हो और कहां से आई हो और क्यों?' उसके इस प्रकार पूछने पर रानी ने कोई उत्तर न दिया। परंतु उसके सहचरों से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि बच्चा किस कुल से संबंध रखता है। उस बच्चे को राजलक्षण से युक्त जानकर वह उसे सुकेत नगर में ले गया और अपने राजा के सामने उपस्थित किया। जब उसने

उसके (रानी के) दुर्भाग्य को जाना तो उसे गृह, मान तथा दान से सम्मानित किया। जब मूषण वर्मा युवा हुआ तब प्रभोग राजा ने उससे अपनी पुत्री का विवाह करवाया और पांगी ग्राम व बहुत धन दिया और एक बड़ी सेना भी। तब उस मूषण वर्मा ने शीघ्र ही सभी कीरकों को मार डाला और अपने आप राज्य का शासक बन गया। राजा ने अपनी मां को भी बुला लिया और (सुकेत के) राजा ने दहेज व उपहारों सहित उसकी बहू को उसके साथ भेजा। मूषण वर्मा अपनी पत्नी, जिसका (हंस नाम) एक पुत्र था, से प्रसन्न था। उससे सार वर्मन और उससे सेन पैदा हुआ। सेन वर्मन का पुत्र राजा सुजन और उसका पुत्र राजा साहिल वर्मन था। उसने अपनी धर्मपत्नी के साथ दक्षिण हिमालय पर कठोर तपस्या की और अपना लक्ष्य प्राप्त कर योगसिद्ध हो गया। तब वहां उसे वरदान देने के लिए 84 सिद्ध आए। राजा थकान के कारण अपनी कामना प्रकट न कर सका पर उन्होंने राजा की इच्छा को एकदम कहा, 'क्या मेरे पुत्र होंगे?' रानी और राजा के सेवकों ने राजा की इच्छा सिद्धों से कही और उन्होंने प्रजा की भलाई के लिए उसे दस पुत्र दिए। 'मेरे यहां वापस आने तक आप यहीं ठहरें।' राजा ने ऐसा कहा। यह सुनकर सिद्धों ने कहा, 'तथास्तु'। योगी चरपटी राजा के साथ आया। युगाकर तथा अन्य नौ सर्वगुणसंपन्न पुत्रों के साथ राजा ने क्षत्रियों को युद्ध में हराया और इरावती के किनारे 'चंपा' नामक शहर की स्थापना की जो पहले चंपक वृक्षों से सुशोभित था और देवी चंपावती द्वारा रक्षित था, उस देवी को भैंसे और अन्य पशुओं की बलि दी गई। उसी स्थान पर शालिका (और इरावती) के संगम पर बहुत से शिवलिंग भी थे। और कुनाल, शालिका और सरस्वती के संगम पर भी। चर्पटी की संपत्ति से जितेंद्रिय राजा सहित ने उनको (शिवलिंगों) शहर में लाकर गुप्त, चंद्रेश्वर, कूर्मेश्वर और अन्य मंदिरों की स्थापना की।

अंत में चर्पट के लिए गर्भगृह बनाने के बाद उसने अपने नौ पुत्रों को यह कहकर भेजा, 'मेरे लिए विंध्य पर्वत से बड़ी शिला लेकर आओ।' वे गए और अपने साथ शुभ्रवर्ण की बड़ी शिला लाए, पर गुरु ने कहा, 'यह शिला लक्ष्मी नारायण के लिए उचित नहीं है, इसके अंदर मेढक है।' जब राजा ने परीक्षण करने पर अंदर मेढक पाया तो उसने अन्य शंकर, देवी और गणपति की मूर्तियों की स्थापना एक ही मंदिर में की और अपने पुत्रों को पुनः भेजा। दैवात् जब उसके पुत्र शिला ला रहे थे, वे अगणित डाकुओं के साथ युद्ध करते हुए मारे गए। जब राजा ने यह सुना, उसने धनुर्धर युगाकार को उनको मारने के लिए भेजा और उसने मुकुटकोट से आरंभ कर जहां हिमालय के दूसरी ओर कोई देश न था, शत्रुओं को मारना आरंभ किया और बिना विश्राम किए सूर्यास्त से पूर्व शीघ्र शिला लेकर आया। लक्ष्मीपति की मूर्ति बनाकर आदर सहित उसकी स्थापना की और स्थापना करके युगाकार को चंपापुरी

का राजा बनाकर स्वयं चर्पटी के साथ वैसे ही तपस्या में लीन हो गया। उसके साथ चौरासी सिद्ध भी थे। सरस्वती के जल में समाधि लेकर राजा भी शांति को प्राप्त हुआ। युगाकार का पुत्र दोग्ध, उसका पुत्र विदग्ध हुआ। उसका पुत्र विचित्र वर्मन और उसका पुत्र धैर्य वर्मन हुआ। असट उसका (धैर्य वर्मन) पुत्र हुआ। उसके (असट) दो पुत्र हुए जसट और ढालिक। क्योंकि जसट निःसंतान था इसलिए ढाल वर्मन राजा बना। अजित उसका पुत्र हुआ, उसका दैत्यारि। पृथ्वी वर्मन दैत्यारि का पुत्र था। उसका पुत्र उदय था, उसका पुत्र ललित था जिसका पुत्र राजा विजय हुआ। उसने दक्षिणपथ से आकर कश्मीरी, कीर और मुद्गलों को मारकर उनके देश ले लिए और वहां के लोगों को संतुष्ट किया। स्वर्गप्राप्ति के लिए राजशासन करके ब्राह्मणों को राणवाट आदि के ग्राम अन्न पैदा करने के लिए दान दिए। वह धार्मिक और दानवीर था। उसने काश्मीर को भी अपने वश में कर लिया। राज वर्मन, विजय वर्मन का पुत्र था, राज वर्मन के सार वर्मन पैदा हुआ, सार वर्मन का पुत्र राजा कीर्ति वर्मन था। कीर्ति वर्मन के अजीत और मदन दो पुत्र थे। अजीत निःसंतान था और मदन सद्गुणसंपन्न राजा हुआ। मदन वर्मा का पुत्र मुद्रा वर्मन और उसका पुत्र नारी वर्मन हुआ, उसका पुत्र नागरी वर्मन और उसका पुत्र अय्याश कहलाया, उसका पुत्र जीमूत था। वैरी वर्मन उसका (जीमूत का) पुत्र हुआ और माणिक्य उसका पुत्र। भोट वर्मन उसका पुत्र था और उसके पुत्र का नाम संग्राम था। आनंद वर्मन राजा बना। जब त्रिगर्त के राजा की पुत्री से उसका विवाह हुआ और वह पाकशाला में भोजन ग्रहण करने के लिए प्रविष्ट हुआ तो उस राजा ने (त्रिगर्ताधिप) कौतूहलवश अपने सेवकों के साथ मिलकर कप और अन्य पात्र इस विधान से रखे कि उसका हाथ उन तक न पहुंच सके। तब आनंद वर्मा ने हाथ फैलाकर सूप खाया और बाजुएं फैलाते हुए दूर रखे बड़े पानी के पात्र से पानी पीया। अपने सेवकों के साथ राजा (आनंद वर्मन) को प्रणाम करते हुए त्रिगर्त नरेश ने उसके नथुनों से दो सांपों को निकलते हुए देखा।

गणेश वर्मन, आनंद वर्मन का पुत्र था। गणेश वर्मन का पुत्र प्रताप सिंह वर्मन उदार था जिसकी सम्यता इस कलियुग में युधिष्ठिर से की जाती है। उसने लक्ष्मी नारायण तथा अन्य देवी-देवताओं के मंदिरों का निर्माण कार्य आरंभ किया तो उसे इस बात की चिंता हुई कि धन कहां से प्राप्त किया जाए और अपने मंत्रियों से विचार-विमर्श किया, 'बिना अपनी प्रजा को पीड़ित किए मेरा उद्देश्य कैसे पूर्ण होगा?' जब वह रात को अपने बिस्तर पर लेटा था, भगवान नारायण उसे स्वप्न में दिखाई दिए और राजकुमार से कहा कि राजा को कोई चिंता नहीं करनी चाहिए, इसका प्रबंध मेरे द्वारा किया जाएगा। यह सुनकर राजा उठा और भूमि पर दंडवत् गिर गया और बोला, 'भगवान के लिए दुखियों के दुःख को दूर करना कैसे संभव

नहीं है?' अगले दिन वहां पर होल ग्राम के कुछ कृषक आए और उन्होंने सभा के सामने तांबे के कुछ टुकड़े रखे। उन्होंने एक खान की खोज का समाचार दिया। तब उसने सब मंदिरों का निर्माण करवाया। नगरकोट के राजा को युद्ध में हराकर राज्य की वृद्धि की। चंद्र नामक (नगरकोट का) राजा वहां से भागने के लिए विवश हो गया क्योंकि उसकी सेना 'चटी' से लेकर कांगड़ा शहर के मुख्य द्वार तक की भूमि हार गई थी और हाथी, घोड़े और अन्य दूसरी संपत्ति और बहुत सी भूमि उनसे छीन ली गई थी। उसने (प्रताप सिंह वर्मा ने) चंद्र के भाई जय सिंह की, जो धार्मिक होने के लिए विख्यात था, हत्या कर दी। प्रताप सिंह का पुत्र वीरभान हुआ। उसका पुत्र बलिभद्र हुआ जो अपने गुणों के कारण बलिकर्ण कहलाया। बलिभद्र का पुत्र जनार्दन कहलाया। धर्म में, धनुर्विधा में, शूरता में, न्याय और भक्ति आदि गुणों में वह सव्यसाची अर्जुन से कम नहीं था। राजा (जनार्दन) और यवन राजा के मुख्य सचिव जगत सिंह में बारह वर्ष तक युद्ध हुआ। यद्यपि जगत सिंह कई बार हारा और पलायन किया, पर उस विश्वासघाती ने छल से राजा जनार्दन को मार डाला, उसका शूरवीर भाई विश्वम्भर, जो भगवान की तरह उदार और विजयी था, उसके साथ था और उसके छोटे भाई सबल सिंह ने भी अपने पिता के नेतृत्व में उसका साथ दिया। तब बलभद्र के देश को जला दिया गया और खजाने को लूट लिया गया। यवन राजा के साथ मिलकर उसने उसके साम्राज्य पर अधिकार कर लिया।

जनार्दन का पुत्र पृथ्वी सिंह अभी बालक था। वह देश छोड़कर मंडी, कोलाचल आदि क्षेत्र में चला गया। बहुत वर्ष व्यतीत होने पर बहुत बड़ा परिवर्तन आया और जब दैव उसके अनुकूल हुआ, पृथ्वी सिंह ने कुछ सामंतों के साथ संधि की और उनके साथ कोल पर्वत से वापस आ गया। गिरि देवों की कृपा से काफी बर्फ को लांघते हुए वह अपने देश पहुंचा और पिता के घातक सैनिकों को, जो उसके देश में रह रहे थे, किले से खदेड़ दिया और युद्ध में उन्हें सफलतापूर्वक मार दिया। चंपापुरी में स्थित शत्रु के सैनिकों को मारकर, पकड़कर, नाक काटकर छोड़ दिया और कुछ को मार दिया और देश में आकर अन्यों को मारकर भूमि को रक्तरंजित कर दिया। उसने अपनी इच्छा से राजकुमार संग्राम को भलेही राज्य दे दिया और (पृथ्वी सिंह) अपने पिता के घातक को मारने के लिए उद्यत हो गया। उसने यवनाधीश मान्य भट्ट के साथ संधि करने के बाद प्रत्यक्ष में कलानौर में शरण ली।

सिरमौर

कुछ संदर्भ

जुब्बल की परंपरा में उल्लेख है कि उनके पूर्वज राठौड़ थे जो सिरमौर के शासक थे। बारहवीं शताब्दी में सिरमौर पर उनका राज था और राजधानी सिरमौरी ताल थी। यह राजधानी यमुना तथा गिरि नदियों के संगम से दस-बारह किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में गिरि नदी के दाईं ओर स्थित थी। इस स्थान के दोनों ओर टौंका तथा पौंका नाम की पहाड़ियां थीं। जनश्रुति है कि एक नट पत्नी सहित नगर में आया। उस समय राजा का नाम क्या था, यह स्पष्टतः ज्ञात नहीं। जुब्बल की परंपरा के अनुसार राजा उग्रचंद था। सिरमौर परंपरा के अनुसार मदन सिंह तथा इंदुकाव्यम् (परमानंद शास्त्री) के अनुसार रणवीर सिंह था। अपने करतब दिखाते हुए नट ने कहा कि यदि उसकी नटनी एक पतली डोरी पर टौंका और पौंका पहाड़ियों के बीच जाकर फिर वापस आ जाए तो राजा क्या ईनाम देगा? राजा ने कह दिया, यदि ऐसा वह कर दे तो राज्य का आधा भाग दे दिया जाएगा। दोनों पहाड़ियों के बीच कच्चा धागा या रस्सी बांध दी गई। नटनी उस पर चलती हुई सुगमता से पार पहुंच गई। जब वह पार से वापस आने लगी, किसी राजकर्मचारी ने रस्सी काट दी और नटनी गिरि नदी में गिर गई। गिरती हुई नटनी ने शाप दिया कि 'नीचे गिरि ऊपर पौंका, इस राजा की नगरी में रहे न कोई लोका।' बस रात को नदी में बाढ़ आई और सभी उसमें बह गए।

जुब्बल की परंपरा के अनुसार उग्र चंद की रानी तथा तीन पुत्र हाटकोटी आए हुए थे, जो बच गए। अतः बड़े पुत्र ने जुब्बल, दूसरे ने सारी और तीसरे ने रावीगढ़ राज्य की स्थापना की। अर्थात् वे दोबारा सिरमौर नहीं लौटे।

इस जनश्रुति पर विश्वास न किया जाए तो गिरि नदी में बाढ़ के कारण पूरा नगर तथा राजधानी समेत राजा नष्ट हो गए।

राजा तथा नगर के नष्ट हो जाने पर प्रजा में से कुछ लोगों ने होशंग राय भट्ट को जैसलमेर भेजा जहां के राजा शालिवाहन द्वितीय (1168-1200) ने अपने तीसरे पुत्र हांसू को पत्नी सहित सिरमौर भेजा। दुर्भाग्य से सरहिंद में हांसू की मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी गर्भवती थी जिसको टोका नामक स्थान में पलास के नीचे पुत्र हुआ

जिसका नाम पलासू रखा गया। अतः इस राजवंश का नाम पलासिया पड़ा। पलास का ही नाम सुभंश प्रकाश था जिसने सिरमौर राज्य की पुनः स्थापना की।

जेम्स टोड के अनुसार जैसलमेर की स्थापना जेसल ने सन् 1156 में की जो यदुवंशी था। जेसल के बाद छोटा पुत्र शालिवाहन द्वितीय सन् 1168 में गद्दी पर बैठा। शालिवाहन का पौत्र, हांसू का पुत्र सुभंश प्रकाश था जिसने रणजोर सिंह के अनुसार 1195 में सिरमौर में राज्य स्थापित किया। जेम्स टोड के अनुसार बद्रीनाथ के पहाड़ों में एक राज्य था जिसके शासक यदुवंशी रहे हैं।

यह भी प्रश्न उठाया जाता है कि सिरमौर के व्यक्ति राजा की तलाश में सीधे जैसलमेर ही क्यों गए जबकि रास्ते में भी कई राजपूत राजा थे। अतः ऐसा भी अनुमान लगाया जाता है कि जब सिरमौरी ताल में बाढ़ आई, उन्हीं दिनों जैसलमेर का राजा शालिवाहन तीर्थयात्रा के लिए हरिद्वार आया हुआ था अतः होशंग राय ने इस भय से कि मुसलमान यहां अधिकार न कर लें, राजा को आमंत्रित किया और शालिवाहन के पौत्र सुभंश प्रकाश ने राज्य संभाला। गजेटियर में उल्लेख है कि होशंग राय भाट ने राजा की प्रशस्ति में गान किया और उसे सिरमौर बुलाया। यहां राजा का नाम उग्रसेन है।

वंशावली

इंदु काव्यम् की सूची
वैक्रमीये 1152 संवत्सरे जैसलमेरतः समागत चंद्रवंशीय राज्ञां वंश परिचयः

1. सुवक्षराज
2. मलय प्रकाश
3. उदय प्रकाश
4. कौल प्रकाश
5. सुहाग प्रकाश
6. शूर प्रकाश
7. पद्म प्रकाश
8. करण प्रकाश
9. खंड प्रकाश
10. विधि प्रकाश
11. अहवल प्रकाश
12. वीरसल प्रकाश
13. साल ब्रह्म प्रकाश
14. संगत प्रकाश
15. जगत प्रकाश
16. वाक् प्रकाश
17. अक्षत प्रकाश
18. गर्भ प्रकाश
19. ब्रह्म प्रकाश
20. हंस प्रकाश
21. रत्न प्रकाश
22. पृथ्वी प्रकाश

23. बाहुबल प्रकाश
24. धर्म प्रकाश
25. दीप प्रकाश
26. बखत प्रकाश
27. विधि चंद्र प्रकाश
28. उदय प्रकाश
29. कर्म प्रकाश (नाहन निर्माता सं. 1673)
30. मंधाता प्रकाश
31. मही प्रकाश
32. मेदनी प्रकाश
33. हरि प्रकाश
34. भूपति प्रकाश
35. विजय प्रकाश (1887 सं. में कालिका मंदिर निर्माण)
36. प्रदीप प्रकाश
37. कीर्ति प्रकाश
38. जगत प्रकाश (निरपत्य)
39. धर्म प्रकाश (अनुज)
40. कर्म प्रकाश (अनुज)
41. फतह प्रकाश (धर्मात्मज)
42. रघुवीर प्रकाश
43. शमशेर प्रकाश
44. सुरेंद्र प्रकाश
45. अमर प्रकाश
46. राजेंद्र प्रकाश (निरपत्य) (वंश समाप्ति)

अभिलेखागार से प्राप्त सूची

क्र.	नाम	संवत्	सन्	वर्ष
1.	सुभंश प्रकाश	1152-1156	1095-1099	4
2.	सालिवाहन प्रकाश	1156-1159	1099-1102	2
3.	बालक चंद प्रकाश	1159-1165	1102-1108	6
4.	मलही प्रकाश	1165-1174	1108-1117	9
5.	मूल प्रकाश	1174-1178	1117-1121	4
6.	उदित प्रकाश	1178-1184	1121-1127	6
7.	कौल प्रकाश	1184-1206	1127-1149	22
8.	सुमेर प्रकाश	1206-1215	1149-1158	9
9.	सूरज प्रकाश	1215-1226	1158-1169	11
10.	पद्म प्रकाश	1226-1239	1169-1182	13
11.	कर्म प्रकाश	1239-1262	1182-1205	23
12.	अखंड प्रकाश	1262-1273	1205-1216	11
13.	मैदनी प्रकाश	1273-1316	1216-1259	43

14.	अचल प्रकाश	1316-1346	1259-1289	30
15.	वीर साल प्रकाश	1346-1373	1289-1316	27
16.	सालब्रह्म प्रकाश	1373-1399	1316-1342	26
17.	जगत प्रकाश	1399-1413	1342-1356	14
18.	वीर प्रकाश	1413-1423	1356-1366	10
19.	नकट प्रकाश	1423-1439	1366-1382	16
20.	गर्व प्रकाश	1439-1457	1382-1400	18
21.	ब्रह्म प्रकाश	1457-1482	1400-1425	25
22.	सोहंस प्रकाश	1482-1517	1425-1460	35
23.	रत्न प्रकाश	1517-1547	1460-1490	30
24.	पृथी प्रकाश	1547-1576	1490-1519	29
25.	बाहुबल प्रकाश	1576-1592	1519-1535	16
26.	धर्म प्रकाश	1592-1624	1535-1567	32
27.	दीप प्रकाश	1624-1640	1567-1583	16
28.	भक्त प्रकाश	1640-1662	1583-1605	22
29.	भूपत प्रकाश	1662-1672	1605-1615	10
30.	उदय चंद प्रकाश	1672-1673	1615-1616	1
31.	कर्म प्रकाश	1673-1687	1616-1630	14
32.	मानधाता प्रकाश	1687-1711	1630-1654	24
33.	सोभाग प्रकाश	1711-1721	1654-1664	10
34.	बुद्ध प्रकाश	1721-1741	1664-1684	20
35.	मत प्रकाश	1741-1761	1684-1704	20
36.	हरि प्रकाश	1761-1769	1704-1712	8
37.	विजय प्रकाश	1769-1793	1712-1736	24
38.	परतीब प्रकाश	1793-1811	1736-1754	18
39.	किरत प्रकाश	1811-1827	1754-1770	16
40.	जगत प्रकाश	1827-1846	1770-1789	19
41.	धर्म प्रकाश	1846-1850	1789-1793	4
42.	कर्म प्रकाश	1850-1872	1793-1815	22
43.	फतेह प्रकाश	1872-1907	1815-1850	35
44.	रघुवीर प्रकाश	1907-1913	1850-1856	6
45.	शमशेर प्रकाश	1913-1955	1856-1898	42

46.	सुरेंद्र विक्रम प्रकाश	1955-1968	1898-1911	13
47.	अमर प्रकाश	1968-1990	1911-1933	22
48.	राजेंद्र प्रकाश	1990-	1933-1948 (मृ. 1964)	

महंत से प्राप्त सूची

क्र.	नाम	संवत्	सन्	वर्ष
1.	सुभंश प्रकाश	1152-1156	1095-1099	4
2.	मलही प्रकाश	1156-1174	1099-1117	18
3.	उदित प्रकाश	1174-1184	1117-1127	10
4.	कंवल प्रकाश	1184-1206	1127-1149	22
5.	समीर प्रकाश	1206-1215	1149-1158	9
6.	सूर प्रकाश	1215-1226	1158-1169	11
7.	पद्‌म प्रकाश	1226-1239	1169-1182	13
8.	कर्ण प्रकाश	1239-1262	1182-1205	23
9.	अखंड प्रकाश	1262-1273	1205-1216	11
10.	भीघय प्रकाश	1273-1316	1216-1259	43
11.	अचल प्रकाश	1316-1346	1259-1289	30
12.	वीरसाल प्रकाश	1346-1373	1289-1316	27
13.	सालब्रह्म प्रकाश	1373-1399	1316-1342	26
14.	संगत प्रकाश	1399-1411	1342-1354	12
15.	जगत प्रकाश	1411-1413	1354-1356	2
16.	वीर प्रकाश	1413-1423	1356-1366	10
17.	अनंत प्रकाश	1423-1439	1366-1382	16
18.	गर्व प्रकाश	1439-1457	1382-1400	18
19.	ब्रह्म प्रकाश	1457-1482	1400-1425	25
20.	सहंस प्रकाश	1482-1517	1425-1460	35
21.	रत्न प्रकाश	1517-1547	1460-1490	30
22.	पृथी प्रकाश	1547-1576	1490-1519	29
23.	बाहुल प्रकाश	1576-1592	1519-1535	16
24.	धर्म प्रकाश	1592-1624	1535-1567	32

25.	दीप प्रकाश	1624-1640	1567-1583	16
26.	भक्त प्रकाश	1640-1672	1583-1615	32
27.	उदय चंद प्रकाश	1672-1673	1615-1616	1
28.	कर्म प्रकाश	1673-1692	1616-1635	19
29.	मानधाता प्रकाश	1692-1721	1635-1664	29
30.	मही प्रकाश	1721-1740	1664-1683	19
31.	मदनी प्रकाश	1740-1751	1683-1694	11
32.	हरि प्रकाश	1751-1760	1694-1703	9
33.	भूपत प्रकाश	1760-1767	1703-1710	7
34.	विजय प्रकाश	1767-1803	1710-1746	36
35.	वीरती प्रकाश	1803-1811	1746-1754	8
36.	क्रात प्रकाश	1811-1827	1754-1770	16
37.	जगत प्रकाश	1827-1846	1770-1789	19
38.	धर्म प्रकाश	1846-1850	1789-1793	4
39.	कर्म प्रकाश	1850-1872	1793-1815	22
40.	फतेह प्रकाश	1872-1907	1815-1850	35
41.	रघुवीर प्रकाश	1907-1913	1850-1856	6
42.	शमशेर प्रकाश	1913-1955	1856-1898	42
43.	सुरेंद्र प्रकाश	1955-1968	1898-1911	13
44.	अमर प्रकाश	1968-1990	1911-1933	22

तारीख सिरमौर की सूची

क्र.	नाम	संवत्	सन्	वर्ष
1.	सुभंश प्रकाश	1252-1256	1195-1199	4
2.	मल्ले प्रकाश	1256-1274	1199-1217	18
3.	उदित प्रकाश	1274-1284	1217-1227	10
4.	कौल प्रकाश	1284-1296	1227-1239	12
5.	सुमेर प्रकाश	1296-1305	1239-1248	9
6.	सूरज प्रकाश	1305-1316	1248-1259	11
7.	पद्‌म प्रकाश	1316-1328	1259-1271	12
8.	कर्ण प्रकाश	1328-1343	1271-1286	15

9.	अखंड प्रकाश	1343-1354	1286-1297	11
10.	बुद्धि प्रकाश	1354-1377	1297-1320	24
11.	अचल प्रकाश	1377-1390	1320-1333	13
12.	वीरसाल प्रकाश	1390-1411	1333-1354	21
13.	सत ब्रह्म प्रकाश	1411-1431	1354-1374	20
14.	भक्त प्रकाश	1431-1443	1374-1386	12
15.	जगत प्रकाश	1443-1445	1386-1388	2
16.	वीर प्रकाश	1445-1455	1388-1398	10
17.	नेकट प्रकाश	1455-1471	1398-1414	16
18.	गर्व प्रकाश	1471-1489	1414-1432	18
19.	ब्रह्म प्रकाश	1489-1503	1432-1446	14
20.	हंस प्रकाश	1503-1528	1446-1471	25
21.	रत्न प्रकाश	1528-1552	1471-1495	24
22.	पृथी प्रकाश	1552-1579	1495-1522	27
23.	बाहुबल प्रकाश	1579-1595	1522-1528	16
24.	धर्म प्रकाश	1595-1627	1538-1570	32
25.	दीप प्रकाश	1627-1642	1570-1585	15
26.	भक्त प्रकाश	1642-1662	1585-1605	20
27.	बुद्धि प्रकाश	1662-1672	1605-1615	10
28.	उदय प्रकाश	1672-1673	1615-1616	1
29.	कर्म प्रकाश	1673-1687	1616-1630	14
30.	मांधाता प्रकाश	1687-1704	1630-1647	17
31.	सोभाग प्रकाश	1704-1716	1647-1659	12
32.	बुद्ध प्रकाश (मही प्र.)	1716-1735	1659-1678	19
33.	मत प्रकाश (मेदनी प्र.)	1735-1751	1678-1694	16
34.	हरि प्रकाश	1751-1760	1694-1703	9
35.	भीम प्रकाश (भूप प्र.)	1760-1770	1703-1713	10
36.	विजय प्रकाश	1770-1806	1713-1749	36
37.	प्रतीप प्रकाश (प्रती प्र.)	1806-1814	1749-1757	8
38.	कीरत प्रकाश	1814-1830	1757-1773	16
39.	जगत प्रकाश	1830-1849	1773-1792	19
40.	धर्म प्रकाश	1849-1853	1792-1796	4

41.	कर्म प्रकाश (मृ. 1882)	1853-1872	1796-1815	19
42.	फतह प्रकाश	1872-1907	1815-1850	35
43.	रघुवीर प्रकाश	1907-1913	1850-1856	6
44.	शमशेर प्रकाश	1913-1955	1856-1898	42

सिरमौर

(कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची)

- धर्म प्रकाश
  - कर्म प्रकाश
    - फतेह प्रकाश (मृत्यु 1850)
      - रघुबीर प्रकाश (मृत्यु 1856)
        - राजा शमशेर प्रकाश (जन्म 1842)
          - टिक्का सुरेंद्र विक्रम सिंह (जन्म 1864)
            - 1888 में एक लड़का हुआ
          - वीर विक्रम सिंह (जन्म 1870)
        - कंवर सूरत सिंह (जन्म 1853)
          - 1888 में लड़का हुआ
      - सुरजन सिंह (मृत्यु 1881)
        - रणजोर सिंह (जन्म 1874)
      - वीर सिंह (मृत्यु 1882)

राजवंश

सुभंश प्रकाश (1195-1199)

रणजोर सिंह (तारीख रियासत सिरमौर) के अनुसार सुभंश प्रकाश ने राजधानी सिरमौरी ताल के पास राजवन में स्थापित की।

मल्ले प्रकाश (1199-1217)

सुभंश प्रकाश की मृत्यु के बाद 1199 में मल्ले प्रकाश राजा बना। राजा ने बाढ़ से आई अव्यवस्था को सुधारने के साथ सीमाओं को बढ़ाने के लिए गढ़वाल पर आक्रमण किया और मालदा पर अधिकार कर लिया। भागीरथी नदी के किनारे लक्ष्मी नारायण का मंदिर बनवाया। इस राजा के कार्यकाल के समय मुहम्मद गौरी और पृथ्वीराज चौहान का युद्ध हुआ जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ। गौरी के वापस लौटने पर कुतुबुद्दीन ऐबक भारत में रहा।

उदित प्रकाश (1217-1227)

उदित प्रकाश ने दो वर्ष राजवन ही राजधानी रखी। क्योंकि उस समय मुस्लिम आक्रमण का भय हो गया था और राजवन यमुना नदी के पास मैदानी भाग में था अतः उदित प्रकाश ने राजधानी बदलने का निश्चय किया। राजधानी को पहाड़ों के भीतर यमुना और तौंस के संगम कालसी में बदला गया। सन् 1227 में राजा अपने पुत्र को राज्य सौंप तीर्थयात्रा पर चला गया।

कौल प्रकाश (1227-1239)

तारीख रियासत सिरमौर के अनुसार कौल प्रकाश ने जुब्बल, बलसन तथा थरोच को जीता और कर वसूला। किंतु थरोच ठकुराई इस समय अस्तित्व में नहीं थी अतः यह तथ्यपरक नहीं हो सकता। इस राजा के समय सन् 1236 में अल्तमश की मृत्यु के बाद रजिया सुलतान बनी। इसका वजीर निजाम-उल-जुनाइदी ने विरोध किया। रजिया सुलतान ने विरोधी पकड़ लिए किंतु निजाम-उल-जुलाईदी सिरमौर की पहाड़ियों में आ छिपा और यहीं उसकी मृत्यु हुई।

सुमेर प्रकाश (1239-1248)

इस राजा ने ऊपरी गिरि घाटी में रतेश के किले को जीता और राजधानी कालसी से रतेश बदल दी। इस राजा के समय सन् 1246 में दिल्ली में नसीरुद्दीन के सुलतान बनने पर उसके भाई जलालुद्दीन मसूद शाह को कनौज और फिर

बदलकर संभल और बदायूं का सूबेदार बनाया। जलालुद्दीन मसूद ने सन् 1248 में बदायूं छोड़ दिया और सितौरगढ़ की पहाड़ियों में संतूरगढ़ में आ छिपा। यहां वह सिरमौर के किसी राणा के यहां छिपा होगा।

सूरज प्रकाश (1248-1259)

सूरज प्रकाश ने रतेश से फिर राजधानी कालसी बदल ली। राजधानी बदलने का विद्रोह हुआ और महल पर हमला कर दिया जिससे राजा की बहन की मृत्यु हो गई। सूरज प्रकाश ने विद्रोह दबा दिया। इसके बाद राजा ने जुब्बल, बलसन, कुम्हारसेन, घूंड, सायरी, रावींगढ़, कोटगढ़ को अपने अधीन कर लिया और उनसे कर वसूला। राजा ने अपने भाई कल्याण चंद को इस क्षेत्र का प्रबंध सौंपा।

दिल्ली के सुलतान नसीरुद्दीन ने सन् 1255 में कुतलुग खां को अवध का सूबेदार बनाया। उलूक खां ने शाही आदेश से कुतलुग खां को बहराइच भेजा किंतु उसने आज्ञा नहीं मानी। अतः उलूक खां ने आक्रमण कर दिया जिससे कुतलुग खां भागकर संतूरगढ़ (सिरमौर) आ गए। राणा रणपाल ने उन्हें शरण दी किंतु उलूक खां ने संतूरगढ़ हथिया लिया। अतः राणा और कुतलुग खां पश्चिम में किशलू खां से मिल गए। उलूक खां ने सिरमौर के नगर तथा व्यापारी लूट लिए।

सूरज प्रकाश के बाद पद्म प्रकाश (1259-1271), कर्ण प्रकाश (1271-1286), अखंड प्रकाश (1286-1297), बुद्धि प्रकाश (1297-1320), अचल प्रकाश (1320-1333), वीरसाल प्रकाश (1333-1354), सील ब्रह्म प्रकाश (1354-1374) राजा हुए जिनके बारे में जानकारी नहीं है।

भक्त प्रकाश (1374-1386)

भक्त प्रकाश के समय सिरमौर फिरोज शाह तुगलक (1351-1388) के अधीन करद राज्य बना। सन् 1388 में फिरोजशाह का पुत्र मुहम्मद शाह वजीरों से झगड़े के बाद सिरमौर की पहाड़ियों की ओर भागा। दिल्ली सेना द्वारा पीछा करने पर वह नगरकोट की ओर भाग गया।

भक्त प्रकाश के बाद जगत प्रकाश (1386-1388) राजा बना।

वीर प्रकाश (1388-1398)

तारीख सिरमौर के अनुसार वीर प्रकाश ने बारह ठकुराइयों में से जुब्बल, सायरी, रावीं आदि अपने अधीन की। उसने हाटकोटी को अपनी राजधानी बनाया। मंदिर के पास पहाड़ी पर किला बनाया और मंदिर बनवाए।

हाटकोटी के दुर्गा, शिव मंदिर पुरातात्त्विक दृष्टि से आठवीं से दसवीं शताब्दी

से हैं अतः इन मंदिरों का निर्माण वीर प्रकाश के समय नहीं हो सकता, यद्यपि उस समय इन मंदिरों की मरम्मत हुई हो सकती है। राजा ने इतनी दूर स्थायी राजधानी बनाई हो, यह भी संभव प्रतीत नहीं होता यद्यपि अपने अधिकार में लेने पर अस्थायी प्रबंध किया गया संभव हो सकता है।

जुब्बल का राजा इस समय कौन था, यह अज्ञात है। जुब्बल के इतिहास में उल्लेख है कि सिरमौर के एक राजा ने कोटखाई के निकट बखरोल में राजाओं की एक सभा बुलाई। जुब्बल का राणा नारायण चंद भी इसमें गया। सभा समाप्त होने पर राजा ने ऐसी सभा सिरमौर में भी होने का उल्लेख किया जिसमें जुब्बल तथा कोटखाई के राणा बुलाए। कोटखाई का राणा इस धोखे को समझ गया और बहाने से वापस लौट गया किंतु जुब्बल का राणा चला गया। वहां उसे बंदी बना लिया और मार दिया।

यदि यह घटना उस समय की हो तो राजा द्वारा हाटकोटी में राजधानी बनाना संभव है। यहीं वीर प्रकाश की मृत्यु भी हुई।

नेकट प्रकाश (1398-1414)

नेकट प्रकाश गिरि नदी के किनारे नेरी में रहने पर राज्य चलाता रहा। सन् 1398 में तैमूर लंग (1369-1404) ने भारत पर आक्रमण किया। तैमूर लंग ने लिखा है :

'14 जमीद-औल-अवल को मैंने यमुना को पार किया और शिवालिक की पहाड़ियों के पास डेरा डाला। यहां पर मुझे पता चला कि इस शिवालिक क्षेत्र में एक बहुत बड़ा राजा रहता है जिसका नाम रत्न सेन है।...सामने घाटी में एक भारी सेना लेकर राजा रत्न सेन खड़ा है परंतु बहुत से हिंदू पहले ही भाग खड़े हुए और कुछ मारे गए और बहुत सा धन हाथ आया।'

कनिंघम ने माना है कि सिरमौर का राजा रत्न प्रकाश ही रत्न सेन है जिसने 1471 से 1495 तक राज किया। वंशावली के अनुसार राजा का नाम नेकट प्रकाश है।

गर्व प्रकाश (1414-1432)

गर्व प्रकाश ने नेरी छोड़ दी और रतेश (कोट किला) में रहने लगा।

ब्रह्म प्रकाश (1432-1446)

इसने कोट किला छोड़ पच्छाद में देवठल को राजधानी बनाया।

ब्रह्म प्रकाश के बाद हंस प्रकाश (1446-1471), रत्न प्रकाश (1471-1495), पृथ्वी प्रकाश (1495-1522), बाहुबल प्रकाश (1522-1538) राजा हुए। तैमूर लंग

के आक्रमण के समय कनिंघम के मतानुसार यदि रत्न प्रकाश राजा होगा तो यह आक्रमण रत्न प्रकाश (1471-1495) के समय हुआ।

धर्म प्रकाश (1538-1570)

धर्म प्रकाश ने देवठल छोड़कर कालसी में रहना शुरू किया।

गढ़वाल की दो वीरगाथाओं में सिरमौर का उल्लेख है किंतु राजा का नाम मौली चंद है। 'हरि हिन्दुआण आसा हिन्दुआण' की गाथा के अनुसार सिरमौर में एक 'गौड़ी' नाम के राक्षस का आतंक था। इस राक्षस ने सिरमौर का आधा राज्य छीन लिया था। सिरमौर के राजा ने गढ़वाल के राजा मानशाह से सहायता मांगी। इस सहायता के बदले राजा ने गढ़वाल का कुछ क्षेत्र दिया तथा अपनी पुत्री का विवाह मानशाह से करना स्वीकारा। मानशाह ने आसा हिन्दुआण को सिरमौर भेजा। किंतु उसका छोटा भाई हरि हिन्दुआण बड़े भाई आसा हिन्दुआण को घर छोड़ सिरमौर गया। हरि हिन्दुआण ने राक्षस से नौ दिन तक युद्ध किया। राजा के मन में खोट आ गया और उसने राज्य तथा पुत्री का विवाह, दोनों से मुकरना चाहा और हरि हिन्दुआण को मारना चाहा। हरि हिन्दुआण बच निकला। जब आसा हिन्दुआण को पता चला तो उसने मानशाह से सिरमौर पर आक्रमण करने को कहा। दोनों भाइयों ने आक्रमण किया और सिरमौर को लूटा। सिरमौर का राजा मारा गया। उसकी कन्या सूरकेशा का विवाह हरि हिन्दुआण से हुआ।

एक दूसरी गाथा राजा मानशाह से संबंधित रिखोलालोटी की है। इसमें भी सिरमौर के राजा का नाम मौली चंद है। गढ़वाल के राजा का नाम मानशाह ही है। इस गाथा के अनुसार दोनों राज्यों में ऋषिकेश के पास धान के खेतों के कारण झगड़ा हुआ। सिरमौर के राजा की हार हुई किंतु गढ़वाल के योद्धा भौंसिंह को छल से मारा गया। गढ़वाल के राजा ने भौंसिंह के पुत्र रिखोला को बदला लेने के लिए भेजा। रिखोला ने मौली चंद को हरा दिया। गढ़वाल से सिरमौर द्वारा लूटा हुआ कैलावीर का नगाड़ा तथा बद्रीनाथ की ध्वजा वापस ले ली। यह गाथा 'रिखोला लोटी' नाम से जानी जाती है।

ये लड़ाइयां धर्म प्रकाश के समय ही हुईं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

धर्म प्रकाश के बाद दीप प्रकाश (1570-1585), भक्त प्रकाश (1585-1605), बुद्धि प्रकाश (1605-1615), उदय प्रकाश (1615-1616) राजा हुए।

इस अवधि में सिरमौर के राजा भक्त प्रकाश या जगत प्रकाश का एक किस्सा मिलता है। जगत प्रकाश ने कोराहा के ठाकुर चंद की पुत्री से विवाह करना चाहा

किंतु मान चंद ने इनकार किया। राजा ने उस पर हमला बोल दिया। मान चंद ने बाईस खेलों के राजा एकत्र किए, फिर भी हार गया। अतः वह पुत्री को लेकर शाहजहां के पास दिल्ली चला गया और वहां मुसलमान हो गया। उसका नाम मोमन मुराद रखा गया। शाहजहां ने उसे सेना दी जिसकी मदद से वह ठकुराई वापस लेने में सफल हुआ। बारह वर्ष बाद उसने पत्नी सहित विष खाकर आत्महत्या कर ली। यह क्षेत्र कासिम खां ने हथिया लिया जो यहां का हाकिम था।

कर्म प्रकाश (1616-1630)

कर्म प्रकाश के समय छह वर्ष तक राजधानी कालसी रही। सन् 1621 के आसपास राजा नाहन की पहाड़ियों में शिकार खेलने आया। यहां उसे एक साधु मिला जिसका नाम बनवारी लाल था। साधु से प्रभावित हो राजा ने नाहन राजधानी बनाई और आठ वर्ष राज किया।

मुगल काल का सिरमौर पर क्या प्रभाव रहा, यह सिरमौर के इतिहास से पता नहीं चलता। मुस्लिम इतिहास में भी सिरमौर का उल्लेख नहीं आता। अन्य पहाड़ी राजाओं की भांति सिरमौर भी मुगल साम्राज्य के अधीन रहा होगा। सिरमौर में एक गाथा 'नंतराम की हार' प्रसिद्ध है जिसके अनुसार जौनसार बाबर के नेतराम ने सिरमौर नरेश की ओर से मुगलों का सामना किया। उसने मुगल सरदार का सिर काट दिया। किंतु यह ज्ञात नहीं कि यह घटना सिरमौर के किस राजा के समय की है।

मांधाता प्रकाश (1630-1654)

मांधाता मुगल सम्राट शाहजहां का समकालीन था। शाहजहां के समय कांगड़ा के फौजदार नजाबत खां ने सन् 1634 में गुलेर के राजा रूप चंद के साथ गढ़वाल पर चढ़ाई की। अतः अप्रैल 1635 में मुगल सेना सिरमौर की पहाड़ियों में आई। शाहजहां ने सिरमौर नरेश को इस सेना की सहायता के लिए फरमान भेजा। अतः सिरमौर नरेश ने सहायता दी। मुगलों ने कालसी तथा बैराठ किला सिरमौर को लौटा दिया क्योंकि इस पर सिरमौर का अधिकार हुआ करता था। संतूर का किला लखनपुर के राजा जगतू को दिया गया। गढ़वाल के राजा महीपति शाह (1625-1646) ने एक लाख कर देने का बहाना कर सेना श्रीनगर के निकट रोक ली। इस बीच मुगल सेना की वापसी के रास्ते रोक दिए और सेना को घेरकर तबाह किया। गुलेर का राजा रूप चंद मारा गया। नजाबत खां किसी तरह बच निकला। उसे कांगड़ा की फौजदारी से निकाल दिया गया।

दूसरी बार शाहजहां ने पुनः गढ़वाल जीतने की ठानी। इस बार कांगड़ा व जम्मू के फौजदार इराज खां को 19 अप्रैल-16 मई, 1654 के फरमान के साथ भेजा कि सिरमौर इनकी सहायता करे। अतः मुगल सेना के साथ सिरमौरी सेना ने गढ़वाल पर हमला बोला किंतु वर्षा ऋतु आने पर यह अभियान बंद करना पड़ा।

सोभाग प्रकाश (1654-1664)

शाहजहां द्वारा मांधाता को 4 दिसंबर, 1654 को एक और फरमान भेजा जिसमें खलीलुज्जा खां की सहायता करने को कहा गया जिसे तीसरी बार गढ़वाल को हराने भेजा गया था। मांधाता की मृत्यु होने के कारण सोभाग प्रकाश ने सहायता दी। इस बार मुगल सेना की जीत हुई और गढ़वाल के राजा पृथ्वी शाह (1664-1660) के पुत्र मेदनी शाह को दिल्ली भेजा गया। अतः 30 मई, 1655 के फरमान द्वारा बादशाह ने कोटाहा क्षेत्र राजा को दिया।

शाहजहां के बाद औरंगजेब शासक बना तो राज्यारोहण की सूचना सोभाग प्रकाश को भेजी गई। उन दिनों सुलेमान शिकोह श्रीनगर गढ़वाल में था। औरंगजेब ने राजा राजरूप को गढ़वाल के राजा को दंड देने के लिए भेजा जिसने सुलेमान शिकोह को शरण दे रखी थी। सिरमौर को राजा राजरूप की सहायता करने का फरमान आया। सोभाग प्रकाश ने इस फरमान के अनुसार सहायता की।

औरंगजेब ने प्रसन्न होकर कालाखर का क्षेत्र राजा को प्रदान किया। कालाखर संभवतः देहरादून के पास का कौलागढ़ था।

बुद्ध प्रकाश (1664-1684)

सोभाग प्रकाश के दो पुत्र थे—महीचंद और हरिचंद। बड़ा पुत्र महीचंद उत्तराधिकारी बना। औरंगजेब ने 1076 ई. में मही प्रकाश को बुद्ध प्रकाश नाम दिया।

गजेटियर के अनुसार कालाखर से एक ठेकेदार लकड़ी निर्यात करता था जो शाही काम के लिए भेजी जाती थी। राजा उससे आठ सौ रुपए कर लेता था। ठेकेदार ने बादशाह से निःशुल्क लकड़ी लेने की प्रार्थना की अतः बादशाह ने प्रथम अगस्त, 1662 को फरमान जारी कर निःशुल्क लकड़ी लेने की आज्ञा दी।

गढ़वाल के राजा ने उन क्षेत्रों पर पुनः अधिकार कर लिया था जो मांधाता ने मुगलों की सहायता से छुड़ाए थे। अतः राजा ने इन्हें वापस लेने के लिए बादशाह से सहायता मांगी। बादशाह की सहायता से कालसी तथा बैराठ के किले पुनः वापस किए गए।

सिरमौर के राजा के मुगल दरबार से अच्छे संबंध थे। वह जहांआरा बेगम को

कस्तूरी, अनार, बर्फ उपहार भेजा करता था।

औरंगजेब द्वारा बुद्ध प्रकाश नाम दिए जाने पर भी यह मही प्रकाश के नाम से जाना जाता रहा। सिरमौर की गाथा 'मौईया री हार' में राजा मही प्रकाश और क्योंथल के राजा अनूप सेन की लड़ाई का वर्णन है। इसी घटना पर क्योंथल में 'देशु री धार' प्रसिद्ध है।

गाथा के अनुसार मही प्रकाश का बचपन में क्योंथल के राणा के साथ झगड़ा हुआ था। बड़ा होने पर मही प्रकाश ने क्योंथल के राणा अनूप सेन से पुत्री सीतला का हाथ मांगा जिसके लिए अनूप सेन ने मना किया। अतः मही प्रकाश ने क्योंथल पर हमला बोल दिया। मही प्रकाश ने बलग में डेरा डाला। वहां से सिरमौर की सेना देशु की धार पहुंची। लड़ाई में सिरमौरी सेना हार गई। मही प्रकाश की रानी ने अपमानित होकर अपने पिता गुलेर नरेश से सहायता मांगी। मही प्रकाश ने पुनः आक्रमण किया और अनूप सेन को हरा दिया। संभवतः कुछ समय के लिए कुछ क्षेत्र भी जीते होंगे किंतु देशु की धार शीघ्र ही पुनः क्योंथल के पास आ गई।

मत प्रकाश या मैदनी प्रकाश (1684-1704)

मत प्रकाश के नाबालिग होने से राजकाज मंत्री दुल्लु मेहता के हाथ आ गया जो राजकाज में ध्यान नहीं देता था। करों की मात्रा बढ़ गई। बेगार अधिक ली जाने लगी। अतः प्रजा में हाहाकार मच गया।

होकू मियां की हार या गाथा इस युग की कहानी कहती है। दुखी लोग घंडूरी गांव के होकू मियां के पास गए और अपना दुखड़ा सुनाया। होकू मियां ने पांच सौ व्यक्ति इकट्ठे किए और दुल्लू मेहता के पास मिलने नाहन गया। होकू मियां राजमाता तथा युवराज से मिलना चाहता था। दुल्लू मेहता ने दो व्यक्ति भेज चौगान से ही होकू मियां को बुलावा भेजा और राजसभा में घोषणा की कि होकू मियां विद्रोही नहीं हैं, उन्हें कल राजमाता से मिलवाएंगे। अगले दिन जब होकू मियां ने युवा राजा से भेंट की तो दुल्लू मेहता ने अपने सेना नायक जुलफिया से निहत्थे होकू को मरवा दिया। होकू की हार सिरमौर में बहुत प्रसिद्ध है।

एक अन्य गाथा 'सामा सोहिनी की हार' है। इस हार में सिरमौर के शासक नरपत तथा सोहिनी ठाकुर सामा जागीरदार परगन सोहिनी के संघर्ष का वर्णन है। सिरमौर का शासक नरपत कौन था, यह ज्ञात नहीं है। इस हार में सोहिनी के सामा के विद्रोही हो जाने पर राजा के साथ संघर्ष की कथा है। सामा को तथा उसके सात पुत्रों को धोखे से बंदी बनाया गया। उनमें से एक पुत्र भागकर गढ़वाल के राजा के पास गया। गढ़वाल द्वारा सिरमौर पर हमला किया गया। सिरमौर का राजा हार गया

और सामा के परिजनों को मुक्त किया गया।

दसवें गुरु गोबिंद सिंह (1666-1708) मत प्रकाश के समकालीन थे। गुरु तेग बहादुर के 1675 में औरंगजेब द्वारा वध के बाद वे बिलासपुर के पहाड़ी क्षेत्र में रहे। फिर कहलूर के राजा से मतभेद होने पर वे सिरमौर आकर टोंका गांव में रहने लगे। राजा ने उन्हें निमंत्रण देकर नाहन बुलाया। नाहन कुछ समय रहने के बाद वे पौंटा चले गए। गुरु के सिरमौर में रहने पर मुगल बादशाह नाराज रहने लगा। अतः वे आनंदपुर साहिब चले गए।

हरि प्रकाश (1704-1712)

मत प्रकाश के संतान न होने पर चाचा हरि प्रकाश उत्तराधिकारी बना। औरंगजेब ने 2 रवि 1115 ई. अर्थात् 17 जून, 1704 के फरमान द्वारा हरि प्रकाश को राजा माना।

सन् 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। सन् 1708 में गोबिंद सिंह की भी एक पठान ने हत्या कर दी। गुरु जी के बाद बंदा वैरागी आगे आया। कहा जाता है कि बंदा वैरागी सिरमौर का रहने वाला था। कुछ कहते हैं, वह जम्मू का राजदूत था। मुगल बादशाह ने बंदा वैरागी को पकड़ने के लिए सैनिक भेजे। उसने सिरमौर की पहाड़ियों में लोहगढ़ में शरण ली। वहां से वह भागकर हिंडूर, नालागढ़ होता हुआ चंबा पहुंच गया। जब बंदा वैरागी के सिरमौर से भागने का पता चला तो बहादुर शाह ने सिरमौर के राजा हरि प्रकाश के पुत्र भूप प्रकाश को पकड़कर दिल्ली मंगवा लिया। भूप प्रकाश को लाल किला तथा सलीमगढ़ में कैद रखा गया। बाद में उसे छोड़ दिया गया।

भूप प्रकाश (1712)

भूप प्रकाश को एक फरमान द्वारा भीम प्रकाश की उपाधि तथा खिल्लत दी गई।

विजय प्रकाश

विजय प्रकाश के समय मुगल साम्राज्य का पतन हुआ। राजा तथा रानी ने कई मंदिर, बावड़ियां तथा तालाब बनवाए। इस समय बिलासपुर राजा का भाई कुशल सिंह नाहन रहने लगा। राजा ने पिंजौर तथा सोहाना की रक्षा के लिए मियां कुशल सिंह को रामगढ़ का थानेदार बनाया।

प्रतीप प्रकाश (1736-1754)

यद्यपि इस समय मुगल साम्राज्य का पतन हो रहा था। सिक्ख साम्राज्य बढ़

रहा था तथापि प्रतीप प्रकाश के समय कई स्थानीय सामंत स्वतंत्र हो गए। यह राजा एक कमजोर शासक सिद्ध हुआ। लोककथा तथा गाथाओं में स्थानीय सामंतों की स्वाधीनता का उल्लेख आता है। 'सिधु री टिकरी' हार या गाथा में मियां सिधु के स्वतंत्र होने की गाथा है। उधर जुब्बल के राणा हुकम चंद ने अपने क्षेत्र वापस लिए। जुब्बल के वजीर बीणी ने देहा किले के किलेदार माठू को मार दिया। वह कोटियाणा, शिलाई तक पहुंच गया। नाहन से सबला वजीर सेना लेकर आया। छह-सात दिन तक युद्ध हुआ। सबला वजीर मारा गया और नाहन की सेना हार गई। जुब्बल का बीणी वजीर सबला वजीर की विधवा को भी साथ ले गया और अपने पुत्र से उसका विवाह कर दिया।

कीरत प्रकाश (1757-1773)

कीरत प्रकाश जब गद्दी पर बैठा तो वह आठ वर्ष का था। कीरत प्रकाश एक योग्य शासक और सेनानायक था। अतः शीघ्र ही उसने राज्य में फैली अव्यवस्था ठीक कर दी और सीमाएं सुदृढ़ की। कीरत प्रकाश ने रामगढ़ किले पर अधिकार कर लिया। यह क्षेत्र गरीबदास चौधरी के अधीन था। कीरत प्रकाश ने पटियाला के राजा अमर सिंह की सहायता से पिंजौर पर अधिकार कर लिया। राजा ने पटियाला के राजा अमर सिंह से भी मित्रता कर ली। इस लड़ाई में पटियाला के तीन सौ सैनिक मारे गए। कीरत प्रकाश ने अमर सिंह की सहायता से नारायणगढ़ पर भी अधिकार कर लिया। नारायणगढ़ में जगन्नाथ का मंदिर बनवाया। कीरतपुर नाम से एक गांव बसाया।

सन् 1764 में सरहिंद पर सिखों का अधिकार हो गया। थानेसर से मंगा सिंह सिरमौर पर छापे मारने लगा अतः राजा ने उसे दो हजार रुपए वार्षिक कर देना आरंभ किया। सन् 1792 में राजा अमर सिंह के भाई हिम्मत सिंह तथा वजीर ने विद्रोह कर महल को घेर लिया। कीरत प्रकाश को ज्वालामुखी जाते हुए नारायणगढ़ में इस बात का पता चला तो वह सेना इकट्ठी कर पटियाला गया और दोनों ने मिलकर आक्रमण किया। बाद में यह झगड़ा सुलझ गया और हिम्मत सिंह को पच्चीस गांव दिए गए।

राजा ने मुगल बादशाह आलमगीर की सिख आक्रमणकारियों के विरुद्ध सहायता की। आलमगीर के बाद गुलाम कादिर द्वारा बिलासपुर पर आक्रमण के समय राजा ने कहलूर की सहायता की। राजा ने रोपड़ के निकट कीरतपुर नगर बसाया।

गढ़वाल के इतिहास के अनुसार गढ़वाल के ललित शाह (1772-1780) ने

सिरमौर पर हमला किया। इस युद्ध में सिरमौर की जीत हुई। जब राजा 1773 में वापस आ रहा था तो लकड़घाट में उसकी मृत्यु हो गई। कुछ का मत है कि मृत्यु 1775 में हुई।

जगत प्रकाश (1773-1792)

जगत प्रकाश कीरत प्रकाश का बड़ा पुत्र था। इस राजा के समय सिरमौर में विद्रोह हुआ जिसे पटियाला के राजा अमर सिंह ने नाहन आकर दबा दिया।

जब जगत प्रकाश गद्दी पर बैठा तो उसकी आयु दस वर्ष की थी अतः पटियाला के अमर सिंह ने कीरत प्रकाश से मित्रता के कारण यह सहायता की होगी। चौदह वर्ष की आयु में राजा का विवाह कांगड़ा के राजा संसार चंद की बहन से हुआ। बारात कहलूर होकर गई। वहां के राजा ने उसे राज्य से होकर जाने से रोका किंतु वह वहीं से गया। आती बार भी वह कहलूर होकर वापस आया। अतः संसार चंद ने दो हजार सैनिक साथ भेजे।

मुगल बादशाह आलम के वजीर नजब खां ने नाहन को मार्च, 1781 में पत्र लिखा कि वह सिखों को शरण न दे। मुगलों ने सैनिकों का खर्चा चलाने के लिए राजाओं से कर वसूला। सिरमौर से भी अप्रैल, 1781 को सत्रह हजार रुपए वसूले गए।

सिखों के हमले सिरमौर में भी बढ़ गए। जॉर्ज फोर्स्टर ने लिखा है कि जब वह नाहन से होता हुआ पश्चिम की ओर जा रहा था तो (सन् 1781) राजा सिखों से निपटकर नाहन लौट रहा था। सिखों से निपटने के लिए राजा ने कोटहा का प्रबंध कासर अली खां को दिया था जो गढ़ी में रहता था।

सन् 1785 में रोहिल खंड के जवीता खां की मृत्यु के बाद उसका पुत्र गुलाम कादिर रोहिला शासक बना जिसने सेना के साथ दून क्षेत्र पर हमला कर दिया। सिरमौर का राजा नाहन से पंद्रह किलोमीटर दूर कटासन आया जहां युद्ध हुआ। इस युद्ध में गुलाम कादिर हार गया। इस विजय-स्मृति में कटासन में एक दुर्गा मंदिर बनाया गया। गुलाम कादिर को 4 मार्च, 1789 को सिंधिया ने फांसी दी।

हिंडूर के राजा रामसरण सिंह ने सिरमौर की सहायता से कहलूर के राजा महान चंद से अपना क्षेत्र वापस छुड़ाया।

अंत में राजा ने जगन्नाथ की यात्रा की और यात्रा से लौटकर दून क्षेत्र जीता। अट्ठाईस वर्ष की अल्पायु में राजा की मृत्यु हो गई।

धर्म प्रकाश (1792-1796)

धर्म प्रकाश जगत प्रकाश का भाई था। यह कांगड़ा के महाराजा संसार चंद का

समकालीन था। हिंडूर के राजा रामसरन सिंह ने इस समय तक बारह ठकुराइयों को अपने अधीन कर लिया था अतः सत्ता हिंडूर के हाथ आ गई थी। धर्म प्रकाश ने हिंडूर पर हमला किया। झलरा भलरा में युद्ध हुआ जिसमें बाघल का राणा जगत सिंह पकड़ा गया। उसे पिंजौर ले जाया गया। बाद में रामसरन सिंह ने समझौता करके राणा जगत सिंह को छुड़ा लिया।

कांगड़ा के महाराजा संसार चंद ने कहलूर पर आक्रमण किया। कहलूर के राजा महान चंद ने सिरमौर से सहायता मांगी। महान चंद ने एक लाख रुपए देना तय किया। अतः सतलुज के किनारे कहलूर और सिरमौर की सेनाएं संसार चंद के मुकाबले के लिए आ खड़ी हुईं। दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ जिसमें धर्म प्रकाश मारा गया और कहलूर तथा सिरमौर की सेनाएं हार गईं। हचिसन-वोगल ने यह घटना 1795 की बताई है।

कर्म प्रकाश (1796-1815)

कर्म प्रकाश धर्म प्रकाश की मृत्यु के बाद राजा बना। यह धर्म प्रकाश का छोटा भाई था। कर्म प्रकाश एक कमजोर और दुराचारी शासक सिद्ध हुआ। इसके समय राजकाज का काम वजीर के हाथ रहा। कई राज कर्मचारी राजा से पूछे बिना ही कार्य चलाने लगे। अतः राजा ने सभी वजीरों को मरवा दिया और एक व्यक्ति को वजीर बनाया। इससे राज्य में विद्रोह हो गया और प्रजा ने राजा के छोटे भाई रत्न सिंह को गद्दी पर बिठा दिया।

कर्म प्रकाश के गद्दी पर बैठते ही कुछ लोगों ने गड़बड़ी फैला दी अतः वह पटियाला के राजा साहब सिंह से पुराने संबंधों के कारण सहायता लेने गया। साहब सिंह ने अपनी वजीर बीबी साहिब कौर को, जो उसकी बड़ी बहन भी थी, सेना सहित नाहन भेजा। सेना के साथ तीन सरदार और दीवान केसरमल भी थे। इन्होंने चार महीने नाहन में रहकर राजा कर्म प्रकाश को पुनः राजा स्थापित किया और विद्रोह भी दबाया। अतः सन् 1803-04 तक सिरमौर की स्थिति सामान्य रही।

हिंडूर का शासक राजा रामसरन सिंह बारह ठकुराइयों को अपने अधीन कर सिरमौर की ओर बढ़ने का प्रयास करता रहा। उसने राजपरिवार के लोगों को भी राजा कर्म प्रकाश के विरुद्ध उकसाया। सन् 1790 में कुमाऊं में गोरखों को आमंत्रण दिया गया। सन् 1792 में गोरखों ने गढ़वाल के प्रद्युम्न शाह को कर देने पर बाध्य किया। सिरमौर के साथ संधि द्वारा सिरमौर के पहाड़ी क्षेत्र हथिया लिए। सन् 1803 में गढ़वाल और गोरखों के बीच फिर विवाद हुआ। सन् 1804 में प्रद्युम्न शाह लड़ाई में मारा गया अतः गढ़वाल गोरखों के अधीन हो गया।

राजा कर्म प्रकाश ने विद्रोहियों को दबाने के लिए अब गोरखा सेनानायक अमर सिंह से सहायता मांगी। गोरखा नायक भक्ति सिंह थापा सात सौ सैनिकों सहित सिरमौर रवाना हुआ किंतु किशन सिंह और हिंडूर के सैनिकों ने उसे जामटा से वापस जाने के लिए बाध्य किया। अतः राजा कर्म प्रकाश ने नाहन से भागकर क्यारदा दून में कांगड़ा किले में शरण ली। किले में लड़ाई करते हुए राजा का एक साथी मियां जवालू मारा गया जो राजा से मिलता-जुलता था। सैनिकों ने राजा को मरा समझ घेराव ढीला कर दिया अतः कर्म प्रकाश रानी सहित पिछले द्वार से भाग गया और टानूक गांव के मुखिया झांझू से कालसी पहुंचाने का अनुरोध किया। झांझू ने राजा को कालसी पहुंचा दिया।

राजा की मृत्यु की खबर सुन छोटे भाई रत्न सिंह को रत्न प्रकाश नाम से राजा बना दिया। कर्म प्रकाश ने कालसी में गोरखा सेनानायक काजी रणजोर थापा से भेंट की। कर्म प्रकाश गोरखा सेना के साथ कांगड़ा किला होता हुआ नाहन आ गया। उधर किशन सिंह तथा हिंडूर व विद्रोहियों ने इकट्ठे हो सेना का मुकाबला किया, किंतु हार हुई। गोरखों ने रतन सिंह को हराकर कर्म प्रकाश को नाम के लिए राजा बनाया और अधिकार स्वयं ले लिए। उधर सन् 1804 में अमर सिंह थापा ने हिंडूर पर आक्रमण कर नालागढ़ को पराजित किया। कहलूर के राजा महान चंद के साथ कांगड़ा पर हमला किया। सिरमौर के शासक कर्म प्रकाश ने सैनिक तथा खाद्य सामग्री दी। संसार चंद ने कांगड़ा किले में शरण ली। सन् 1809 में रणजीत सिंह ने सहायता देकर गोरखों को सतलुज पार भगाया।

रणजीत सिंह द्वारा खदेड़े जाने पर अमर सिंह थापा ने कर्म प्रकाश से सहायता मांगी किंतु कर्म प्रकाश ने मिलने से इनकार कर दिया। अतः अमर सिंह थापा ने अपने पुत्र रणजोर सिंह थापा को सिरमौर पर आक्रमण के लिए भेजा। बिना कोई युद्ध किए ही कर्म प्रकाश भाग गया और नाहन पर गोरखों का आधिपत्य हो गया।

कर्म प्रकाश के भागने पर कोटाहा, रामगढ़, जगतगढ़, मोरनी, पिंजौर स्वतंत्र हो गए। राजा ने सपाटू में आकर शरण ली। बाद में राजा वजीर मौजी राम मेहता के साथ बुरिया चला गया।

अमर सिंह थापा ने सन् 1810 में सरहिंद के साथ लगते मैदानी भागों पर अधिकार जताया। डेविड ऑक्टर लूनी ने गोरखों को यह भाग खाली करने को कहा। इस सीमा-विवाद से निपटने के लिए नवंबर 1814 में अंग्रेज-गोरखा युद्ध की घोषणा हो गई। अंग्रेजों ने राजपरिवारों को उनकी सहायता के बदले राज्य लौटाने की घोषणा की। सिरमौर के राजपरिवार का किशन सिंह, जो विद्रोही हो गया था, डेविड ऑक्टर लूनी से मिला। किशन सिंह ने धन की मांग की जिससे शस्त्र तथा सैनिक लिए

जा सकें। दिल्ली के रेजिडेंट ने धन देना स्वीकार किया, साथ ही यह भी माना कि कर्म प्रकाश को गद्दी न देकर उसके पुत्र फतह प्रकाश को गद्दी पर बिठाया जाए। किशन सिंह को संरक्षक बनाया जाए।

प्रथम नवंबर, 1814 को गोरखों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा हुई। मेजर जनरल डेविड ऑक्टर लूनी रोपड़ की ओर से नालागढ़ पहुंचा। रोलों गीलैस्पी 4400 सैनिक लिए सहारनपुर, देहरादून और कियारपा दून की ओर से आया। यहां गोरखा कमांडर बलभद्र थापा था, जो कांगड़ा किला में जा छिपा। गीलैस्पी किले पर कब्जा करने के प्रयास में मारा गया। इसके स्थान पर मेजर मौवे ने आकर किले पर अधिकार कर लिया। उधर अमर सिंह थापा के पुत्र रणजोर थापा ने नाहन छोड़ जयतक किले में शरण ली। अतः 19 दिसंबर, 1814 को अंग्रेज सेना नाहन पहुंच गई। 25 दिसंबर, 1814 को मेजर जनरल मार्टिंडेल ने कमान संभाल ली। उधर डेविड ऑक्टर लूनी ने नालागढ़ में गोरखों को हरा दिया। अब सिरमौर पर हमले की तैयारी हुई। 21 मई, 1815 को भारी वर्षा और ओलावृष्टि हुई। अमर सिंह थापा का मनोबल भी टूट गया। जयतक किला, जहां गोरखे छिपे थे, खाली कर दिया गया। पांच मास के संघर्ष के बाद अंग्रेजों की विजय हुई।

फतह प्रकाश (1815-1850)

अंग्रेज सरकार ने कर्म प्रकाश को अल्पबुद्धि होने के कारण राज्य से वंचित कर दिया और गवर्नर जनरल से सिरमौर को अंग्रेजी राज में मिलाने या कर्म प्रकाश को गुजारा भत्ता देकर उसके पुत्र फतह प्रकाश को राजा बनाने की सिफारिश की। सरकार ने 28 सितंबर, 1815 को फतह प्रकाश को गद्दी पर बिठाया और बाल्यावस्था के कारण राजकाज का काम माता गुलेरी रानी को दिया गया। सहायता के लिए 15 जुलाई, 1815 को कैप्टन जी. बीरच को गवर्नर जनरल का असिस्टेंट एजेंट नियुक्त किया। यह दिसंबर, 1816 तक तैनात रहा।

गवर्नर जनरल ने 21 सितंबर, 1815 को सनद द्वारा फतह प्रकाश को राजा बनाया। मोरनी, जगतगढ़ के किले, क्यारदा, दून तथा जौनसार बाबर के क्षेत्र अपने पास रखे और खूरचरी, हुनरू के किले, गिरि के पश्चिम का क्षेत्र क्योंथल को दे दिया। राजा को राज्य में बारह फुट चौड़ी सड़कें बनाने के साथ सरकार की स्वीकृति के बिना दीवान न रखने की हिदायत दी।

बाद में जी. बीरच ने एक काउंसिल बनाई। किशन सिंह को हटाकर मुंशी अजीज ओलहा खां को नियुक्त किया। इस अवधि में प्रशासन तथा पुलिस में सुधार हुए। धर्मशालाएं बनाई गईं। कर सुधार के अंतर्गत अनाज तथा पशुओं पर कर

समाप्त किया गया।

फतह प्रकाश ने कालसी, जौनसार बाबर तथा कियार क्षेत्रों को डेढ़ लाख के नजराने पर सरकार से वापस लेने का अनुरोध किया किंतु सरकार नहीं मानी। यद्यपि सन् 1823 में रामगढ़ का क्षेत्र सिरमौर में मिलाया गया।

सन् 1827 को शिमला में गवर्नर जनरल लॉर्ड अमस्ट के दरबार में फतह प्रकाश भी हाजिर हुआ। फतह प्रकाश ने एक बार फिर सिरमौर के क्षेत्रों को नजराने पर लौटाने के लिए अनुरोध किया। जुब्बल, थरोच, रामगढ़, पुंदर, मोरनी, पिंजौर आदि पर भी अधिकार का दावा पेश किया किंतु सरकार नहीं मानी। अलबत्ता 5 सितंबर, 1833 को कियारदा दून का क्षेत्र वापस दे दिया जिसका पचास हजार रुपए नजराना तय किया गया।

राजा पर न्यायपूर्ण ढंग से प्रशासन चलाने, राहदारी न लेने, सड़कों को ठीक रखने, यात्रियों को सुविधा देने, नजराना या उपहार न लेने की शर्तें लगाई गईं।

पूर्व राजा कर्म प्रकाश नाहन के पास तिलकपुर में रहता था। वह नाहन के निकट होने से राजकाज में हस्तक्षेप करने लगा अतः कैप्टन बीरच ने उसे करनाल भेजने की सिफारिश की। इससे रानी तथा फतह प्रकाश दुखी हुए और वे भी करनाल जाने लगे किंतु उन्हें समझा-बुझाकर मना लिया। सन् 1826 में कर्म प्रकाश की मृत्यु हो गई।

कहलूर के इतिहास में राजा खड़क चंद के उत्तराधिकारी के संबंध में विवाद का किस्सा आता है। फतह प्रकाश की दो बहनें कहलूर के राजा खड़क चंद को ब्याही थीं। राजा की मृत्यु के समय उनकी कोई संतान नहीं थी। राजा सिरमौर ने गद्दी पर बहनों का हक मांगा किंतु सरकार नहीं मानी। उस समय यह भी पूछा गया कि क्या कोई रानी गर्भवती तो नहीं है। कोई रानी उस समय गर्भवती भी नहीं थी अतः गद्दी मियां जगत सिंह को दी गई। नवंबर, 1839 में छोटी बहन ने कहा कि उसे 4 नवंबर, 1839 को पुत्र हुआ जो गद्दी का हकदार है। बालक का नाम गर्भचंद रखा गया। सरकार ने इसे अस्वीकार किया तो रानी ने फरवरी, 1840 में एक हजार सैनिकों के साथ कहलूर पर हमला कर दिया। घोषित राजा जगत सिंह हिंडूर भागा। पॉलिटिकल एजेंट जॉर्ज रस्सल क्लार्क ने दो सौ जवान बिलासपुर भेजे। पटियाला से भी पांच सौ सिपाही मंगवाए गए। अतः इन्हें बिलासपुर से भगाया गया। इस साजिश के लिए सरकार ने जुर्माने के तौर पर पच्चीस हजार रुपए फतह प्रकाश से वसूले।

फतह प्रकाश ने सन् 1838 में अफगान युद्ध में सहायता की पेशकश की। पहले सिख युद्ध में (1845) एक सैनिक टुकड़ी भेजी। सन् 1850 में फतह प्रकाश की मृत्यु हो गई।

इसके बाद रघुवीर प्रकाश (1850-56) उत्तराधिकारी बना।

शमशेर प्रकाश (1856-1898)

शमशेर प्रकाश दस वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। अतः 19 फरवरी, 1857 को सुपरिंटेंडेंट विलियन हे ने एक कमेटी बनाई जिसमें देवी चंद मेहता तथा मोतीराम भंडारी प्रशासक बनाए गए। सरकारी कोष की पड़ताल करने पर धन में कमी पाई गई अतः मासिक आय-व्यय का विवरण मांगा गया। कमेटी के प्रशासक अशिक्षित थे अतः प्रशासन नहीं चला पाए। स्थिति बिगड़ने पर सुपरिंटेंडेंट ने राजपरिवार के कुंवर सुरजन सिंह तथा वीर सिंह को प्रशासकों का सलाहकार बनाया और न्यायिक कार्य भी सौंपा।

सन् 1857 की क्रांति के समय कुंवर वीर सिंह ने साठ सैनिक शिमला भेजे। धन भी दिया। क्रांति के बाद कुंवर सुरजन सिंह को खिल्लत तथा राजा को सात तोपों से सम्मान दिया गया। सन् 1861 में कुंवर सुरजन सिंह को कार्यमुक्त किया गया।

सन् 1862 में राजा शमशेर प्रकाश के वयस्क होने पर राज्य के पूर्ण अधिकार दिए गए। शमशेर प्रकाश ने सन् 1859 में भारत भ्रमण किया था। राजा ने सिरमौरी लिपि को हटाकर उर्दू में राजकाज करने का आदेश दिया। कोर्ट फीस के कागज विलायत से छपवाए गए। कई प्रशासनिक सुधार किए गए जिससे खुश होकर सरकार ने सन् 1867 में सात तोपों की सलामी बढ़ाकर ग्यारह कर दी।

राजा ने वन विभाग को संगठित किया, राज्य को चार तहसीलों में बांटा गया और तहसीलदार तथा थानेदार नियुक्त किए। पैदल सेना 100 से 300 तक बढ़ाई और एक प्रशिक्षक रखा जिसका नाम 'वाट' था। घुड़सवार फौज तैयार की। सन् 1880 में अफगान लड़ाई में दो सौ सैनिक भेजे। सन् 1897-98 में तिरहा लड़ाई में भाग लिया। सेना की कमान छोटे पुत्र मेजर विक्रम सिंह ने संभाली जिसके लिए उसे 'ऑर्डर ऑफ द इंडियन एम्पायर' से सम्मानित किया गया।

राजभाषा में अंग्रेजी का प्रयोग आरंभ किया और विभागों में सचिव नियुक्त किए गए। सन् 1872 में दीवान नियुक्त न करने की पाबंदी हटाने की मांग रखी गई जो सरकार ने मान ली। सन् 1878 में भू-बंदोबस्त आरंभ किया गया। मुंशी फतेह को सुपरिंटेंडेंट बंदोबस्त लगाया गया। रेणुका क्षेत्र के लोगों ने इसका विरोध किया क्योंकि उन्होंने समझा सरकार जमीन छीन लेगी। अतः संगड़ाह के नंबरदार उछबू तथा प्रीतम सिंह ने विद्रोह का बीड़ा उठाया। कर्मचारियों को पीटा गया और वहां से भगा दिया गया। राजा ने उछबू तथा प्रीतम सिंह को वार्ता के लिए बुलाया परंतु वे इस भय से नहीं आए कि उन्हें बंदी बना लिया जाएगा। अतः राजा ने पुलिस टुकड़ी विद्रोह दबाने के लिए भेजी। इस पर वहां मोर्चाबंदी की गई और जनता की

ओर से गोलाबारी तथा पत्थरों की बौछार की गई। पुलिस आगे नहीं बढ़ पाई और उछबू तथा प्रीतम सिंह शिमला शिकायत करने गए जहां उन्हें बंदी बना लिया गया और इन्हें नाहन राजा के पास भेज दिया। नाहन में इन पर मुकदमा चलाया और सजा दी गई। यह एक प्रकार का 'दूम्ह' था। दूसरा बंदोबस्त 1887 में हुआ जिसके विरुद्ध कोई आंदोलन नहीं हुआ।

राजा शमशेर प्रकाश ने रुड़की में लोहे का कारखाना देखा अतः नाहन से एक लोहार को काम सीखने भेजा गया। सन् 1867 में नाहन फाउंडरी नाम से लोहे का कारखाना खोला गया। यहां दो यूरोपीय काम चलाने के लिए रखे गए। गिरि पार के क्षेत्र से लोहा निकालने की योजना बनाई गई। राजा ने गिरि नदी से पौंटा तक एक नहर बनाने की योजना भी बनाई किंतु नहर बन नहीं पाई।

राजा ने क्यारदा दून की बंजर भूमि में सन् 1881 में होशियारपुर, जालंधर, रोपड़ आदि से जाट लोगों को बसाया जिससे खेती को बढ़ावा मिला। नाहन में डाकघर के अतिरिक्त 1887 में प्रत्येक तहसील में डाकघर खोले गए। सन् 1885 में तारघर भी खोला गया। सन् 1872 में डिस्पेंसरी और 1898 में अस्पताल बनाया गया। सन् 1896 में महिला अस्पताल खोला गया। सन् 1893 में नाहन में एक बैंक खोला गया जिसका 1944 में बैंक ऑफ सिरमौर नाम रखा।

दीवानी और फौजदारी न्यायालय स्थापित किए, यद्यपि अंतिम अधिकार राजा के पास थे। सन् 1891 में हाईकोर्ट की स्थापना की गई जिसमें दो न्यायाधीश थे।

सन् 1898 में बयालीस वर्ष की अवस्था में राजा की मृत्यु हो गई।

सुरेंद्र विक्रम प्रकाश (1898-1911)

यह राजा सन् 1902 में इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल का सदस्य बना। सन् 1906 में राजा को मृत्युदंड के अधिकार भी दिए गए।

अमर प्रकाश (1911-1933)

अमर प्रकाश ने प्रथम महायुद्ध में सेना तथा आर्थिक सहायता देकर सरकार का पक्ष लिया, अतः 3 जून, 1915 को के.सी.एस.आई. तथा सन् 1918 में पुश्त दर पुश्त महाराजा की उपाधि तथा सन् 1921 में के.सी.आई.ई. बनाया गया। सन् 1928 से 1931 तक भू-बंदोबस्त करवाया गया।

13 अगस्त, 1933 को राजा की वियाना में मृत्यु हुई।

राजेंद्र प्रकाश (1933-1948)

सन् 1937 में सिरमौर कांस्टिट्यूश एक्ट बनाया गया जिसके द्वारा एक

मंत्रिपरिषद का प्रशासन कार्य में सहायता के लिए गठन किया गया। राजा स्वयं इस परिषद का प्रधान बना। 10 मई, 1943 को मनमोहन को मुख्यमंत्री बनाया। सन् 1945 में सिरमौर एक्ट के तहत एक एग्जेक्टिव काउंसिल बनाई गई। परिषद का उद्घाटन 28 पौह सं. 2003 (1946) को हुआ।

सन् 1942 में पझौता के लोगों ने राज्यकर्मचारियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह दस मन से अधिक अनाज डिपो में जमा करवाने, सिविल गार्ड प्रशिक्षण, आलू फसल कंट्रोल, सरकारी अधिकारियों द्वारा मुफ्त उपहार लेने के कारण था। बेगार लेना भी एक अहम मुद्दा था।

राजा द्वारा प्रजा की मांगें ठुकराने पर नवंबर, 1942 में टपरोली गांव में विशाल सभा हुई। इस सभा में मियां लोगों ने भाग लिया और कुछ मांगें रखीं। राजा ने कोई शर्त नहीं मानी और आंदोलन को कुचलकर 70 व्यक्ति बंदी बनाए गए। इन पर मुकदमे चलाकर सजाएं दी गईं। किंतु इन बंदियों को थोड़े-थोड़े समय बाद छोड़ दिया गया।

सन् 1935-36 में प्रजा मंडल की स्थापना हुई जिसने संघर्ष जारी रखा।

भारत की स्वाधीनता के बाद राजा ने 13 मार्च, 1948 को भारत संघ में विलय के लिए हस्ताक्षर किए, अतः 15 अप्रैल, 1948 को सिरमौर हिमाचल प्रदेश का एक जिला बना।

सिरमौर के राजपरिवार से संबंधित अजय बहादुर सिंह 1985 से विधानसभा सदस्य रहे।

बिलासपुर (कहलूर)

कुछ संदर्भ

बिलासपुर राज्य निचली सतलुज घाटी में स्थित था जिसे सतलुज नदी दो भागों में विभक्त करती है। बिलासपुर के उत्तर में कांगड़ा तथा मंडी, पश्चिम में होशियारपुर, दक्षिण में हंडूर (नालागढ़) और पूर्व में भंगाल तथा सुकेत हैं। सतलुज नदी राज्य के बीचोबीच बहती है। कुल्लू से प्रवेश के बाद यह होशियारपुर में मिलती है।

सन् 1931 की जनगणना के अनुसार बिलासपुर की जनसंख्या 1,00,994 थी तथा क्षेत्रफल लगभग 448 वर्गमील। इस क्षेत्र में निम्न ऊंचाई की पहाड़ियां, घाटियां तथा उपजाऊ भूमि है। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। बिलासपुर में सात धारें प्रसिद्ध हैं—नैना देवी धार, कोट धार, त्यूनी धार, बंदला धार, झिंजियार धार, रतनपुर धार, बहादुरपुर धार। बिलासपुर के राजा को सात धारों का राजा कहा जाता था। मुख्य धार नैना देवी धार है जिसमें कोट कहलूर पड़ता है। कोट कहलूर राजाओं की कई वर्ष तक राजधानी रही। इसी के नाम से बिलासपुर का पुराना नाम 'कहलूर' पड़ा। नैणा देवी मंदिर में सबसे ऊंची पहाड़ी 3595 फुट ऊंची है। नैणा देवी से नीचे मैदान दिखते हैं।

भाखड़ा बांध बनने के कारण अब नैना देवी धार से इस ओर झील नजर आती है जो बिलासपुर शहर तक फैली है। बिलासपुर के पुराने महल तथा मंदिर झील में डूब गए हैं जो कभी-कभी गर्मियों में सिर उठाते हुए अतीत की कहानी कहते हैं।

बिलासपुर में सबसे ऊंची चोटी बहादुरपुर की धार में है जो, 6164 फुट है। यहां सर्दियों में बर्फ गिरती है।

कोट कहलूर के बाद राजधानी बिलासपुर बनी। राजधानी तथा पुराने मंदिर, भाखड़ा बांध के कारण बनी झील 'गोबिंद सागर' में डूब चुके हैं और एक नए बिलासपुर ने जन्म लिया है जो सेक्टरों में विभक्त है। यद्यपि व्यास गुफा अभी भी है, जहां यह माना जाता है कि कभी व्यास ऋषि तपस्या किया करते थे। व्यास देव के नाम पर ही व्यासपुर या बिलासपुर नाम पड़ा, ऐसा भी माना जाता है।

विगने यहां से सन् 1835 तथा 1839 में गुजरा। उसने लिखा है—

'बिलासपुर लगभग 2000 फुट ऊंचाई पर स्थित है। इसकी स्थिति बहुत

तस्वीरनुमा है–खुला-डुला, खेतों से भरपूर, तुलनात्मक मैदानी, जो नदी के दोनों ओर फैला हुआ है। हरी-भरी पहाड़ियां, ऊंचे पर्वत भू-दृश्य को चारों ओर से घेरते हैं और पवित्र नदी किनारों को धोती है जहां शहर बसा है…।'

ह्यूनसांग ने भारत यात्रा (630-644) के दौरान जालंधर तथा कुल्लू के साथ शतद्रु का भी उल्लेख किया है। ह्यूनसांग ने जालंधर की लंबाई 1000 ली अर्थात् 167 मील और चौड़ाई 800 ली अर्थात् 133 मील बताई है। अतः संभवतः शतद्रु का क्षेत्र भी जालंधर में आता था। वह कुल्लू से शतद्रु (बिलासपुर) होता हुआ गया होगा। ह्यूनसांग ने शतद्रु का घेरा 200 ली भी बताया है जो 333 मील है। कनिंघम ने ह्यूनसांग का शतद्रु सरहिंद माना है। कनिंघम के अनुसार और शतद्रु के घेरे के अनुसार कहलूर भी इसका भाग रहा होगा। हरमन गोट्ज के अनुसार बिलासपुर का षष्मुखेश्वर मंदिर, जो बिलासपुर झील में डूब चुका है, सातवीं शताब्दी के शतद्रु राज्य का हो सकता है। यहीं रंगनाथ मंदिर का कुछ भाग या नींव आठवीं शताब्दी की है।

शशिवंश विनोद

शशिवंश विनोद बिलासपुर के कवि गणेशा सिंह बेदी द्वारा रचित काव्य है। ये बिलासपुर के दरबारी कवि थे जो संवत् 1910 वि. में आनंदपुर से बिलासपुर आए। उन्होंने स्वयं को गुरुनानक की बारहवीं पीढ़ी से संबंधित बताया है। वे राजा हीरा चंद के समय बिलासपुर आए। राजा हीरा चंद का समय 1857-1882 (हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स) बताया है। उसका लड़का अमर चंद 1883 में गद्दी पर बैठा। बिलासपुर की कहानी में हीरा चंद के राजगद्दी पर बैठने की तिथि 6 बैशाख सं. 1907 अर्थात् 1850 दी है। कवि गणेशा सिंह बेदी को डॉ. मनोहर लाल (अब स्वर्गीय) ने खोजा। इन पर डॉ. मीनाक्षी शर्मा ने शोध कार्य किया है जो हिमाचल कलां संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा छापा गया है।

गणेशा सिंह बेदी की शशिवंश विनोद के अतिरिक्त श्रीकृष्णचंद्र चांद्रिब, चमत्कार चिंतामणि, नानक सूर्योदय जन्मसाखी, भक्ति चंद्रिका आदि रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त मेघमाला, मेघविलास, आयुर्वेद संबंधी रचनाएं भी इन द्वारा की गई हैं।

शशिवंश विनोद की रचना सं. 1946 में हुई और इसे सं. 1947 में पूरा किया गया–

'शुभ संवत् 1947 दे मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षे दशम्यां रविवारे अश्विनी नक्षत्रे इदं शशिवंश विनोद ग्रंथ सम्पूर्णम्।' ग्रंथ का प्रकाशन 1949 वि. में हुआ।

कवि द्वारा अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा हर ग्रंथ में की गई है। श्रीकृष्ण

चंद चंद्रिका में राजा हीरा चंद का गुणगान इस प्रकार किया गया है :

'कवि जन का जगदेत नरन में को वर कहिए।
नगन माहिं को कठिन अंक युत को सह लहिए।।
समर शूर अभिलाष कौन दशरथ पितुआही।
यश जग में किमि होत व्याकुल पग माहीं।।
जग कहा निवाहत सती नर, को तिय हरि उर शोभचय।
शम्भुज मृगिंद उत्तर दयो, श्री नृप हीराचंद जय।।'

इस प्रकार तीनों राजाओं—हीरा चंद, अमर चंद तथा विजय चंद की प्रशंसा तथा गुणगान किया गया है।

इस गुणगान तथा ग्रंथ के काव्य में होने से ऐतिहासिक तथ्यों संबंधी शंका उत्पन्न होती है। ग्रंथ के लिखने की प्रेरणा निम्न प्रकार से स्वीकार हुई है :

'सु मति सधीर उर न्याह निपुन सुखकंद। हरि भक्ति अनुरक्तयन श्री नृप अमर सुचंद।'

ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन में भी अतिशयोक्ति दिखाई पड़ती है। बीर चंद द्वारा कहलूर कोट के बनवाने के बाद बारह ठकुराइयां जीतने का वर्णन यूं किया गया है :

'प्रथमै बाघल जीत कैनहर ठकुराई। बेझा धामी मार क्योंठल पै धाई।।
कीनो फते कुठाड़ को जुब्बल को मारा। लैबघाट घुनयार को पुन सैन घुमारा।।
जीत भजि महिलोग को हरख्यो नररायी। नजराने तापर करे माफक ठकुराई।।
पुन केतक दिन पाह कै हित लैन पंजोरा। चढ़यो भूप संग सैन लै करकै बड़ जोरा।।
फिरे बद्दीयां ग्राम में राने सब साथा। सुनी खबर ताही समै सिरमौर जु नाथा।।
ले चतुरंगिनी आपसी रिस चढयो नरेशा। सन्मुख उतरयो आय के कर जोर विशेषा।।

इससे आगे सिरमौर से घमासान युद्ध और उस द्वारा संधि का उल्लेख है जो सत्य प्रतीत नहीं होता। क्योंथल, सिरमौर तथा कांगड़ा से युद्धों का उल्लेख ऐतिहासिक प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार वीरचंद द्वारा सं. 754 में यहां आने की बात भी प्रामाणिक नहीं है :

'हु तो चरुंजा सात सै विक्रम सन् तबहीं। बीरचंद इत आन कै गादी थित जबहीं।'

उधरण चंद के बाद सं. 815 में यशकरन, 870 वि. में मदन ब्रह्म, 919 वि. में अहल चंद। फिर कहल चंद, सलार चंद, मैण चंद, सुलखन चंद, कान चंद, अजीत

चंद राजा हुए।

शशिवंश विनोद की प्रतियां बिलासपुर में कुछ लोगों के पास उपलब्ध हैं।

राजवंश

बिलासपुर में चंद्रवंशी राजा रहे हैं जिनका मूल बुंदेलखंड के चंदेरी से माना जाता है। बिलासपुर के इतिहास का एकमात्र स्रोत शशिबंस विनोद है जो कवि गणेशा सिंह बेदी ने लिखा और सन् 1892 में प्रकाशित हुआ। ठाकुर काहन सिंह बुलोरिया द्वारा लिखित तारीख-ए-राजपूतां मुल्क-ए-पंजाब में भी इस राज्य के बारे में कुछ प्रकाश पड़ता है।

बिलासपुर में यह राज्य कब स्थापित हुआ, इस बारे में निश्चित तौर पर कुछ ज्ञात नहीं है, संभवतः ग्यारहवीं शताब्दी में जब आक्रमणकारियों ने पंजाब पर आक्रमण किए तो उनका प्रभाव शिवालिक पहाड़ियों पर भी पड़ा। जब केंद्रीय सत्ता की शक्ति क्षीण हुई तो नए-नए सामंत उभरे। शतद्रु राज्य भी छिन्न-भिन्न हुआ और मालवा से आए चंदेल वंशीय राजपूतों ने यहां राज्य की नींव डाली।

शशिबंस विनोद में राजाओं की वंशावली वि. 754 (697 ई.) से आरंभ की है। किंतु यह राज्य इसके बाद स्थापित हुआ। वंशावली में सुकेत और क्योंथल को पुराना राज्य माना है जो दो भाइयों द्वारा स्थापित हुआ। सुकेत की स्थापना यदि 770 ई. में हुई तो शशिबंस विनोद के अनुसार यह राज्य लगभग 1300 ई. में स्थापित हुआ होगा। विनोद में बिलासपुर के संस्थापक बीर चंद के बारे में निम्न पद्य दिया गया है :

'पहले बाघल जीते कुनिहार ठकुराई। बेजा, धामी मारकर क्योंथल पै धाई।'

कहलूर के संस्थापक बीर चंद के बारे में कहा जाता है कि उसने बारह ठकुराइयों—बाघल, कुनिहार, बेजा, धामी, क्योंथल, कुठाड़, जुब्बल, बघाट, कोटखाई, नेहारा, भज्जी-महलोग, मांगल और बलसन पर विजय पाई। ये सभी राज्य ग्यारहवीं शताब्दी के बाद ही अस्तित्व में आए। इसमें एक क्योंथल राज्य पुराना है जिसकी स्थापना सुकेत के साथ हुई। संभवतः रचनाकार ने अपने राजा को पराक्रमी दिखाने के लिए क्योंथल का नाम भी जोड़ दिया। सुकेत तथा क्योंथल बिलासपुर से बहुत पहले स्थापित हुए, यह निश्चित है।

सुकेत 770 में स्थापित हुआ और बिलासपुर के 44 राजाओं के मुकाबले वहां 50 राजा हुए। यदि बिलासपुर के 44 राजाओं को बाईस वर्ष प्रति समय दिया जाए तो राज्य की स्थापना हचिसन-वोगल के अनुसार लगभग 900 ई. में हुई होगी। किंतु साक्ष्यों के आधार पर यह बहुत बाद में हुई होगी।

बीर चंद (900 ई.)

बिलासपुर राज्य का संस्थापक बीर चंद माना जाता है जो बुंदेलखंड के चंदेरी के राजवंश में से था।

कहा जाता है, चंदेरी वंश के 70वें राजा का नाम हरिहर चंद था। हरिहर चंद ने चंदेरी राज्य का सारा कार्यभार अपने पुत्र गोबिंद चंद को सौंप दिया और स्वयं अन्य चार पुत्रों—बीर चंद, गंभीर चंद, कबीर चंद और सुबीर चंद को साथ लिए ज्वालामुखी मंदिर में दर्शनार्थ प्रस्थान किया। उन दिनों कांगड़ा का राजा नादौन में रहता था। राजा तथा उसके पुत्र वहां कुछ दिन ठहरे। दोनों राजाओं के सैनिकों में इस बीच सैनिक खेल हुए। एक बार हरिहर चंद लगातार तीन दिन तक कांगड़ा के सैनिकों को हराता रहा। चौथे दिन के सैनिक खेल में हरिहर चंद के पुत्र सुबीर चंद के प्राण ही चले गए। अतः दोनों राजाओं में अब खेल की जगह लड़ाई हुई जिसमें हरिहर चंद और कांगड़ा का राजा दोनों ही मारे गए। कुछ का कहना है कि इसमें कांगड़ा के राजा का बड़ा पुत्र मारा गया। लड़ाई के बाद तीन भाई बीर चंद, कबीर चंद और गंभीर चंद ज्वालामुखी गए। ज्वालामुखी से तीनों भाई तीन दिशाओं में निकल गए। कबीर चंद कुमाऊं की ओर चला गया। वहां किसी राजा ने उसे धर्मपुत्र बना लिया जहां उसने अपना राज्य स्थापित किया। गंभीर चंद हिमटा या चनेहणी की ओर गया। बड़ा भाई बीर चंद सतलुज घाटी की ओर गया। सबसे पहले वह जंदबड़ी पहुंचा। यहां स्थानीय ठाकुरों को हराकर सतलुज के बाएं किनारे बसा और एक किला बनाया।

यह कथा अन्य राज्यों, जैसे चंबा, सुकेत के राजवंशों की स्थापना की भांति है जहां बाहर से आकर राजपूतों ने अपने राज्य स्थापित किए।

राजा बीर चंद के समय ही श्री नैणा देवी मंदिर तथा कोट कहलूर की स्थापना की कथा है। जनश्रुति है कि नैणा नाम के एक गूजर ने राजा से कहा कि एक गाय प्रतिदिन एक शिला पर अपना दूध गिराती है। जब राजा ने वहां जाकर शिला हटाई तो नीचे देवी की प्रतिमा मिली। अतः राजा ने पहाड़ी पर नैणा देवी का मंदिर बनवाया। एक दूसरी कथा के अनुसार कहलू नाम के एक गूजर ने राजा को बताया कि एक शिला पर खड़ी बकरी ने तीन बार बाघ को अपने सींगों से परे धकेल दिया। यह शिला चमत्कारी है। अतः राजा ने पहाड़ी के अंत में, जहां वह शिला थी, एक किला बनाया जिसका नाम कहलू गूजर के नाम पर कोट कहलूर रखा। अतः यह क्षेत्र कहलूर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उक्त कथाओं से पता चलता है कि कहलूर की स्थापना सन् 900 में नहीं अपितु बाद में हुई होगी। यहां गूजरों का उल्लेख, श्री नैणा देवी मंदिर तथा कोट

कहलूर की स्थापना इसे इतना पीछे नहीं ले जा सकती। बाद में इस राजा ने बारह ठकुराइयों को भी जीता जो बाद में स्थापित हुई हैं। क्योंथल को छोड़ ये सभी ठकुराइयां ग्यारहवीं शताब्दी में अस्तित्व में आईं। वाल्टर हेमिल्टन ने इसे 1390 ई. में स्थापित माना है। किंतु यह राज्य लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में स्थापित हुआ होगा।

बीर चंद ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद (शशिबंश विनोद तथा बिलासपुर की कहानी) कांगड़ा तथा सुकेत से लड़ाई करके सुन्हासी, वाड़ी, हरवाड़ तथा सुकेत से गेहड़वीं, तियून के परगने जीते। इसके बाद बारह ठकुराइयों—बाघल, क्योंथल, भज्जी, महलोग, धामी, कोटखाई, बलसन, नेहरा, कुनिहार, बेजा, कुठाड़ आदि को अधीन करना आरंभ किया। अंत में सिरमौर के साथ लड़ाई में संधि हुई और सीमा-निर्धारण किया गया। यह सीमा गोरखगढ़ में नियत हुई।

शशिबंस विनोद में जिन ठाकुराइयों का उल्लेख है वे मुस्लिम आक्रमण के बाद अस्तित्व में आए। कांगड़ा और सिरमौर शक्तिशाली राज्य थे जिन्हें कवि गणेशा सिंह ने अपने राजा की प्रशंसा के लिए डाला होगा। यह रचना राजा हीरा चंद (1857-83) के समय लिखी गई अतः यह भी संभव है कि कवि को पुरातन इतिहास का पता न हो।

अतः बिलासपुर की स्थापना ग्यारहवीं शताब्दी से पहले हुई नहीं प्रतीत होती।

बारह ठकुराइयों को बीर चंद ने अपनी करद बनाया जिन्हें सायरी या असूज के जलसे में 'नजर' लेकर आना पड़ता था। सन् 1815 में ब्रिटिश शासन तक 7800 रुपए वार्षिक कर दिया जाता रहा।

बीर चंद के बाद बहुत से राजा हुए जिनके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। वंशावली में बीर चंद के बाद उधरण चंद (787 वि.), यशकरण (815 वि.), मदन ब्रह्म (870 वि.), अहल चंद (919 वि.), कहल चंद, सलार चंद, नैण चंद, सैण चंद, सुलक्षणा चंद, कान चंद।

कान या काहन चंद ने हिंडूर को जीता और अपने दूसरे पुत्र सुजीत चंद को इसका शासक बनाया।

काहन चंद के बाद अजीत चंद (1156 वि.), कोकल या गोकल चंद, उदय चंद (1190 वि.), गैण चंद (1200 वि.), पृथी चंद, सिंगार चंद, मेघ चंद राजा बने।

मेघ चंद (1300 ई.)

सिंगार चंद के बाद बड़े पुत्र मेघ चंद ने गद्दी संभाली। मेघ चंद बहुत अत्याचारी था। अतः उसे राज्य से निकाल दिया गया। वह अपने कुछ सेवकों सहित कुल्लू चला गया जहां कुल्लू के राजा ने उसका स्वागत किया। राजा का एक संबंधी मल

दरोल दिल्ली सुलतान के पास शिकायत लेकर गया कि राजा को पुनः स्थापित किया जाए। अतः राजा को स्थापित करने का आदेश दिल्ली से आया और राजा ने कुल्लू से वापस आकर कुछ लड़ाई के बाद राज्य पुनः प्राप्त किया। राजा के पुनः आने पर देलग के जमींदार पहले व्यक्ति थे जो उसे नजर करने तोहफे लाए। इस कारण इन लोगों को दरबार में सबसे पहले भेंट देने का श्रेय प्राप्त हुआ। मियां मल दरोल को इस कारण जागीर मिली और वजीर नियुक्त किया गया।

मेघ चंद के बाद देव चंद, आलम चंद और अभैसांद राजा बने। अभैसांद सिकंदर लोधी का समकालीन माना जाता है। वंशावली में उल्लेख है :

'अभैसांद भूपति भयो जग बीर विशाला। हुतो सिकंदर बादशाह लोधी तिह काला।'

अभैसांद के समय की एक घटना का उल्लेख किया जाता है। कहा जाता है कि आनंदपुर के पास लाहौर जाते हुए एक अमीर द्वारा खाने के उद्देश्य से पशुओं को मारने के लिए ले जाया गया। यह सुनकर राजा ने कसाइयों को मारने तथा पशुओं (संभवतः गाय) को बचाने के आदेश दिए। ऐसा करने पर अमीर ने कोट कहलूर पर घेरा डाल दिया। किले को जीत न पाने पर किले के द्वार खोलने के लिए एक हाथी मंगवाया गया। राजा ने एक ही बार में हाथी की सूंड़ काट दी और अमीर को, जिसका नाम ततार खां था, मार दिया और सेना हरा दी। अमीर का बेटा पिता की मृत्यु की खबर सुन सेना सहित संधि के उद्देश्य को सामने रख राजा के पास आया। उसे किले के भीतर बुला लिया गया। संधि के अनुसार राजा को भी उसके कैंप में जाना था। अतः राजा अपने सबसे छोटे लड़के सुंदर चंद के साथ उनके कैंप में गया। उन्हें निहत्था ले जाया गया और धोखे से मार दिया गया। उनके शव लड़ाई के बाद प्राप्त किए गए और अंतिम संस्कार किया गया जिसमें रानियां सती हुईं।

संपूर्ण चंद (1380 ई.)

संपूर्ण चंद ने बहुत कम समय राज किया। इसकी अपने भाई रतन चंद से अच्छी नहीं बनी।

रतन चंद (1400 ई.)

रतन चंद ने लंबे समय तक शासन किया। वंशावली में उल्लेख है कि इस राजा ने शेर का शिकार किया। इसे दिल्ली के सुलतान द्वारा भी बुलाया गया और बहादुरी के लिए खिल्लत प्रदान की। इसे एक तलवार भी भेंट की गई जो सुरक्षित रखी गई।

रतन चंद के दो पुत्र थे–नरेंद्र चंद तथा मियां मिट्ठू। नरेंद्र चंद राजा बना जिसके बाद फतेह चंद, पहाड़ चंद, राम चंद और उत्तम चंद राजा बने। इन राजाओं के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

ज्ञान चंद (1570 ई.)

ज्ञान चंद के समय दिल्ली में अकबर का शासन माना जाता है :

'हुतो साह अकबर तबै देहली के माही। सूबा सहर सरंद को कासम खां आही।'

यदि वह अकबर का समकालीन था तो यह माना जा सकता है कि अन्य पहाड़ी राज्यों की भांति बिलासपुर भी मुगल साम्राज्य के अधीन आ गया होगा।

ज्ञान चंद की दूसरों को अपने अधीन करने की प्रकृति ने छोटे-छोटे ठाकुरों को दुश्मन बना दिया अतः सरहिंद के नवाब को शिकायत भेजी गई। राजा को गिरफ्तार कर नवाब या सूबेदार के सामने लाया गया तो राजा की सुंदरता को देख सूबेदार का मन बदल गया। उसने अपनी लड़की का राजा से विवाह करने और इस्लाम अपनाने की पेशकश की। ज्ञान चंद के दो छोटे लड़के रामा तथा भीमा राजा और कई लोगों के साथ मुस्लिम हो गए। केवल उत्तराधिकारी बिक चंद ही हिंदू रहा।

जब राजा वापस आया तो बिक चंद अपनी मां सहित सतलुज के पार सुन्हाणी जा बसा। बाद में वह कांगड़ा चला गया जहां राजा त्रिलोक चंद (1600-12) ने उसका स्वागत किया और अपनी पुत्री से विवाह किया।

बिक चंद (1600 ई.)

ज्ञान चंद के बाद बिक चंद राजा बना। बिक चंद ही विक्रम चंद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ज्ञान चंद की मृत्यु के बाद संभवतः विक्रम चंद सुन्हाणी से बिलासपुर गया। उसकी दोनों रानियां, जो कांगड़ा तथा बाघल से थीं, सुन्हाणी में ही रहीं। ये दोनों रानियां गर्भवती थीं। दोनों रानियों को लगभग एक ही समय पुत्र उत्पन्न हुए। कांगड़ा की रानी को पहले पुत्र प्राप्त हुआ किंतु राजा को पहले खबर बाघल की रानी द्वारा पुत्र-प्राप्ति की पहुंचाई गई। इस पर कांगड़ा की रानी ने अपना पुत्र पहले होने की बात कही जिसे जांच के बाद स्वीकार कर लिया गया। इसे ही टिक्का या युवराज माना गया। इसका नाम सुलतान चंद था जबकि दूसरे का केशव चंद। इन दोनों में गद्दी के लिए संघर्ष बना रहा।

सुलतान चंद (1620 ई.)

विक्रम चंद की मृत्यु के बाद सुलतान चंद उत्तराधिकारी बना किंतु कुछ समय

बाद दोनों में राजगद्दी के लिए संघर्ष हुआ और दोनों ही मारे गए। सुलतान का लड़का कल्याण चंद इसके बाद शासक बना।

कल्याण चंद (1630 ई.)

कल्याण चंद सुकेत के राजा श्याम सेन (1620-50) का समकालीन था। अतः लगभग 1630 में वह राजगद्दी पर बैठा होगा। कल्याण चंद ने हिंडूर की सीमा पर एक किला बनवाया जिसके फलस्वरूप दोनों राज्यों में लड़ाई हुई। हिंडूर का राजा लड़ाई में मारा गया। इसका पुत्र अभी छोटा ही था अतः रानी कल्याण चंद की शरण में आई और शिशु राजकुमार को कल्याण चंद की देखरेख में रखा गया। कल्याण चंद ने स्वीकारा और उसके वयस्क होने तक राज्य की प्रबंध व्यवस्था संभाली।

कल्याण चंद के अंतिम समय एक दुखद घटना घटी जिससे राज्य में घातक स्थिति पैदा हो गई। सुकेत और बिलासपुर के आपस में अच्छे संबंध थे। एक दिन राजा तथा रानी (जो सुकेत के राजा श्याम सेन की पुत्री थी) चौसर खेल रहे थे। उसी समय एक व्यक्ति ने राजा की प्रशंसा में उसे 'सात धारों' का राजा कहा। इस पर रानी ने धारों के नाम सुनकर कहा कि इसमें एक उसके पिता के अधीन है। इस पर राजा गुस्से में आ गया और चौसर बोर्ड (पासा) उठाकर मारा जो रानी के माथे पर लगा और खून निकल आया। रानी ने खून से एक पत्र पिता को लिखा। अतः दोनों राज्यों में लड़ाई छिड़ गई। महादेव में लड़ाई लड़ी गई। कल्याण चंद के घोड़े को गोली लग गई। उसने संघवाल मियां से घोड़ा मांगा जिसने देने से इनकार कर दिया। राजा बहुत घायल था जिसकी बिलासपुर ले जाते हुए मृत्यु हो गई। जहां मृत्यु हुई उस स्थान को 'कल्याण चंद की द्वारी' कहा जाता है। रानी सुकेती सती हो गई। संघवाल परिवार को राजा से दगा करने के कारण राज्य में घुड़सवारी से वंचित किया गया।

यह संदर्भ सुकेत के इतिहास में भी आता है।

तारा चंद (1645 ई.)

कल्याण चंद के आठ पुत्र थे जिनमें ताराचंद सबसे बड़ा था। अतः उत्तराधिकारी बना। वह कमजोर राजा साबित हुआ और उसने राज्य की ओर ध्यान नहीं दिया। पड़ोसी राज्यों ने बहुत सा इलाका छीन लिया। करद राज्यों ने कर देना बंद कर दिया। उसने हिंडूर में तारागढ़ किला बनवाया। तारा देवी मंदिर भी बनवाया। गुरु हरगोबिंद (1595-1644) के बाद गुरु हरराय (1630-1661) ने कीरतपुर में रहना आरंभ किया तो मुगल बादशाह ने उन्हें निकालने के लिए फरमान भेजा। राजा ने नहीं माना तो नजबत खां ने शाहजहां के आदेश पर सन् 1645 में कहलूर पर आक्रमण किया और राजा को बंदी बना लिया। गुरु हरराय को सिरमौर में शरण लेनी

पड़ी। इस स्थिति का लाभ उठाकर सुकेत और कांगड़ा को मिलाकर हंडूर के राजा ने तीन ओर से हमला किया। हंडूर ने कई इलाके जीत लिए। राजा ने सुन्हाणी छोड़ पंजगाई में रहना आरंभ किया।

दीप चंद (1650 ई.)

तारा चंद की मृत्यु के बाद बड़ा पुत्र दीप चंद शासक बना। अब तक राजधानी सुन्हाणी में थी। यह बिक चंद या विक्रम चंद के समय राजधानी बनी थी। दीप चंद को इस स्थान से घृणा हो गई और उसने स्थान बदलना चाहा। चार फकीरों की सलाह से, जिनमें दो हिंदू तथा दो मुसलमान थे, नए स्थान की खोज की गई और सतलुज के बाएं किनारे व्यास गुफा का स्थान ढूंढ़ा गया। यहां राजा ने महल बनाया और नदी के किनारे नगर बसाया जिसका नाम व्यासपुर रखा। देवमति का मंदिर बनवाया, यह राजा की कुलज बनी। धौलरा में नारसिंह का मंदिर बनाया गया। इसमें कुल्लू से ब्याही रानी द्वारा लाई प्रतिमा रखी गई।

यह माना जाता है कि यहां व्यास गुफा तथा रंगनाथ का मंदिर पहले से विद्यमान था। शशिवंश विनोद में यहां राजधानी स्थापित करने की तिथि सन् 1654 दी है।

राजा की दो रानियां थीं, कुल्लू से कुंकम देवी और मंडी से जलाल देवी। पहली के एक लड़की तथा दूसरी के दो पुत्र हुए–भीम चंद तथा धन चंद। राजा ने अधिकांश इलाके जीत लिए जो पिता ने खो दिए थे। ठकुराइयां, जिन्होंने कर देना बंद कर दिया था, पुनः अधीन की गईं। दीप चंद को औरंगज़ेब द्वारा उत्तर-पश्चिम फ्रंटियर के अभियान में भी भेजा गया। वापसी पर राजा को पांच लाख तोहफे में मिले।

सन् 1656 में सिखों द्वारा बिलासपुर पर हमला हुआ और अपने अधीन किया गया। इसके बाद राजा नादौण गया जहां कांगड़ा के राजा द्वारा उसका स्वागत हुआ। किंतु उसके रात के खाने में जहर डाला गया। एक सेवक के चेतावनी देने पर भी वह खाना खा गया और मर गया।

इस राजा के समय 'जै देवा' कहने पर आपत्ति हुई। मियां तथा राजपरिवार के लोग भी प्रजा से जै देवा कबूल करते थे। राजा ने आदेश निकाले कि भविष्य में जैदेवा केवल राजा को कहा जाएगा और जै मियों को। ऐसा न करने पर जागीरें जब्त होंगी। अतः सभी मियों ने इसका पालन किया। राणाओं के लिए 'राम-राम' संबोधन नियत किया गया।

भीम चंद (1667 ई.)

दीप चंद की मृत्यु से राज्य को बहुत हानि हुई। भीम चंद उस समय बच्चा

था। अतः दीप चंद का भाई माणक चंद वजीर बनाया गया। माणक अत्याचारी साबित हुआ। उसने पुराने अधिकारियों को बंदी बना लिया। यह जानकर राजमाता जलाल देवी ने उसे देश से निकाल दिया और अधिकारियों को छुड़ाया। माणक चंद राजा कांगड़ा के पास चला गया और उसे कहलूर पर हमला करने के लिए उकसाया। राजा कांगड़ा ने सरहिंद के सूबेदार से अनुमति लिए बिना ऐसा करना मुनासिब नहीं समझ और गलत सूचना देकर सूबेदार को कहलूर पर हमले के लिए राजी कर लिया। भीम चंद उस समय चौदह वर्ष का था। उसने हिंडूर तथा बारह ठकुराइयों से हमले को पछाड़ने के लिए कहा। हमला विफल कर दिया गया।

इस समय कुल्लू के राजा द्वारा सहायता मांगी गई जहां बुशहर का आक्रमण हुआ था। वह निरमंड तक गया। कई किले जीतकर हमलावरों को भगाकर कुल्लू के इलाके वापस करवाए। भीम चंद के समय सिखों का पुनः हमला हुआ जो पहाड़ों की ओर बढ़ना चाहते थे। गुरु गोबिंद सिंह अपने प्रारंभिक दिनों में निचली पहाड़ियों में रहे और मुगल सूबेदारों के विरुद्ध सहायता देते रहे। पहाड़ी राजाओं को आशंका भी हुई कि कहीं ये पहाड़ों को अपने अधीन कर लें। सन् 1682 में गुरु गोबिंद सिंह बिलासपुर में थे और दोनों में मतभेद हो गया। लड़ाई में राजा हार गया। सन् 1685 में राजा ने गुलेर, कांगड़ा तथा अन्य राज्यों की सहायता ली और सिखों पर आक्रमण किया किंतु फिर बुरी तरह हार हुई।

सन् 1700 में फिर विवाद हुआ और कांगड़ा के राजा आलम चंद तथा भीम चंद ने पुनः सिखों पर आक्रमण किया। आनंदपुर में एक बड़ी सेना के साथ हमला किया किंतु फिर हार हुई। इस सभी हमलों के बावजूद गुरु गोबिंद सिंह ने राजा से शांति स्थापित की।

गुरु गोबिंद सिंह से राजा की प्रतिद्वंद्विता के बारे में एक दूसरा प्रसंग भी बताया जाता है। आसाम के राजा ने गुरु जी को एक हाथी भेंट किया। हाथी के गुणों की चर्चा से राजा को उसे देखने की इच्छा हुई। वह आनंदपुर गया और हाथी देख उसे पाने की तरकीब सोचने लगा। कुछ समय बाद राजा के पुत्र का विवाह गढ़वाल नरेश फतहशाह की पुत्री से होना था अतः राजा ने अपने वजीर को हाथी मांगने भेजा। गुरु जी ने हाथी देने से मना कर दिया। इससे दोनों में वैमनस्य बढ़ गया। गुरु ने अपने वजीर नंद चंद को सैनिक तैयारी के लिए कहा। इस बीच सिरमौर के राजा मेदनी प्रकाश ने गुरु को नाहन बुलाया। गुरु नाहन चले गए। भीम चंद के पुत्र के विवाह के अवसर पर गुरु जी ने भी फतहशाह की पुत्री को उपहार भेजे। राजा ने इन उपहारों को लौटाने के लिए फतहशाह को बाध्य किया। अतः गुरु जी ने लड़ाई की तैयारी की। इस लड़ाई में हिंडूर का राजा हरि चंद हार गया। यह युद्ध 1686

में हुआ। इसके बाद गुरु आनंदपुर वापस लौटे। गुरु ने अब पहाड़ी राजाओं से मिलकर रहना उचित समझा। भीम चंद के व्यवहार में भी परिवर्तन आ गया।

जम्मू के सूबेदार मियां खां ने एक सैनिक अधिकारी अलीफ खां को कांगड़ा से कर वसूलने भेजा। कांगड़ा के राजा कृपाल चंद ने कहा कि यदि कहलूर का राजा भीम चंद कर दे देगा तो वह भी देगा। जब भीम चंद के पास कर के लिए संदेश भेजा तो उसने भी मना किया। भीम चंद ने गुरु गोबिंद सिंह से सहायता ली। दोनों सेनाओं ने नादौन में अलीफ खां के साथ युद्ध किया और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। यह युद्ध नादौन में 1687 में हुआ बताते हैं। कांगड़ा के राजा का भी भीम चंद से अच्छा संबंध हो गया।

राजा दीप चंद की कुल्लू से ब्याही रानी कुंकम देवी से एक पुत्री थी। किसी ने यह खबर फैला दी कि राजा की दूसरी रानी, जो मंडी से थी, इस कन्या का विवाह अपने भाई राजा मंडी से करवाना चाहती है और राजा भीम चंद की भी इसमें सहमति है। रानी कुंकम देवी यह नहीं चाहती थी। उसने इसे सच मानकर अपने महल में आग लगा ली जिससे दोनों मां-बेटी जीवित जल गईं। इससे मंडयाली रानी और राजा भीम चंद को बहुत दुःख हुआ। राजा ने दोषी व्यक्ति को प्राणदंड दिया और पुत्री के नाम से मंदिर बनवाया और सदाव्रत लगाया गया।

जीवन के अंतिम दिनों में लड़ाइयों से तंग आकर राजा ने संन्यासी बनने का मन बनाया। उसने 1662 ई. में अपने पुत्र अजमेर चंद के लिए गद्दी छोड़ दी। राजा की मृत्यु 1712 में हुई।

अजमेर चंद (1692 ई.)

अजमेर चंद ने लंबे समय तक शांतिपूर्ण राज किया। वह धार्मिक प्रवृत्ति का था और पूजा-पाठ में लगा रहता था। एक बार उसके हाथ से एक मूर्ति जमीन पर गिर गई। इस बात की सजा उसने खुद पर पचास हजार रुपए जुर्माना करके दी। यह राशि गरीबों में बांटी गई।

इस राजा के गुरु गोबिंद सिंह से संबंध अच्छे नहीं रहे। 'बिलासपुर की कहानी' के अनुसार इसने सिरमौर पर चढ़ाई की और यमुना के किनारे अजमेरपुर नाम से किला बनवाया। किंतु हचिसन-वोगल ने अजमेरगढ़ किला हिंडूर की सीमा पर बताया है।

राजा का विवाह गढ़वाल, सिरमौर तथा ठकुराइयों में हुआ तथा सात पुत्र हुए जिनमें बड़े का नाम देवी चंद था। राजा की मृत्यु सन् 1741 में हुई। कहा जाता है कि वह तीर्थयात्रा के लिए काशी गया और वहीं उसकी मृत्यु हो गई।

देवी चंद (1741 ई.)

देवी चंद के सिंहासनारूढ़ होते ही हिंडूर में विद्रोह हो गया और राजा मान चंद तथा उसका बेटा मारे गए। प्रजा तथा अधिकारियों ने देवी चंद से राजपाट संभालने का आग्रह किया। राजा ने स्वयं राजपाट न संभाल कर हिंडूर राजपरिवार के एक व्यक्ति गजे सिंह हिंडुरिया को राजा बना दिया।

लगभग 1751 के बाद जसवां के राजा अभय चंद ने कांगड़ा पर हमला किया। राजा घमंड चंद कांगड़ा ने देवी चंद से सहायता मांगी। दोनों ने मिलकर अभय चंद को भगा दिया। इसके बाद अभय चंद ने अपने भाई जगरूप चंद को राज्य से निकाल दिया। देवी चंद ने उसे पुनः राज्य दिलवाया।

देवी चंद ने मुगलों द्वारा छीने इलाके भी वापस लिए। इससे जालंधर का नवाब अदीना बेग खान नाराज हो गया। राजा ने अपने वजीर को भेज मामला ठीक करवा लिया।

देवी चंद के समय राज्य में समृद्धि आई। नगर में चुंगी 20,000 रुपए तक हो गई और मैदानों से बहुत से लोग आकर राज्य में बसे।

सन् 1762 में भज्जी के कियारी गांव के पास पहाड़ी गिरने से सतलुज दरिया रुक गया और बयालीस दिन तक रुका रहा। इससे बुशहर में भी बाढ़ आई। राजा ने बांध टूटने की सूचना तथा बचाव के लिए एक-एक कोस पर बंदूकधारी व्यक्तियों को रोपड़ तक तैनात किया ताकि बांध टूटने की खबर बंदूक चलाकर दी जाए और लोग सुरक्षित स्थानों पर चले जाएं। अतः इस तरह से राज्य में जान-माल का कोई नुकसान नहीं हुआ।

राजा के समय बनारस से जंगर नाम का एक भाट ब्राह्मण आया जिससे राजा के अच्छे संबंध हो गए और राजा ने उसे जागीर बख्शी। देवी चंद ने धवानी कोट किला बनाया और हिंडूर के राजा को रामगढ़ किला दिया।

राजा ने अधीनस्थ ठाकुरों से नकदी के रूप में कर लेना आरंभ किया। बसवाड़ा में नकद कर की सूची दी गई है। बाघल तथा बघाट एक हजार, क्योंथल तीन हजार, बेजा एक सौ, महलोग व मांगल सात सौ, भज्जी सात सौ, धामी तीन सौ, कुठाड़ सौ, कोटखाई तीन सौ, कुनिहार सौ तथा बलसर व नेहरा दो सौ रुपए वार्षिक कर लिखा है, जो सही नहीं है।

देवी चंद की मृत्यु 1778 में हुई।

महान चंद (1778 ई.)

देवी चंद का कटोच राजकुमारी नागर देवी से सन् 1772 में पुत्र हुआ जिसका

नाम महान चंद रखा गया। देवी चंद की मृत्यु के समय महान चंद छह वर्ष का था। अतः छह वर्ष की आयु में राजा बनने पर राज्य का काम मां नागर देवी तथा वजीर रामू ने संभाला। नागर देवी एक योग्य महिला थी। राजा की मृत्यु पर क्योंथल ने अपने को स्वतंत्र घोषित किया तो रानी ने मियां शक्ति चंद को सेना सहित भेजकर राजा पृथ्वी सेन को हराया।

1781 में सिख सेनापति जय सिंह तथा महाराजा संसार चंद ने जब मुगल किलेदार सैफ अली खां पर कांगड़ा किले में घेरा डाला तो उसने राजमाता नागर देवी से सहायता मांगी। जॉर्ज फॉर्स्टर ने लिखा है कि उसने बिलासपुर कैंप में, जहां से वह गुज़रा,आठ सौ घुड़सवार तथा आठ सौ पैदल सैनिक देखे जो हथियारों से लैस थे। ये सैनिक पहाड़ी के दोनों ओर किंकर्तव्यविमूढ़-से थे। कहा जाता है, इन सैनिकों ने कांगड़ा के कुछ इलाकों में लूटपाट की। किंतु कांगड़ा किला संसार चंद के हाथ आ गया।

चंबा अभिलेखों में एक पत्र टांकरी में है जिसमें रानी ने अपने नाबालिग पुत्र महान चंद की सुरक्षा के लिए राजा राज सिंह चंबा को लिखा है। यह पत्र 24 फाल्गुन सं. 58 (1782) का है।

रामू वजीर सन् 1785 में मर गया। रानी के अधिकारियों से मतभेद हो गए। अब बैरागी राम, जो मंडी का वजीर था (बिलासपुर की क़हानी में यह कुल्लू का वजीर बताया है) को रानी ने वजीर बनाया। वजीर ने कुछ अधिकारियों को जेल भेज दिया। कांगड़ा और हिंडूर के साथ भी लड़ाई छेड़ दी। अतः कांगड़ा ने सैर खड्ड के पार का क्षेत्र तथा हिंडूर ने साथ लगते क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिए। अतः लोग बैरागी राय के खिलाफ हो गए और रानी ने राजा देवी चंद के छोटे भाई जोरावर सिंह को वजीर बनाया।

कांगड़ा और हिंडूर के सामने आने में असमर्थ पाकर रानी ने जोरावर सिंह को सिरमौर के राजा धर्म प्रकाश के पास सहायता के लिए भेजा और 50,000 रुपए देना तय किया। अतः धर्म प्रकाश सेना सहित बिलासपुर आया और कहलूर की सेना के साथ कांगड़ा के विरुद्ध आगे बढ़ा। बरोटा गांव में युद्ध हुआ और धर्म प्रकाश मारा गया। सेनाओं की हार हुई। कांगड़ा राजा ने बहुत क्षेत्र जीतकर झंझयार में छातीपुर नाम का किला बनवाया। इस घटना के बाद रानी की मृत्यु हो गई।

इस घटना का राजा महान चंद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह दरबारियों की सलाह अनसुना करता रहा। इससे सन् 1793 में बारह ठकुराइयों ने समझौता किया और राजा के अपने मंबंधी हिंडूर नरेश राम चंद ने महाराजा संसार चंद से समझौता कर लिया। उसने अपनी सीमा के साथ लगता कहलूर का इलाका भी छीन

लिया। अंततः महान चंद चौकन्ना हुआ और उसने सिख सरदार गुरदीत सिंह और देस्सा सिंह से सहायता मांगी। किंतु लड़ाई में दोनों सरदार मारे गए। हिंडूर के राजा राम सिंह ने बिलासपुर पर हमला करके नगर जला दिया। फतहपुर, बहादुरगढ़ रत्नपुर किलों को भी जीत लिया। महान चंद को कोट कहलूर में शरण लेनी पड़ी।

अट्ठारहवीं शताब्दी के अंत में नेपाल के गोरखों ने अपनी शक्ति बढ़ाई। उन्होंने सन् 1803 तक सतलुज तक के पहाड़ी क्षेत्र जीत लिए। उन्होंने अपना मुख्यालय गढ़वाल में रखा।

महान चंद ने अपने को असहाय पाते हुए अपने शत्रुओं कांगड़ा और हिंडूर से बदला लेने के लिए बिलासपुर के एक व्यक्ति शिवदेव राय द्वारा गोरखा सेनानायक अमर सिंह थापा को आमंत्रण दे डाला। यह आमंत्रण गोरखा नायक ने तुरंत स्वीकार किया और सन् 1805 के अंत में गोरखा सेना ने सतलुज पार की। सन् 1805 में हिंडूर के राजा राम सिंह को हराने के बाद गोरखा सेना ने मई, 1806 में महलमोरी में हुए युद्ध में महाराजा संसार चंद को हराया। संसार चंद ने कांगड़ा किले में शरण ली। महलमोरी कहलूर को वापस मिला। बारह ठकुराइयों में केवल भज्जी, धामी और कोटी महान चंद को दिए गए, शेष गोरखों ने अपने पास रखे। शिवदेब राय को उन्होंने बिलासपुर में अपना एजेंट नियुक्त किया।

सन् 1808 में आनंदपुर में कहलूर के रामू कोली नाम के हथावत के कोतवाल ने आनंदपुर के सोढ़ियों से झगड़ा कर लिया। उन्होंने रणजीत सिंह की सहायता ली और हथावत का क्षेत्र सिखों के अधीन हो गया।

सन् 1809 तक, चार वर्षों तक कांगड़ा किले के घेराव के बाद संसार चंद ने रणजीत सिंह की सहायता ली और रणजीत सिंह द्वारा गोरखों को सतलुज के पार भगा दिया गया किंतु बिलासपुर सन् 1814 तक गोरखों के अधीन रहा जब तक कि अंग्रेजों ने उन्हें नहीं भगाया। हिंडूर शासक राजा राम सिंह तथा अठारह ठकुराइयों ने भी गोरखों के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता मांगी। अतः अंग्रेज सेना डेविड ऑक्टर लूनी के नेतृत्व में नालागढ़ से मलौण पहुंची। यहां अंग्रेजों के साथ गोरखा तथा महान चंद की सेना का युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेज विजयी हुए। गोरखे भाग गए और महान चंद डेविड ऑक्टर लूनी की शरण में आया। 6 मार्च, 1815 को अंग्रेज सरकार ने राजा को एक सनद के द्वारा महान चंद को बिलासपुर राज्य सौंपा गया किंतु बारह ठकुराइयों को बिलासपुर से अलग स्वतंत्रता दी गई।

सन् 1818 में राजा ने वजीर संसारू को निकाल दिया जो लाहौर जाकर सिखों को बिलासपुर पर हमले का आमंत्रण दे आया। सिखों ने आकर कोटधार पर अधिकार कर लिया। राजा ने संसारू को पुनः वजीर बना लिया किंतु कोटधार का

क्षेत्र वापस नहीं मिल पाया।

अतः महान चंद के समय स्वयं ही बाहरी शक्तियों को आमंत्रण देकर बहुत सा क्षेत्र हाथ से निकाला गया। महान चंद एक कमजोर और आलसी राजा था। उसके समय अपने आमंत्रण पर ही गोरखों तथा सिखों के आक्रमण ने बिलासपुर की तो हानि की ही, समस्त पहाड़ी शासक पहले गोरखों, फिर सिखों और अंततः अंग्रेजों के अधीन हुए। यद्यपि अंग्रेजों का आधिपत्य होने से बिलासपुर रणजीत सिंह के हमले से बच गया।

सन् 1813 में महान चंद की एकमात्र संतान खड़क चंद का जन्म हुआ। ज्योतिषी ने पुत्र के जन्म पर कहा कि इसका जन्म बहुत दुर्भाग्यपूर्ण नक्षत्र में हुआ जो राज्य के लिए हानिकारक है। अतः महान चंद को उसे बारह वर्ष तक देखने को मना किया गया। बालक का पालन-पोषण दूर कलट नामक गांव में हुआ।

सन् 1819 में सिख सेनापति देस्सा सिंह मजीठिया तथा संसार चंद की सेनाओं ने सतलुज के दाएं किनारे हमला किया और किले जीते। सिखों ने बिलासपुर में सतलुज भी पार कर ली किंतु ब्रिटिश सरकार के हस्तक्षेप से वे पीछे हट गए। अतः उस समय से सतलुज के दाएं सिखों को कर देना आरंभ हुआ।

मार्च, 1820 में मूरक्राफ्ट बिलासपुर से गुजरा। राजा ने पहले उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। जब मूरक्राफ्ट ने तीन दिन ठहरने पर दवाई दी तथा लोगों का इलाज किया तो राजा ने उसकी सहायता चाही। मूरक्राफ्ट ने राजमहल, नगर का वर्णन किया है। बाजार उस समय खंडहर बन चुका था। आधे से ज्यादा दुकानें छोड़ लोग भाग गए थे। कुछ वर्षों में ही गोरखों ने नगर को दो बार लूटा था। राजा अपने भोग-विलास में डूबा रहता था और राजकाज अधिकारियों के जिम्मे था जो प्रजा को तंग करते थे।

सन् 1823 में अपने पुत्र के दसवें वर्ष राजा पुत्र को देखे बिना नहीं रह सका और उसे बुलवा लिया। क्योंकि बारह वर्ष का समय अभी नहीं हुआ था, अतः यह बुरा शकुन समझा गया और अगले वर्ष सन् 1824 में राजा की मृत्यु हो गई। इस राजा ने 46 वर्ष राज किया जिसमें बिलासपुर राज्य अपनी समृद्धि सदा के लिए खो बैठा।

खड़क चंद (1824)

बिलासपुर के इतिहास में खड़क चंद का समय एक काले पन्ने के समान है। जब वह गद्दी पर बैठा तो मात्र ग्यारह वर्ष का था। बचपन से ही यह बुरी संगत में पड़ गया। इसे शराब पीने की तथा अन्य बुरी आदतें पड़ गईं और अपने छोटे कार्यकाल में उनका शिकार रहा।

राजा के अवयस्क होने तक समिति राजकाज चलाती रही। वयस्क होने पर उसने उन सभी को कैद कर दिया जो राजकाज चला रहे थे। एक सदस्य मेहता बालकू को फांसी दे दी। बहुतों पर जुर्माने कर दिए। संबंधियों की जागीरें छीन लीं। बहुत से लोग बिलासपुर छोड़कर चले गए। उसके चाचा जगत सिंह ने जब समझाने का प्रयास किया तो वह नाराज हो गया।

प्रजा राजा के विरुद्ध हो गई। इस असंतोष को दबाने के लिए राजा ने तीन सौ रोहिला पठान भर्ती किए। अतः चंदेल राजपूतों ने भी मियां जगत सिंह के नेतृत्व में सेना तैयार कर दी। लेकिन इन्हें हारकर हथावत भागना पड़ा। सन् 1832 में संसारू वजीर की मृत्यु के बाद स्थिति और भी बिगड़ गई।

अंततः सर जॉर्ज रसल क्लार्क पोलिटिकल एजेंट अंबाला से आया। उसने राजा को सलाह दी कि संसारू के पुत्र विशन सिंह को वजीर नियुक्त करे तथा अपने संबंधियों से समझौता कर ले। राजा मान गया। पोलिटिकल एजेंट के कहने पर वह सतलुज के पार के इलाके के लिए रणजीत सिंह को 6000 रुपए कर भी देता रहा ताकि वह इलाका रणजीत सिंह के पास न चला जाए।

1835 में राज्य का दौरा करते हुए राजा को हथावत में पता चला कि मियां जगत सिंह राजा मंडी के पास सहायता के लिए गया है। अतः उसने मंडी पर आक्रमण कर दिया। मंडी का राजा जालिम सेन (1826-39) मंडी छोड़ व्यास नदी के पार चला गया। नगर खड़क चंद के अधिकार में रहा। जब राजा मंडी ने समर्थन देने का वचन वापस लिया तब खड़क चंद मंडी से वापस आया।

राजा के दुराचार की शिकायत उसकी एक सिरमौरी रानी तथा मियों ने की। किंतु राजा के लोगों ने पोलिटिकल एजेंट से इस तरह बात की कि वह समझा दोष मियों का ही है। अंततः समझौता हुआ और मियों की जागीर वापस करने के साथ जगत चंद को भी हथावत से वापस बुलाया गया।

खड़क चंद जब अंबाला गया था तो वहां चेचक फैली हुई थी। राजा भी रोगग्रस्त हो गया। वह बिलासपुर वापस आ गया जहां 27 मार्च, 1839 को उसकी मृत्यु हो गई।

जून, 1835 में मि. विगने बिलासपुर से गुजरा। राजा ने विगने के ठहरने का प्रबंध करवाया। उसने राजा से महल में भेंट की। उसे लिवाने के लिए हाथी भेजा गया। उसने लिखा है कि राजा गौर वर्ण का सुंदर युवक था। वापसी पर विगने मार्च, 1839 में पुनः बिलासपुर से गुजरा। उस समय राज्य की स्थिति में बहुत परिवर्तन था। राज्य में भीतरी लड़ाई चली हुई थी। बाजार सूना था, नगर उजड़ गया था। बहुत से लोग दूसरे राज्यों में भाग गए थे। राजा का प्रमुख मनोरंजन हाथी की सवारी था

अतः बहुत से हाथी रखे हुए थे। जब उसके मनोरंजन के लिए खजाने में धन नहीं रहा तो दरबारियों व अधिकारियों की संपत्ति छीन ली गई। अपने संबंधियों की जागीरें भी राजा ने जब्त कर लीं। अंततः जगत चंद के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। विगने का इस बार कोई स्वागत नहीं हुआ।

सन् 1835 में जर्मन यात्री बैरन हेगल भी बिलासपुर आया।

जगत चंद (1839)

खड़क चंद का कोई पुत्र नहीं था अतः मियां जगत चंद ने उसका अंतिम संस्कार किया। इसके बाद अंबाला के पोलिटिकल एजेंट को बुलाया गया। इस अवसर पर सिरमौर का राजा फतह प्रकाश (1815-50), हिंडूर का राजा राम सिंह (1788-1848) और बाघल का राणा भी बिलासपुर आए। राजा खड़क चंद की तीन रानियों में दो सिरमौर के राजा की बहनें और तीसरी मांगल से थी। इन तीनों में किसी के भी संतान न थी और न ही कोई गर्भवती थी। क्योंकि जगत सिंह ने अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाई थी अतः लोगों ने जगत चंद को राजा बनाने की सिफारिश की। अतः यह मामला मंजूरी के लिए सरकार को भेजा गया और 27 मई, 1839 को मंजूरी मिलने पर मियां जगत सिंह को राजा बनाया गया।

सिरमौर से ब्याही दोनों रानियां राजतिलक से पहले अपने साथ खजाना, धन और सनदें लेकर सिरमौर चली गईं। कुछ समय बाद यह भी कहा गया कि छोटी रानी गर्भवती थी और जगत सिंह के भय से यह बताया नहीं गया। उसी वर्ष नवंबर में इस रानी के पुत्र हुआ। सिरमौर रानियों ने 4 नवंबर को हुए इस पुत्र को राज्य देने के लिए भारत सरकार को लिखा। सिरमौर नरेश ने भी बहन के पुत्र को राज्य दिलाने का प्रयास किया किंतु अंग्रेज सरकार ने नामंजूर कर दिया। जगत सिंह ने भी इस बात को झूठा साबित किया।

इस पर रानियां राजा सिरमौर की सेना लेकर बिलासपुर लौटीं। सुकेत से भी सहायता ली गई। इसकी सूचना पोलिटिकल एजेंट को भेजी गई जिसने दो सौ जवान और एक सौ सवार भेजे। पटियाला से भी पांच सौ सिपाही भेजने के लिए कहा गया। अतः यह विद्रोह दबा दिया गया और जगत चंद को राज्य दिलाया। सिरमौर के राजा से जुर्माने के तौर पर पचीस हजार रुपए वसूले गए।

राजा जगत सिंह, राजा अमर चंद (1712) के तीसरे पुत्र मियां चीमां से था। वह धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसने नालागढ़ से विद्रोह के समय लिया 1,20,000 रुपए का कर्जा वापस किया। राज्य में शांति कायम की।

सन् 1846 में अंग्रेज-सिख युद्ध के बाद जालंधर दोआब अंग्रेजों को मिला।

उन्होंने सतलुज का दाएं तट का क्षेत्र, जो 1809 में सिखों के अधीन था, कहलूर को लौटा दिया। उस पर लिया जाने वाला कर भी खत्म कर दिया। इसके बदले राजा ने राज्य में राहदारी कर समाप्त कर दिया।

जगत सिंह का एक पुत्र था जिसकी मृत्यु 1844 में हो गई थी। जगत सिंह सरकार से परामर्श के बाद अपने पौत्र हीरा चंद को राज्य सौंप वृंदावन चला गया। सन् 1857 में उसकी मृत्यु हो गई।

हीरा चंद (1857)

डिप्टी कमिश्नर शिमला ने हीरा चंद को राजा बनाया। वह एक योग्य शासक साबित हुआ। जब हीरा चंद गद्दी पर बैठा, वजीर चंद का छोटा भाई मियां भंगी था जो चतुर व्यक्ति था। राज्य का खजाना सिरमौर की रानियां साथ ले गई थीं अतः कोष खाली था। हीरा चंद ने वजीर की सहायता से स्थिति सुधारी। सन् 1857 में हीरा चंद ने पांच सौ सिपाही भेजकर अंग्रेज सरकार की सहायता की और सात तोपों की सलामी व खिल्लत पाई।

राजा ने भू-राजस्व आधा नकदी और आधा अन्न के रूप में उगाहने का निर्णय लिया जिससे आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। सार्वजनिक निर्माण में तालाब बनाए गए, मार्गों में छायादार पेड़ लगवाए गए, सराय या पड़ाव बनाए गए। भवन निर्माण किए गए।

कोटधार पर महान चंद के समय सिखों का अधिकार था। इसमें से बसेह और बछरेटू लाहौर दरबार ने सरदार लहना सिंह मजीठिया को जागीर के रूप में दे दिए थे। सरदार लहना सिंह की मृत्यु पर अंग्रेज सरकार ने ये परगने कांगड़ा जिले में मिला दिए थे। राजा ने इन क्षेत्रों पर दावा जताने के लिए बातचीत की। इन क्षेत्रों के बदले राजा ने सन् 1867 में एक लाख साठ हजार नजराना और आठ हजार वार्षिक कर भी देना स्वीकार किया। अतः ये दोनों परगने आठ हजार वार्षिक कर की शर्त पर लौटाए गए।

सन् 1877 के दिल्ली के प्रोकलेमेशन दरबार में हीरा चंद उपस्थित हुआ और इसे ग्यारह तोपों की सलामी और मेडल दिए गए। एक सनद भी मिली जिसके अनुसार राजा के संतान न हो तो अपने किसी संबंधी को उत्तराधिकारी बना सकता था।

सन् 1882 में वायसराय से मिलने राजा अपने पुत्र अमर चंद के साथ आया। शिमला से लौटते हुए नम्होल में राजा की मृत्यु हो गई। राजा ने शिमला में अपने लिए आवास बनाया हुआ था। वहां वह गंभीर रूप से बीमार हो गया। जब कोई इलाज कारगर सिद्ध नहीं हुआ तो टिक्का अमर चंद राजा को पालकी में बिलासपुर ले गया किंतु रास्ते में ही राजा की मृत्यु हो गई।

अमर चंद (1883)

जनवरी 1883 में डिप्टी कमिश्नर, शिमला ने अमर चंद को राजा बनाया। इस राजा को दुर्भाग्य से भ्रष्ट अधिकारी मिले। अतः राजकाज का कार्य अस्तव्यस्त हो गया। राज़ा मनोरंजन में व्यस्त रहने लगा और अधिकारी मनमानी करने लगे। भूमि-कर बढ़ा दिया गया। भूमि-कर आधा अन्न और आधा नकदी में कर दिया गया जबकि पहले अन्न ही लिया जाता था। बेगार प्रथा बंद करके लोगों से 25 प्रतिशत कर लेना आरंभ कर दिया। घराट (पनचक्की) पर लगान लगाया गया। जिस भूमि का कोई मालिक न हो वह सरकार द्वारा ली जाने लगी।

इस सबसे प्रजा दुखी हो गई और 'दूम्ह' का आयोजन किया गया। लोगों की शिकायत राजा तक नहीं पहुंचने दी गई। अतः इस कारण लोगों ने अधिकारियों की पिटाई भी कर दी। 'दूम्ह' सबसे पहले गेहड़वीं में हुआ। फिर पणतेड़ा, कोट और लुलहाण तक फैल गया। लोगों को पकड़ने के लिए तहसीलदार भेजा गया जिसे लोगों ने गोली से मार दिया। इसके बाद बिलासपुर की बारी आई। बिलासपुर सूचना मिलने पर राजधानी से पुलिस गेहड़वीं भेजी गई। यहां दोनों ओर से गोली चलने पर कई लोग मारे गए, कई घायल हुए। कुछ नेता बंदी बनाए गए। एक नेता काहन सिंह को कैद कर दस हजार रुपए जुर्माना किया गया।

पुलिस और प्रजा में गोलाबारी की खबर सब ओर फैल गई अतः स्थिति बिगड़ती देख अंग्रेज रेजीडेंट ने हस्तक्षेप किया। लोगों की मांगें सुनी गईं। कर कम किए गए। भ्रष्ट अधिकारियों पर मुकदमे चले।

बिलासपुर में सन् 1885 में पुलिस तथा छोटी सेना बनाई गई। सन् 1886 में राज्य का बंदोबस्त किया गया। राज्य में तहसील तथा थाने बने। सन् 1887 में हिंदी तथा अंग्रेजी स्कूल खोले गए। जंगलात का महकमा खोला गया। एक अस्पताल बनाया गया। महाजनों को व्यापार के लिए एक लाख रुपए आठ आने प्रतिशत ब्याज पर ऋण दिया जाने लगा ताकि व्यापार बढ़े। सन् 1888 में एक अंग्रेज इंजीनियर की सहायता से भजवाणी और बल्ह के बीच सतलुज नदी पर पुल बनाया गया। बिलासपुर में अढ़ाई लाख रुपए की लागत से महल बनवाया गया जिसका नाम रंगमहल रखा। राजा ने पहाड़ी कलम के कई चित्र भी बनवाए।

1888 में राजा अमर चंद की मृत्यु हो गई।

विजय चंद (1889)

विजय चंद की आयु अभी सोलह वर्ष की थी अतः तीन व्यक्तियों की एक काउंसिल बनाई गई। मियां बदन सिंह को काउंसिल का प्रधान बनाया। राजा को

चीफ्ज कालेज, लाहौर में शिक्षा पूरी करने भेजा गया।

विजय चंद को 1893 में पूरी शक्तियां प्रदान की गईं। आरंभ में ही राजा को हतोत्साहित किया गया यद्यपि वह पर्याप्त सुधार करना चाहता था। कुछ स्वार्थी अधिकारियों ने ऐसा करने नहीं दिया। पोलिटिकल एजेंट की सलाह पर एक काउंसिल बनाई गई किंतु उससे भी कोई हल नहीं निकला। राजा ने ठाकुर दास को 1500 रुपए महीने पर अपना वजीर नियुक्त किया किंतु एजेंट ने इसका विरोध किया। राजा ने रुष्ट होकर वायसराय ,ो पत्र लिखा। काउंसिल समाप्त कर दी गई।

राजा विजय चंद ने मियां लोगों की जागीरों पर अधिकार तथा नजराना के हक समाप्त कर दिए। बेगार के बंद होने के बदले लगा कर भी राजपूत लोग देने से इनकार करने लगे। इससे विरोध फैल गया। पोलिटिकल एजेंट ने सात नियम बनाकर राजा के पास भेजे किंतु राजा ने ये शर्तें मानने से इनकार कर दिया। सन् 1902 में राजा ने एक पेंशनभोगी लाला हरीचंद को वजीर नियुक्त किया। वजीर ने राजा को शर्तें मानने के लिए मनवा लिया किंतु कुछ समय बाद राजा बनारस चला गया। बनारस में उसने अपने लिए एक घर बनवा लिया था।

सन् 1903 में मियां अमर सिंह को राज्य का प्रबंधक बनाया गया। एक लंबे समय तक प्रशासन में अव्यवस्था फैली हुई थी किंतु मैनेजर ने काम संभाल लिया। दीवानी, फौजदारी-राजस्व अदालतें बनाई गईं। पुलिस विभाग पुनः स्थापित किया गया। स्कूल तथा अस्पताल के भवन बनाए गए। सौ मील लंबी सड़कें बनाई गईं।

राजा पांच वर्ष तक बनारस में रहा। सन् 1909 में उसने सरकार की शर्तें मान लीं अतः उसे बिलासपुर लौटने की अनुमति दी गई। राज्य के अधिकार भी दिए। उसी वर्ष मियां अमर सिंह को क्योंथल से लाया गया और पंजाब सरकार के अधिकारी मियां दुर्गा सिंह को वजीर बनाया गया। हचिसन-वोगल के अनुसार राजा मृत्युपर्यंत बना ही रहा किंतु ग्रिफिन लेपोल के अनुसार वह सरकार की शर्तें मान 1909 में वापस आया।

मियां दुर्गा सिंह सन् 1918 तक वजीर रहा। उसने जंगलात का बंदोबस्त करवाया।

सन् 1914 में यूरोप की पहली लड़ाई में बिलासपुर से 1100 सिपाही भेजे गए। अंग्रेजी सरकार को दो बार साढ़े तीन लाख के ऋण दिए गए। लड़ाई के बाद राजा को 41 नं. डोगरा पलटन का मेजर बनाया गया और के.सी.आई.ई. का खिताब दिया। सन् 1918 में दुर्गा सिंह के बाद इंदर सिंह और उसके बाद हरदयाल सिंह वजीर बना। हरदयाल सिंह तीन वर्ष रहा और भ्रष्टाचारी होने पर दोषी पाया गया। उसे अढ़ाई वर्ष का कारावास हुआ। अतः इंदर सिंह को पुनः वजीर बनाया।

सन् 1922-23 में राजा के सेवकों (जिन्हें हाजरी कहते थे) का प्रभाव बढ़ गया

और वे वजीर पर प्रभाव डालकर कई कार्य करवाने लगे। अतः इसके विरुद्ध लोग गवर्नर जनरल के एजेंट से लाहौर में मिले। राजा के संबंध अपनी रानी सूर्य देवी से भी इन सेवकों के कारण बिगड़ गए। रानी शिमला चली गई और वापस नहीं लौटी। सन् 1927 में स्थिति बिगड़ने पर राजा पुनः बनारस चला गया। राजपाट अपने पुत्र आनंद चंद के नाम छोड़ा। बनारस में ही सन् 1931 में उसकी मृत्यु हो गई।

कर्नल मैसी ने लिखा है कि विजय चंद के समय रियासत का क्षेत्रफल लगभग 500 वर्गमील था और जनसंख्या 60,000 से कुछ कम। रियासत की वार्षिक आय लगभग 1,00,000 रुपए थी और राजा को ग्यारह तोपों की सलामी दी जाती थी।

आनंद चंद (1927-1948)

विजय चंद के बनारस जाने पर आनंद चंद की उम्र पंद्रह वर्ष की थी और वह अजमेर के मेयो कालेज में पढ़ रहा था। अतः राज्य चलाने के लिए पी.एल. चंद्र लाल की प्रधानगी में एक काउंसिल बनाई गई। अब तक आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गई थी अतः स्थिति सुधारने के लिए कई कर लगाए गए।

हाजरी लोगों द्वारा हथियायी भूमि पर नजराना लगाया। इससे सवा लाख के लगभग आय हुई। नए कर लगाने से जनता ने विद्रोह कर दिया। सूखा पड़ने से अन्न की कमी हो गई। घराट पर कर, मछली पकड़ने के लिए लाइसेंस आदि से जनता परेशान हो गई और गांव-गांव विद्रोह फैल गया। इस पर काउंसिल ने सन् 1929 में भू-बंदोबस्त अभियान शुरू कर दिया जिससे क्रांति फैल गई। अतः अफसरों की धांधली व घूसखोरी, नजराने से ज्यादा कर, मछली पकड़ने पर लाइसेंस, घराट पर टैक्स, बंदोबस्त के समय दुर्व्यवहार तथा वन विभाग की धांधली पर एक सुनियोजित क्रांति आरंभ हुई। अंततः रेजीडेंट स्थिति का जायजा लेने बिलासपुर आया। उसने अफसरों तथा जनता से बात कर करों में कुछ रियायत की किंतु लोग नहीं माने। अतः रेजीडेंट सर जेम्ज फिट्स पेट्रिक ने पंजाब से सेना बुलाई। नम्होल में मेले के दिन पुलिस तथा सेना ने लोगों को घेर लिया और नेताओं को गिरफ्तार किया। सांडू के मैदान में एकत्रित लोगों को सिपाहियों ने पीटा और घायल किया। पंजाब से और सेना बुलाकर गांव-गांव में विद्रोह को दबाया गया। उन्नीस नेताओं पर केस चले। उन्हें कठोर कारावास की सजा मिली। गांवों पर पच्चीस हजार रुपए जुर्माना किया गया।

9 जनवरी, 1933 को मि. जे.ए.ओ. फिट्स पेट्रिक ने आनंद चंद को राजा बनाया। आनंद चंद तथा चंदुलाल ने गांव-गांव घूमकर लोगों को आश्वासन दिया। अतः नए राजा के आने पर प्रजा को शांति मिली। सन् 1934 तक सभी क्रांतिकारी

कैदी भी फरीदकोट जेल से छोड़ दिए गए।

बिलासपुर के मियां लोगों को ब्रिटिश सरकार की ओर से 40,000 रुपए वार्षिक पेंशन लगाई गई। इनमें प्रमुख अजमेर चंदिया, कल्याण चंदिया, तारा चंदिया, सुलतान चंदिया थे। प्रथम नवंबर, 1921 को बिलासपुर का राजनीतिक नियंत्रण पंजाब सरकार से भारत सरकार को स्थानांतरित हुआ।

बिलासपुर में बाल विवाह पर पाबंदी लगाई गई। विवाह के लिए लड़की की उम्र चौदह वर्ष तथा लड़के के लिए अट्ठारह वर्ष नियत की गई। बिलासपुर हाई स्कूल में निशुल्क शिक्षा का प्रबंध हुआ। घुमारवीं, औहर में भी स्कूल खोले गए। रियासत में नई सड़कों का निर्माण किया गया। राज्य की आय तीन लाख से बढ़कर 1948 में चौदह लाख तक पहुंच गई। आनंद चंद लोकसभा, राज्यसभा और विधानसभा के सदस्य रहे।

कहलूर (बिलासपुर)

(कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची)

राजा अजमेर चंद

- राजा देवी चंद
  - राजा महाचंद
    - राजा खड़क चंद (मृत्यु 1836)
- सख्त चंद
  - बिशन चंद
    - राजा जगत चंद
      - नरपत चंद (मृत्यु 1850)
        - राजा हीरा चंद (मृत्यु 1882)
          - राजा अमर चंद (मृत्यु 1889)
            - राजा विजय चंद (जन्म 1812)
            - सोहन सिंह (जन्म 1881)

हिंडूर (नालागढ़)

राजवंश

नालागढ़ राज्य का पुराना नाम हिंडूर था। यह सतलुज की सहायक नदी सिरसा की घाटी में कुछ शिवालिक पहाड़ियों के बीच और कुछ मैदानी भाग में फैला हुआ राज्य था। कहलूर तथा हिंडूर की ऐतिहासिक परंपरा के अनुसार इस राज्य की स्थापना लगभग 1100 ई. में कहलूर के राजा काहन चंद के बड़े पुत्र अजय चंद द्वारा हुई।

कहलूर की परंपरा में एक कथा है कि काहन चंद की दो रानियां एक साथ गर्भवती हुईं। एक रानी कुल्लू से थी तो दूसरी बाघल से। पहले कुल्लू वाली रानी से पुत्र उत्पन्न हुआ, बाद में बाघल वाली से। कुल्लू वाली रानी के लोग खुशियां ही मनाते रह गए, बाघल वाली रानी के सेवकों ने राजा को पहले खबर कर दी जो उस समय हतूनीगढ़ में था। राजा ने उसे उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। कुल्लू वाली रानी के पुत्र का समाचार बहुत बाद में मिला। अतः राजा के वचन के अनुसार उत्तराधिकारी छोटा पुत्र ही रहा, जिसका नाम अजीत चंद था। अजीत चंद कहलूर का आगामी शासक बना। दूसरे पुत्र का नाम सुजीत चंद बताया गया है।

शशिवंश विनोद के अनुसार काहन चंद ने हिंडूर के ब्राह्मण शासक को परास्त कर यह राज्य अपने पुत्र सुजीत चंद को दिया। अन्य मत यह भी है कि काहन चंद के तीन पुत्रों ने हिंडूर के ठाकुर को परास्त किया और अजीत चंद को गद्दी सौंपी (बिलासपुर की कहानी)।

हिंडूर के ऐतिहासिक स्रोत तथा परंपरा कहती है कि हिंडूर का प्रथम शासक काहन चंद का बड़ा पुत्र अजय चंद था। राजगद्दी से वंचित होने पर उसने सेना बनाई और हिंडूर के शासक ब्राह्मण को हराया। शासक हांडू ब्राह्मण मारा गया और राज्य अजय चंद के हाथ आ गया। अजय चंद ने हांडू के परिवारजनों को परगना नवान में चरोली गांव दिया।

अजय चंद का भाई अजीत चंद, जो कहलूर का शासक बना था, हिंडूर पर प्रभुत्व जमाने के लिए आक्रमण करता रहा किंतु अजय चंद ने उसे सीमा में घुसने नहीं दिया। अजय चंद की मृत्यु 1171 ई. में हुई।

विजय चंद (1171)

राजा की मृत्यु के समय विजय चंद केवल चार मास का था अतः उसकी मां ने शासन संभाला। रानी को कुछ कनैतों के विद्रोह का सामना करना पड़ा जिन्होंने हांडू ठाकुर (या ब्राह्मण) के विरुद्ध भी विद्रोह किया था। राजा को शिशु जान उसका उत्साह बढ़ गया। रानी ने राज्य के अधिकारियों को बुलाकर समझाया और अपने पक्ष में किया, अतः कनैतों की हार हुई।

विजय चंद ने भी बड़े होकर कनैतों का दमन किया। तीस वर्ष की आयु में सन् 1201 में राजा की मृत्यु हो गई।

धाम चंद (1201)

विजय चंद की मृत्यु के समय धाम चंद छोटा था अतः कनैतों ने फिर से विद्रोह किया। किंतु बाद में विद्रोह दबा दिया गया। धाम चंद प्रजा में लोकप्रिय रहा। सन् 1236 में पैंतीस वर्ष राज करने के बाद इसकी मृत्यु हो गई।

बैरंग चंद (1236)

बैरंग चंद के समय कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। मैदानों में मुस्लिम आधिपत्य से संभवतः कई लोग शिवालिक घाटियों की ओर आए होंगे। हिंदुओं के अलावा गुलाम वंश तथा खिलजी वंश के विद्रोही भी पराजित होकर शिवालिक पहाड़ियों में छिपे। सन् 1276 में बैरंग चंद की मृत्यु हुई।

लक्ष्मण चंद (1276)

जब बैरंग चंद की मृत्यु हुई तो लक्ष्मण चंद ग्यारह वर्ष का था। कुछ लोगों ने पुनः विद्रोह किया जिसे उसने बड़े होने पर दबा दिया। सन् 1306 में राजा की मृत्यु हो गई।

उतल चंद (1306-1316)

इस राजा के समय की कोई घटना ज्ञात नहीं है।

जयमल चंद (1316-1338)

इस राजा के समय की भी कोई घटना ज्ञात नहीं। इस समय दिल्ली के शासक दक्षिण में लड़ाई में व्यस्त रहे अतः शिवालिक घाटियों में शांति रही। यद्यपि उनके अधिकारी कर वसूलने आते होंगे। मुहम्मद बिन तुगलक ने सन् 1337 में कांगड़ा के राजा पृथ्वी चंद (1330-1345) पर चढ़ाई की। अतः मुगलों का आतंक पहाड़ी

राज्यों में फैला।

अमर चंद (1338-1356)

इस राजा के बारे में कहा जाता है कि प्रजा की हालत जानने के लिए वह राज्य में वेश बदलकर घूमता था।

आलम चंद (1356-1406)

आलम चंद दिल्ली के फिरोजशाह तुगलक (1351-1388) का समकालीन था। सन् 1379 में फिरोशाह तुगलक ने सिरमौर तथा अन्य पहाड़ी राज्यों से कर वसूला। इन राज्यों में संभवतः हिंडूर भी रहा होगा।

इस समय तैमूर लंग (1398 ई.) ने भारत पर आक्रमण किया। दिसंबर, 1398 में दिल्ली पर अधिकार के बाद वह मेरठ, हरिद्वार होता हुआ शिवालिक की तलहटियों में पहुंचा। हिंडूर की सीमा पर उसने अपना पड़ाव लगाया। राजा ने पहले ही खाद्य सामग्री तैयार रखी थी जिसे लेकर वह तैमूर से मिलने गया। तैमूर ने इसे स्वीकार किया और आगे बढ़ गया।

आलम चंद के बाद उद्यम चंद (1406-1421), विक्रम सिंह (1421-1435), केदार चंद (1435-1448), जय चंद (1448-1477) राजा हुए जिनके बारे कुछ ज्ञात नहीं है।

नारायण चंद (1477-1552)

जय चंद की मृत्यु के समय नारायण चंद बालक ही था अतः रानी ने राज्य संभाला। एक बार नूरपुर का राजा हरिद्वार जाते हुए वहां ठहरा तो रानी ने खूब स्वागत किया। नूरपुर के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह नारायण चंद से करना चाहा। रानी मान गई किंतु मंत्री नहीं माना, क्योंकि नूरपुर का राजा उच्च कुल से नहीं था। नूरपुर के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह कहलूर के राजा से कर दिया। उसने कहलूर के राजा से हिंडूर पर आक्रमण भी करवाया। शांति बनाए रखने के लिए कहलूर को संगतगढ़ का किला देना पड़ा।

इस समय दिल्ली में सैयद वंश तथा लोधी वंश का शासन था। दिल्ली में अव्यवस्था के कारण यहां भी शांति रही होगी।

राम चंद (1522-1568)

राजा राम चंद ने रामगढ़ किला बनाया और रामशहर बसाया। रामशहर को गर्मियों की राजधानी बनाया गया। राम चंद प्रजा से उपज का आधा भाग कर के

रूप में लेता था।

राम चंद के समय सन् 1526 में बाबर ने दिल्ली में मुगल वंश की नींव रखी किंतु हुमायूं को शीघ्र ही शेरशाह सूरी के आक्रमण से भारत छोड़ना पड़ा। हुमायूं के कुछ सैनिक हिंडूर की पहाड़ियों में भी छिपे जिन्हें राजा ने खदेड़ दिया। जब 1556 में अकबर ने पुनः भारत में राज्य स्थापित किया तो अकबर ने अन्य पहाड़ी राज्यों के साथ हिंडूर को भी अपने अधिकार में किया होगा, ऐसा संभव है।

संसार चंद (1568-1618)

संसार चंद ने नालागढ़ में एक सुंदर महल बनाया और कला कुंड सरोवर की मरम्मत करवाई।

धर्म चंद (1618-1701)

धर्म चंद ने कर को आधे से घटाकर छठा हिस्सा किया। कहलूर के इतिहास से पता चलता है कि कहलूर के राजा कल्याण चंद (1630) ने हिंडूर की सीमा पर एक किला बनाया। दोनों राज्यों में युद्ध हुआ और हिंडूर का राजा मारा गया। हिंडूर की रानी ने शिशु पुत्र सहित कहलूर के राजा की शरण ली। कल्याण चंद ने रानी को संरक्षण दिया तथा उसके पुत्र को हिंडूर का राजा बनाया। किंतु हिंडूर के इतिहास के अनुसार संसार चंद ने 1701 तक शासन किया।

जब कहलूर का राजा भीम चंद अपने पुत्र के विवाह के लिए गढ़वाल गया तो बारात में हिंडूर के राजा हरि चंद का नाम आता है। पंजाब गजेटियर (1905) के अनुसार यह राजा भीम चंद की ओर सन् 1681 में गुरु गोबिंद सिंह के साथ भंगैणी युद्ध में मारा गया।

हिंडूर की वंशावली में हरि चंद नाम का कोई राजा नहीं है। अतः इस बारे में ऐतिहासिक कथा स्पष्ट नहीं है।

हिम्मत चंद (1701-1705)

इस राजा के समय औरंगजेब बूढ़ा हो चुका था अतः चारों ओर विद्रोह हो रहा था। पठानों ने पहाड़ी इलाकों में छापे मारने आरंभ किए। अतः हिंडूर भी इनसे बचा नहीं रहा। सन् 1705 में पठानों ने तीन बार लूटपाट की। राजा पठानों से लड़ता हुआ मारा गया। तारीखे-रियासत हिंडूर में लिखा है कि हिंडूर के लोग बहादुरी से लड़े।

भूप चंद (1705-1756)

भूप चंद के समय सन् 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई अतः प्रांतीय

सूबेदार स्वतंत्र हो गए। जालंधर का सूबेदार अदीना बेग था जिस पर एक पठान जमालुद्दीन ने हमला कर दिया। अदीना बेग ने पहाड़ी राजाओं से सहायता मांगी। पहाड़ी राजाओं में हिंडूर के शासक भूप चंद ने भी सहायता की। दो मास के इस युद्ध में भूप चंद डटा रहा। अदीना बेग युद्ध से तंग आ गया था। एक प्रातः युद्ध के समय भूप चंद का बाण जमालुद्दीन की आंख में लगा और वह घोड़े से गिरकर मर गया। सेना में भगदड़ मच गई और सेना का सारा सामान भूप चंद और अदीना बेग के हाथ आया। अदीना बेग ने राजा को खिल्लत प्रदान की।

1708 में गोबिंद सिंह की मृत्यु के साथ बारह सिख मिसलें बनीं। बंदा वैरागी ने पंजाब विजय का अभियान चलाया। उसके मुगलों से झगड़े हुए और वह हिंडूर से भी गुजरता रहा। इसके बाद सिख मिसलों द्वारा लूटपाट की जाती रही। पहाड़ी राज्यों पर छापे मारे गए जिनसे हिंडूर भी अछूता न रहा। सन् 1763 में जस्सा सिंह अहलूवालिया ने आनंदपुर आने पर कहलूर तथा हिंडूर से कर वसूला।

भूप चंद के समय पलासी क्षेत्र से हिंडूर की आय 50,000 रुपए और पहाड़ी क्षेत्र से इससे दुगनी आय थी। राहुल सांकृत्यायन ने भूप चंद नाम के राजा का कोई उल्लेख नहीं किया है।

मान चंद (1756-1761)

मान चंद के समय कनैतों का आपसी झगड़ा पुनः उभरा। कनैतों का एक दल राजा की ओर हो गया तो दूसरा राजा के चाचा पद्म चंद की ओर। पद्म चंद राजा बनना चाहता था। एक बार जब राजा पूजा करने बैठा तो पदम चंद ने उसे मार दिया। उसने रानी और राजकुमार अभीराय को भी मार दिया। पदम चंद राजा बन गया किंतु राजा के सहयोगी कनैतों ने उसे मार गिराया। इससे राज्य में अव्यवस्था फैल गई। राजपरिवार का एक व्यक्ति मियां गजे सिंह भागकर गुरु खड़क सिंह के पास महलोग में चला गया।

गजे या गजय सिंह (1761-1788)

हरिपुर महलोग में गुरु खड़क सिंह ने समझौता करवाकर दान सिंह के पुत्र गजय सिंह को राज्य संभालने के लिए कहा।

कहलूर के इतिहास में उल्लेख है कि हिंडूर में अव्यवस्था फैलने पर वजीर अगडू तथा अन्य लोग कहलूर के राजा देवी चंद (1741-78) के पास गए और राज्य संभालने का अनुरोध किया। किंतु राजा ने यह अनुरोध नहीं माना और गजे सिंह हिंडूरिया को गद्दी पर बिठाया।

गजय सिंह के साथ यहां के राजाओं के नाम के साथ 'चंद' के स्थान पर 'सिंह'

लगाया जाने लगा।

गजय सिंह के समय गद्दी के हकदारों ने उत्पात मचाया। बाहरी आक्रमण हुए और गांव बारियां का क्षेत्र हाथ से निकल गया। चंबागढ़, मलौण तथा रामगढ़ के किले भी राज्य के अधिकार से निकल गए। वजीर अगड़ू ने धर्मपुर परगना हथिया लिया। गलरवाला परगना कनैतों ने आनंदपुर के सोढ़ियों से मिलकर सिखों को दे दिया।

गजय सिंह का क्षेत्र बहुत सीमित रह गया। पलासी, नालागढ़ तथा आवान कोट के क्षेत्र ही राज्य में रह गए। राजा के पुत्र के पठानकोट में विवाह से खर्च और बढ़ा। राजा ने अपने पुत्र रामसरन सिंह को स्वयं अपना खर्चा चलाने के लिए कहा। इस बात से रामसरन ने सेना इकट्ठी की और चंबागढ़ पर अधिकार किया। फिर वजीर अगड़ू को बुलवाया। वजीर अगड़ू ने रामसरन को मारने का प्रयास किया किंतु स्वयं मारा गया। रामसरन सिंह ने वजीर अगड़ू के परिवार को आजीविका के लिए पहली गांव में भूमि दी और किला कब्जे में किया। अतः रामसरन सिंह ने खोए हुए इलाके वापस ले लिए।

राजा ने सिखों के अधीन क्षेत्रों के लिए जस्सा सिंह अहलूवालिया से मुलाकात की। जस्सा सिंह ने आवान कोर के लिए पांच सौ रुपए वार्षिक कर मांगा। राजा ने शर्त मान ली और सिखों ने वहां मस्तान सिंह को थानेदार नियुक्त किया। चार वर्ष बाद 1769 में सरदार हरि सिंह ने हमला कर वहां अपना अधिकार कर लिया। हरि सिंह वहां पांच वर्ष रहा। वह अत्याचारी था। 1774 में उसे भी यह किला खाली करना पड़ा।

गजय सिंह के समय बाघल में राजा भूप चंद पंवार (1743-1778) का राज्य था। बाघल के राणा भूप चंद के साथ कहलूर तथा हिंडूर की कई लड़ाइयां हुईं। इन लड़ाइयों के दौरान रामसरन सिंह ने बघाट के कुछ क्षेत्र अपने राज्य में मिलाए। संभवतः धर्मपुर तथा कुठाड़ पर भी रामसरन सिंह ने अधिकार कर लिया था। राजा गजय सिंह की 1788 में मृत्यु हो गई।

रामसरन सिंह (1788-1848)

रामसरन सिंह कांगड़ा के महाराजा संसार चंद (1775-1823) तथा कहलूर के राजा महान चंद (1778-1824) का समकालीन था। महान चंद की कमजोरी का लाभ उठाते हुए संसार चंद ने 1795 में सतलुज के दाएं किनारे अधिकार कर लिया। इस अवसर का लाभ उठाते हुए रामसरन सिंह ने संसार चंद से समझौता कर लिया और अपने राज्य की सीमा पर कहलूर के क्षेत्र हथिया लिए। कहलूर के राजा महान

चंद ने सरदार गुरदीत सिंह और देस्सा सिंह को बुलाया किंतु दोनों सरदार लड़ाई में मारे गए। इसके बाद रामसरन सिंह ने कहलूर पर आक्रमण किया, नगर को जला डाला और फतेहपुर, बहादुर तथा रत्नपुर किलों पर अधिकार कर लिया। यह भी कहा जाता है कि रामसरन सिंह ने बारह ठकुराइयों को बिलासपुर से छुड़ाकर अपने अधीन कर लिया। पंजाब गजेटियर के अनुसार राजा ने यमुना के किनारे अजमेरगढ़ तक अपना अधिकार कर लिया। सपाटू में अपना अधिकारी तैनात किया। इसके बाद राजा ने सिरमौर के राजा कर्म प्रकाश के विरुद्ध कुछ लोगों को विद्रोह के लिए भड़काया। अतः उसने गोरखा नायक अमर सिंह थापा से सहायता मांगी। भक्ति सिंह थापा को सात सौ सैनिकों के साथ भेजा गया किंतु इन्हें हिंडूर की सेना ने जामटा के पास घेरकर आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया। पंजाब गजेटियर में उल्लेख है कि गोरखा सैनिक वापस लौट गए।

कहलूर के महान चंद ने अंततः सन् 1804 में गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा को कांगड़ा पर आक्रमण का आमंत्रण दे डाला। सन् 1804 के अक्तूबर में गोरखा सेना ने यमुना पार कर अजमेरगढ़ किले में हिंडूर सेना को हराया और रामगढ़ तथा नालागढ़ पर घेरा डाल दिया। इसके बाद गोरखा सेना सतलुज पार कर कांगड़ा की ओर बढ़ी। रामसरन सिंह ने महाराजा संसार चंद की सहायता की। इस कारण उन्होंने राजा को रामशहर के किले में तीन वर्ष घेरे रखा। तीन वर्ष बाद राजा रामसरन होशियारपुर के पास रहा। फिर पलासी किले में रहने लगा। यहां उसने दस वर्ष काटे। गोरखों ने हिंडूर के पूरे पहाड़ी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। राजा रामसरन के पास बद्दी और गुलाखाल के किले रह गए।

गोरखों द्वारा कांगड़ा पर आक्रमण के समय राजा रामसरन ने अपनी सेना संसार चंद के पास भेजी किंतु संसार चंद की हार हुई और वह कांगड़ा किले में चला गया। किले का घेराव तीन वर्ष चलता रहा। इस बीच रामसरन ने अपने राज्य तथा बारह ठकुराइयों को भड़काया और गोरखों की खाद्य सामग्री बंद कर दी। गोरखों द्वारा बाघल पर अधिकार के बाद बाघल नरेश राजा जगत सिंह ने भी नालागढ़ में शरण ली। सन् 1813 में अमर सिंह थापा ने सरहिंद के छह गांवों पर कब्जा कर लिया। अंग्रेज सरकार ने ये गांव वापस मांगे किंतु गोरखों ने इनकार कर दिया।

प्रथम नवंबर 1814 को अंग्रेज सरकार ने गोरखों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। डेविड ऑक्टर लूनी ने छह हजार सैनिकों के साथ रोपड़ की ओर से नालागढ़ में प्रवेश किया और नालागढ़ तथा तारागढ़ को पांच तथा आठ नवंबर को जीत लिया। 11 फरवरी, 1815 को रामगढ़ जीता गया। अमर सिंह थापा ने अपना मुख्यालय अर्की में बनाया हुआ था। वह तीन हजार सैनिकों सहित रामशहर और मलौण चला

गया। राजा रामसरन सिंह ने भी दो हजार सैनिक भेजे।

अंग्रेज सेना ने प्रथम अप्रैल, 1815 को मलौणगढ़ पर धावा बोल दिया। मई मास में अंग्रेजों ने मलौणगढ़ में तोपें पहुंचा दीं। अब गोरखा सेना कमजोर पड़ गई। भक्ति थापा की लड़ाई में मृत्यु हो गई। अंततः 15 मई, 1815 को अमर सिंह थापा ने आत्मसमर्पण कर दिया।

अंग्रेजों ने युद्ध में विजय के बाद पहाड़ी राज्यों की एक सभा पलासी में बुलाई। इस सभा में निर्णय के अनुसार राजा रामसरन सिंह को गोरखा आक्रमण के पूर्व के क्षेत्र 20 अक्तूबर, 1815 की संधि द्वारा लौटा दिए गए। ग्रिफ्रिन लेपेल तथा मैसी के अनुसार राजा ने वे क्षेत्र लेने से मना कर दिया, जो स्वयं जीते थे। अंग्रेजों ने सैनिक महत्त्व के क्षेत्र यथा हिंडूर, नालागढ़, मलौण किले अपने पास रखे। मलौण किले के साथ के छह गांव अपने पास रखने के बदले अंग्रेजों ने राजा रामसरन को कोटखाई के समीप भड़ोली क्षेत्र दिया। यहां का ठाकुर निःसंतान मर गया अतः राजा ने विधवा रानी को चार गांव दे दिए, शेष अपने पास रखे। बाद में ये क्षेत्र आठ हजार पांच सौ रुपए मुआवजे पर बलसन के राणा को दिए गए।

हिंडूर को गोरखा युद्ध के बाद एक लाख रुपए मुआवजा मिला। यह रुपए रामसरन सिंह ने पलासी के किले को मजबूत करने में लगाए। उसने अपने नाम से एक नगर बसाया। राजा ने शांति होने पर अंबाला तथा होशियारपुर से आमंत्रित कर लोगों को अपने यहां बसाया।

मार्च, 1820 में मूरक्राफ्ट हिंडूर से होकर गया। मध्य एशिया जाते हुए वह 6 मार्च को नालागढ़ आया और 10 मार्च को आगे गया। मूरक्राफ्ट ने लिखा है कि हिंडूर की जनसंख्या 20,000 है। सड़कें चौड़ी हैं। सड़क के दोनों ओर गांव हैं। फसल अच्छी है। राजा के पास बहुत से लोग काम करते हैं। राजा उन्हें अनाज के रूप में वेतन देता है। लोग राजा की बात बहुत स्नेह और आदर से करते हैं।

रामसरन ने अपनी पुत्री का विवाह सन् 1820 में संसार चंद के यहां प्रमोद चंद से किया। सन् 1839 में कहलूर के राजा खड़क चंद की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी के निर्णय के समय राजा रामसरन भी वहां उपस्थित हुआ। सिरमौर का राजा फतेह प्रकाश तथा राणा बाघल भी वहां उपस्थित थे। राजा जगत सिंह को उत्तराधिकारी बनाया गया। जब सिरमौर से ब्याही रानियों ने कहलूर पर आक्रमण किया तो जगत सिंह ने हिंडूर की शरण ली। हिंडूर की सेना और क्लार्क के दो सौ जवानों ने जगत सिंह को पुनः राज्य दिलाया।

सन् 1846 में अंग्रेज-सिख युद्ध के समय राजा ने लशकरी खान की सराय के पास गवर्नर जनरल से भेंट की। अंग्रेज सरकार ने 29 अक्तूबर, 1846 को मलौण

किला, साथ लगते छह गांव, 18 पाउंड की दो तोपें तथा किले में रखी सामग्री राजा को पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए प्रदान की।

रामसरन सिंह ने 60 वर्ष तक राज किया और 84 वर्ष की आयु में 1841 में मृत्यु हुई।

राजा गजय सिंह और रामसरन सिंह के समय पहाड़ी चित्रकला का भी प्रसार हुआ। नालागढ़ तथा पलासी के किलों में आकर्षक भित्ति चित्र बनाए गए। राजा के कांगड़ा तथा गुलेर से अच्छे संबंध रहने से भी पहाड़ी कलम का आदान-प्रदान हुआ।

विजय सिंह (1848-1857)

विजय सिंह के शासन के अंत में 1857 की क्रांति हुई। हिंडूर में भी विद्रोह हुआ किंतु राजा के भाई उग्र सिंह ने ब्रिटिश सरकार की सहायता की।

सन् 1857 में विजय सिंह निःसंतान मर गया अतः उत्तराधिकारी के लिए समस्या पैदा हो गई। कर्नल मैसी ने लिखा है कि रामसरन सिंह के अन्य बेटे एक ब्राह्मण स्त्री के गर्भ से थे अतः उन्हें राजपूत नहीं समझा जाता था। तीन वर्ष तक उत्तराधिकारी का निर्णय नहीं हो सका। इतने समय राज्य सीधा अंग्रेज सरकार के अधीन रहा। अंततः रामसरन सिंह के पुत्रों में उग्र सिंह को उत्तराधिकारी बनाया गया। उसे पूरे अधिकार भी सौंपे गए।

उग्र सिंह (1860-1878)

उग्र सिंह के राजा बनने पर सनद दी गई तथा 1120 रुपए खिल्लत के रूप में दिए गए। उग्र सिंह ने सरकार को 1120 रुपए तथा साठ सोने की मोहरें दीं। हिंडूर द्वारा सरकार को पांच हजार रुपए वार्षिक नजराना देना तय किया।

उग्र सिंह के पुत्र ईश्वरी सिंह के बड़े होने पर उनके आपस में मतभेद हो गए। उग्र सिंह ने राजा बनने से पहले विवाह होशियारपुर के जसवाल परिवार से किया था जिससे ईश्वरी सिंह हुआ। राजा बनने पर उसने कहलूर से चंदेल मियां की बेटी से विवाह किया, उससे जोगेंद्र सिंह नाम का पुत्र हुआ। यह रानी पलासी में रहती थी। राजा उग्र सिंह ने जोगेंद्र सिंह को उत्तराधिकारी बना दिया, अतः उग्र सिंह से ईश्वरी सिंह नाराज हो गया।

ईश्वरी सिंह (1877-1912)

दिसंबर, 1876 में उग्र सिंह की मृत्यु पर ईश्वरी सिंह ही उत्तराधिकारी बना। अतः जून, 1877 में उसे गद्दी सौंपी गई। पिता से मतभेद होने पर ईश्वरी सिंह कसौली के पास गढ़खल में रहता था। गद्दी पर बैठते ही उसने कैदियों को रिहा कर

दिया। वजीर गुलाम कादिर को पुनः वजीर नियुक्त किया। इस वजीर ने नए भू-राजस्व कर लगाए जिससे प्रजा नाराज हो गई और स्थिति बिगड़ गई। अतः सरकार द्वारा एक पुलिस टुकड़ी विद्रोह दबाने के लिए भेजी। विद्रोह दबाने के बाद गुलाम कादिर को वजीर के पद से हटा नालागढ़ से बाहर कर दिया।

वजीर को निकालने के बाद एक समिति बनाई गई जिसने तेरह वर्ष तक ठीक ढंग से कार्य किया। समिति में मतभेद होने के कारण 1893 में समिति भंग कर दी गई। एक अधिकारी जवाहर लाल को मैनेजर तैनात किया गया। सन् 1895 में जवाहर लाल वापस चला गया तो भगवान सिंह वजीर बनाया जो अयोग्य साबित हुआ। बंदोबस्त का काम, जो जवाहर लाल ने शुरू किया था, उसमें बाधा पड़ने लगी। अतः ईश्वरी सिंह ने अपने भतीजे भगवान सिंह को हटाकर सौतेले भाई जोगेंद्र सिंह को वजीर बनाया। बंदोबस्त का काम तो ठीक चलता रहा किंतु प्रशासन का कार्य ठप हो गया। वजीर की अकुशलता के कारण सन् 1898 में तीन सदस्यीय काउंसिल बनाई गई। सुंदर सिंह को काउंसिल का अध्यक्ष बनाया गया। इस समय आमदनी से अधिक खर्च था और 60,000 रुपए का कर्जा हो गया था।

सुंदर सिंह ने फालतू पद समाप्त करवाए, वार्षिक बजट बनाया जिससे पचीस हजार रुपए की बचत हो गई। आय एक लाख तीस हजार हो गई। वर्ष 1898-99 में बंदोबस्त पूरा हो गया। बंदोबस्त में 77,963 रुपए का अनुमान था जिसमें बीस हजार की बढ़ोतरी थी। इस बढ़ोतरी को लेकर लोगों ने आपत्ति की अतः पंजाब के उपराज्यपाल सुपरिंटेंडेंट ने 70,000 रुपए कम करने की सलाह दी अतः मालगुजारी घटा दी गई। सुंदर सिंह की अध्यक्षता में काउंसिल ठीक चलती रही, हालांकि जोगेंद्र सिंह षड्यंत्र करता रहा।

सुंदर सिंह के बाद मियां इंद्र सिंह को वजीर बनाया गया। सन् 1905 में नालागढ़ में प्लेग फैली जिससे 46 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। सन् 1911 में राजा की मृत्यु हो गई।

जोगेंद्र सिंह (1911)

जोगेंद्र सिंह के समय मियां इंद्र सिंह वजीर की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय समिति बनी। यह काउंसिल तीन वर्ष चली। राज्य में खर्चे कम किए गए। पत्थर की खानों को पट्टे पर दिया गया।

दिसंबर, 1914 में काउंसिल समाप्त करके एक नायब तहसीलदार चौधरी राम जी लाल को वजीर बनाया। राजा को ऋण निपटाने की शर्त पर पूरे अधिकार सौंपे गए।

सन् 1914-18 के युद्ध में राजा ने अपनी सेवाएं पेश कीं। राजा ने 22,50,000 रुपए के वार बांड खरीदे और 220 सैनिक भी दिए। सन् 1918 में चरागाहों पर नियंत्रण तथा वनों के अधिनियम के बारे में विद्रोह कर दिया। राजा ने सरकार से सहायता मांगी तो पोलिटिकल असिस्टेंट कमिश्नर, शिमला पचास सैनिक लेकर नालागढ़ आया। विद्रोही चुप नहीं बैठे तो अंबाला से 13 पायनियर की टुकड़ी मंगवाई। इस सेना के नालागढ़ पहुंचने से पहले ही विद्रोही हार मान गए। नेताओं को बंदी बनाकर शिमला भेजा गया। वहां इन्हें दंडित किया गया। इसमें कुछ सुधार किए गए जिससे प्रजा में संतोष हुआ। अतः दूसरे वर्ष कुछ कैदी छोड़े गए। शेष सभी राजा ने अपने जन्म-दिवस पर छोड़ दिए।

इस बीच राजा ने एक लाख के ऊपर ऋण चुका दिया। पूरे अधिकार भी राजा को दिए गए।

वजीर चौधरी राम जी लाल की 1919 में मृत्यु हो गई। इसके स्थान पर अब लाला रघुवीर सिंह नायब तहसीलदार को वजीर बनाया गया। सन् 1925 में राय साहिब पं. लायक राम को वजीर बनाया गया। सन् 1930 में राजा को पूरे अधिकार भी सौंपे गए। नालागढ़ में इन दिनों निम्न सुधार हुए :

ईश्वरी हाई स्कूल का स्तर बढ़ा, रामशहर में एक अस्पताल खुला, 1924 में सहकारिता आंदोलन शुरू हुआ, 1932 में पशु चिकित्सालय खोला, 1935 में आयुर्वेदिक औषधालय खोला, सभी सड़कें पक्की की गईं।

सुरेंद्र सिंह

सुरेंद्र सिंह के राजा बनने पर पटियाला रियासत से संधि हुई जिसके अनुसार प्रशासन कार्य पटियाला के साथ चलाना तय हुआ। सुरेंद्र सिंह ने कुशलता से प्रशासन चलाया और लोकप्रिय शासक बना।

इस समय प्रजा मंडल आंदोलन भी चला। सन् 1948 में रियासतों के विलय के समय 2 मई, 1948 को पंजाब की रियासतों की एक बैठक हुई। इस बैठक में मांग रखी गई कि कलसिया और नालागढ़ रियासतों को पटियाला और पूर्वी पंजाब की रियासतों को संघ में मिलाया जाए। 15 जुलाई, 1948 को पटेल ने पटियाला के महाराजा यादवेंद्र सिंह को शपथ दिलाई और नालागढ़ पैप्सू में मिल गया।

सुरेंद्र सिंह के पुत्र व्रजेंद्र सिंह (जन्म : 26.6.1946) 1977, 1982, 1985, 1990 तथा 1993 में कांग्रेस से विधानसभा सदस्य रहे। मुख्य संसदीय सचिव तथा स्वास्थ्य राज्य मंत्री भी रहे।

हिंडूर (नालागढ़)

(कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची)

गजे सिंह

राजा रामसरन सिंह

- राजा विजय सिंह (मृत्यु 1857)
- फतेह सिंह (मृत्यु 1872)
  - केसरी सिंह (मृत्यु 1875)
    - भगवान सिंह (जन्म 1860)
      - गोवर्धन सिंह (जन्म 1885)
- राजा उग्र सिंह (मृत्यु 1876)
  - राजा ईश्वरी सिंह (जन्म 1836)
  - जोगेंद्र सिंह (जन्म 1870)
- बीर सिंह (मृत्यु 1873)

कर्नल मैसी ने लिखा है कि राजा रामसरन को जो भरोली में गांव दिए थे, 8500 रुपए की राशि के बदले एक राणा को दे दिए गए। इलाका भरोली इसके बाद अंग्रेजी सरकार के कब्जे में आ गया। यह इलाका जिला शिमला का हिस्सा बन गया और सपाटू छावनी के अंतर्गत आया। सन् 1830 में भरोली के तीन गांव महाराजा पटियाला को उन चार गांवों के बदले दिए गए जो अब शिमला शहर की सीमा में हैं। इसी साल पटियाला और क्योंथल के इलाकों से जमीनें लेकर शिमला स्टेशन की नींव डाली गई।

उक्त वर्णन से शिमला में रेलवे स्टेशन के आरंभ का पता चलता है। मैसी ने क्योंथल के वर्णन में भी उल्लेख किया है कि सन् 1830 में रियासत क्योंथल और पटियाला राजाओं से जमीन के टुकड़े लेकर वर्तमान शिमला स्टेशन आबाद किया गया। रियासत क्योंथल से 12 गांव जिनकी मालगुजारी 937 रुपए थी, लिए गए और इनके मुआवजे में उनको परगना रावीं जिसकी मालगुजारी 1289 रुपए थी, अंग्रेजी सरकार ने जंगी जरूरतों के लिए फायदेमंद समझकर रख लिया था, दे दिया गया।

बुशहर-किन्नौर

प्रागैतिहासिक काल

किन्नौर एक पुरातन राज्य रहा है। पौराणिक साहित्य में भी किन्नर, किंपुरुष का उल्लेख बार-बार हुआ है। किन्नौर में आज भी खानदान या परिवार को 'किम' कहते हैं अतः किंपुरुष वर्ष का स्मरण होता है। राहुल जी ने कहा है :

'किन्नौर के लिए किंपुरुष शब्द भी संस्कृत में प्रयुक्त होता है, अतः इसी का नाम किंपुरुष देश या किंपुरुष वर्ष भी था। किन्नर या किंपुरुष देवताओं की एक योनि मानी जाती थी, किंतु उससे इतिहास जानने में कोई सहायता नहीं मिलती।' कुछ पुराणों में किन्नरों को निशाचरों की श्रेणी में रखा गया है। इन्हें महानील पर्वत, हिमवान पर्वतवासी माना गया। किन्नरों को अश्वमुख तथा किन्नरियों को मधुरकंठी कहा गया। महाभारत में किन्नरों का वास किंपुरुष वर्ष ही माना गया। यह प्रदेश धवलागिरि को लांघकर आता था।

किसी समय चंद्रभागा तट से कश्मीर तथा नेपाल तक का सारा क्षेत्र किन्नर क्षेत्र था। आज चंद्रभागा तट पर किन्नौरी भाषा नहीं बोली जाती, न ही वहां किन्नर वास करते हैं किंतु सत्तुपिटक के 'विनानवत्थु' में लिखा है 'चंद्रभागा नदी तीरे अहोंसि किन्नरो तदा।'

राहुल जी के अनुसार किन्नर यहां की पुरातन जाति थी जिसका सर्वप्रथम समागम खश जाति से हुआ। आर्य ताम्र युग में भारत पहुंचे। उस समय यह संभव है कि चंद्रभागा के किनारे किन्नर रहते हों। फिर उनका समागम पशुपालक खशों से हुआ। बहुत बाद में इधर किन्नरों ने अपनी भाषा छोड़ आर्य भाषा अपना ली। फिर किन्नर लोग भोट जाति के संपर्क में आए। जब सम्राट स्रोन-त्सन-गम्पो (630-50) ने पूरे तिब्बत, हिमालय और गिलगित में भोट साम्राज्य की स्थापना की तो किन्नर देश में भी भोट लोग आए। बौद्ध धर्म का प्रचार आरंभ हुआ।

कुछ व्यापार केंद्रों का भी संस्कृति के संगम में योगदान रहा। कालसी पुराने समय में हिमालय का मध्य देश से व्यापार का केंद्र था। यहां हिमालय की पश्म, ऊन, कस्तूरी, खालें बिकती थीं। पाली वाड्.मय में 'अजपथ' अर्थात् बकरी का रास्ता यहीं से आरंभ होता है। कालसी समय के अनंतर उजड़ गई। फिर रामपुर, बुशहर और कुल्लू में ऐसी मंडिया बनीं जहां हिमालय के दुर्लभ पदार्थ बिक्री हेतु आने लगे।

अतः अशोक के समय किन्नरों का मौर्य साम्राज्य से संबंध अवश्य रहा होगा।

राहुल जी ने किन्नौर में मृतकों की समाधियां खोजीं। ये समाधियां दीर्घ कपाल लोगों की हैं। समाधि के साथ मृतक के लिए खान-पान की सामग्री भी रखी जाती थी। राहुल जी ने माना है कि किन्नरों के रक्त में खशों तथा आर्यों के रक्त का सम्मिश्रण ताम्रयुग में हुआ और तिब्बती रक्त का सम्मिश्रण सातवीं शताब्दी के मध्य। उन्होंने किन्नौर के इतिहास को निम्न भागों में बांटा :

1. किन्नर (प्राग्-खश, प्राग्-आर्य), काल—ताम्र युग
2. आर्य खश (प्राग् भोट), काल—7वीं सदी तक
3. भोट काल—13वीं सदी तक
4. ठाकुरशाही—15वीं सदी तक
5. कामरू (रामपुर), राजवंश—फरवरी, 1848 तक

बुशहर की स्थापना

बुशहर-किन्नौर राज्य की स्थापना कब हुई, साक्ष्यों के अभाव में यह कहना कठिन है। परंपरा के अनुसार बाणासुर पहले शोणितपुर (सराहन) और बाद में पूरे क्षेत्र का राजा बना जो द्वारिका के श्रीकृष्ण का समकालीन था। पुराने समय यह क्षेत्र छोटे-छोटे ठाकुरों के अधीन था जिसका आपस में वैर-वैमनस्य चलता रहता था। इन्हीं क्षेत्रों में एक कामरू था जिसका राजा राजपूर्ण था। राजपूर्ण का सेनापति बाणासुर था। राजा सेनापति का बहुत आदर करता था किंतु मंत्रीगण उससे द्वेष करते थे। इससे दुखी होकर वह राज्य छोड़ तीर्थयात्रा पर मानसरोवर चला गया। तीर्थयात्रा से वापसी पर वह कामरू नहीं गया, शोणितपुर (सराहन) में अपना राज्य स्थापित किया। कामरू के राजा की कोई संतान नहीं थी अतः मृत्यु से पूर्व उसने बाणासुर को बुलाकर अपना राज्य भी दे दिया। अतः शोणितपुर या सराहन में नया राज्य बना जिसके अधीन कामरू भी आ गया।

इस घटना के बाद उषा अनिरुद्ध का पौराणिक प्रसंग आ जुड़ता है। बाणासुर की एक पुत्री उषा थी। श्रीकृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध शोणितपुर आया। उसने उषा से विवाह की इच्छा की। बाणासुर को यह मंजूर न था अतः उसने बाणासुर को बंदी बना लिया। श्रीकृष्ण तथा प्रद्युमन शोणितपुर आए, बाणासुर से युद्ध हुआ और अंततः अनिरुद्ध का उषा से विवाह हुआ। श्रीकृष्ण तो द्वारिका लौटे। परंपरा के अनुसार प्रद्युमन वहीं रहा जबकि अनिरुद्ध को वहां रहना चाहिए था। वंशावली प्रद्युमन से आरंभ होती है। किंतु वंशावली में प्रद्युमन के बाद अनिरुद्ध न होकर 'छुम्बल' या जयमल या जमल या जैन है। नाम के साथ 'सिंह' भी है।

राज्य की स्थापना की दूसरी कथा कामरू में स्थित बद्रीनाथ देवता का पुजारी कहता है। यह देवता बुशहर का कुल देवता है। पुजारी कहता है कि देवपूर्ण बद्रीनाथ मंदिर में थोलिंङ्. के रास्ते आया। कामरू में पहाड़ियूदेन नामक ठाकुर रहता था। इस ठाकुर से देवपूर्ण का युद्ध हुआ जिसमें ठाकुर मारा गया। इसके बाद देवपूर्ण ने सांगला के ठाकुर मुखोविशनान तथा तागलिङ्. और चीनी व चोलिङ्. के ठाकुरों को भी हराया। फिर सराहन या शोणितपुर की ओर बढ़ा और बाणासुर को हराया। इस तरह पूरे क्षेत्र को जीतकर देवपूर्ण कांचीपुर गया जहां चंद्रवंशी राजकुमार प्रद्युमन को लाकर कामरू की गद्दी सौंपी।

तीसरी कथा के अनुसार दक्षिण में कांचीपुर या कंचनपुर से दो ब्राह्मण भीमाकाली के दर्शन हेतु आए। उन दिनों वहां कोई राजा नहीं था। प्रद्युमन वंश के अंतिम शासक के निःसंतान मरने से उत्तराधिकारी कोई नहीं था। अतः प्रजा तथा दरबारियों ने निर्णय लिया कि जो भी व्यक्ति सर्वप्रथम भीमाकाली के मंदिर में द्वार से प्रवेश करेगा, उसे राजा बनाया जाएगा। संयोग से उस प्रातः उन दोनों भाइयों से छोटे भाई ने पहले मंदिर में प्रवेश किया। उसे उसी समय राजा घोषित कर दिया। उसके बड़े भाई को राजगुरु बनाकर रावीं नामक स्थान में बसाया गया। बड़े भाई दशरथ की संतान राजा के राजपुरोहित तथा गुरु बने।

उक्त तीनों कथाएं अलग-अलग हैं किंतु तीनों में प्रद्युमन के वंश का उल्लेख है। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युमन का उल्लेख एक कथा में है जो उषा-अनिरुद्ध की कथा है। प्रद्युमन इसमें एक अतिथि कलाकार ही है। अतः इस वंश का संस्थापक प्रद्युमन श्रीकृष्ण के पुत्र से कोई दूसरा व्यक्ति भी हो सकता है क्योंकि वंशावली में भी प्रद्युमन के बाद अनिरुद्ध का नाम कहीं नहीं आता है।

पंजाब सरकार अभिलेख (1911) में इस वंश के संस्थापक का नाम राजकुमार दूंबर सिंह दिया है जिसने सं. 472 (315 ई.) में इस राज्य की नींव रखी।

बुशहर राजवंश से पहले किन्नौर में सात 'खूंद' और अट्ठारह ठाकुर या ठकरस थे। महासू में 'खूंद' शब्द योद्धा के लिए भी प्रयुक्त होता है। ठोडा युद्ध नाट्य के समय धनुष-बाण चलाने वाले युद्ध खूंद कहलाते हैं। अतः खूंद खशों के आगमन पर बने होंगे। सात खूंदों के अपने-अपने देवता थे। राहुल जी ने निम्न सात खूंद गिनाए हैं—

नाम	स्थान	देवता
1. दोशो खूंद	गौरा तथा नीचे	बसारू
2. पंद्रह-बीस खूंद	गान्मी (गाह्नवी)	लाछी
3. अट्ठारह-बीस खूंद	सुङ्.रा	मैसू (महासू)

4. बड़्.मो खूंद	भाबा	मैसू (महासू)
5. पग्रामं (राजग्राम) खूंद	ठौलड़्. (चगांव)	मैसू (महासू)
6. छुवड़्. खूंद	चिनी (छुवड़्.)	चंडिका (कोठी)
7. टुक्पा खूंद	कामरू (मोने)	बद्रीनाथ

अट्ठारह ठाकुर किन्नौर से नीचे रामपुर व ऊपरी शिमला के क्षेत्र में थे। ये अट्ठारह ठकुराइयां कहलाती थीं।

किन्नौर-बुशहर के क्षेत्र में छोटे-छोटे गढ़ बना रखे थे जो काष्ठ वास्तुकला के अनूठे उदाहरण हैं। कामरू, मूरंग, लबरंग के किले इसके उदाहरण हैं। पांच-छह मंजिले इन किलों में देवता का स्थान, राजगद्दी, अनाज गोदाम, रसोई, पानीघर तथा हथियारों के संग्रह के लिए अलग-अलग मंजिलें बनी थीं। उदाहरणतः कामरू किले में प्रथम तल में गोदाम, स्नानगृह, पानीघर, रसोई और काठघर हैं। दूसरे तल में तीन कमरे हैं जिनमें एक बहुत छोटा, दूसरा कुछ बड़ा और तीसरा सबसे बड़ा पूजागृह है। यहां आठ देवताओं के बीच राजगद्दी रखी है। तीसरा तल पांच कमरों वाला है। एक कमरा कभी खोला नहीं जाता। दूसरे में त्योहार पर बलि दी जाती है। तीसरे वर्ष भीमाकाली के आने पर यहां सैकड़ों भेड़-बकरियां काटी जाती हैं। तीसरे में बलि पशु ले जाया जाता है। चौथे में भीमाकाली विराजती हैं। पांचवें कमरे में हथियार रखे जाते हैं। चौथे तल में सबसे बड़े कमरे में दरबार हॉल है। दूसरे में रनिवास है, तीसरा स्नानगृह, चौथा रसोईघर, पांचवां पानीघर। पांचवां तल सबसे ऊपर है जहां एक कोठी में बटकुला देवता निवास करता है।

इस प्रकार इन छोटे-छोटे किलों में छोटे-छोटे ठाकुर रहते थे। कामरू के ठाकुर ने आसपास के ठाकुरों को जीतकर राज्य विस्तार किया। यह ठाकुर कौन था। क्या यहां का वासी था या बाहर से आया, यह कहना कठिन है।

किन्नौर-बुशहर की एकाधिक वंशावलियां मिलती हैं। कामरू तथा बुशहर की वंशावलियां प्रमुख मानी जाती हैं क्योंकि यही दो स्थान राज्य की मुख्य पीठ रहे। कामरू की वंशावली में संस्थापक से लेकर राजा पदम सिंह (1914-1947) तक 122 राजा हैं जबकि रामपुर वंशावली में 130 राजा। यदि एक राजा का कार्यकाल बीस वर्ष भी माना जाए तो 2600 वर्ष बनते हैं और स्थापना बहुत पीछे जाती है। वंशावली के नाम सीधे 'सिंह' से आरंभ किए हैं जो इतनी पहले नहीं होते थे। संभवतः वंशावली जब तैयार की गई तो 'सिंह' का चलन हो गया था।

उपलब्ध सूचियों में राजाओं की संख्या तथा नामों की भिन्नता पाई जाती है। राजाओं के कार्यकाल में इसी प्रकार अलग-अलग तिथियां हैं। यह लगभग कुल्लू के राजवंश की-सी स्थिति है जहां तिथियों में मतभेद है।

बुशहर का प्रारंभिक इतिहास ज्ञात नहीं है। यहां कौन राजा रहे, उनका क्या योगदान रहा, यह भी अंधकारमय है। सम्राट अशोक का राज्य लद्दाख तक फैला हुआ था अतः संभव है यह क्षेत्र भी अशोक के अधीन रहा हो। दूसरी-तीसरी शताब्दी तक यमुना और सतलुज के मध्य कुलिंद लोग रहते थे। यद्यपि कुलिंद भी पर्वतवासी थे किंतु उनका कोई अवशेष या संदर्भ इस ओर नहीं मिलता। गुप्त काल में यह क्षेत्र गुप्त सम्राटों के अधीन रहा होगा, ऐसी संभावना लगाई जाती है। स्पीति के सेन वंश के शासक गुप्त साम्राज्य के सामंत माने जाते हैं। रामपुर के पार प्राप्त निरमंड ताम्रपत्र भी 'सेन' उपनाम के सामंतों की पुष्टि करता है।

बुशहर का इतिहास यद्यपि अंधकारमय है तथा दूसरे राज्यों में इस राज्य का उल्लेख बराबर आता रहा है। सातवीं शताब्दी में कुल्लू के राजा ब्रह्मपाल की निःसंतान मृत्यु होने पर चंबा, लद्दाख तथा बुशहर व कांगड़ा के राजाओं के विचार-विमर्श के बाद गणेश पाल को गद्दी पर बिठाया। कुल्लू के ही राजा दतेश्वर पाल के समय चंबा की सेनाओं ने रोहतांग से होकर आक्रमण किया। राजा युद्ध में मारा गया। उसके पुत्र अमर पाल ने भी चंबा की सेना से युद्ध किया किंतु राजा और उसका एक पुत्र मारे गए। राजा का दूसरा पुत्र सतपाल भागकर बुशहर आ गया और वहीं रहने लगा। सत पाल के आगे पांच पीढ़ियों तक राजा वही रहे। छठी पीढ़ी के जरेश्वर पाल ने बुशहर की सहायता से चंबा की सेना को कुल्लू की सीमाओं से भगाया। बुशहर के इतिहास में इसका कोई वर्णन नहीं, अतः यह पता नहीं चलता यह किस राजा के समय हुई होगी।

बुशहर किन्नौर का संपर्क भोट तथा तिब्बत राज्य से भी रहा। तिब्बत के शासक स्रोन-त्सन-गम्पो (627-640) ने तिब्बत के छोटे शासकों को अपने अधीन कर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। उस समय किन्नौर-बुशहर भी इस राज्य के संपर्क में आया होगा। उसका मंत्री संभोट भारतीय शास्त्रों के अध्ययन के बाद तिब्बत से कश्मीर संभवतः किन्नौर से ही गया होगा क्योंकि यह रास्ता लद्दाख से आसान व सुगम था। पद्मसंभव जब मंडी तथा कुल्लू होते हुए स्पीति व लाहौल आए तो वे किन्नौर के नाको में भी आए। नाको की एक शिला में पद्मसंभव का पैर अंकित हुआ माना जाता है।

इस प्रकार तिब्बती शासकों, बौद्ध धर्म के प्रसार पर किन्नौर में गहरा प्रभाव पड़ा। बौद्ध धर्म के प्रबल विद्रोही लंग द्रामा तथा पालगी दोरजे के हाथों उसकी मृत्यु के बाद पुनः उत्थान आदि घटनाओं से किन्नौर सीधा प्रभावित रहा। तिब्बत तथा बुशहर-किन्नौर की बहुत बार आपसी लड़ाइयां भी होती रहीं।

गुगे के शासक ये-शेश-ओद के समय बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भिक्षु कश्मीर

भेजे गए। उनमें से एक रिन-चेन-जंगपो (958-1055) या रत्नभद्र ने 108 बौद्ध विहार स्पीति तथा किन्नौर में बनाए। अतः किन्नौर या स्पीति और तिब्बत के साथ सीधा धार्मिक व सांस्कृतिक संबंध रहा। इसका प्रभाव बुशहर तथा किन्नौर में स्पष्ट देखा जा सकता है। रामपुर से हर गांव में एक हिंदू तथा एक बौद्ध मंदिर की परंपरा आरंभ होती है जो पूह तक चलती है। एक गांव में एक देवी या देवता का मंदिर है तो उसी आंगन में बौद्ध विहार भी है। कामरू, छितकुल, कानम इसके जीवंत उदाहरण हैं।

कामरू में तिब्बत के आक्रमण का उल्लेख यहां की परंपरा में बताया जाता है। तिब्बत सेना ने बसपा घाटी पर आक्रमण किया तो राजा कामरू किले में मोर्चा संभाले बैठ गया। शत्रु किले के ऊपर ढलान में रहे। तिब्बत सेना ने चीनी के ठाकुर को अपनी ओर मिला लिया। कामरू के तूरी ने भी देशद्रोह किया और किले की बनावट का भेद दे दिया। उसने बताया कि किले के बीच की कड़ी गिरा दी जाए तो किला ढह जाएगा। किंतु तिब्बती किले पर अधिकर नहीं कर पाए। सर्दियों में बर्फ गिरने पर वे वापस चले गए। उनके जाने के बाद राजा ने चीनी के ठाकुर को पुनः जीता और उसे प्रति तीन वर्ष में कामरू आकर देवी-पूजा में उपस्थित होने का दंड दिया। यह प्रथा पर्याप्त समय तक चलती रही। चीन से आने वाले व्यक्ति को चिनछड़. कहा जाता है।

वंशावली

राहुल सांकृत्यायन के 'किन्नर प्रदेश' में प्रकाशित कामरू वंशावली :

1. प्रदुमन
2. छुबल
3. सेर
4. कमल
5. गुलाब
6. बरदेव
7. मेहरूप
8. हरि
9. सरजीत
10. जगवीर
11. रघु
12. गोपाल
13. हरिचरण
14. माक्रमान
15. मुदई
16. भूप
17. उमेद
18. हरकरपाल
19. करपाल
20. हरदेव
21. सलाब
22. बीमा
23. बगल
24. पुरवा
25. मेहर
26. सबला
27. हामी
28. जवार
29. गबरदन (गोवर्धन)
30. जगवीर (जगदीप)
31. सुरजन (सूर्ज)
32. मदन
33. गोविंद
34. प्रीतम
35. गुरदारी
36. किसन (किशन)
37. बिसन (विशन)
38. रघुनाथ
39. देवी
40. चरन (चरण)
41. परदेसी
42. मलबहादुर
43. गोली
44. गुरबदल
45. जगत
46. अम्रित (अमृत)
47. दलबदर (दलबहादुर)
48. नेहल (निहाल)
49. हरिपद
50. फतेह
51. अमर
52. महाबद्र (महाभादर)
53. सलार
54. जगदे
55. जोगदेयाल (जगदयाल)
56. दलब (दलबे)
57. मदोर
58. दलीप
59. जगतम्ब (जगबंग)
60. गुमान

61. परमोद (प्रबोध)
62. महीपर (माईपर)
63. सरब (सर्ब)
64. सलेही
65. गोरकोकिल (गरगोकल)
66. परदेवर (पतम्बर)
67. बारपल
68. चरमेद
69. दरजोद (दरजोदन)
70. दरकोरी (दरकोटी)
71. प्रीतम
72. सागर
73. रन (रण)
74. धीरजमेहर (दरजमेहर)
75. मंगल (बगल)
76. गोरसी (गोर)
77. लावी (लखीर)
78. भरभु भजन (प्रभु भजन)
79. दुमन
80. दनकरीत (धनकृत)
81. दलदीन
82. दरदेऊ (प्रदेओ)
83. मारी (सरष्ट)
84. अमलर
85. टाहरी (जहारी)
86. बसाथ (980 ई.) दशरथ
87. करम (1000 ई.) कर्म
88. प्रेम (1020 ई.)
89. दस्त (1040 ई.) दरत
90. चरन (1060 ई.) चरण
91. बीरबेसी (1080 ई.) विश्वै
92. कसरी (1100 ई.)
93. परजीत (1120 ई.) प्रजीत
94. धरम (1140 ई.) दरप
95. कमल (1160 ई.)
96. छतर (1180 ई.)
97. अमर (1200 ई.) अनर
98. करल (1220 ई.)
99. तपनाथ (1240 ई.)
100. सग्रम (1260 ई.) सरगर्म
101. सूरज (1280 ई.)
102. दरमोरत (1300 ई.) दरमोरथ
103. चारमल (1320)
104. जवाला (1340) सूरजन
105. ग्वस्दल (1360) दरमोरथ
106. अम्रित (1380) चरमल
107. सार (1400) जला
108. करिसन (1420) अमरत
109. हरि (1440) अमरत
110. हबर (1460) सरंग
111. जबर (1480) कृष्ण
112. भूप (1500) हरि
113. कल्याण सिंह
114. केहर सिंह
115. विजपा (वजय सिंह)
116. उदय सिंह
117. राम सिंह
118. रुद्र सिंह
119. उग्र सिंह (1736-1811)
120. महींद्र सिंह (1815-1850)
121. समसेर सिंह (ज. 1850-1914)
122. पदम सिंह (1914-1947)
123. वीरभद्र सिंह (ज. 1934)

कामरू से प्राप्त वंशावली

1. प्रदुमन
2. राजा छुम्बल सिंह
3. शेर सिंह
4. कमल सिंह
5. गुलाब सिंह
6. वरदेव सिंह
7. मेडुप सिंह
8. हरि सिंह
9. सरजीत सिंह
10. जगवीर सिंह
11. रघु सिंह
12. गोपाल सिंह
13. हरिचंद सिंह
14. मकरमन सिंह
15. मुदई सिंह
16. भूप सिंह
17. उमेद सिंह
18. हरकिरपाल सिंह
19. करपाल सिंह
20. हरदेव सिंह
21. सलाब सिंह
22. भीम सिंह
23. बगल सिंह
24. पूर्वा सिंह
25. मेहर सिंह
26. सबला सिंह
27. हमीर सिंह
28. जवार सिंह
29. गवरदन सिंह
30. जगदीप सिंह
31. सूरज सिंह
32. मदन सिंह
33. गोविंद सिंह
34. प्रीतम्बर सिंह
35. गुरदारी सिंह
36. किशन सिंह
37. विशन सिंह
38. रघुनाथ सिंह
39. देवी सिंह
40. चरण सिंह
41. पदेसरी सिंह
42. बलबहादुर सिंह
43. गोपी सिंह
44. गुरबादल सिंह
45. जगत सिंह
46. अमृत सिंह
47. दलबहादुर सिंह
48. निहाल सिंह
49. हरपत सिंह
50. फतह सिंह
51. अमर सिंह
52. महाभादर सिंह
53. सलार सिंह
54. जगबे सिंह
55. जगदयाल सिंह
56. दलबे सिंह
57. मदोर सिंह
58. दलीप सिंह
59. जगबंग सिंह
60. गुमान सिंह
61. प्रबोध सिंह
62. माईपर सिंह
63. सर्व सिंह

64. सलेही सिंह
65. गरकोकल सिंह
66. पतम्बर सिंह
67. बरपाल सिंह
68. चरमेद सिंह
69. दरजोदन सिंह
70. दरकोटी सिंह
71. प्रीतम सिंह
72. सागर सिंह
73. रण सिंह
74. दरज मेहर सिंह
75. बगल सिंह
76. गोर सिंह
77. लखीर सिंह
78. प्रभु भजन सिंह
79. दुमन (डुमन) सिंह
80. धनकृत सिंह
81. दलदीन सिंह
82. प्रदेओ सिंह
83. सीस्ट सिंह
84. अमला सिंह
85. जहारी सिंह
86. दशरथ सिंह
87. कर्म सिंह
88. प्रेम सिंह
89. दरत सिंह
90. चरण सिंह
91. विरवै सिंह
92. केसरी सिंह
93. प्रजीत सिंह
94. दरप सिंह
95. कमल सिंह
96. छतर सिंह
97. अबर सिंह
98. करल सिंह
99. तपनाथ सिंह
100. सरगर्भ सिंह
101. सूरज सिंह
102. दरमोरथ सिंह
103. चरमल सिंह
104. सुरजन सिंह
105. दरमोरथ सिंह
106. चरमल सिंह
107. जला सिंह
108. ग्यातल सिंह
109. अमरत सिंह
110. सरंग सिंह
111. कृष्ण सिंह
112. हरि सिंह
113. जकर सिंह
114. भूप सिंह
115. कल्याण सिंह
116. केहर सिंह
117. विजय सिंह
118. उदेन सिंह
119. राजा राज सिंह
120. हदु सिंह
121. उग्र सिंह
122. महींद्र सिंह
123. समसेर सिंह
124. पद्म सिंह
125. वीरभद्र सिंह

रामपुर-बुशहर से प्राप्त वंशावली राजा वीरभद्र सिंह के संग्रह से :

1. प्रदुमन सिंह
2. जयमल सिंह
3. शेर सिंह
4. कमल सिंह
5. गुलाब सिंह
6. नरदेव सिंह
7. सूरत सिंह
8. नहरी सिंह
9. सुरजीत सिंह
10. जोगिंद्र सिंह
11. रघु सिंह
12. गोपाल सिंह
13. सरजीव सिंह
    नरजंत सिंह (भाई)
14. विक्रम सिंह
15. मधुमति सिंह
16. भूप सिंह
17. रवीन दत्त सिंह
    रण बहादुर सिंह (भाई)
18. तिरी विक्रम सिंह
19. गिरवान सिंह
20. नरदेव सिंह
21. सूरत सिंह
22. हेम सिंह
23. मंगल सिंह
24. सुरमान सिंह
    ब्रजमान सिंह (भाई)
25. महोवर सिंह
    नेहर सिंह (भाई)
26. जयपाल सिंह
27. गजापति सिंह
    पापति सिंह (भाई)
28. जवाहर सिंह
29. गोवर्धन सिंह
30. जगत सिंह
    जोगेसर सिंह (भाई)
31. सुरजब सिंह
32. मदन सिंह
33. गुरजन सिंह
34. प्रताप सिंह
35. गिरधारी सिंह
36. कृष्ण सिंह
37. विशन सिंह
38. रघनाथ सिंह
39. देवी सिंह
40. चरन सिंह
41. पदमेसर सिंह
42. बलबहादुर सिंह
43. गुजरात सिंह
44. गिरवावल सिंह
45. जगत सिंह
46. रनदोह सिंह
47. दिल बहादुर सिंह
48. भगवान सिंह
    मलजान सिंह (भाई)
49. हीर सिंह
50. तेजा सिंह
    तेग सिंह (भाई)
51. अमर सिंह
52. मदबहादुर सिंह
53. संसार सिंह
54. जगतपति सिंह
55. जोगध्यान सिंह

56. दलपति सिंह
57. बदोर सिंह
58. दलीप सिंह
59. गजपति सिंह
60. कीर्तन सिंह
    गुरमान सिंह
61. नरमोहन सिंह (भाई)
    परदा सिंह
62. मनोहर सिंह (भाई)
63. नरीप सिंह
    सरप सिंह (भाई)
64. सैन सिंह
    सेन सिंह
65. गुरभक्त सिंह
    गुरगोपाल सिंह (भाई)
66. मरदन सिंह
    सरदार सिंह (भाई)
67. नरचाल सिंह
    परमान सिंह (भाई)
68. सुरमान सिंह
69. दुर्जोधन सिंह
70. धनोरज सिंह
    ढोलची सिंह (भाई)
71. प्रीतम सिंह
72. नरसागर सिंह
73. रत्न सिंह
74. ध्वज मेहर सिंह
75. भगवत सिंह
    मंगल सिंह (भाई)
76. सुरसेन सिंह
    गुरसेन सिंह (भाई)
77. भखन सिंह
    सूपिक सिंह (भाई)
78. हरिसेजन सिंह
79. धन बहादुर सिंह
80. धनभरत सिंह
    रत्न सर्व सिंह (भाई)
81. दिलधन सिंह
    दिलधरन सिंह (भाई)
82. नरदेव सिंह
83. प्यारी सिंह
    सारी सिंह (भाई)
84. अमर सिंह
85. दमोदर सिंह
    धनवीर सिंह (भाई)
86. दहरी सिंह
    दसरथ सिंह (भाई)
87. करम सिंह
88. प्रेम भद सिंह
89. दहरी सिंह
    धनपत सिंह (भाई)
90. राम चरन सिंह
91. नरतन सिंह
    नरपति सिंह (भाई)
92. केहर सिंह
93. चरमत सिंह
    हरमत सिंह (भाई)
94. धर्म सिंह
95. कमलावर सिंह
96. तर्कमान सिंह
97. अमर महान सिंह
98. करन सिंह
99. अष्ट गुमान सिंह
    पतनाथ सिंह (भाई)

100. संग्राम सिंह
संतग्राम सिंह (भाई)
101. परदोह सिंह
102. दरजोत सिंह
103. चतरमल सिंह
104. लछमी सिंह
जगपति सिंह (भाई)
105. कटारन सिंह
106. अमृत सिंह
107. सार सिंह
108. कृष्ण सिंह
109. हरि सिंह
110. छत्तर सिंह
111. भूप सिंह
112. कल्याण सिंह
113. केहरी सिंह, छत्रपति की पदवी प्राप्त की
114. वेजी सिंह
115. उदे सिंह
116. राम सिंह
117. रुद्र सिंह
भीम सिंह (भाई)
118. ओगर सिंह
119. महेंद्र सिंह
120. शमशेर सिंह
फतह सिंह (भाई)
121. पदम सिंह
रघुनाथ सिंह (भाई)

राहुल सांकृत्यायन के 'किन्नर प्रदेश' में प्रकाशित रामपुर वंशावली

1. प्रदुमन
2. जमल
3. नाहर
4. कमाल
5. जगत
6. बुरिद
7. सूरत
8. नरजेब
9. सरजीत
10. जुगेन्दर
11. रघु
12. गोपाल
13. हरिचरण
14. बदामा
15. बुधिपति
16. भवानी
17. रनबादल
18. पदम
19. गुरबान
20. नरदेव
21. सूरज
22. भीम
23. सूरमंगल
24. सूरमा
25. मेहरू
26. जमाल
27. गजपति
28. जवाहर
29. गबरदन

30. जगवरत
31. सुरज्ञान
32. मदन
33. गरजन
34. जवीब
35. गिरधारी
36. किशन
37. कृष्णा (बिसन)
38. रघुनाथ
39. देवी
40. चरन
41. परमेश्वर
42. दलबादल
43. गजराव
44. गुरबादल
45. जगत
46. अभिरुद्ध
47. बल बहादुर
48. भगवान
49. हरि
50. अमर
51. भदबादर
52. रणमार
53. जगपति
54. ज़ोगेंद्रपाल
55. दलपति
56. बुधवान
57. दलीप
58. जगपति
59. तान
60. नरमोह
61. मनोहर
62. नरदेव
63. नरसिंह
64. गुर भगत
65. माधन
66. नरदल
67. देव
68. दरजोधन
69. धेनुगज
70. प्रीतम
71. सार
72. रतन
73. धजमोर
74. मंगल
75. सूरसेन
76. भभी
77. हरिभजन
78. धनभरत
79. भरत
80. हलसेन
81. नरदेव
82. सार
83. अमर

84वें राजा अमर के पश्चात् हुए राजा से लेकर 120वें राजा छत्र सिंह से पूर्व तक के राजाओं के नाम राहुल सांकृत्यायन ने प्रकाशित नहीं किए।

120. छत्र सिंह
121. कल्याण सिंह
122. केहरी सिंह
123. विजय सिंह
124. उदय सिंह
125. राम सिंह

126. रुद्र सिंह
127. उग्र सिंह
128. महेंद्र सिंह
129. शमशेर सिंह
130. पदम सिंह
131. वीरभद्र सिंह

डॉ. बंशीराम शर्मा द्वारा रुणियाराम के सहयोग से रामपुर से प्राप्त

1. श्री प्रदुमन सिंह
2. जैन सिंह
3. शेर सिंह
4. कमल सिंह
5. गुलाब सिंह
6. इंद्र देव सिंह
7. सूरत सिंह
8. तेहरी सिंह
9. सवीर जीत सिंह
10. जुगेन्दर सिंह
11. रघु सिंह
12. गोपाल सिंह
13. जीवन सिंह
14. विक्रम सिंह
15. मदूपति सिंह
16. भूप सिंह
17. रत्नवीर सिंह (भाई रनबहादुर सिंह)
18. विक्रमा सिंह
19. गीरवान सिंह
20. नरदेव सिंह
21. सूरत सिंह
22. भीम सिंह
23. मंगल सिंह
24. सुमान सिंह (भाई निर्मा सिंह)
25. महोदर सिंह (भाई नेहर सिंह)
26. जयपाल सिंह
27. बगलापति सिंह (भाई प्रजापति सिंह)
28. जवाहर सिंह
29. गोवरधन सिंह
30. जगत सिंह (भाई जगवीर सिंह)
31. सुरजन सिंह
32. मदन सिंह
33. गोविंद सिंह
34. प्रताप सिंह
35. गीरधारी सिंह
36. कृष्ण सिंह
37. विशन सिंह
38. रघुनाथ सिंह
39. देवी सिंह
40. चरण सिंह
41. पदमवीर सिंह
42. बलबहादुर सिंह
43. गुजरात सिंह
44. गिर बावल सिंह
45. जगत सिंह
46. अनिरोध सिंह
47. दिल बहादुर सिंह
48. भगवान सिंह (भाई मलजान सिंह)
49. हरि सिंह
50. तेजा सिंह (भाई फते सिंह)
51. अमर सिंह
52. सदा बहादुर सिंह
53. संसा सिंह
54. जगपति सिंह
55. जोग वाहन सिंह

56. दलपति सिंह
57. बदरू सिंह
58. दलीप सिंह
59. जगपति सिंह
60. किरतन सिंह (भाई गिरवान सिंह)
61. त्री मोहन सिंह (भाई परदा सिंह)
62. मनोहर सिंह
63. नरेप सिंह
64. सरूप सिंह
65. सलेम सिंह
66. गुरु गोपाल सिंह
67. मरो सिंह
68. बाल सिंह
69. सूर मिंदर सिंह
70. दूरजोधन सिंह
71. दीलोचन सिंह
72. प्रीतम सिंह
73. नरसागर सिंह
74. रत्न सिंह
75. देहोच मेहर सिंह
76. भगवत सिंह
77. सूर सेन सिंह
78. बैहकन सिंह
79. हरि चेन सिंह
80. धन बहादुर सिंह
81. दिन भरत सिंह
82. दिल देहन सिंह
83. निदेओ सिंह
84. ठयोर सिंह
85. अमर सिंह
86. दमंरोवर सिंह
87. देहरी सिंह
88. कर्म सिंह
89. प्रेम मुदा सिंह
90. देहरी सिंह
91. रामचरण सिंह
92. नरपति सिंह
93. केहर सिंह
94. चरमल सिंह
95. धरम सिंह
96. कमलावर सिंह
97. तर्क महान सिंह
98. अमर मान सिंह
99. कर्ण सिंह
100. अष्ट मान सिंह
101. संग्राम सिंह
102. प्रबोध सिंह
103. दरजोध सिंह
104. चीतर मल सिंह
105. लक्ष्मी सिंह
106. कटमरन सिंह
107. अमरत सिंह
108. सार सिंह
109. किरतन सिंह
110. हरि सिंह
111. चितर सिंह
112. भूप सिंह
113. कल्यान सिंह
114. केहरी सिंह
115. विजय सिंह
116. उदय सिंह
117. राम सिंह
118. रुदर सिंह
119. उगर सिंह

120. महेंदर सिंह
121. शमशेर सिंह
122. पदम सिंह

रुलिंग चीफ्स में पृ. 22 पर प्रकाशित सूची

1. प्रदुमन
2. जयमल
3. शेर
4. कमल
5. गुलाब
6. हरदेव
7. सूरत
8. हरि
9. सरजीत
10. जगेन्दर
11. लखू
12. गोपाल
13. हरचरण
14. विक्रम
15. माधो
16. भूप
17. उमेंद्र
18. हरिकृपाल
19. कृपाल
20. देवी
21. चरण
22. मदेसर
23. मल बहादुर
24. गोप
25. हरद्वार
26. मूरत
27. भीम
28. मंगल
29. परमान
30. हरमीर
31. जयमल
32. सामी
33. जोहा
34. गोवर्धन
35. जागेश्वर
36. सूरजन
37. मदन
38. गोविन्द
39. प्रताप
40. गिरधान
41. कृष्ण
42. बिशन
43. रघुनाथ
44. धनकरत
45. दलधन
46. पदेयरो
47. सायरी
48. अमर
49. कृपा दयाल
50. जगत
51. अमरोद
52. दल बहादुर
53. बलहान
54. हरि
55. फतेह
56. अमर
57. महा
58. संसार

59. जोगबंसी
60. जोगदयाल
61. तुलसी
62. मदनदर
63. दलीप
64. जगतवंशी
65. गृहान
66. प्रमोद
67. हमीर
68. सूरत
69. सलवर
70. गूरज्ञान
71. पूरदंड
72. हरपाल
73. सूरमेद
74. दूरजोधन
75. धोगजी
76. पृतम
77. सागर
78. रण
79. धोजमहर
80. मंगल
81. गुरसांई
82. लखी
83. पर्व भोजन
84. दूमन
85. धर
86. दशरथ
87. करबीम
88. प्रेम
89. धर्व
90. रामचरन
91. पूर्व वंशी
92. केसर
93. मरजेह
94. धर्म
95. हमलाद
96. ज्ञान
97. अमर
98. कराल
99. शिवनाथ
100. संग्राम
101. जुलसी
102. सूरज
103. हरमूरत
104. जयमल
105. ज्ञानदल
106. अमृत
107. सैर
108. कृष्ण
109. हरि सिंह
110. जब्बर सिंह
111. भूप सिंह
112. कल्याण सिंह
113. केहर सिंह
114. विजय सिंह
115. उद्दय सिंह
116. राम सिंह
117. उदर सिंह
118. उगर सिंह
119. महिन्दर सिंह

डॉ. बंशी राम शर्मा द्वारा दौलत राम के सहयोग से सूंगरा के महेश्वर मंदिर की बही से प्राप्त सूची

1. प्रदुमन सिंह
2. जमेल सिंह
3. शेर सिंह
4. कमल सिंह
5. गुलाब सिंह
6. नरदेव सिंह
7. गजरत्न सिंह
8. गिराजा सिंह
9. सूरज सिंह
10. सूरत सिंह
11. जरबाब सिंह
12. बराही सिंह
13. निरभय सिंह
14. सरजीत सिंह
15. गिरधारी सिंह
16. जवामल सिंह
17. श्रीपत सिंह
18. गवरधन सिंह
19. किरत सिंह
20. योगेश्वर सिंह
21. सूर्य सिंह
22. मदन सिंह
23. गैहुन सिंह
24. भारत सिंह
25. गिरधारी सिंह
26. कृष्ण सिंह
27. जैपाल सिंह
28. विश्न सिंह
29. विश्वापति सिंह
30. रघुनाथ सिंह
31. चरन् सिंह
32. रनबहादुर सिंह
33. मध्म सिंह
34. बलभदु सिंह
35. गुजराज सिंह
36. गिरीबादल सिंह
37. जगत सिंह
38. पतिरुद्ध सिंह
39. बलभद्रा सिंह
40. ग्वाबल सिंह
41. हरि सिंह
42. तेग सिंह
43. अमर सिंह
44. करन सिंह
45. मरबाद सिंह
46. संसार सिंह
47. जगतपति सिंह
48. किश्न सिंह
49. जोगिन्द्रा सिंह
50. रघु सिंह
51. विधान सिंह
52. रघुवीर सिंह
53. गोपाल सिंह
54. सरजीतन सिंह
55. रघुनाथ सिंह
56. चरनवीर सिंह
57. हरिचरण सिंह
58. पदमसूर सिंह
59. त्रिविक्रम सिंह
60. नलवाद सिंह
61. मधुपति सिंह

62. गुरुराज सिंह
63. भूपत सिंह
64. गिरीबादल सिंह
65. नरुदचंद्र सिंह
66. गिरीबान सिंह
67. भगवान सिंह
68. सूरज सिंह
69. हरि सिंह
70. भीम चंद सिंह
71. अमर सिंह
72. सूरष्यत सिंह
73. संसार चंद सिंह
74. महोर सिंह
75. ध्यान सिंह
76. जयमाला सिंह
77. दलीप सिंह
78. देवी सिंह
79. जोगध्यान सिंह
80. दरपति सिंह
81. दलीप सिंह
82. जगत पति सिंह
83. कीरत सिंह
84. पतनाथ सिंह
85. संग्राम सिंह
86. ब्रादर सिंह
87. दरजोत सिंह
88. चतोरमल सिंह
89. जगतपति सिंह
90. श्रीमृत सिंह
91. सम सिंह
92. हरि सिंह
93. छतर सिंह
94. भूप सिंह
95. जोगध्यान सिंह
96. कल्याण सिंह
97. केहर सिंह
98. विजय सिंह
99. उदय सिंह
100. राम सिंह
101. रुदर सिंह
102. उगर सिंह
103. महेंद्र सिंह
104. शमशेर सिंह
105. श्री पद्म सिंह
106. वीरभद्र सिंह

किन्नौरी लिपि में केशव सिंह सोउला से प्राप्त वंशावली

1. प्रदेवोमान (प्रदुमन)
2. जेलम
3. नाहर
4. कमल
5. जगत
6. ब्रबाद
7. सूरत
8. नरवे
9. सरजीत
10. जोगिन्दर
11. नरगु
12. गोपाल
13. हरिचरण
14. वीदरमा
15. बुदयती
16. भूपति

17. रनबादल
18. बीकरमा
19. धरवन
20. नरदेवा
21. सूरज
22. भीम
23. सूरमोगल
24. सूरमा
25. सूह्शुर
26. जमाल
27. जगपति
28. जोहर
29. गव्रदन
30. जगव्रद
31. सुरेग्यान
32. मदन
33. गरजन
34. जरबाब
35. गरदारी
36. कीसन
37. बीदया
38. रगुनाथ
39. देवी
40. चरन
41. पदमेसुर
42. दीलबादल
43. गुजरात
44. धरबादल
45. जगत
46. नीरद
47. बलीबंदर
48. भगवान
49. हरी
50. तेग
51. अमर
52. मदवदर
53. सनसार
54. यगपति
55. जोगदयाल
56. दलीपति
57. बुदनान
58. दलेप
59. जगपति
60. करतान
61. नरमो
62. मनोहर
63. नरदेव
64. सेर
65. गुरुमगत
66. मरदान
67. नरबल
68. सूरभेदन
69. दूरयोदन
70. दनयोगज
71. प्रीतम
72. नर सागर
73. रतन
74. राज मोहर
75. सबगल
76. सूरसेन
77. बबीसन (विभीषण)
78. हरीबजन
79. गनव्रन
80. दानव्रत

81. हीलसेन
82. नरदेवो
83. सेर
84. अमर
85. चतर
86. कल्याण
87. केसरी
88. बीजे
89. औजे
90. राम
91. रौदर
92. अगर
93. महेनदर
94. समसेर
95. पदम

फ्रैंके की सूची

1. हरि सिंह (1464-1512)
2. छत्र सिंह (1512-1574)
3. भूप सिंह (1574-1588)
4. कल्याण सिंह (1588-1639)
5. कहरी (1639-1696)
6. विजय सिंह (1696-1719)
7. उदय सिंह (1719-1767)
8. राम सिंह (1767-1799)
9. रुद्र सिंह (1799)
10. उग्र सिंह (1811)
11. महेंद्र सिंह (1811-1850)
12. शमशेर सिंह (1850-1914)

टूची की सूची

1. केहरी सिंह
2. विजय सिंह
3. कल्याण सिंह
4. श्याम सिंह
5. सनताना सिंह
6. ओमान सिंह
7. भगवान सिंह
8. रुद्र सिंह
9. उग्र सिंह
10. महेंद्र सिंह

पद्‌म सिंह के बाद वीरभद्र सिंह उत्तराधिकारी हुए। वीरभद्र सिंह (जन्म : 23 जून, 1934) 1962, 1967, 1972, 1980 में कांग्रेस से लोकसभा सदस्य रहे। 1976-77 में पर्यटन तथा उड्डयन उप मंत्री; 1982-83 में राज्य मंत्री उद्योग, भारत सरकार। 1983 (उप चुनाव), 1985, 1990, 1993, 1998, 2003, 2007 विधायक निर्वाचित। पुनः सांसद बनने पर भारत सरकार में इस्पात मंत्री तथा सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्री रहने के बाद 2012 में विधायक निर्वाचित। 25 दिसंबर, 2012 से छठी बार प्रदेश के मुख्यमंत्री। रानी प्रतिभा सिंह मंडी से लोकसभा सदस्य रहीं।

राजवंश

चतर सिंह (छत्र सिंह)

बुशहर के इतिहास में चतर सिंह या छत्र सिंह (1512-1574 ई.) ऐसा पहला शासक माना जाता है जिसने किन्नौर तथा बुशहर को इकट्ठा किया और आसपास की ठकुराइयों को जीतकर राज्य का विस्तार किया। कामरू वंशावली में यह एक सौ दसवां राजा हुआ। चतर सिंह ने सं. 1611 (सन् 1554) में देलठ, करांगल और खनेरी ठकुराइयों को जीता।

चतर सिंह के बाद भूप सिंह और फिर कल्याण सिंह राजा हुआ।

कल्याण सिंह

कल्याण सिंह एक प्रतापी राजा हुआ। कल्याण सिंह को जहर देकर मार दिया गया। इसने सराहन के दक्षिण में कल्याणपुर नगर बसाया और उसे राजधानी बनाया। कल्याण सिंह का अब देवता की भांति रथ बनाया गया है जिसे लोग देवता मानकर पूजते हैं। कामरू में बद्रीनारायण के रथ के साथ राजा कल्याण सिंह का रथ रखा जाता है।

केहरी सिंह (1639-1696)

केहरी सिंह बुशहर के राजाओं में सबसे प्रसिद्ध राजा हुआ। केहरी सिंह की बहादुरी के किस्से बुशहर में आज भी सुनाए जाते हैं। कहा जाता है कि केहरी सिंह मुगल दरबार (शाहजहां या औरंगजेब) में उपस्थित हुआ। पंजाब गजेटियर में एक कथा का उल्लेख है कि जब केहरी सिंह दिल्ली गया तो उस समय बहुत गर्मी थी। राजा केहरी सिंह जहां भी जाता, सूर्य के सामने बादल छा जाता। बादशाह को इस बात का पता चला तो उसने राजा को दीवाने खास में बुलाया। वहां भी सूर्य के आगे बादल छा गया। बादशाह के पूछने पर राजा ने बताया कि यह देवताओं की कृपा का फल है। बादशाह ने खुश होकर कहा, 'राजा साहब, आपको खुदा के घर से छत्र मिला है, अतः आपको छत्रपति का खिताब दिया जाता है।'

लद्दाख में सेंगी नमग्याल (1600-1645) तथा उसके पुत्र दें नमग्याल (1645-1675) ने स्पीति, गुगे, पुरंग और किन्नौर पर अधिकार कर लिया। इसी समय नगावाङ्. लोबजंङ्., ग्यात्सो तिब्बत के दलाई लामा (1642-1675) बने। अतः ग्येलुकपा और डुक्पा संप्रदायों को सताए जाने का इल्जाम लगाते हुए लद्दाख और तिब्बत में संघर्ष हुआ। ल्हासा के शासकों ने अपने आध्यात्मिक गुरु के विरुद्ध संघर्ष

छेड़ा था। इन परिस्थितियों में सन् 1681 में युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध का लाभ उठाते हुए केहरी सिंह ने किन्नौर के एक क्षेत्र को जो सेंगी नमग्याल के अधीन था, वापस लेने की योजना बनाई। राजा ने अट्ठारह ठकुराइयों से भी सहायता लेनी चाही किंतु किसी ने सहायता नहीं दी। केहरी सिंह किन्नौर सेना लेकर पश्चिमी तिब्बत की ओर गया। मानसरोवर के समीप राजा की भेंट तिब्बत के गेदन से हुई जो लद्दाख अभियान पर जा रहा था। दोनों का मकसद एक था अतः दोनों में संधि हो गई।

नमग्या अभिलेख से इस संधि पर प्रकाश पड़ता है।

नमग्या अभिलेख (हिंदी रूपांतर)

ओं स्वाति। श्रेष्ठ धर्मावलम्बी, भोट (लहासा) की परम भट्टारक धर्मानुशासित सरकार के समक्ष इस प्रकार निवेदन है :

पहले, बहुत प्राचीन काल से, ऊपर और नीचे के दोनों राजा सबके अत्यधिक कल्याण के लिए सत्कार्य करते रहे। आरंभ में जब नारिस प्रदेश के तीनों खंड गुगे के शासन के अधीन थे, तो इस प्रदेश को लद्दाख के राजा ने जीता, फलस्वरूप वह बुशहर, लद्दाख, नारिस, मरयुल के नीचे आने-जाने वाले सामान पर कर वसूल करता था।

तब राजकीय अधिकारी ग्यालदन छवेंग को आकाश से (देवपुरी से) दैवी आदेश मिला कि यदि तुम सेना के अधिनायक बनकर नारिस की ओर प्रयाण करो तो नारिस और मरयुल तुम्हारे अधीन हो जाएंगे। तदनुसार राजकीय अधिकारी ग्वालदन छवेंग सैन्यबल लेकर नारिस की ओर चल पड़ा।

जब बुशहर (खूनू) में केहरी सिंह राजा थे, तो निचले प्रदेश (सीमांत प्रदेश) से 25 राजा और 18 सामंत युद्ध में भाग लेने के लिए बुलाए गए थे। लेकिन कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। राजा केहरी सिंह ने सोचा कि मुझे जाना चाहिए और मानसरोवर में पुण्य स्नान करना चाहिए। अतः वे गए। राजकीय अधिकारी ग्यालदन छवेंग और राजा केहरी सिंह गुगे प्रदेश के मध्य में उत्तर दिशा में, पुलिंग गेंग में मिले। उस समय दोनों, ऊपर और नीचे के राजाओं में एक अक्षुण्ण अनुबंध हुआ और गुरु महामुनि (बुद्ध) को साक्षी मानकर शुद्ध संकल्प और पवित्र मन से उद्घोषित कर उसको स्वीकार किया। इसके अनुसार :

'जब तक त्रिकालज्ञ देवताओं का वास स्थान और जम्बू द्वीप के मध्य में स्थित कैलाश का हिम नहीं पिघलता, जब तक मानसरोवर झील पानी से रिक्त नहीं हो जाती, जब तक श्याम वर्ण कौवा सफेद नहीं हो जाता और जब तक कल्प का अंत नहीं हो जाता, तब तक ऊपर और नीचे वाले दोनों राजा अपने

मैत्री संबंध कायम रखेंगे और अपने राज्य की सीमाओं में सत्कार्य करके, सब प्राणियों का कल्याण करेंगे। ऊपर और नीचे के दोनों राजाओं के संदेशवाहक, राजकर्मचारी और राजदूत स्वच्छंद इलाके में आ-जा सकेंगे। यह आवश्यक होगा कि बुशहर राज्य के संदेशवाहक तीन वर्ष में आएं और नारिस के तीनों खंड की राजधानियों, संपरग, रोथंग और जंगगर में वास करें। ऊपर और नीचे के राजाओं के संदेशवाहक को ऊपर और नीचे (अर्थात् तिब्बत और बुशहर में) आते-जाते बाल भर भी तंग न किया जाए और किसी प्रकार का कर न लिया जाए और न ही कोई कष्ट पहुंचाया जाए। ऊपर और नीचे के राजा अपने सत्कार्यों से ऐसी व्यवस्था बनाएं जिससे आने-जाने वाले लोग निर्भय होकर विष और घातक हत्यारों के भय से सर्वथा मुक्त होकर विचरण करें।'

इस संधि के अनुसार बुशहर के प्रतिनिधि तथा व्यापारी बिना किसी भय के तिब्बत जाने लगे। बुशहर ने तिब्बत का साथ लद्दाख के विरुद्ध सैनिक अभियान माना। इस तरह किन्नौर भी लद्दाख के चंगुल से छूट गया। तिब्बत ने लद्दाख को हराया और लद्दाखी सेना बासगो किले में जा छिपी। इस किले का छह मास तक घेराव रहा। अंततः लद्दाखी शासक दक्षिण लद्दाख भागा और मुगलों से सहायता मांगी। अतः औरंगजेब से अनुमति लेकर कश्मीर के सूबेदार ने अपने पुत्र फीदई खां को 1683 ई. में लद्दाख की सहायता के लिए भेजा। मुगल सेना की सहायता हेतु कुल्लू के राजा विधि सिंह ने भी सेना भेजी। राजा कुल्लू लाहौल को लद्दाख से छुड़ाना चाहता था। मुगल तथा लद्दाखी सेना ने तिब्बती सेना को वापस हटा दिया। फीदई खान ने यह भी मनवाया कि वे लद्दाख पर दोबारा हमला नहीं करेंगे। हिमपात के भय से फिर वह वापस लौट गया। कुल्लू द्वारा सहायता के एवज में लाहौल का ऊपरी क्षेत्र उन्हें दिया गया। अंततः तिब्बत की लद्दाख के साथ संधि हुई। इस संधि में यह भी फैसला हुआ कि किन्नौर का भाग बुशहर को वापस दिया जाए।

तिब्बत-बुशहर संधि एक महत्त्वपूर्ण संधि थी जो 1947 तक चलती रही। तिब्बत से ऊन, पश्म, पशु, नमक, सुहागा आने लगे। लवी मेला आरंभ हुआ। मैदानों से व्यापारी भी आने लगे। मेला कार्तिक मास में किया जाने लगा।

पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि केहरी सिंह ने सिरमौर, मंडी तथा सुकेत से भी कर वसूल किया। राजा ने क्योंथल, कोटखाई, कुम्हारसेन, बलसन, ठियोग, दरकोटी ठकुराइयों को अपने आधिपत्य में किया। कुल्लू के इतिहास में उल्लेख है कि कुल्लू द्वारा बुशहर से बाहरी सिराज के धोल, कोटकंडी, नरमगढ़, पंद्राबीस की कोठियां अपने राज्य में मिलाई गईं। केहरी सिंह कुल्लू के राजा विधि सिंह और मान सिंह का समकालीन था। केहरी सिंह की मृत्यु 1696 में हुई।

विजय सिंह (1696)

केहरी सिंह के बाद विजय सिंह ने राज्य-विस्तार की नीति जारी रखी। सन् 1704 में राजा ने कुम्हारसेन, कोटगढ़, सांगरी और सारी के राज्यों को अपने अधीन किया। रोहड़ू का क्षेत्र सारी में आता था। सारी राज्य पहले गढ़वाल के अधीन था। पब्बर नदी के बाएं किनारे रावींगढ़ का क्षेत्र था जिसकी राजधानी हाटकोटी के पास थी। पब्बर की भीतरी घाटी में टीकराल ठकुराई भी थी। संभवतः इन छोटी-छोटी ठकुराइयों को धीरे-धीरे बुशहर ने अपने अधीन कर लिया।

विजय सिंह के समय कुल्लू का राजा मान सिंह (1688-1719) था। मान सिंह ने भी अपनी सीमाएं बढ़ाईं और कुल्लू के इतिहास में उल्लेख है कि बाहरी सिराज की पंद्राबीश कोठी को अपने राज्य में मिला लिया। मान सिंह ने कोटगढ़, कुम्हारसेन, बलसन को भी अपने अधीन कर लेना आरंभ किया।

कुल्लू के राजा मान सिंह का कुम्हारसेन की रानी से प्रेम था। कुम्हारसेन तथा बुशहर ने बदला लेने के लिए मान सिंह को बिना अंगरक्षक सतलुज के पार श्रीकोट किले में बुलवाया। मान सिंह जब अकेला वहां पहुंचा तो बुशहरी सेनाओं ने आक्रमण कर उसे मार दिया। उस समय कुम्हारसेन का राजा अजमेर सिंह था। राजा मान सिंह का शरीर (या सिर) बुशहर के लोग ले गए। कुल्लू से कोटगढ़ का क्षेत्र लेने के बाद शव दिया गया। कुल्लू का एक व्यक्ति लक्ष्मण दास शव (या सिर) ले गया।

सन् 1776 में बुशहर ने स्पीति के ढंक्खर किले पर अधिकार किया किंतु यह अधिकार दो वर्ष तक ही रहा। यह प्रयास राजा राम सिंह के समय हुआ होगा।

राम सिंह (1767-1799)

राम सिंह का कार्यकाल संभवतः सन् 1767 से 1799 था। राम सिंह ने राजधानी सराहन से बदलकर रामपुर बनाई। इस समय कुल्लू द्वारा बहुत से क्षेत्र बुशहर से छीन लिए। बुशहर ने कुल्लू के विरुद्ध गढ़वाल से सहायता प्राप्त की। गढ़वाल का राजकुमार सेना सहित आया किंतु युद्ध में मारा गया। एच.ए. रोज़ ने लिखा है कि गढ़वाल का राजा अपने पुत्र को लेने हाटकोटी तक आया क्योंकि उसे विश्वास नहीं हुआ कि राजकुमार मारा जा चुका है। जब पुत्र नहीं मिला तो वह स्थानीय जेलदारों को बंदी बनाकर गढ़वाल ले गया।

इस समय कुल्लू का राजा राज सिंह था। कुल्लू के इतिहास में उल्लेख है कि राज सिंह ने सलाचनी और बागी के किले, जो मान सिंह के वध पर कुम्हारसेन ने बुशहर की सहायता से लिए थे, वापस छुड़ा लिए। उसने बुशहर पर धावा बोलकर सराहन नगर लूटा और यादगार के तौर पर राजा बुशहर के महल का एक पत्थर उठा

लाया जो काफी समय तक कचहरी में लगा रहा जिस पर लिखा था, 'राज सिंह द्वारा सराहन से लाया गया।'

अतः रामपुर राजधानी बाद में लाई गई होगी। कुल्लू के राजसिंह का कार्यकाल 1767-1935 था।

रुद्र सिंह

राम सिंह के बाद रुद्र सिंह राजा बना। रुद्र सिंह की मृत्यु के समय उग्र सिंह बारह दिन का था। शिशु राजा के समय राजमाता ने तीन वजीरों की सहायता से राज्य चलाया। रुद्र सिंह की मृत्यु 1736 में हुई।

उग्र सिंह (1736-1810)

उग्र सिंह का जन्म सन् 1736 में हुआ। उग्र सिंह के समय नेपाल में राजा पृथ्वी नारायण शाह (1742-1775), महाराजा संसार चंद कांगड़ा (1775-1823), महाराजा रणजीत सिंह (1780-1839) तथा महाराजा गुलाब सिंह जम्मू (1792-1858) जैसी शक्तियों का उदय हुआ। इन सबमें गोरखा शक्ति का सीधा प्रभाव बुशहर पर पड़ा।

पृथ्वी नारायण शाह ने 1768 में काठमांडू में गोरखा राज्य की नींव रखी। उसका पौत्र रणबहादुर 1778 ई. में गद्दी पर बैठा। रणबहादुर ने सन् 1790 में कुमाऊं की राजधानी अल्मोड़ा पर अधिकार कर लिया। अगले वर्ष 1791 में अमर सिंह थापा के नेतृत्व में गोरखा सेना ने गढ़वाल पर आक्रमण किया और 1803 तक पूर्णतया अधिकार में ले लिया।

उधर संसार चंद ने अपनी शक्ति बढ़ाई और मंडी, कुल्लू तक अपना आधिपत्य जमाया। सन् 1795 में बिलासपुर के दाएं किनारे हमला कर बिलासपुर को हराया। इस लड़ाई में बिलासपुर की सहायता के लिए सिरमौर नरेश राजा धर्म प्रकाश की मौत हो गई। बिलासपुर के राजा महान सिंह ने गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा को कांगड़ा के विरुद्ध आमंत्रण दे डाला। गोरखा सेना ने सन् 1806 में महलमोरियां में संसार चंद को हराया। संसार चंद कांगड़ा किले में चला गया और महाराजा रणजीत सिंह की सहायता ली। रणजीत सिंह ने गोरखा सेना को सन् 1809 में सतलुज के पार भगा दिया।

गोरखा सेना अब उत्तर-पूर्व की ओर मुड़ी। कोटखाई, बलसन, ठियोग आदि ने बुशहर की सहायता मांगी। बुशहर द्वारा अपने वजीर के नेतृत्व में दस हजार आदमी भेजे गए किंतु सफलता नहीं मिली।

इस बीच सन् 1810 में राजा उग्र सिंह की मृत्यु हो गई। पुत्र महेंद्र सिंह मात्र

पांच वर्ष का था। अमर सिंह थापा ने सन् 1810 में राजधानी रामपुर पर अधिकार जमा लिया। युवराज महेंद्र सिंह को राजमाता चगांव ले गई। गोरखों ने राज्य में लूटपाट मचाई। अभिलेख जला दिए गए। वे कामरू पहुंचने का प्रयास भी करते रहे किंतु किन्नौर के लोगों द्वारा छोलटू पुल के पास रात को आक्रमण के कारण वे वापस लौट आए। यह भी कहा जाता है कि पवारी वजीर फतह राम ने इन्हें धन देकर वापस लौटने पर राजी किया। उसने बड़े-बड़े बक्सों में पत्थर भर दिए और उनमें ताले लगा दिए और बताया कि चाबियां खो गई हैं। ये कथा कहां तक सत्य हो सकती है, यह बता पाना कठिन है किंतु कहा जाता है गोरखा सैनिक उन्हें धन के संदूक समझकर ले गए।

गोरखा सेना ने राजा का भी पीछा किया किंतु दुर्गम मार्ग होने के कारण वहां पहुंच नहीं पाए। सराहन से ऊपर गोरखों से मुक्त रखने के लिए बुशहर द्वारा बारह हजार वार्षिक लगान देना तय किया गया। अमर सिंह थापा 1813 तक रामपुर रहा। उसके बाद वह अर्की गया और कीर्ति राणा यहां आया। गोरखे यहां 1814 तक रहे। पूरे क्षेत्र में उन्होंने अत्याचार किए। लोग बुशहर छोड़कर भाग गए। हाटू, कुराना, बाघी, नौगढ़, सांगरी, बाहली आदि किलों को गोरखों ने अपने अधिकार में कर लिया।

गोरखों ने यमुना और सतलुज नदियों के बीच सारा इलाका जीत लिया। अब वे तराई की ओर बढ़े। यहां अंग्रेजों का प्रभुत्व था। गोरखों ने देसी क्षेत्रों से निर्यात की पाबंदी लगाई तो डेविड ऑक्टर लूनी ने 8 सितंबर, 1819 को अंग्रेजी भाग से किसी भी वस्तु के जाने पर पाबंदी लगाई। 17 अक्तूबर, 1814 को मेजर ऑक्टर लूनी ने यमुना तथा सतलुज के बीच के सभी राजाओं को गोरखों को खदेड़ने का आमंत्रण दिया। अंग्रेजों ने यह भी कहा कि गोरखों को भगाने पर उन्हें अपने राज्य वापस दे दिए जाएंगे। अतः प्रथम नवंबर, 1814 को अंग्रेजों ने गोरखों के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

अंग्रेज सेना ने चारों ओर से गोरखों पर हमला बोल दिया। मेजर जनरल मारले दिनापुर से, जनरल वुड बनारस से, जनरल गीलेस्पी मेरठ से, जनरल ऑक्टर लूनी लुधियाना से बढ़े। सिरमौर की ओर से जनरल मारिनडेल ने प्रवेश किया। मारिनडेल के साथ जेम्स बेली फ्रेजर भी था। ये लोग चूड़धार से मार्च, 1815 में चौपाल पहुंचे। यहां से जुब्बल, हाटकोटी, नावर होकर रामपुर बढ़े।

अंग्रेजों के इस हमले की बात सुन गोरखा सैनिक नौगढ़ में इकट्ठे हो गए जहां सेनापति कीर्ति सिंह था। नौगढ़ में आठ सौ गोरखा सैनिक इकट्ठा हुए। बुशहर की सेना ने वजीर टीकमदास और बदरीदास के नेतृत्व में हमला बोला। कुल्लू राज्य द्वारा भी सैनिक भेजे गए। कीर्ति राणा किले में छिप गया। खाद्य सामग्री खत्म होने

पर वह बाघी तथा चम्बी होते हुए रावींगढ़ जाने लगे तो अगली रात्रि टिम्बा में उन्हें बुशहरियों ने घेर लिया। गोरखों के साथ जो गढ़वाल, सिरमौर, कुमाऊं की सेनाएं थीं, उन्होंने साथ छोड़ दिया अतः कीर्ति राणा ने अपने सैनिकों को प्राणदान देने की शर्त पर आत्मसमर्पण कर दिया। रावींगढ़ में गोरखा सेनापति रणसूर थापा था। उसका भी घेराव किया गया। 17 मई, 1815 को अंग्रेजी सेना हाटकोटी पहुंच गई। 18 मई को बुशहर के वजीर टीकम दास, बदरी दास और जुब्बल के वजीर दोगी ने जेम्स बेली फ्रेजर से भेंट की। फ्रेजर के अनुसार बुशहरी सेना में तीन हजार सैनिक थे जिनमें एक हजार बंदूकधारी और शेष धनुषधारी थे।

जून, 1815 में अमर सिंह थापा सहित सभी गोरखों ने आत्मसमर्पण किया और चौपाल की ओर चले गए। रावींगढ़ अंग्रेजों के अधीन हो गया। 17 अक्तूबर, 1814 की घोषणा में अंग्रेजों ने सभी राजाओं को राज्य लौटाने का निर्णय लिया।

महेंद्र सिंह (1815-1850)

8 नवंबर, 1815 को एक सनद द्वारा राजा महेंद्र सिंह को बुशहर राज्य वापस किया गया। कोटगढ़, रावीं (शराचली, करासू) अपने पास रखे। रावीं को बाद में शिमला के बदले क्योंथल को दिया। खनेरी, देलठ, बुशहर के अधीन रहे, कुम्हारसेन मुक्त किया गया।

सर डेविड ऑक्टर लूनी के असिस्टेंट एजेंट लेफ्टिनेंट रॉस ने महेंद्र सिंह को उग्र सिंह की मृत्यु (1810) के समय की पैतृक सीमा निम्न शर्तों पर लौटाई :

1. पहाड़ी रियासतों की सुरक्षा करने और उनमें शांति कायम रखने के लिए बुशहर राज्य अंग्रेजी सरकार को पंद्रह हजार रुपए सालाना सैनिक खर्च के तौर पर दे। यह राशि तीन किस्तों में दे। पहली किस्त पौष मास में पांच हजार रुपए की, दूसरी किस्त वैशाख में पांच हजार रुपए की और तीसरी किस्त सावन में पांच हजार रुपए की।
2. पब्बर नदी के बाएं किनारे के क्षेत्र रावीं परगना, संघोच (कोटगढ़) परगना तथा उसके अंतर्गत शीलधार, हाटू तथा करांगल के किले और बाद में किसी समय अन्य चौकी को अंग्रेज सरकार अपनी सेना रखने के लिए तथा उसके वास स्थान के तौर पर अपने पास रखेगी।
3. देलठ, खनेरी, करांगल की ठकुराइयां गोरखा आक्रमण से कई वर्ष पहले बुशहर राज्य में एक प्रकार से मिला ली गई थीं। उसके बारे में वही प्रबंध रहेगा जो राजा उग्र सिंह के समय था। उनके ठाकुर अपने-अपने प्रतिनिधि को उसी प्रकार कायम रखेंगे जैसे पहले समय से चले आ रहे थे। कोटगढ़ और कुम्हारसेन की

ठकुराइयां इस लिखित दस्तावेज द्वारा अंग्रेजी सरकार के सर्वोपरि अधिकार छोड़कर सभी तरह से स्वतंत्र घोषित की जाती हैं।

4. युद्ध होने पर बुशहर की सेनाएं बाकायदा मांग करने पर अंग्रेजी सेना का सहयोग करेंगी।
5. मांगने पर बुशहर की सरकार अपने राज्य में सर्वत्र सड़कों को बनाने के लिए बेगारियों को देगी।

राजा महेंद्र सिंह तथा राजमाता किन्नौर से वापस लौट आए। उक्त शर्तों की पुष्टि गवर्नर जनरल लॉर्ड मौरिया ने 8 फरवरी, 1816 को कर दी। बुशहर राज्य महेंद्र सिंह को लौटाया गया जो अभी अवयस्क था। अतः राजमाता व वजीर राजकाज चलाते रहे। वयस्क होने पर भी राजा मंदबुद्धि रहा अतः राज्य वजीरों के हाथ रहा जो मनमानी करते रहे।

बुशहर के अंग्रेजों के अधीन होने से अंग्रेजी सरकार की सीमाएं लद्दाख तथा तिब्बत से लग गईं। अंग्रेजों का प्रयास था कि तिब्बत की ऊन अब कश्मीर से न आकर किन्नौर-बुशहर से आए। अतः अंग्रेजों ने कोटगढ़ में ऊन उद्योग लगाया। रामपुर भी ऊन उद्योग में विकसित हुआ। किंतु किन्नौर-लद्दाख का मार्ग सुगम नहीं था। अतः सरकार द्वारा इस रास्ते की मरम्मत की गई। किन्नौर के लोग भेड़-बकरियों पर लादकर ऊन रामपुर लाने लगे। सन् 1821 तक कम से कम 150 घोड़ों के भार की ऊन इधर आने लगी। सन् 1819 में रणजीत सिंह ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया। कश्मीर में शॉल-दुशाले का अच्छा उद्योग था अतः डोगरा सेना ने जोरावर सिंह के नेतृत्व में 1834 में लद्दाख की राजधानी लेह पर अधिकार कर लिया। अतः तिब्बत की ओर से अधिक ऊन रामपुर आने लगी। इस पर जोरावर सिंह ने पश्चिमी तिब्बत पर आक्रमण किया और पुरानी प्रथा के अनुसार ऊन लद्दाख भेजने के आदेश दिए। अतः 1841 में ऊन का व्यापार बुशहर में 169 मन रह गया जिसका मूल्य 19679 रुपए था जबकि 1837 में 1980 मन (55,529 रुपए) और 1840 में 1040 मन (1,09,807 रुपए) हो गया था। डोगरा सेना ने स्पीति पर भी अधिकार कर लिया अतः लद्दाख और बुशहर के बीच व्यापार बंद हो गया। जो व्यापारी इधर आने की हिम्मत करता, उसे लूट लिया जाता और दंडित किया जाता।

डोगरा सेना के बुशहर तक अधिकार करने के लिए राजा ध्यान सिंह ने एक व्यक्ति देवी सिंह बुशहर भेजा। बुशहर को अधीन करने की चाल अंग्रेज सरकार को पता चल गई। सन् 1841 में जीवन सिंह और गणेशी सिंह दो व्यक्ति इलाके का भूगोल जानने के लिए पुनः भेजे गए। इन्हें यह भी कहा गया कि बुशहर की राजकुमारी का हाथ गुलाब सिंह के पुत्र के लिए मांगा जाए।

अंग्रेज सरकार ने अक्तूबर, 1841 में जे.डी. कनिंघम को जोरावर सिंह के मनसूबे जानने के लिए किन्नौर भेजा। कनिंघम राजा महेंद्र सिंह से भी मिला। राजा ने बताया कि स्पीति के मैनिङ् परगने से कर के तौर पर ऊन के बुने हुए तीस नग उसे आते थे जो दो वर्ष से जोरावर सिंह के भय से नहीं आ रहे हैं। उस समय भी बुशहर लद्दाख के कुछ क्षेत्रों से कर वसूल रहा था जो सिखों के अधीन थे। दूसरे बुशहर भी अंग्रेजों के अधीन होते हुए तीन वर्ष में एक बार तिब्बत के राज्यपाल को उपहार भेजता था। यह संभवतः पुरानी परंपराएं थीं जिन्हें व्यापारिक दृष्टि से तथा संबंध बनाए रखने के लिए जारी रखा गया था।

जब सन् 1834 में गुलाब सिंह के सेनापति जोरावर सिंह ने लद्दाख पर आक्रमण कर 1835 में लेह पर अधिकार कर लिया तो लद्दाख का राजा जसपाल नमग्याल भागकर बुशहर आ गया। अंग्रेज सरकार ने 1838 में उसके पुत्र को सौ रुपए प्रतिमास पेंशन लगाई।

लद्दाख के बाद जोरावर सिंह पश्चिमी तिब्बत की ओर बढ़ा। यह अभियान चल नहीं पाया। उसकी मृत्यु के बाद तिब्बती सेना ने लेह का घेराव कर लिया। कुछ लद्दाखी किन्नौर की ओर भागे। सन् 1841 में कुल्लू पर सिखों का अधिकार हो गया। किंतु अंग्रेजों के कहने पर सिख बुशहर की सीमा में नहीं आए। अंग्रेजों ने सतलुज के पार के क्षेत्र में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। अंग्रेजों ने जोरावर सिंह के बुशहर किन्नौर पर आक्रमण पर भी हस्तक्षेप न करने की बात कही।

सन् 1841 में जोरावर सिंह द्वारा लद्दाख ऊन भेजने के आदेश से तिब्बती अधिकारियों द्वारा इस विषय में संधि की संभावना हुई। सन् 1845 में गरतोग के गरंपून ने राजा बुशहर को संदेश भेजा कि वह चीन तथा महाराजा गुलाब सिंह से हुई संधि को विच्छेद कर ले जिसमें डोगरा राजा को ही पश्चिमी तिब्बत की ऊन के व्यापार अधिकार प्राप्त हैं, तब बुशहर पर से भी प्रतिबंध उठा लिए जाएंगे। गवर्नर जनरल लॉर्ड हार्डिंग ने यह बात मानकर 4 अगस्त, 1846 को ल्हासा के वजीर को पत्र लिखा और बुशहर के एक अधिकारी अनंतराम को भेजा क्योंकि वह हिंदी और तिब्बती दोनों भाषाएं जानता था। उसने गरतोग में राज्यपाल से भेंट की।

यूरोपीय यात्रियों का आगमन

राजा महेंद्र सिंह के समय निम्नांकित यात्री बुशहर आए :

1. जेम्स बेली फ्रेजर बुशहर आया जिसने 'हिमालय माउंटेन' में गोरखा युद्ध के समय बुशहर की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला है।
2. दूसरा यात्री एलेक्जेंडर जेरार्ड था। वह सन् 1817 में कलकत्ता से किन्नौर

आया। किन्नौर के सर्वेक्षण संबंधी उसने 'एकाउंट ऑफ कनावर इन हिमालय' लिखा जो सन् 1941 में छपा।

3. सन् 1829 में अंग्रेज सेनापति लॉर्ड केम्रयियर, 1829 में ही फ्रांसिसी विक्टर जैकमो ने किन्नौर-भ्रमण किया।

4. जे.डी. कनिंघम किन्नौर में एक वर्ष रहा। कनिंघम ने बुशहर राज्य पर व्यापारिक आयात-निर्यात संबंधी एक रिपोर्ट दी। कनिंघम ने लिखा कि बुशहर (रामपुर) एक व्यापारिक केंद्र है जहां प्रतिवर्ष व्यापारिक मेले लगते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में जो कश्मीरी तथा अफगान सिखों के आतंक से मैदानों में बसे, वे इन मेलों में उनके व्यापार के लिए आने लगे। व्यापारी लद्दाख, पश्चिमी तिब्बत, कुमाऊं, बुशहर के अन्य भागों तथा मैदानों से आने लगे। अधिक व्यापार ऊन का होता है जो रदोह तथा पश्चिमी तिब्बत से आती है। इस व्यापार के लिए परामर्श दिया गया कि तिब्बत से आने वाले माल पर राहदारी समाप्त की जाए। अतः सरकार ने बुशहर राज्य का वार्षिक खिराज 15,000 रुपए से घटाकर 3945 कर दिया।

राजा महेंद्र सिंह की मृत्यु 1850 में हुई।

शमशेर सिंह (1850-1914)

जब महेंद्र सिंह की मृत्यु हुई, शमशेर सिंह ग्यारह वर्ष का था। अवयस्क होने तक मनसुख दास वजीर और अभिभावक रहा, उसके बाद नूरपुर के तहसीलदार शामलाल को पहाड़ी रियासतों के एजेंट के अधीन मैनेजर बनाया गया।

सन् 1857 की क्रांति के समय शमशेर अट्ठारह वर्ष का था। इस समय राजा द्वारा वार्षिक नजराना अदा नहीं किया गया। राज्य के भीतर आने वाले अंग्रेजों का सम्मान नहीं किया गया, न ही उन्हें खाद्य सामग्री दी गई। अतः शिकायतें आने पर विलियम हेय ने सरकार को लिखा कि राजा को हटाकर सुपरिंटेंडेंट सीधे रियासत का प्रबंध अपने हाथ में ले लें। किंतु लॉर्ड लॉरेंस ने इस पर कोई कार्रवाई नहीं की।

सन् 1859 में राजा के भाई फतह सिंह के नेतृत्व में 'दुम्ह' (विद्रोह) कर दिया गया। इस दुम्ह का कारण सन् 1854 में मुंशी शामलाल द्वारा नकद मालगुजारी नियत करना था। रियासत में मुद्राओं की कमी थी। अंततः रियासती सुपरिंटेंडेंट बार्नेस ने जाकर मामला सुलझाया और नकदी के स्थान पर अनाज के रूप में मालगुजारी लेनी निश्चित की। रियासत के सुपरिंटेंडेंट परशुराम वकील को हटा दिया जो खानदानी वजीर नहीं था। पुराने नियम पुनः लागू किए जिनके अनुसार तीन वजीर नियुक्त हो सकते थे जो राज्य का कामकाज चलाने लगे।

राजा के भाई फतह सिंह (1837-1876) के विद्रोह का कारण गद्दी से वंचित होना भी था। फतह सिंह राजा से बड़ा था किंतु छोटी रानी की संतान होने के कारण उत्तराधिकारी नहीं बन पाया। रामपुर से उसने किन्नौर और हंगरंग जाकर विद्रोह किया। नाको में वह पकड़ा गया और रामपुर लाया गया।

सन् 1813 में सारी ठकुराई (पब्बर घाटी) के ठाकुर धर्म सिंह तथा 1864 में उसकी विधवा रानी शृंगार मंजरी की मृत्यु हो गई। दोनों के निःसंतान होने से बुशहर के राजा ने अपना अधिकार सारी ठकुराइयों पर जताया और सरकारी मंजूरी से राजपरिवार के निकट संबंधी को पचास रुपए पेंशन लगा दी। सन् 1864 में राजा ने बुशहर के जंगलों को सरकार के पास पचास वर्ष के लिए पट्टे पर दे दिया। सन् 1871 में वनों की लकड़ी को बाहर ले जाने की अनुमति भी सरकार को दी गई। 1877 में सरकार ने दस हजार रुपए देकर वनों में संरक्षण कार्य भी ले लिया। सन् 1927 में यह अनुबंध समाप्त होने पर 1929 में नया अनुबंध करके पुनः वनों का अधिकार सरकार ने लिया और एक लाख रुपए वार्षिक कर दिया जाना स्वीकार किया।

रघुनाथ सिंह

सन् 1886 में राज्य का कार्य पुत्र रघुनाथ सिंह को सौंपा गया। रघुनाथ सिंह का विवाह मंडी के राजा विजय सेन की दो पुत्रियों से निश्चित हुआ किंतु रघुनाथ सिंह रुष्ट होकर सन् 1883 में सिरमौर चला गया था। बाद में यह विवाह संपन्न हुआ।

रघुनाथ सिंह ने राज कार्य कुशलता से किया। सरकार द्वारा राजा को सी.आई.ई. की उपाधि दी गई। अब खानदानी वजीर धीरे-धीरे निष्क्रिय होते गए। सन् 1877-89 में भू-बंदोबस्त करवाया गया। सन् 1895 में चीनी तहसील बनाई गई। रामपुर में एक बौद्ध मंदिर बनाया गया।

सन् 1898 में रघुनाथ सिंह की मृत्यु हो गई। अतः राय साहब मंगत राम को वजीर तथा मैनेजर नियुक्त किया गया। मंगत राम 1911 का मैनेजर रहा। सन् 1905 के भूकंप में रामपुर में भी कई भवनों को नुकसान पहुंचा।

सन् 1906 में डोडरा क्वार में विद्रोह हुआ। डोडरा क्वार का प्रबंध पवारी के वजीर रण बहादुर के पास था जिसने अपने को स्वतंत्र घोषित करने का प्रयास किया। उसे पकड़ लिया गया था किंतु टिका रघुनाथ सिंह की 1898 में मृत्यु के बाद उसे शमशेर ने छोड़ दिया। बाद में उसे फिर बंदी बनाया गया और शिमला में रखा गया। उसने डोडरा क्वार की मालगुजारी की राशि देनी मानी अतः पुनः छोड़ दिया किंतु राशि देने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। डोडरा क्वार के लोगों ने मालगुजारी देने

से मना किया अतः शिमला के असिस्टेंट कमिश्नर ने पुलिस टुकड़ी भेजी। विद्रोहियों को पकड़ा गया और नियमित कर बुशहर को देना स्वीकारा।

रण बहादुर सिंह के विषय में एक किस्सा प्रचलित है कि शिमला में जमानत पर छूटने के बाद वहां उसकी मृत्यु हो गई। किंतु जून, 1914 में उस जैसा एक साधु वहां घूमते हुए देखा गया। डोडरा क्वार के लोगों ने उसे रण बहादुर समझ पकड़ लिया। वह पवारी भी लाया गया जहां उसका बड़ा स्वागत हुआ। इस समय ए. मिचल आई.सी.एस. बुशहर का मैनेजर था। उसने लच्छी राम नायब तहसीलदार को पता करने भेजा। किंतु वह आदमी होशियारपुर के गढ़शंकर का एक ब्राह्मण निकला जो साधु वेश में बद्रीनाथ यात्रा पर जा रहा था। लोगों ने उसे रण बहादुर समझ पकड़ लिया। उसे होशियारपुर भेज दिया कि वह कभी दोबारा बुशहर की धरती पर कदम न रखे।

राजा पद्म सिंह

राजा शमशेर सिंह की बड़ी रानी के दूसरा कोई जीवित पुत्र न होने से सन् 1907 में टिहरी गढ़वाल के कंवर सुरेंद्र शाह को गोद लिया जिसे सरकार ने मान्यता दे दी किंतु बुशहर के लोगों ने नहीं माना। अतः सरकार द्वारा इसकी मान्यता वापस ले ली गई और सुरेंद्र शाह को बुशहर से बाहर निकाल दिया। 4 अगस्त, 1914 को राजा शमशेर सिंह की मृत्यु सराहन में हो गई। मृत्यु से पूर्व राजा ने अपने छोटे पुत्र मियां पद्म सिंह को उत्तराधिकारी बनाया। सरकार ने भी मान्यता दे दी और नवंबर 1914 को राजा बिलासपुर के हाथों राजतिलक हुआ।

दो वर्ष तक रियासत का कार्यभार मैनेजर ने संभाला और 1914 से 1917 तक एलन मिचल से ट्रेनिंग के बाद सन् 1917 में राज्य के पूर्ण अधिकार सौंपे गए।

सन् 1911 में एच.डब्ल्यू. एमर्सन आई.सी.एस. तथा उसके बाद एलन मिचल आई.सी.एस. को बुशहर का मैनेजर बनाया गया जो 30 नवंबर, 1917 तक रहा।

प्रथम महायुद्ध (1914-18) में बुशहर ने अंग्रेजों की सहायता की, अतः राजा पद्म सिंह को 4 अक्तूबर, 1918 को नौ तोपों की सलामी दी गई।

प्रथम अक्तूबर, 1936 से बुशहर राज्य को पंजाब सरकार के बजाय भारत सरकार से संबद्ध किया गया।

इसके बाद न्यायालय, पुलिस, शिक्षा तथा स्वास्थ्य से संबंधित सुधार कार्य किए गए। सन् 1943 में बुशहर अधिनियम बना, जिसका 1845 में संशोधन किया गया।

शिमला की पहाड़ी रियासतें

हिमाचल का जो क्षेत्र पौराणिक काल में कुलिंद और खश कहलाता था, कालांतर में वह अंग्रेजों द्वारा शिमला हिल स्टेट्स के नाम से पुकारा जाने लगा। जालंधर खंड को पंजाब हिल स्टेट्स कहा गया। सतलुज तथा तौंस नदियों का यह क्षेत्र छोटी-छोटी ठकुराइयों में बंटा हुआ था और पंद्रहवीं शताब्दी तक मैदानों से आए राजपूत शासकों ने इन रियासतों पर अधिकार कर लिया। ये शासक राणा या ठाकुर कहलाए। इनका अधिकार क्षेत्र विस्तृत न होकर बहुत छोटा था। शिमला हिल्ज की सबसे छोटी ठकुराई रतेश का क्षेत्रफल तीन वर्ग मील था और आय मात्र दो सौ रुपए।

शिमला के ऊपर ऐसी अट्ठारह ठकुराइयां थीं और शिमला से नीचे बारह। यूरोपियन यात्रियों, यहां तैनात पोलिटिकल एजेंट तथा असिस्टेंट कमिश्नर आदि ने इन ठकुराइयों की सूचियां दी हैं :

अट्ठारह ठकुराइयां	**जेम्स बेली फ्रेजर की सूची**	**प्रथम पोलिटिकल एजेंट कैप्टन रॉस की सूची** (इस सूची में चौदह ही नाम हैं)
1.	जुब्बल	जुब्बल
2.	बलसन	बलसन
3.	कुम्हारसेन	-
4.	खनेटी	खनेटू
5.	देलठ	देलठू
6.	रावीं	पुंदर
7.	कुरांगलू	कुरांगलू
8.	थरोच	थरोच
9.	मोरनी	-
10.	बेजा	-
11.	सांगरी	सांगरी
12.	डोडरा क्वार	दरकोटी
13.	रतेश	-

14.	कोटी मधान	कोटगढ़
15.	घूंड	घूंड
16.	भड़ोली	भड़ोली
17.	सारी	सरानी
18.	सीली	ठियोग

बारह ठकुराइयां		
1.	क्योंथल	क्योंथल
2.	कुठाड़	कुठाड़
3.	भज्जी	भज्जी
4.	बाघल	बाघल
5.	कुनिहार	कुनिहार
6.	धामी	धामी
7.	महलोग	महलोग
8.	क्यारी	क्यारी
9.	ठियोग	मांगल
10.	कोटी	कोटी
11.	कोट गुरु	कुम्हारसेन
12.	बघाट	बघाट

अट्ठारह ठकुराइयां	असिस्टेंट डिप्टी कमिश्नर कै. वी.सी. कैनेडी की सूची	कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची
1.	जुब्बल	1. क्योंथल
2.	कोटगढ़	2. बाघल
3.	बलसन	3. बघाट
4.	रावीं	4. कुम्हारसेन
5.	खनेटू	5. भज्जी
6.	करांगलू	6. जुब्बल
7.	देलठ	7. महलोग
8.	सारी	8. बलसन
9.	नाबर	9. धामी

10. ठियोग	10. कुठाड़
11. डोडरा क्वार	11. कुनिहार
12. घूंड	12. मांगल
13. पुंडर	13. बेजा
14. भड़ोली	14. दरकोटी
15. बेजा	15. थरोच
16. सांगरी	16. खनेटी
17. दरकोटी	17. सांगरी
18. थरोच	18. देलठी
	19. कोटी
	20. ठियोग
	21. मधान
	22. मधान
	23. रतेश

बारह ठकुराइयां

1. क्योंथल
2. बघाट
3. बाधल
4. कुठाड़
5. कुम्हारसेन
6. भज्जी
7. मेहलोग
8. धामी
9. कोटी
10. क्यारी या मधान
11. कुनिहार
12. मांगल

इन ठकुराइयों की सूचियों के नामों में अंतर है। जैसे किसी ने क्यारी लिखा है किसी ने मधाण। कैप्टन रॉस द्वारा दी सूची में अट्‌ठारह की जगह चौदह ही नाम दिए गए हैं। तथापि अट्‌ठारह और बारह ठकुराइयां प्रसिद्ध हैं। बारह ठकुराइयां बिलासपुर के अधीन रही हैं और अट्‌ठारह में कुछ जुब्बल, कुछ क्योंथल के अधीन।

अट्ठारह ठकुराइयां

जुब्बल

सिरमौर तथा बुशहर के बीच की घाटियों में जुब्बल ठकुराई थी जिसके शासक बारहवीं शताब्दी से पहले सिरमौर के शासक थे जिनकी राजधानी सिरमौरी ताल थी। ये यहां कब आए, यह ज्ञात नहीं। जुब्बल का राजवंश वत्स्य या राठौड़ माना जाता है। राठौड़ जुब्बल में कब आए, यह निश्चित तौर पर ज्ञात नहीं। जुब्बल की परंपरा के अनुसार सिरमौर में उग्रचंद का नाम का राजा था। सिरमौर परंपरा के अनुसार राजा का नाम मदन सिंह था। उग्रचंद का राज्य फैला हुआ था। उत्तर में नोगड़ी नदी, हाटकोटी मंदिर तथा नगर थे। कहा जाता है कि बारहवीं शताब्दी में राजा उग्रचंद हाटकोटी के पास सूनपुर महल में थे तो वे सिरमौरी ताल में लौट गए और रानी तथा तीन पुत्रों को एक ब्राह्मण वीरभाट के संरक्षण में छोड़ा।

किंवदंती है कि जब राजा सिरमौरी ताल में था तो वहां एक नट आया। उसकी नटनी ने कहा कि वह गिरि नदी को कच्चे सूत पर पार कर सकती है। राजा ने कहा, यदि वह गिरि नदी को सात बार पार कर ले तो वह उसे अपना आधा राज्य दे देगा। नटनी ने छह बार नदी कच्चे सूत पर पार कर ली। जब वह सातवीं बार पार करने लगी तो राजा के कर्मचारी ने रस्सी काट दी और नटनी नदी में गिर गई। अतः नटनी ने राजा को श्राप दिया कि राजा की इस नगरी में कोई नहीं रहेगा। अतः नदी में बाढ़ आई और राजा समेत पूरा नगर बह गया। रानी तथा तीन पुत्र हाटकोटी में रहे।

सिरमौर गजेटियर में उल्लेख है कि जैसलमेर का राजा शालिवाहन द्वितीय (1168-1200) बद्रीनाथ यात्रा से हरिद्वार लौटा। उसका नाम गजेटियर में उग्रसेन रावल दिया है। जब शालिवाहन हरिद्वार में था तो उसे सिरमौरी ताल के बाढ़ में बहने का पता चला। अतः उसने अपने पुत्र हासू को, जो उसके साथ था, सिरमौर पर अधिकार करने भेजा। उसने यहां अधिकार किया और राजवन में राजधानी बनाकर सुभंश प्रकाश नाम से राज्य आरंभ किया।

उधर उग्रचंद तथा पुत्रों को जब इस घटना का पता चला तो उन्होंने हाटकोटी तथा आसपास के क्षेत्र को अधिकार में रखा।

कनिंघम ने लिखा है कि पब्बर नदी की ऊपरी घाटी में कनैतों का राज था। कनैतों के राजा को बाहर से आए तीन राजपूत भाइयों ने मार दिया और आठा वीश तथा राव कनैतों के क्षेत्र रावींगढ़ पर भी अधिकार कर लिया। इन तीन भाइयों ने रावीं, सारी और जुब्बल की स्थापना की।

संस्थापक राजा

परंपरा कहती है कि उग्रचंद के तीन पुत्र थे। बड़े पुत्र कर्ण चंद ने जुब्बल की नींव रखी। छोटे पुत्र मूल चंद ने सारी की और तीसरे पुत्र दुनी चंद ने रावींगढ़ की नींव डाली। वीरभाट के पुत्र को राजपुरोहित बनाया और उसे हाटकोटी में भूमि दी। कर्ण चंद ने हाटकोटी में ही सूनपुर राजधानी बनाई। मूल चंद ने विषकलटी नदी के बाएं किनारे सारी तथा दुनी चंद ने पब्बर के दाएं किनारे रावीं में।

जुब्बल राज्य की स्थापना व नामकरण के बारे में विश्वास है कि हाटकोटी के पास ब्राड़ घाटी के चूहरा गांव के एक व्यक्ति कालिदास ने जूब (दूब) उखाड़ी तो दूसरे दिन उतनी ही और घास उगी हुई देखी। वह घर बनाना चाहता था। उसने सोचा यह राजा के राजमहल के लिए उचित स्थान है। उसने वह स्थान राजा को बताया। अतः राजा ने वहां राजप्रासाद बनाया। 'जूब' से जूबड़ और फिर जुब्बल राज्य का नाम हुआ।

वंशावली

जुब्बल के संस्थापक राजा कर्ण चंद का क्या समय रहा होगा, यह निश्चित नहीं है। यह संभवतः तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ का समय रहा होगा। सिरमौर में राज्य की नींव यदि सन् 1195 में पड़ी तो लगभग इसी समय कर्ण चंद ने भी जुब्बल की स्थापना की होगी। जुब्बल के राजाओं की कुछ सूचियां मिलती हैं जिनमें राजाओं की संख्या व नाम अलग-अलग हैं। सूचियां भी अधूरी प्रतीत होती हैं।

मियां गोवर्धन सिंह ने पांच सूचियां दी हैं जो निम्नांकित प्रकार से हैं :

ललित काव्यम (वंशावली)	**तारीख जुब्बल कोहस्तान**	**राजा भक्तचंद की सूची**	**पुरोहित के पट्टे की सूची**
1. कर्ण चंद	1. कर्ण चंद	1. कर्ण चंद	1. कर्ण चंद
2. अमर चंद	2. अमर चंद	2. अमर चंद	2. अमर चंद
3. अम्मू चंद	3. अम्मू चंद	3. अम्मू चंद	3. अम्मू चंद
4. किरती चंद	4. किरती चंद	4. किरती चंद	4. किरती चंद
5. भाग चंद	5. भाग चंद	5. भाग चंद	5. भाग चंद
6. नारायण चंद	6. नारायण चंद	6. नारायण चंद	6. नारायण चंद
7. रूप चंद	7. रूप चंद	7. रूप चंद	7. रूप चंद
8. तेग चंद	8. तेग चंद	8. तेग चंद	8. तेग चंद
9. गौर चंद	9. गौर चंद	9. नातर चंद	9. गोर चंद
10. नरपत चंद	10. नरपत चंद	10. गोहर चंद	10. नरपत चंद

11. योग चंद	11. जोगड़ चंद	11. जोग चंद	11. योग चंद
12. हुक्म चंद	12. महावत चंद	12. हुकम चंद	12. हुकम चंद
13. परस चंद	13. परस चंद	13. परस चंद	13. परस चंद
14. पूर्ण चंद	14. पूर्ण चंद	14. पूर्ण चंद	14. पूर्ण चंद
15. कर्म चंद	15. कर्म चंद	15. कर्म चंद	15. कर्म चंद
16. पद्म चंद	16. पद्म चंद	16. पद्म चंद	16. पद्म चंद
		17. ज्ञान चंद	
		18. भक्त चंद	
		19. दिग्विजय चंद	

जुब्बल के राजाओं की एक और सूची (रानी सुधा कुमारी जुब्बल के सौजन्य से)

1. विराट चंद : 1028-1051 (सिरमौर का राजा)
2. उगर चंद : 1051-1073
3. संसार चंद : 1073-1075

   स्थिति अस्पष्ट : 1075-1102

4. बालक चंद : 1102-1108, मृ. 1112 (अपदस्त, हाटकोटी में शरण)
5. कलश चंद : 1112-1120
6. अरुणा चंद : 1120-
7. देवी चंद
8. हरि चंद
9. भाग चंद
10. पृथ्वी चंद
11. जय चंद
12. गोविंद चंद
13. जगत चंद
14. जगजीत चंद
15. मान चंद
16. धर्म चंद
17. अमृत चंद
18. अनिरुद्ध चंद
19. आलम चंद
20. अमीर चंद
21. चंद चंद
22. अभय चंद
23. दुर्ग चंद
24. गणेश चंद
25. नंद चंद
26. तूर चंद
27. किर्ती चंद
28. चतर चंद
29. रणधीर चंद
30. रूप चंद
31. उगर चंद : 1519-1527
32. कर्ण चंद (ज. 1799) : 1527-1558
33. अमर चंद : 1558-1575
34. अम्बु चंद : 1575-1616
35. किर्ती चंद : (1568) 1616-1629
36. भाग चंद : 1629-1676
37. नारायण चंद : 1676-1680

38. तरीम चंद : 1680-1681
39. रूप चंद : 1681-1690
40. तेग चंद : 1690-1699
41. गोहर चंद : 1699-1720
42. नाहर चंद : 1720-1738
43. जोग चंद : 1738-1758
44. हुकम चंद : 1758-1773
45. परस चंद : 1773-1806
46. पूर्ण चंद : 1806-1840
47. कर्म चंद : 1840-1877
48. पद्म चंद : 1877-1898
49. ज्ञान चंद : 1898-1910
50. भक्त चंद : 1910-1946
51. दिग्विजय चंद : 1946-1948

20 जुलाई, 1937 को जन्मे राजा दिग्विजय चंद के पुत्र योगेन्द्र चंद्र 1985 में कांग्रेस, 1993 में स्वतंत्र उम्मीदवार तथा 1998 में कांग्रेस के विधायक रहे।

राजवंश

अमर चंद

जुब्बल के संस्थापक शासक कर्ण चंद के बाद अमर चंद का नाम आता है। अमर चंद का मंत्री झांई था। मंत्री झांई ने अपनी चतुराई से ठाकुर बहगाणु की लूटमार से तंग आए लोगों को राजा के अधीन कर लिया। राणा ने शाक परगने को भी अपने अधीन कर लिया।

अम्बू चंद

इसके कार्यकाल में चंदेल परिवार के एक व्यक्ति की सहायता से परगना चांगू, बड़गांव और शंठा को मिलाया गया और इन क्षेत्रों का कार्यभार चंदेल परिवार के इसी व्यक्ति को सौंपा गया। इसके बाद मंत्री झांई तथा गदाऊ ने ठाकुर दशाल को पराजित कर जखोली परगना भी राज्य में मिला लिया।

इस बीच मंत्री झांई की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र को मंत्री बनाया गया। झांई के पुत्र रत्न ने राजा सिरमौर से धोखे से उसका विश्वासपात्र बन चांदना, चंद्रलोग, पियूंगा के क्षेत्र संभाल लिए और बाद में कर देना बंद कर जुब्बल में मिला लिया।

भाग चंद

अम्बू चंद के बाद किरती चंद के समय कोई विशेष घटना नहीं घटी। इसके बाद राणा भाग चंद ने आसपास के ठाकुरों को जीत लिया। जिन्होंने गढ़वाल के राजा को जुब्बल पर आक्रमण के लिए आमंत्रित किया। गढ़वाल के राजा अजयपाल (1358-78) ने रावींगढ़ को जीता था। संभवतः इसी ने जुब्बल पर आक्रमण किया

होगा। उसने राणा जुब्बल को बंदी बनाया और गढ़वाल ले गया। जनश्रुति यह है कि गढ़वाल का राजा हाटकोटी आया तो वह राणा जुब्बल को धोखे से गढ़वाल ले गया और वहां बंदी बना लिया। भागचंद वहां से छिपकर भागने में सफल हो गया। गढ़वाल की रानी ने उसे अपनी पुत्री से विवाह का संदेश भेजा किंतु राणा नहीं माना। अतः राजा गढ़वाल ने आक्रमण किया किंतु कुछ नहीं कर पाया।

नारायण चंद

सिरमौर का शासक भाग चंद को पकड़ नहीं पाया अतः नारायण चंद को पकड़ने का षड्यंत्र रचा। उसने बखरोल में जुब्बल, दरकोटी, कोटखाई के राणाओं की एक सभा बुलाई। सभा समाप्त होने पर उसने जुब्बल तथा कोटखाई के राणाओं को सिरमौर की सभा के लिए बुलाया। जब वे बलग पहुंचे तो कोटखाई के राणा को शक हो गया और वह वापस लौट गया। नारायण चंद सिरमौर पहुंच गया। वहां राणा तथा दूलू मंत्री को बंदी बना लिया। राजा सिरमौर ने आक्रमण कर जुब्बल पर भी अधिकार कर लिया। इस बीच दूलू तथा राणा नारायण चंद की सिरमौर में ही मृत्यु हो गई। यह घटना कब हुई, यह अज्ञात है।

रूप चंद

रूप चंद अपने पिता की मृत्यु का बदला सिरमौर से नहीं ले पाया। किंतु उसने अपने उत्तराधिकारियों के लिए संदेश छोड़ा—यदि कोई हमारे वंश में बलवान पैदा होगा, शत्रु को दंड देने वाला होगा तो इस घटना को याद कर कुकर्मकारी सिरमौर वाले से नारायण चंद का बदला लेगा।

तेग चंद

तेग चंद सिरमौर से बदला लेने के लिए प्रयासरत रहा किंतु सफलता नहीं मिली। इस राणा के कार्यकाल में बीश शौ परगना के लोगों ने विद्रोह किया जिसे दबा दिया गया।

तेग चंद के बाद राणाओं के नाम में भिन्नता है। कुछ में तेग चंद के बाद गौर चंद है तो कुछ में नाहर या नरपति चंद। वंशावली में तेग चंद के बाद गौर चंद है।

गौर चंद

गौर चंद ने पुरानी राजधानी छोड़कर विशकुलटी नदी के किनारे बाईं ओर महल बनाए। यहां मंदिर भी बनवाए गए और राजधानी स्थापित की। इस स्थान का नाम देवरा रखा गया जो अब जुब्बल है।

गौर चंद के बाद नाहर चंद और योग चंद के समय मंत्री प्रभावी हो गए और सत्ता उनके हाथ में रही। इनके समय सिरमौर द्वारा भी जुब्बल पर अधिकार करने के प्रयास हुए। सिरमौर ने दोनों राज्यों की सीमाओं पर देहाधार में किला बनाया और वहां एक व्यक्ति माठू तैनात किया जिसे वहां से भगा दिया गया।

हुकम चंद

इस राणा के समय बुशहर ने जुब्बल पर आक्रमण के उद्देश्य से सीमा पर सेना का जमाव किया। राणा ने नाथू तथा आंचलू को रामपुरी की ओर से सेना के साथ भेजा अतः बुशहर की सेना वापस लौट गई। हुकम चंद ने बटाड़, मलोग को जीता। सिरमौर द्वारा निर्मित देहाधार के किले में माठू जुब्बल पर बार-बार आक्रमण करता था। उसे वहां से भगाकर किला गिरा दिया।

सिरमौर से बदला लेने के लिए हुकम चंद ने सिरमौर के ठड़ाऊ-शिलाई इलाके पर हमला कर क्षेत्र को जीत लिया। नाहन से सिरमौर का वजीर सबला सेना के साथ शिलाई आ पहुंचा। एक सप्ताह की लड़ाई के बाद सबला वजीर मारा गया। जुब्बल की सेना जमटा तक पहुंच गई और उसे अपने अधीन किया। राणा ने नारायण चंद के समय खोया क्षेत्र अपने अधीन कर लिया। पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि जुब्बल वाले वापस लौटते हुए वजीर सबला की विधवा को साथ ले गए और उसका विवाह अपने वजीर बीणी के पुत्र से कर दिया। चेहता में कुलग नामक स्थान में किला बनवाया।

बीणी वजीर ने थरोच के सतोता तथा नेवल को भी जुब्बल में मिला लिया। थरोच के ही किरन परगने के खूंदों को हराया गया। इसके बाद बीणी वजीर की मृत्यु हो गई।

हुकम चंद ने गढ़वाल के सीमावर्ती इलाकों को भी लूटा। पब्बर नदी के साथ किले और पुल जला डाले। राणा ने प्रशासन की दृष्टि से बीश शौ (चौपाल) को दो बराबर भागों में बांट दिया और इन दोनों क्षेत्रों का भार झांईक तथा गदाहु वजीरों को सौंपा।

परस चंद

हुकम चंद के बाद उसका भाई परस चंद उत्तराधिकारी बना क्योंकि हुकम चंद निःसंतान था। इस समय वजीर शक्तिशाली हो गए और कोटखाई के राणा के साथ किलेबंदी करने लगे। राणा ने इन्हें रोका जिससे राज्य में विद्रोह हो गया। पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि पुंदर के लोगों ने भी विद्रोह किया। उन्होंने राणा के छोटे भाई मीमतू के समय नाग देवता को बलि प्रदान कर खुशियां मनाईं। राजा ने पुंदर

पर आक्रमण कर नाग देवता का मंदिर जला दिया। किंतु पुंदर के लोगों ने कोटखाई तथा कुम्हारसेन की सहायता से मुकाबला किया और अपने को जुब्बल से स्वतंत्र करा लिया। जुब्बल के स्थान पर यहां से कोटखाई तथा कुम्हारसेन कर लेने लगा।

सन् 1793 में जब महाराजा संसार चंद ने बिलासपुर पर आक्रमण किया तो बिलासपुर की राजमाता नागरदेवी ने सिरमौर के राजा धर्म प्रकाश से सहायता मांगी। उस समय से संबंधित एक झेड़े (युद्ध गाथा), 'झेड़ा गढ़ छिसूयार' में जुब्बल के राजा को बुलाने का भी उल्लेख आता है। इस झेड़ा में उल्लेख है कि सहायता के लिए जुब्बल के राजा को भी बुलाया जाए, जो बहादुर है और इस समय पूरी ताकत में है। किंतु जुब्बल की परंपरा में ऐसा उल्लेख नहीं आता।

पुंदर के बाद चेहता तथा चांजू के मियां हरिया वजीर ने भी विद्रोह कर दिया। राणा उसे हराने में सफल नहीं हुआ। अतः राणा इसके तुरंत बाद ज्वर से पीड़ित हो गया। राणा का पुत्र पूर्ण चंद नाबालिग था। इस भय से कि गद्दी सौतेले भाई खिंचरू को न चली जाए, राणा ने अपने वजीर दांगी तथा चंदेल वजीर मीरजू से यह वचन लिया कि वे उसी के पुत्र को गद्दी सौंपने में सहायता करेंगे। वजीर राणा को राजधानी देवरा ला रहे थे कि रास्ते में बौड़ नाला के पास परस चंद की मृत्यु हो गई। यह घटना सन् 1806 की है।

राणा के सौतेले भाई खिंचरू ने इस बीच खजाने पर अधिकार कर लिया और महल में भी अधिकार किया। उसने राणा की विधवा रानी को यह भी संदेश दिया कि उसके बाद पूर्ण चंद गद्दी का हकदार हो सकता है। दोनों वजीरों ने उसे महल छोड़ने के लिए कहा किंतु वह नहीं माना। बराड़ परगना के लोग खिंचरू के साथ थे। वजीरों द्वारा प्रयास करने पर भी वह महल से नहीं निकला। वजीरों ने बुशहर के वजीर ध्यानू की मदद मांगी किंतु सफलता हाथ न लगी। अंततः दोनों वजीरों ने रागी वजीर के भाई सीता को सिरमौर के सेना अधिकारी कुराड़िया के पास सहायता के लिए भेजा। कुराड़िया सेना सहित हाटकोटी आया और दोनों वजीरों से भेंट की। वजीरों ने उसे खर्च देना स्वीकार किया। अंततः कुराड़िया व दोनों वजीरों ने देवरा का घेराव किया। जब खाद्यान्न समाप्त हो गया तो उसे महल छोड़ना पड़ा। वह सतोता में लोहाण गांव चला गया।

पूर्ण चंद (1806-1840)

जुब्बल के राणाओं का कार्यकाल पता नहीं चलता। ऐतिहासिक संदर्भ भी रिकॉर्ड के अभाव में संदिग्ध है। सर्वप्रथम पूर्ण चंद के उत्तराधिकारी बनने की तिथि का पता चलता है। सन् 1806 में परसराम की मृत्यु के उपरांत संघर्ष के बाद जुब्बल

के दो वजीर पूर्ण चंद को उत्तराधिकारी बना पाए। पूर्ण चंद अवयस्क था अतः दांगी वजीर ने राजकाज संभाले रखा।

राणा के अवयस्क होने से वजीर शक्तिशाली हो गए। जुब्बल के चार भागों में से चौपाल वजीर प्रेम सिंह के पास बिटोड़ी तथा चेहता दांगी के पास थे। बढ़ाल तथा बराड़ परगने राणा पूर्ण चंद के अधीन थे। पूर्ण चंद एक कमजोर शासक सिद्ध हुआ अतः वजीर प्रभावी हो गए। वजीर लोग राजकर स्वयं ही अपने लिए रखने लगे। वजीरों की निरंकुशता से प्रजा पड़ोसी राज्यों में भाग गई।

नेपाल में 1768 ई. में पृथ्वी शाह ने गोरखा राज्य की स्थापना की। उसके पौत्र रणबहादुर शाह ने 1790 ई. में कुमाऊं पर अधिकार किया। सन् 1803 में गढ़वाल पर भी गोरखों का अधिकार हो गया। सन् 1805 में बिलासपुर राज्य ने कांगड़ा के विरुद्ध गोरखों को आमंत्रित किया। सन् 1806 से 1809 तक कांगड़ा किले में गोरखों का घेराव रहा। सन् 1809 में रणजीत सिंह ने गोरखों को सतलुज के पार भगाया। अतः 1890 में गोरखों ने अर्की पर अधिकार कर लिया। सन् 1810 में ही गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा ने जुब्बल पर अधिकार कर लिया।

सन् 1810 में गोरखों ने जुब्बल पर आक्रमण कर वजीर दांगी तथा ढाई सौ लोगों को पकड़कर अर्की भेज दिया। कुछ समय बाद समझौता हुआ और दांगी वजीर ने पुंदर क्षेत्र से गोरखों को पंद्रह हजार रुपए कर देना स्वीकार किया। अतः गोरखों ने दांगी तथा प्रेम सिंह वजीर को उनकी वजीरियां वापस कर दीं। गोरखों ने रावींगढ़ किले में मुख्यालय बनाया जहां से वे जुब्बल, सारी, रावीं ठकुराइयों पर राज करने लगे। गोरखों का शासन आतंक भरा था। गोरखों ने पहले वर्ष 22,000 रुपए, दूसरे वर्ष 19,000 रुपए और तीसरे वर्ष 15,000 रुपए कर लिया। उन्होंने दांगी वजीर को कर वसूलने के लिए तैनात किया।

तीन वर्ष के शासन के बाद प्रथम नवंबर, 1814 को अंग्रेज-सिख युद्ध में गोरखों की हार हुई। जुब्बल की सेना ने दांगी वजीर के नेतृत्व में अंग्रेजों का साथ दिया।

नाहन से 5 मार्च, 1815 को अंग्रेज सेना जुब्बल की ओर बढ़ी। वे चूड़धार को पार कर 12 मार्च को सराहां पहुंचे तथा वजीर दांगी तथा प्रेम सिंह भी उनके साथ मिल गए। चौपाल किले से गोरखों को निकाल दिया गया। इसके बाद अंग्रेज सेना रावींगढ़ पहुंची। रावींगढ़ में जुब्बल के वजीर तथा बुशहर के वजीर टीकम दास ने अंग्रेजों का साथ दिया और किले से गोरखों को भगा दिया। अतः 15 मई, 1815 को यह पूरा क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन हो गया। अंग्रेज सरकार द्वारा 18 नवंबर, 1815 को जुब्बल के राणा पूर्ण चंद को सारा राज्य लौटा दिया। कैप्टन आर. रॉस ने राणा

को सनद प्रदान की। पुंदर परगना अंग्रेजों ने अपने पास रखा।

राणा पूर्ण चंद को ठकुराई मिलने पर राणा के पास बराड़ भढ़ाल की वजीरी ही थी। चेहता, बटेवड़ी दांगी वजीर के पास तथा चौपाल प्रेम सिंह वजीर के पास थे। दांगी वजीर ने जखोल का परगना, जिस पर दोनों वजीरों का अधिकार था, अप्रैल-मई, 1816 में राणा को दे दिया। अतः राज्य के तीन भागों में राणा का भाग मात्र दो हजार रुपए था जबकि प्रेम सिंह वजीर का तीन हजार रुपए और दांगी वजीर का पांच हजार रुपए। दोनों वजीर राणा को अपने हिस्से से एक हजार रुपए तथा छह सौ रुपए भी देते थे।

दांगी वजीर सन् 1816 में बीमार हो गया तो राज्य में अव्यवस्था फैल गई क्योंकि वह राजधानी देवरा में रहकर राजकाज की व्यवस्था भी देखता था। अंग्रेज सरकार भी राणा से नाराज हो गई क्योंकि राणा एक कमजोर शासक था जिसका अपने वजीरों पर पूरा अधिकार नहीं था। अतः कैप्टन रॉस ने 3 जून, 1816 में जुब्बल आकर दांगी को वजीर नियुक्त किया और राणा के आदेशों का पालन करने को कहा। किंतु दांगी वजीर की मृत्यु हो गई और राज्य में अव्यवस्था फैल गई। सरकार ने अब वजीर के वंशगत पद को समाप्त कर स्थानीय बटालियन के सूबेदार नरपत सिंह को वजीर नियुक्त किया। नरपत सिंह की मृत्यु के बाद नसीरी सेना के एक अधिकारी को तैनात किया। सन् 1826 में राणा ने सरकार से अनुरोध किया कि वह अपने वजीरों से काम चलाएगा अतः राणा को पूरे अधिकार दिए गए।

सन् 1826 में पुनः वंशगत वजीर लगने से दांगी का पुत्र सहज राम तथा प्रेम सिंह पुनः अपने पूरे अधिकार इस्तेमाल करने लगे और राणा कोई सुधार नहीं कर पाया। प्रेम सिंह ने प्रजा सहित राणा को भी तंग किया। सन् 1832 में राणा ने राज्य की व्यवस्था के लिए पोलिटिकल एजेंट को लिखा। अंग्रेज सरकार ने प्रशासन अपने हाथ में लेकर राणा को 4400 रुपए वार्षिक पेंशन लगा दी। राणा निःसंतान था अतः सरकार के इरादे को भांपकर उसने पेंशन लेने से इनकार कर दिया। इस बीच सन् 1835 में राणा के यहां पुत्र पैदा हुआ। अतः सरकार ने राज्य लौटाने का निर्णय लिया किंतु इस निर्णय की सूचना मिलने से पूर्व ही पूर्ण चंद की 14 फरवरी, 1840 को मृत्यु हो गई।

सन् 1833 में कैप्टन केनेडी ने भू-बंदोबस्त किया। यह काम मैनेजर मौलक राम द्वारा किया गया। बंदोबस्त के बाद मालगुजारी 13,137 रुपए हो गई। इस बीच प्रशासन हेतु तहसीलदार की नियुक्ति की गई। देवरा में एक कचहरी बनाई गई, दो छोटे थाने बनाए गए। वजीरों के अधिकार समाप्त किए गए।

कर्म चंद (1835-1877)

सन् 1835 के कर्म चंद के जन्म के साथ सरकार द्वारा उसे हकदार मान लिया गया। जब सन् 1840 में राज्य लौटाया गया तो कर्म चंद की आयु मात्र पांच वर्ष थी। अतः रियासत में एक तहसीलदार नियुक्त किया गया। सन् 1842 में प्रजा ने राज्य टिक्का कर्म चंद को लौटाने के लिए मांग रखी। किंतु सरकार ने राजा के बालिग होने पर ही अधिकार देने स्वीकार किए। प्रजा एक वजीर नंदराम ने देखी थी जिसे रानी ने बराड़, भड़ाल आदि परगनों के लिए नियुक्त किया था। अतः सरकार ने इस वजीर को राज्य से बाहर करने के रानी को आदेश दिए।

राणा कर्म चंद की आयु अट्ठारह वर्ष होने पर सन् 1835 में सरकार ने राणा को ठकुराई के पूरे अधिकार दे दिए। राणा कर्म चंद ने खानदानी वजीरों से मुआफियां छीन लीं और राज्य से बाहर निकाल दिया। वजीरों के साथ विद्रोह करने वाले लोगों को भी राणा ने बाहर निकाल दिया। सरकार के कहने पर राणा ने चौपाल के खानदानी वजीर केहर सिंह को सन् 1860 में सीमित अधिकारों के साथ वजीर नियुक्त किया। इसकी मृत्यु के बाद राणा ने कोई वजीर नहीं रखा।

इस बीच वजीरों तथा हामल के जमींदारों ने अंग्रेज सरकार से राणा के विरुद्ध शिकायतें कीं। इसकी जांच जी.सी. बारनेस से करवाई गई। जांच में पाया गया कि अट्ठारह परगनों में से केवल तीन परगनों के लोग राणा के खिलाफ हैं जिन्हें वजीरों ने बहकाया है। अतः विद्रोहियों पर मुकदमे चलाकर उन्हें दंडित किया गया।

सन् 1862 में राणा को सनद दी गई जिसमें निःसंतान होने पर गोद लेने का अधिकार मिला।

राणा कर्म चंद ने कुपड़ शिखर पर गिरिगंगा के उद्गम पर गंगा, शिव, विष्णु तथा काली के मंदिर बनवाए। जयपुर से मूर्तियां मंगवाकर वहां स्थापित करवाईं। उसने देवरा तथा चौपाल में महल बनवाए। राणा की मृत्यु 41 वर्ष की आयु में 17 मार्च, 1877 को हुई।

पद्म चंद (1877-1898)

सन् 1877 में कर्म चंद की मृत्यु के समय पद्म चंद की आयु पंद्रह वर्ष थी। 4 मई, 1877 को राजतिलक हुआ। प्रशासन चलाने के लिए चार व्यक्तियों की एक परिषद बनाई गई जिसमें राणा को भी रखा गया। चार वर्ष तक परिषद द्वारा राजकाज के बाद सन् 1881 में वयस्क होने पर राज्य के पूर्ण अधिकार दिए गए। राणा ने खानदानी वजीरों की प्रथा पर चलते हुए झाईक परिवार के भगवान दास को अपना वजीर नियुक्त किया। भगवान दास ने जुब्बल को तीन तहसीलों में बांटा। वन

विभाग को सुदृढ़ किया, औषधालय खोले, सड़कें तथा धर्मशालाएं बनवाईं। बेगार प्रथा समाप्त की। भगवान दास एक योग्य व्यक्ति साबित हुआ।

राणा पद्म चंद पूजा-पाठ में लगा रहता था। उसने संस्कृत विद्वान् अपने राज्य में बुलवाए। इन्हीं में एक पंडित संतराम था जिसने जुब्बल वंशावली लिखी। राणा ने इन ग्रंथों को बनारस से छपवाया। बुशहर में बंदोबस्त के समय हाटकोटी क्षेत्र पर विवाद हुआ तो सरकार ने हाटकोटी को दुर्गा की जागीर बना दिया जिसकी आय मंदिर को दी गई। व्यवस्था के लिए एक समिति बनाई जिसमें जुब्बल, रावीं तथा बुशहर से सदस्य लिए गए।

रावीं तथा ढाढी में विद्रोह के बाद 1896 में सरकार ने इन्हें जुब्बल का करद घोषित किया।

राणा पद्म चंद ने हाटकोटी मंदिर में नई छत लगवाई तथा सोने का कलश चढ़ाया। देवरा में एक नया महल तथा शिव मंदिर बनवाया।

पद्म चंद की मृत्यु 36 वर्ष की आयु में नवंबर, 1898 में हुई।

ज्ञान चंद (1908-1910)

राणा पद्म चंद की मृत्यु के समय ज्ञान चंद की आयु ग्यारह वर्ष थी। 27 अक्तूबर, 1899 को पहाड़ी रियासतों के सुपरिंटेंडेंट ए. मैरीडीथ ने उसे गद्दी सौंपी। ज्ञान चंद के अवयस्क होने पर वजीर भगवान दास ने राजकाज चलाए रखा। जुलाई, 1899 में वजीर भगवान दास पर गोली चलाई गई। षड्यंत्रकारियों को पकड़ा गया और सजा हुई। इस षड्यंत्र में राणा पद्म चंद के भाई गंभीर चंद तथा रानी देलठी का हाथ पाया गया। रानी देलठी ने गंभीर चंद के विरुद्ध भी शिकायत की। गंभीर चंद को राजमहल छोड़ने के आदेश हुए। वह कपूरथला चला गया।

सन् 1902 में वजीर भगवान दास की मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर मियां दुर्गा सिंह को मैनेजर नियुक्त किया गया। इस बीच ज्ञान चंद तथा उसके भाई चीफ्स कॉलेज, लाहौर में शिक्षा ग्रहण करते रहे। सन् 1907 में जुब्बल का बंदोबस्त पूरा हुआ और रिपोर्ट पेश की गई।

सन् 1908 में राणा ज्ञान चंद को राज्य के अधिकार सौंपे गए किंतु 1910 में ही इसकी मृत्यु हो गई। इस समय में देवरा में एक स्कूल तथा औषधालय खोला गया।

राणा ज्ञान चंद की मृत्यु मात्र 23 वर्ष की आयु में हो गई।

भगत चंद (1910-1946)

राणा ज्ञान चंद निःसंतान मरा अतः गद्दी के लिए विवाद हो गया। राणा पद्म

चंद की बड़ी रानी देलठी के दो पुत्र थे। बड़ा ज्ञान चंद और छोटा दुर्गा सिंह। दूसरी रानी कटोची रानी थी जिसका पुत्र भगत चंद, राणा ज्ञान चंद से छोटा था। अतः भाइयों में सबसे बड़ा होने के कारण भगत चंद और बड़ी रानी का पुत्र होने से दुर्गा सिंह के हक को लेकर कलकत्ता के उच्च न्यायालय में दावा हुआ जिसमें सबसे बड़ा भाई होने के कारण भगत चंद के हक में निर्णय हुआ। अतः अप्रैल 1910 में भगत चंद को पूरे अधिकार दिए गए। इस समय रियासत का वजीर मियां शेर सिंह मैनेजर था।

इस समय वन विभाग का प्रबंध सरकार ने अपने पास रखा। सन् 1911 में सम्राट जॉर्ज पंचम के दिल्ली दरबार में राणा भगत चंद को भी आमंत्रित किया गया।

वन विभाग को संगठित किया गया। चौपाल में वन विभाग का मुख्यालय खोला गया। अट्ठारह डाकबंगले बनाए गए। बेगार प्रथा बंद की गई। देवरा के अस्पताल को बढ़ाया गया। चौपाल में अस्पताल खोला गया। सन् 1945 में जुब्बल में हाई स्कूल तथा शिमला में पद्म चंद की स्मृति में सनातन धर्म कॉलेज खोला गया। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण कार्यों के लिए राणा ने चालीस लाख रुपए खर्च किए।

सन् 1918 में राणा को 'राजा' की उपाधि, 1929 में सी.एस.आई. तथा 1936 में के.सी.आई. उपाधियां दी गईं।

सन् 1926 में जुब्बल में बिजली पैदा की गई। 1933 में लॉर्ड इर्विन का जुब्बल आगमन हुआ। सन् 1932-33 में राणा ने विश्व-भ्रमण किया और जर्मनी में हिटलर तथा इटली में मुसोलिनी से भेंट की। राणा ने जुब्बल में नए महल, स्कूल, अस्पताल तथा कार्यालय भवन बनवाए। संजौली में धर्मशाला, हरिद्वार में महिला स्नानगृह बनवाए। अक्तूबर 1946 में राणा ने अपने जन्मदिन (26 असौज) के अवसर पर अपने पुत्र दिग्विजय चंद के लिए गद्दी छोड़ दी।

दिग्विजय चंद (1946-1966)

दिग्विजय चंद ने आई.सी.एस. का अंतिम प्रशिक्षण सन् 1944 में भारत में प्राप्त किया। राणा भगत चंद के समय से आरंभ प्रजामंडल आंदोलन दिग्विजय चंद के समय जोरों पर था। भागमल सौटा, जयलाल, मास्टर प्राग राम आदि आंदोलनकारी सक्रिय थे। 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वाधीन होने पर राणा ने इन्हें सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। भागमल सौटा ने मंत्रिमंडल बनाया जिसमें भागमल सौटा मुख्यमंत्री, जयलाल शरखोली गृहमंत्री, नेगी बशेर चंद मंत्री बने। राजा की ओर से कुंवर रघुवीर सिंह तथा बाबू दूला राम घेजटा मंत्री बने।

8 मार्च को (1948) पहाड़ी राजाओं ने अनुबंध पर हस्ताक्षर किए और 15 अप्रैल, 1948 को जुब्बल हिमाचल प्रदेश का अंग बना।

कर्नल मैसी ने राणा कर्म चंद के समय जुब्बल का क्षेत्रफल लगभग 250 वर्गमील, जनसंख्या 20,000 और वार्षिक आय 30,000 रुपए बताई है।

कर्नल मैसी की सूची

जोग चंद
|
परस चंद
|
राणा पूर्ण चंद (मृत्यु 1840)
|
राणा कर्म चंद (मृत्यु 1877)

- राणा पद्म चंद (जन्म 1862)
  - तीन नाबालिग पुत्र
- गंभीर चंद (जन्म 1864)
  - दो नाबालिग पुत्र

सारी

सारी ठकुराई की नींव परंपरा के अनुसार सिरमौर के अंतिम राजा उग्र चंद के दूसरे पुत्र मूलचंद ने रखी। यह राज्य भी उसी समय स्थापित हुआ होगा जब जुब्बल की स्थापना हुई। यह क्षेत्र पब्बर के दाएं किनारे बुशहर के समीप नोगड़ी खड्ड तक था। इस राज्य के इतिहास पर जनश्रुति के सिवा कोई ऐतिहासिक स्रोत उपलब्ध नहीं है। इस राज्य की वंशावली भी नहीं है। वर्तमान रोहडू क्षेत्र सारी ठकुराई के अंतर्गत था।

बुशहर के राजा विजय सिंह (1740) ने कुम्हारसेन, कोटगढ़, सांगरी और सारी को जीतकर अपने अधीन किया। अतः समय-समय पर यह ठकुराई बुशहर के अधीन रही। जनश्रुति के अनुसार यहां के अंतिम शासक की मृत्यु, जिसका नाम धर्म सिंह था, गढ़वाल के साथ युद्ध में सन् 1813 में हुई। यह भी संभव है कि उसकी हत्या गोरखा युद्ध में हुई हो। धर्म सिंह का विवाह जुब्बल के एक मियां परिवार में हुआ था। पति की मृत्यु पर रानी शृंगार मंजरी ने राजप्रबंधन संभाला। गोरखा

आधिपत्य के बाद सीमा-विवाद को लेकर 1828-29 में वह गवर्नर जनरल के पास कलकत्ता तक गई। रानी ने जुब्बल के भय से बुशहर का आधिपत्य स्वीकार किया। सन् 1864 में रानी की मृत्यु के बाद अंग्रेज सरकार ने इस राज्य को बुशहर का करद राज्य बना दिया।

रावीं

रावींगढ़ की नींव सिरमौर के अंतिम शासक उग्र चंद के तीसरे पुत्र दुनी चंद ने डाली। रावीं का क्षेत्र पब्बर के बाएं किनारे तौंस नदी तक फैला हुआ था। सारी की भांति रावीं के इतिहास के बारे में भी कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। वंशावली भी उपलब्ध नहीं है।

मियां गोवर्धन सिंह ने कुछ नाम इस प्रकार दिए हैं :

1. कुंवर सिंह	5. वैरागी (1829) : हिम्मत सिंह का पुत्र
2. तार सिंह	6. ध्यान सिंह (मृत्यु 1857)
3. हिम्मत सिंह	7. हरि चंद (मृत्यु 1904)
4. रूणा (भाई)	8. केदार सिंह (जन्म 1876)

गढ़वाल के साथ सीमाएं लगने के कारण गढ़वाल की ओर से हमले होते रहते थे। गढ़वाल के राजा अजय पाल (1358-78) ने रावींगढ़ को जीतकर इसे करद राज्य बनाया। बुशहर ने भी रावीं पर अधिकार रखा और गोरखों के आक्रमण के समय यहां बुशहर का ही अधिकार था।

गोरखों ने जब 1810-11 में रावींगढ़ किले पर कब्जा किया तो यहां के राजा हिम्मत सिंह की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। अतः गोरखों ने राजा के भाई रूणा को यहां का राणा बनाया।

अंग्रेज सरकार के समय हिम्मत सिंह के पुत्र वैरागी ने अपना हक जताया। अब तक रूणा की मृत्यु हो गई थी। अतः सरकार ने हिम्मत सिंह की बात मान ली। सन् 1844 में अर्किस्न ने रावींगढ़ का बंदोबस्त किया। सन् 1879 में सरकार ने जंगलों का प्रबंध अपने हाथ में लिया। सन् 1896 में रावींगढ़ को सरकार ने जुब्बल के अधीन कर दिया। सन् 1904 में ठाकुर हरि चंद की मृत्यु के बाद सन् 1904 में उसका भाई केदार सिंह ठाकुर बना।

बलसन

बलसन की ठकुराई की नींव भी जनश्रुति के अनुसार सिरमौर के राजपरिवार के एक व्यक्ति अलक सिंह राठौड़ ने डाली। सिरमौर का यह राजवंश बारहवीं शताब्दी के अंत में बाढ़ में बह गया। इसी बाढ़ में सिरमौर का अंतिम शासक उग्र चंद भी

बहा था। बलसन के राणा भी अपने को इसी परिवार से मानते हैं। राजा उग्र चंद के बहने के बाद विद्रोह होने पर अलक सिंह भी वहां से भागा।

यह ठकुराई गिरि नदी की ऊपरी घाटी में जुब्बल तथा कोटखाई के मध्य स्थित है। अलक सिंह ने इस क्षेत्र को जीतकर अपने अधीन किया। यह भी संभव है कि सिरमौर के शासक ने यह क्षेत्र अलक सिंह को दिया हो और बाद में वह शासक बन बैठा।

पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि बलसन सिरमौर के अधीन था। गोरखा आक्रमण से पहले यह कुम्हारसेन का करद राज्य था।

मियां गोवर्धन सिंह ने बलसन के राणाओं के निम्नलिखित नाम दिए हैं :

1. अलक सिंह
2. कलक
3. राम
4. केसर
5. भाग
6. जयदेव
7. भूप
8. नथा
9. जोग
10. जगत
11. दीप
12. मान्
13. तेग
14. जय
15. धर्म
16. जोग राज (मृत्यु 29 नवंबर, 1867)
17. साहिब (मृत्यु 1884)
18. भूप (मृत्यु 1884)
19. वीर सिंह (मृत्यु 1918)
20. अतर सिंह (1920-1936)
21. रण बहादुर सिंह (1936)

जब गोरखा आक्रमण हुआ तो बलसन का राणा जोगराज सिंह बलसन छोड़ गया। गोरखे 6100 रुपए वार्षिक कर लेते रहे। अंग्रेज-गोरखा युद्ध में जोगराज सिंह ने अंग्रेजों का साथ दिया। अतः 21 सितंबर, 1815 को अंग्रेजों ने सनद द्वारा बलसन की ठकुराई जोगराज सिंह को लौटा दी। अंग्रेज सरकार ने भड़ोली का क्षेत्र हिंडूर के राजा रामसरन सिंह को दे दिया। रामसरन ने दूर होने के कारण यह क्षेत्र वापस कर दिया। बाद में अंग्रेजों ने इसे बलसन को 8500 रुपए में बेच दिया। सन् 1857 की क्रांति में कुछ अंग्रेज बलसन के ठाकुर के पास रुके अतः सरकार ने ठाकुर को राणा की उपाधि दी। राणा जोगराज सिंह की 1867 में मृत्यु हो गई। इसके बाद पौत्र भूप सिंह सन् 1867 से 1884 तक राणा बना। इसके बाद वीर सिंह 1884 से 1920 तक गद्दी पर रहा। वीर सिंह के बाद उसका भाई अतर सिंह 1936 तक राणा बना। सन् 1936 में रण बहादुर सिंह राणा बना। 15 अप्रैल, 1948 को बलसन हिमाचल प्रदेश में मिला।

कर्नल मैसी ने राणा वीर सिंह के समय बलसन का क्षेत्रफल पचास वर्गमील और जनसंख्या 5000 बताई है। सरकारी कर 1180 रुपए निकालकर इसकी वार्षिक आय छह हजार रुपए से कम रह जाती थी। मैसी ने लिखा है, 'जब गोरखा रेजिमेंट, जो जतोग में स्थित थी, उसके शिमला में फसाद करने का डर था तो कई अंग्रेज शिमला से भागकर उनकी रियासत में चले गए और राणा साहब ने उनको शरण दी और मेहमाननवाजी की थी। जोगराज सिंह को इन सेवाओं के बदले में राणा बनाया गया और दरबारे आम में एक अच्छी खिल्लत दी गई।'

कर्नल मैसी की सूची

- जय सिंह
  - धर्म सिंह
    - राणा जोगराज सिंह (मृत्यु 1867)
      - साहब सिंह
        - राणा भूप सिंह (मृत्यु 1884)
          - गोवर्धन सिंह (मृत्यु 1870)
            - राणा वीर सिंह (जन्म 1861)
            - अतर सिंह (जन्म 1868)
          - नत्था सिंह (जन्म 1852)
        - रतन सिंह (जन्म 1818)
      - मेल सिंह (मृत्यु 1888)
      - संसार सिंह (मृत्यु 1878)
      - देवी सिंह (मृत्यु 1872)
        - प्रेम सिंह (जन्म 1834)
      - रणजीत सिंह (मृत्यु 1868)
        - काहन सिंह (मृत्यु 1840)

कुम्हारसेन

कर्नल मैसी के अनुसार कुम्हारसेन का क्षेत्रफल लगभग 90 वर्गमील था, जनसंख्या 10,000 और वार्षिक आय 10,000 थी। राणा हीरा सिंह अंग्रेजी सरकार को दो हजार रुपए कर देता था।

कुम्हारसेन, कोटगढ़, खनेटी और देलठ की ठकुराइयों का संस्थापक एक ही राजवंश माना जाता है। परंपरा के अनुसार इनके बारे में भिन्न-भिन्न मत हैं। एक मत के अनुसार ये चार भाई बिहार (गया) से आए अतः गयाड् या गौड़ कहे जाने लगे। ये लोग ब्राह्मण थे किंतु इन्होंने राजपूत कर्म किए। इनके बारे में तरह-तरह की कथाएं भी प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार कीरत सिंह एक बार कुंभ मेले में प्रयाग गया। वहां से वह शिकार खेलने चला गया जहां गलती से एक तपस्वी को तीर से मार दिया। तपस्वी ने मृत्यु से पहले उसे हिमालय जाकर प्रायश्चित्त करने को कहा। दूसरी कथा के अनुसार बिहार के शासक न्यायपाल तथा कलचूरी के कर्ण के मध्य युद्ध के समय स्थानीय सामंत कीरत सिंह पहाड़ों की ओर भागा हो। एक मत यह भी है कि कीरत सिंह अपने भाइयों सहित महमूद गजनवी के आक्रमण के समय इस ओर भागा।

इन भाइयों ने यहां आकर कुम्हारसेन, कोटगढ़, खनेटी और देलठ के स्थानीय ठाकुर भम्भु राय को हराया। कीरत सिंह ने करांगला अपने भाई करतार सिंह को दिया। एक जनश्रुति यह भी है कि कीरत सिंह गया से आकर करांगला में ही बसा। कीरत सिंह की मृत्यु के समय रानी गर्भवती थी। बालक का नाम उगम चंद रखा गया। भम्भु राय के मरने पर उगम चंद ठाकुर बना। उगम चंद के तीन पुत्र हुए—संसार चंद, सवीर चंद और जय सिंह। संसार चंद को करांगला की ठकुराई मिली। सवीर चंद तथा जय सिंह खनेटी बसे और खनेटी, कोटखाई, कोटगढ़ पर राज करने लगे। इनकी छठी पीढ़ी में विवाद के बाद दुनी चंद खनेटी का ठाकुर बना और शिमल सिंह कोटखाई तथा कोटगढ़ का।

अन्य मत यह भी है कि कीरत सिंह और उसका भाई पहाड़ सिंह करांगला में बसे। कुछ समय बाद उन्होंने भम्भु राय को हराकर कुम्हारसेन, खनेटी, कोटगढ़ का क्षेत्र हथिया लिया। पंजाब स्टेट गजेटियर के अनुसार कीरत सिंह कुम्हारसेन आया। उसके दो पुत्र हुए—पहाड़ सिंह और करतार सिंह। कीरत सिंह तीर्थयात्रा पर चला गया तो करतार सिंह ने कुम्हारसेन और पहाड़ सिंह ने कोटगढ़ और खनेटी का क्षेत्र आपस में बांट लिया।

अतः संस्थापक भाइयों के विषय में अलग-अलग कथाएं प्रचलित हैं किंतु एक व्यक्ति कीरत सिंह का नाम सभी कथाओं में है। कीरत सिंह ने कुम्हारसेन में

राजधानी बनाई और सैंतीस वर्ष राज करने के बाद पहाड़ सिंह राणा बना।

रूलिंग चीफ्स में कुम्हारसेन के राणाओं की सूची दी गई है जिसमें 54 नाम हैं। एक अन्य सूची में 56 नाम हैं।

वंशावली

कुम्हारसेन की वंशावली में ये नाम मिलते हैं (रूलिंग चीफ्स से) :

1. कीरत सिंह
2. पहाड़
3. प्रताप
4. नरदेव
5. नाहर
6. जयदेव
7. जोरावर
8. दलभजन
9. रणधीर
10. विशनपाल
11. मदन
12. जय
13. नारायण
14. शमशेर
15. काहन
16. चतर
17. गुजर
18. गनपत
19. निरभय
20. सतधारी
21. तेग
22. विक्रम
23. सूरत
24. देवी
25. जयमल
26. जगदीश
27. गिरधारी
28. सूरत
29. जवाहर
30. तपधारी
31. करम
32. जती
33. धर्म
34. जलिम
35. कंवल
36. दलीप
37. दलील
38. तिलक
39. पृथ्वी
40. गोलाल
41. किशन
42. रूप
43. राता
44. शिव
45. फतेह
46. शक्त
47. चतर
48. अजमेरी
49. रण
50. गोवर्धन
51. केहर
52. प्रीतम (मृ. 1858)
53. भवानी (मृ. 1874)
54. हीरा (मृ. 1914)

दीवान भगवंत राय ने बहारे कुम्हारसेन में राजाओं की सूची दी है जिसके अनुसार यह ठकुराई बहुत पहले अस्तित्व में आनी चाहिए किंतु ग्यारहवीं शताब्दी से पहले यह अस्तित्व में नहीं आई। इसके अनुसार निम्नलिखित राणा हुए :

1. कीरत सिंह
2. पहाड़ सिंह
3. प्रताप सिंह
4. नरदेव सिंह
5. नाहर सिंह
6. जयदेव सिंह
7. जोरावर सिंह

जोरावर सिंह के समय सिरमौर सेना बुशहर पर आक्रमण के लिए कुम्हारसेन तक आई। सिरमौर ने (सुमेर प्रकाश : 1239-1248) कुम्हारसेन आदि ठकुराइयों से कर लिया। राणा ने अपनी पुत्री का विवाह सिरमौर नरेश से किया।

8. दिलभजन सिंह
9. सूरत सिंह
10. जवाहर सिंह
11. तपधारी सिंह
12. कर्म सिंह
13. ज्योति सिंह : राणा ने घूंड पर आक्रमण किया।
14. धर्म सिंह : पुंदर ठकुराई पर अधिकार किया।
15. जालम सिंह
16. रणधीर सिंह
17. कंवल सिंह
18. नपाल सिंह
19. मदन सिंह
20. झाईं सिंह
21. नारायण सिंह
22. शमशेर सिंह
23. कल्याण सिंह
24. चतर सिंह (चतर सिंह ने रजाणा को जीता जो क्योंथल का करद सामंत था।)
25. गजीर सिंह

26. गणपत सिंह
27. नारायण सिंह
28. तपधारी सिंह
29. तेज सिंह
30. विक्रम सिंह
31. सूरता सिंह
32. देवी सिंह
33. जमेल सिंह
34. जगदीश सिंह
35. गिरधारी सिंह
36. दलीप सिंह
37. दलील सिंह
38. तरलोक सिंह
39. पृथी सिंह
40. किशन सिंह
41. गुलाब सिंह
42. रूप सिंह
43. रत्न सिंह
44. सूब सिंह
45. फतेह सिंह
46. सकेत सिंह
47. पूर सिंह

कुम्हारसेन के आदमी नाहन भेंट लेकर गए थे जिसमें कस्तूरी भी थी। उन दिनों शहजादी जहांआरा सिरमौर आई थी जिसे सिरमौर नरेश ने कस्तूरी भेंट की। शहजादी ने कस्तूरी को देख इच्छा की कि वह स्वयं कस्तूरी मृगों का शिकार करना चाहती है। अतः शहजादी कुम्हारसेन आई और एक मास ठहरने के बाद वापस गई। जाते समय शहजादी ने राणा को एक तलवार और दस हजार रुपए दिए। इस कथा के ऐतिहासिक तथ्यों के बारे में संदेह है।

इस समय बुशहर में राजा केहरी सिंह (1639-69) का राज्य था। उसने अट्ठारह ठकुराइयों को अपने अधीन कर लिया जिनमें कुम्हारसेन भी एक थी।

48. अजमेर सिंह

इस राणा के समय कुल्लू में राजा मान सिंह (1618-1719) का राज था। मान सिंह ने बाहरी सिराज के पंद्रा बीश तक अधिकार कर लिया। कुम्हारसेन, कोटगढ़, बलसन से भी कर लिया। कहा जाता है कि राजा मान सिंह के कुम्हारसेन की रानी से प्रेम संबंध थे। अतः बुशहर तथा कुम्हारसेन ने अपना क्षेत्र वापस लेने के लिए मान सिंह को अकेले श्रीकोट में धोखे से बुलवाया। उसे अकेले पाकर हमला कर दिया और मार दिया। यह प्रसंग कुल्लू के इतिहास में है। कुम्हारसेन के इतिहास में उल्लेख है कि सांगरी उस समय कुल्लू के पास था। कुम्हारसेन के राणा ने हमला कर सांगरी किले पर कब्जा कर लिया। मान सिंह ने कुम्हारसेन पर आक्रमण किया। मान सिंह करांगला में हार गया। वापस जाते हुए उसे अरसू में निशाना लगा जब वह विश्राम कर रहा था अतः मृत्यु हो गई। राजा का शरीर बुशहरियों के हाथ आ गया। अजमेर सिंह की मृत्यु सन् 1725 में हुई।

49. अनूप सिंह (1825-1755)

50. दलीप सिंह

दलीप सिंह के दो भाई थे—राम सिंह और सूरत सिंह। राम सिंह दूसरी मां से था। कुछ लोग राम सिंह को उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। षड्यंत्रकारियों ने दलीप सिंह को उकसाया कि वह कुल्लू पर हमला करे। कुल्लू के राजा को मान सिंह के धोखे से वध के लिए उकसाया गया। दलीप सिंह कुल्लू गया जहां उसे मार दिया गया। अतः राम सिंह राणा बना।

51. राम सिंह

पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि राम सिंह ने क्योंथल के अधीन बलसन, भड़ौली, मधान ठकुराइयों को अपने अधीन कर लिया। क्योंथल के साथ सीमा निर्धारित की गई। राम सिंह ने बुशहर से भी अच्छे संबंध रखे। बुशहर के राजा ने संधि की कि यदि कोई कुम्हारसेन पर आक्रमण करेगा तो बुशहर का भी शत्रु समझा जाएगा।

52. गोवर्धन सिंह

53. केहरी सिंह

केहरी सिंह गोवर्धन सिंह का भाई था। गोवर्धन सिंह निःसंतान था। केहरी सिंह के समय कुम्हारसेन बुशहर का करद राज्य था।

इस बीच नेपाल में गोरखों ने समस्त पहाड़ी रियासतों पर अधिकार कर लिया अतः सन् 1810 में कुम्हारसेन भी गोरखों के अधीन हुआ। केहरी सिंह कुल्लू भाग गया। रानी को गोरखों ने जागीर दी और अपने 12,000 सैनिक वहां रखे। जब केहरी सिंह कुल्लू से लौटा तो उसे बंदी बना लिया। अंग्रेज-गोरखा युद्ध के समय केहरी सिंह जेल से भाग गया और डेविड ऑक्टर लूनी से मिला। अतः अंग्रेजों की जीत पर केहरी सिंह को भी जनरल डेविड ऑक्टर लूनी ने 7 फरवरी, 1816 को सनद देकर ठकुराई वापस कर दी। कुम्हारसेन को बुशहर के अधिकार से भी मुक्त रखा गया।

केहरी सिंह की मृत्यु 1839 में हुई। उसका एक ही पुत्र था जिसकी मृत्यु उसके जीवन में ही हो गई। अतः कुम्हारसेन सीधा अंग्रेजी राज में चला गया। प्रशासन के लिए पोलिटिकल एजेंट तैनात किया गया।

पोलिटिकल एजेंट अच्छा व्यक्ति नहीं था। अतः उसकी शिकायतें होने लगीं। अंततः केहरी सिंह के भाई सूरत सिंह के पुत्र प्रीतम सिंह को राणा बनाया गया।

54. प्रीतम सिंह

प्रीतम सिंह के समय खिराज की राशि 1440 रुपए से 2000 रुपए कर दी गई। सती और शिशु हत्या बंद कराई गई। राणा ने प्रथम सिख युद्ध में अंग्रेजों का साथ दिया। सन् 1857 की क्रांति में भी अंग्रेजों की सहायता की। प्रीतम सिंह की मृत्यु सन् 1858 में हुई।

55. भवानी सिंह (1858-1874)

56. हीरा सिंह (1874-1914)

कर्नल मैसी ने लिखा है कि 'हीरा सिंह कमजोर दिमाग का आदमी है। रियासत का प्रबंध एक काउंसिल करती है जिसमें तीन सलाहकार हैं। इसके औलाद नहीं है। इसकी दो बहनों की शादी भूतपूर्व राजा बिलासपुर से हुई और फूफी वर्तमान राजा बुशहर की रानी हैं।' यह सलाहकार काउंसिल सन् 1904 तक कार्य करती रही। सन् 1896 में एक मैनेजर नियुक्त किया गया।

सन् 1893 में बंदोबस्त आरंभ हुआ जो 1895 में पूरा हुआ। इसके बाद आय पंद्रह हजार रुपए तक बढ़ गई।

सन् 1914 में हीरा सिंह की मृत्यु हो गई।

12 नवंबर, 1915 को विद्याधर सिंह गद्दी पर बिठाया गया और 1920 में राज्य के पूरे अधिकार दिए गए। सन् 1921 में कुम्हारसेन की जनसंख्या 12,200 और आय 47,500 हो गई। सन् 1927 में दोबारा भू-बंदोबस्त हुआ।

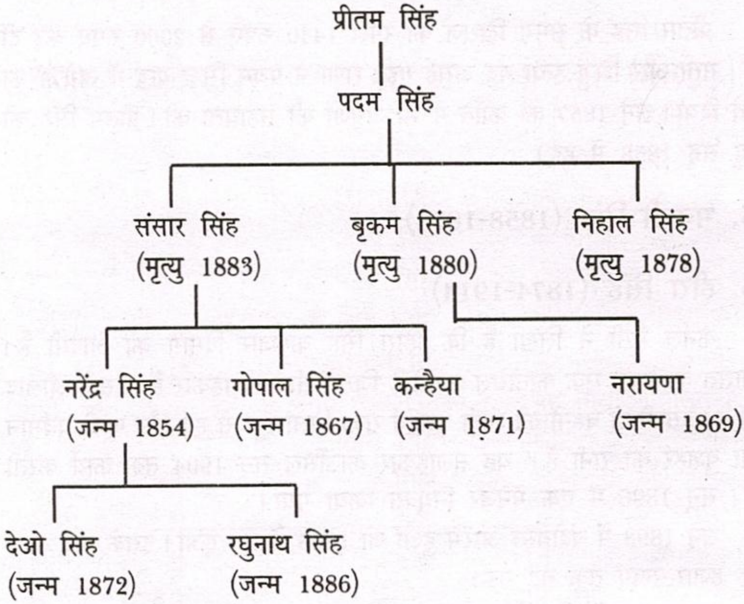
15 अप्रैल, 1948 को यह राज्य हिमाचल प्रदेश में मिल गया।

देलठ

परंपरा के अनुसार देलठ की स्थापना कुम्हारसेन के संस्थापक कीरत सिंह के भाई प्रीती सिंह ने की। यह एक छोटी ठकुराई थी जो बुशहर के अधीन रही। गोरखों के अधीन रहने के बाद यह दूसरी ठकुराइयों की तरह अंग्रेजों के अधीन आ गई।

अंग्रेजों ने 8 फरवरी, 1816 को सनद द्वारा इसे पहले की तरह बुशहर के अधीन रखा। देलठ बुशहर को डेढ़ सौ रुपए तथा बुशहर के वजीर को तीस रुपए कर देता था। इसकी वार्षिक आय मात्र छह सौ रुपए थी।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची



मियां गोवर्धन की सूची

प्रीतम सिंह (मृत्यु 1855)
पद्म सिंह (मृत्यु 1862)
संसार सिंह (मृत्यु 1883)
नरेंद्र सिंह (मृत्यु 1920)
देवी सिंह (मृत्यु 1920)
शेर सिंह

खनेटी

परंपरा के अनुसार खनेटी की स्थापना कुम्हारसेन के संस्थापक कीरत सिंह के पुत्र उगम सिंह के दो छोटे पुत्रों सवीर चंद तथा जय सिंह ने की। पांच पीढ़ियों के बाद दो भाइयों दुनी चंद और अहीमल चंद के बीच विवाद हुआ और दुनी चंद खनेटी का ठाकुर बना, अहीमल सिंह कोटखाई और कोटगढ़ का।

यह ठकुराई भी बहुत छोटी थी. अतः दूसरे राज्यों के अधीन रही। यह ठकुराई नारकंडा और कोटगुरु के बीच थी।

खनेटी में वीर चंद (1550), प्रताप चंद, रसाल चंद राणा हुए। रसाल चंद के समय गोरखों का हमला हुआ तो खनेटी भी गोरखों के अधीन आ गई। अंग्रेजी राज के समय खनेटी बुशहर के अधीन रखी गई।

नेण चंद (मृत्यु 1858) के समय बुशहर ने अपना एजेंट वहां तैनात किया और खनेटी को नौ सौ रुपए कर देना पड़ता था। बुशहर में जन्म या विवाह के अवसर पर खनेटी को भी कर देना पड़ता था।

सरन चंद (1858-1888) के समय बुशहर में शमशेर सिंह राजा था। इस समय बुशहर में असंतोष हुआ और खनेटी ने स्वाधीन होना चाहा। खनेटी ने बुशहर को कर देना बंद कर दिया। अतः इस विवाद में सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा।

जनवरी, 1890 में असंतोष को देखते हुए सरकार ने खनेटी को बुशहर के अधिकार से छुड़ाया और खनेटी पर कुछ शर्तें लगाईं। इनमें बुशहर के राजा के विवाह के समय नौ सौ रुपए देना, गद्दी पर बैठने के लिए पांच सौ रुपए, पुत्र टीका तथा जनेऊ पर दो सौ रुपए देने शामिल थे। सरन चंद मंदबुद्धि था अतः लोगों में विद्रोह फैल गया।

सरन चंद के बाद लाल चंद (1888-89) राणा था जो पागल-सा था अतः प्रशासन का कार्य भाई जालिम सिंह चलाता रहा। सन् 1898 में सरकार ने जालिम सिंह को हटाकर सीता राम को लगाया। सन् 1899 में गोविंद राम मैनेजर बनाया गया। अंत में गोवर्धन सिंह को मैनेजर लगाया गया जिसने स्थिति संभाली।

इसके बाद अमोग चंद (1899) उत्तराधिकारी बना जिसके बाल्यकाल में मैनेजर ने काम संभाला। अमोग चंद के बाद कृष्ण चंद उत्तराधिकारी बना।

कर्नल मैसी की सूची

- ठाकुर नैन चंद (मृत्यु 1858)
  - ठाकुर सरन चंद (मृत्यु 1888)
    - ठाकुर लाल चंद (जन्म 1860)
    - जालम सिंह (जन्म 1864)
  - पूरण चंद
  - भगीरथ चंद
  - आलम

कोटखाई

कोटखाई की स्थापना भी कीरत सिंह के वंशजों ने की। कीरत सिंह के पुत्र उगम चंद के तीन पुत्रों में से सवीर चंद की संतानों में पांच पीढ़ियों के बाद विवाद हुआ अतः दो भाई दुनी चंद तथा अहीमल चंद में से अहीमल चंद को यह क्षेत्र मिला। कोटगुरु या कोटगढ़ भी इसी क्षेत्र में था। कोटगढ़ तथा कोटखाई के एक ओर कुम्हारसेन, दूसरी ओर बुशहर तथा सतलुज के पार कुल्लू था। अतः तीनों ओर से इस ठकुराई पर दबाव बना रहता था।

शिमला गजेटियर में उल्लेख है कि कोटखाई के राणा ने इस उलझन से बचने के लिए कोटगढ़ का क्षेत्र, जो कुम्हारसेन के ठीक सामने और सतलुज के ऊपर था, कुल्लू के राजा को सौंप दिया। कुल्लू के राजा ने वहां सेना भेज दी। अतः कोटगढ़ कुल्लू के कब्जे में काफी समय तक रहा।

जब बुशहर तथा कुम्हारसेन के षड्यंत्र से कुल्लू का राजा मान सिंह (1688-1719) मार दिया गया तो बुशहर वालों ने राजा का मृत शरीर तब तक नहीं दिया जब तक कुल्लू ने कोटगढ़ पर अधिकार नहीं छोड़ा। अतः कोटगढ़ चालीस वर्ष से अधिक समय तक बुशहर के अधीन रहा।

सन् 1810 में कोटगढ़ कोटखाई पर गोरखों का अधिकार हुआ। कोटखाई का राणा गोरखों को छह हजार रुपए वार्षिक कर देता रहा। सन् 1815 में यह क्षेत्र भी अन्य शिमला हिल स्टेट्स की भांति अंग्रेजों के अधीन आ गया।

अंग्रेजों ने कोटखाई की ठकुराई राणा रणजीत सिंह को लौटा दी किंतु कोटगढ़

अपने अधीन कर लिया। अंग्रेज-गोरखा युद्ध के बाद कुल्लू ने अपनी सेना कोटगढ़ भेज दी क्योंकि पहले यहां कुल्लू का अधिकार था। किंतु अंग्रेजों ने सपाटू से सेना मंगवा ली। सेना के वहां पहुंचने से पहले ही कुल्लू की सेना वापस हो गई।

कोटखाई का राणा रणजीत सिंह अनैतिक व्यक्ति था। अंग्रेज सरकार ने राणा को जुर्माना किया किंतु उसने अपने में सुधार नहीं किया। राज्य में अव्यवस्था फैली रही। सन् 1821 में राणा की मृत्यु हो गई।

इसके बाद भगवान सिंह (1921) राणा बना जो रणजीत सिंह से भी गिरा हुआ आदमी था। सन् 1824 में रानी ने शिकायत की कि वह उसके पुत्र को मारना चाहता है। पोलिटिकल एजेंट केनेडी द्वारा जांच करने पर वह कुल्लू भाग गया। यह आरोप गलत पाया गया। राणा तथा प्रजा में मनमुटाव बढ़ता गया जिससे सरकार को बार-बार हस्तक्षेप करना पड़ता था। अंततः केनेडी ने इस क्षेत्र को बलसन में मिलाने की सिफारिश की। अतः भगवान सिंह ने गद्दी छोड़ दी। सितंबर, 1827 को कोटखाई का अधिकार सरकार ने ले लिया। जनवरी, 1828 में कोटखाई को अपने अधीन कर राणा भगवान सिंह को सोलह सौ रुपए तथा परिवार को सात सौ रुपए पेंशन लगाई गई।

करांगला

करांगला एक बहुत छोटी ठकुराई थी जो बुशहर की करद थी। इसकी स्थापना भी कीरत सिंह के एक वंशज संसार चंद ने की थी।

भड़ोली

कोटखाई तथा बलसन के बीच भड़ोली ठकुराई का उल्लेख जेम्ज बैली फ्रेजर (1815) तथा प्रथम पोलिटिकल एजेंट कैप्टन रॉस ने किया है। यह ठकुराई कुम्हारसेन के अधीन थी। इसे पहले गोरखों ने और फिर अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया। अंग्रेजों के समय यहां किसी राणा का उल्लेख नहीं आता, एक रानी अवश्य थी क्योंकि जब यह क्षेत्र अंग्रेजों ने कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण हिंडूर के राजा रामसरन सिंह को दिया (20 अक्तूबर, 1815 की सनद द्वारा) तो रानी को जीवन यापन के लिए चार गांव दिए गए। राजा रामसरन सिंह ने यहां विद्रोह होने तथा हिंडूर से दूर होने के कारण अंग्रेजों को वापस कर दिया। अंग्रेजों ने इसे 8500 रुपए में बलसन को बेच दिया।

ठियोग, मधान, घूंड

गिरि घाटी के ऊपर स्थित इन तीनों ठकुराइयों की स्थापना राजस्थान के चंदेल

वंश के एक राजा ने की जो हिमालय में बद्रीनाथ यात्रा के लिए आया और यहीं बस गया। गढ़वाल में रामसराय में कुछ समय रहने के बाद वह कहलूर आया जहां भीम चंद का राज था। इस राजा के तीन पुत्र गिरि नदी के ऊपर आ गए और इन तीन ठकुराइयों की नींव डाली। बड़े भाई जयस चंद ने ठियोग, दूसरे भाई ने मधान और तीसरे ने घूंड की स्थापना की।

ये तीनों छोटी-छोटी ठकुराइयां क्योंथल के अधीन रहीं। सन् 1810 में ये गोरखों के अधीन और 1815 में अंग्रेजों के अधीन हो गईं। 11 सितंबर, 1815 को सरकार ने इन तीनों को क्योंथल के अधीन मान्यता प्रदान की। ठियोग द्वारा पांच सौ रुपए, मधान द्वारा अढ़ाई सौ तथा घूंड द्वारा भी अढ़ाई सौ रुपए नजराना क्योंथल के राजा के लिए नियत किया गया।

कर्नल फ्रांसिस मैसी द्वारा दी गई ठियोग की सूची

- ठाकुर भूप सिंह (मृत्यु 1866)
  - हरि चंद (जन्म 1840)
    - शमशेर सिंह (जन्म 1860)
    - मदन सिंह (जन्म 1864)
    - गोवर्धन सिंह (जन्म 1870)
    - विजय सिंह (जन्म 1876)
    - कर्म सिंह (जन्म 1880)
  - नंद सिंह (जन्म 1855)
  - नितू सिंह (जन्म 1860)

मियां गोवर्धन सिंह की सूची

भूप सिंह (मृत्यु 1866)
हरि चंद (1856-1893)
शमशेर चंद (1893-1901)
पद्म चंद (1909)
कर्ण चंद
कृष्ण चंद

ठाकुर भूप चंद को सरकार ने 1856 में गद्दी से हटा दिया। उसकी जगह हरि चंद उत्तराधिकारी बनाया गया। कर्नल मैसी के अनुसार भूप चंद के खर्च के लिए पांच सौ रुपए वार्षिक लगाए गए। हरि चंद की दस वर्ष बाद मृत्यु हो गई। हरि चंद का विवाह बलसन के राणा की पुत्री से हुआ था जिसके कई बच्चे थे।

हरि चंद के समय राजा की वार्षिक आय 3500 रुपए थी। क्षेत्रफल 10 वर्गमील तथा जनसंख्या तीन हजार।

मधान

मधान पर गोरखों तथा अंग्रेजों का अधिकार तथा क्योंथल की अधीनगी ठियोग की भांति हुई। कहा जाता है कि इसमें 27 शासक हुए। मियां गोवर्धन सिंह ने निम्नलिखित नाम दिए हैं :

धर्म चंद
नकुल चंद (मृत्यु 1839)
संसार चंद (1839-1868)
बिशन चंद (1868-1905)
रणधीर चंद (1905)
देवेंद्र चंद (जन्म 1935)
नरेंद्र सिंह

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

- ठाकुर धर्म चंद
  - ठाकुर नकुल चंद (मृत्यु 1839)
    - ठाकुर संसार चंद (मृत्यु 1868)
      - ठाकुर बिशन चंद (जन्म 1842)
        - खड्ग चंद (जन्म 1879)
        - रणधीर सिंह (जन्म 1887)
        - एक लड़का (जन्म 1889)
      - रामसरण (जन्म 1844)
  - भीम चंद
  - दिलजू
  - खिरधू (मृत्यु 1823)
    - सांवल दास
  - चेल सिंह (मृत्यु 1857)
    - गोपाल सिंह (जन्म 1831)
    - रघुनाथ सिंह (जन्म 1847)
    - देवी सिंह (जन्म 1855)

कर्नल मैसी ने लिखा है कि ठाकुर साहब (बिशन चंद) एक हजार आदमियों से ज्यादा पर शासन करते हैं जो उन छह गांवों में आबाद हैं जो शिमला और कोटगुरु की सड़क के उत्तर की तरफ फागू और मत्याणा के बीच स्थित हैं। इनके इलाकों का क्षेत्रफल तीन वर्गमील है और आय सात सौ रुपए है जिसमें से एक-तिहाई क्योंथल के राजा खराज में लेते हैं। मैसी ने लिखा है कि ठाकुर बिशन सिंह घोड़ों के शौक में बहुत ही कर्जदार हो गए हैं।

15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल के गठन पर मधान को ठियोग तहसील में मिलाया गया।

घूंड

घूंड की स्थापना तीसरे भाई जनजान सिंह ने की। इस ठकुराई में 18 ठाकुर हुए। गोरखा तथा अंग्रेजों के अधीन होने पर इसे क्योंथल की करद रखा गया।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

रामदास
(मृत्यु 1866)
|
भजनू
(मृत्यु 1860)
|
किशन सिंह
(जन्म 1858)
|
दो वर्ष का लड़का जिसका अभी नाम नहीं रखा।

किशन सिंह की 1907 में मृत्यु के समय रणजीत सिंह बालक था। अतः राजकाज खनेटी का एक मैनेजर संभालता रहा। सन् 1909 में सरकार द्वारा रणजीत सिंह को अधिकार दिए गए।

घूंड का क्षेत्रफल 13 वर्गमील, आय 1000 रुपए वार्षिक तथा जनसंख्या लगभग 1000 थी। यह क्योंथल के राजा को 250 रुपए खराज देते थे।

थरोच

तौंस तथा शलती नदियों के बीच थरोच ठकुराई स्थित थी। परंपरा के अनुसार उलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण के समय कुछ राजपूत भागकर पहाड़ों की ओर आए। सिसोदिया वंश का एक राजपूत देवकरण सिरमौर की पहाड़ियों में आ बसा। कर्नल मैसी के अनुसार 24 पीढ़ियों के बाद सिरमौर के एक शासक ने थरोच का क्षेत्र उपहार में दिया। रूलिंग चीफ्ज की वंशावली में 61 राजाओं के नाम दिए हैं। अतः कर्नल मैसी के समय के ठाकुर किशन सिंह से 24 शासक पहले यह ठकुराई उपहार में मिली जो पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी की बात हो सकती है। गजेटियर के अनुसार किशन सिंह से लेकर राजा सूरत सिंह तक 24 पीढ़ियां हुईं।

यह ठकुराई सिरमौर के अधीन थी। गोरखों के सन् 1815 में वापस जाने पर अंग्रेज सरकार द्वारा तत्कालीन ठाकुर कर्म सिंह को ठाकुर माना। ठाकुर वृद्ध था अतः राजकाज भाई झोबू राम ने संभाला। सन् 1819 में कर्म सिंह की मृत्यु के बाद 31 जनवरी, 1819 में झोबू राम को शासक बनाया गया। झोबू राम प्रशासन ठीक नहीं चला पाया अतः 1838 में उसे गद्दी से हटाकर झोबू राम के लड़के श्याम सिंह को शासक बनाया। किंतु पूर्व ठाकुर कर्म सिंह के पुत्र रणजीत सिंह ने गद्दी के लिए दावा पेश किया। पांच वर्ष बाद निर्णय के अनुसार 27 जून, 1843 को सनद द्वारा रणजीत सिंह को मान्यता दी गई। सन् 1877 में रणजीत सिंह की मृत्यु हुई।

सन् 1841 में ही अंग्रेजों ने थरोच ठकुराई को जुब्बल में मिला दिया।

रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पौत्र केदार सिंह (1877-1903) ठाकुर बना। सन् 1883 में केदार सिंह को पूरे अधिकार दिए गए। इसके बाद सूरत सिंह (1902-1948) उत्तराधिकारी बना जिसे सन् 1929 में राणा की उपाधि दी गई।

हिमाचल के गठन पर इसे महासू जिले की चौपाल तहसील में मिलाया गया।

थरोच ठकुराई का क्षेत्रफल 75 वर्गमील, वार्षिक आय 6000 रुपए थी जिसमें 288 रुपए अंग्रेज सरकार को खिराज जाता था।

हुआ तो लॉरेंस ने बराबर-बराबर बंटवारा किया। सन् 1873 में मैकनैब ने ढाडी को सीधा अंग्रेज सरकार के अधीन कर दिया। सन् 1896 में रावींगढ़ तथा ढाडी को जुब्बल के अधीन कर दिया गया।

ढाडी के वनों को अंग्रेजों ने संयुक्त प्रांत को कटान तथा सप्लाई के लिए दिया अतः इससे ढाडी को 1600 रुपए तथा बाद में 4800 रुपए आय हुई।

ढाडी में ठाकुर केहर सिंह, बद्री सिंह, वीर सिंह (मृत्यु 1907), धर्म सिंह (1907-1948) के नाम मिलते हैं।

हिमाचल प्रदेश के गठन पर इसे महासू जिले की जुब्बल तहसील में मिलाया गया।

शांगरी

शांगरी ठकुराई सतलुज के बाएं किनारे कोटगुरु के ऊपर, कुम्हारसेन के निकट स्थित थी, यह रियासत कुल्लू का एक भाग थी अतः लाहौर दरबार के अधीन रही। कुल्लू के राजा मान सिंह ने शांगरी पर अधिकार किया और ठाकुर को जागीर देकर इसे कुल्लू में मिला लिया। कुल्लू द्वारा यहां अपने सैनिक तैनात किए गए। गोरखों के शासन के समय वे कुल्लू से कर लेते रहे।

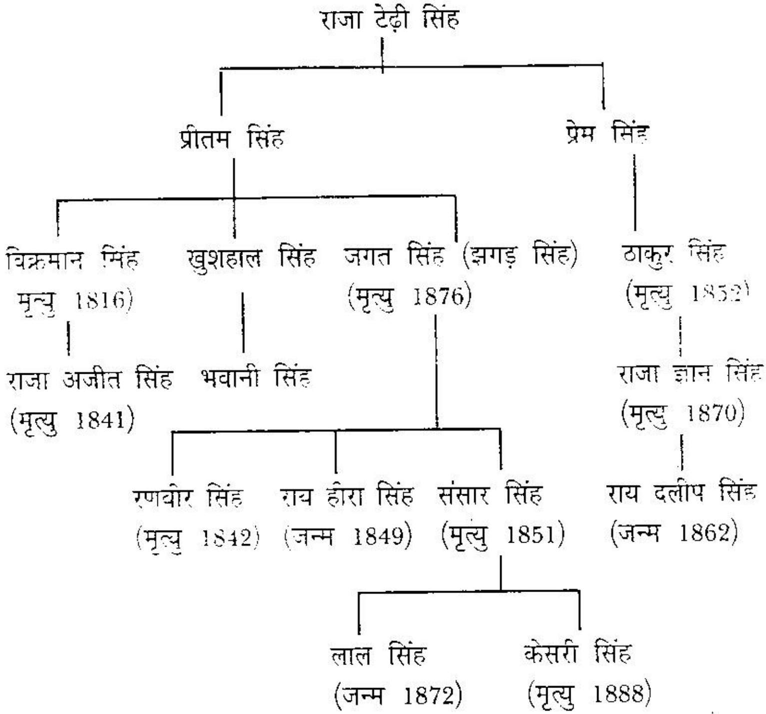
सन् 1815 में गोरखों के जाने के बाद यह अंग्रेजों के अधीन हो गई। सरकार ने 16 दिसंबर, 1815 को यह कुल्लू के राजा विक्रमजीत सिंह (1806-1816) को लौटाई। विक्रमजीत के बाद दूसरी रानी का पुत्र अजीत सिंह कुल्लू का राजा बना।

सन् 1839 में जब जनरल वैंचूरा के नेतृत्व में सिखों ने कुल्लू पर कब्जा किया तो अजीत सिंह भागकर शांगरी आ गया जहां सन् 1841 में उसकी मृत्यु हो गई। अजीत सिंह के बाद उसका चाचा जगत सिंह उत्तराधिकारी था किंतु वह अल्पबुद्धि था अतः उसके पुत्र रणवीर सिंह को उत्तराधिकारी बनाया गया। जब रणवीर लाहौर दरबार जा रहा था तो रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई। उधर कुल्लू में सिखों ने ठाकुर सिंह को रूपी वजीरी दी तो इधर अंग्रेजों ने पुनः जगत सिंह को ही उत्तराधिकारी बनाया। जगत सिंह, जो कमजोर और मंदबुद्धि था, के दो पुत्र हुए—हीरा सिंह और संसार चंद।

सन् 1876 में जगत सिंह की मृत्यु पर हीरा सिंह उत्तराधिकारी बना और 1887 में अंग्रेज सरकार ने उसे राय की उपाधि दी। सन् 1927 में 80 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। सन् 1927 में रघुवीर सिंह शांगरी का ठाकुर बना। सन् 1930 में इसे पूरे अधिकार दिए गए।

शांगरी का क्षेत्रफल 16 वर्गमील था। आय कुल 1000 रुपए थी अतः इस ठकुराई से कर नहीं लिया जाता था।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

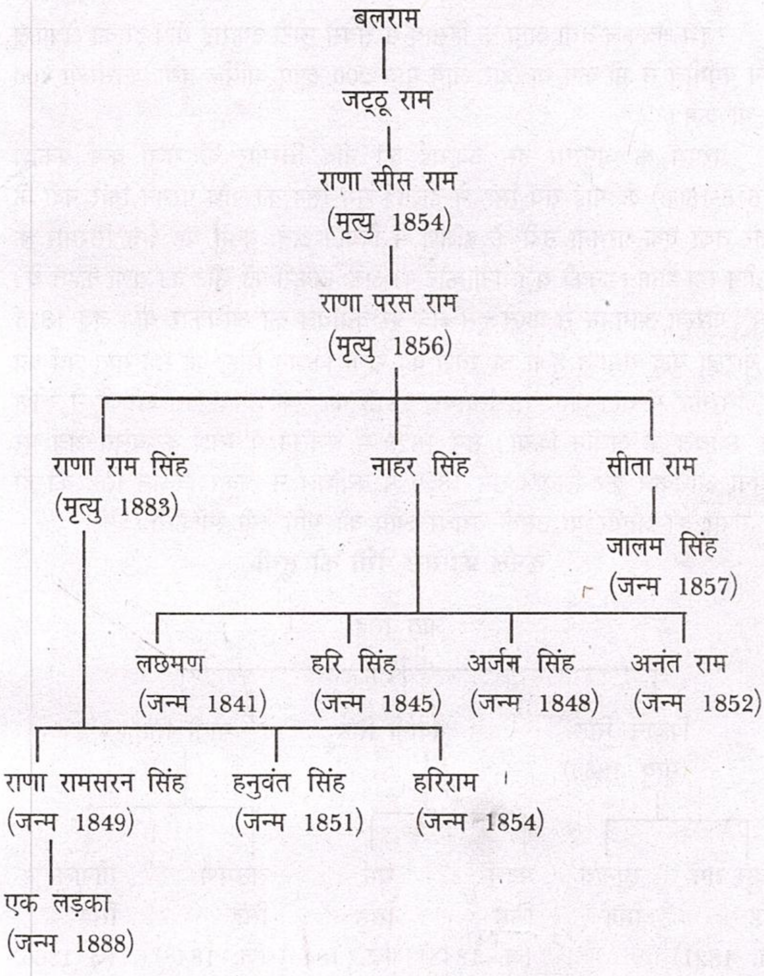


दरकोटी

यह बहुत छोटी रियासत थी जो गिरि नदी के भीतरी भाग में स्थित थी। परंपरा के अनुसार इस ठकुराई की स्थापना मारवाड़ के दुर्गा सिंह ने की। इस ठकुराई में 26 ठाकुरों के नाम मिलते हैं।

यह ठकुराई मात्र चार वर्गमील की थी। वार्षिक आय 600 रुपए मात्र होने से कोई खिराज नहीं लिया जाता था।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची



राणा रामसरन सिंह को सन् 1884 में रियासत के हक हासिल हुए। रामसरन सिंह के बाद 1968 में रघुनाथ सिंह उत्तराधिकारी बना और उसके बाद शिव सिंह।

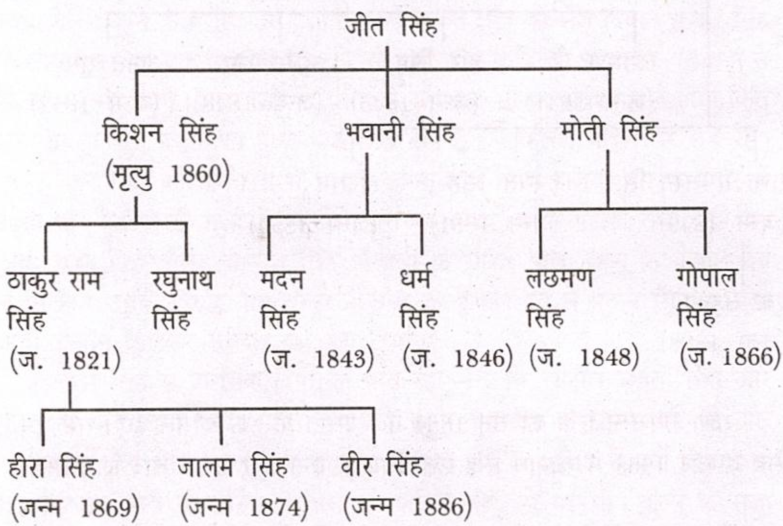
रतेश

रतेश क्षेत्रफल तथा आय के हिसाब से सबसे छोटी ठकुराई थी। इसका क्षेत्रफल तीन वर्गमील से भी कम था और आय मात्र 200 रुपए वार्षिक तथा जनसंख्या 400 से भी कम।

परंपरा के अनुसार इस ठकुराई की नींव सिरमौर के राजा कर्म प्रकाश (1616-1660) के भाई राय सिंह ने डाली। राय सिंह को पांच परगने गिरि नदी के उत्तर तथा एक परगना नदी के दक्षिण में दिया। अतः कभी यह क्षेत्र सिरमौर के अधीन रहा होगा। इनकी राजधानी कोट थी अतः ठाकुरों को कोट का राणा कहते थे।

गोरखा आगमन से पहले इस क्षेत्र पर क्योंथल का अधिकार था। जब 1815 में गोरखा युद्ध समाप्त हुआ तो रतेश का राणा किशन सिंह, जो छह-सात वर्ष का था, सिरमौर में था। अतः 15 सितंबर, 1815 को एक सनद द्वारा अंग्रेजों ने रतेश को क्योंथल के अधीन किया। सन् 1820 में बलसन ने रतेश के बलग क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। सन् 1829 में क्योंथल ने ठाकुर किशन सिंह को दो सौ रुपए की जागीर या उसके बराबर आय की भूमि देनी स्वीकारी।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची



किशन सिंह की सन् 1860 में मृत्यु के बाद राम सिंह (1860-1890) उत्तराधिकारी बना। इसके बाद हीरा सिंह (1890-1925)। हीरा सिंह के बाद 1925 में शमशेर सिंह गद्दी पर बैठा जिसे 1929 में प्रशासन का अधिकार मिला।

बारह ठकुराइयां

क्योंथल

परंपरा के अनुसार क्योंथल की स्थापना सुकेत के संस्थापक वीर सेन के भाई गिरि सेन ने की। अतः यह माना जाता है कि क्योंथल की स्थापना सुकेत के समय ही हुई। क्योंथल ठकुराई सिरमौर, ठियोग, बलसन तथा कोटी के बीच स्थित थी। मान्यता है कि शहाबुद्दीन के बंगाल आक्रमण के बाद सूरत सेन या सूर्य सेन सन् 1203 में इलाहाबाद आया। इलाहाबाद-प्रयाग से उसका पुत्र रूपसेन रोपड़ आया। रोपड़ तक मुसलमानों ने उसका पीछा किया और वह मारा गया। रूप सेन के बड़े पुत्र वीर सेन ने पांगणा में राज्य स्थापित किया जो बाद में सुकेत बना। छोटा भाई गिरि सेन अश्विनी नदी के दाएं तट पर आ बसा।

सुकेत की नींव कनिंघम के अनुसार 765 ई. में पड़ी। अतः क्योंथल की स्थापना भी उसी समय होनी चाहिए। शशिवंश विनोद में उल्लेख है :

'पहले बाघल जीते कुनिहार ठकुराई।
बेजा, धामी मार कर क्योंथल पाई देई।'

इसके अनुसार कहलूर की स्थापना (900 ई.) के समय क्योंथल भी अस्तित्व में आ चुका था।

एक परंपरा यह भी है कि क्योंथल पर अधिकार जमाने के लिए सिरमौर तथा हिंडूर बार-बार हमला करते रहते थे। इसी समय एक राजपूत रोपड़ आया जहां उसने किला बनाया। इस राजपूत की प्रसिद्धि सुनकर क्योंथल के कुछ मोहतबर आदमी रोपड़ गए और उस राजकुमार से सहायता मांगी। उसने अपना छोटा भाई उनके साथ भेजा। उसने वहां जमी सिरमौर की सेना को भगाया। लोगों ने उसे वहां से वापस नहीं आने दिया। एक राजपूत ने कांटे की नोक से उंगली से रक्त निकाल उसे राजतिलक कर दिया, अतः वह वहीं रुक गया। उसका नाम केशव सेन था। इसी के नाम पर क्योंथल बना।

अतः ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में क्योंथल राजवंश, स्थापना या महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विशेष पता नहीं चलता। क्योंथल की राजधानी पहले कोटी थी। सिरमौर के आक्रमण के कारण राजधानी जुनगा बदली गई।

क्योंथल का क्षेत्रफल लगभग 100 वर्गमील, जनसंख्या 30,000 से कुछ ऊपर और आमदनी 40,000 रुपए थी। ठियोग, कोटी, घूंड, मधान और रतेश आदि छोटी-छोटी रियासतें क्योंथल के अधीन थीं।

वंशावली

क्योंथल के शासकों की सूची

1. गिरि सेन या तान सेन
2. मत सेन
3. किटो सेन
4. खेल सेन
5. वीर सेन
6. कर्ण सेन
7. मध सेन
8. धर्म सेन
9. धर्त सेन
10. मत सेन
11. सत सेन
12. तीर्थ सेन
13. किरत सेन
14. चतर सेन
15. सूख सेन
16. नीत सेन
17. भीम सेन
18. कर्म सेन
19. राम सेन
20. सूरत सेन
21. प्रताप सेन
22. दलीप सेन
23. विश्न सेन
24. मान सेन
25. रूप सेन
26. उबद सेन
27. कौल सेन
28. मेहर सेन
29. धीर सेन
30. वीर सेन
31. धर्म सेन
32. कनटक सेन
33. मूरत सेन
34. भीम सेन
35. रत्न सेन
36. --
37. गौर सेन
38. रूप सेन
39. मोहन सेन
40. सेवक सेन
41. प्रताप सेन
42. हर सेन
43. जय सेन
44. तखत सेन
45. दफूर सेन
46. सिद्ध सेन
47. नरपत सेन
48. विकार सेन
49. उदर सेन
50. तनक सेन
51. लछमी सेन
52. चंदा सेन
53. मान चंद
54. मोहिंद्र सेन
55. प्रेम सेन
56. रत्न सेन
57. हुकम सेन
58. हक्र सेन
59. पीत्र सेन
60. दिलावर सेन
61. उग्र सेन

क्योंथल बारह ठकुराइयों में सबसे बड़ी थी। किंतु सिरमौर, बुशहर, कहलूर का इस पर खतरा बना रहता था।

सर्वप्रथम मुसलमानों में फिरोजशाह तुगलक ने 1379 ई. में सिरमौर तथा क्योंथल को अपने अधीन किया।

क्योंथल के इतिहास का कुछ 'हारों' या युद्ध गाथाओं से पता चलता है। 'देशू री हार' के अनुसार सिरमौर के राजा महीप्रकाश ने क्योंथल के राजा अनूप सेन की पुत्री का हाथ मांगा जिसके लिए राजा ने इनकार कर दिया। अतः सिरमौर के राजा ने आक्रमण कर दिया। मही प्रकाश हार गया। यह लड़ाई देशू की धार पर हुई। मही प्रकाश ने गुलेर के राजा की सहायता ली और अनूप सेन को हरा दिया। एक दूसरी गाथा 'मदना' में अनूप सेन की कहलूर के राजा भीम चंद (1672-1692) से लड़ाई का वर्णन है। क्योंथल की ओर से मदना नाम का एक योद्धा भेजा गया था जो लड़ाई में मारा गया। उसका चाचा बच गया जो क्योंथल लौटा।

जनगणना रिपोर्ट 1961 में उल्लेख है कि एक बार राणा ने अपना वजीर निकाल दिया। उसने हिंडूर के राजा से मिलकर क्योंथल पर हमला करवा दिया। महलों को आग लगा दी गई किंतु राणा बच निकला। अगले दिन राणा ने सेना एकत्र कर हिंडूर को हराया। इसके बाद राणा द्वारा नए महल बनाए गए जो इस समय जीर्ण-शीर्ण हैं।

पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि राणा पृथी सेन के समय कुम्हार सेन के राणा ने बलसन को अपने अधीन कर लिया। पृथ्वी सेन ने कुम्हार सेन पर आक्रमण किया और हार हुई। बाद में दोनों में संधि हुई और बीनू बावली में राज्य की सीमा निर्धारित की गई।

क्योंथल मुसलमानों को हजार रुपए वार्षिक कर देता था। यह कर कहलूर, सिरमौर या हिंडूर के माध्यम से दिया जाता रहा।

पंजाब स्टेट गजेटियर के अनुसार क्योंथल के अधीन अट्ठारह ठकुराइयां थीं। इनके नाम थे—कोटी, घूंड, ठियोग, मधान, महलोग, कुठाड़, कुनिहार, धामी, थरोच, सांगरी, कुम्हार सेन, रजाणा, खनेटी, मैली, खलासी, बागड़ी, डीगयाली,, घाट। यद्यपि यह सूची बढ़ा-चढ़ाकर दी गई है। सन् 1809 में जब महाराजा रणजीत सिंह ने गोरखे सतलुज के पार भगाए तो गोरखों ने क्योंथल पर भी अधिकार कर लिया। राणा रघुनाथ सेन सुकेत भाग गया। राणा की वहीं मृत्यु हो गई। इन दिनों जो ठकुराइयां अधीन थीं, स्वतंत्र हो गईं। रघुनाथ सेन के प्रवास के बाद संसार सेन का जन्म भी सुंदरनगर में हुआ।

सन् 1815 में अंग्रेजों द्वारा गोरखों की हार के बाद क्योंथल का राणा संसार

चंद, जो सुंदरनगर में था, वापस लौट आया और उसे अंग्रेजों द्वारा 6 सितंबर, 1815 को राज्य वापस लौटाया गया, क्योंकि गोरखा युद्ध में खर्च के लिए राणा कुछ नहीं दे पाया था। अतः सरकार ने आठ परगने अपने पास रख लिए और बघाट के कुछ इलाके सहित राजा पटियाला को दो लाख अस्सी हजार रुपए नजराने पर दिए गए। 11 सितंबर, 1815 की सनद द्वारा ठियोग, घूंड, मधान और कोटी की ठकुराइयां भी क्योंथल को दी गईं। 5 अप्रैल, 1823 को पुंदर का परगना भी क्योंथल को दिया गया।

सरकार ने क्योंथल पर कोई खिराज नहीं लगाया। राणा को प्रजा की भलाई के लिए कार्य करने को कहा।

शिमला में ग्रीष्म राजधानी

सन् 1819 में पहाड़ी रियासतों के असिस्टेंट पॉलिटिकल एजेंट कैप्टन रॉस ने शिमला में पहला कॉटेज बनाया। सन् 1822 में उत्तराधिकारी कैप्टन केनेडी ने पहला मकान यहीं बनाया। सन् 1824 में कुछ अंग्रेजों ने क्योंथल के राणा से इजाजत लेकर कुछ मकान बनाए क्योंकि यह जमीन क्योंथल की थी। सन् 1827 में गवर्नर जनरल लॉर्ड एमरस्ट का आगमन हुआ और ग्रीष्मकाल राजधानी बनाने का विचार आया। सन् 1830 में क्योंथल तथा पटियाला से जमीन लेकर शिमला स्टेशन आबाद किया गया। क्योंथल से बारह गांव, जिनकी मालगुजारी 937 रुपए थी, लिए और इसके बदले परगना रावीं, जिसकी वार्षिक मालगुजारी 1289 रुपए थी और जो अंग्रेजों ने अपने पास रखा था, दिया गया।

सन् 1840 में भूमि का बंदोबस्त हुआ जिससे आय 28,403 रुपए हो गई। राणा ने भोला वजीर के स्थान पर उसके पुत्र गयारू को वजीर बनाया जो धोखेबाज व्यक्ति था और पॉलिटिकल एजेंट सर जॉर्ज रस्सल क्लार्क को यह व्यक्ति ठीक नहीं लगा क्योंकि वह पॉलिटिकल एजेंट के कार्यालय में चपरासी था किंतु इस काम में हस्तक्षेप नहीं किया गया।

सन् 1857 की क्रांति में राणा ने अंग्रेजों का साथ दिया। गोरखा रेजीमेंट के विद्रोही होने पर अंग्रेज क्योंथल के राणा की शरण में गए जहां उनकी अच्छी मेहमाननवाजी की गई। अतः सरकार ने राणा को 24 जुलाई, 1855 को राजा की उपाधि दी और एक हजार रुपए खिल्लत प्रदान की गई।

सन् 1862 में संसार सेन की मृत्यु पर महेंद्र सेन उत्तराधिकारी बना। महेंद्र सेन ने रियासत के ऋण समाप्त किए। सन् 1882 में महेंद्र सेन की मृत्यु हो गई।

महेंद्र सेन के बाद बलवीर सेन ने गद्दी संभाली। रियासत में असंतोष के कारण

वहां मैनेजर नियुक्त किया गया। सन् 1901 में भू-बंदोबस्त हुआ।

सन् 1901 में बलवीर सेन की मृत्यु के बाद विजय सेन उत्तराधिकारी बना। सन् 1911 के दिल्ली दरबार में विजय सेन को भी बुलाया गया। इसके काल में पुनः भू-बंदोबस्त हुआ। सन् 1916 में राजा की मृत्यु हो गई।

विजय सेन के बाद 1916 में हमेंद्र सेन उत्तराधिकारी बना जिसे 1926 में पूर्ण अधिकार मिले। इस राजा ने कई सुधार किए जिनमें दास प्रथा, बेगार प्रथा का उन्मूलन, पुलिस का आधुनिकीकरण, स्वास्थ्य, शिक्षा संबंधी कार्य सम्मिलित हैं। वनों के प्रबंध में सुधार हुआ, टेलीफोन सुविधा उपलब्ध कराई।

हमेंद्र सेन के बाद हितेंद्र सेन राजा बना।

क्योंथल रियासत हिमाचल प्रदेश के गठन पर महासू जिले में मिलाई गई।

हितेंद्र सेन (13.9.1925—13.12.2002) प्रदेश विधान 1952 में स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में सदस्य रहे। टिक्का जोगेंद्र सेन का युवावस्था में ही निधन हो गया। कंवर अरुण सेन को कुठाड़ में दत्तक पुत्र अपना लिया अतः दूसरी रानी से वीरविक्रम सेन दिसंबर, 2002 में उत्तराधिकारी हुए।

बाघल

सतलुज की सहायक नदी गंभर की घाटी में इस ठकुराई का क्षेत्र था। परंपरा के अनुसार इस ठकुराई की स्थापना धारा नगरी के परमारवंशीय अजय देव ने तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में की। अजय देव अपने दो भाइयों विजय देव और मदन देव के साथ बद्रीनाथ और ज्वालामुखी की यात्रा पर आए। उस समय इस क्षेत्र में प्रजा छोटे-छोटे सामंतों से दुखी थी। अतः अजय देव ने बाघल, दूसरे भाई ने बघाट पर अधिकार किया। तीसरे भाई ने सिरमौर के मध्य किसी गांव पर कब्जा किया किंतु वह किसी लड़ाई में मारा गया। सन् 1305 में अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा पर आक्रमण किया। मालवा का राजा महलक देव, मंत्री गोगा हार गए। मांडू किले के बाद उज्जयिनी, धारा तथा चंदेरी भी जीत लिए गए। अतः संभव है, धारा नगरी के राजकुमार इस ओर भाग आए हों।

एक कथा यह भी है कि एक गूंगा राणा मुसलमानों के भय से बाघल की घाटियों में छिपता फिर रहा था। गूंगा राणा की याद में बणिया देवी (अर्की), शिव मंदिर (मुटलू) बने। महलों के अवशेष डुगली तथा घोघर में मिलते हैं। कहा जाता है, जब कहलूर के राजा ने बाघल पर हमला किया तो उसकी जुबान खुली। वह धार्मिक व्यक्ति था जिसने कई मंदिर तथा बावड़ियां बनवाईं। डुगली और घोघर की राजधानी धुंधन बनाई गई। धुंधन में कई पीढ़ियों तक राजधानी रही। यह भी माना

जाता है कि अजय देव ने पहले डमरास राजधानी बनाई। गूंगा राणा अजय देव ही था। उसके पुत्र नंद देव ने दाड़ला व धुंधन राजधानी बनाई।

बाघल की ठकुराई कहलूर, हिंडूर या सिरमौर के अधीन रही। मुसलमान काल में बाघल भी मुस्लिम साम्राज्य के अधीन रहा और इन्हीं राज्यों के द्वारा कर देता रहा। बाघल की ओर से एक हजार रुपए कर और आवश्यकता पर तीन सौ सैनिक, तीन सौ बगारी दिए जाते थे।

बाघल की सीमाएं काली सेरी (बिलासपुर) से जतोग (शिमला) और कुनिहार से मांगल तक फैली हुई थीं।

अजय देव बाघल कब आया, यह निश्चित नहीं है। संभवतः वह सन् 1300 के प्रारंभ में यहां आया।

वंशावली

रूलिंग चीफ्स से प्राप्त सूची	राजा राजेंद्र सिंह से प्राप्त सूची	अमर देव 'आंगिरस' से प्राप्त सूची
1. अजय देव	अजय देव (1310-40)	सत रंग देव
2. नून देव	नंद देव	भूपाल देव
3. तारा देव	नर देव	अमर देव
4. सीरा देव	श्री देव	जय देव
5. जवाहर देव	जवाहर देव	कर्श चंद
6. धनशेशर चंद	कमास चंद	कुल चंद
7. कुल चंद	कुल चंद	अमर चंद
8. कलोनी चंद	कौल चंद	गज चंद
	स्वच्छंद चंद	
	गालम चंद	
9. आलम चंद	आलम चंद	स्वधल चंद
10. जब्बर चंद	जब्बर चंद	श्याम चंद
11. भोपाल चंद	भोपाल चंद	धीर चंद
12. पींदा चंद	मुक्तपाल चंद	गंभीर चंद
	समुद्र चंद	
13. धीर चंद	धीर चंद	भून पालचंद
	गंभीर चंद	
14. जय चंद	जय चंद	मुगताल चंद

15. उदय चंद	उदय चंद	हरि चंद
16. तिलोक चंद	त्रिलोक चंद	स्वधाग
17. हरि चंद	हरि चंद	भूमद चंद
18. झंग चंद	छंग चंद	जालम चंद
19. इंद्र	इंद्र चंद	उदय चंद
20. हरपाल	हरिपाल चंद	हरिपाल चंद
21. हंसराम	हंसराम चंद	हल चंद
22. अभीचंद	अभय चंद	अभय चंद
23. प्रताप चंद	प्रताप चंद	प्रताप चंद
24. नवरंग चंद	नवरंग चंद	नंद चंद
25. सैन चंद	सभा चंद (1640-1670)	सभा चंद
26. पृथी चंद	पृथी चंद (1670-1727)	पृथ्वी चंद
27. मुरली चंद	मेहर चंद (1727-1743)	मेहर चंद
28. भूप चंद	भूप चंद (1743-1778)	भूप चंद
29. जगत सिंह	जगत सिंह (1778-1828)	जगत चंद
30. शिव सरन सिंह	शिव सरन सिंह (1828-1840)	शिव सरन सिंह
31. किशन सिंह	किशन सिंह (1840-1876)	कृष्ण सिंह
32. मोती सिंह	मोती सिंह (1876-1877)	
33.	ध्यान सिंह (1877-1904)	ध्यान सिंह
34.	विक्रम सिंह (1904-1922)	विक्रम सिंह
35.	सुरेंद्र सिंह (1922-1944)	सुरेंद्र सिंह
36.	राजेंद्र सिंह (1944-)	राजेंद्र सिंह

शोभा चंद (1640-1670)

शोभा चंद ने सन् 1643 में अर्की नगर बसाया और राजधानी बनाया। यहां सुंदर महल बनाए और यहां पहाड़ी कलम के चित्र बनवाए।

पृथी चंद (1670-1727)

मेहर चंद (1727-1743)

भूप चंद (1743-1778)

जगत सिंह (1778-1828)

इस राणा के साथ 'चंद' के स्थान पर 'सिंह' लगाया गया।

जगत सिंह के समय महाराजा संसार चंद ने (1795) कहलूर पर चढ़ाई की

जिसमें सिरमौर का राजा धर्म प्रकाश मारा गया। हिंडूर का राजा रामसरन सिंह (1788-1848) भी महत्त्वाकांक्षी था और उसने कांगड़ा का साथ दिया। अंत में कहलूर ने गोरखों को आमंत्रण दिया। गोरखों ने हिंडूर पर भी अधिकार कर लिया और हिंडूर के अधीन ठकुराइयां, जिनमें बाधल भी थी, गोरखों के अधीन हो गई। हिंडूर का राजा रामसरन सिंह नालागढ़ छोड़ पलासी चला गया। बाघल का राणा जगत सिंह भी बाघल छोड़ मढ़गांव और बाद में राजा राम सरन सिंह के साथ नालागढ़ रहने लगा।

गोरखों ने बाघल पर अधिकार कर अर्की राजधानी बनाई जहां किले बनाकर दो हजार सैनिक रखे। गोरखों का सेनानायक अमर सिंह थापा भी वहीं रहता था। बाघल से गोरखे 23,247 रुपए कर वसूलते थे। राणा जगत सिंह नालागढ़ में सात वर्ष तक रहा।

नवंबर, 1814 में अंग्रेजों ने गोरखों के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा की जिसमें राजा-राणाओं को उनके राज्य लौटाने की शर्त पर सहायता के लिए आमंत्रित किया। मेजर जनरल डेविड ऑक्टर लूनी रोपड़ के रास्ते हिंडूर आ पहुंचा जहां राजा रामसरन सिंह तथा बाघल के राणा ने उसे पूरा सहयोग दिया। अमर सिंह थापा अर्की से रामशहर गया जहां लड़ाई में गोरखे पराजित हुए।

गोरखों की पराजय के बाद अंग्रेजों ने राणाओं को राज्य लौटाए। अतः बाघल के राणा को भी 3 सितंबर, 1815 को एक सनद देकर ठकुराई लौटाई गई। राणा पर लड़ाई के समय सैनिक सहायता, बेगार की शर्त रखी गई। बाद में बेगार की शर्त हटाकर 3500 रुपए कर लगाया गया।

शिवसरन सिंह (1828-1840)

शिवसरन सिंह के समय राजा संसार चंद के पुत्र अनिरुद्ध चंद ने सन् 1829 में महाराजा रणजीत सिंह द्वारा दो बहनों का हाथ अपने वजीर ध्यान सिंह के पुत्र हीरा सिंह के लिए मांगने के विरोध में अर्की के लिए पलायन किया। अनिरुद्ध चंद अपने राज्य को छोड़ कुल की मर्यादा बचाने के लिए अर्की आया, जहां से वह बहनों सहित हरिद्वार चला गया।

अनिरुद्ध चंद के साथ कुछ चित्रकार भी अवश्य आए होंगे या राजकुमार ने कुछ चित्र यहां भेंट दिए होंगे जैसे हरिद्वार में टिहरी के राजा को दिए गए जब अपनी बहनों का विवाह वहां के राजा से किया।

राणा शिवसरन ने मंदिर बनवाए। दीवानखाना बनवाया और ब्राह्मणों को दान दिया।

किशन सिंह (1840-1876)

किशन सिंह वास्तुकला प्रेमी था। उसने अर्की का महल बड़ा किया। नगर को सुनियोजित किया। महल में चित्रकारी करवाई गई। नगर में बंजर भूमि को बिलासपुर तथा कांगड़ा से किसान बुलाकर काश्तकारी करवाई।

सन् 1857 की क्रांति के समय राणा ने अंग्रेजों की सहायता की। राणा ने मियां जय सिंह को शिमला भेजा। स्वयं राणा क्योंथल, धामी, कोटी और जुब्बल के आदमियों के साथ तैयार रहा। नालागढ़ में विद्रोह होने पर डिप्टी कमिश्नर विलियम हे ने बाघल के मियां जय सिंह को भेजा। राणा को इसके लिए सन् 1875 में पीढ़ी दर पीढ़ी राजा की उपाधि दी गई।

बाघल की परंपरा के अनुसार राणा का छोटा भाई जय सिंह वजीर बना जो एक कुशल व्यक्ति था। कुछ लोगों द्वारा शिकायत पर उसे हटाकर मियां राम सिंह को वजीर बनाया गया। इसके बाद मियां जय सिंह के पुत्र ध्यान सिंह को वजीर बनाया गया।

किशन सिंह के समय पौबर के इलाके में विद्रोह हुआ। यह विद्रोह सरली क्षेत्र के लोगों की भूमि वहां से दयालों को देने के कारण हुआ। उन्होंने मालगुजारी देनी बंद कर दी। राजकर्मचारियों के साथ मारपीट हुई। राणा ने मालगुजारी बढ़ाकर दंड दिया और आठ हजार जुर्माना किया। अंततः विद्रोह समाप्त हुआ।

मोती सिंह (1876-1877)
ध्यान सिंह (1877-1904)

मोती सिंह नाबालिग था और चार महीने बाद ही इसकी मृत्यु हो गई। मोती सिंह के संतान नहीं थी अतः पूर्व राणा किशन सिंह का छोटा भाई और जय सिंह का पुत्र ध्यान सिंह, जो वजीर था, राज्य के दावेदार थे। सरकार ने ध्यान सिंह को उत्तराधिकारी घोषित किया।

परंपरा के अनुसार राणा का छोटा भाई मान सिंह वजीर बना। कर्नल मैसी ने लिखा है कि ध्यान सिंह एक रोशन दिमाग शासक था जिससे प्रजा खुश थी।

उस समय रियासत का क्षेत्रफल 120 वर्गमील, जनसंख्या 20,000 और वार्षिक आय साठ हजार रुपए थी।

ध्यान सिंह के समय से राज्य के आदेशों में लिखा-पढ़ी होने लगी। पहले ये मौखिक हुआ करते थे। कोर्ट फीस, नॉन जुडीशियल स्टाम्प आरंभ हुए। खजाने की आय-व्यय का लेखा-जोखा रखा जाने लगा। रियासत में सौ सिपाहियों के स्थान पर पच्चीस रखे गए। राज्य को चार तहसीलों में बांटा गया।

सन् 1897 में एक व्यक्ति किशन दास के लोगों को उकसाने पर विद्रोह हुआ। यह विद्रोह मालगुजारी बढ़ाने, जंगली सूअरों को मारने पर पाबंदी आदि के कारण हुआ। सुपरिंटेंडेंट हिल स्टेट्स ने 1902 में विद्रोहियों को पकड़ राणा के हवाले किया।

विक्रम सिंह (1904-1922)

ध्यान सिंह की मृत्यु के समय विक्रम सिंह अवयस्क था अतः राजकाज का कार्य वजीर मान सिंह करता रहा। सन् 1905 में कनैत लोगों ने वजीर तथा उसके भाइयों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस कारण सरकार द्वारा कांगड़ा के एक नायब तहसीलदार मियां शेर सिंह को वजीर की सहायता के लिए मैनेजर बनाया जिससे स्थिति सुधर गई।

मियां शेर सिंह ने भू-बंदोबस्त कराया। सन् 1909 में वजीर मान सिंह तथा शेर सिंह की जगह राय साहब हाकिम सिंह को मैनेजर बनाया गया। सन् 1921 में राणा विक्रम सिंह को अधिकार दिए गए और हाकिम सिंह को वजीर बनाया गया।

सुरेंद्र सिंह (1922-1944)

विक्रम सिंह की मृत्यु के समय सुरेंद्र सिंह अवयस्क (13 वर्ष) था अतः राजकाज पं. वरत चंद को दिया गया। पं. वरत चंद ने सन् 1927 तक कार्य किया। सन् 1927 में लाला खान चंद को मैनेजर तैनात किया गया। जनवरी, 1932 में सुरेंद्र सिंह को राज्य के अधिकार सौंपे गए। घूंड ठकुराई के कुंवर शिव सिंह को सन् 1937 तक वजीर नियुक्त रखा गया।

15 अप्रैल, 1948 को यह ठकुराई हिमाचल प्रदेश में मिलाई गई।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

- जगत सिंह
  - राणा शिवसरन सिंह (मृत्यु 1840)
    - राजा किशन सिंह (मृत्यु 1876)
      - राजा मोती सिंह (मृत्यु 1877)
    - जय सिंह (मृत्यु 1873)
      - राजा ध्यान सिंह (ज. 1842)
      - कपूर सिंह (मृ. 1860)
      - मान सिंह (ज. 1854)
        - दुर्गा सिंह (जन्म 1880)
      - हीरा सिंह (ज. 1856)
      - नरेंद्र सिंह (ज. 1858)
      - उधम सिंह (ज. 1860)
        - बसंत सिंह (जन्म 1882)
        - प्रताप सिंह (जन्म 1885)
    - विजय सिंह
      - राम सिंह (1872)
        - शेर सिंह (जन्म 1865)
        - रणजोर सिंह (जन्म 1867)

बघाट

बघाट की स्थापना धारा नगरी से आए दो भाइयों अजय देव और विजय देव में से छोटे भाई विजय देव ने की। बाघल की स्थापना बड़े भाई अजय देव ने की। किंतु बाघल की भांति बघाट में भी 'देव' उपनाम नहीं लगा। यहां के शासक 'पाल' उपनाम के मिलते हैं। अतः यह भी मत है कि धारा नगरी के पंवारवंशीय बसंत पाल या हरिचंद पाल ने इस राजवंश की स्थापना की।

यद्यपि बाघल और बघाट की स्थापना की कथा एक है तथापि उपनाम के भेद के साथ शासकों की संख्या में भी अंतर है। बाघल में जहां 35 शासकों के नाम हैं, वहां बघाट में साठ, इकसठ, चौंसठ या पचहत्तर से ऊपर भी नाम मिलते हैं जो बाघल से दुगने हैं।

पंजाब स्टेट गजेटियर के अनुसार बसंत पाल ने धारा नगरी से आकर बसंतपुर में ठिकाना बनाया। यह स्थान सोलन से दस-बारह किलोमीटर दूर बस्सी नाम से है।

जिस समय बसंत पाल आया, यह क्षेत्र छोटे-छोटे ठाकुरों के अधीन था जिन्हें मावी कहते थे। बसंत पाल के बाद वक्ष पाल शासक बना जिसने भोचली, भरोली को जीता। भवानी पाल ने बछरंग और कसौली जीता। सोलहवीं पीढ़ी के शासक इंद्र पाल ने बासल, घर, टकसाल को जीतकर अपने अधिकार में लिया। पंजाब स्टेट गजेटियर के अनुसार इंद्र पाल ने राज्य का नाम बघाट रखा।

मुस्लिम काल में यहां कोई मुस्लिम आक्रमणकारी नहीं पहुंचा किंतु पहाड़ी जमींदार उनके प्रभुत्व से बचे नहीं रह सके। बघाट राज्य की सरहिंद के सूबेदार को सात सौ पचास रुपए कर देता था। सैनिक अभियान में छह सौ सशक्त सैनिक दिए जाते थे।

बघाट राज्य पिंजौर से अश्विनी और गंभर नदियों के बीच स्थित था। बारह घाट होने के कारण इसे बघाट कहते थे। सोलन से सपाटू और कसौली तक इसका क्षेत्र था। रियासत का क्षेत्रफल 60 वर्गमील, जनसंख्या 8000 थी, वार्षिक आय लगभग 10,000 रुपए।

वंशावली

पंजाब चीफ्स में प्रकाशित सूची से

1. हरि चंद पाल
2. बलभद्र पाल
3. बखोप पाल
4. उदय पाल
5. भोजपत्र पाल
6. रणवीर पाल
7. प्रीतम पाल
8. सोहन पाल
9. हरिकृष्ण पाल
10. महेंद्र पाल
11. इंद्र पाल
12. धर्म देव पाल
13. शाह देव पाल
14. गोवर्धन पाल
15. बलदेव पाल
16. बृज पाल
17. बसंत पाल
18. देव धर्म पाल
19. कृपाल पाल
20. रामसरन पाल
21. जगजीत पाल
22. गंधर्व पल
23. अमृत पाल
24. विक्रम दत्त पाल
25. सूरत सेन पाल
26. चंद्र सेन पाल
27. कयोनल पाल
28. कैलाश रत्न पाल
29. संसार देव
30. अमृत पाल
31. सोहन पाल
32. बसंत पाल
33. सोभा पाल
34. अंगत पाल
35. अभय पाल
36. --
37. किशंदा पाल
38. परीक्षित पाल
39. बलोप पाल
40. अंकर पाल
41. कौर सेन
42. सिंद सेन
43. दीप सेन
44. जगत सेन
45. रूप सेन
46. भीम सेन
47. अभी सेन
48. धिर्य सेन
49. वीर सेन
50. बीनी सेन
51. हसपत सेन
52. संत सेन
53. रत्न सेन
54. ब्रह्म सेन
55. हत सेन
56. अजब सेन
57. चतर सेन पाल
58. धर्म पाल
59. श्री चंद पाल
60. नारायण पाल (1586)

61. जन्मी पाल
62. कर्म पाल
63. सूरंग धर पाल
64. फतेह पाल
65. रघुनाथ पाल
66. दलील सिंह
67. महेंद्र सिंह
68. विजय सिंह
69. उमेद सिंह
70. दलीप सिंह

शिमला हिल स्टेट्स गजेटियर में दिए गए कुछ नाम

1. बसंत पाल
2. बकश पाल
3. भवानी पाल
4. इंद्र पाल
5. जन्मी पाल
6. सारंग पाल
7. फतह पाल
8. रघुनाथ पाल
9. दलील सिंह
10. महेंद्र सिंह (मृ. 1839)
11. विजय सिंह (मृ. 1849)
12. उमेद सिंह (मृ. 1861)
13. दलीप सिंह (1859-1911)
14. दुर्गा सिंह (1911)

नारायण पाल (1585) के समय राज्य में खुशहाली थी। पंजाब स्टेट गजेटियर के अनुसार जन्मी पाल को बादशाह ने दिल्ली बुलाया और खिल्लत दी। वापसी पर भवाना (कालका के पास) के राजा ने बदला लेने के लिए हमला कर दिया जिसमें राजा मारा गया और जन्मी पाल का इस क्षेत्र पर भी अधिकार हो गया।

पिंजौर के बारे में नूरपुर की भांति एक कथा प्रचलित है। जैसे नूरपुर में नूरजहां द्वारा महल बनाने की इच्छा पर राजा ने गिल्लड़ वाले मजदूर लगाए और बताया कि यहां रहने से सबको गिल्लड़ हो जाता है, वैसे बघाट के राणा ने उन मुगल राजपरिवारों की सेवा में गलगंड वाले लोग भेजे जो पिंजौर में गर्मियां बिताने आते थे। अतः इस रोग के भय से उन्होंने इधर आना छोड़ दिया।

सिख मिसलों के बनने पर सिंध पुरिया सरदार ने बघाट के घर और टकसाल क्षेत्र अपने अधीन कर लिए। कुछ समय बाद सारंगधर पाल ने सिखों को खदेड़ दिया।

रघुनाथ पाल के पश्चात् उसका पुत्र दलील सिंह राणा बना। इस राणा के नाम के साथ 'सिंह' लगने लगा। इस राणा के समय टकसाल एक बड़ा व्यापारिक केंद्र बना। इसी राणा के समय हिंडूर का हमला हुआ। धर्मपुर के पास हुई लड़ाई में राणा मारा गया।

राणा महेंद्र सिंह ने हिंडूर के राजा रामसरन सिंह द्वारा कहलूर को हराने और बिलासपुर नगर जलाने का लाभ उठाते हुए स्वयं को स्वतंत्र कर लिया।

बिलासपुर के राजा महान चंद ने कांगड़ा के विरुद्ध गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा को आमंत्रित किया। कांगड़ा किले पर घेराव करने पर महाराजा रणजीत सिंह ने गोरखों को सतलुज के पार भगा दिया। गोरखों ने कहलूर पर अधिकार किया अतः बघाट भी गोरखों के अधिकार में आ गया। महेंद्र सिंह गोरखों को कर देता रहा।

गोरखा युद्ध (1814-15) में बघाट ने अंग्रेजों का साथ नहीं दिया अतः युद्ध के बाद अंग्रेजों ने आठ परगनों से पांच अपने पास रखे और 4 सितंबर, 1815 को बीसाल, मचोली तथा बसाल के तीन परगने ही राणा को दिए। अंग्रेजों ने पांच परगने पटियाला को एक लाख तीस हजार रुपए में बेच दिए। महेंद्र सिंह की 1839 में निःसंतान मृत्यु हो गई अतः बघाट सरकारी क्षेत्र में मिला लिया गया।

राणा के चचेरे भाई उमेद सिंह की विनती पर लॉर्ड एलिनबरा ने राणा के भाई विजय सिंह को सन् 1842 में जागीर सौंपी। सरकार ने कसौली को पांच हजार रुपए तथा पांच सौ रुपए वार्षिक किराए पर विजय सिंह से ले लिया।

विजय सिंह की 1849 में निःसंतान मृत्यु हो गई तो सरकार ने फिर ठकुराई ले ली। उमेद सिंह ने फिर दावा पेश किया और एक वकील विलायत भेजकर कोर्ट ऑफ डायरेक्टर में दावा पेश किया। सन् 1860 में लॉर्ड केनिंग ने अपील स्वीकार की और 1861 में मान्यता दी। यह खबर 13 वर्षों के इंतजार के बाद मिली जब वह मृत्युशैया पर था। मृत्यु से पूर्व यह खुशखबरी मिलने के बाद उमेद सिंह की मृत्यु हो गई। अतः 18 जुलाई, 1864 को उमीद सिंह के पुत्र दलीप सिंह को राणा बनाया गया।

कर्नल फ्रांसिस मैसी ने लिखा है कि राणा के कोई लड़का नहीं है। राणा के हकीकी भाई अमर सिंह भी बेऔलाद हैं।

सन् 1856 में सरकार ने सोलन में 500 रुपए कर पर भूमि ली। अतः बघाट पर लगाए खिराज को दो हजार रुपए से घटाकर 603 रुपए वार्षिक कर दिया।

दलीप सिंह ने सन् 1911 के दिल्ली दरबार में भाग लिया। दिल्ली से वापस आते हुए राणा की मृत्यु हो गई।

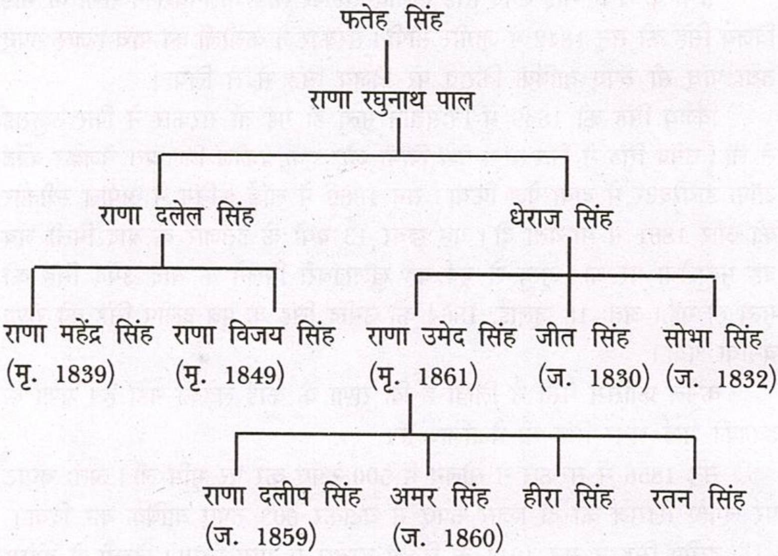
दुर्गा सिंह

दलीप सिंह की मृत्यु के समय (1911) पुत्र दुर्गा सिंह की आयु 11 वर्ष थी। सन् 1919 में सरकार ने राणा बनाया और 1922 में पूरे अधिकार दिए गए। सन् 1924 से 1933 तक दुर्गा सिंह चैम्बर ऑफ प्रिंसिज की पहाड़ी रियासतों का प्रतिनिधि रहा। सन् 1928 में राज्य भली प्रकार चलाने के लिए राजा की उपाधि दी गई।

जनवरी, 1948 में दुर्गा सिंह तथा मंडी के राजा ने गांधी जी से भेंट कर पहाड़ी रियासतों की स्थिति बताई। गांधी जी ने उन्हें बैठक कर निश्चय करने की सलाह दी। अतः दुर्गा सिंह ने सोलन आकर 26 जनवरी, 1948 को बैठक की और सुझाव रखा कि सभी रियासतों को हिमाचल प्रदेश नाम दिया जाए। इसके लिए उपसमिति बनी जिसमें दुर्गा सिंह अध्यक्ष और ठाकुर सेन नेगी उपाध्यक्ष थे।

अंततः 15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल प्रदेश बनने पर बघाट महासू जिले की सोलन तहसील बना।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची



भज्जी

भज्जी और कोटी ठकुराइयां कुटलैहड़ से आए दो भाइयों ने स्थापित कीं। कुटलैहड़ का संस्थापक जसपाल या रामपाल माना जाता है जो राजस्थान से आया। जसपाल का बड़ा पुत्र कुटलैहड़ का उत्तराधिकारी बना। दूसरे भाइयों के नाम चीरू, चांद, शोगू और भोगू थे। अन्य मत के अनुसार, जसपाल का दूसरा पुत्र गजेंद्र पाल कुटलैहड़ छोड़ सतलुज के पार आया। गजेंद्र पाल के चार पुत्र थे, चीरू, चांद, शोगू और भोगू।

गजेंद्र पाल के बाद चीरू को भज्जी, चांद को कोटी मिला। भोगू फागू चला गया। लोगू या शोगू ने विवाह नहीं किया।

यह अनुमान लगाया जाता है कि चीरू ने ही अपना नाम उदय पाल रखा, क्योंकि वंशावली में संस्थापक या प्रथम शासक का नाम उदय पाल आता है। वंशावली में निम्नलिखित नाम हैं :

1. उदय पाल	21. उसव पाल	41. बेहरी सिंह
2. दात पाल	22. अगर पाल	42. अमृत पाल
3. गोपी पाल	23. खड़क पाल	43. रुद्र पाल
4. शोभा पाल	24. अजीत पाल	(मृत्यु 1855)
5. जयसिंह पाल	25. बीरवा पाल	44. रण बहादुर सिंह
6. शिव पाल	26. उदारण पाल	(1855-1875)
7. सूरत पाल	27. प्रजा पाल	45. दुर्गा सिंह
8. उपती पाल	28. संपूर्ण पाल	(1875-1913)
9. प्रभु पाल	29. सोहन पाल	46. वीर पाल सिंह
10. पौण पाल	30. नाक पाल	(1913-1940)
11. सीतल पाल	31. चंद्रपाल	47. रामचंद्र पाल सिंह
12. भट्टी	32. आलम चंद	(1940)
13. अजय पाल	33. अमर चंद	
14. विजय पाल	34. जयचंद	
15. किशन पाल	35. सूदन चंद	
16. अनेक पाल	36. दीप चंद	
17. बौण पाल	37. बलभद्र चंद	
18. अजीत पाल	38. पृथी चंद	
19. धूम पाल	39. कृपा चंद	
20. भूम पाल	40. प्रताप चंद	

गजेंद्र पाल के सतलुज के पार इस क्षेत्र में आने पर यहां के सामंतों, जिन्हें मावी कहते थे, अपने अधीन किया। गजेंद्र पाल के दो पुत्रों ने भज्जी और कोटी स्थापित की।

पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि सोहन पाल (29वें राणा) ने भज्जी के स्थान पर सुन्नी को राजधानी बनाया। आलम चंद (32वें राणा) ने कांगल और सारी को जीता और खाट राजधानी बनाई। ठाकुर जय चंद (34वां) ने बुशहर की सहायता से सुकेत पर आक्रमण किया। दीप चंद (36वां) को राजा बिलासपुर ने कांगल और सांगरी कुल्लू (मान सिंह 1688-1719) को वापस करने को कहा। राजा कुल्लू ने इसके बदले भज्जी से लिया जाने वाला कर मुआफ किया। अमृत पाल (42वां) ने कुल्लू तथा क्योंथल से लड़ाई की। धामी का क्षेत्र भी अपने अधिकार में लिया जो बाद में लौटा दिया।

अन्य पहाड़ी रियायतों की तरह सन् 1809 से 1815 तक यहां भी गोरखों का अधिकार रहा। उस समय यहां रुद्र पाल (1842-1855) राणा था। गोरखों के बाद यह क्षेत्र अंग्रेजों के हाथ आया। अंग्रेजों ने 4 सितंबर, 1815 को सनद द्वारा रुद्र पाल को राज्य लौटा दिया। राणा पर प्रजा की भलाई करने तथा अन्य राज्य पर अधिकार न जमाने की शर्त लगाई गई। सन् 1825 में कृषि योग्य भूमि का बंदोबस्त किया गया। रुद्र पाल ने मृत्यु से चौदह वर्ष पहले ही राजपाट रण बहादुर सिंह को सौंप दिया और स्वयं हरिद्वार चला गया।

रण बहादुर सिंह ने 10 जुलाई, 1845 को ठकुराई संभाली। सरकार द्वारा भज्जी के लिए 1440 रुपए नजराना तय किया गया। बेगार की शर्त समाप्त की।

रण बहादुर सिंह की 1875 में मृत्यु पर दुर्गा सिंह (1875-1913) उत्तराधिकारी बना। दुर्गा सिंह की मृत्यु पर पुत्र वीरपाल सिंह मात्र पांच वर्ष का था अतः राज्य चलाने के लिए एक काउंसिल बनाई गई। वीरपाल सिंह 1918 में गद्दी पर बैठा। पंजाब के पंडित बसंत लाल को मैनेजर नियुक्त किया गया।

वीरपाल के मैनेजर बसंत लाल से मतभेद हो गए। रियासत में असंतोष फैला। वीरपाल को असिस्टेंट पॉलिटिकल एजेंट ने 8 सितंबर, 1940 को पकड़कर रिपन अस्पताल में भर्ती करवा दिया कि उसका मानसिक संतुलन ठीक नहीं है। वहां से इसे हरिद्वार भेज दिया। वीरपाल के बाद पुत्र रामचंद्र पाल को उत्तराधिकारी बनाया जो बारह वर्ष का था। हिमाचल प्रदेश के गठन पर यह क्षेत्र महासू जिले की सुन्नी तहसील बना।

भज्जी ठकुराई 94 वर्गमील थी। इसकी आबादी 12,000 से अधिक और वार्षिक आय 23,000 रुपए थी। यहां से अफीम, जो खालिस समझी जाती थी, बाहर भेजी जाती थी।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

अमृत पाल

राणा रुद्र पाल

राणा रण बहादुर सिंह
(मृत्यु 1875)

राणा दुर्गा सिंह (जन्म 1842) | मियां परमातम सिंह (जन्म 1844) | मियां विजय सिंह (जन्म 1850)

कोटी

कोटी की स्थापना कुटलैहड़ से आए दो भाइयों में से छोटे भाई चांद ने की। बड़ा भाई भज्जी में बसा और छोटा कोटी में। यहां के छोटे-छोटे सामंतों, जिन्हें मावी या मुआण कहते थे, जीता और अपने राज्य स्थापित किए। यह भी मान्यता है कि इन राज्यों की नींव कुटलैहड़ के संस्थापक जसपाल के पौत्रों ने रखी। गजेटियर तथा सन् 1923 की बंदोबस्त रिपोर्ट में यह भी उल्लेख है कि भज्जी के 31वें राणा चंद्रपाल ने कोटी का क्षेत्र अपने भाई को दिया। किंतु परंपरा चांद को ही संस्थापक मानती है। चांद से लेकर 24 ठाकुर हुए जिन्हें बाद में राणा कहा जाने लगा। बंदोबस्त रिपोर्ट के अनुसार 22 ठाकुर हुए।

ठाकुर तारा चंद ने क्यार कोटी को राजधानी बनाया।

भज्जी और कोटी के शासकों की संख्या में पर्याप्त भिन्नता है। भज्जी में 46 शासक माने जाते हैं और कोटी में 24 या 22 जबकि दोनों की स्थापना दो भाइयों ने एक समय की। अतः संस्थापक की कहानी संदेहास्पद है।

गोपी चंद

दसवें ठाकुर गोपी चंद के बारे में कहा जाता है कि उसने क्योंथल को हराया। गोपी चंद के पास बहुत अच्छी गाएं थीं जिनमें से दो गाएं क्योंथल की कुमाऊंनी

रानी ने मांगीं। गोपी चंद ने गाएं नहीं दीं अतः क्योंथल ने कोटी पर हमला बोल दिया। मशोबरा तथा संजौली के बीच लड़ाई हुई जिसमें क्योंथल का राणा हार गया और गोपी चंद अश्विनी खड्ड के पास सायरी तक पहुंच गया। क्योंथल की रानी ने भज्जी के ठाकुर दलीप चंद को उकसाया। दलीप चंद ने धूरू नाम के व्यक्ति को क्योंथल भेजा। क्योंकि क्योंथल की पहले ही हार हुई थी अतः धूरू को उन्होंने कहलूर (तारा चंद 1545-50) भेजा। कहलूर के राजा ने कोटी पर आक्रमण किया। कहलूर की सेना में बीमारी फैल गई तथापि नालदेहरा के पास दो बार लड़ाई हुई जिसमें कहलूर वाले हार गए। गोपी चंद ने भज्जी का कुछ भाग भी जीत लिया। भज्जी के ठाकुर ने अपना क्षेत्र लेने के लिए पुनः लड़ाई की जिसमें गोपी चंद मारा गया।

पद्म चंद (लगभग 1756) के समय ठकुराई का हिसाब-किताब बहियों में रखा जाने लगा था। प्रताप चंद का जन्म 1790 में हुआ था जो गोपी चंद से आठवां शासक था। प्रताप के समय सन् 1809 में यहां गोरखों का अधिकार हुआ जो राज्य से दो हजार रुपए कर लेते थे। गोरखों के बाद अंग्रेज शासक बने।

अंग्रेजों ने कोटी को क्योंथल के अधीन रखा। ठाकुर द्वारा क्योंथल को पांच सौ रुपए नजराना दिया जाता रहा। सन् 1830 में पहाड़ी रियासतों के पॉलिटिकल एजेंट ने कोटी से कुछ भूमि ली क्योंकि शिमला अंग्रेजों की ग्रीष्मकालीन राजधानी बनने जा रहा था। हरि चंद (1838-1873) के समय मियां रामसरन वजीर था। सन् 1875 की क्रांति में ठाकुर ने अंग्रेजों को शरण दी और शिमला में भी अंग्रेजों की रक्षा के लिए आदमी भेजे। अतः सरकार ने राणा की उपाधि के साथ सम्मानित किया। राणा ने शिमला स्टेशन को नसीरी सेना से बचाने में भी मदद की थी।

बिशन चंद (1873-1891) भी राजा क्योंथल को पांच रुपए वार्षिक नजराना देता रहा। पंजाब सरकार के निर्णय के अनुसार नजराना अपने राजा को ही दिया जाना नियत किया था। क्योंथल के राजा को यह भी अधिकार था कि वह कार्य की पूछताछ के लिए अपने एजेंट वहां भेज सकता था।

रघुवीर चंद सन् 1891 में उत्तराधिकारी बना। सरकार ने शिमला में पानी की सप्लाई के लिए कुछ क्षेत्र किराए पर लिए। इसके लिए जमींदारों को मुआवजा भी दिया गया। अर्ल एलगिन वायसराय (1894-1899) ने अपने रहने के लिए कोटी से जमीन पट्टे पर ली और इसका किराया 2825 रुपए वार्षिक दिया जाता रहा। रघुबीर चंद ने मालगुजारी नकद लेना आरंभ किया। भूमि की माप-तौल का पैमाना 'ली' से बदलकर बीघा किया। एक ली को आठ बीघा के बराबर माना और 25 रुपए प्रति ली कर मांगा गया जिसका विरोध हुआ। अतः कोटी में पहली जून, 1914 को बंदोबस्त आरंभ हुआ जो 1916 में पूरा किया गया।

हिमाचल प्रदेश बनने पर यह क्षेत्र महासू जिले की कसुम्पटी तहसील में मिला।

कोटी का क्षेत्रफल 36 वर्गमील, आमदनी 6000 रुपए थी जिसमें जंगलात की आय शामिल नहीं थी।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

राणा हरि चंद
(मृत्यु 1873)

राणा बिशन चंद (जन्म 1836) | शिव शरण सिंह (जन्म 1840)

राणा बिशन चंद के पुत्र:
टिक्का रघुबीर सिंह (जन्म 1865) | गोपाल सिंह (जन्म 1870) | निहाल सिंह (जन्म 1873)

रघुवीर सिंह के पुत्र दिवेश सिंह के बाद त्रिविक्रम सिंह उत्तराधिकारी बने। इनके पुत्र अनिरुद्ध सिंह जनवरी, 2011 से 2012 तक जिला परिषद् के अध्यक्ष रहने के बाद दिसंबर, 2012 में कांग्रेस के विधायक बने।

धामी

परंपरा के अनुसार धामी के ठाकुर अपने को दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान के वंशज मानते थे। सन् 1192 में पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी के हाथों पराजित हो मारा गया। पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि धामी के पूर्वज दिल्ली से भागकर रायपुर आ गए जहां से धामी आ बसे। संभवतः तेरहवीं शताब्दी में यहां से राजवंश स्थापित हुआ होगा। यह ठकुराई शिमला से लगभग पचीस किलोमीटर पश्चिम की ओर स्थित थी और कहलूर के अधीन रही। गोरखों के पहाड़ों में आधिपत्य के समय यह भी उनके अधीन आ गई। गोरखे धामी से चार हजार रुपए कर लेते थे।

अंग्रेजों के समय 4 सितंबर, 1815 की सनद द्वारा यह ठकुराई राणा गोवर्धन सिंह को प्रदान की गई। राणा को चालीस बेगारी देने की शर्त लगाई। फिर बेगार

के बदले 720 रुपए कर लगाया गया।

इस ठकुराई के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। वंशावली में यद्यपि 65 नाम हैं।

गोवर्धन सिंह (1813-1856)

यह राणा बारह वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। सन् 1857 के विद्रोह में अंग्रेजों को सहयोग दिया अतः राज-कर 720 रुपए से उसकी आयुपर्यंत आधा कर दिया।

हीरा सिंह (1894-1920)

सन् 1915 में भू-बंदोबस्त किया गया। सरकार ने सन् 1913 में सी.आई.ई. की उपाधि दी।

दलीप सिंह (1920)

राणा के अवयस्क होने पर राजकाज के लिए काउंसिल बनाई गई। सन् 1927 में राणा को काउंसिल का अध्यक्ष बनाया। सन् 1930 में पूरे अधिकार सौंपे गए। राणा ने अपनी ठकुराई में पूर्ण नशाबंदी लागू की।

धामी के लोग शिमला आते-जाते थे और नौकरी करते थे। अतः उन्होंने 1937 में धामी प्रचारिणी सभा बनाई। फिर इसी को बदलकर रियासती प्रजामंडल बना दिया। प्रजामंडल ने अपनी मांगों के लिए राणा से मिलना चाहा। जब राणा नहीं मिला तो 16 जुलाई, 1939 को प्रजामंडल के नेता धामी की ओर चले और घणाहट्टी पहुंचे। राणा ने भीड़ को देखकर गोली चलवा दी जिससे दो व्यक्ति मर गए, कई घायल हुए। इस घटना के बारे में गांधी जी ने हरिजन में लेख लिखा। गांधी जी ने पंडित नेहरू को जांच के लिए कहा और दुनी चंद कमेटी जांच के लिए आई। विलय होने पर इस ठकुराई को कसुम्पटी तहसील में मिलाया।

धामी रियासत का क्षेत्रफल 30 वर्गमील, जनसंख्या 3000 और आय लगभग 8000 रुपए थी।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

- दलेल सिंह
  - राणा प्रतमा सिंह (मृत्यु 1813)
    - राणा गोवर्धन सिंह (मृत्यु 1867)
      - राणा फतेह सिंह (जन्म 1853)
        - हीरा सिंह (जन्म 1878)
        - ज्वाला सिंह (जन्म 1884)
    - बिशन सिंह (मृत्यु 1864)
    - ज्ञान सिंह (मृत्यु 1837)
      - जालम सिंह (मृत्यु 1886)
        - कपूर सिंह (जन्म 1859)

वंशावली

धामी के राणाओं की वंशावली में ये नाम मिलते हैं :

1. गोविंद पाल
2. मही पाल
3. राम पाल
4. धर्म पाल
5. अगर पाल
6. दीप पाल
7. चतर पाल
8. मित्र पाल
9. रन पाल
10. अलप पाल
11. अमोल पाल
12. मदन पाल
13. पद्म पाल
14. दीपक पाल
15. अर्जुन पाल
16. हरन पाल
17. देराच पाल
18. गोकल पाल
19. इंद्र पाल
20. नाग पाल
21. वरन पाल
22. तरन पाल
23. मबी पाल
24. धल पाल

25. कर्ण पाल
26. गदा पाल
27. चंद पाल
28. जूगल पाल
29. किशन पाल
30. सीता पाल
31. हरन पाल
32. दीप पाल
33. लाज पाल
34. धर्म पाल
35. वीर पाल
36. करंग पाल
37. विरह पाल
38. सीस पाल
39. धर्च पाल
40. नरसिंह पाल
41. नारायण पाल
42. भगवान पाल
43. किरच पाल
44. महींद्र पाल
45. तंग पाल
46. शिव पाल
47. अजय पाल
48. सूरज पाल
49. कंवल पाल
50. हरि पाल
51. कृष्ण पाल
52. नारायण पाल
53. धीरज पाल
54. कर्म पाल
55. मान पाल
56. रत्न पाल
57. कृपाल सिंह
58. राज सिंह
59. केसरी सिंह
60. दलील सिंह (मृ. 1803)
61. प्रीतम सिंह (1803-1813)
62. गोवर्धन सिंह (1813-1867)
63. फतेह सिंह (1867-1894)
64. हीरा सिंह (1894-1920)
65. दलीप सिंह (1920)

महलोग

परंपरा के अनुसार महलोग ठकुराई के पूर्वज अयोध्या से आए। अयोध्या से वीर चंद मानसरोवर यात्रा पर गया। वापसी पर वह सहारनपुर रुक गया। मुहम्मद गौरी के समय सरपाल शासक था जो मुहम्मद गौरी के हाथों मारा गया। सरपाल के प्रपौत्र जगत चंद ने पुनः राज्य स्थापित किया। जगत चंद के पुत्र हरि चंद ने सन् 1203 में पिंजौर और कालका के बीच राजधानी बनाई।

महलोग की ठकुराई का इतिहास भी अज्ञात है यद्यपि वंशावली में 38 नाम मिलते हैं। यह ठकुराई नालागढ़ और कुठाड़ के मध्य स्थित थी।

जनश्रुति के अनुसार एक ठाकुर कंडोसी ने राज्य-विस्तार किया। सातवें ठाकुर उत्तम चंद के समय सिरमौर के राजा ने 1612 में आक्रमण कर ठकुराई अपने अधीन

कर ली। ठाकुर ने अपने ससुर क्योंथल के राणा के पास शरण ली। कुछ समय राणा ने क्योंथल की सहायता से क्षेत्र छुड़ा लिया।

मुगल बादशाह जहांगीर ने पिंजौर में कुछ भवन बनाए। उत्तम चंद ने मुगलों के भय से पिंजौर और कालका के बीच की राजधानी भवाना छोड़ दी और कोट महलोग राजधानी बनाई। यहां बहुत से मावी लोग रहते थे अतः इस क्षेत्र का नाम महलोग पड़ा। महलोग की ठकुराई क्योंथल के अधीन थी। मुगलों का कर कहलूर के माध्यम से दिया जाता था। गर्व चंद ने गढ़सी राजधानी बनाई।

पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि अजीत चंद के समय कांगड़ा के राजा ने महलोग को नौ या दस परगनों पर अधिकार कर उन्हें बघाट को दे दिया। इस राजा का नाम वंशावली में नहीं है। महलोग की वंशावली और बंदोबस्त रिपोर्ट के ठाकुरों के नामों में अंतर है, अतः सही ज्ञान नहीं होता।

राजवंश

संसार चंद (1783-1849)

गोरखों के समय महलोग भी गोरखों के अधीन हुआ। गोरखों के आक्रमण के समय ठाकुर संसार चंद हिंडूर के राजा रामसरन सिंह के पास रहने लगा। गोरखों ने महलोग से तीन हजार रुपए वार्षिक कर लिया। अंग्रेजों के आने पर महलोग अंग्रेजों के अधीन हुआ। 4 सितंबर, 1815 को एक सनद द्वारा ठाकुर संसार चंद को ठकुराई पुश्त दर पुश्त के लिए लौटाई। ठाकुर पर 40 बेगारी तथा नजराना लेना तय किया। राजा को सड़कों की मरम्मत आदि प्रजा के काम सौंपे गए। संसार चंद ने छोटा भाई चमना वजीर बनाया। हर परगने में एक-एक मेहता तथा प्यादा नियुक्त किया।

दलीप चंद (1849-1880)

सन् 1849 में संसार चंद की मृत्यु के बाद दलीप चंद ठाकुर बना। उसका वजीर मियां गणेशु था। ठाकुर ने नजराना और दंड कड़े किए। हिसाब-किताब के लिए बहियां खोली गईं।

रघुनाथ चंद (1880-1902)

रघुनाथ चंद के समय भी वजीर चाचा गणेशु ही रहा। ठाकुर प्रशासन में चुस्त था अतः सरकार ने उसे सन् 1898 में राणा की उपाधि दी। उसने राजधानी पट्टा में कई भवन बनवाए, अस्पताल बनवाए।

दुर्गा चंद (1902-1934)

दुर्गा चंद पिता की मृत्यु के समय अवयस्क था। अतः राजमाता ने प्रशासन के लिए बख्शी मंसा राम, मोजी राम, बली राम, मस्त राम की एक काउंसिल बनाई। किंतु राजमाता ने किसी कारण मंसा राम से रुष्ट होकर उसे बंदी बना लिया। इससे प्रजा में असंतोष हो गया अतः उसे छोड़ना पड़ा। 10 अप्रैल, 1908 को सरकार द्वारा कंवर भवानी सिंह को मैनेजर नियुक्त किया गया। भवानी सिंह ने रियासत में सुधार कार्य किए। सन् 1909 में भूमि बंदोबस्त किया गया। वन विभाग सुधारा। दो स्कूल खोले। सन् 1920 में वयस्क होने पर दुर्गा चंद को अधिकार दिए गए।

नरेंद्र चंद (1934)

3 मई, 1936 को गद्दी सौंपी गई। अवयस्क होने के कारण अधीन चंद को मैनेजर नियुक्त किया गया।

महलोग का क्षेत्रफल लगभग 50 वर्गमील, जनसंख्या 9000 से अधिक और आय 10,000 रुपए वार्षिक थी। 15 अप्रैल, 1948 को यह हिमाचल प्रदेश का अंग बना।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

नाहर सिंह
|
खुशहाल चंद
|
ठाकुर संसार चंद
(मृत्यु 1849)

ठाकुर दिलीप चंद (मृत्यु 1880) — गणेश चंद (जन्म 1841)

ठाकुर दिलीप चंद
|
ठाकुर रघुनाथ चंद
(जन्म 1866)

कुनिहार

पंजाब स्टेट गजेटियर के अनुसार कुनिहार का संस्थापक अभोज देव बारहवीं शताब्दी में अखनूर (जम्मू) के एक राज्य से आया। परंपरा कहती है कि अभोज देव कुछ साहसी साथियों को साथ लिए निकला। रास्ते में उसे पता चला कि कहलूर में विद्रोह हो गया है अतः वह कुनिहार आ गया। कहा जाता है, रायकोट में उसका सामना क्योंथल के सैनिकों से हुआ। अभोज देव ने उन्हें परास्त कर दिया और हारकोट में बस गया।

मियां गोवर्धन सिंह ने राजाओं की निम्नलिखित सूची दी है :

1. अभोज देव
2. उदय देव
3. साही देव
4. साहूपाल देव
5. बहनूआ देव
6. बेल देव
7. आरसी देव
8. परस राव
9. कौल राव
10. मेघ राव
11. गनचन राव
12. राव पूर्ण चंद
13. राव भाओ चंद
14. राव वीर चंद
15. राव चतर देव
16. जस देव
17. मदन देव
18. केसर देव
19. सुलतान देव
20. शीम्बर देव
21. अब्राहम देव
22. राम सिंह
23. आनंद देव (सिंह) (ज. 1715)
24. मगन देव (सिंह) (मृ. 1816)
25. पूर्ण सिंह (1816-1837)
26. किशन सिंह (1837-1866)
27. तेग सिंह (1866-1905)
28. हरदेव सिंह (1905)

यह एक छोटी ठकुराई थी अतः बाघल और क्योंथल इसके क्षेत्रों पर अधिकार करते रहे।

आनंद देव या अनंत देव के समय (जन्म 1715) कांगड़ा के विरुद्ध कहलूर की सहायता की। इस ठाकुर ने कांगड़ा के अफगान सरदार आगर खां को तलवार से मार दिया। यह लड़ाई कहलूर की रानी नागर देवी के समय लड़ी गई होगी जब उसने संसार चंद के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी थी। सन् 1795 में हिंडूर तथा बाघल ने कुनिहार पर हमला बोला। ठाकुर ने इस हमले को विफल कर दिया, हालांकि उसकी आयु अस्सी वर्ष थी। बाघल के लोगों ने उसे समझौते के लिए ले जाते हुए धोखे से मार दिया।

मगन देव (1795-1816) के समय गोरखों का आधिपत्य हुआ। गोरखों ने उसे गद्दी से हटाकर जागीर दी। अंग्रेजों का आधिपत्य होने पर उन्होंने 4 सितंबर, 1815

को सनद द्वारा कुनिहार की ठकुराई मगन देव को पुश्त दर पुश्त के लिए लौटाई।

मगन देव के बाद पूर्ण देव (1816-1837), किशन सिंह (1837-1855), तेग सिंह (1866-1905) ठाकुर हुए।

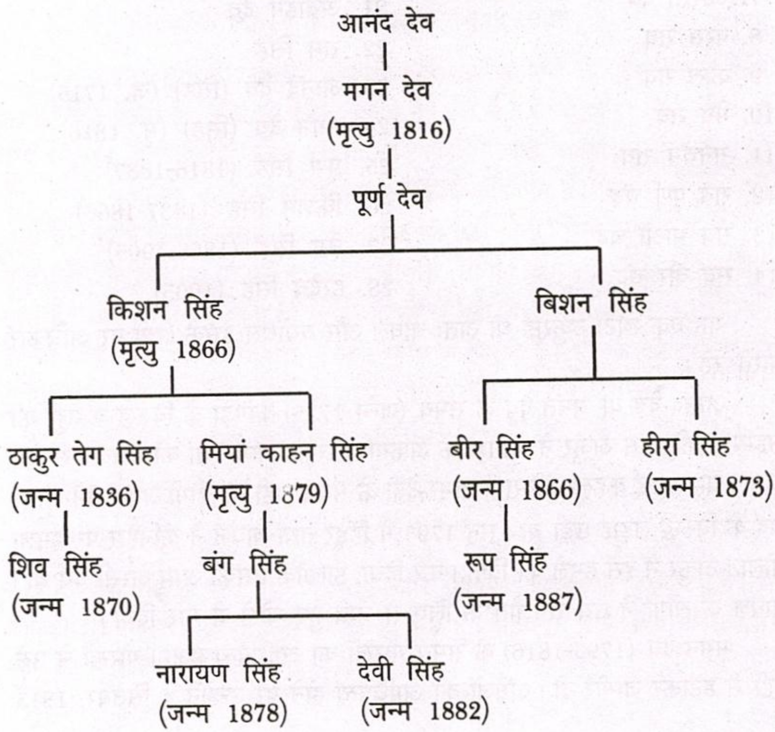
कर्नल मैसी ने लिखा है कि ठाकुर साहब (तेग सिंह) के अख्तयारात नहीं हैं जो इस पहाड़ के और रईसों के हैं। इनका सदर मुकाम हाटकोट है।

हरदेव सिंह सन् 1905 में तेग सिंह की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी बना। अवयस्क होने से प्रशासन का काम एक काउंसिल करती रही।

सन् 1939 में कुनिहार प्रजामंडल की स्थापना हुई। 9 जुलाई को ठाकुर हरदेव सिंह ने प्रजामंडल के अध्यक्ष के रूप में सम्मेलन में भाग लिया। 15 अप्रैल, 1948 को यह ठकुराई हिमाचल प्रदेश में मिला।

इस ठकुराई का क्षेत्रफल 9 वर्गमील था और जनसंख्या 2000 से भी कम। वार्षिक आय 4000 रुपए से 180 रुपए वार्षिक खिराज सरकार को जाता था।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची



कुठाड़

कुठाड़ का संस्थापक किश्तवाड़ राजौरी से आया सूरत चंद माना जाता है। लगभग बारहवीं शताब्दी के अंत में या तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में मुस्लिम आक्रमण के समय सूरत चंद यहां आया होगा और यहां के मावी लोगों को हराकर ठकुराई स्थापित की। पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि जनश्रुति के अनुसार जब मुस्लिम आक्रमणों के समय मैदानों से लोग आए तो उनमें से एक आदमी एक बार एक वृक्ष के नीचे बैठा मिला जिसने बताया कि वह राजपूत है और अपने मूल देश से भगाया गया है। वह एक मावी के पास नौकरी करने लगा था। लोगों ने मावियों को हराने में उसकी सहायता की और राजा बनाया। उसने पांच परगने रीहणी, धर, शील, धरूथ और फेटा अपने अधीन किए।

वंशावली में कुठाड़ के 49 शासक दिखाए गए हैं। यह सपाटू के पास कुठाड़ नदी की घाटी में स्थित छोटी ठकुराई थी जो कहलूर, हंडूर या क्योंथल की करद रही।

गोरखा आधिपत्य के समय कुठाड़ का राणा गोपाल चंद था जिसने मनीमाजरा में शरण ली। गोरखों ने यहां से तीन हजार रुपए कर के तौर पर वसूला।

गोरखा युद्ध के पश्चात् राणा गोपाल चंद की कुठाड़ वापस आते हुए मार्ग में मृत्यु हो गई। अतः 3 सितंबर, 1815 को अंग्रेज सरकार ने इस ठकुराई को पुत्र भूप चंद को पुश्त दर पुश्त के लिए लौटा दिया।

जय चंद

राणा जय चंद का जन्म सन् 1840 में हुआ। जय चंद के समय मियां बहादुर सिंह वजीर था जो राणा का चाचा था। जय चंद पढ़ा-लिखा था और रियासत का प्रबंध अच्छी तरह चलाता था। जय चंद का विवाह कुनिहार, धामी, क्योंथल और कोटखाई से हुआ था। जय चंद 1858 से 1895 (या 1896) तक शासक रहा।

जय चंद के बाद जगजीत चंद उत्तराधिकारी बना जिसका जन्म सन् 1887 में हुआ था। इसके समय फिजूलखर्ची बढ़ने से राज्य की स्थिति खराब हो गई, अतः सरकार ने कोटखाई के मियां दुर्गा सिंह को वजीर नियुक्त किया। इसने दो वर्ष तक कार्य कर स्थिति सुधारी। दुर्गा सिंह के बाद ज्ञान सिंह और शतरनजीत सिंह वजीर बने। जगजीत चंद को 1908 में राज्य को पूरे अधिकार दिए गए। अस्वस्थता के कारण जगजीत चंद ने 1930 में गद्दी छोड़ दी और कृष्ण चंद को उत्तराधिकारी बनाया। राणा कृष्ण चंद (1930-1954) ने पिता की स्मृति में जगजीत नगर बसाया।

राणा कृष्ण चंद के एकमात्र पुत्र की मृत्यु युवावस्था में ही उनकी मृत्यु से छह माह पूर्व हो गई। इनकी सबसे बड़ी बेटी शांतासेन (जो राजा क्योंथल को ब्याही हुई

थी) के पुत्र कंवर अरुण (सेन) चंद को उत्तराधिकारी बनाया गया।

कुठाड़ का क्षेत्रफल 19 वर्गमील, आय सात हजार रुपए थी जिसमें एक हजार रुपए खिराज देना पड़ता था।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

सुमेर चंद
|
गोपाल चंद
|
राणा भूप चंद
(मृत्यु 1858)

राणा जय चंद (जन्म 1840) | ईसरी सिंह (जन्म 1844)

राणा जय चंद
|
एक पुत्र
(जन्म 1887)

बेजा

बेजा ठकुराई की स्थापना तनवार वंश के राजा ढोल पाल के वंशज गर्व चंद ने की। कहा जाता है कि दिल्ली के तनवार वंश के ढोल पाल की 37वीं पीढ़ी में शमशेर चंद हरिद्वार के निकट कनखल में आ बसा। यह बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी की बात रही होगी। उसका पौत्र रामचंद सिरमौर में प्रवेश करना चाहता था किंतु कर नहीं पाया। रामचंद के पौत्र गर्व चंद ने बघाट में भोच के राणा को अधिकार करने के बाद बेजा को भी जीत लिया।

बेजा ठकुराई कुठाड़ में दक्षिण और महलोग के पश्चिम में थी। इसका क्षेत्रफल मात्र चार वर्गमील था, एक हजार रुपए वार्षिक आय से एक सौ अस्सी रुपए सरकार को खिराज जाता था। एक हजार रुपए आय में अस्सी रुपए वे भी शामिल हैं जो सरकार छावनी के लिए, लिए गए गांवों के बदले मुआवजे में दिए जाते हैं।

वंशावली में अग्रलिखित नाम मिलते हैं :

1. गर्व चंद	15. भीम चंद
2. पाली चंद	16. तारा चंद
3. विशन चंद	17. अजय चंद
4. तेग चंद	18. विजय चंद
5. जीत चंद	19. नारायण चंद
6. हरि चंद	20. लाल चंद
7. शुजा चंद	21. अनूप चंद
8. कृपाल चंद	22. अतर चंद
9. किदार चंद	23. जय चंद (मृत्यु 1773)
10. किशन चंद	24. मान चंद (मृत्यु 1817)
11. रत्न चंद	25. प्रताप चंद (मृत्यु 1841)
12. कनहोर चंद	26. उदय चंद (1841-1905)
13. लछमी चंद	27. पूर्ण चंद (1905)
14. कुशल चंद	28. लक्ष्मी चंद

गर्व चंद के पौत्र विशन चंद के समय प्रजा ने विद्रोह किया अतः कुछ इलाका स्वतंत्र हो गया, केवल बेजा ही अधिकार में रहा। यह ठकुराई अधिकांशतः कहलूर के आधिपत्य में रही।

जय चंद के बाद मान चंद (1773-1817) के समय गोरखा आक्रमण हुआ। ठाकुर एक अच्छा वैद्य भी था अतः उसने गोरखा नायकों का इलाज किया। इससे प्रसन्न होकर गोरखा नायक मान चंद ने ठाकुर को ठकुराई बख्शी। अंग्रेजों ने भी अधिकार करने के बाद सन् 1815 में ठकुराई ठाकुर को वापस की।

प्रताप चंद (1817-1841) के बाद उदय चंद (1841-1905) के समय सरकार ने नरी और चलहान गांव कसौली छावनी के लिए लिए, जिसके बदले अस्सी रुपए वार्षिक कर देना माना। पूर्ण चंद (1905) को उत्तराधिकार मिलने पर अवयस्क होने के कारण काउंसिल बनाई गई। सन् 1921 में पूर्ण अधिकार दिए गए।

15 अप्रैल, 1948 को बेजा सोलन तहसील में मिलाया गया।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

- जय चंद
  - मान चंद
    - प्रताप चंद (मृत्यु 1841)
      - ठाकुर उदय चंद (ज. 1831)
      - आलम सिंह (ज. 1833)
        - एक नाबालिग लड़का
      - जालिम सिंह (ज. 1835)
        - एक नाबालिग लड़का (जन्म 1888)
      - मोहन सिंह (ज. 1837)
      - किशन सिंह (ज. 1839)
        - हीरा सिंह (जन्म 1867)
        - अमर सिंह (जन्म 1870)
        - देवी सिंह (जन्म 1880)

मांगल

मांगल ठकुराई कहलूर के अधीन थी। मारवाड़ के एक अत्री राजपूत ने कहलूर के राजा के पास सेना में सूबेदार की नौकरी की। राजा ने खुश होकर यह ठकुराई दे दी। गोरखों के आधिपत्य के बाद अंग्रेज सरकार ने 20 दिसंबर, 1815 को सनद द्वारा यह ठकुराई लौटाई।

मांगल में पृथी सिंह, जोध सिंह (मृत्यु 1844), अजीत सिंह (1844-1892), तिलोक सिंह (1892-1920), शिव सिंह (1920) ठाकुर हुए। यह ठकुराई बिलासपुर के उत्तर में सतलुज नदी के किनारे थी। इसकी वार्षिक आय सात सौ रुपए थी जिसमें से बहत्तर रुपए सरकार खिराज लेती थी।

कर्नल फ्रांसिस मैसी की सूची

राणा बहादुर सिंह

राणा पृथी चंद

राणा जीत सिंह
(जन्म 1830)

टिक्का तिलोक सिंह
(जन्म 1859)

निहाल सिंह
(जन्म 1862)

खजान सिंह
(जन्म 1869)

बारहवीं ठकुराई क्यारी या मधाण गिनाई गई है। एक सूची में कोटगुरु है। कई जगह कोटी-मधाण को अट्ठारह ठकुराइयों में लिया गया है। अट्ठारह ठकुराइयों में मोरनी, डोडरा क्वार, सीली, पुंदर, सरानी, नावर के नाम भी हैं जो कभी स्वतंत्र रही होंगी और कालांतर में पड़ोस की किसी बड़ी ठकुराई में विलीन हो गईं।

तरतीबवार दरबार में बैठने की पंजाब के स्वायत्त रईसों की फेहरिस्त

क्र.	रियासत का नाम	रईस का नाम, खिताब और परिवार	पिता का नाम	जन्म वर्ष	गद्दीनशीनी का वर्ष	जनसंख्या	क्षेत्रफल (वर्ग मील)	वार्षिक आय जो आंकी गई	विशेष कथन
1.	मंडी	हिजहाइनेस राजा विजय सेन बहादुर मंडी	राजा बलवीर सिंह	1848	1851	150000	1200	400000/-	11 तोपों की सलामी, यह रियासत कमिश्नर की पोलिटिकल निगरानी में
2.	सिरमौर (नाहन)	हिजहाइनेस राजा शमशेर प्रकाश, ग्रैंड कमांडर ऑफ द मोस्ट एक्साल्टिड ऑर्डर ऑफ द स्टार ऑफ इंडिया	राजा रघुवीर प्रकाश	1846	1856	112371	1045	300000/-	13 तोपों की सलामी, इसमें दो तोपें निजी शामिल हैं। इस रियासत के पोलिटिकल अफसर शिमला पहाड़ी रियासतों के सुपरिंटेंडेंट हैं
3.	कहलूर (बिलासपुर)	हिजहाइनेस टिक्का विजय चंद	राजा अमरचंद	1872	1889	60000	448	100000/-	11 तोप, -यथा-
4.	बुशहर	राजा शमशेर सिंह	राजा महेंद्र सिंह	1839	1849	64345	3375	50000/-	सलामी नहीं होती -यथा-

5.	नालागढ़ (हिंडूर)	राजा ईशरी सिंह	राजा उग्र सिंह	1836	1877	53373	249	90000/-	-यथा-
6.	क्योंथल	राजा बलवीर सेन	राजा महेंद्र सेन	1853	1883	31154	112	40000/-	-यथा-
7.	चंबा	हिजहाइनेस राजा श्याम सिंह	राजा गोपाल सिंह	1866	1873	115773	3216	300000/-	11 तोप, कमिश्नर लाहौर की निगरानी
8.	सुकेत	हिजहाइनेस राजा दुष्टनिकंदन सेन	राजा रुद्र सेन	1865	1879	45358	420	150000/-	11 तोप, कमिश्नर जालंधर की निगरानी
9.	बाघल	राजा ध्यान सिंह	जयसिंह चाचा स्व. राजा मोती सिंह	1842	1878	20633	124	60000/-	सलामी नहीं, शिमला पहाड़ी रियासतों के सुपरिंटेंडेंट की निगरानी में
10.	बघाट	राणा दिलीप सिंह	राणा उमेद सिंह	1860	1862	18338	60	10000/-	-यथा-
11.	जुब्बल	राणा पद्म चंद्र	राणा कर्म सिंह	1861	1878	19196	257	30000/-	-यथा-
12.	कुम्हारसेन	राणा हीरा सिंह	राणा भवानी सिंह	1851	1874	9515	94	10000/-	-यथा-
13.	भज्जी	राजा दुर्गा सिंह	राणा रणबहादुर सिंह	1841	1876	12106	94	23000/-	-यथा-

14.	महलोग	ठा. रघुनाथ चंद	ठा. दलीप चंद	1862	1880	9169	53	10000/-	-यथा-
15.	बलसन	राणा बीर सिंह	गोवर्धन सिंह पुत्र राणा भूप सिंह	1861	1884	5190	50	6000/-	-यथा-
16.	धामी	राणा फतह सिंह	राणा गोवर्धन सिंह	1853	1870	3322	29	8000/-	-यथा-
17.	कुठाड़	राजा जयचंद	राणा भूपचंद	1840	1858	3648	19	7000/-	-यथा-
18.	कुनिहार	राणा तेग सिंह	ठा. राव कृष्ण सिंह	1836	1866	1923	9	4000/-	-यथा-
19.	मांगल	राणा जीत सिंह	राणा पृथी सिंह	1830	1848	1060	13	700/-	-यथा-
20.	बेजा	ठा. उदय चंद	राणा प्रताप चंद	1827	1841	1158	4	1000/-	-यथा-
21.	दरकोटी	राणा रामसरण सिंह	राणा राम सिंह	1849	1883	590	4	600/-	-यथा-
22.	थरोच	ठा. केदार सिंह	केहर सिंह पुत्र ठा. रणजीत सिंह	1866	1877	3216	75	6000/-	-यथा-
23.	सांगरी	राय मियां हीरा सिंह	ठा. झगड़ सिंह	1849	1876	2593	60	1000/-	-यथा-

ऊपर लिखित रियासतों के अतिरिक्त निम्नलिखित शिमला के रईस बाजगुजारों को डिप्टी कमिश्नर और कमिश्नर देहली के अधीन पूरे अधिकार प्राप्त हैं :

24.	खनेटी	ठा. लालचंद राजपूत	ठा. सरन चंद	1860	1888	3000	–	3500/-	बुशहर रियासत को कर देते हैं
25.	देलठी	ठा. नरेंद्र सिंह राजपूत	संसार सिंह	1854	1883	–	–	600/-	-यथा-
26.	कोटी	राणा बिशन चंद राजपूत	राणा हरि चंद	1836	1873	2500	10	6000/-	क्योंथल को कर देते हैं
27.	ठियोग	ठा. हरिचंद राजपूत	ठा. भूप सिंह	1840	1866	3000	10	3500/-	-यथा-
28.	मधान	ठा. बिशन चंद राजपूत	ठा. संसार चंद	1842	1868	1000	3	700/-	-यथा-
29.	घूंड	ठा. किशन सिंह राजपूत	भजनू	1858	1860	1000	13	1000/-	-यथा-
30.	रतेश	ठा. राम सिंह राजपूत	किशन सिंह	1821	1860	437	3	200/-	-यथा-

हिंद सरकार के विदेशी विभाग की चिट्ठी नंबर 5731 तिथि 8 फरवरी, 1889 के अनुसार उन रियासतों के रईसों को हिजहाइनेस लिखना चाहिए जिनकी 10 तोपों या इससे ज्यादा की सलामी निश्चित है। चाहे यह आदेश रियासत पटियाला, बहावलपुर, जींद, नाभा, कपूरथला, मंडी, नाहन, बिलासपुर, मलेर कोटला, फरीदकोट, चंबा और सुकेत से संबंधित है।

(स्रोत : कर्नल फ्रांसिस मैसी)

मुगल तथा ब्रिटिश काल में विद्रोह

पहाड़ी राजाओं ने विदेशी आक्रमणकारियों से हमेशा लोहा लिया है। अपनी सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार इन्होंने बाहरी आक्रमणकारियों को रोका और पहाड़ों से खदेड़ा है।

प्रदेश का जालंधर खंड मुस्लिम आक्रमणकारियों से आक्रांत रहा लेकिन इस क्षेत्र के राजाओं ने ये आक्रमण झेले और समय-समय पर इन्हें सबक भी सिखाया। त्रिगर्त पर पहला बाहरी आक्रमण महमूद गजनी का था। गजनी ने सन् 1009 में पंजाब पर चौथी बार आक्रमण करने के बाद नगरकोट को घेरा। किले के सिपाही कृषि कार्य में लगे थे, नगरकोट का राजा जगदीश चंद्र भी वहां नहीं था।

किले में कुछ सैनिक तथा देवी के पुजारी थे, जो वीरता से लड़े। भागने की अपेक्षा उन्होंने मर जाना श्रेष्ठ समझा। अतः गजनी यहां से अपार धन-संपत्ति लूटकर ले गया।

मुसलमानों के आक्रमण रोकने के लिए दिल्ली के तोमर, मालवा के परमार भोज, त्रिपुरी के कलचूरी कर्ण, चौहान तथ त्रिगर्त के कटोच राजाओं ने मिलकर एक संघ बनाया। संगठन में जोश भरने के लिए दिल्ली के तोमरवंशीय राजा ने कहा कि उसे स्वप्न में नगरकोट की देवी ने आदेश दिया है कि वह महमूद गजनी से बदला ले तभी देवी मंदिर में वापस लौटेगी। स्वप्न की बात से कई लोग सेना में आए। इस सेना ने हांसी, थानेसर में महमूद के पौत्र मदूद को निकाल दिया। फिर यह सेना नगरकोट आई और नगरकोट के दुर्ग पर घेरा डाला। चार मास के बाद खाद्यान्न की कमी होने से मुगल सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। अतः 1043 में मुगल सेना के भागने के बाद मंदिर में नई मूर्ति स्थापित की गई और नगरकोट मुक्त हुआ। तोमर राजा, जिसका नाम इतिहास में ज्ञात नहीं है, वापस दिल्ली लौट गया।

महमूद गजनी के वंशज इब्राहिम ने सन् 1070 में जालंधर पर आक्रमण किया। उस समय त्रिगर्त का राजा जगदेव चंद्र था। इसके बाद सुरक्षा की दृष्टि से राजधानी जालंधर से नगरकोट बदल दी गई। महमूद की सेना को सन् 1043 में भगाने के बाद त्रिगर्त तीन सौ वर्षों तक स्वतंत्र रहा।

मुसलमानों द्वारा लूटपाट के कारण कांगड़ा के राजा रूप चंद ने भी लूटपाट का

तरीका अपनाया। फिरोजशाह तुगलक के समय (1351-88) रूप चंद लूटपाट करता हुआ दिल्ली तक पहुंच गया। वापसी पर उसे कश्मीर का शासक शहाबुद्दीन मिला जिसकी सेना अधिक थी, अतः रूप चंद ने सतलुज नदी के तट पर उसे भी कुछ लूट का माल दे दिया। इससे अप्रसन्न होकर फिरोजशाह तुगलक ने सन् 1361 में नगरकोट पर आक्रमण किया। उसने ज्वालामुखी मंदिर को तोड़ डाला, वहां से 1300 संस्कृत ग्रंथ फारसी में अनुवाद के लिए ले गया। राजा रूप चंद नगरकोट किले में मोर्चा बांध बैठ गया। मुआसिर-अल-उमरा में उल्लेख है कि सुलतान ने अपने महान साधनों से इसे जीतने का प्रयत्न किया। बहुत दिनों तक घेरा डालने पर भी अंत में उसने अनुभव किया कि इसे जीतना कठिन है, इसलिए उसने राजा से केवल भेंट करके ही संतोष प्राप्त किया तथा अपने मंसूबे से बाज आया।

अकबर के समय कांगड़ा के राजा विधि चंद ने मुगलों के विरुद्ध संगठन बनाया। इस संगठन में कांगड़ा तथा आसपास के राजाओं को सम्मिलित किया। आईने अकबरी में लिखा है, इनमें राजा विधि चंद (नगरकोट), राय प्रताप (मान कोट), राजा परसराम (माउंट जम्मू), राजा बासु (माऊ), राय बलभादर (लखनपुर) थे। अकबर ने जैन खां कोका को विशाल सेना के साथ भेजा। उसने पठानकोट से सतलुज तक के सभी राजाओं को हरा दिया और मुगल दरबार में हाजिर किया।

सन् 1594-95 में पुनः विद्रोह किया गया जिसका नेतृत्व जसरोटा के राजा ने किया। कांगड़ा का राजा विधि चंद संभवतः उस समय दिल्ली में था। कांगड़ा की रानी ने अपने दो दूत उपहारों सहित जसरोटा के राजा के पास भेजे। शेख फरीद (मुर्तजा खान) ने यह विद्रोह दबा दिया।

हिमाचल का महाराणा प्रताप चंद्रभान चंद (1627-1660)

चंद्रभान कांगड़ा के इतिहास में महाराणा प्रताप के समान था। चंद्रभान के किस्से आज भी कांगड़ा की धरती में गर्व से सुनाए जाते हैं। उसने कांगड़ा पर मुगलों का पूर्णतया अधिकार होते हुए भी अकेले संघर्ष जारी रखा और मुगलों के आतंक के बीच एक-एक योद्धा तैयार किया।

सन् 1612 में हरि चंद द्वितीय कांगड़ा का राजा बना तो वह मात्र चार वर्ष का था। हरि चंद का पिता त्रिलोक चंद जहांगीर ने मरवा दिया था। इतिहास में उल्लेख है कि राजा त्रिलोक चंद जहांगीर के गद्दी संभालने पर बधाई देने वाले राजाओं में शामिल था। जहांगीर ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया किंतु गुप्त रूप से उसे बंदी बनाने का आदेश दिया। त्रिलोक चंद को पता चला तो वह अपने दो-तीन साथियों सहित भाग निकला। उसे पकड़ने भेजी सैनिक टुकड़ी ने राजा को आनंदपुर

के निकट कीरतपुर में पकड़ लिया। राजा लड़ते-लड़ते मारा गया। नगरकोट किले पर जहांगीर द्वारा आक्रमण के समय त्रिलोक चंद का उल्लेख नहीं आता, अतः वह 1612 में ही मार दिया गया होगा तभी हरि चंद द्वितीय राजा बनाया गया।

जहांगीर की आंखों में नगरकोट का किला खटक रहा था। अतः उसने सन् 1615 में, जब राजा हरि चंद मात्र सात वर्ष का था, निजाम मुर्तजा तथा नूरपुर के राजा सूरजमल को कांगड़ा किला फतह करने भेजा। मुर्तजा खां पहले भी 1594-95 में पहाड़ी राजाओं का विद्रोह दबाने नगरकोट आ चुका था। कांगड़ा किले को घेरने के बाद सूरजमल ने गतिरोध पैदा कर दिए क्योंकि वह किले का आत्मसमर्पण नहीं चाहता था। अतः अभियान असफल रहा और सूरजमल वापस बुला लिया गया। सन् 1616 में मुर्तजा खान की मृत्यु हो गई। सूरजमल को शहजादे खुर्रम के साथ दक्षिण भेज दिया गया।

सन् 1617 में सूरजमल ने जहांगीर को कांगड़ा किला जीतने के लिए पत्र लिखा क्योंकि सूरजमल दक्षिण से पहाड़ों में वापस जाना चाहता था। इस बात की मंजूरी मिल गई और इस बार सूरजमल के साथ खुर्रम के सेवक बख्शी तकी को साथ भेजा गया। यहां आकर सूरजमल ने तकी के साथ झगड़ा कर लिया और उसे वापस बुला लिया गया। सूरजमल ने विद्रोह कर दिया और शाही फौजों में से अधिकांश को अपनी-अपनी जागीरों में वापस भेज दिया।

विद्रोह की खबर सुन बादशाह ने राजा विक्रमाजीत (सुंदरदास राय रायां) को भारी सेना तथा सूरजमल के छोटे भाई जगत सिंह को बंगाल से वापस बुलाकर भेजा। सूरजमल हारकर चंबा की ओर भाग गया जहां सन् 1619 में उसकी मृत्यु हो गई।

5 सितंबर, 1619 को मुगल सेना ने कांगड़ा का घेराव किया, इस समय राजा हरि चंद मात्र बारह वर्ष का था। खाद्यान्न की कमी हो जाने से 16 नवंबर, 1920 को आत्मसमर्पण हुआ और गौरवपूर्ण किला मुगलों के अधीन हो गया।

कांगड़ा मुगल साम्राज्य में मिलाकर हरि चंद के लिए राजगीर का तालुका छोड़ा गया। हरि चंद ने हार नहीं मानी और छापामार युद्ध करता रहा। कहीं छापामार युद्ध में या मुगलों द्वारा पकड़े जाने पर सन् 1626 से पहले ही हरि चंद को मार दिया गया। जहांगीर ने अपने जीवन काल में ही उसे मरवा दिया।

सन् 1622 के आरंभ में जहांगीर स्वयं कांगड़ा आया। उसने किले में द्वार बनवाया जिस पर विजय तिथि अंकित करवाई। किले के भीतर खुतवा पढ़ा गया, एक गाय का वध किया गया और किले में मस्जिद बनाने का आदेश दिया।

राजा हरि चंद को अल्पायु (18 वर्ष) में मरवाए जाने पर उस समय कांगड़ा का गौरवशाली राजवंश समाप्ति के कगार पर आ गया होगा, क्योंकि हरि चंद की

कोई संतान भी नहीं थी। किंतु चंद्रभान ने उस गौरवशाली परंपरा को मरने नहीं दिया यद्यपि हरि चंद के बाद चंद्रभान चंद को राजा नहीं कहा गया। चंद्रभान, राजा धर्म चंद के भाई कल्याण चंद के वंश से था।

जनश्रुति है कि राजपरिवार की महिला या रानी को रात में स्वप्न हुआ कि आकाश से चांद टूटा और उसकी गोद में आ गिरा। सुबह ही उसने यह स्वप्न पुरोहित को बताया तो पुरोहित ने कहा कि कांगड़ा का राज अब लौट आएगा। इस बालक का नाम चंद्रभान रखा गया। यह उस समय की घटना रही होगी जब राजा विधि चंद ने पहाड़ी राजाओं को संगठित किया था किंतु अकबर द्वारा भेजे जैन खां कोका द्वारा पराजय हुई। पहाड़ के तेरह राजाओं को मुगल दरबार में भेंट के साथ हाजिर होना पड़ा।

तारीख़-ए-पंजाब में जिक्र है कि चंद्रभान कांगड़ा किले पर कब्जे के समय किले में मौजूद था। हचिसन-वोगल ने भी उल्लेख किया है कि किले में आत्मसमर्पण के समय हरि चंद का एक चाचा मौजूद था। संभवतः वह चंद्रभान ही था। वैसे भी हरि चंद उस समय मात्र बारह वर्ष का था अतः किले में सेना का नेतृत्व किसी ने तो किया होगा। संभवतः वह चाचा चंद्रभान ही रहा होगा।

तारीख़-ए-पंजाब में जिक्र है कि किले से भागने के बाद चंद्रभान एक लुटेरे के रूप में रहा, ठीक वैसे ही जैसे जम्मू में मियां दीदो था। उसने जंगल-जंगल भटककर छापामार युद्ध किया। दिन में वह छिप जाता और रात को सक्रिय हो जाता। कांगड़ा के अतिरिक्त निचले क्षेत्रों में उसने लूटपाट की जो मुगलों के अधीन थे। उसके हमलों से कांगड़ा किले में मुगल सेना परेशान हो गई।

चंद्रभान की बहादुरी के किस्से जनमानस में गर्व से सुनाए जाते हैं। मुगलों के सताने पर चंद्रभान दर-दर भटकता रहा। अंत में पुरोहित के घर छिपा। वहां से उसने रात को घर-घर बैठना शुरू किया। आज रात एक घर में तो कल दूसरे में। धीरे-धीरे उसने कटोचों को इकट्ठा किया। जब कुछ सैनिक इकट्ठा हो गए तो उसने सब गांवों से बकरियां उधार लीं। रात को बकरियों के मुंह बांध उनके सींगों में मशालें बांधकर जला दी गईं और रात को बकरियां पहाड़ी से उतारना शुरू किया। ऊपर धौंसे (नगारे) में चोट डाल दी। युद्धसूचक ध्वनि सुन बौखलाए मुगलों ने ऊपर देखा, हजारों की तादाद में मशालची उतर रहे थे। जिस लश्कर में मशालची ही इतने हों वह सेना कितनी बड़ी होगी। मुगल घबरा गए। हिंदुओं के हाथों मरने की अपेक्षा वे आपस ही में कट मरे। किले पर चंद्रभान का कब्जा हो गया। यह किला कांगड़ा किला न होकर कोई दूसरा किला रहा होगा। किंतु लोक में यह धारणा है कि मुगलों के कट मरने पर कांगड़ा के दिन फिर गए।

हचिसन-वोगल ने लिखा है कि चंद्रभान ने जब मुगलों का क्षेत्र लूटना आरंभ किया तो उसे पकड़ने के लिए सेना भेजी गई किंतु वह हाथ नहीं आया। अंत में दिल्ली से सेना भेजी गई। चंद्रभान धौलाधार में नौ हजार फुट की ऊंचाई पर भाग गया और मुगलों के हाथ नहीं आया। यह पहाड़ी अब भी चंद्रभान का टीला कही जाती है। कहा जाता है, चंद्रभान ने नरवाणा में किला बनाया। नरवाणा, धर्मशाला-चामुंडा मार्ग पर है। यहीं चामुंडा-डाढ के पास चंद्रभान टीला है जहां वह मुगलों से बचने के लिए पहाड़ पर चढ़ा था।

चंद्रभान के इस प्रकार जीवन व्यतीत करने के समय संभवतः कांगड़ा में कोई राजा नहीं था। कांगड़ा किले के समर्पण के बाद कांगड़ा को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। हरि चंद को गुजारे के लिए राजगीर का तालुका छोड़ना पड़ा। हरि चंद ने भी हार नहीं मानी और छापामार युद्ध करता रहा। कहीं छापामार युद्ध में या मुगलों द्वारा पकड़े जाने पर सन् 1626 से पहले हरि चंद को मार दिया गया। जहांगीर ने अपने जीवनकाल में ही हरि चंद को मरवा दिया था।

लोकास्था है कि हरि चंद को जहांगीर ने दिल्ली में कैद कर लिया। वहां और भी पहाड़ी राजा कैद थे। सभी राजा मजे से मांस-भात खाते थे। हरि चंद को अपने पहाड़ों और साग की याद आती थी। वह ज्वालामाई से प्रार्थना करता था :

सब सब राजे मास भत्त खांदे, हरिचंद रौंदा सागे जो।
छड़ी दे ओ ज्वाला राजे जो।

सभी राजा लोग मांस-भात खाते हैं। हरि चंद साग के लिए तरसता है। हे ज्वालामाई! राज्य छुड़ा दे। मान्यता है कि ज्वालामाई ने सुन ली और रात को जब बादशाह सोया तो उसे बिस्तर से गिरा दिया। जब बादशाह सोता उसे नीचे गिरा दिया जाता। अंत में देवी ने आदेश दिया कि पहाड़ी राजा को छोड़ दो। सुबह बादशाह ने राजा को दरबार में बुलाया और छोड़ने का आदेश सुनाया। तब राजा ने कहा कि जितने पहाड़ी पंछी यहां कैद हैं, यदि आप उन सबको छोड़ेंगे, तभी मैं भी जाऊंगा।

वह तो जनमानस की एक आशावादी कल्पना है किंतु इतिहास कहता है कि हरि चंद को सन् 1626 के लगभग मार दिया गया जब वह मात्र 18 वर्ष का रहा होगा।

सन् 1626 के बाद कांगड़ा का राज्य बिना राजा के हो गया क्योंकि चंद्रभान तो मुगलों से छिपता हुआ मारा-मारा फिरता रहा। वह पहाड़ों का बेताज बादशाह था।

तारीख़-ए-पंजाब में उल्लेख है कि अंत में तंग आकर मुगलों ने चंद्रभान को पकड़ने की योजना बनाई। बादशाह ने उसे जागीर देने का प्रस्ताव रखा, यदि वह

मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ले। चंद्रभान को मानकोट किले में बुलाया गया और वहां सन् 1641 में मार दिया गया।

दूसरे मत के अनुसार छापामार युद्ध से तंग आकर औरंगजेब ने एक भारी सेना भेजी। आखिर सन् 1660 में चंद्रभान पकड़ा गया और उसे बंदी बनाकर दिल्ली ले जाया गया। कहा जाता है कि चंद्रभान की मृत्यु दिल्ली में ही हुई या उसे मार दिया गया।

सन् 1660 में चंद्रभान का पुत्र उत्तराधिकारी बना जिसे चंद्रभान की मृत्यु के समय औरंगजेब ने दिल्ली बुलाया किंतु वह नहीं गया। उसने व्यास नदी के किनारे बीजापुर नगर बसाया जो राजधानी भी रहा। दिल्ली न जाने पर औरंगजेब ने छोटे भाई उदयराम चंद को राजा बनाया और राजगीर के साथ नादौन, पलम, महलसराय, जयसुख और मालहार के ताल्लुक भी वापस किए। किंतु चंद्रभान के बाद बड़ा भाई विजय राम ही उत्तराधिकारी बना जिसकी मृत्यु 1687 में हुई।

नूरपुर के राजाओं द्वारा विद्रोह

कांगड़ा के राजा विधि चंद (1885-1605) ने जब मुगलों के विरुद्ध संगठन बनाया तो नूरपुर के राजा बासु (1580-1613) ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया किंतु अकबर द्वारा भेजे जैन खां कोका ने इसे दबा दिया। पहाड़ी राजाओं को अकबर के दरबार में हाजिर होना पड़ा। सन् 1594-95 को राजा बासु ने पुनः विद्रोह कर दिया। अकबर ने मिर्जा रुस्तम कंधारी तथा आसफ खां को भेजा जो विद्रोह नहीं दबा पाए। अतः मिर्जा रुस्तम को वापस बुलाकर राजा मान सिंह के पुत्र जगत सिंह को भेजा जिसने दो मास की घेराबंदी के बाद राजा बासु से आत्मसमर्पण करवाया। उसे क्षमा कर दिया किंतु पठानकोट का क्षेत्र मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

नूरपुर के राजाओं ने मुगलों के लिए बड़ी लड़ाइयां लड़ीं और उनके लिए इलाके जीते। ये राजा सदा मुगल सेना में अग्रणी रहे। जगत सिंह ने उत्तर-पश्चिम अभियान में बदखशां को जीता और उजबेकों के छक्के छुड़ाए। जगत सिंह का पुत्र राजरूप कंधार तथा ईरान में लड़ता रहा। किंतु मौका मिलते ही इन राजाओं ने मुगलों के विद्रोह में कभी कसर नहीं रखी।

राजा बासु के बाद सूरजमल (1613-18) ने दो बार मुगलों के कांगड़ा विजय के अभियान को असफल किया। पहली बार जहांगीर ने सन् 1615 में पंजाब के सूबेदार शेख फरीद मुर्तजा खां के साथ सूरजमल को कांगड़ा किला जीतने भेजा। सूरजमल ने इस अभियान में बाधा डाली और मुर्तजा खां की जहांगीर को शिकायत भेजी। अतः अभियान असफल हुआ। दूसरी बार सूरजमल ने स्वयं कांगड़ा किले को

जीतने की पेशकश बादशाह के सामने रखी। बादशाह ने अनुमति दे दी और शाह कुली खां मुहम्मद तकी को साथ भेजा। सूरजमल ने कांगड़ा पहुंच तकी से झगड़ा कर लिया अतः तकी को वापस बुला लिया। सूरजमल ने मुगल सेनाओं को अपनी-अपनी जागीरों में वापस कर दिया और मुगलों के क्षेत्र में छापे मारकर खुलकर विद्रोह कर दिया। अतः जहांगीर ने राजा विक्रमाजीत (सुंदरदास राय रायां) को सूरजमल के भाई जगत सिंह, जो बंगाल में था, के साथ भारी सेना सहित भेजा। सूरजमल चंबा भाग गया जहां 1619 में उसकी मृत्यु हो गई।

राजा जगत सिंह (1619-1646) के समय जहांगीर कांगड़ा (1622) में आया। कांगड़ा से लौटते हुए वह धमेड़ा (नूरपुर) से गया। वहां नूरजहां के लिए महल बनाने की योजना बनी। काम आरंभ हो गया। किंतु जगत सिंह ने चतुराई से गिल्लड़ वाले लोगों को काम पर लगाया कि यहां जलवायु में गिल्लड़ हो जाते हैं, अतः योजना स्थगित हुई। सन् 1640 में जगत सिंह ने शाहजहां के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और माओकोट, तारागढ़, नूरपुर के दुर्गों को विजय कर राजा तथा पुत्र राजरूप तारागढ़ किले में डट गए। मुगल सेनाओं ने राजा का पीछा किया और नूरपुर तथा तारागढ़ तोड़ दिए। आखिर शाहजहां ने दोनों को क्षमा कर दिया।

संसार चंद द्वारा कांगड़ा किले की रक्षा

कांगड़ा के महाराजा संसार चंद (1775-1823) ने पहाड़ी गौरव के प्रतीक कांगड़ा किले को सन् 1620 के बाद पुनः मुगलों के चंगुल से छुड़ाया। डेढ़ सौ वर्ष बाद सन् 1786 में संसार चंद ने लगातार प्रयास के बाद गौरवशाली किले को पुनः अपने कब्जे में किया। राजा ने जयसिंह कन्हैया की सहायता से एक वर्ष घेरा डालने के बाद कांगड़ा किला जीता। किंतु इस पर जयसिंह कन्हैया ने कब्जा जमा लिया। चार वर्ष बाद 1786 में संसार चंद ने इसे पुनः हासिल किया। इस बार संसार चंद ने महासिंह से सहायता ली और छह महीने की घेराबंदी के बाद किले पर कब्जा किया।

गोरखा आक्रमण के समय हार होते हुए भी संसार चंद ने कांगड़ा किले को गोरखों के कब्जे में नहीं जाने दिया। जब सन् 1805 में गोरखों ने सतलुज पार कर कांगड़ा पर हमला बोला तो राजा संसार चंद की महलमोरियां में हार हुई। संसार चंद को पहले सुजानपुर और अंततः कांगड़ा किले में शरण लेनी पड़ी। चार वर्षों तक गोरखों ने किले को घेरे रखा। हालांकि इस समय कांगड़ा की स्थिति दयनीय हो गई, नगर उजड़ गए, फसलें नहीं उग पाईं तथापि कांगड़ा किला गोरखों के आधिपत्य में नहीं आ पाया। चार वर्षों के संघर्ष में किले में खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। राजा तथा सेना को घास-पात खाकर गुजारा करना पड़ा। तथापि एक दिन संसार चंद

चुपचाप किसान वेश में किले से बाहर निकल गया और सुजानपुर टिहरा चला गया। चारों ओर गोरखा सेना होते हुए भी उसने रणजीत सिंह को आमंत्रण दिया और ज्वालामुखी मंदिर में संधि हुई। चार वर्ष बाद रणजीत सिंह ने गोरखों को खदेड़ा। वे किले को नहीं जीत पाए, यद्यपि अब किले पर रणजीत सिंह ने कब्जा कर लिया।

ब्रिटिशकाल में विद्रोह

(कटोच वंश के अंतिम वंशज, जो विद्रोही कहलाए)

प्रमोद चंद

प्रमोद चंद कटोच वंश के महान् शासक महाराजा संसार चंद का अंतिम उत्तराधिकारी था जिसने अंग्रेजों के विरुद्ध अपना गौरवपूर्ण राज्य लेने के लिए झंडा उठाया।

संसार चंद के बाद अनिरुद्ध चंद (1823) गद्दी पर बैठा। सन् 1827 में जब अनिरुद्ध चंद लाहौर नजराना देने गया तो उसके साथ उसकी दो बहनें भी थीं। जम्मू के राजा ध्यान सिंह ने, जो महाराजा रणजीत सिंह का मुख्यमंत्री था, दोनों बहनों को देखा। उसने उनके विवाह का प्रस्ताव अपने पुत्र हीरा सिंह के साथ रखा। अनिरुद्ध चंद वहां विवश था अतः अपनी स्वीकृति दे दी। वास्तव में यह संबंध कटोच वंश की आनबान के खिलाफ था। अपनी पुरानी परंपरा के अनुसार राजा की राजकुमारी किसी राजा से ही विवाह करती थी। अतः अनिरुद्ध चंद टालमटोल करता रहा। उसने बहाना लगाया कि अभी उसकी मां की मृत्यु हुई है, अतः एक वर्ष के भीतर विवाह नहीं किया जा सकता। एक वर्ष बाद ध्यान सिंह के कहने पर रणजीत सिंह ने नादौन के लिए प्रस्थान किया। यह सुनकर अनिरुद्ध चंद ने अपनी मां और बहनों को सतलुज के पार भेज दिया जहां ब्रिटिश सरकार की सीमा था। जब रणजीत सिंह अदीनानगर पहुंचा तो वह भी राजपाट और देश छोड़ ब्रिटिश क्षेत्र में चला गया।

कर्नल फ्रांसिस ने लिखा है : मगर इस वादे को पूरा करने की हरगिज मंशा न थी। क्योंकि यह अपने वंश की इज्जत पर धब्बा लगाने के बजाय राजपाट छोड़ देशनिकाले की हालत में जीवन व्यतीत करने को बेहतर समझता था। बस यही सोचकर कि महाराज से मुकाबला करना बेवकूफी है, वह चुपके से अपने घर के तमाम आदमियों सहित सतलुज पार करके अंग्रेजी इलाके में चला गया। रणजीत सिंह अपने आदेश की अवहेलना से बहुत भड़क उठा। लेकिन कर क्या सकता था? क्योंकि अब राजा की जान और मान सुरक्षित थे मगर इसके राज्य को सिखों ने खालसा हुकूमत में शामिल कर लिया था।

कुछ दिन हरिद्वार में रहने के बाद उसने अपनी दोनों बहनों का विवाह टिहरी गढ़वाल के राजा सुदर्शन शाह से कर दिया। इसके बाद वे शिमला की बाघल रियासत में रहने लगे। सन् 1831 में देशनिकाले की स्थिति में ही अनिरुद्ध चंद की अधरंग से मृत्यु हो गई।

अनिरुद्ध चंद के रणवीर चंद और प्रमोद चंद दो पुत्र थे। ब्रिटिश सरकार के कहने पर रणजीत सिंह ने इन्हें कांगड़ा वापस बुलाया और पचास हजार रुपए की जागीर महलमोरियां में दी। क्योंकि नादौन में जोधवीर चंद और राजगीर में फतह चंद (संसार चंद के भाई) को रणजीत सिंह ने जागारें दे दी थीं।

अनिरुद्ध चंद के दोनों बेटों को जालंधर दोआब में भी जागीर की पेशकश की गई थी। इसके साथ यह भी प्रस्ताव था कि यदि वे पांच लाख रुपए प्रति वर्ष नजराना देते हैं तो सुजानपुर टिहरा भी दिया जा सकता है। सुजानपुर टिहरा में लहना सिंह सिंघावाला तथा कंवर शेर सिंह रहते थे। अंत में राजा ध्यान सिंह की मध्यस्थता में महलमोरियां की जागीर दी गई।

सन् 1835 में विगने ने इनसे भेंट की। विगने ने लिखा है कि वे दो या तीन नीची छत वाले घरों में रहते थे और महाराजा की आज्ञा से आसपास के क्षेत्र से तीस हजार रुपए एकत्र करते थे। दो भाइयों में बड़ा, जो टिहरा का उत्तराधिकारी राजा था, बहुत सामाजिक था और उसने मुझे प्रातः जाने से पहले ब्रेकफास्ट खिलाया। उसने विगने को वह पत्र भी दिखाया जो उसके दादा ने लॉर्ड लेक से प्राप्त किया था और एक चिट जो मूरक्राफ्ट ने दी थी, वह भी दिखाई। 1846 में जब सिख-अंग्रेज युद्ध हुआ तो रणवीर चंद ने सिखों को अपने क्षेत्र से निकालने की जितनी सहायता हो सकती थी, की। इस बीच छोटे भाई प्रमोद चंद ने बहुत संख्या में कटोच योद्धा एकत्र किए और अपने पूर्वजों के टिहरा तथा रियाह के किले अपने कब्जे में कर लिए। पठियार तथा खड़ोट के किले, जो पालमपुर क्षेत्र में थे तथा सोला सींगी और चौमुखे-से किले, जो नादौन क्षेत्र में थे, वे भी अपने कब्जे में किए। राजा कुटलैहड़ ने चौकी पर कब्जा कर लिया। यह सब सन् 1846 में हुआ।

अंग्रेज सरकार के आने पर रणवीर चंद को महलमोरियां की जागीर बहाल रखी गई। लड़ाई में हुए खर्च का मुआवजा भी दिया गया। सन् 1847 में रणवीर चंद की मृत्यु हो गई और रियासत प्रमोद चंद को मिली।

सतलुज के पास शिमला हिल स्टेट्स में अंग्रेजों ने ठकुराइयां स्थानीय शासकों को लौटा दीं। सभी राणा ठाकुर स्वायत्त बने रहे। अंग्रेजों की उदारता का समाचार सुन इस ओर के राजा भी अंग्रेजों के राज का इंतजार करने लगे। किंतु जब उन्हें पता चला कि सतलुज के इस ओर का इलाका अंग्रेजों ने अपने लिए जीता है तो

वे निराश हो गए। अतः कुछ पहाड़ी राजाओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह में प्रमोद चंद ने आसपास के राजाओं को इकट्ठा किया। लोगों को खबर भेजी कि कांगड़ा का राज फिर से आ रहा है। प्रमोद चंद ने महलमोरियां से सेना सहित कूच किया और रियाई, अभियानपुर किलों पर कब्जा कर लिया। सिख-अंग्रेज लड़ाई के दौरान उसने टिहरा, रिहाई, पठियार, खड़ोट, सोलासींगी, चौमुखा किलों पर कब्जा तो कर ही लिया था, उसने सेना एकत्र कर अंग्रेजी सेना पर धावा भी बोला। अंग्रेजी सेना टिहरा से दस मील दूर ठहरी हुई थी। नदी पार कर सेना जब अंग्रेजी सेना के समीप आई तो अंग्रेजों ने खूब गोलियां चलाईं। सेना का सरदार जख्मी हुआ। प्रमोद चंद गिरफ्तार हो गया और सेना भाग गई। इस विद्रोह में प्रमोद चंद के अतिरिक्त जसवां के राजा उमेद सिंह, राजकुमार जय सिंह और दतारपुर के राजा जगत चंद ने भाग लिया।

कर्नल फ्रांसिस मैसी ने लिखा है :

'कांगड़ा के तीन रईसों ने 1848-49 में पंजाब की लड़ाई के दिनों में बलवा किया। पहाड़ों में गुप्तचर भेजे गए थे कि लोगों को विद्रोह करने के लिए उकसाएं और उनसे कहें कि अगर इसमें सफलता मिली तो तुम्हारी पैतृक रियासतें तुम्हें वापस मिल जाएंगी। प्रमोद चंद उन रईसों में था जिन्होंने सिखों की विनती को मंजूर करके सहायता न देने का वादा किया था। 1848 ई. के अंत में इसकी चालाकियां (कांस्परेसी) और षड्यंत्र साफ तौर पर जाहिर हो गए। इसने महलमोरियां से कूच करके आसपास के किले रियाह और अभियानपुर पर कब्जा कर लिया। सलामी की तोपें दागी गईं और प्रजा को सूचना दी गई कि तुम्हारा मौरूसी रईस फिर अपने मुल्क का शासक हो गया। जिले के हाकिम ने इस नौजवान को बहुत समझाया कि इस बेवकूफी को छोड़कर होश में आए और यह भी कहा कि अगर वह अपनी फौज छोड़कर घर वापस चला जाएगा तो सरकार उसका कसूर माफ कर देगी मगर उसने इन नेक सलाहों को न माना। 3 दिसंबर को समाचार आया कि कटोचों के 800 फौजियों ने अंग्रेजी फौज पर, जो टिहरा से 10 मील के अंतर पर ठहरी है, धावा बोलने की नीयत से नदी पार की है। थोड़े समय के बाद विद्रोही एक चौड़े नाले के सामने छोर पर नजर आए जिन पर खूब गोलियां चलाई गईं। उसका सरदार जख्मी हुआ और थोड़ी सी लड़ाई के बाद सब भाग गए। इनका टिहरा की दीवारों तक पीछा किया गया। प्रमोद चंद गिरफ्तार कर अल्मोड़ा भेजा गया जहां वह तीन साल बाद बेऔलाद मर गया।'

कर्नल मैसी ने प्रमोद चंद के इस जेहाद को और संघर्ष को 'थोड़ी सी लड़ाई' का नाम दिया है। किंतु प्रमोद चंद ने महलमोरियां से चलकर रियाई तथा अभियानपुर के

किले को जीत लिया। इक्कीस तोपों की सलामी लेकर प्रमोद चंद को राजा घोषित किया गया। सुजानपुर टिहरा का किला जीतकर वहां शस्त्रास्त्र जमा कर लिए गए। दिसंबर, 1848 में जब पठानकोट से आई अंग्रेज सेना ने सुजानपुर को घेरा, दतारपुर तथा जसवां की सेना भी अंग्रेजों पर धावा बोलने आगे बढ़ी। नदी पार कर जब धावा बोला गया तो अंग्रेज सेना को खबर हो चुकी थी अतः घमासान लड़ाई में प्रमोद चंद की सेना का सेनापति घायल हो गया या संभवतः उसकी मृत्यु हो गई। अतः कटोच सेना को पीछे हटना पड़ा। अंग्रेजों ने सुजानपुर टिहरा पर आक्रमण किया और किले तथा महलों को तोपों से उड़ा दिया। अतः प्रमोद चंद बंदी बनाया गया।

इस अभियान में संसार चंद के भाई फतह चंद के पुत्र लुदर चंद ने प्रमोद चंद का साथ नहीं दिया। कर्नल मैसी ने लिखा है :

'1848-49 के विद्रोह के समय इसका (लुदर चंद) चाल-चलन बहुत अच्छा रहा था। इसने सिर्फ यही नहीं किया कि अपने भटके हुए रिश्तेदार प्रमोद चंद के साथ शामिल होने से इनकार किया बल्कि वह स्वयं जालंधर गया और जॉन लॉरेंस साहब कमिश्नर को पहाड़ में विद्रोह होने की सूचना दी।'

प्रमोद चंद की मृत्यु गिरफ्तारी की हालत में अल्मोड़ा में सन् 1847 में हुई। अतः संसार चंद के वंश का अंतिम उत्तराधिकारी अपने गौरवशाली वंश और साम्राज्य की बहाली के प्रयास में मारा गया।

कांगड़ा का क्षेत्र अंग्रेजों के आधिपत्य में आया और फतह चंद के पुत्र लुदर चंद को कटोच वंश का उत्तराधिकारी बनाया। उधर नादौण में जुधवीर चंद या जोधवीर चंद को जागीर सौंपी। अतः कांगड़ा के गौरवशाली विस्तृत और समृद्ध राज्य का अंत हुआ।

कांगड़ा की हार पर दतारपुर और जसवां के राजाओं के भी हौसले टूट गए। फिर भी वे बहादुरी से लड़े। अंततः पकड़े गए और बंदी बनाकर अल्मोड़ा भेजे गए। दतारपुर के राजा जगत सिंह की अल्मोड़ा में मृत्यु हो गई। जसवां के राजा उमेद, उसके पुत्र जय सिंह को भी अंब तथा खरोट के किले में हराकर बंदी बनाया और अल्मोड़ा भेजा गया।

राम सिंह पठानिया (नूरपुर)

राम सिंह पठानिया नूरपुर के इतिहास में वीर सेनानी हुआ जिसने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सन् 1849 में लड़ाई लड़ी। कांगड़ा के चंद्रभान की भांति राम सिंह पठानिया के किस्से और गाथा आज भी गाई जाती है। राम सिंह पठानिया राजा वीर सिंह (1789-1846) का वजीर था।

वीर सिंह सिख साम्राज्य के समय विद्रोह के कारण बुरे दिनों का शिकार हुआ।

सन् 1815 में रणजीत सिंह ने सियालकोट में अपने अधीन राजाओं का सम्मेलन किया जिसमें नूरपुर तथा जसवां के राजा उपस्थित नहीं हुए। अतः उन्हें इतना जुर्माना किया गया कि वे भर ही न पाएं। वीर सिंह ने अपना सब कुछ गिरवी रख दिया, राजघराने की मूर्तियां, सोने-चांदी के बर्तन भी बेच दिए फिर भी जुर्माना भरा नहीं गया। रणजीत सिंह राजा को राज्य के बदले जागीर देने की पेशकश की। वीर सिंह रातोरात चंबा चला गया और सेना ब्रिटिश क्षेत्र में भाग गई। सन् 1816 में उसने काबुल-निर्वासित अमीर शाहशुजा के साथ मिलकर रणजीत सिंह के खिलाफ षड्यंत्र किया। सिखों ने उसकी अंग्रेजों से शिकायत की अतः वह अर्की चला गया और दस वर्ष वहीं रहा। सन् 1826 में वीर सिंह वेश बदलकर चंबा आया और प्रजा को एकत्र कर किले का घेराव कर लिया। किंतु लाहौर से सेना आने पर वह पुनः चंबा चला गया। चंबा के राजा ने डर के मारे उसे सिखों को सौंप दिया। सिखों ने उसे सात वर्ष तक अमृतसर गोबिंदगढ़ किले में कैद रखा। अंततः चंबा के राजा ने सात वर्ष बाद 8500 रुपए देकर उसे छुड़ाया। रणजीत सिंह ने उसे रावी के किनारे जागीर देनी चाही किंतु वीर सिंह से मना कर दिया। वह डमटाल में रहकर समय का इंतजार करता रहा। जब 1845 में सिख सेना हार गई तो वीर सिंह ने विद्रोह किया और नूरपुर किले को घेर दिया। किंतु वह इतना वृद्ध हो चुका था कि किले की दीवारों के साथ अपने प्राण त्याग दिए।

प्रथम सिख युद्ध के बाद सतलुज से संधि तक सारा पहाड़ी क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन हो गया। सन् 1848 में पहाड़ी राजाओं ने विद्रोह किया जिसमें वीर सिंह के पुत्र जसवंत सिंह और वजीर राम सिंह पठानिया ने भाग लिया।

वीर सिंह की मृत्यु के समय उसका पुत्र जसवंत सिंह अवयस्क था। राम सिंह पठानिया ने जम्मू से सेना एकत्र की और रावी पार कर शाहपुर किले पर कब्जा कर लिया। उसने जसवंत सिंह को, जो दस वर्ष का था, राजा घोषित किया और स्वयं को वजीर। होशियारपुर से ब्रिटिश सेना आ गई तो राम सिंह तथा साथियों ने किला खाली कर दिया और जंगलों में मोर्चा बनाया। इस हमले के बाद राम सिंह गुजरात भाग गया। जनवरी 1849 में वह पुनः वापस आया। उसके साथ दो सिख सेनाएं भी थीं। राम सिंह पठानिया ने डेल्ले की धार में मोर्चा बनाया। राम सिंह ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी अतः ब्रिगेडियर व्हीलर के साथ अंग्रेजों ने सेना भेजी। लड़ाई में राम सिंह ने कड़ा मुकाबला किया। दोनों पक्षों की सेनाओं का बहुत नुकसान हुआ। कई अंग्रेज अधिकारी मारे गए। तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री सर रॉबर्ट पॉल के भतीजे लेफ्टिनेंट जॉन पॉल सहित दो युवा अंग्रेज अधिकारी मारे गए।

अंततः राम सिंह पठानिया पकड़ा गया। कहा जाता है कि एक ब्राह्मण ने,

जिसे वह मित्र समझता था, सोने के लालच में उसे पकड़वा दिया। राम सिंह को देशनिकाला देकर सिंगापुर भेजा गया जहां उसकी मृत्यु हो गई। राम सिंह पठानिया की बहादुरी की गाथाएं अभी भी गाई जाती हैं जिसने अंग्रेजों के छक्के छुड़ाए।

कर्नल फ्रांसिस ने लिखा है :

'जब 1848 में बलवा हुआ तो गद्दी से हटाए गए राजा के वजीर के बेटे राम सिंह ने जम्मू के पहाड़ से कुछ साहसी लोग जमा किए और रावी पार करके शाहपुर के खाली किले में प्रवेश कर लिया। इस रात आसपास के लोग बधाई देने आए और ढोल बजाकर मुनादी कराई गई कि अंग्रेजों का शासन समाप्त हो गया है। अब दलीप सिंह (महाराजा रणजीत सिंह का पुत्र) बादशाह है। जसवंत नूरपुर का राजा है और राम सिंह उसका वजीर हो गया। जब यह समाचार होशियारपुर पहुंचा तो थोड़ी सी सेना तुरंत भेजी गई जिसने आते ही किले को घेर लिया। इस फुर्ती और तैयारी को देखकर विद्रोही भयभीत हुए और रात के समय यहां से भागकर नूरपुर के निकट एक पहाड़ी शृंखला पर जहां घना जंगल था, जा जमे। थोड़े समय बाद कमिश्नर जॉन लॉरेंस और डिप्टी कमिश्नर बारनेस साब सहायता लेकर आ पहुंचे और उस स्थान पर, जहां विद्रोही ठहरे थे, आक्रमण किया। राम सिंह के पांव उखड़ गए और उसने भागकर रसूल, जो सिखों की छावनी में था, में शरण ली। उसके पहाड़ पर काबिज रहने के दिनों में आसपास के गांवों से चार सौ आदमियों के लगभग उसके साथ आकर मिल गए थे जिनमें कुछ तो उसके अपने देश के राजपूत थे और अधिकतर लोग बेकार और निकम्मे आदमी थे जिन्हें सम्मिलित होने से कोई हानि नहीं पहुंचती थी।

जनवरी, 1849 में राम सिंह ने शेर सिंह से कह-सुनकर 500 सिपाहियों की दो सिख पलटने लीं और उन्हें साथ लेकर एक बार फिर पहाड़ पर चढ़ाई की और डेले की चोटियों पर जा जमा। उधर से सवार और प्यादों की फौज जनरल व्हीलर की कमान में उन पर आक्रमण करने हेतु भेजी गई। विद्रोही उस स्थान से भगा दिए गए और उनके बहुत से आदमी मारे गए, मगर साथ ही अंग्रेजी फौज को भी हानि हुई। राम सिंह को गिरफ्तार करके सिंगापुर भेजा गया। जसवंत सिंह की आयु उस समय केवल दस वर्ष की थी अतः यह जो कुछ हुआ उसका उत्तरदायी वह नहीं ठहराया जा सकता था।'

फ्रांसिस मैसी ने अंग्रेज सेना की चुस्ती-फुर्ती का तो उल्लेख किया, प्रधानमंत्री के भतीजे तथा युवा अंग्रेज अधिकारियों के राम सिंह के हाथों मरने का जिक्र नहीं किया। राम सिंह के साथ साहसी लोग भी बताए तो बेकार और निकम्मे लोग भी। तथापि उसने घटना को सच्चाई से बताया।

राम सिंह ने अंग्रेज सेना के बहुत नुकसान के बाद आत्मसमर्पण किया।

1857 की क्रांति और हिमाचल

सन् 1857 की क्रांति की सूचना हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों में 11 मई तक पहुंची। 11-12 मई के बाद प्रदेश के सभी भागों में सैनिक और प्रजा द्वारा विद्रोह किया गया।

कांगड़ा में क्रांति

कांगड़ा में विद्रोह की खबर मिलते ही ब्रिटिश सरकार ने सुरक्षा की दृष्टि से कांगड़ा किले को अपने अधिकार में लेना उचित समझा। कांगड़ा किला मेजर पैटरसन की कमान में 4 नेटिव इनफेंट्री देशी सेना के अधिकार में था। देशी सेना की वफादारी संदिग्ध थी अतः 15 मई, 1857 को कमिश्नर एडवर्ड जॉन लेक व डिप्टी कमिश्नर रेयनैल्ल टेलर के आदेशानुसार 'शेर दिल पुलिस बटालियन' ने कांगड़ा किले पर अधिकार कर लिया। किले में डिप्टी कमिश्नर ने छह महीने का राशन रख लिया। हॉबिटजर तोप को किले के सबसे ऊंचे बुर्ज पर रख दिया गया। इस तरह पुलिस के आ जाने से 4 नेटिव इनफैंट्री की विद्रोह की चाल असफल हो गई। डिप्टी कमिश्नर टेलर तथा अन्य अंग्रेजों ने किले में शरण ली।

पुलिस के कांगड़ा किले में चले जाने से धर्मशाला खाली हो गई। जनता ने अंग्रेजों के घरों, कचहरी, कोतवाली में पथराव किया। बचाव के लिए कचहरी, कोतवाली तथा बंगलों के बाहर मजबूत फाटक लगाए गए। एक-एक ब्रिटिश आवास पर चार-चार गार्ड्स तैनात किए गए। 19 मई, 1857 को ऊना-होशियारपुर में सरकारी संपत्ति नष्ट की गई।

राजा प्रताप चंद द्वारा विद्रोह

सन् 1857 में सुजानपुर टिहरा लुदर चंद का पुत्र प्रताप चंद राजा था। संसार चंद के पौत्र प्रमोद की मृत्यु (1847) तथा पिता लुदर चंद की मृत्यु के बाद (1850) में प्रताप चंद कटोच राजपूतों का मुखिया राजा बना था। प्रताप चंद ने अंग्रेजों से बदला लेने के लिए अकेले ही योजना बनाई। प्रजा में क्रांति की बात फैलाने के साथ राजा ने सुजानपुर टिहर के किले में हथियार तथा गोला-बारूद इकट्ठा किया। सैनिकों को भर्ती किया तथा अन्य शासकों से विद्रोह की मंत्रणा की। इस विद्रोह

में टिहरा के थानेदार ने भी सहयोग दिया जो कटोच वंश से ही था। कटोच थानेदार ने सरकारी अधिकारी होने के कारण इस क्रांति में बहुत सहयोग दिया।

अंग्रेज सरकार ने स्थान-स्थान पर हुए विद्रोह को दबाने के लिए राजा से सैनिक सहायता मांगी तो राजा ने इनकार कर दिया। डिप्टी कमिश्नर टेलर को राजा द्वारा सहायता न देने के कारण राजा पर शंका हुई और वह गुप्तचरों द्वारा राजा पर कड़ी निगरानी रखने लगा। कमिश्नर जॉब लेक ने कटोच थानेदार को वहां से बदलकर शाहपुर भेज दिया। एक मुसलमान को नया थानेदार नियुक्त किया गया। मुसलमान थानेदार ने राजा द्वारा विद्रोह की खबर अंग्रेज सरकार को दे दी। अतः अंग्रेजों ने अब राजा को महल में नजरबंद कर दिया। सभी लोगों पर कड़ी निगरानी रखी जाने लगी। अतः प्रताप चंद की योजना विफल हो गई।

सरकार द्वारा नदी के घाटों, मुख्य मार्गों और दर्रों पर नाके लगाए गए और गार्ड तैनात किए गए। बिना प्रवेश पत्र आवागमन बंद किया गया। साधु, फकीर, भिखारी, तीर्थयात्री सभी की जांच होने लगी। जालंधर में नेटिव इंफैंटरी के विद्रोह पर 12 जून, 1857 को सतलुज, रावी और व्यास नदी के घाटों को बंद कर दिया गया। नादौन, हरिपुर, नूरपुर नदी घाटों पर पुलिस पहरा लगाकर नाका गार्ड तैनात किए गए। क्रांति के भय से 28 जून, 1857 को कांगड़ा में सभी लोगों से हथियार छीन लिए गए। सभी के शस्त्र सरकारी शस्त्रागार में जमा करवाए गए।

उधर कांगड़ा किले के बाहर तैनात 4 नेटिव इंफैंटरी का निरस्त्रीकरण पुलिस बटालियन के कमांडर कैप्टन यंग हसबैंड ने किया, क्योंकि सियालकोट में 46 नेटिव इंफैंटरी और 9 कैवेलटी ने विद्रोह कर दिया था। उनके हथियार किले में जमा कर दिए गए। डिप्टी कमिश्नर टेलर ने लिखा है, 'यदि 4 नेटिव इंफैंटरी विद्रोही हो जाती तो युद्ध आरंभ हो सकता था और कड़े संघर्ष में चार सौ गज दूर रखे हॉविटजर तोपखाने का विशेष लाभ न होता और जान-माल का भारी नुकसान होता।'

नाकाबंदी के कारण सियालकोट, पेशावर, जालंधर, मुलतान आदि से क्रांतिकारी इस ओर नहीं आ पाए। फिर भी कुछ क्रांतिकारी जंगलों के रास्ते आ गए और कांगड़ा, नूरपुर, धर्मशाला, हरिपुर में विद्रोह हुआ। नूरपुर में 9 लाइट कैवेलटी के कमांडर ब्रिगेडियर रजमान पकड़े गए और उन्हें नूरपुर में फांसी हुई। 46 नेटिव इंफैंटरी के हवलदार गुगादीन तथा पांच अन्यों को फांसी हुई।

धर्मशाला में छह तथा कांगड़ा में पांच क्रांतिकारियों को फांसी दी गई। फांसी से फैली उत्तेजना के कारण दो सौ से अधिक क्रांतिकारी पकड़कर कांगड़ा से बाहर जेलों में भेज दिए गए।

अंग्रेजों के व्यापक प्रबंधों के कारण क्रांति असफल हो गई। 11 अगस्त, 1857

को पंजाब के चीफ कमिश्नर जॉन लॉरेंस ने देशी सेना और पुलिस को संबोधित किया और विद्रोह की ज्वाला को शांत कर दिया।

प्रताप सिंह

प्रताप सिंह कुल्लू राजवंश में किशन सिंह का पुत्र था जिसका जन्म 1821-22 में हुआ। किशन सिंह ने सन् 1820 में राजगद्दी के लिए कांगड़ा की सहायता से कुल्लू पर हमला किया था और कुल्लू ने अवयस्क राजा जीत सिंह को मंडी भागना पड़ा। बाद में राजा मंडी की सहायता से किशन सिंह को हराकर बंदी बनाया गया जहां बूंगा किला (पलाच) में उसकी मृत्यु हो गई। किशन सिंह की पत्नी गर्भवती थी जिसे सन् 1821 में पुत्र हुआ जिसका नाम प्रताप सिंह रखा गया। जब रणजीत सिंह का ज्वालामुखी आगमन हुआ तो प्रताप सिंह को ज्वालामुखी ले गए जिसे वह अपने साथ लाहौर ले गया। बाद में उसे गांव पंडल की जागीर दी गई।

सन् 1846 में जब सिख-अंग्रेज युद्ध हुआ तो कुल्लू का राजा ठाकुर सिंह (1842-1852) सिखों की ओर से लड़ा। कहा जाता है कि इस समय किशन सिंह का लड़का प्रताप सिंह भी वहां मौजूद था। वह लड़ाई में मारा गया या जीवित रहा, यह ज्ञात नहीं हो सका। सिख-अंग्रेज युद्ध के बाद सतलुज तथा रावी के बीच का क्षेत्र तथा लाहौल-स्पीति अंग्रेजों ने अपने पास रखा तथा जम्मू-कश्मीर का भाग राजा गुलाब सिंह को बेच दिया। राजा ठाकुर सिंह को वजीरी रूपी के अधिकार दिए गए। सन् 1852 में ठाकुर सिंह की मृत्यु के बाद ठाकुर सिंह के पुत्र ज्ञान सिंह को, जो उस समय ग्यारह वर्ष का था, राजा बनाकर 'राय' की उपाधि देकर राजनीतिक शक्तियां छीन लीं।

प्रताप सिंह के आगमन की कथा एक पांडुलिपि में यूं दी गई है :

किशन सिंह का पुत्र प्रताप सिंह, जो सिख-अंग्रेज युद्ध के बाद गायब हो गया था, सन् 1857 की क्रांति के ठीक कुछ समय पहले कुल्लू में प्रकट हो गया। सन् 1856 में एक फकीर कोठी काईस में आया जिसने प्रताप सिंह की एक औरत की बांदी के घर जाकर पुकारा। उस फकीर ने अपने को प्रताप सिंह बताया। दूसरे दिन गांव बदाह कोठी महाराजा में प्रताप की औरत को खबर की गई जिसने अपने भाई वीर सिंह को जांच के लिए भेजा। वीर सिंह ने शक्लोसूरत प्रताप सिंह की तरह बताई तो बहन ने उसे वहां लाने के लिए कहा। बदाह में औरत ने पुष्टि कर दी कि यह प्रताप सिंह ही है। उसका फकीरी वेश बदला, सिर मुंड़वाया गया।

सन् 1857 के समय प्रताप सिंह ने वजीर सूरत के साथ मिलकर राय ज्ञान सिंह को हटाने की योजना बनाई। नीचे अंग्रेजों का संहार हो रहा था अतः अंग्रेजों

से युद्ध के लिए वजीर सूरत राम ने बताया कि सुलतानपुर महलों में सिखों के समय का बहुत सा असला पड़ा हुआ है। प्रताप सिंह ने अंग्रेज कप्तान से शिकायत कर महलों से सारा असला फिंकवा दिया। इससे प्रताप सिंह अंग्रेज सरकार के करीब आ गया।

उन दिनों कुल्लू के अंग्रेजों में एक दहशत फैली हुई थी। कैप्टन हे तथा अन्य अधिकारी आतंकित थे। इसका एक उदाहरण हरदयाल के इतिहास में मिलता है :

'उन दिनों शहर में हैजा था। एक दिन एक औरत इससे मर गई। सांझ समय लोग इसे जलाने को ले गए। रात वापसी पर लकड़ी की मशालें जलाकर लौट रहे थे। किसी ने कप्तान हे को खबर दी कि आपने जो ज्ञान सिंह की औरतों को कैद कर रखा है उनको छुड़ाने के लिए सराजी लोग आ रहे हैं। साहब ने तत्काल तहसीलदार को पता दिया और हमले की तैयारी कर दी। सूबेदार ने कहा, इनको मारना तो मुश्किल नहीं, जब चाहो मारे जा सकते हैं। इतने में साहब हथियार लेकर आ गया और सब मुकाबले को गए। तब साहब ने एक आदमी को पता करने भेजा। तब पता चला कि ये लोग मुर्दा जलाकर घरों को लौट रहे हैं।'

इस विद्रोह में प्रताप सिंह के साथ उसका साला मियां वीर सिंह था जो बैजनाथ का रहने वाला था। इनके साथ सराज के नेगी, कारदार आदि भी थे। सराज के जमींदारों का सहयोग भी उसे प्राप्त हुआ। प्रताप सिंह ने सराज से आगे बीड़ भंगाहल, लाहौल-स्पीति के लोगों से भी संपर्क किया। केलांग में मोरेबियन चर्च मिशन के पादरियों को समाप्त करने की जिम्मेवारी वहां के लोगों को सौंपी गई। उसने गुप्त पत्र सब जगह भिजवाए।

हरदयाल के इतिहास में लिखा है :

'इसके आठ रोज बाद (हैजे से मरी औरत के जलाने की घटना) प्रताप सिंह ने जमींदारान सराज को लिखा कि मुलक मैदान में अंग्रेज मारे गए और हिंदुओं का राज हो गया। सो अगर तुम सब जमा होकर इस तरफ आ जाओ तो ज्ञान सिंह और हे साहब, कर्मचारियों को मारकर कुल्लू राज ले लें। वह चिट्ठी तहसीलदार पलाच ने पकड़ ली और फौरन हे साहब को खबर दी कि कुछ आदमी रख लो। जब हमला होगा तो देखा जाएगा और प्रताप सिंह को कंपनी भेजकर पकड़ लिया और जेलखाने में कैद किया और ज्ञान सिंह के नौकरों को छोड़ दिया और प्रताप सिंह को बाद तहकीकात अमल, जिसमें वह सरकार दौलत गद्दार के मुकाबले में साबित हुआ, फांसी दी गई। और इसके साथियों को मुआफिक हजूर के कैद किया गया।'

धर्मशाला की भागसू जेल में जिन क्रांतिकारियों को पकड़कर डाला गया, वे थे—प्रताप सिंह, वीर सिंह के साथ सरदूल, कांशी, थुलाराम, सूरतदास, मानदास, केशवराम,

देवीदत्त आदि। गद्दारी के अभियोग में प्रताप सिंह तथा उसके साले वीर सिंह को 3 अगस्त, 1857 को धर्मशाला में फांसी दी गई। सात क्रांतिकारियों को तीन वर्ष से चौदह वर्ष की सजा हुई। बारह क्रांतिकारियों को फांसी का दृश्य दिखाकर एक वर्ष की जमानत पर छोड़ा गया।

सरकार ने प्रताप सिंह का महल गिरा दिया। पत्नी को, जिसका नाम रणपतू था, जागीर और पेंशन जब्त कर पुत्र सहित देशनिकाला दिया गया।

कर्नल फ्रांसिस मैसी ने प्रताप सिंह का उल्लेख नहीं किया है। हचिसन-वोगल ने प्रताप सिंह के बारे में एक पैरा दिया है :

'जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गद्दी के लिए अजीत सिंह का दावा उसके चाचा किशन सिंह द्वारा विवाद में डाला गया, जो अपनी मृत्यु के बाद एक पुत्र छोड़ गया। सन् 1857 के गदर के तुरंत पहले, एक व्यक्ति जो अपने को प्रताप सिंह साबित कर रहा था, कुल्लू में प्रकट हुआ। कुछ लोगों ने उस पर विश्वास कर लिया। गदर के समय उसने कुल्लू के राज्य के लिए दावा करते हुए पत्र लिखे और विद्रोह खड़ा करने की कोशिश की। इसके बाद उसे असिस्टेंट कमिश्नर मेजर हे ने बंदी बना लिया और मुकदमे के बाद धर्मशाला में फांसी दी गई। बहुत से लोग हालांकि विश्वास करते हैं कि यह वास्तव में प्रताप सिंह ही था।'

प्रताप सिंह के विद्रोह के बाद पंजाब के चीफ कमिश्नर जॉन लॉरेंस के आदेशानुसार मेजर विलियम हे ने चौदह चौकियां स्थापित कीं। सभी मार्गों पर नाकाबंदी की गई।

बुशहर

क्रांति के दौरान बुशहर के राजा शमशेर सिंह ने अंग्रेज सरकार को कर देना बंद कर दिया। अंग्रेजी हाकिमों को नहीं पूछा, न ही उन्हें खाने-पीने की चीजें दीं। डिप्टी कमिश्नर विलियम हे ने रामपुर फौज भेजनी चाही किंतु उस समय फौज उपलब्ध नहीं थी। क्रांति के बाद ये सलाह दी गई कि राजा को गद्दी से उतार दिया जाए और रियासत शिमला के सुपरिटेंडेंट के सुपुर्द कर दी जाए। किंतु लॉर्ड लॉरेंस ने ऐसा करना उचित नहीं समझा और मामला रफा-दफा हो गया।

मंडी में 1857 की क्रांति के समय वजीर गोसाऊं राज्य का रीजेंट तथा प्रशासक था। मंडी का राजा विजय सेन उस समय दस वर्ष का था। सुकेत में राजा उग्रसेन, टिक्का और वजीर नरोत्तम के बीच गृहयुद्ध चला हुआ था। अतः क्रांतिकारियों को किसी का सहयोग नहीं मिल पाया। मंडी के वजीर गोसाऊं ने 125 बंदूकधारी जवान दिए जो ऊना होशियारपुर में विद्रोह दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा भेजे गए।

चंबा में भी राजा श्री सिंह ने अंग्रेजों के प्रति वफादारी निभाई। राज्य के भीतर कड़ी सुरक्षा व्यवस्था की गई। चंबा के राजा ने डलहौजी में बसे कुछ अंग्रेजों को शरण दी और उन्हें सुरक्षा प्रदान की। मियां अतर सिंह के नेतृत्व में डलहौजी में एक सैनिक टुकड़ी भेजी। सरकार द्वारा रावी नदी के घाटों पर नौकाओं को नष्ट कर दिया। राजा ने डिप्टी कमिश्नर मेजर टेलर की मांग पर अपनी सेना के तीन सौ जवान रावी, सतलुज तथा व्यास के घाटों की सुरक्षा के लिए दिए। इसके बावजूद सियालकोट, जालंधर से कुछ क्रांतिकारी राज्य में घुसे। रियासत की सेना ने लगभग साठ क्रांतिकारी पकड़े जिनमें लगभग तीस को जेल में बंद किया, शेष छोड़ दिए।

नालागढ़ किले में अंग्रेजों के हथियार तथा गोला-बारूद था। 16 मई, 1857 को कैप्टन डी. ब्रिगज ने तथा डिप्टी कमिश्नर विलियम हे ने यहां से हथियार लेने आदमी भेजे। जब हथियार लेकर सैनिक मलौण किले से बाहर निकले तो क्रांतिकारियों ने स्थानीय लोगों के साथ मिलकर हमला कर दिया। क्रांतिकारियों ने हथियार छीन लिए और शिमला पहुंचने नहीं दिए। डिप्टी कमिश्नर ने राणा बाघल के भाई मियां जयसिंह को क्रांतिकारियों को समझाने भेजा। अंततः मंडी से कुछ सिपाही नालागढ़ की सुरक्षा के लिए मंगवाए गए। 10 जून, 1857 को जालंधर के सैनिक क्रांतिकारी बद्दी आ पहुंचे। इन्होंने नालागढ़ पर धावा बोलकर कोष लूट लिया। मलौण के तहसीलदार को धमकाया और ब्रिटिश एजेंट का निवास तोड़-फोड़ डाला।

डिप्टी कमिश्नर विलियम हे ने नालागढ़ का विद्रोह दबाने के लिए कैप्टन ब्रिगज को भेजा। बाघल के राणा ने एक सौ पचास बंदूकधारी सैनिक, बिलासपुर के राजा ने दो सौ पचास सैनिक, नालागढ़ ने सौ सैनिक ब्रिटिश सरकार को दिए। कैप्टन ब्रिगज ने सभी मार्गों पर नाकाबंदी कर दी जिससे कोई क्रांतिकारी रियासत में न आ सके।

11 मई, 1857 को नाहन में स्थित सिरमौर बटालियन को अंबाला जाने के निर्देश दिए गए किंतु उत्तेजित गोरखा सैनिकों ने जाने से इंकार कर दिया। वे गाय और सूअर की चर्बी के कारतूसों से उत्तेजित थे। उस समय सिरमौर का राजा शमशेर प्रकाश केवल ग्यारह वर्ष का था। राजकाज के लिए तैनात कंवर सुर्जन सिंह तथा वीर सिंह ने प्रजा के विद्रोह को शांत किया और सैनिकों की उत्तेजना भी कम हुई। अंततः 28 मई को बटालियन दिल्ली जाने के लिए राजी हो गई। सिरमौर के प्रशासकों ने शरणार्थी अंग्रेजों को शरण दी। सिरमौर रियासत की ओर से विद्रोह को दबाने के लिए बीस हजार रुपए भी दिए गए। सिरमौर रियासत की ओर से शिमला की सुरक्षा हेतु साठ सैनिक भेजे गए। ये सैनिक कंवर वीर सिंह के नेतृत्व में शिमला

आए और मुख्य बाजार की सुरक्षा में लगे।

इस कार्य के लिए सिरमौर नरेश शमशेर प्रकाश को सात तोपों की सलामी और कंवर वीर सिंह तथा सुर्जन सिंह को प्रशंसा-पत्र तथा खिल्लत प्रदान की गई।

शिमला आतंक

शिमला में विद्रोह की घटनाओं को इंगलैंड के समाचार-पत्रों ने 'शिमला आतंक', 'शिमला कत्लेआम' शीर्षकों से छापा। शिमला में विद्रोह का मुख्य कारण यहां की सैनिक छावनियां थीं। ये छावनियां जतोग, डगशाई, कसौली तथा सपाटू में थीं। इन्हीं छावनियों में विद्रोह के कारण शिमला शहर में आतंक छाया। शिमला हिल्ज की पहाड़ी रियासतों में विद्रोह सफल नहीं हो पाया क्योंकि पहाड़ी रियासतों के ठाकुरों ने अंग्रेजों की सहायता की, उन्हें अपने यहां शरण दी।

1857 की क्रांति के समय जतोग में नसीरी सेना थी जो गोरखा रेजीमेंट थी। ब्रिटिश सेना के कमांडर इन चीफ जनरल जॉज एनसन ने जतोग, डगशाई और कसौली की सेनाओं को अंबाला चलने का आदेश दिया। देशी सेनाओं ने ये आदेश नहीं माने। जतोग में गोरखा रेजीमेंट के सूबेदार भीम सिंह के नेतृत्व में जतोग छावनी और खजाने पर कब्जा कर लिया गया। इसी तरह 12 मई, 1857 को हिंदुस्तान-तिब्बत रोड के सुपरिंटेंडेंट कैप्टन डेविड ब्रिगज को डगशाई तथा सपाटू की बटालियनों को अंबाला भेजने के आदेश मिले, किंतु सैनिक दस्ते अंबाला नहीं पहुंचे। कसौली में भी नसीरी सेना थी जो अंबाला जाने से मुकर गई। यहां देशी सैनिकों ने ब्रिटिश सेना पर हमला कर दिया। सरकारी खजाने पर कब्जा कर वे जतोग की ओर बढ़े। कैप्टन बलैकॉल को भागना पड़ा। कसौली के सहायक कमिश्नर पी. मैक्सवैल ने लिखा है : 'यह बड़े खेद का विषय है कि मुट्ठी भर क्रांतिकारियों ने चार गुणा से भी अधिक अंग्रेजी सैनिकों के सामने विद्रोह के आरंभ में ही अंग्रेजी सरकार को उसके अपने ही सुदृढ़ गढ़ में त्रस्त कर दिया और ब्रिटिश कोष को भी लूटा।'

कसौली छावनी के दरोगा बुद्ध सिंह ने अंग्रेजों को ललकारकर कसौली खजाने पर कब्जा कर जतोग की ओर कूच किया किंतु सेना ने इनका पीछा किया। इस मुठभेड़ में कुछ सिपाही मारे गए। बुद्ध सिंह ने अपने को गोली मार ली।

दिल्ली, अंबाला, कालका से भागे अंग्रेजों ने हिंसा की कहानियां सुनाईं जिससे अंग्रेज परिवारों में आतंक छा गया। सनावर लॉरेंस आश्रम में सब बच्चों तथा महिलाओं को रात को होस्टल में बंद कर दिया। 17 मई, 1857 को अंग्रेजों ने कसौली छावनी की बैरकों में शरण ली।

19 मई, 1857 तक शिमला, जतोग, सपाटू, कसौली, डगशाई से कोई सेना अंबाला नहीं पहुंची तो कैप्टन डेविड ब्रिगज को अंग्रेजों की सुरक्षा का काम सौंपा गया। वह अंबाला, कालका, सपाटू होते हुए 20 मई को शिमला पहुंचा।

जतोग में विद्रोह की खबर से शिमला शहर में आतंक छा गया। लगभग 800 यूरोपीय चर्च और शिमला बैंक (वर्तमान ग्रेंड होटल) में एकत्र हुए। शिमला बाजार में एक गोरखा सैनिक ने अपनी खुखरी से एक अंग्रेज अफसर की गर्दन धड़ से अलग कर दी। नसीरी सेना द्वारा शिमला पर हमले की आशंका से अंग्रेज कसौली छावनी की ओर भागे। कुछ डगशाई गए। कुछ ने क्योंथल, बलसन, बघाट, धामी, कोटी के ठाकुरों के यहां शरण ली। कुछ भूखे-प्यासे जंगलों में भटकते रहे।

डिप्टी कमिश्नर विलियम हेय ने लिखा है, 'शिमला के अंग्रेज वासी क्योंथल, कोटी, धामी, मशोबरा और बलसन के देशी शासकों की शरण में जा पहुंचे। कुछ लोग डगशाई, सपाटू और कसौली की सैनिक छावनियों में ब्रिटिश सेना की सुरक्षा में चले गए। ...मैं इन यूरोपीय लोगों की शिमला से हड़बड़ी में भागदौड़ को न रोक सका।'

20 मई, 1857 को शिमला मुर्दों का शहर बन गया। चारों ओर सन्नाटा था। सभी अंग्रेज आतंकित थे। अतः पंजाब के चीफ कमिश्नर जॉन लारेंस ने रावलपिंडी से आदेश भेजा कि शिमला से अंग्रेज महिलाओं को अंबाला और बीमार, कमजोर तथा बूढ़े अंग्रेजों को कैप्टन एटकिंसन की सुरक्षा में कसौली भेजा जाए।

डिप्टी कमिश्नर विलियम हेय तथा कैप्टन ब्रिगज ने जतोग की नसीरी सेना को शांत करने का प्रयास किया। कसौली की सैनिक टुकड़ी के अतिरिक्त सब को क्षमा करने के लिए भी कहा। 24 मई, 1857 को सूबेदार भीम सिंह ने इनकी बातों पर विचार किया और विद्रोह स्थगित करने का निर्णय लिया। इनकी सभी मांगें मान ली गईं। कसौली की सैनिक टुकड़ी घेरकर गिरफ्तार कर ली गई। 28 मई तक सभी सेनाओं ने विद्रोह स्थगित कर दिया।

इस क्रांति के दौरान एक गुप्त संगठन भी बना था जिसके नेता रामप्रसाद वैरागी थे जो सपाटू परेड मैदान के पास मंदिर में पुजारी थे। ये लोग साधु, फकीरों के वेश में रहते थे। 12 जून, 1857 को अंबाला के कमिश्नर जी.सी. बार्नस के हाथ कुछ पत्र लगे जो इस संगठन से संबंधित थे। इनमें से दो पत्र राम प्रसाद वैरागी के लिखे हुए थे। एक पत्र नसीरी सेना के सूबेदार को सहारनपुर भेजा था, दूसरा महाराजा पटियाला के वकील के नाम था। इन पत्रों के पकड़े जाने से इस संगठन का भेद खुल गया। राम प्रसाद वैरागी को पकड़कर अंबाला जेल में फांसी दी गई। संगठन के अन्य कार्यकर्ता भूमिगत हो गए।

शिमला की स्थिति संयत होने में समय लग गया। शिमला के लिए विशेष

प्रबंध की सिफारिश की गई। अतः 7 अगस्त को डिप्टी कमिश्नर ने रियासत कहलूर से पचास जवान बालूगंज में, साठ सिरमौरी सैनिक कुंवर वीर सिंह के नेतृत्व में बड़ा बाजार में तैनात किए। डिप्टी कमिश्नर के निवास पर क्योंथल, धामी, भज्जी और कोटी के साठ सिपाही तैनात किए गए। बाघल, जुब्बल, कोटी, क्योंथल, धामी की ओर से 250 सैनिक शिमला में आपातकाल के लिए रखे गए। 120 ट्रेंड वालंटियर यूरोपियन, 90 यूरोपियन सिपाही रखे गए।

अगस्त, 1857 तक विद्रोह शांत हो गया। सिरमौर, बिलासपुर, मंडी, चंबा, बाघल, जुब्बल, हिंडूर, क्योंथल, बलसन, कोटी, धामी, भज्जी आदि जिन रियासतों ने क्रांति के दौरान अंग्रेजों को शरण दी या सहायता दी, उन्हें ठाकुर से राणा, राणा से राजा बनाया गया। राजाओं को तोपों की सलामी बढ़ाई गई।

ब्रिटिश राज में रियासतों में विद्रोह

ब्रिटिश राज के दौरान हिमाचल की जनता दोहरी और तिहरी दासता में जकड़ी रही। पंजाब हिल स्टेट्स तथा शिमला हिल स्टेट्स में अंग्रेजों ने देशी रियासतों को अपने अधीन कर स्वायत्त छोड़ दिया। अतः राजाओं के राज कायम रहे किंतु ब्रिटिश राज के अधीन। बहुत सी छोटी-छोटी ठकुराइयां, बड़ी ठकुराइयों या रियासतों के माध्यम से सरकार को कर देती थीं। ब्रिटिश सरकार ने स्वायत्तता के बदले वार्षिक कर, आवश्यकता पर सैनिक सहायता तथा बेगार ली। अलबत्ता बेगार की शर्त बाद में कर बढ़ाकर समाप्त कर दी। राजाओं के प्रशासन में अंकुश लगाने के लिए वजीर या मैनेजर तैनात किए गए और सलाहकार या प्रशासन काउंसिल बनाई। ब्रिटिश सरकार द्वारा सड़कें बनाने, स्कूल, औषधालय, डाकघर, बैंक खोलने, प्रशासन आधुनिक ढंग से चलाने के तौर-तरीके भी अपनाए गए किंतु समय-समय पर कर बढ़ाने, अव्यवस्था के बहाने या वारिस न होने के बहाने राज्य छीनने आदि की नीतियों से परेशानियां भी बढ़ीं। अतः रियासतों में विद्रोह होते रहे जिन्हें राजाओं ने ब्रिटिश सरकार की सहायता से दबाया। सन् 1857 की क्रांति के बाद सचेत हुई अंग्रेज सरकार ने राजाओं को दत्तक पुत्र अपनाने का अधिकार दिया और जनता को धार्मिक-सामाजिक आजादी का विश्वास भी दिलाया। तथापि रियासतों में विद्रोह होते रहे जो पहले निजी स्वार्थों के अधीन हुए और बाद में स्वाधीनता की चेतना में बदलते गए।

सुकेत

सुकेत में राजा उग्रसेन (1862) के समय वजीर नरोत्तम के विरुद्ध विद्रोह हुआ जिसमें टिक्का रुद्रसेन भी वजीर के खिलाफ था। नरोत्तम वजीर को हटाकर ढुंगल वजीर लगाया गया। ढुंगल ने 'डांड' *लगाया जो ब्राह्मण तथा राजपूत परिवारों से नहीं* लिया जाता था। ढुंगल की तानाशाही नीति से प्रजा परेशान हो गई। ढुंगल वजीर ने एक बार गढ़ चवासी में दरबार लगाया। प्रजा ने विद्रोह कर दिया और भारी संख्या में लोगों ने वजीर को गढ़ चवासी में घेर लिया और बारह दिनों तक घेरे रखा। अंततः राजा उग्रसेन ने वजीर को छुड़ाया और उसे बीस हजार रुपए जुर्माना तथा नौ महीने की सजा सुनाई। उसके भाई लौंगू को वजीर बनाया गया।

सन् 1878 में राजा रुद्र सेन और ढुंगल वजीर ने चार रुपए प्रति 'खार अन्न' लगान लगाया जो बाद में बढ़ाकर आठ रुपए प्रति खार अन्न कर दिया गया। खार अन्न लगभग सोलह मन के बराबर था। ढुंगल वजीर को राजा उग्र सेन के समय तानाशाही के कारण हटा दिया था। इसने लकड़ी, घास, पशुधन पर भी कर लगा दिया। प्रजा ने राजा रुद्र सेन से प्रार्थना की किंतु कोई असर नहीं हुआ अतः मियां शिव सिंह के नेतृत्व में प्रजा ने विद्रोह कर दिया। मियां शिव सिंह तथा विद्रोहियों को राजा ने रियासत से निकाल दिया। उधर करसोग के किसानों ने भी विद्रोह कर दिया। रियासत के दूसरे भागों में भी विद्रोह हुआ। अंततः जालंधर का कमिश्नर सुकेत आया और उसने ढुंगल वजीर को हटाकर रामदित्तामल को वजीर बनाया। विद्रोहियों को कड़ी सजा दी गई। किंतु विद्रोह कम नहीं हुआ। राजा रुद्र सेन को लाहौर जाना पड़ा और प्रशासन ब्रिटिश सरकार ने संभाला। जांच के बाद मियां शिव सिंह को कांगड़ा से वापस बुलाकर मैनेजर और राजा के चाचा जगत सिंह को मैनेजर बनाया।

अक्तूबर, 1824 में सुकेत में पुनः विद्रोह हुआ। राजा लक्ष्मण सेन के समय में राज्य में भ्रष्टाचार तथा अव्यवस्था के कारण एक युवक रत्न सिंह ने विद्रोह किया। रत्न सिंह के साथ टीटा, लुहारू, थूल्लू, सिधु आदि भी शामिल हुए। 14 नवंबर, 1924 को चंद्रपुर की सभा में केवल चौदह व्यक्ति थे किंतु जब ये लोग नारे लगाते हुए राजधानी चंदरोखड़ी की ओर चले तो कई लोग साथ चलते गए और लगभग दो सौ युवक हो गए। इन लोगों ने कचहरी, थाने और खजाने का घेराव किया, थानेदार हीरा सिंह और सुपरिंटेंडेंट हरद्वारी लाल की पिटाई की गई। इस विद्रोह के कारण भ्रष्ट अधिकारी मंडी भागे और राजा ने अपने महल की सुरक्षा के कड़े प्रबंध किए। दूसरे दिन पुनः जनता एकत्र हुई और रियासत के वजीर, गोवर्धन कायथ और फिथू मुंशी की पिटाई हुई। अतः यह आंदोलन फैलता गया और पांगणा, बल्ह, जैदेवी, करसोग, डेहर के हजारों लोग राजधानी की ओर बढ़े। राजा ने ब्रिटिश सरकार से सेना मंगवा ली। अतः 10 दिसंबर, 1924 को डी.एस. मुकंजी सेना लेकर आया। इस मुठभेड़ में कपूरू नाम के व्यक्ति ने मुकंजी की कमर पर लात मारी। मुकंजी ने अपनी सेना पीछे हटा ली और धर्मशाला से अतिरिक्त सेना मंगवाई। तीसरे दिन कर्नल मिचिन गोरखा और गोरों की सेना लेकर आया। कर्नल मिचिन की सेना ने राइफलें और गोला-बारूद के साथ पोजीशन ले ली। भारी सेना को देखकर खून-खराबे को टालने के लिए रत्न सिंह ने आत्मसमर्पण का निर्णय लिया। सेना ने रत्न सिंह तथा उसके साथी नेताओं लुहारू, सिधु राम, कृष्ण, अर्जुन, कपूरू, टीटा, थूल्लू को गिरफ्तार कर लिया। 6 अप्रैल, 1925 को चार आंदोलनकारियों को 6 वर्ष, छह को

5 वर्ष तथा अट्ठारह को 4 वर्ष, ग्यारह को 3 वर्ष, दो को 2 वर्ष की कड़ी सजा सुनाई गई। इन्हें बिलासपुर से नालागढ़ ले जाकर जालंधर, लायलपुर, मुल्तान की जेलों में रखा गया।

मंडी

राजा भवानी सेन के समय (1909) मंडी में भ्रष्ट अधिकारियों के कारण जनता रुष्ट हो गई। वजीर जीवानंद पाधा ने किसानों का शोषण किया और अनाज के व्यापार पर नियंत्रण कर लिया। उसने अपने भाई को रियासत में सेना का मुख्य कमांडर बना दिया, कई सिफारिशी अधिकारी नियुक्त किए। इस भ्रष्टाचार के खिलाफ सरकाघाट के शोभा राम ने राजा से शिकायतें कीं किंतु भवानी सेन ने सुनवाई नहीं की। शोभा राम ने पहली बार बीस आदमी, दूसरी बार पचास तथा तीसरी बार चार सौ व्यक्ति भेजे किंतु सुनवाई के बदले किसानों को जेल में डाल दिया गया। अंत में शोभा राम दो हजार व्यक्तियों को लेकर मंडी पहुंचा और तहसीलदार हरदेव तथा कोर्ट-कचहरी व थाने पर कब्जा कर लिया। मंडी में शोभा राम का राज चलने लगा। राजा ने ब्रिटिश सरकार की सहायता मांगी। ब्रिटिश सरकार ने 32 पायनियर्ज रेजीमेंट की कंपनियां भेजीं। जालंधर के कमिश्नर ने आठ दिन तक पड्डल में दरबार लगाया। शोभा राम ने शिकायतें रखीं। अंततः जीवानंद पाधा को हटाकर मियां इंद्र सिंह को वजीर तैनात किया। टिक्का राजेंद्र सेन को सलाहकार नियुक्त किया। जालंधर के कमिश्नर के जाने के बाद रियासती सरकार ने शोभा राम तथा अन्य लोगों को जेल में डाल दिया।

इसी वर्ष दिसंबर में बल्ह के डोडावन के किसानों ने विद्रोह किया। सरकार ने भूमि तथा वन संबंधी गलत कानून बनाए जिसके विरोध में विद्रोह हुआ जिसका नेतृत्व बडसू गांव के सिद्धु खराड़ा ने किया। सरकार द्वारा यह आंदोलन दबा दिया गया।

बुशहर में दूम्ह

पहाड़ी रियासतों में राजाओं के खिलाफ पहले से ही विद्रोह होते रहते थे। इन्हें दूम्ह कहा जाता था। सन् 1859 में बुशहर में विद्रोह हुआ। राजा शमशेर सिंह ने सरकार के निर्देशानुसार भू-बंदोबस्त करवाया और लगान नकद लिए जाने के आदेश दिए। पहले लगान, जो उपज का पांचवां भाग था, घी-तेल, दूध, भेड़, ऊन आदि के रूप में लिया जाता था।

इस आंदोलन का मुख्य केंद्र रोहडू बना। दूम्ह की रीत के अनुसार लोग अपने गांव छोड़कर परिवार और पशुओं सहित जंगल में जाकर रहने लगे। गांव के गांव

खाली हो गए। लोगों ने कर देना तथा राजाज्ञा मानना बंद कर दिया। फसलें नष्ट होने, लगान बंद होने से राज्य में हड़बड़ी फैल गई। अतः शिमला स्टेट्स के सुपरिंटेंडेंट जी.सी. बार्नस ने बुशहर जाकर विचार-विमर्श किया। सुपरिंटेंडेंट ने प्रजा की तीनों मांगें मान लीं। ये मांगें लगान व्यवस्था को समाप्त करना, लगान को परंपरा के अनुसार वस्तुओं के रूप में लेना तथा खानदानी वजीर तैनात करना थीं।

बुशहर की भांति सन् 1877 में नालागढ़ में भी विद्रोह हुआ। राजा इशरी सिंह के वजीर गुलाम कादिर खान ने भूमि लगान बढ़ा दिया और नए कर लगाए। प्रजा ने राजा से विनती की किंतु कोई असर न हुआ। अतः प्रजा ने लगान देना बंद कर दिया। जुलूस निकालने आरंभ किए, अधिकारियों का घेराव किया जाने लगा। अतः शिमला के सुपरिंटेंडेंट पुलिस के साथ नालागढ़ पहुंचे। आंदोलनकारियों को हिरासत में लिया गया। किंतु वजीर गुलाम कादिर खान को रियासत से निकाल दिया गया और लगान में भी कमी की गई। आंदोलनकारियों को भी रिहा कर दिया गया।

सन् 1895 में चंबा में किसानों ने आंदोलन किया। चंबा के राजा शाम सिंह तथा वजीर गोबिंद राम ने लगान में बढ़ोतरी कर दी और बेगार भी अधिक ली जाने लगी। परिवार के एक व्यक्ति को वर्ष में छह महीने राजा को बेगार देनी पड़ती थी। इन्हें मजदूरी तो क्या खाना भी नहीं दिया जाता। बेगार प्रथा से ब्राह्मण तथा कुलीन राजपूत ही मुक्त थे। जब राजा ने प्रजा की बात नहीं सुनी तो असहयोग आंदोलन आरंभ हुआ। भटियात वजीरी का बलाणा गांव इस आंदोलन का केंद्र बना। लगान लेने वाले अधिकारियों को गांव में घुसने नहीं दिया गया। बेगार देनी बंद कर दी। ब्रिटिश सरकार ने इस आंदोलन की जांच के लिए एक आयोग बनाया। आयोग ने मांगें मनवाने का आश्वासन दिया तो आंदोलनकारी ढीले पड़ गए। इस बीच बलाणा गांव के लारजू, बस्सी के किरलू और बिलू को पकड़कर जेल में डाल दिया। पुलिस ने गांव वालों को डराया-धमकाया और आंदोलन दबा दिया गया।

बिलासपुर

राजा अमर चंद के समय सन् 1883 में एक आंदोलन हुआ जिसे 'झुग्गा' सत्याग्रह के नाम से जाना जाता है। राजा तथा वजीर व कर्मचारियों के भ्रष्ट होने से प्रशासन में अव्यवस्था फैली हुई थी। अतः ब्राह्मणों तथा पुरोहितों ने प्रजा के साथ मिलकर आंदोलन किया। कोट, लुलहाण, गेहड़वीं तथा पंडतेहड़ा आदि गांवों के ब्राह्मण गेहड़वी में एकत्र हुए और झुग्गे अर्थात् घास-फूस की झोंपड़ियों में रहने लगे। अपने-अपने झुग्गों के ऊपर उन्होंने कुल देवताओं के झंडे लगाए। ब्राह्मण लोग वहां भूखे-प्यासे बैठे रहे। राजा ने इनकी दुःख-तकलीफ जानने के बजाय तहसीलदार

निरंजन सिंह को पुलिस के साथ इन्हें गिरफ्तार करने भेज दिया। पुलिस को आता जानकर इन्होंने अपने-अपने झुग्गों में आग लगा दी और उसमें जलकर राख हो गए। इस हृदयविदारक दृश्य से प्रजा भड़क उठी और पुलिस तथा प्रजा में मुठभेड़ हुई जिसमें कई लोग मारे गए। गुलाबा राम नड्डा ने तहसीलदार निरंजन सिंह को गोली मारी। घायल निरंजन सिंह को लोगों ने उठाकर जलते हुए झुग्गों में फेंक दिया। अतः पुलिस भाग गई। राजा ने ब्रिटिश सरकार से सहायता मांगी। अतः अधिक पुलिस गेहड़वीं भेजी गई और विद्रोह दबा दिया। ब्राँह्मणों के 140 परिवार कांगड़ा चले गए। गुलाबा राम नड्डा को बंदी बनाकर सरीऊन किले में रखा गया। सन् 1884 में कांगड़ा गए ब्राह्मण परिवारों को वापस बुलाया गया और मृतकों की विधवाओं को पेंशन लगाई गई। भूमि के लगान को नकद करके बेगार भी बंद की गई।

फरवरी, 1930 में भू-बंदोबस्त, कर लगाने के विरोध में विद्रोह किया गया। भू-बंदोबस्त का खर्चा प्रजा पर पड़ने के कारण बहादुरपुर के लोगों ने विद्रोह कर दिया और बंदोबस्त के कर्मचारियों को दूध, घी, रोटी देनी बंद कर दी। उनके ठहरने तथा लकड़ी-पानी की निःशुल्क व्यवस्था से भी इनकार कर दिया। उनके बस्ते फूंक दिए, लट्ठे और कागजात जला दिए। दूसरे स्थानों में भी ऐसा ही किया गया। सभी आंदोलनकारियों ने 'लूणलोटा' कर लोटे में पानी और नमक मिलाकर चखी जिससे वे आंदोलन के सहभागी बने। हर जलसे में लूणलोटा किया जाता और पानी चखा जाता। कई दिनों तक बंदोबस्त नहीं हो पाया। इस आंदोलन में गोपाल दत्त (कनौण सदर), काहना राम (बहादुरपुर), गणेशा नंबरदार (साईं कनैता), रविदत्त (झंडूता), कालिदास (सदर), राम दित्ता (कंदरौर) आदि ने भाग लिया।

सरकार ने कुछ रियायतें दीं किंतु आंदोलनकारी नहीं माने। इन्हें बिलासपुर बुलाया गया। राजा विजय चंद ने इस बीच लाहौर से बलोच पुलिस रेजीमेंट बुला ली और निहत्थे आंदोलनकारियों पर लाठियां बरसाईं और उन्हें गिरफ्तार किया गया। पुलिस ने गांवों में जाकर भी लूटपाट की। पैंतालीस लोगों पर देशद्रोह का मुकदमा चला। पुलिस के डंडा चार्ज से इस आंदोलन का नाम 'डांडरा आंदोलन' पड़ा। आंदोलनकारियों को कैद व जुर्माना किया गया। सजा पाने वालों में काहना राम (खारसी), सीहणू राम (खलोटा), गणेशा नंबरदार (साईं कनैता), घूंघर (कनौण), सुदामा (माहमणु), कैला (सुई), गोवर्धन (कंदरौर), गोकुल (कल्लरी), तिखू (रानी कोटला), सुंदर (पंजगाई) तथा भंगु, अर्जुन, धौलू, गोसाऊं, नानक, निरंजन आदि थे। प्रमुख आंदोलनकारियों को ब्रिटिश सरकार के हवाले किया गया और इन्हें फरीदकोट जिले में कैद रखा गया। जमीन-जायदाद जब्त की गई।

कांग्रेस का जन्म तथा स्वाधीनता आंदोलन

कांग्रेस का जन्म शिमला में हुआ। सन् 1882 में ए.ओ. ह्यूम शिमला आए। वे पत्नी सहित रॉथनी कैसल नामक भवन में रहने लगे। थियोसोफिकल सोसायटी की नेता एनी बेसेंट भी उनकी अतिथि थीं। मुख्यतः ये इसी सोसायटी के कार्य से यहां आए थे। ए.ओ. ह्यूम सोसायटी द्वारा किए जा रहे समाज कल्याण के कार्यों से संतुष्ट नहीं थे। सन् 1883 में ए.ओ. ह्यूम ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों को पत्र लिखा जिसमें भारत के उद्धार के लिए देशभक्त व्यक्तियों की मांग की। सन् 1884 में सरकार की नीतियों के खिलाफ विद्रोह की स्थिति बन गई। अतः ए.ओ. ह्यूम ने ऐसी राजनीतिक संस्था की कल्पना की जो अखिल भारतीय स्तर की हो। उन्होंने शिमला से कई नेताओं को पत्र लिखे। नवंबर, 1884 में मुंबई जाकर कई नेताओं से सलाह की। मार्च, 1885 में वे बंगाल और उत्तरी भारत गए। इसके बाद उन्होंने शिमला में तत्कालीन वायसराय लॉर्ड डफरिन से भी विचार-विमर्श किया। एक राष्ट्रव्यापी संगठन की स्थापना की घोषणा के बाद ह्यूम इंग्लैंड गए जहां से नवंबर, 1885 में भारत लौट आए।

28 दिसंबर, 1885 को दोपहर बारह बजे गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज मुंबई के सभागार में बंगाल के वोमेश चंद्र की अध्यक्षता में प्रथम सम्मेलन किया गया जिसमें बहत्तर सदस्यों ने भाग लिया और इसी सम्मेलन में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हुई।

इस प्रकार इस राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की रूपरेखा ए.ओ. ह्यूम ने शिमला में निर्धारित की।

एक ओर तो शिमला में कांग्रेस का जन्म हुआ तो दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की जड़ें भी यहां मजबूत हुईं और सरकार का काम शिमला से संचालित किया जाने लगा। बालूगंज तथा समरहिल के बीच ऑबजरवेट्री हिल पर वायसरीगल लॉज सन् 1888 में तैयार हुआ और 23 जुलाई, 1888 को वायसराय लॉर्ड डफरिन और लेडी डफरिन ने इस भव्य भवन में प्रवेश किया। इसी वर्ष शिमला के लोगों ने पहली बार शहर में बिजली देखी। वायसराय के शिमला में होने से यहां राजनीतिक तथा प्रशासनिक गतिविधियां केंद्रित हुईं।

मुस्लिम लीग की स्थापना

कांग्रेस की स्थापना की भांति मुस्लिम लीग की स्थापना के बीज भी शिमला में ही पड़े। 1 अक्तूबर, 1906 को मुस्लिम समुदाय का एक प्रतिनिधिमंडल शिमला में वायसराय मिंटो से मिला। वायसराय ने प्रतिनिधिमंडल के नेता आगा खान तृतीय को एक अलग संगठन बनाने की सलाह दी जिसके फलस्वरूप 30 दिसंबर, 1906 को ढाका सम्मेलन में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई।

हिमाचल में स्वाधीनता आंदोलन की शुरुआत

सन् 1905 में ऊना के बाबा लछमन दास अपनी पत्नी दुर्गा बाई सहित स्वाधीनता संग्राम में कूदे। उन्होंने सरदार भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह से प्रेरणा लेकर पुलिस की नौकरी छोड़ दी। लाहौर में लाला लाजपतराय और महात्मा हंसराज से भेंट करने के बाद बाबा लछमन दास देश-सेवा में लग गए। सन् 1906 में लाला लाजपतराय मंडी आए। मंडी में आर्य समाज के प्रचार के पीछे संगठन भी स्थापित हुआ और गुप्त मंत्रणाएं होने लगीं। सन् 1907 में नरम दल तथा गरम दल बन गए थे अतः बाबा लछमन दास सरकार विरोधी गतिविधियों में सक्रियता से लगे रहे। इन्हें 1908 में सरकार ने पकड़कर दो वर्ष तक लाहौर जेल में बंदी बनाए रखा। सन् 1910 में वे रिहा होकर ऊना लौटे। आर्य समाज के सदस्य के रूप में उन्होंने समाज-सुधार का कार्य जारी रखा। पत्नी दुर्गा बाई ने 'आर्य महिला मंडल' बनाया।

मंडी में रानी खैरागढ़ी ललिता कुमारी ने स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया। सन् 1912 में मंडी के राजा भवानी सेन की मृत्यु के बाद ललिता कुमारी ने लाला लाजपतराय के संगठन को सहायता दी।

मंडी के एक और स्वाधीनता सेनानी हरदेव राम ने अध्यापक की नौकरी छोड़कर अमेरिका तथा जापान का भ्रमण किया। जापान के शंघाई में हरदेव की भेंट गदर पार्टी के नेता मथुरा सिंह से हुई और उन्होंने गदर पार्टी अपना ली। वे सन् 1914 में क्रांतिकारी बनकर भारत लौटे। मंडी में भी क्रांतिकारी गतिविधियां तेज हुईं। यहां 'गदर की गूंज', 'गदर संदेश', 'ऐलान-ए-जंग' जैसी पत्र-पत्रिकाएं मिलने लगीं। मंडी में बम, राइफल आदि शस्त्रास्त्र भी इकट्ठे किए जाने लगे। इस संगठन में मियां जवाहर सिंह, सिधु खराड़ा, शारदा राम, बद्रीनाथ, दलीप सिंह, लौंगू राम आदि थे। रानी ललिता कुमारी उन्हें आर्थिक सहायता देती थी। क्रांतिकारियों ने सुपरिंटेंडेंट, वजीर तथा अन्य अधिकारियों को मारने की योजना बनाई। क्रांतिकारियों ने खजाने को लूटा। इस योजना में दलीप सिंह तथा पंजाब के निधान सिंह पकड़े गए और भेद खुल गया अतः मियां जवाहर सिंह, बद्रीनाथ, शारदा राम, ज्वाला सिंह, लौंगू राम

पकड़े गए। रानी ललिता कुमारी को देशनिकाला दिया गया। सिधु खराड़ा भाग निकला।

गदर पार्टी के हरदेव राम के मुंबई से मंडी आने पर गदर पार्टी की गतिविधियां तेज हुईं। हरदेव राम को मंडी में भाई हिरदा राम का सहयोग मिला। हरदेव राम ने मंडी, सुकेत, कांगड़ा तथा शिमला में गदर पार्टी का प्रचार किया। 8 मार्च, 1915 को हरदेव राम के घर छापा मारा गया। वे पुलिस से बच निकले। क्रांतिकारी नेता रासबिहारी बोस भी इन दिनों कांगड़ा, कुल्लू और लाहौल-स्पीति में छिपे रहे। हरदेव राम शिमला के पहाड़ों से बद्रीनाथ तथा गंगोत्री तक जा पहुंचा। वहां स्वामी भूपानंद महाराज से दीक्षा ली और स्वामी कृष्णानंद के रूप में स्वाधीनता आंदोलन में भाग लिया।

भाई हिरदा राम मंडी में गदर पार्टी के एक सक्रिय कार्यकर्ता थे जो दिसंबर, 1914 में अमृतसर गए। वहां उन्होंने रासबिहारी बोस, मथुरा सिंह, करतार सिंह सराबा, भाई परमानंद से भेंट की और बम बनाने का प्रशिक्षण लिया। हिरदा राम के बनाए बमों का प्रयोग लाहौर तक किया गया। फरवरी, 1915 में मूला सिंह नाम के क्रांतिकारी के पकड़े जाने पर अन्य क्रांतिकारी भी पकड़े गए। भाई हिरदा राम तथा पिंगले के पास भी बम बरामद हुए। 26 अप्रैल, 1915 को लाहौल सेंट्रल जेल में मुकदमे की सुनवाई के बाद डॉ. मथुरा सिंह, करतार सिंह, भाई हिरदा राम और पिंगले को फांसी की सजा हुई। हिरदा राम की पत्नी सरला देवी की अपील पर फांसी की सजा को आजीवन कारावास में बदला गया और इन्हें काले पानी की सजा पर अंडमान भेज दिया।

सिद्धू खराड़ा, जो कांगड़ा की ओर भागा था, दो वर्ष बाद पकड़ा गया। उसे पकड़कर मंडी लाया गया और 30 अप्रैल, 1917 को मुकदमा चलाया गया। 4 मई, 1917 को बम बनाने, खजाना लूटने तथा वजीर और अंग्रेज रेजीडेंट को मारने के षड्यंत्र में सिद्धू खराड़ा तथा उसके पुत्र परिसहाय को दोषी ठहराया। परिसहाय को आजीवन कारावास तथा संपत्ति जब्त करने और सिद्धू खराड़ा को काले पानी की सजा दी गई। अक्तूबर, 1915 में प्रथम विश्वयुद्ध के समय हिमाचल प्रदेश की रियासतों की ओर से हजारों सैनिकों ने ब्रिटिश सेना की ओर से मैसोपोटामिया में युद्ध में भाग लिया। कांगड़ा के राजा जयचंद, नूरपुर के मियां जगत सिंह और सिरमौर के विक्रम सिंह ने बहादुरी का परिचंय दिया।

इसी बीच ऊना में ऋषिकेश लट्ठ भूमिगत हुए और ईरान में गदर पार्टी में शामिल हुए। 1916 के ही लगभग डाडासीबा (कांगड़ा) के बाबा कांशी राम लाहौर में लाला हरदयाल और अर्जा।ा सिंह से प्रभावित हो स्वाधीनता आंदोलन में शामिल

हुए। सन् 1919 में इन्हें दो वर्ष कैद की सजा हुई। पालमपुर के लाला बाशी राम ने अध्यापक की नौकरी छोड़कर स्वाधीनता संग्राम की राह ली। सन् 1918 में नादौन के यशपाल क्रांतिकारी आंदोलन में कूदे। उधर ऊना के बाबा लछमन दास तथा पत्नी दुर्गाबाई ने कांग्रेस में आकर खादी पहनना शुरू किया। दुर्गाबाई ने 'महिला खादी संगठन' बनाया। नाहन के क्रांतिकारी चौधरी शेरजंग ने कांग्रेस की सदस्यता ली। पालमपुर के लाला बाशी राम भी कांग्रेस में शामिल हुए।

सन् 1920 तक प्रदेश में आजादी की चेतना पूरी तरह जागृत हो गई। मंडी में स्वामी कृष्णानंद, रानी खेरागढ़ी (जो लखनऊ चली गई थी), सिरमौर में शेरजंग, राजेंद्र दत्त, कांगड़ा में पंचम चंद कटोच, सर्वमित्र, लाला बाशी राम, कृपाल सिंह, थोहलो राम, सिद्धू राम आदि कांग्रेस आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगे।

स्वाधीनता आंदोलन और शिमला

सन् 1883-85 के बीच ए.ओ. ह्यूम द्वारा शिमला रॉथनी कैसल में कांग्रेस की स्थापना के विचार और प्रथम अक्तूबर, 1906 को वायसराय द्वारा कांग्रेस के समकक्ष मुस्लिम लीग की स्थापना की सलाह ने यहां दो राष्ट्रीय संस्थाओं के बीज प्रस्फुटित किए।

23 जुलाई, 1888 को लॉर्ड डफरिन तथा लेडी डफरिन के ऑब्जरवेट्री हिल पर वायसरीगल लॉज में प्रवेश के बाद शिमला राजनीतिक गतिविधियों का गढ़ बना। वायसरीगल लॉज के ब्रिटिश राज की शक्ति का केंद्र बनने से यहां स्वाधीनता के शीर्षस्थ नेताओं का आगमन हुआ जिससे प्रदेश के स्वाधीनता सेनानियों को भी प्रेरणा मिली।

शिमला में प्रमुख नेताओं का आगमन

गांधी जी 23 मई, 1921 को पहली बार शिमला पधारे। गांधी जी का शिमला के लोगों ने बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया। ईदगाह में एक बड़ा जलसा किया गया। इस जलसे में मौलाना मुहम्मद अली, शौकत अली ने भाषण दिए। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। गांधी जी के साथ लाला लाजपतराय, मदन मोहन मालवीय, लाला दुनी चंद अम्बालवी भी थे। गांधी जी के आगमन से स्थानीय नेताओं में एक नया जोश भरा। शिमला में कौमी गीत गाए जाने लगे, प्रभातफेरियां होने लगीं। असहयोग आंदोलन में तेजी आई।

शिमला के सालिगराम गुप्ता ने 'तिलक स्वराज्य फंड' के लिए चंदा इकट्ठा करना आरंभ किया, जतोग के ज्योतिप्रसाद टूटू सरकारी नौकरी छोड़ आंदोलन में शामिल हुए। कुनिहार के बाबू कांशी राम और कोटगढ़ के सत्यानंद स्टोक्स ने बेगार

प्रथा के खिलाफ आंदोलन छेड़ा। शिमला के गंज मैदान में एक प्रतिबंधित पुस्तक 'जख्मी पंजाब' पर ड्रामा खेला गया।

इंग्लैंड के युवराज का दिसंबर, 1921 में शिमला आगमन का काले झंडे दिखाकर विरोध किया गया। शहर में हड़ताल हुई। इसी वर्ष मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना शिमला आए। जिन्ना जी के साथ उनकी पत्नी रूति जिन्ना भी थीं। वायसराय लॉर्ड रीडिंग के रात के भोजन पर रूति जिन्ना ने वायसराय से हाथ न मिलाकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

जून, 1927 में कुछ राष्ट्रीय नेता पुनः शिमला पधारे जिनमें लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, मदन मोहन मालवीय, लाला दुनी चंद अम्बालवी आदि थे। ईदगाह में एक जलसा किया गया जिसमें लाला लाजपत राय ने भाषण दिया। लाला जी ने आर्य समाज के वार्षिक उत्सव में भी भाग लिया।

लाला लाजपत राय के प्रभाव से सूरतराम प्रकाश (ठियोग), देवी दास मुसाफिर (मधान), महाशय तीर्थ राय ओयल (ऊना), पं. पदम देव (बुशहर) भी कांग्रेस समर्थक बनकर स्वाधीनता संग्राम में शामिल हुए।

मार्च, 1931 में गांधी जी का दोबारा शिमला आना हुआ। इस बार वे 'गांधी-इरविन समझौता' के लिए शिमला पधारे। वे राय बहादुर मोहन लाल एडवोकेट के बंगले में ठहरे। इनके साथ पं. जवाहर लाल नेहरू, खान अब्दुल गफ्फार खान, अब्दुल कलाम आजाद, मदन मोहन मालवीय, डॉ. अंसारी भी थे। दूसरे दिन गांधी जी का रिज मैदान में भाषण हुआ। इस अवसर पर गांधी टोपी तथा खादी पहने कई स्वयंसेवक शिमला में खड़े किए गए। शिमला कांग्रेस के लाला गेंडामल, द्वारिका प्रसाद, मौलवी गुलाम मुहम्मद, कन्हैया लाल बुटेल, सालिगराम गुप्ता, मेला राम सूद, सुंदरदास लखनपाल, मौलवी अब्दुल गनी आदि ने पूरी व्यवस्था की। भागमल सौहटा, सूरतराम प्रकाश, देवी दास मुसाफिर, हरिराम शर्मा, राजेंद्र दत्त शर्मा, राजेंद्र दत्त ने इन राष्ट्रीय नेताओं से मुलाकात की।

गांधी-इरविन समझौता 5 मार्च, 1931 को हुआ। समझौते के अनुसार सविनय अवज्ञा आंदोलन में बंदी बनाए हजारों लोग रिहा किए गए। रिहा किए गए सत्याग्रहियों के स्वागत हेतु 'स्वराज्य सभा शिमला' बनाई गई। इसकी व्यवस्था भागीरथ लाल अजिज, सालिगराम गुप्ता, नंद लाल आढ़ती, सुंदरदास लखनपाल, कन्हैया लाल बुटेल आदि ने की। सत्याग्रहियों की रिहाई जलसे-जुलूसों में बदली।

पंजाब के नेता सरदार सरदूल सिंह ने जून, 1933 में गंज बाजार में भाषण दिया। शिमला के डिप्टी कमिश्नर ने उन्हें मंच पर आकर भाषण बंद करने के लिए कहा। इस हाथापाई के बीच जनता ने नारे लगाए और फसाद हो गया। सरकार द्वारा

लाठीचार्ज किया गया। कई नेता गिरफ्तार कर लिए गए।

जून, 1943 में शिमला हिल्ज की कांग्रेस का नेतृत्व राजकुमारी अमृत कौर ने संभाला क्योंकि स्थानीय नेता जेलों में बंद थे। इसी समय वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो को मारने की योजना बनाई गई। पं. पद्म देव, हीरा सिंह पाल, ज्ञान चंद टूटू आदि के बंदी होने पर शिव राम ठाकुर, सत्यदेव बुशहरी, महावीर सिंह, बाबू शिव दत्त ने वायसराय को मारने की योजना में भाग लिया। 23 जून, 1943 को वायसराय का पब्बर नदी में ट्राउट मछली के शिकार का कार्यक्रम बना। इन लोगों ने हाटू के जंगल में वायसराय को मारने की योजना बनाई। सत्यदेव बुशहरी तथा कोटगढ़ के फौजी जवान शिव राम ठाकुर को यह कार्य सौंपा गया। ये लोग हाटू के जंगल में छिपे रहे। जब वायसराय का काफिला घोड़ों पर गुजरा तो घनी धुंध छाई थी जिससे कुछ नजर नहीं आया। अतः योजना विफल हो गई।

23 जून, 1945 को वायसराय लॉर्ड वेवल ने सर्वदलीय सम्मेलन शिमला में बुलाया। यह सम्मेलन हिंदू-मुस्लिम समस्या के लिए था। इस सम्मेलन में सभी दलों के नेता शिमला पधारे। महात्मा गांधी, पं. जवाहर लाल, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, बल्लभ भाई पटेल, अब्दुल कलाम आजाद, सी. राजगोपालाचार्य, खान अब्दुल गफ्फार खां, आचार्य कृपलानी, गोबिंद बल्लभ पंत, पट्टाभि सीता रामैया, शंकर राव देव, सुचेता कृपलानी, सरोजिनी नायडू, आसफ अली, अरुणा आसफ अली, मीराबेन आदि कांग्रेस नेताओं के अतिरिक्त मुस्लिम लीग के मुहम्मद अली जिन्ना, लियाकत अली खां, शाहनवाज खां तथा अकाली दल के मास्टर तारा सिंह भी पधारे।

गांधी जी राजकुमारी अमृत कौर के समरहिल स्थित मंसूर विला में भजन गाया करते थे। ये नेता पंद्रह दिन यहां रहे। सभी स्थानीय नेताओं ने इनसे भेंट की। इस दौरान जुलाई में पं. नेहरू स्थानीय नेता ज्ञान चंद टूटू के घर भी गए। टूटू ने उन्हें चंदे के रूप में पांच सौ रुपए भेंट किए।

असहयोग आंदोलन के समय हिमाचल

महात्मा गांधी द्वारा 1921 में चलाए गए असहयोग आंदोलन का असर प्रदेश के विभिन्न भागों में भी हुआ। कांगड़ा में पंचम चंद कटोच के नेतृत्व में सर्वमित्र (नादौन), लाला बाशी राम (पालमपुर), कृपाल सिंह (भवारना), सिद्धू राम (टिहरा), महाशय थोलो राम (सुजानपुर) ने गांधी टोपी पहन और झंडे लेकर गांव-गांव प्रसार किया और विदेशी कपड़ों तथा वस्तुओं की होली जलाई। सुखलाल तथा हरनाम दास डोगरा (कांगड़ा), संतराम डोगरा (धर्मशाला) ने भी इन कार्यों में हिस्सा लिया। लाला जयलाल नागल (पालमपुर) ने अवेरी में विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर एक बड़ी

जनसभा की। बाबा कांशी राम ने लाहौल जेल में रहकर देशभक्ति की कविताएं लिखीं। मई, 1921 में शिमला में मौलवी गुलाम मुहम्मद को कांग्रेस प्रधान चुना गया। महात्मा गांधी के शिमला आगमन हेतु स्वागत समिति बनाई गई।

स्वामी कृष्णानंद ने मंडी में आंदोलन सक्रिय रखा। रानी खैरागढ़ी लखनऊ में कांग्रेस में सम्मिलित हुईं। ऊना में बाबा लछमन दास आर्य तथा उनकी पत्नी दुर्गा बाई आए, सिरमौर में शेरजंग तथा पं. राजेंद्र दत्त खादी के वस्त्र धारण कर विदेशी वस्त्रों की होली जलाते रहे।

लाला लाजपत राय को 21 अप्रैल, 1922 को लाहौर से धर्मशाला जेल में स्थानांतरित किया गया। इस जेल में कांगड़ा के पंचम चंद, सर्वमित्र, बाशी राम तथा रघुवीर सिंह भी थे। सन् 1922 में ही सिरमौर में चौधरी शेरजंग तथा पं. राजेंद्र दत्त ने कार्य जारी रखा। राजेंद्र दत्त ने 'सियासी प्रोग्राम सेवा समिति' बनाई। दिसंबर, 1922 में वे पंजाब कांग्रेस की ओर से वार्षिक अधिवेशन में भाग लेने भी गए। जुब्बल के भागमल सौहटा ने भी इस अधिवेशन में भाग लिया।

9 जनवरी, 1923 को लाला लाजपत राय को धर्मशाला जेल से लाहौल ले जाया गया। इसी वर्ष 24 मार्च को पंचम चंद कटोच, लाला बाशी राम, सर्वमित्र आदि भी रिहा हो गए। कैथू जेल में कैद प्यारे लाल, रामानंद, अब्दुल सत्तार, सत्यानंद स्टोक्स छोड़े गए। इस बीच गांधी जी के जेल में होने से कांग्रेस में मतभेद हुए और 'स्वराज दल' की स्थापना हुई, जिसमें लाजपत राय भी रिहा होने पर शामिल हुए। 5 जनवरी, 1924 को गांधी जी रिहा हुए, अतः कांग्रेस के संघर्ष ने पुनः बल पकड़ा।

इसके बाद ठाकुर हजारा सिंह (नादौन), महाशय तीर्थ राम ओयल (ऊना), बाबा कांशी राम (डाडा सीबा) तथा शिमला हिल्ज में नेताओं ने संघर्ष जारी रखा। अक्तूबर-नवंबर 1927 में सुजानपुर के ताल में कांगड़ा कांग्रेस कमेटी ने एक कॉन्फ्रेंस की जिसमें लाहौर से मेला राम तथा मास्टर कुंदन लाल ने भाग लिया। सरोजनी नायडू, सरला देवी, दुर्गा चंद वकील भी इसमें आए। ठाकुर हजारा सिंह, लाला बाशी राम, चतर सिंह, सर्वमित्र, सिटु राम आदि ने इसमें भाग लिया। सरोजनी नायडू ने बाबा कांशी राम को देशप्रेम के गीतों तथा कविताओं के कारण 'बुलबुल-ए-पहाड़' कहा।

असहयोग आंदोलन के बाद सन् 1928 में साइमन कमीशन के भारत आगमन का भी विरोध किया गया और कांगड़ा तथा शिमला में जलसे-जुलूस निकले। गगरेट के लक्ष्मण दास ने माउंट गुमरी में एक जुलूस का नेतृत्व किया जिसमें उन्हें डंडों से पीटकर बेहोश कर दिया गया और छह मास की कैद व 1000 रुपए जुर्माना हुआ।

28 दिसंबर, 1928 को कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में कांगड़ा के बाबा कांशी

राम ने भाग लिया। मार्च, 1929 को रोहतक पंजाब कांग्रेस कमेटी वार्षिक कॉन्फ्रेंस में पालमपुर के लाला बाशी राम तथा नाहन के चौधरी शेरजंग ने भाग लिया। इसी समय नाहन के शिवानंद रमौल भी सहायक दरोगा की नौकरी छोड़ स्वाधीनता आंदोलन में कूदे।

सन् 1929 में ही क्रांतिकारी यशपाल रोहतक में साथियों सहित बम बना रहे थे। 8 अप्रैल, 1929 को भगत सिंह तथा राजगुरु, सुखदेव, बटुकेश्वर दत्त ने असेंबली हॉल में बम धमाका किया और पकड़े गए। यशपाल भी फरार होकर कांगड़ा किले में आ छिपे। 7 सितंबर, 1929 को भगत सिंह के साथी जितेंद्र नाथ दास भूख हड़ताल से शहीद हो गए। यशपाल छिपते-छिपाते पुनः लाहौर पहुंचे। इनके साथ हमीरपुर के मंगत राम भी थे। यशपाल, मंगत राम तथा अन्य साथियों ने लॉर्ड इरविन की गाड़ी को उड़ाने की योजना बनाई। मंगत राम ने अपना नाम बदलकर इंद्रपाल रख लिया था। वह साधु वेश में दिल्ली की बदरपुर चौकी के पास बैठा रहता। रात को साधु की कुटिया के पास बम तथा अन्य सामग्री छिपाई जाती। यह योजना 27 अक्तूबर, 1929 को स्थगित करनी पड़ी क्योंकि नवंबर में वायसराय को विशेष घोषणा करनी थी। घोषणा में कुछ विशेष नहीं हुआ अतः पुनः योजना बनाई गई। 23 दिसंबर, 1929 को मथुरा-दिल्ली ट्रेन में पुराने किले के पास यशपाल, इंद्रपाल, भगवती चरण और लेखराम ने बम धमाका किया। इस ट्रेन में वायसराय लॉर्ड इरविन था किंतु वह बच गया। केवल एक व्यक्ति जख्मी हुआ। इसके बाद ये चारों फरार हो गए।

27 दिसंबर, 1929 को लाहौर के वार्षिक कांग्रेस अधिवेशन में सिरमौर के राजेंद्र दत्त, मंडी के स्वामी कृष्णानंद, ठियोग के जयलाल नागस, पालमपुर के लाला बाशी राम और रामचंद तथा ऊना व कुल्लू के प्रतिनिधि भी भाग लेने पहुंचे।

सविनय अवज्ञा आंदोलन

महात्मा गांधी ने जब 27 फरवरी, 1930 को सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ किया तो इस ओर भी इस आंदोलन का असर हुआ। 6 अप्रैल, 1930 को बटलर स्कूल, सनातन धर्म तथा सरकारी स्कूल के विद्यार्थियों ने हड़ताल की। जाखू मेले के अवसर पर जलसा किया गया। 24 अप्रैल, 1930 को गंज मैदान में जलसा हुआ। आंदोलनकारियों के प्रशिक्षण के लिए तीन आश्रम खोले गए।

इन्हीं दिनों सिरमौर के क्रांतिकारी चौधरी शेरजंग को अहमदाबाद डकैती केस में दस वर्ष की कैद देकर मुल्तान भेजा गया। शिमला में पिकेटिंग हुई। आंदोलन तथा अन्य गतिविधियों के कारण नेताओं को सजाएं हुईं। शिमला में लाला गेंडामल,

डॉ. नंदलाल वर्मा, लक्ष्मी देवी, रूपलाल मेहता, सुंदरदास, श्याम लाल, द्वारिका प्रसाद, दीनानाथ आंधी आदि पकड़े गए। कनौरा राम (ठियोग), कूड़ा राम (ज्वालामुखी), गोबिंद राम (रोहड्रू), गोपी चंद पालसरा (बुशहर), जयंती प्रसाद (कसौली), दीनानाथ डोगरा (रामपुर) आदि लोग भी शिमला में गिरफ्तार किए गए। कांगड़ा में बाबा कांशी राम की गायक मंडली ने गीतों से आंदोलन आरंभ किया। धर्मशाला में मित्रसेन, सेनावीर, मास्टर चिटकू की मंडली ने गीतों से प्रचार किया। लाला बाशी राम, ठाकुर हजारा सिंह, कृष्णा चंद पुरी, सिधु, लाला निगाहिया मल आदि ने सत्याग्रही चारों ओर भेजे। इस ओर जलसे-जुलूसों का जोर हो गया। नादौन, धमेटा, पालमपुर, देहरा गोपीपुर, परागपुर, कांगड़ा, कुल्लू, ऊना में खादी केंद्र स्थापित हुए। सुजानपुर में चौधरी सिधु राम, रामसरन, सर्वमित्र आदि तथा हमीरपुर में पं. मिल्खी राम, बिशन दास, भगत राम, गोपाल दास, मुंशी राम आदि भी इस आंदोलन में कूदे। लाला बाशी राम (पालमपुर), कृष्ण चंद्र पुरी (धर्मशाला), जीवन लाल (हरिपुर), प्रताप सिंह गुलेरिया (नगरोटा बगवां), तारा चंद (पालमपुर), मिल्खी राम (देहरा गोपीपुर) ने आंदोलन को सक्रिय किया। सात सौ सत्याग्रही पकड़े गए।

इंद्रपाल तथा साथियों ने इसी दौरान लाहौर में भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त को छुड़ाने के प्रयास किए। चंद्रशेखर आजाद के मार्गदर्शन में ये शस्त्रास्त्र इकट्ठे करते रहे। 28 मई, 1930 को बम बनाते हुए भगवतीचरण के हाथ में बम फट गया। अतः इंद्रपाल और साथियों को भागना पड़ा। जून, 1930 में इंद्रपाल ने 'आतिशी चक्र योजना' बनाई जिसके तहत लायलपुर, शेखपुरा, गुजरांवाला, रावलपिंडी, लाहौर आदि में बम चलाए गए।

कुल्लू तथा ऊना में भी गतिविधियां जारी रहीं। बाबा लछमन दास और उनके पुत्र सत्यप्रकाश बागी को गिरफ्तार किया गया। ढालपुर मैदान कुल्लू में 25 अप्रैल, 1930 को एक जलूस निकाला गया। जलसे में लाला शिवदयाल, महाशय आत्मा राम, पं. गोबिंद राम ने भाषण दिए।

शिमला की देशी रियासतों में इस आंदोलन का असर नहीं के बराबर हुआ। मंडी तथा नाहन शहरों में आंदोलन हुए।

भारत सरकार अधिनियम 1935, 2 अगस्त, 1935 को पारित हुआ जिसे अस्वीकृत किया गया अतः यह लागू नहीं हो पाया।

प्रथम अक्तूबर, 1935 को तीर्थराम ओयल ने अपने गांव में 'गांधी सेवा आश्रम ओयल' की नींव रखी। इसी समय यशपाल, इंद्रपाल, चौधरी शेरजंग, नरेंद्र पाल (मंडी), फकीरचंद थापा (कुल्लू) आदि नेता जेल में थे। सन् 1936 के लगभग चंबा में 'चंबा सेवक संघ' संस्था बनी। बाबा लछमन दास (ऊना) हरिजन कल्याण कार्यों

में लगे जबकि उनके पुत्र कांग्रेस के स्थानीय सचिव बने। मंडी में प्रजामंडल का गठन हुआ। स्वामी संपूर्णानंद इसके अध्यक्ष बने। कुल्लू के नाथू राम शेरेदिल, मंडी के खेमचंद, शिमला के कस्तूरी लाल, दीनानाथ आंधी, सुकेत के पद्मनाथ जेल गए।

सन् 1937 में प्रांतीय विधानमंडलों के चुनाव हुए। कांगड़ा में पंजाब प्रांत के तीन विधानसभा क्षेत्र बने। हमीरपुर से ठाकुर हजारा सिंह, पालमपुर-कांगड़ा से पंचम चंद कटोच कांग्रेस प्रत्याशी बने। देहरा से पं. भगत राम आजाद प्रत्याशी बने। मतदान के लिए पांच रुपए या इससे अधिक लगान देने वाला ही मतदाता था। इस चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशी ठाकुर हजारा सिंह और पंचम चंद हार गए। आजाद प्रत्याशी पं. भगत राम देहरा से जीत गए। पं. भगत राम ने मार्च, 1937 में गढ़दीवाला (होशियारपुर) में हुई कांग्रेस कॉन्फ्रेंस में कांग्रेस में शामिल होने की घोषणा की। इसी कॉन्फ्रेंस में पं. जवाहर लाल नेहरू ने बाबा कांशी राम को 'पहाड़ी गांधी' कहकर पुकारा।

इन्हीं दिनों पंजाब कांग्रेस के प्रधान डॉ. सैफुद्दीन किचलू ने कांगड़ा आकर कार्यकर्ताओं को प्रेरित किया। पंजाब से चंबा राम, सावित्री देवी, बेगम फातिमा, सैयद दिलावर भी यहां आए और प्रचार किया। सिरमौर में जगत सिंह नेगी, सोलन में गंगा राम, कुल्लू में सुखनंद ने भी स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया।

इस अवधि में कांगड़ा, ऊना, कुल्लू, लाहौल-स्पीति, शिमला में संगठन मजबूत हुए।

आजाद हिंद फौज

नेता जी सुभाष चंद्र बोस 21 अक्तूबर, 1943 को आजाद हिंद फौज के सेनापति और अध्यक्ष बने। अंडमान निकोबार द्वीप में आजाद हिंद सरकार स्थापित की गई। नेता जी ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा की। इस सेना में लगभग 3,50,000 प्रशिक्षित सैनिक थे जिन्होंने मर-मिटने की ठानी। इस सेना के गांधी ब्रिगेड, नेहरू ब्रिगेड, आजाद ब्रिगेड, लक्ष्मी बाई ब्रिगेड नामों से ब्रिगेड थे। सभी जवान नेता जी के 'जय हिंद' नारे पर मर-मिटने को तत्पर थे। इन्होंने बर्मा, सिंगापुर, थाईलैंड के जंगलों में लड़ाई की तैयारी की।

4-5 फरवरी, 1944 को नेता जी ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा की। नेता जी ने शस्त्र के बल पर 'दिल्ली चलो' का नारा दिया। आजाद हिंद फौज ने चिटागांव पार कर नागालैंड और मणिपुर में प्रवेश कर इम्फाल को तीन महीने तक घेरे रखा। मणिपुर (मोरंग) में आजादी का झंडा गाड़ा।

आजाद हिंद फौज में हिमाचल प्रदेश के लगभग चार हजार जवान थे। कांगड़ा,

हमीरपुर, बिलासपुर तथा अन्य भागों के जवानों ने इस फौज में बहादुरी के तमगे हासिल किए। जून, 1944 में इन सेनानियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध घोर युद्ध किया और उन्हें भारत से लगभग भागने पर विवश किया। पहाड़ के योद्धाओं ने अद्भुत साहस और पराक्रम का परिचय दिया। बीस जून को जापानी सेना तथा आजाद हिंद फौज को पीछे हटना पड़ा। आजाद हिंद फौज के लगभग छब्बीस हजार जवान शहीद हुए।

आजाद हिंद फौज में 'बहादुर ग्रुप' के कमांडर देहरा (कांगड़ा) के लेफ्टिनेंट कर्नल मेहरदास थे और सेकंड इन कमांड चढ़ियार (पालमपुर) के कैप्टन बख्शी प्रताप सिंह थे। बहादुर ग्रुप के ये दो वीर सेनानी दुश्मन सेना में नगवांग बांग क्षेत्र में आगे बढ़े। 15 फरवरी, 1944 को केवल पच्चीस जवानों ने सात सौ अंग्रेजों को पीछे धकेला। पांचवीं और सातवीं डिवीजन में छापा मारकर रिकॉर्ड छीन लिया। कैप्टन बख्शी प्रताप सिंह ने एक अंग्रेज अफसर और संतरी को मार दिया। स्वयं घायल होने के बावजूद अपने कैम्प में लौट आए। असले की कमी के कारण इन्हें वापस हटना पड़ा।

इस बहादुरी के लिए देहरा के लेफ्टिनेंट कर्नल, मेहरदास को 'सरदार-ए-जंग' की उपाधि दी गई और चढ़ियार के कैप्टन बख्शी प्रताप सिंह को 'तमगा-ए-शत्रुनाश' का खिताब मिला। हमीरपुर के लेफ्टिनेंट अमर चंद को 'तमगा-ए-बहादुरी', ऊना के लेफ्टिनेंट सुखदेव चौधरी को 'वीर-ए-हिंद', सरकाघाट के हरि सिंह को, जो अराकान मोर्चे पर लड़े थे, 'शेर-ए-हिंद' की उपाधि दी गई।

आजाद हिंद फौज की लड़ाई में ऊना के कैप्टन रामरत्न सिंह, नूरपुर के कैप्टन खुशी राम, इंदौरा के कैप्टन चंदा सिंह, बिलासपुर के कैप्टन संत सिंह, देहरी नूरपुर के कैप्टन नानक सिंह, नूरपुर के ही कैप्टन रूमाल सिंह, नेरचौक के कैप्टन अर्जुन सिंह, सरकाघाट के कैप्टन बसंत सिंह, थानेधार के कैप्टन जयराम सिंह, कुनिहार के कैप्टन निक्कू राम, भोरंज के कैप्टन दुर्गा सिंह, बड़सर के कैप्टन प्रताप सिंह, सुजानपुर टिहरा के कैप्टन अमी चंद, मरहाणा बिलासपुर के कैप्टन शेर सिंह ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

युद्ध कैदियों में गुप्तचर विभाग के कमांडर मेजर दुर्गामल भी थे जो श्याम नगर धर्मशाला के निवासी थे। ये 27 फरवरी, 1944 को पकड़े गए और इनके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया। इन्होंने मुआफीनामे पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया अतः 25 अगस्त, 1944 को तिहाड़ जेल में फांसी दी गई। कजलोट (धर्मशाला) के दलबहादुर थापा को 3 मई, 1945 को लाल किले में फांसी दी गई।

अन्य सेनानियों में लेफ्टिनेंट भागी सिंह (हमीरपुर), लेफ्टिनेंट रूप चंद (जोगेंद्र नगर), लेफ्टिनेंट नारायण सिंह जसवाल (सिरमौर), लेफ्टिनेंट बहादुर सिंह (सरकाघाट),

लेफ्टिनेंट प्रीतम सिंह (पालमपुर), लेफ्टिनेंट भीम सिंह (नूरपुर), लेफ्टिनेंट अलबेल सिंह कटोच (पालमपुर), लेफ्टिनेंट चमेल सिंह (योल), लेफ्टिनेंट बलदेव सिंह पठानिया (नूरपुर), लेफ्टिनेंट टेक बहादुर थापा (धर्मशाला) आदि तथा कितने ही सेकंड लेफ्टिनेंट रैंक के अफसर हिमाचल से थे।

आजाद हिंद फौज के कौमी गीत 'कदम-कदम बढ़ाए जा, खुशी के गीत गाए जा; ये जिंदगी है कौम की, तू कौम पर लुटाए जा।' के संगीत निर्देशक घन्यारा (कांगड़ा) के सैनिक बीर राम सिंह ठाकुर थे।

आजाद हिंद फौज के युद्धबंदियों के साथ अमानवीय व्यवहार किए गए। पं. नेहरू ने तथा दूसरे वकीलों ने इन बंदियों के केस लड़े। कांगड़ा, बिलासपुर, हमीरपुर, कुल्लू में आजाद हिंद फौज के समर्थन में प्रदर्शन किए गए। युद्धबंदियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई।

18 अगस्त, 1945 को नेता जी विमान दुर्घटना में शहीद हुए। 17 फरवरी, 1946 को युद्धबंदियों की रिहाई होनी आरंभ हुई। इन जवानों का स्वागत किया गया और इनमें से कई स्वाधीनता आंदोलन में कूदे। सितंबर, 1946 में बिलासपुर के बाग चौंता में 'आजाद हिंद फौज दिवस' मनाया गया। इस विशाल सभा में तिरंगा झंडा लहराया गया। रियासती पुलिस ने लाठीचार्ज कर इन्हें भगा दिया। दूसरे दिन नगर में हड़ताल की गई।

भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित स्वाधीनता सेनानियों की सूची में कांगड़ा (561), हमीरपुर (317), मंडी (224), बिलासपुर (112), ऊना (109), चंबा (36), सोलन (19), शिमला (5), कुल्लू (2), किन्नौर (2), सिरमौर (3) जिलों में 1390 सेनानी दिए हैं जो सरकार से पेंशन प्राप्त करते हैं। कुल मिलाकर सेनानियों की संख्या दो हजार तक रही होगी।

केंद्र सरकार से पेंशन लेने वाले स्वाधीनता सेनानियों की सूची

क्र.	जिला	आजाद हिंद फौज	स्वाधीनता सेनानी	कुल
1.	कांगड़ा	561	35	596
2.	हमीरपुर	317	68	385
3.	ऊना	109	48	157
4.	मंडी	224	103	327
5.	बिलासपुर	112	81	193
6.	सिरमौर	3	52	55
7.	चंबा	36	4	40
8.	सोलन	19	27	46

9.	कुल्लू	2	9	11
10.	शिमला	5	52	57
11.	किन्नौर	2	-	2
		1390	479	1869

'हिमाचल प्रदेश के स्वतंत्रता सेनानी' नाम से भाषा-संस्कृति विभाग द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में कुल 1869 स्वाधीनता सेनानियों के परिचय दिए गए हैं जो केंद्र सरकार से पेंशन प्राप्त करते थे। लगभग 19 ऐसे सेनानी हैं जिन्हें पेंशन नियमानुसार नहीं मिल पाई या जिन्होंने पेंशन लेने से इनकार किया।

सूची में राज्य सरकार से पेंशन लेने वाले सेनानी शामिल नहीं हैं। विभाग द्वारा एक और खंड निकाला गया जिसमें 361 सेनानी हैं। अतः सेनानियों की संख्या 2500 से ऊपर हो सकती है।

भारत छोड़ो आंदोलन से सन् 47 तक

महात्मा गांधी ने 14 जुलाई, 1942 को वर्धा की कांग्रेस कार्यकारिणी में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया और मुंबई की बैठक में 7-8 अगस्त, 1942 को इसे गांधी जी के नेतृत्व में चलाने का निर्णय लिया। इसके फलस्वरूप 9 अगस्त को यह आंदोलन आरंभ हुआ।

हिमाचल प्रदेश में भी सभी स्थानों पर जनसभाएं की गईं। शिमला में भागमल सौहटा, पं. हरिराम, चौधरी दीवान चंद, सालिगराम शर्मा, नंदलाल वर्मा, संतराम आदि को गिरफ्तार कर पंजाब की जेलों में भेजा गया।

गांधी जी के जेल में बंदी होने के कारण मुंबई से प्रकाशित 'हरिजन' का संपादन राजकुमारी अमृत कौर के निवास स्थान समरहिल से किया गया। वे समरहिल में मंसूर विला में रहती थीं।

सशक्त क्रांति के उद्देश्य से पं. पद्मदेव, गौरी शंकर, मंशा राम चौहान, शिवदत्त, हीरा सिंह पाल, तुलसी आदि ने गोला-बारूद एकत्र किया। पं. पद्मदेव को कैथू जेल में बंद किया गया। दूसरे लोगों ने रेल की पटरियां उखाड़ने, टेलीफोन के तार काटने आदि काम किए।

भारत छोड़ो आंदोलन में ऊना में लछमन दास आर्य के बेटों सत्यमित्र और सत्यभूषण, महाशय तीर्थराम ने भाग लिया। महाशय तीर्थ राम, हंस राज, लछमण दास चौधरी को कारावास की सजाएं हुईं। उधर कर्म चंद (कुल्लू), नाथू राम, अमर चंद (कुल्लू), जयलाल नागल (पालमपुर), लाला बाशी राम (पालमपुर), सरला शर्मा (हमीरपुर), स्वामी कृष्णा नंद (मंडी), सौदागर मल, गुलाम रसूल (चंबा), बख्शी राम,

बंशी धर, काली दास, लाला निगाहिया मल (हमीरपुर), कांशी राम (कांगड़ा), चौधरी तुलसी राम (देहरा), रोशन लाल सूद (धर्मशाला), कन्हैया लाल बुटेल, तारा चंद, सालिगराम, हरी चंद (पालमपुर) को गिरफ्तार कर पंजाब की जेलों में डाला गया। कांगड़ा में कांग्रेस कमेटी ने कई सम्मेलन किए। गिरफ्तारी के बावजूद आंदोलन जारी रहे। जनवरी, 1943 में हमीरपुर कांग्रेस कार्यालय पर छापा मार कार्यकर्ता गिरफ्तार किए गए। 13 जनवरी, 1943 को भरेड़ी में कांगड़ा जिला कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। बैठक से वापसी पर सरला शर्मा को बैजनाथ में भड़कीला भाषण देने के आरोप में पकड़ लिया और धर्मशाला के बाद लाहौर जेल भेजा गया। बिलासपुर में प्रजामंडल के नेताओं संतराम संत, दौलत राम सांख्यान, नरोत्तम दत्त शास्त्री, संतराम कांगा, भगत राम, सदा राम, प्रेम लाल आदि ने जनता में जागृति पैदा की।

13 अक्तूबर, 1943 को पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम का देहांत हो गया। बाबा जी की भतीजी उषा शारदा और दामाद शिव कुमार शारदा ने संघर्ष में भाग लिया।

मई, 1944 में गांधी जी रिहा हुए किंतु उन्होंने कोई आगामी आदेश नहीं दिया। अतः भारत छोड़ो आंदोलन धीमा पड़ गया। हिमाचल प्रदेश के बंदी नेता भी रिहा किए गए।

इस काल में प्रजामंडल आंदोलनों का प्रदेश में जोर रहा। सिरमौर, मंडी, सुकेत में प्रजामंडलों के कार्य जारी रहे। बिलासपुर में राजा आनंद चंद ने दमनकारी नीति से नेताओं को परेशान किया।

दिसंबर, 1945 में कांगड़ा में विधानसभा चुनाव हुए। कांगड़ा के नेताओं ने लाला हेमराज के घर बैठक कर हमीरपुर से दलीप सिंह, देहरा-नूरपुर से पं. भगत राम, धर्मशाला से पंचम चंद, कटोच तथा कुल्लू से ठाकुर बेली राम को प्रत्याशी बनाया। इस चुनाव में कांग्रेस के चारों प्रत्याशी विजयी हुए। मंडी के स्वामी कृष्णा नंद कराची में चुनाव जीते। 1946 में मंडी तथा सिरमौर में विधान परिषदों की स्थापना हुई। मंडी में गौरी प्रसाद, कृष्ण चंद आदि परिषद के सदस्य बने। सिरमौर के नेताओं ने परिषद में आने से इनकार किया।

सन् 1947 के आरंभ में जहां शिमला हिल स्टेट्स में प्रजामंडल, हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल की गतिविधियां जारी रहीं, वहां शिमला, कांगड़ा, कुल्लू, लाहौल-स्पीति, ऊना, डलहौजी में भारत छोड़ो आंदोलन की सरगर्मियां तेज हुईं। जब अंग्रेजों ने भारत छोड़ने की घोषणा की तो इस ओर लोग आजादी का सपना देखने लगे।

15 अगस्त, 1947 को जब भारत आजाद हुआ तो स्वतंत्रता दिवस कांगड़ा, कुल्लू, लाहौल-स्पीति, ऊना, हमीरपुर, डलहौजी और शिमला में धूमधाम से मनाया गया। कांगड़ा में लाला हेमराज वकील, पं. भगत राम, जयलाल नागल, लाला बाशी

राम, चौधरी तुलसी राम, कृष्ण चंद पुरी, चौधरी हरी राम, अमरनाथ शर्मा, बख्शी प्रताप सिंह ने स्थान-स्थान पर स्वाधीनता दिवस मनाया। पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को भी यहां बसाने का कार्य किया गया। उन्हें सहायता दी गई।

पालमपुर में लाला जयलाल नागल ने भारी जनसभा की। प्रताप सिंह गुलेरिया ने नगरोटा सूरियां में झंडा लहराया। परागपुर में अमरचंद सूद ने जुलूस निकाला। ऊना में बाबा लछमन दास ने दीपमाला की। ढालपुर मैदान कुल्लू में स्वाधीनता दिवस मनाया गया। 15 अगस्त को भारत के स्वतंत्र होने पर कांगड़ा, ऊना, हमीरपुर, कुल्लू, लाहौल-स्पीति, डलहौजी तथा शिमला शहर स्वतंत्र हुए और पंजाब प्रांत में सम्मिलित किए गए। शिमला शहर में भी जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधान चौधरी दीवान चंद, महामंत्री सालिगराम शर्मा, हरी राम शर्मा, श्याम लाल खन्ना, डॉ. नंद लाल वर्मा, लाला गेंडा मल, दीनानाथ आंधी, सालिगराम गुप्ता, विशेषसर दयाल, मेला राम सूद, आत्मा राम आदि ने तिरंगा लहराया, मिठाइयां बांटी। इस दिन भारत के अंतिम वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन तथा उनकी पत्नी व पुत्री भी माल रोड पर घूम रहे थे। शिमला शहर में तो खुशियां मनाई गईं किंतु हिमाचल की पहाड़ी रियासतें अभी स्वतंत्र नहीं हुईं।

प्रजामंडल आंदोलन

विभिन्न रियासतों में आंदोलन शुरू करने के लिए प्रजामंडलों की स्थापना हुई। दिसंबर, 1936 में फैजपुर में हुए कांग्रेस अधिवेशन में रियासतों में संगठन बनाने की जरूरत महसूस की गई। इसी तरह फरवरी, 1938 में हरिपुरा अधिवेशन में भी अखिल भारतीय तथा रियासती प्रजामंडलों को बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। मार्च, 1938 में लुधियाना में हुए अखिल भारतीय प्रजा परिषद के सम्मेलन में अध्यक्षता करते हुए पंडित नेहरू ने भी रियासतों में प्रजामंडल स्थापित करने के निर्देश दिए।

हिमाचल प्रदेश में इन अधिवेशनों से पहले ही प्रजामंडल स्थापित हो चुके थे। कुछ संगठन दूसरे नामों से थे जो बाद में प्रजामंडलों में बदले।

लगभग 1935 में सिरमौर में प्रजामंडल का गठन हुआ जिसमें नगेंद्र सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह तथा आत्मा राम आदि थे। कानून सुधार सभा के पं. राजेंद्र दत्त भी मई, 1935 में प्रजामंडल में शामिल हो गए और एडवोकेट धर्मनारायण प्रधान, पं. राजेंद्र दत्त उपप्रधान और डॉ. देवेंद्र सिंह सचिव तथा मंत्री बने। नाहन चौक में प्रजामंडल का एक जलसा किया गया। सन् 1936 में स्वामी पूर्णानंद की अध्यक्षता में मंडी में प्रजामंडल का गठन हुआ जिसमें रामचंद मल्होत्रा, बलदेव राम, हरसुखराय,

मोती राम, सुंदर लाल आदि सदस्य बने। मार्च, 1936 में चंबा सेवक संघ बना जो आग से प्रभावित लोगों की सहायता के लिए बना था किंतु बाद में यह एक राजनीतिक संगठन बन गया। जयदेव बडोत्रा इस संगठन के प्रधान बने और ध्यान सिंह पुरी, गुलाम रसूल, गुलाम नबी, पं. विद्यासागर, पृथ्वी सिंह कटोच, लाला रेलूमल आदि सदस्य। रियासती सरकार ने इस संघ पर प्रतिबंध लगा दिया। इसी समय में ऊना के बाबा लक्ष्मण दास आर्य हरिजनों के उद्धार में लगे। सन् 1936 में ही कुल्लू में 'ग्राम सुधार सभा' बनी जिसके संस्थापक लाल चंद प्रार्थी थे। भज्जी (शिमला हिल्ज) में प्रजामंडल का कार्य भास्करानंद ने चलाया। इस समय तक क्रांतिकारी देशभक्तों ने अपने ढंग से कार्य किया। मंडी के खेमचंद, कुल्लू के नाथूराम शेरेदिल, सुकेत के पद्मनाथ तथा शिमला के कस्तूरी लाल आजाद, दीनानाथ आंधी जेलों में बंदी हुए।

चंबा की भांति मंडी में भी प्रजामंडल आंदोलन पर पाबंदी लगा दी अतः सेवादल नाम से संस्था बनाई गई।

धामी में (1937) 'प्रेम प्रचारिणी सभा' बनाई गई जिसके प्रधान बाबू नारायण दास तथा मंत्री पं. सीता राम बने। यह संस्था भी पहले सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के लिए बनी जो बाद में राजनीतिक कार्य भी करने लगी जिससे सरकार ने इसे दबाना आरंभ किया।

अगस्त, 1937 में सिरमौर में प्रजामंडल विधिवत् स्थापित हुआ और इसका संविधान बनाया गया। पं. राजेंद्र दत्त, हितेंद्र सिंह, हरिश्चंद्र पाधा, इंद्र नारायण, सीताराम, टी.डी. जोशी आदि इसके सदस्य बने।

11 अगस्त, 1938 को 'बाघल प्रजामंडल' की स्थापना हुई जिसके मंत्री मंशाराम चौहान तथा ठाकुर दुर्गा राम, चंद्रलाल, साधु राम, धन्ना लाल सदस्य बने। इसी तरह सूरतराम प्रकाश ने ठियोग में, पं. भास्करानंद ने भज्जी में, भागमल सौहटा ने जुब्बल में प्रजामंडल स्थापित किए। इसी प्रकार बुशहर, कुम्हारसेन, कोटी आदि में भी प्रजामंडलों का गठन आरंभ हुआ। पं. पद्मदेव ने शिमला से प्रजामंडलों की स्थापना के निर्देश दिए।

हिमालय रियासती प्रजामंडल

शिमला हिल स्टेट्स की विभिन्न रियासतों में प्रजामंडलों की स्थापना की प्रक्रिया के बाद दिसंबर, 1938 में 'हिमालय रियासती प्रजामंडल' की स्थापना शिमला में हुई जिसमें टिहरी के देव सुमन, बुशहर के पं. पद्मदेव और जुब्बल के भागमल सौहटा, भज्जी के भास्करानंद, बाघल से हीरा सिंह पाल, ठियोग से सूरतराम प्रकाश, मधान से देवी दास मुसाफिर, क्योंथल से देवी राम केवला, बिलासपुर से

सदाराम चंदेल सदस्य बने। टिहरी के देव सुमन संस्था के उपदेशक बनाए गए। पं. पद्मदेव प्रधान तथा भागमल सौहटा महामंत्री बनाए गए। बाद में इस केंद्रीय संगठन में बाघल से मंशाराम चौहान, बघाट से ज्ञान चंद टुट्टू, थरोच से लच्छी राम, बघाट से बाबू शिवदत्त, धामी से पं. सीताराम भी सदस्य बने। इस प्रकार सभी रियासतों और विशेषकर शिमला की पहाड़ी रियासतों के लिए यह एक केंद्रीय संगठन बना।

प्रजामंडलों का दमन

वर्ष 1939 प्रजामंडलों के दमन का वर्ष था। इसी वर्ष सिरमौर में प्रजामंडल को दबाने के लिए मि. हइन को पुलिस सुपरिंटेंडेंट नियुक्त किया गया और बलोच सिपाही भर्ती किए गए। 'रजिस्ट्रेशन ऑफ सोसायटीज एक्ट' लागू कर सभी संगठनों पर प्रतिबंध लगाया गया। पांच से अधिक व्यक्ति एक स्थान पर इकट्ठा नहीं हो सकते थे। प्रजामंडल की सहायता के लिए पुलिस सुपरिंटेंडेंट अजीत सिंह को नौकरी से बर्खास्त किया गया, सब-इंस्पेक्टर जगत सिंह को देहरादून भेजा गया। डॉ. देवेंद्र सिंह, हरीचंद पाधा, आत्मा राम, इंद्र नारायण पर मुकदमा चलाया गया। डॉ. देवेंद्र सिंह तथा अन्य पर राजा को मारने का अभियोग चला। यशवंत सिंह परमार सिरमौर में सेशन जज थे। उन्होंने ये आरोप झूठे सिद्ध किए। अतः रियासती सरकार ने यशवंत सिंह परमार तथा परिवार को चौबीस घंटे के अंदर रियासत छोड़ने के आदेश दिए। वे देहरादून चले गए।

डॉ. देवेंद्र सिंह रिहा होकर दिल्ली चले गए। अब शिवानंद रमौल ने नाहन आकर प्रजामंडल का नेतृत्व संभाला। प्रजामंडल की राजगढ़ शाखा के संचालक वैद्य सूरत सिंह बने।

इसी वर्ष शिमला की समस्त पहाड़ी रियासतों में प्रजामंडल आंदोलन का दमन हुआ और सदस्यों के रियासतों में आने पर पाबंदी लगाई गई। राजकुमारी अमृत कौर समरहिल शिमला में रहती थीं। इन्होंने भी आंदोलनकारियों का मार्गदर्शन किया।

पं. पद्मदेव के जून, 1939 में निजाम के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन में हैदराबाद जाने पर हिमालय रियासती प्रजामंडल के महामंत्री भागमल सौहटा बने। इन लोगों ने महलोग, कुनिहार में भी प्रजामंडल बनाया। कुनिहार के राणा हरदेव कुनिहार प्रजामंडल के सभापति बने।

13 जुलाई, 1939 में प्रेम प्रचारिणी सभा धामी ने कमाहली में बैठक करके प्रजामंडल में मिलने का निर्णय लिया अतः पं. सीताराम की अध्यक्षता में यह संगठन 'धामी प्रजामंडल' में बदल दिया गया।

धामी गोली कांड

प्रजामंडल बनने पर राणा धामी को बेगार बंद करने, लगान में कमी करने की मांगों का एक प्रस्ताव भेजा गया जिसका राणा की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। उत्तर न मिलने पर 16 जुलाई को राणा से सात व्यक्तियों के शिष्टमंडल से मिलने का निर्णय बैठक में पहले ही लिया जा चुका था, अतः 16 जुलाई, 1939 को एक शिष्टमंडल राजधानी हलोग गया जिसमें भागमल सौहटा, हीरासिंह पाल, मंशा राम चौहान, पं. सीताराम, बाबू नारायण दास, भगत राम, गौरी सिंह थे। घणाहट्टी में पुलिस ने भागमल सौहटा को गिरफ्तार कर लिया, झंडा जला दिया। इससे सदस्यों में रोष फैल गया और वे 'महात्मा गांधी जिंदाबाद', 'कांग्रेस जिंदाबाद' के नारे लगाने लगे। जब वे आगे बढ़े तो इनके साथ दूसरे लोग भी चल दिए और हलोग पहुंचते-पहुंचते लोगों की संख्या पंद्रह सौ तक हो गई। भागमल सौहटा को जब थाने ले जाया गया तो मंशा राम चौहान और धर्मदास भी थाने चले गए। भीड़ में उत्तेजना फैलते देखकर राणा के लोगों और पुलिस ने गोलियां बरसानी शुरू कर दीं। लोगों को डंडों से पीटकर भगा दिया। इस गोलीकांड में मंदेआ के दुर्गादास तथा टंगोश के उमादत्त गोली लगने से शहीद हो गए। अस्सी-नब्बे लोग घायल हुए जिनमें से चालीस को रिपन अस्पताल लाया गया। इनमें से दस घायलों को अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। बसमाणा के रूप राम, कालवी के तुलसी राम और चैईयां के नारायण दास अपंग हो गए।

इस गोली कांड से आतंक फैल गया और धामी के लगभग दो सौ लोग शिमला के गंज बाजार में तीन मास तक रहे। ब्रिटिश सरकार ने शिमला में धारा 144 लगा दी और कर्फ्यू लगा दिया। इस कांड की जांच के लिए एक कमेटी गठित हुई जिसने शिमला के डिप्टी कमिश्नर से पूछताछ की। जांच के दौरान पता चला कि राणा धामी ने सौ पुलिस जवान मांगे थे जो उसे नहीं दिए गए किंतु राणा के आदमियों को जुणगा भेज दिया। क्योंथलवासी देवी राम केवला को जुणगा भेजा गया। जुणगा के राजा हेमेंद्र सेन ने धामी के राणा को पुलिस देने से मना कर दिया।

राजकुमारी अमृत कौर के नेतृत्व में 26 जुलाई, 1939 को पं. भास्करानंद, काहन सिंह सौहटा महात्मा गांधी से दिल्ली में मिले और उन्हें इस कांड के बारे में बताया। गांधी जी ने इस घटना के बारे में पत्र पं. जवाहर लाल को दिया। अतः इलाहाबाद में पं. नेहरू से भेंट की गई। नेहरू जी अखिल भारतीय प्रजा परिषद के अध्यक्ष थे अतः उन्होंने अपनी निजी सचिव शांतिस्वरूप धवन को जांच के लिए भेजा। लाला दुनी चंद द्वारा तैयार पैंतीस पृष्ठीय रिपोर्ट 30 जुलाई, 1939 को पं. नेहरू को पेश की गई। शांतिस्वरूप धवन ने धामी जाकर राणा धामी दलीप सिंह

तथा लोगों से पूछताछ की। इसके बाद रियासती सरकार ने धामी प्रजामंडल के प्रधान पं. सीताराम को हिरासत में ले लिया।

प्रजामंडल के नेताओं ने धामी तथा शिमला में आंदोलन जारी रखा जिसमें भास्करानंद (भज्जी), हीरा सिंह पाल (अर्की), गौरी शंकर (कुनिहार), सूरत राम (ठियोग), देवी दास मुसाफिर (मधान), देवी राम केवला (क्योंथल), काहन सिंह सौहटा (जुब्बल), शिवदत्त (बघाट) आदि शामिल थे। इसमें राजकुमारी अमृत कौर तथा देवसुमन (टिहरी) ने भी आंदोलन का संचालन किया। सत्याग्रह दो मास तक चला।

धामी गोली कांड की चर्चा दिल्ली, इलाहाबाद, मुंबई तथा लाहौर के समाचार-पत्रों में हुई। महात्मा गांधी तथा पं. नेहरू ने इस बारे में समाचार-पत्रों में टिप्पणियां लिखीं।

लगभग दो मास तक चलने वाले इस सत्याग्रह को दबाने के लिए सरकार ने पंजाब से दो-अढ़ाई सौ सिपाही धामी भेजे जिनका खर्चा भी रियासती सरकार ने प्रजा से वसूला। धामीवासी बाघल रियासत की ओर भागे। रियासती सरकार ने नेताओं पर झूठे आरोप लगाकर सजाएं दीं। रेवाशंकर (बखलाग) को आजीवन कारावास, शिंगारू राम (चरैल) को बारह वर्ष कैद, खुशी राम मुहम्मद (अर्की) को चार वर्ष तीन मास कैद, दया राम (देओरा) को तीन वर्ष कैद, देवी राम (जाबल) को एक वर्ष दो मास कैद, चार सौ रुपए जुर्माना, देवी राम (कडया) को एक वर्ष एक मास कैद, सौ रुपए जुर्माना, नरोत्तम राम (शील), नारायण दास (चईयां), शिव राम (पलानिया), शिव राम (घरैल), रामदयाल (सींऊ) को एक वर्ष एक मास कैद, पं. सीताराम (धारठ) को एक वर्ष कैद, पंद्रह सौ रुपए जुर्माना, सूरतराम (तपाकड़ी) को एक वर्ष कैद, तीन सौ रुपए जुर्माना, नारायणू (सीऊं) को एक वर्ष कैद, दो सौ रुपए जुर्माना, गुसाऊं राम (निचली पोर) को छह मास कैद, दो सौ रुपए जुर्माना, भजनू राम (जबल) को छह मास कैद, तीस रुपए जुर्माना, डगरू राम (पोहड़ी निचली) को छह मास कैद, दो सौ रुपए जुर्माना, पदम सिंह (राह पलोग), रूप राम (बषमाणा), तुलसी राम (कालवी), मंशा राम (रौड़ी), भागमल सौहटा (धार जुब्बल) को तीन मास कैद की सजा दी गई। सींऊ परगना के शिव राम, रामदयाल, देवी राम, नारागू, रेवा शंकर, पं. सीता राम की संपत्ति जब्त कर ली गई।

शांतिस्वरूप धवन की रिपोर्ट अक्तूबर, 1939 को दायसराय के पास पहुंची, अतः दो सौ सत्याग्रही रिहा कर दिए गए। राणा दलीप सिंह को इस आंदोलन को दबाने के लिए सरकार द्वारा राजा की उपाधि दी गई।

शांतिस्वरूप धवन ने पहाड़ी रियासतों को भ्रमण करके जायजा लेने हेतु एक प्रश्नावली भेजी। इस प्रश्नावली का उत्तर पं. नेहरू के नाम इलाहाबाद डाक द्वारा

भेजने पर सत्यदेव बुशहरी को गिरफ्तार किया गया और कुछ दिनों बाद रामपुर जेल से रिहा किया गया। इससे बुशहरी भी, जो उन दिनों कॉलेज छात्र थे, स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े।

चंबा में जुलाई 1939 में वजीर माधोराम तथा पॉलिटिकल एजेंट के खिलाफ चंबा, चुराह, भटियात, बणीखेत तथा डलहौजी के लोगों ने प्रदर्शन किया। 26 जुलाई, 1939 को विभिन्न समाचार-पत्रों के माध्यम से प्रजा के रोष को सामने लाया गया। प्रजा द्वारा एक मांगपत्र भेजा गया जिसमें वजीर को हटाए जाने की बात कही गई। प्रजामंडल तथा कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में सर्वश्री जयदेव बड़ोत्रा, पृथी सिंह कटोच, ध्यान सिंह पुरी, मुंशी गुलाम नबी, दौलत राम गुप्ता, विद्या सागर, विद्या धर, सत्य प्रसाद भंडारी, कृष्ण कुमार रैणा, भक्त सिंह पठानिया, विजय प्रसाद, बलवंत सिंह आदि शामिल थे।

1941 तक हीरा सिंह पाल, मंशा राम चौहान, ज्ञान चंद टुट्टू, भास्करानंद, पं. सीताराम, गौरी शंकर, सूरतराम प्रकाश, बाबू शिवदत्त, लच्छी राम, देवी दास मुसाफिर प्रजामंडल के कार्यों में लगे रहे। फरवरी, 1941 में ही रियासती प्रजामंडल शिमला के नेता भागमल सौहटा को गंज में जनसभा करने के लिए गिरफ्तार किया गया और मुलतान जेल भेजा गया। मार्च, 1941 में प्रजामंडल आंदोलन को जन आंदोलन का रूप दिया गया। 'भाई दो न पाई दो' का नारा लगाकर 'वार फंड' न देने की अपील की गई।

विभिन्न प्रजामंडलों की स्थापना तथा गतिविधियां

सिरमौर रियासत में वर्ष 1942-43 में प्रजामंडल आंदोलन में पं. राजेंद्र दत्त, देवेंद्र सिंह, धर्मनारायण, शिवानंद रमौल, नगेंद्र सिंह, इंद्र नारायण, हरिचंद, हितेंद्र सिंह आदि ने भाग लिया। पं. शिवानंद रमौल ने प्रजामंडल कार्यालय अंबाला में खोला। सितंबर, 1947 में बोगधार मेले में एक जलसा किया गया किंतु रियासती सरकार द्वारा धारा 144 लगाने के कारण शिमला से डॉ. परमार आदि नेता नहीं पहुंच सके। अतः पं. शिवानंद रमौल, डॉ. देवेंद्र सिंह, लाला रामनाथ, ठाकुर बूटी नाथ, हृदय राम पांथ को गिरफ्तार किया गया। इसके बाद पं. राजेंद्र दत्त, जगमोहन रमौल, सुमेर चंद अग्रवाल को भी गिरफ्तार किया गया।

धामी प्रजामंडल का कार्य पं. सीताराम ने चलाए रखा। कोटी में ठाकुर गौरी दत्त, डॉ. निरम सिंह, दुर्गा सिंह राठौर प्रजामंडल के कार्यकर्ता थे। थरोच में कंवर मूरत सिंह ने प्रजामंडल की नींव रखी।

चंबा में दौलत राम गुप्ता, विद्यासागर, विद्याधर, गुलाम रसूल, ध्यान सिंह पुरी,

जसवंत राय, जयदेव बडोत्रा, बलवंत सिंह, चतुर सिंह, मुंशी गुलाब नवी, पृथी सिंह, सागर चंद नैयर आदि प्रजामंडल का कार्य देखते रहे और 1946 के लगभग सौदागर मल, गुलाम रसूल, लाल चंद गिरफ्तार किए गए। ये लोग रियासत में जलसे-जुलूस निकालते रहे।

बिलासपुर में मार्च, 1946 को दौलत राम सांख्यायन, धर्मवीर सिंह, संतराम संत को गिरफ्तार किया गया। कुछ आंदोलनकारियों ने 'प्रजामंडल बिलासपुर' की स्थापना शिमला में की जिसमें सदा राम चंदेल को प्रधान, नरोत्तम दत्त शास्त्री को उपप्रधान, श्याम नंद को महामंत्री, देवी राम उपाध्याय को कोषाध्यक्ष, रणवीर सिंह चंदेल को मंत्री बनाया गया। इसकी शाखाएं लाहौर, अमृतसर, दिल्ली तथा गुरदासपुर में भी खोलीं। संतराम संत, नरोत्तम दत्त शास्त्री, दौलत राम सांख्यायन आदि जलावतन किए गए अतः वे शिमला, सलोगड़ा आदि में कार्यरत रहे।

जून, 1946 में मेहर सिंह की अध्यक्षता में बलसन में प्रजामंडल स्थापित हुआ। यहां एक जलसा किया गया जिसमें पंजाब के तत्कालीन विधायक ठाकुर रत्न सिंह, पं. पद्‌म देव तथा चौधरी दीवान चंद ने भाग लिया।

इसी प्रकार महलोग, कुठाड़ आदि में भी 1946 के लगभग ही प्रजामंडल स्थापित हुए।

पझौता किसान आंदोलन

सिरमौर के गिरिपार के कुछ जागरूक किसानों ने 5 अक्तूबर, 1942 को जदोल टपरोली में एक सभा करके किसान सभा की नींव रखी जो बाद में 'पझौता किसान सभा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। सभापति कोटला बागीगांव के लक्ष्मी सिंह को चुना गया। गुलाब सिंह (टपरोली), चूंचूं मियां (जदोल), मेहर सिंह (वेण कुफ्फर), अत्तर सिंह (टपरोली), वैद्य सूरत सिंह (कटोगड़ा), मदन सिंह (धामला), जालम सिंह (बघोट), मही राम (लेऊ), कली राम (नेरी) इस सभा की कार्यकारिणी के सदस्य बने। वैद्य सूरत सिंह को सचिव बनाया गया। सभा के सभी सदस्यों ने 'लूण लोटा' कर अर्थात् लोटे में पानी-नमक मिलाकर शपथ ली। सभा के कार्यक्रम और उद्देश्य निश्चित कर रियासती सरकार के सामने निम्नलिखित मांगें रखी गईं :

1. रियासत में प्रजा द्वारा निर्वाचित मंत्रिमंडल स्थापित किया जाए।
2. महिला रीत टैक्स तथा बाल विवाह जैसी प्रथाएं समाप्त की जाएं।
3. लाजमी फौजी भर्ती बंद की जाए।
4. चराई टैक्स, घराट टैक्स, पशु टैक्स समाप्त कर दिए जाएं।
5. फसलों और आलुओं के खुले व्यापार कानून बनाए जाएं।

6. रियासत के भ्रष्ट और अत्याचारी कर्मचारियों को शीघ्र बदला जाए।
7. ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिए बनाए गए फसल कंट्रोल ऑर्डर को वापस लिया जाए।
8. विश्वयुद्ध में ब्रिटिश सरकार की मदद न की जाए।
9. नंबरदार और जेलदार रियासती सरकार के दमनकारी और अत्याचारी शासन के विरोध में त्यागपत्र दें।
10. गांवों में 'ग्राम सभा' और 'ग्राम पंचायत' प्रथा चलाई जाए।
11. जबरन बेगार बंद की जाए।
12. बिना लाइसेंस हथियार रखने की अनुमति मिले।
13. सरकारी कर्मचारियों पर जनता द्वारा किए खर्चों का भुगतान सरकार करे।
14. गिरि नदी पर पुल बनाया जाए।
15. रियासत में नए स्कूल, डाकघर, अस्पताल खोले जाएं।

यह मांगपत्र सिरमौर के महाराजा राजेंद्र प्रकाश को देकर किसान सभा के नेताओं ने गांव-गांव जाकर पूरे पझौता क्षेत्र का दौरा किया। इस प्रकार इस सभा को पझौता की जनता का समर्थन मिला।

सिरमौर का प्रशासन उस समय राजस्व मंत्री रामगोपाल अब्भी के अधीन था क्योंकि महाराजा राजेंद्र प्रकाश अकुशल शासक था। महाराजा ने द्वितीय विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की सैनिक सहायता के लिए जबरन भर्ती की। कई टैक्स लगा दिए। फसलें खुले बाजार में बेचने की मनाही हो गई।

इस आंदोलन को दबाने के लिए दिसंबर, 1942 में पुलिस के पैंतीस सिपाही पझौता भेजे गए। किसान सभा के सदस्यों ने पुलिस को भगा दिया। इस पर मंत्री राम गोपाल अब्भी ने लेफ्टिनेंट बडोला तथा पच्छाद के तहसीलदार दुर्गाराम को नेताओं को मनाने के लिए धामला भेजा। किंतु नेताओं ने कहा कि महाराजा स्वयं यहां आकर हमारी शिकायतें सुनें।

रियासती सरकार या महाराजा ने मांगें मानने या शिकायतें सुनने वहां जाने के बदले डी.एस.पी. जगत्र सिंह के साथ सेना की दो पलटनें भेजी गईं, एक कनोग और दूसरी कोटी-भावगा। कनोग से इशरू तथा रामभज को पकड़कर राजगढ़ लाया। कोटी-भावगा के लोगों ने पुलिस को घेर लिया। वहां वे चेतराम को पकड़ने गए थे। पुलिस को निरस्त्र कर जदोल टपरोली ले जाया गया। पुलिस ने पहले पकड़े इशरू तथा रामभज को भी छोड़ दिया। पुलिस दल 27 वैशाख 1943 को हथियारों सहित छोड़ा गया। किसान सभा ने सात महीने तक किसी सरकारी अधिकारी या पुलिस को अपने क्षेत्र में कार्य नहीं करने दिया। जब भी कोई पुलिस अधिकारी या पुलिस

गांव में आती तो लोग एक-दूसरे को हांक लगाकर खबरदार कर देते और सभी इकट्ठे हो जाते।

पझौता क्षेत्र में जदोल, टपरोली, कनोग, भोईरा, चैल, ददाहन, देवठी, धार, पवेच, नेरी, कटोगड़ा, कुफ्फर मौंड, मतियाणा, नई नेती, सनौरा, कटोगा, शेरला, सेर जगारू आदि गांवों में यह आंदोलन फैला। इन क्षेत्रों के नंबरदारों, जेलदारों ने अपने पदों से इस्तीफे दिए। वैद्य सूरत सिंह, चूं चूं मियां, मदन सिंह, गुलाब सिंह, कली राम, मेहर सिंह, राम दास, ध्यान सिंह, पद्मा राम, सदीया, कलगू आदि ने इस सभा का संचालन किया। लक्ष्मी सिंह द्वारा प्रधान पद छोड़ने पर धामला के मदन सिंह को प्रधान बनाया गया। एक सदस्य सही राम के स्थान पर पालू राम को कार्यकारिणी का सदस्य बनाया गया। चूं चूं मियां का भी प्रभुत्व इस सभा में बना रहा।

रियासती सरकार द्वारा इन लोगों को 'रिंग लीडरर्ज' कहा गया और 29 वैशाख 1943 ई. को मेजर एच.एस. बाम के नेतृत्व में पुलिस तथा सेना राजगढ़ पहुंची। जब ये नेता पकड़े नहीं जा सके तो इन्हें इश्तिहारी मुजरिम घोषित कर इन पर पांच सौ रुपए ईनाम रखा गया। अंततः मेजर बाम ने पझौता क्षेत्र को घेरकर मार्शल लॉ लगाया और 13 मई, 1943 को इन्हें आत्मसमर्पण के लिए चौबीस घंटे दिए गए। अगले दिन गांव-गांव में छापे मारने शुरू हुए। धन-संपत्ति लूटी गई। अन्न भंडार जलाए गए। वैद्य सूरत सिंह का घर डायनामाइट से उड़ा दिया। 11 जून को कोटी मावगा में कली राम का घर जला दिया गया। लोगों ने मुकाबला किया किंतु मेजर बाम ने निहत्थी भीड़ पर छब्बीस राउंड फायर किए। इस गोलाबारी में कटोगड़ा के कामना राम की मौके पर ही मृत्यु हो गई। कुफ्फर के तुलसी राम, डरेणा के जाती राम, पालू के हेत राम, ठाणाधार के चेत राम, नेरी के कमाल चंद, थाणा के चेत सिंह घायल हो गए। यहां से भीड़ के तितर-बितर करने के बाद धामकला गांव लूटमार कर रिंग लीडरर्ज को पकड़ लिया।

इस लूटमार तथा गोलाबारी के बीच 69 आंदोलनकारी पकड़े गए। इन्हें पकड़कर नाहन लाया गया। इनकी जमीन-जायदाद जब्त कर राज्य सुरक्षा कानून के अंतर्गत मुकदमे चलाए गए। ग्यारह महीने मुकदमा चलने के बाद जुलाई, 1944 में स्पेशल ट्रिब्यूनल ने अपना फैसला सुनाया।

इस फैसले में 52 आंदोलनकारियों को आजीवन कारावास, दो को दो वर्ष की कड़ी सजा दी गई, 14 व्यक्ति बरी हुए। पझौता किसान सभा के प्रधान मदन सिंह, सचिव वैद्य सूरत सिंह, संचालक चूं चूं मियां तथा कार्यकारिणी के 39 सदस्य आजीवन कारावास या कालेपानी की सजा में शामिल थे। लाहौर से आमंत्रित मुकुंद लाल पुरी न्यायाधीश द्वारा आजीवन कारावास को घटाकर दस वर्ष, सात वर्ष तथा

पांच वर्ष किया गया। अट्ठारह व्यक्तियों को एक वर्ष की कैद के बाद छोड़ दिया गया। इस समय तक कली राम, विशना तथा सही राम जेल में ही शहीद हो गए थे।

नाहन जेल में इन्हें चैन और बेड़ियां पहनाई गईं और अमानवीय व्यवहार किया गया। 12 जनवरी, 1947 को बारह बंदियों को रिहा किया गया। किंतु वैद्य सूरत सिंह, बस्ती राम पहाड़ी तथा चेतराम वर्मा को अभी भी नहीं छोड़ा गया। महाराजा ने अपने जन्मदिवस (12 जनवरी, 1948) पर 20 बंदी और छोड़े।

9 मार्च, 1948 को इस आंदोलन के तीन व्यक्तियों वैद्य सूरत सिंह, बस्ती राम पहाड़ी और चेतराम को रिहा किया गया। ये तीनों लगभग छह वर्ष जेल में रहे और कड़ी यातनाएं झेलीं।

पझौता आंदोलन में दी गई सजा

क्र.	नाम तथा गांव	कैद	जुर्माना
1.	गुलाब सिंह, टपरोली	10 वर्ष (कड़ी कैद)	100 रुपए
2.	हेत राम, पालू	,,	,,
3.	जाती राम, डरैणा	,,	,,
4.	कमाल चंद, नेरी	,,	50 रुपए
5.	कर्म सिंह, मातल बखोल	,,	,,
6.	मेहर सिंह, पेन कुफ्फर	,,	,,
7.	पद्मा राम, पंचड़	,,	,,
8.	सूरत सिंह, कटोगड़ा	,,	,,
9.	तुलसी राम, कुफ्फर मांड	,,	100 रुपए
10.	कली राम, नेरी	,,	50 रुपए
11.	अतर सिंह, टपरोली	7 वर्ष	10 रुपए
12.	बस्ती राम, पालू	,,	150 रुपए
13.	वीर सिंह, ओड़िया घाट	,,	,,
14.	चेतराम, नेरी	,,	10 रुपए
15.	चूं चूं मियां, जदोल	,,	,,
16.	देवी सिंह, हाब्बण	,,	100 रुपए
17.	धन्नू, पेन कुफ्फर	,,	,,
18.	कालिया, कोटी	7 वर्ष	50 रुपए
19.	कली राम, नेरी कोटली	,,	10 रुपए
20.	केवल राम, दधम	,,	50 रुपए
21.	मदन सिंह, धामला	,,	10 रुपए

22.	मोही राम, स्तेया	,,	100 रुपए
23.	प्रेम सिंह, बाघण	,,	,,
24.	सूरत सिंह, शिरगुली	,,	,,
25.	ठोरिया, बाघण	,,	150 रुपए
26.	बंसी, कावड़ी कुलथ	5 वर्ष (कड़ी कैद)	10 रुपए
27.	भूप सिंह, नेरी	,,	150 रुपए
28.	वीर सिंह, बाघण	,,	100 रुपए
29.	बिशना, चपरौण	,,	,,
30.	चंदनू, भाणत	,,	150 रुपए
31.	चूही राम, पालू	,,	,,
32.	दीप राम, डरैणा	,,	,,
33.	धियान सिंह, सनिओन दिवंग	,,	100 रुपए
34.	घासिया, दौल	,,	,,
35.	कांशी राम, ओड़िया घाट	,,	,,
36.	कांशीया, पालू	,,	150 रुपए
37.	काहनियां, बाजण	,,	100 रुपए
38.	खियाली राम, पालू	,,	,,
39.	कुलगू, कनोग	,,	,,
40.	मान सिंह, भाणत	,,	,,
41.	माण, चैल	,,	50 रुपए
42.	मोही राम, पालू	,,	100 रुपए
43.	मोही राम, टपरोली	,,	,,
44.	रोड़ा, धामला	,,	25 रुपए
45.	सदीया, पंचड़	,,	50 रुपए
46.	सीसू, कनोग	,,	,,
47.	जालम सिंह, थनोग	,,	,,
48.	भूप सिंह, कनोग	2 वर्ष	,,
49.	लक्ष्मी सिंह, चैल	,,	100 रुपए
50.	रामदास, पालू	,,	50 रुपए
51.	जालम सिंह, बघोट	,,	,,

पंद्रह अगस्त, 1947 के बाद

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना, कुल्लू, लाहौल-स्पीति, डलहौजी तथा शिमला (शहर) स्वतंत्र हुए। ये क्षेत्र उस समय पंजाब में थे। किंतु हिमाचल या जिसे पुराना हिमाचल कहते थे, स्वतंत्र नहीं हुआ। सभी शिमला हिल स्टेट्स, मंडी, चंबा, सिरमौर, बिलासपुर, सुकेत अभी भी रियासती शासन के अधीन रहे। यहां की जनता को अभी और संघर्ष करना था। यहां के शासक ब्रिटिश राज से मुक्त हो गए, जनता अभी गुलाम थी।

हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल

'अखिल भारतीय देशी लोक राज्य परिषद्' का अधिवेशन दिसंबर, 1945 में उदयपुर में हुआ। मंडी से स्वामी पूर्णानंद व कृष्णचंद, सुकेत से नरसिंह दत्त और संत राम गुप्ता, बिलासपुर से नरोत्तम दत्त शास्त्री, दौलत राम सांख्यान, देवी राम उपाध्याय, सिरमौर से शिवानंद रमौल, बुशहर से पं. पद्म देव, जुब्बल से भागमल सौहटा, चंबा से दौलत राम गुप्ता, टिहरी से श्यामानंद नेगी और पटियाला से वृषभान ने इस अधिवेशन में भाग लिया। इस अधिवेशन में अध्यक्ष पं. नेहरू तथा उपाध्यक्ष शेख अब्दुला ने 'हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल' की स्थापना की स्वीकृति दी। इस कौंसिल का अध्यक्ष स्वामी पूर्णानंद को और महामंत्री पं. पद्मदेव को बनाया गया।

हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल का अधिवेशन 8 से 10 मार्च, 1946 को मंडी में हुआ। इस अधिवेशन में अड़तालीस प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन की अध्यक्षता आजाद हिंद फौज के सेनानी कर्नल जी.एस. ढिल्लो ने की। प्रधान स्वामी पूर्णानंद, महामंत्री पं. पद्मदेव, सहसचिव शिवानंद रमौल के पहाड़ी रियासतों के प्रतिनिधि इस अधिवेशन में आए। मंडी प्रजामंडल के प्रधान गौरी प्रसाद, कश्मीर सिंह तथा लीलावती (टंडन) ने सफल आयोजन किया।

अधिवेशन में सरयूदेव सुमन की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के साथ बेगार प्रथा बंद करने, अधिक कर हटाने की मांगें रखी गईं। पझौता आंदोलनकारियों को रिहा करने, हिंदी को राजभाषा घोषित करने, वैधानिक समितियां बनाने, नशाबंदी कानून बनाने आदि के प्रस्ताव पास किए।

13 जून, 1946 को हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल के नेताओं ने बिलासपुर रियासत के खिलाफ सत्याग्रह करके अर्की मेले पर एक बड़ा जुलूस बिलासपुर की ओर रुखसत किया जिसमें स्वामी पूर्णानंद, पद्मदेव, नरसिंह दत्त, संतराम गुप्ता आदि थे। रास्ते में दौलत राम सांख्यान, संतराम संत, धर्मवीर सिंह,

नरोत्तम दत्त शास्त्री, ठाकुर दत्त शास्त्री भी मिल गए। सिपाहियों ने इस जुलूस को राज्य की सीमा पर रोक लिया और रियासत में घुसने नहीं दिया। अतः सत्याग्रह सफल नहीं हुआ।

हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल का सम्मेलन अगस्त, 1946 में नाहन में किया गया जिसमें डॉ. पट्टाभि सीतारामैया, जयनारायण व्यास, कर्नल शाहनवाज, दुनीचंद अम्बालवी, शन्नो देवी, अभिंत राम, जनरल अजीज अहमद, पार्वती सूद आदि चालीस से अधिक प्रतिनिधि आए। सिरमौर के शिवानंद रमौल, राजेंद्र दत्त, डॉ. देवेंद्र सिंह, हितेंद्र सिंह, धर्मनारायण, हरिचंद पाधा ने भाग लिया।

इस बीच 1939-40 में प्रजामंडल के पक्ष में निर्णय देने के लिए निर्वासित (सिरमौर से) डॉ. यशवंत सिंह परमार, जो मीरपुर-लाहौर में रह रहे थे, शिमला बुलाए गए। भज्जी के लीला दास वर्मा तथा बिलासपुर के कांशी राम आदि नेता लाहौर गए और डॉ. परमार को शिमला लाए क्योंकि यहां एक शिक्षित नेता की आवश्यकता थी। डॉ. परमार सिरमौर में सेशन जज थे। बिलासपुर के दयाराम उपाध्याय ने डॉ. परमार के आवास का प्रबंध कृष्ण विला लॉज संजौली में किया। डॉ. परमार ने शिमला में वकालत आरंभ की और आंदोलन में भी शामिल हुए। ये फरवरी, 1947 के लगभग शिमला आए। 16 अप्रैल, 1947 को दौलत राम सांख्यान, नरोत्तम दत्त शास्त्री, लीला दास वर्मा, शिवानंद रमौल के साथ कांग्रेस अधिवेशन ग्वालियर गए।

जून, 1947 में हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल में मतभेद होने के कारण पंजाब की पहाड़ी रियासतों तथा शिमला हिल स्टेट्स के संगठन अलग-अलग हुए। अब संगठन का नाम 'हिमालयन हिल स्टेट्स सब रीजनल कौंसिल' रखा गया। इस नए संगठन का प्रधान डॉ. परमार को चुना गया। तेज सिंह निधड़क (मंडी), लीला दास वर्मा (भज्जी), सदाराम चंदेल (बिलासपुर) उपप्रधान बने। पं. पद्मदेव महामंत्री, दौलत राम गुप्ता प्रचार मंत्री, सूरतराम प्रकाश कोषाध्यक्ष और सेनू राम कार्यालय मंत्री बने। पं. शिवानंद रमौल, साधु राम, नरसिंह दत्त, हीरा सिंह पाल, गौरी नंद, देवी राम, चमन लाल, चिरंजी लाल कार्यकारिणी के सदस्य बनाए गए।

21 दिसंबर, 1947 को 'हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल' की कॉन्फ्रेंस शांगरी की राजधानी बड़ागांव में हुई। इसकी अध्यक्षता सत्यदेव बुशहरी ने की। भागमल सौहटा, हीरा सिंह पाल, भास्करानंद, स्वामी पूर्णानंद, बाबू शिवदत्त, पं. सीताराम, हरिदास, सूरतराम प्रकाश, देवी राम केवला, सदाराम, संतराम आदि ने भी इसमें भाग लिया। अधिवेशन में प्रस्ताव पास कर सभी रियासतों को मिलाकर 'पहाड़ी प्रांत' बनाए जाने की मांग की गई। इस कौंसिल के प्रधान सत्यदेव बुशहरी थे।

'हिमालयन हिल स्टेट्स सब रीजनल कौंसिल' के माध्यम से डॉ. यशवंत सिंह

परमार ने प्रधान के नाते पहाड़ी रियासतों को भारत संघ में मिलाने के प्रयास किए।

इस प्रकार 'हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल तथा सब रीजनल' दोनों कौंसिल द्वारा अपने-अपने ढंग से प्रयास किए जाते रहे।

इसके साथ रियासती प्रजामंडल आंदोलन भी चला। इन सभी संस्थाओं में एक प्रयोजन होने के कारण नेता एक ही थे। केवल सौहटा तथा बुशहरी और पद्मदेव तथा परमार धड़े अलग होते गए। इन मतभेदों के चलते सत्यदेव बुशहरी ने जून, 1949 में कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। सन् 1949 में ही सत्यदेव बुशहरी की इलेक्शन पेटीशन पर विधान परिषद के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उस निर्वाचन मंडल को गैरकानूनी घोषित किया जिसने डॉ. यशवंत सिंह परमार को हिमाचल प्रदेश की ओर से विधान परिषद के लिए निर्वाचित किया था। यह अपील डेढ़ वर्ष पहले की गई थी।

हिमाचल प्रदेश : निर्माण की ओर

हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल तथा रीजनल कौंसिल व विभिन्न राज्यों में प्रजामंडलों ने पहाड़ी राजाओं पर एक दबाव बनाया और कुछ राजा स्वयं राज्य छोड़ने के लिए तैयार हो गए। इनमें बघाट के राजा दुर्गा सिंह, ठियोग के राणा कर्मचंद, अर्की के कुंवर मोहन सिंह, मंडी के राजा जोगेंद्र सेन प्रमुख थे।

प्रजामंडल के नेताओं ने 4 जनवरी, 1948 को शिमला में, 13 जनवरी को कोटगढ़ में तथा 19 जनवरी को रामपुर में कॉन्फ्रेंस करके 'हिमालय प्रांत' के गठन का प्रस्ताव रखा। हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल ने भी 'हिमालय प्रांत' के गठन की पुष्टि की। 25 जनवरी, 1948 को गंज मैदान शिमला में एक जनसभा की गई। डॉ. यशवंत सिंह परमार की अध्यक्षता में हुई इस जनसभा में पं. पद्मदेव, लीला दास वर्मा, शिवानंद रमौल, संतराम कांगा, दौलत राम सांख्यान, देवी दास मुसाफिर, स्वामी पूर्णानंद, दौलत राम गुप्ता, सदाराम चंदेल, दुर्गा सिंह राठौर आदि ने भाग लिया। इस सभा में भी 'हिमालय प्रांत' के गठन का प्रस्ताव पास किया गया।

हिमालय हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल तथा देशी शासक 'पहाड़ी रियासती संघ' बनाने के पक्ष में थे। अतः बघाट के राजा दुर्गा सिंह और मंडी के राजा जोगेंद्र चंद ने दिल्ली में महात्मा गांधी से भेंट करने के बाद 26 जनवरी, 1948 को प्रजामंडल के नेताओं की एक सभा सोलन में बुलाई। इस सभा में सत्ताईस रियासतों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिसमें भागमल सौहटा (जुब्बल), जियालाल (शरकोली), केवल राम चंदेल (कुम्हारसेन), ठाकुर हरिदास (कुनिहार), देवी राम केवला (क्योंथल), पं. सीताराम (धामी), भास्करानंद (भज्जी), हीरा सिंह पाल (बाघल), चिंतामणि

(महलोग), बुधराम (सोलन) आदि थे। इस सभा में बघाट के राजा दुर्गा सिंह को अध्यक्ष चुना गया, भागमल सौहटा को सदन सभा का नेता और महावीर को सचिव। दरबार हॉल में तिरंगा लहराने के बाद कार्यवाही आरंभ हुई। इस सभा में देशी रियासतों के 'रियासती संघ' और प्रजामंडल के 'हिमालय प्रांत' पर विचार-विमर्श हुआ। रियासती संघ के नाम पर राजाओं ने समझौते का प्रस्ताव भी रखा। अंततः रियासती संघ का नाम हिमाचल प्रदेश रखा गया। कुंवर मोहन सिंह (बाघल) ने प्रस्ताव रखा कि शिमला की 25 रियासतें 'हिमाचल प्रदेश' के गठन पर अपनी सत्ता जनता की प्रतिनिधि सरकार को सौंप देंगी। सरदार पटेल, गृह मंत्री केंद्र सरकार को यह प्रस्ताव भी दिया गया कि पंजाब की पहाड़ी रियासतों को भी 'हिमाचल प्रदेश' में विलय कर एक पूरा प्रांत बनाया जाए। इस कार्य के लिए राजा दुर्गा सिंह, भागमल सौहटा, ठाकुर सेन नेगी, सत्यदेव बुशहरी, कुंवर मोहन सिंह, हीरा सिंह पाल की आठ सदस्यीय कमेटी गठित की गई। सम्मेलन के बाद गंज बाजार सोलन में सभा करके 25 पहाड़ी रियासतों को मिलाकर 'हिमाचल प्रदेश' बनाने की घोषणा की गई। 27 जनवरी को 'द ट्रिब्यून' में 'भारत के मानचित्र पर एक नया सितारा हिमाचल प्रदेश' खबर छपी।

25 शासकों तथा प्रजामंडल के नेताओं की इस सभा में एक 'हिमाचल प्रदेश' नाम उभरकर सामने आया। किंतु अभी मंजिल दूर थी। प्रदेश के गठन में एक ओर पंजाब के नेता 'महापंजाब' बनाने के हक में थे तो दूसरी ओर उत्तर प्रदेश के नेता टिहरी-गढ़वाल, सिरमौर तथा शिमला की रियासतों को उत्तर प्रदेश में जोड़ना चाहते थे। महाराजा पटियाला के समर्थक नालागढ़, क्योंथल, सिरमौर, चंबा और शिमला हिल्ज को मिलाकर 'कोहीस्तान' बनाना चाहते थे।

इधर पहाड़ी रियासतों के नेता भी अलग-अलग हो गए थे। पं. पद्मदेव तथा डॉ. यशवंत सिंह परमार एक ओर थे तो भागमल सौहटा तथा सत्यदेव बुशहरी एक ओर। पद्मदेव परमार ने हिमालयन हिल स्टेट्स सब रीजनल कौंसिल अलग बना ली थी किंतु सौहटा-बुशहरी यहां सोलन में रियासती शासकों से मिलकर 'हिमाचल प्रदेश' की घोषणा करवाने में सफल हुए।

8 फरवरी, 1948 को पं. पद्मदेव, भागमल सौहटा, सत्यदेव बुशहरी, दौलत राम सांख्यान आदि डॉ. पट्टाभि सीतारामैया से मिले और भागमल सौहटा, सत्यदेव बुशहरी के सोलन सभा के प्रस्ताव का विरोध किया। डॉ. सीतारामैया ने रियासतों में आंदोलन करने का सुझाव दिया।

सुकेत सत्याग्रह

डॉ. पट्टाभि सीतारामैया से भेंट के बाद पद्म-परमार धड़े ने सुकेत सत्याग्रह की योजना बनाई और 12 फरवरी, 1948 को डॉ. परमार ने तत्तापानी की एक सराय में बैठक की। हिमालयन हिल स्टेट्स सब रीजनल कौंसिल की ओर से राजा लक्ष्मण सेन को अपनी रियासत संघ में विलय करने हेतु एक नोटिस भेजा गया। बैठक में मंडी, सुकेत, सिरमौर, बिलासपुर, भज्जी तथा कोटी रियासतों के कार्यकर्ता शामिल हुए। राजा लक्ष्मण सेन का उत्तर न आने पर 16 फरवरी को सत्याग्रह आरंभ हो गया। डॉ. परमार ने शिमला में रहकर इस सत्याग्रह का संचालन किया।

16 फरवरी को तत्तापानी, करसोग, फिरनू, बहना, चाबा, जयदेवी तथा पांगणा में सत्याग्रही एकत्र हुए और 17 फरवरी को तत्तापानी पुलिस चौकी पर कब्जा कर लिया। पं. पद्मदेव ने फिरनू चौकी पर अधिकार किया। 18 फरवरी को तत्तापानी तथा फिरनू से सत्याग्रही करसोग पहुंचे जहां पहले से सत्याग्रहियों का जत्था मौजूद था। करसोग में तहसीलदार को बंदी बनाया गया और तिरंगा फहराया गया। 19 फरवरी को सभी लोग पांगणा आ पहुंचे। यहां चार हजार के लगभग सत्याग्रही हो गए थे। 22 फरवरी को ये सभी सुंदरनगर की ओर चले। जयदेवी में इनके साथ सुकेत प्रजामंडल के प्रधान वीर रत्न सिंह तथा अन्य हजार सहयोगी मिले। मंडी से स्वामी पूर्णानंद, तेज सिंह, गौरी प्रसाद आदि भी आ गए और इनकी संख्या पांच हजार से ऊपर हो गई। इस बीच डॉ. परमार को सत्याग्रह रोकने का संदेश भी आया जो गृह मंत्रालय के निर्देश थे किंतु सत्याग्रही चलते रहे। 25 फरवरी को लगभग दस हजार सत्याग्रही सुंदरनगर पहुंचे और राजधानी पर अधिकार कर लिया। दूसरे दिन डिप्टी कमिश्नर कांगड़ा कन्हैया लाल, जालंधर के चीफ कमिश्नर लेफ्टिनेंट जनरल नगेश दत्त फौज के साथ सुंदरनगर आ पहुंचे और भारतीय फौज ने रियासत पर अधिकार कर लिया। इसके बाद सत्याग्रहियों ने पुराना बाजार में एक जनसभा की।

सुंदरनगर को भारत सरकार की फौज द्वारा संभाले जाने के बाद हिमालय हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल की ओर से अंतरिम सरकार बनाई गई जिसका अध्यक्ष सिरमौर के शिवानंद रमौल को बनाया गया। सलाहकार समिति में सुकेत प्रजामंडल के प्रधान रत्न सिंह, राधाकृष्ण, मुकुंद लाल तथा कांशी राम लिए गए। यह अंतरिम सरकार 26 फरवरी से 15 अप्रैल, 1948 तक चलती रही।

इस सत्याग्रह में पं. पद्मदेव (शिमला), पं. शिवानंद रमौल, रसिक मोहन, देवी राम, मोहन सिंह, गंगा राम, भाग चंद आदि (सिरमौर), सदाराम चंदेल, नरोत्तम दत्त शास्त्री, संत राम संत, दौलत राम सांख्यान, दुर्गा दत्त (बिलासपुर), लीला दास वर्मा (भज्जी), दुर्गा सिंह राठौर (कोटी), स्वामी पूर्णानंद, तेज सिंह, गौरी प्रसाद, कृष्ण चंद,

साधु राम (मंडी), रत्न सिंह, नर सिंह दत्त, सोमकृष्ण, राधाकृष्ण, जयलाल आदि (सुंदरनगर) तथा अन्य कई नेताओं ने सक्रिय भाग लिया।

सुंदरनगर के इस सत्याग्रह को 'द ट्रिब्यून' में 'सेवन डेज दैट शुक द वर्ल्ड' शीर्षक से प्रकाशित किया और संपादकीय छापा गया।

हिमाचल प्रदेश का उदय

अखिल भारतीय लोक राज्य परिषद की प्रथम मार्च को पटियाला में हुई बैठक में डॉ. पट्टाभि सीतारामैया से डॉ. परमार तथा दौलत राम सांख्यान ने भेंट की। मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स के अधिकारियों से पद्म-परमार तथा सौहटा-बुशहरी धड़ा अलग-अलग मिलते रहे। 2 मार्च, 1948 को 'मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स' ने दिल्ली में पंजाब तथा शिमला हिल स्टेट्स के शासकों की बैठक बुलाई। इस बैठक में शासकों से मिनिस्ट्री के सचिव सी.सी. देसाई ने शासकों से बिना शर्त विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने को कहा। बघाट नरेश दुर्गा सिंह ने सोलन सभा के अनुसार 'हिमाचल प्रदेश' में विलय का प्रस्ताव रखा। सचिव द्वारा विरोध के कारण बैठक का बहिष्कार किया और अगले दिन भागमल सौहटा तथा बुशहरी के साथ सोलन सभा के प्रस्ताव को लेकर सरदार पटेल से भेंट की। सरदार पटेल ने इन्हें देशी राज्य सचिव वी.पी. मेनन से मिलने को कहा। इस शिष्टमंडल के आग्रह पर 'हिमाचल प्रदेश' नाम से इस क्षेत्र का चीफ कमिश्नर के प्रांत और फिर उपराज्यपाल तथा राज्यपाल वाला प्रांत बनाने का निश्चय हुआ और शासकों ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। अतः 8 मार्च, 1948 को शिमला हिल्ज की 27 रियासतों के विलय से 'हिमाचल प्रदेश' बनाने की प्रक्रिया आरंभ हो गई। पंजाब हिल स्टेट्स को अभी अलग रखा गया।

पद्म-परमार धड़े द्वारा इस घोषणा का स्वागत करते हुए हिमालयन हिल स्टेट्स सब रीजनल कौंसिल की बैठक कर 'हिमाचल प्रदेश' के स्थान पर 'हिमालय प्रांत' नाम रखने का आग्रह किया गया किंतु सरदार पटेल द्वारा 'हिमाचल प्रदेश' नाम का ही अनुमोदन किया गया।

इस प्रकार प्रदेश की 27 रियासतों द्वारा विलय पत्र पर हस्ताक्षर 8 मार्च, 1948 को किए गए। मंडी के राजा ने 14 मार्च को विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए। चंबा का राजा हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं हुआ। चंबा प्रजामंडल ने सुकेत की भांति सत्याग्रह की धमकी दी तो राजा ने सरकार से सेना मंगवाई। भारत सरकार द्वारा पुलिस भेजने पर राजा को हस्ताक्षर करने पड़े। 22 मार्च, 1948 को केंद्रीय वित्त सचिव ई.पी. कृपलानी नाहन आए। अतः 23 मार्च को नाहन चौगान में जनसभा के बीच महाराजा राजेंद्र प्रकाश ने भी हस्ताक्षर कर दिए।

नालागढ़ (हंडूर) के राजा सुरेंद्र सिंह के पटियाला के महाराजा यादवेंद्र सिंह से व्यक्तिगत संबंध थे अतः नालागढ़ का विलय पटियाला में हुआ। नालागढ़ द्वारा पंजाब की अन्य रियासतों के साथ 5 मई को हस्ताक्षर किए गए।

ये रियासतें थीं—चंबा, सिरमौर, मंडी-सुकेत तथा बुशहर, क्योंथल, जुब्बल, कोटी, ठियोग, मधाण, घूंड, खनेटी, देलठ, बाघल, बघाट, रावीं, ढाडी, कुम्हारसेन, भज्जी, महलोग, बलसन, धामी, कुठाड़, कुनिहार, अर्की, मांगल, बेजा, दरकोटी, शांगरी, थरोच, रतेश। इनमें पंजाब हिल स्टेट्स की दो (चंबा तथा मंडी-सुकेत) तथा शिमला हिल स्टेट्स की अट्ठाईस रियासतें शामिल हुईं।

इसे केंद्रशासित 'चीफ कमिश्नर प्रोविंस' का दर्जा दिया गया। सरकार द्वारा एन.सी. मेहता को प्रथम चीफ कमिश्नर तथा ई.वी. मून को डिप्टी कमिश्नर बनाया गया। शिमला हिल्ज का जिला महासू बना तथा चंबा, सिरमौर, मंडी अलग इकाइयां। इस प्रोविंस का क्षेत्रफल 27,018 वर्ग किलोमीटर था। सन् 1952 तक यह चीफ कमिश्नर्ज प्रोविंस के रूप में रहा।

राजा बिलासपुर ने विलय पत्र में हस्ताक्षर करने से मना कर दिया अतः बिलासपुर प्रदेश में नहीं मिल पाया।

इस बीच 25 अप्रैल, 1948 को कांग्रेस का अधिवेशन मुंबई में हुआ जिसमें प्रजामंडलों को कांग्रेस में शामिल करने का निर्णय लिया गया। हिमाचल प्रदेश से प्रजामंडल के प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस कार्यकारी परिषद के लिए डॉ. यशवंत सिंह परमार को मनोनीत किया गया। प्रजामंडलों के कांग्रेस में विलय के हिमालय हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल को हिमाचल प्रदेश कांग्रेस कमेटी का दर्जा दिया गया। सभी प्रजामंडलियों ने कांग्रेस की सदस्यता के फॉर्म भरे। 6 जून, 1948 को हिमाचल प्रदेश कांग्रेस कमेटी की पहली बैठक हुई जिसमें डॉ. परमार को कांग्रेस प्रधान तथा बिलासपुर के संतराम कांगा को महामंत्री चुना गया। चंबा, मंडी, सिरमौर, शिमला, बिलासपुर में जिला कांग्रेस कमेटियां गठित हुईं।

सन् 1950 तक जब प्रदेश में कोई विशेष प्रगति न हो पाई तो 1951 में चीफ कमिश्नर की सलाहकार समितियों से कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने त्यागपत्र दे दिए। चीफ कमिश्नर के विरोध में जलसे-जुलूस निकाले गए।

इस समय डॉ. परमार कांग्रेस के प्रधान थे अतः वे एक शीर्षस्थ नेता के रूप में उभरे और लोकप्रिय सरकार के लिए केंद्र सरकार से संघर्ष किया। केंद्रीय सरकार द्वारा हिमालय प्रदेश को 'पार्ट सी' का दर्जा देकर 'विधान मंडल' की व्यवस्था हुई और सन् 1952 के भारत के प्रथम आम चुनावों के साथ यहां भी चुनाव हुए। कांग्रेस पार्टी ने चारों लोकसभा सीटों और 36 में से 28 विधानसभा सीटों पर विजय पाई।

एक सीट अनुसूचित जाति तथा शेष आजाद उम्मीदवारों ने जीतीं। 24 मार्च, 1952 को डॉ. यशवंत सिंह परमार प्रथम मुख्यमंत्री बने और लोकप्रिय सरकार गठित हुई। प्रथम पंचवर्षीय योजना के लिए 5.27 करोड़ के बजट का प्रावधान किया गया।

अभी तक बिलासपुर रियासत का विलय प्रदेश में नहीं हुआ था। प्रजामंडल के नेता संतराम संत, नरोत्तम दत्त शास्त्री, दौलत राम सांख्यान आदि जलावतनी में रहे। केंद्र सरकार द्वारा भी विलय के लिए दबाव नहीं डाला गया। अक्तूबर 1948 में जाहू में एकत्र होकर सत्याग्रह किया गया। इसमें हिमाचल प्रदेश कांग्रेस कमेटी द्वारा पं. पद्मदेव के नेतृत्व में भी एक जत्था भेजा गया। यह जुलूस कोट की ओर बिलासपुर पहुंचा। भजव्राणी पुल में सत्याग्रहियों को पुलिस ने रोका अतः कुछ लोग जख्मी हुए। अंततः सदाराम चंदेल, दौलत राम सांख्यान, संतराम कांगा आदि राजा से मिलने गए किंतु राजा ने एक भी बात नहीं मानी। इसके बाद राहीं में कैम्प लगाया गया। पांच दिन तक राहीं में सत्याग्रहियों तथा रियासती सरकार में संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष की सूचना सरदार पटेल को भेजी गई। केंद्रीय सरकार ने राजा को चेतावनी दी। अंततः सरदार पटेल के प्रतिनिधि के रूप में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के सचिव कौशिक बिलासपुर पहुंचे और 12 अक्तूबर, 1948 दशहरे के दिन राजा ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए। किंतु केंद्रीय सरकार ने बिलासपुर को केंद्रशासित प्रदेश बनाकर राजा आनंद चंद को चीफ कमिश्नर नियुक्त किया। भाखड़ा डैम के निर्माण कार्य के कारण इसे हिमाचल प्रदेश में नहीं मिलाया गया। जनता के विरोध के कारण केंद्रीय सरकार ने राजा आनंद चंद को चीफ कमिश्नर के पद से हटाकर डिप्टी कमिश्नर श्री चंद छाबड़ा को चीफ कमिश्नर बनाया। अंततः बिलासपुर कांग्रेस के संतराम कांगा, दौलत राम सांख्यान, सदाराम चंदेल आदि ने पं. नेहरू तथा विजय लक्ष्मी पंडित से मिलकर आश्वासन लिया और पं. नेहरू ने लोकसभा में बिलासपुर के विलय की घोषणा की। अतः प्रथम जुलाई, 1954 को बिलासपुर पूर्णतया हिमाचल प्रदेश में मिलाया गया।

इसके बाद 'राज्य पुनर्गठन आयोग' ने हिमाचल के पंजाब में विलय की सिफारिश की। इसके लिए हिमाचल प्रदेश कांग्रेस ने कड़ा संघर्ष किया। अन्य पार्टियों ने भी इसे पंजाब में मिलाने का विरोध किया। अतः इसे अलग रखने का आश्वासन दिया गया। इसके लिए 'पार्ट सी' स्टेट का दर्जा घटाकर 'केंद्रशासित प्रदेश' बना दिया गया। विधानसभा भंग की गई। डॉ. परमार मंत्री परिषद ने 31 अक्तूबर, 1956 को त्यागपत्र दिया। प्रथम नवंबर, 1956 को उपराज्यपाल ने कार्यभार संभाला। 15 अगस्त, 1957 को 'टेरिटोरियल कौंसिल' में प्रजा के प्रतिनिधि लिए गए। यह 'टेरिटोरियल कौंसिल' सन् 1963 तक रही।

पुनः लोकप्रिय सरकार बनाने तथा विशाल हिमाचल के सपने को साकार करने के लिए 'विशाल हिमाचल समिति' नाम से एक सर्वदलीय समिति गठित की गई जिसमें कांग्रेस के कर्म सिंह ठाकुर, विद्याधर, दौलत राम सांख्यान, हरदयाल, जोगेंद्र सेन, सी.एल. वर्मा, कम्युनिस्ट पार्टी के कामेश्वर पंडित, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के हीरा सिंह पाल, कांग्रेस विरोधी धड़े के भागमल सौहटा, सत्यदेव बुशहरी शामिल हुए। इस समिति ने कांगड़ा, कुल्लू, लाहौल-स्पीति, नालागढ़ के नेताओं से संपर्क किया और 1958 में नाहन में बैठक की जिसमें कांगड़ा के सांसद हेमराज, विधायक अमरनाथ, मुनी लाल, सीताराम (धामी), हीरा सिंह पाल, शिवानंद रमौल आदि ने भाग लिया। बैठक में 'पूर्ण पहाड़ी प्रदेश' का प्रस्ताव पारित किया गया। टेरिटोरियल कौंसिल ने भी 'विशाल हिमाचल' का प्रस्ताव रखा। कौंसिल के चेयरमैन कर्म सिंह ठाकुर तथा वाइस चेयरमैन विद्याधर थे। दिसंबर, 1959 में डॉ. परमार के नेतृत्व में हिमाचल प्रदेश कांग्रेस कमेटी का शिष्टमंडल दिल्ली गया। विशाल हिमाचल के लिए यह संघर्ष लगभग 1954 में आरंभ हो गया था।

इन प्रयासों से विशाल हिमाचल तो नहीं बना किंतु विधानसभा बनने की आशा बंधी। अतः प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू तथा गृहमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के आश्वासन पर सन् 1962 का चुनाव लड़ा गया और कांग्रेस विजयी हुई। एक जुलाई, 1963 को टेरिटोरियल कौंसिल को विधानसभा में बदला गया और डॉ. यशवंत सिंह परमार पुनः मुख्यमंत्री बने।

इसके बाद विशाल हिमाचल का प्रस्ताव समय-समय पर केंद्र सरकार के समक्ष रखा जाता रहा। कांगड़ा के उपमंत्री बख्शी प्रताप सिंह, कुल्लू के विधायक लाल चंद प्रार्थी, ठाकुर बेली राम, नूरपुर के विधायक कामरेड राम चंद, पालमपुर के विधायक अमरनाथ शर्मा, बड़सर की विधायक सरला शर्मा, हमीरपुर के विधायक रूप सिंह फूल, देहरा के विधायक मेहर सिंह ठाकुर यह मांग दोहराते रहे। सत्यदेव बुशहरी ने 'विशाल हिमाचल समिति' गठित कर (1958) संघर्ष किया, भूख हड़ताल भी की।

प्रथम नवंबर, 1966 को केंद्र सरकार ने कांगड़ा, कुल्लू, लाहौल-स्पीति, ऊना, शिमला, नालागढ़ तथा डलहौजी-बकलोह को हिमाचल प्रदेश में मिलाया। अब इस प्रदेश का क्षेत्रफल 55,673 वर्ग किलोमीटर हो गया।

24 जनवरी, 1968 को प्रदेश विधानसभा ने सभी पार्टियों के समर्थन से पूर्ण राज्यत्व का प्रस्ताव पास किया और केंद्र सरकार को भेजा। प्रदेश के सांसदों ने यह मांग संसद में रखी और गैरसरकारी प्रस्ताव पेश कर बहुमत से समर्थन प्राप्त किया। प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. परमार ने प्रधानमंत्री तथा गृहमंत्री से बातचीत की। अतः 31 जुलाई, 1970 को तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने संसद में हिमाचल प्रदेश

को पूर्ण राज्यत्व देने की घोषणा की और हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम दिसंबर, 1970 में पारित हुआ। 25 जनवरी, 1971 को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने ऐतिहासिक रिज मैदान में भारत के अट्ठारहवें पूर्ण राज्य के रूप में हिमाचल प्रदेश की घोषणा की।

वर्तमान हिमाचल प्रदेश का क्षेत्रफल 55,673 वर्ग किलोमीटर है। 1991 की जनगणना के अनुसार 51.7 लाख जनसंख्या वाले इस प्रदेश में बारह जिले हैं—कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना, लाहौल-स्पीति, किन्नौर, सोलन, शिमला, सिरमौर, मंडी, बिलासपुर, चंबा तथा कुल्लू। क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा जिला लाहौल-स्पीति (13,835 वर्ग किलोमीटर) है और जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा जिला कांगड़ा (लगभग 11 लाख) है। सबसे छोटा जिला हमीरपुर (1118 वर्ग किलोमीटर) किंतु साक्षरता में सबसे अधिक (74.88 प्रतिशत)। सबसे कम जनसंख्या (31,294) लाहौल-स्पीति की है। साक्षरता में सबसे पीछे जिला चंबा (44.70 प्रतिशत) है।

2001 की जनगणना के अनुसार आबाद गांव 17,495, शहर व नगर 57 और जनसंख्या 60.8 लाख (60,77,900) है जिसका घनत्व 109 है। जनसंख्या में 59,82,319 ग्रामीण तथा 5,95,881 शहरी हैं। अनुसूचित जाति की जनसंख्या 15,02,170 और अनुसूचित जनजाति की 2,44,587 है।

साक्षरता दर बढ़कर 76.5 हुई है। कुल जनसंख्या में 30,87,940 पुरुष और 29,89,960 महिलाएं हैं। साक्षरता में सबसे आगे जिला हमीरपुर (75.7) है और सबसे कम चंबा (48.8) है। जनजातीय जिलों में साक्षरता दर 60 प्रतिशत से ऊपर है (किन्नौर : 64.4, लाहौल-स्पीति : 60.7)। जिला चंबा का जनजातीय क्षेत्र पांगी, भरमौर साक्षरता दर में अभी भी पीछे है।

वर्ष 2004-05 तक वन 37,03,286 हैक्टेयर में फैले हैं जो 1993-94 में 35,40,705 हैक्टेयर में थे। 2004-05 तक फल उत्पादन में सेब 86,202 हैक्टेयर, नीबू प्रजाति 20,199 हैक्टेयर अर्थात् कुल 1,86,902 हैक्टेयर में किया गया।

2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 68,56,509 हो गई जिसमें 34,73,892 पुरुष तथा 33,82,617 महिलाएं हैं। इसमें उल्लेखनीय यह है कि लाहौल-स्पीति की जनसंख्या 33,224 से घटकर 31,528 रह गई जो लाहौल से लोगों के कुल्लू आदि निचले स्थानों में पलायन के कारण है। कांगड़ा की जनसंख्या, सबसे अधिक (15,07,223) और लाहौल-स्पीति की सबसे कम (31,528) रही। विकास खंड बढ़कर 77 हो गए, गांव 20,118 से 20,690 और साक्षरता दर 76.48 से बढ़कर 83.78 हो गई।

संदर्भ-ग्रंथ

1. महाभारत : गीता प्रेस गोरखपुर
2. पाणिनि : अष्टाध्यायी
3. कल्हण, राजगुरु : राजतरंगिनी
4. कनिंघम अलेक्जेंडर : आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स
5. ग्रिफिन, एल. एंड मैसी : चीफ्स एंड फेमिलीज ऑफ नॉर्थ इन पंजाब
6. पंजाब सरकार : द गजेटियर रिकॉर्ड्स 1857
7. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : शिमला 1935
8. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : कांगड़ा 1865, 1917
9. रिपोर्ट्स ऑफ दिल्ली रेजीडेंसी ऑन हिल स्टेट्स : 1807-1857
10. मजूमदार, आर.सी. : हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया
11. मेनन, वी.पी. : द ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इंडिया : 1968
12. हचिसन, जे. वोगल, जे. पीएच. : हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स
13. वोगल, जे. पीएच. : एंटिक्यूटीज ऑफ चंबा स्टेट 1911
14. फेंके, ए.एच. : एंटिक्यूटीज ऑफ इंडियन तिब्बत
15. जूस्पी टूची : टेंपल्ज ऑफ वेस्ट्रन एंड देयर आर्टिस्टिक सिंबोलिज्म
16. विल्सन, एच.एच. : बुद्धा एंड बुद्धिज्म
17. ओहरी, बी.सी. : आर्ट्स ऑफ हिमाचल, भाषा-संस्कृति विभाग
18. वोगल, जे. पीएच. : एंटिक्यूटिज ऑफ चंबा स्टेट : 1911
19. ग्रिफिन, एल.एच. एंड मैसी, सी.एफ. : चीफ्ज एंड फेमिलीज ऑफ पंजाब 1940
20. चरक, एस.एस. : हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ हिमालयन स्टेट्स 1978-79
21. अग्रवाल, वी.एस. : इंडियन ऐज नोन टू पाणिनि : लखनऊ, 1953
22. कनिंघम, एलेक्जेंडर : कॉयंज ऑफ एंशिएंट इंडिया, मीडिवियल इंडिया, 1881, 1884
23. ह्यूनसांग : बुद्धिस्ट रिकॉर्डस ऑफ वेस्टर्न वर्ड : लंदन 1884

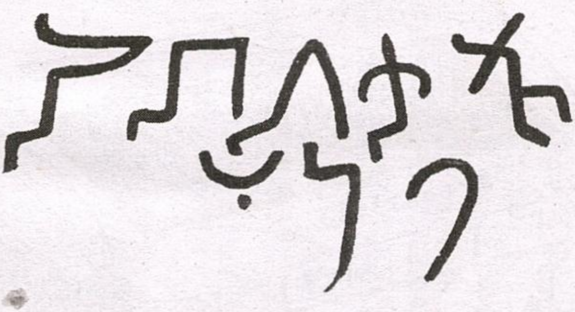
24. बक, एडवर्ड, जे. : शिमला पास्ट एंड प्रेजेंट 1904
25. मूरक्राफ्ट, ट्रेबेक, जॉर्ज : ट्रेवल्ज इन हिमालयन प्रोविंसिज : लंदन 1832
26. विग्ने, गॉडफ्रे थॉमस : ट्रेवल्ज इन कश्मीर, लद्दाख, इसकारदो¨लंदन 1844
27. आर्चर, एडवर्ड सी. : टूरज इन अप्पर इंडिया¨लंदन 1925
28. जेराई, अलेग्जेंडर : हिमालय माउंटेंज लंदन 1840
29. गोट्ज, हरमन : स्टडीज इन द हिस्ट्री ऑफ आर्ट ऑफ कश्मीर एंड इंडियन हिमालय
30. फ्लीट, जे.एफ. : निरमंड प्लेट्स
31. हारकोट, ए.एफ.पी. : हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स ऑफ कुल्लू लाहौल एंड स्पीति लंदन 1871
32. केलवर्ट जे. : द सिल्वर कंट्री एंड वजीरी रूपी लंदन 1873
33. सांकृत्यायन राहुल, हिमाचल प्रदेश वाणी प्रकाशन दिल्ली
34. बर्नियर रोनाल्ड : हिमालयन टावर्ज
35. गजेटियर्ज : पंजाब सरकार, 1885-1917
36. गजेटियर्ज : हिमाचल सरकार, (बिलासपुर, चंबा, किन्नौर, लाहौल-स्पीति, सिरमौर) 1927-1969
37. मियां गोवर्धन सिंह : हिमाचल प्रदेश का इतिहास : हिमाचल अकादमी 1996
38. मनमोहन : हिस्ट्री ऑफ मंडी स्टेट लाहौर 1930
39. ओहरी, वी.सी. : प्री हिस्ट्री ऑफ हिमाचल प्रदेश 1979
40. मियां अक्षर सिंह : त्वारिख व जुगराफिया रियासत कहलूर 1936
41. मियां रघुनाथ सिंह : त्वारिख राजगान-ए-पठानियां नूरपुर 1904
42. दीवान सर्बदयाल : त्वारिख राजगान-ए-जिला कांगड़ा 1883
43. गरीब खां : मुख्तसर त्वारिख रियासत चंबा 1822
44. उगर सिंह : त्वारिख राजागन-ए-हिंडूर 1867 (पांडुलिपि)
45. दीवान भगवंत सिंह : बहारे कुम्हारसेन 1830
46. शाद, बालक राम : त्वारिख हिंडूर 1835
47. बिहारी लाल : त्वारिख रियासत नालागढ़ 1828
48. बलदेव सिंह : त्वारिख राजगान (पांडुलिपि) 1840
49. मियां रणजोर सिंह : हिस्ट्री ऑफ सिरमौर 1912
50. हरदयाल : त्वारिख रियासत कोहस्तान पंजाब, मुरादाबाद 1885, 1886

51. उत्तम कवि : दलीप रंजीनी, गुलेर राज्य
52. गणेशा सिंह बेदी : शशिवंश विनोद (कहलूर)
53. पं. संतराम : ललित काव्यम् (जुब्बल)
54. टिक्का कृश्न चंद्र : उपदेश कुसुमाकर सं. 1964
55. चंद्रशेखर, पुरोहित : कुल्लू का इतिहास (पांडुलिपि)
56. रस विलास : सं. 1882
57. शर्मा रणबीर : पार्टी पॉलिटिक्स इन हिमालय स्टेट्स
58. शास्त्री, नरोत्तम : बिलासपुर का राजनीतिक इतिहास
59. स्वतंत्रता सेनानी विभाग, गृह मंत्रालय खान मार्केट, भारत सरकार, दिल्ली
60. भाषा-संस्कृति विभाग : प्री हिस्ट्री ऑफ हिमाचल प्रदेश
61. भाषा-संस्कृति विभाग : हिमाचल प्रदेश में स्वाधीनता संग्राम का संक्षिप्त इतिहास 1992
62. भाषा-संस्कृति विभाग : हिमाचल प्रदेश के स्वतंत्रता सेनानी 1985
63. राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली
64. राज्य अभिलेखागार, शिमला
65. राज्य संग्रहालय, शिमला
66. भूरि सिंह संग्रहालय, चंबा
67. हिमाचल अकादमी पुस्तकालय, शिमला
68. विभिन्न राजवंशों से प्राप्त पांडुलिपियां तथा जानकारी
69. निजी स्रोतों से प्राप्त वंशावलियां तथा पांडुलिपियां
70. लोक गाथा, झेड़े व मौखिक परंपरा

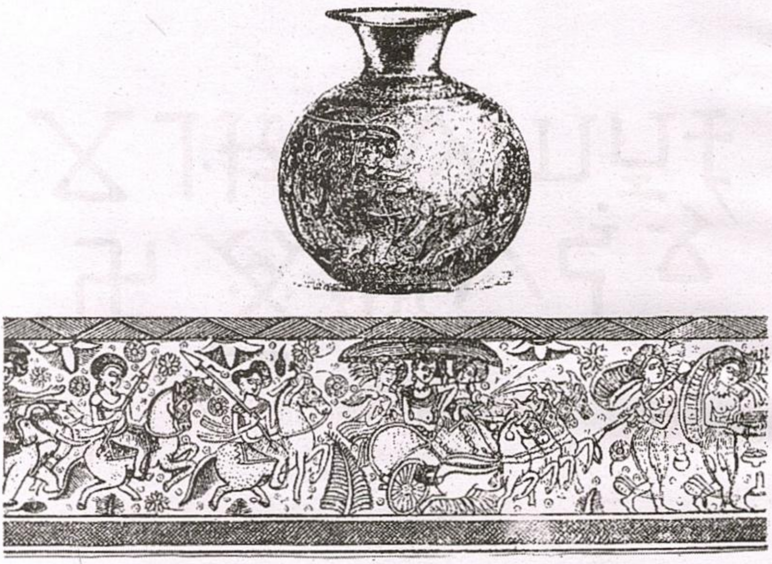
परिशिष्ट



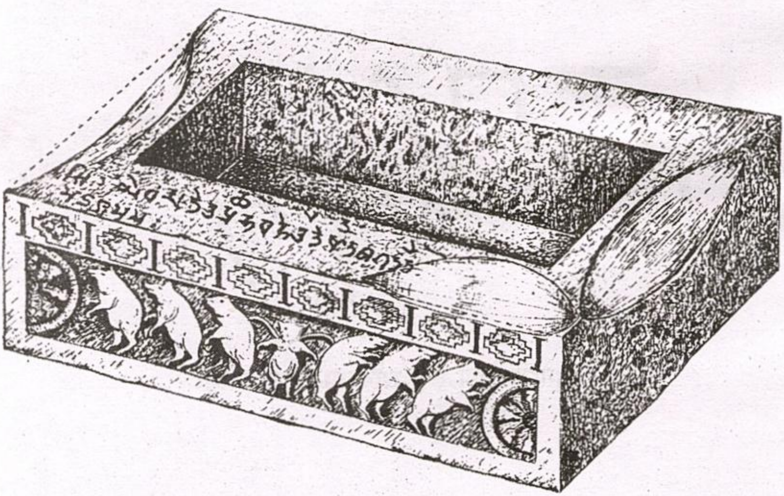
ब्राह्मी लिपि लेख खनियारा जिला कांगड़ा



खरोष्ठी लिपि लेख खनियारा जिला कांगड़ा



जातक कथाओं से चित्रित मेजर हे द्वारा 1857 में खोजा ताम्र लोटा



वज्रवराही प्रतिमा पाठियार कांगड़ा





परशुराम मंदिर निरमण्ड (कुल्लू) से मिली बुद्ध प्रतिमाएं (8वीं शताब्दी)



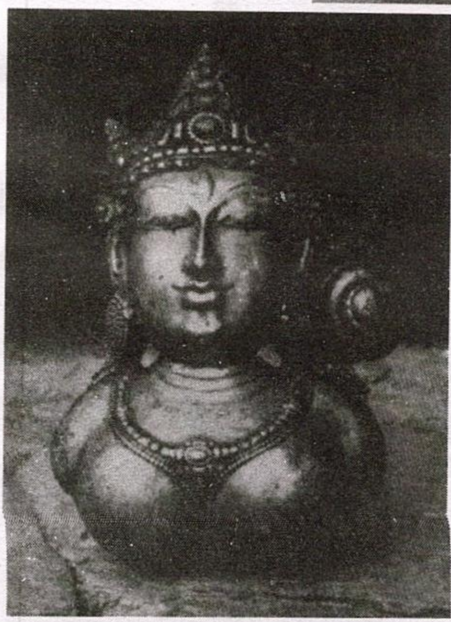
पाषाण सूर्य प्रतिमा बजौरा
कुल्लू (8वीं शताब्दी)



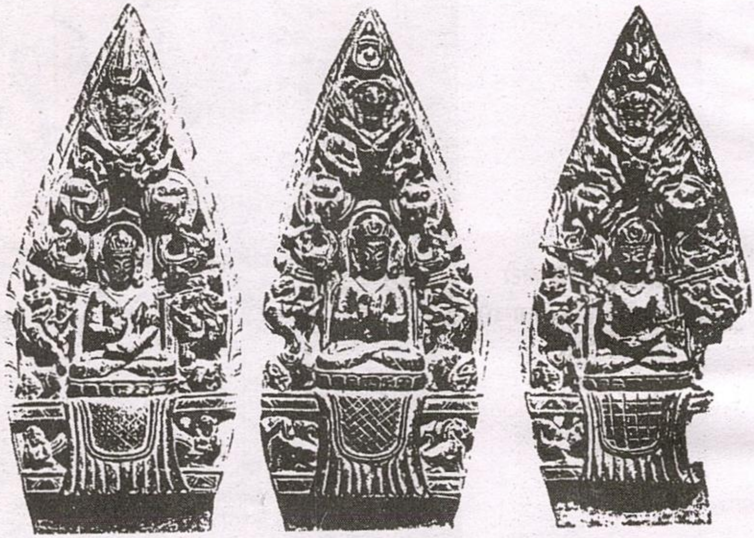
वैकुण्ठ विश्वरूप पाषाण प्रतिमा
कुल्लू



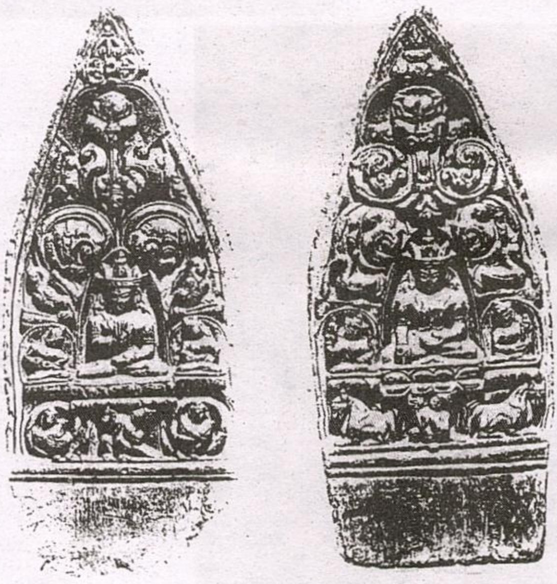
पार्वती प्रतिमा हाटकोटी
जिला शिमला (9वीं शताब्दी)



रानी मां की आवक्ष प्रतिमा
निरमण्ड (कुल्लू)



काष्ठ प्रतिमाएं : ताबो (अमोघसिद्धि, विरोचन, अमिताभ)



अमोघसिद्धि, रत्नसम्भव



औदुम्बर मुद्रा



त्रिगर्त मुद्रा



विजयमित्र मुद्रा कुल्लू



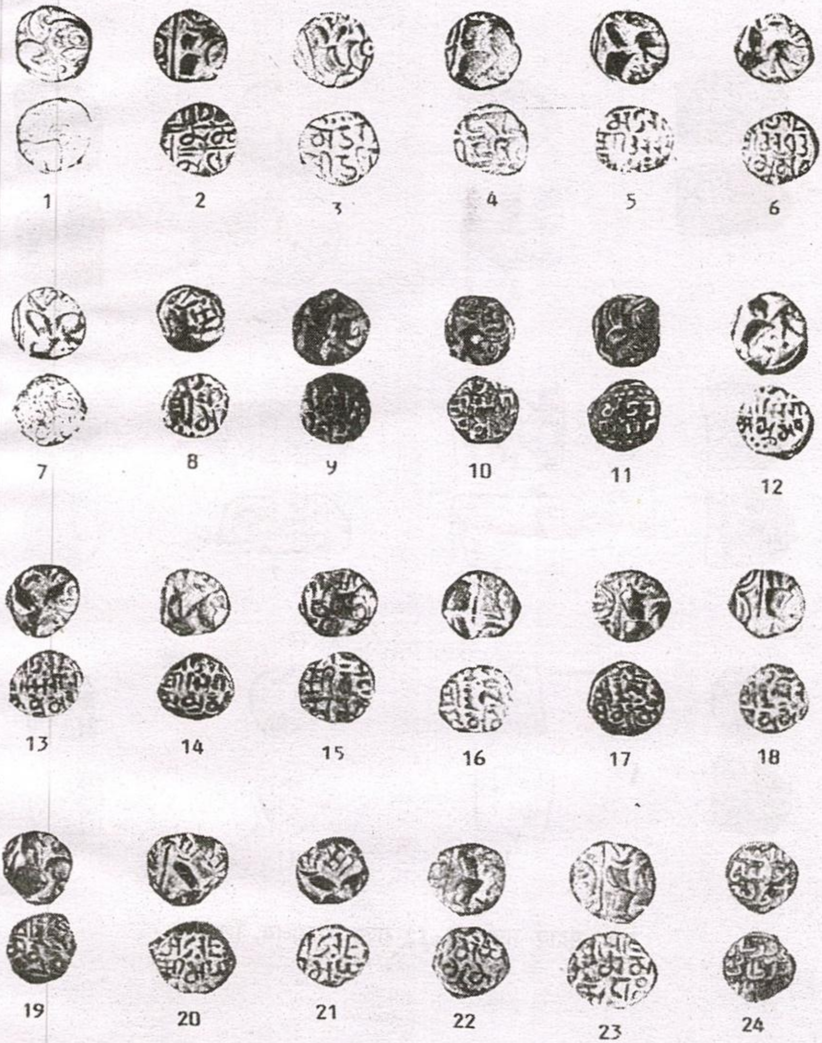
वीरायश मुद्रा कुल्लू



त्रिगर्त (कांगड़ा) मुद्राएं



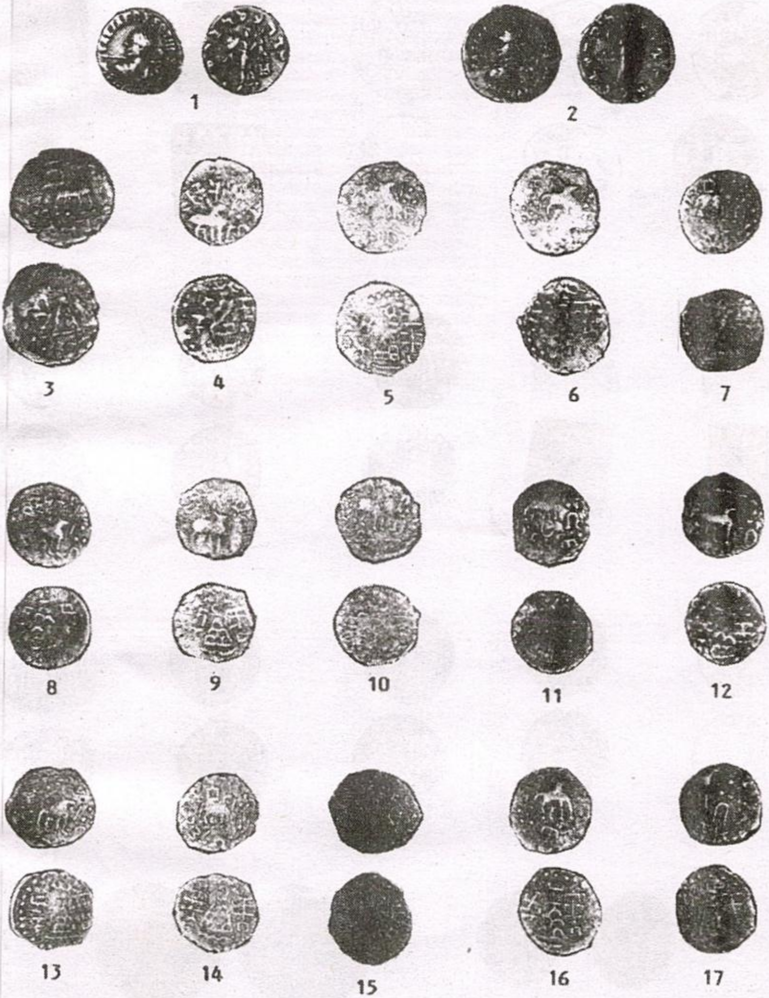
चंबा चकली मुद्रा



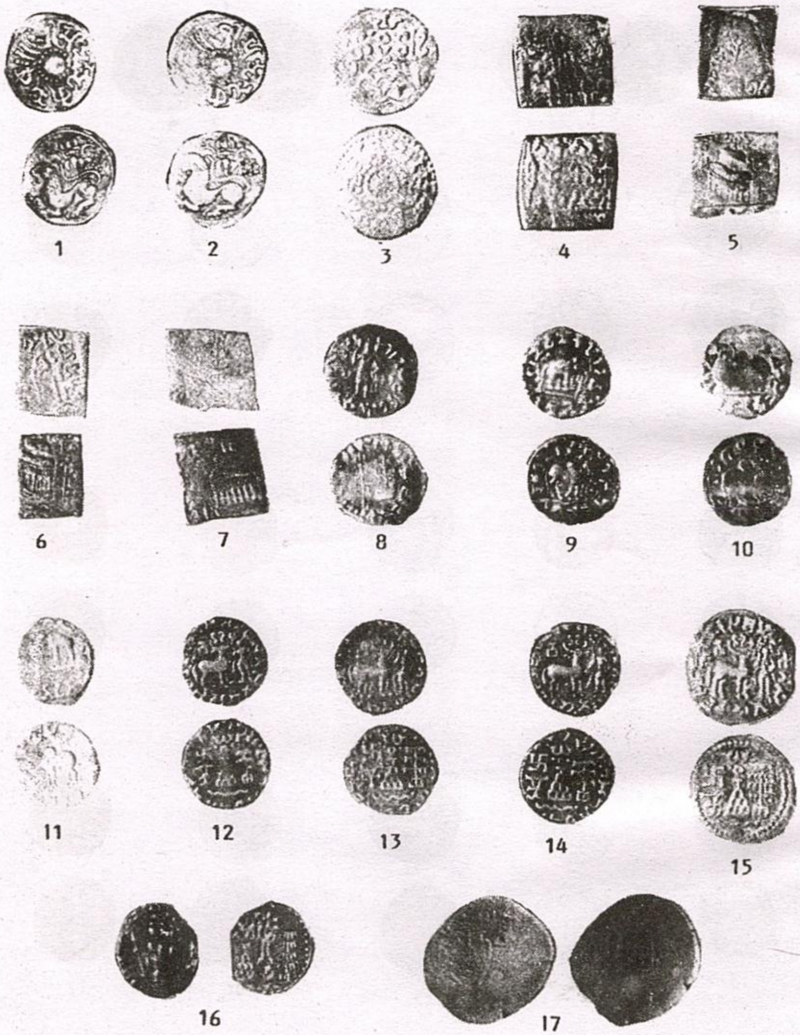
कांगड़ा के शासकों की मुद्राएं



चांदी मुद्राएं अर्की (1–12 राज्य संग्रहालय, शिमला)



इण्डोग्रीक मुद्राएं सरोल (1–2)
कुनिंद मुद्राएं चक्कर (3–17)



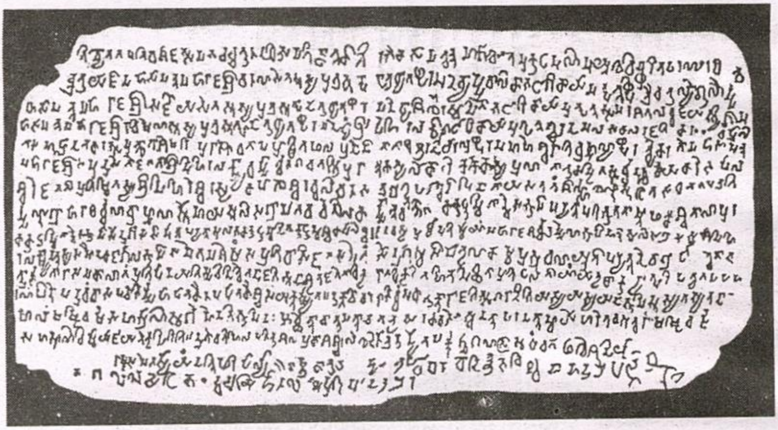
चंबा (1–2), कुलूत (3), त्रिगर्त (4), औदुम्बर ताम्र (5–7), औदुम्बर चांदी (8), वेमाकी (9–11), कुनिंद चांदी (12–14), कुनिंद ताम्र (15), यौद्धेय (16), भानुवर्मा (17)

मृकुला शिलालेख
(BY THE REV. A. H. FRANCHE)

मूलपाठ

(གྱེར)

1. ༄༅། ཨོཾ་སྭ་སྟི། ལྷ་གྲོན་ (གྲོར) གྱིས་ (མ) གསོལ་སྐུ་འདོག་དཀར། རྫོགས་སངས་རྒྱས་
2. ཀྱིས་དབུ་ལ་ (རྒྱན)། ཐུགས་རྗེ་སྤྱན་གྱིས་འགྲོ་ལ་གཟིགས། སྤྱན་རས་གཟིགས་ལ་
3. ཕྱག་འ་ཙལ་ལོ།། དེ་མེད་རྒྱན་ (ཟླ) པ་ང་ནི་གདན་ལ་བཞུགས། ཞལ་གཅིག
4. ཟ་གེ་དྲུག་ཉམས......(སྟོངས) མཛད། འགྲོ་དྲུག་འཁོར་བའི་གནས་འདྲེན་མཛད་པའི་
5. རང་འབྱུང་འཕགས་པའི་སྐུ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་མ་རྡོ་རྗེ་ཕག་མོའི་
6. འཕགས་མ་ (མ་རི) དུས་གསུམ་རྒྱལ་བའི་ཡུམ་མཆོག་དྲག་མོའི་གཟུགས་ཅན་མ། སྐུགས་བྱེད་རིངས་
7. བྱེད་སྒོམ་ཅིད་དགག་ལ་ཧཱུཾ་རྒྱལ་བའི་དངོས་གྲུབ་ཧཾ་གཉིས་ཚོ་ལ་ཕྱག་འཚལ་བསྟོད།
8. བྱིར་...............................དགེ་ལ་སྐབ་བྱིར་........................
9. གསུམ་མ་ཉི་སྟོང་ཐྲག་གསུམ། མི་འགྱུར་རྡོ་ལ་བཞངས་ཡོད། ཨེ་ར་དོ། གཞན་ཡང་
10. རེ་རག་འཕགས་པ་མར་སྐུལ་གཉིས་ཀའི་བསྐོར་......མ་ཉིའི་འཁོར་ལོ......
11. ....བཞེངས། མར་སྐུལ་དགོན་པར་དགོན་པ་གསར་དུ་བཞེངས།།
12. དགེ་འདིས་འགྲོ་ཀུན་སངས་རྒྱས་མྱུར་ཐོབ་
13. ཤོག་བཀྲ་ཤིས།།

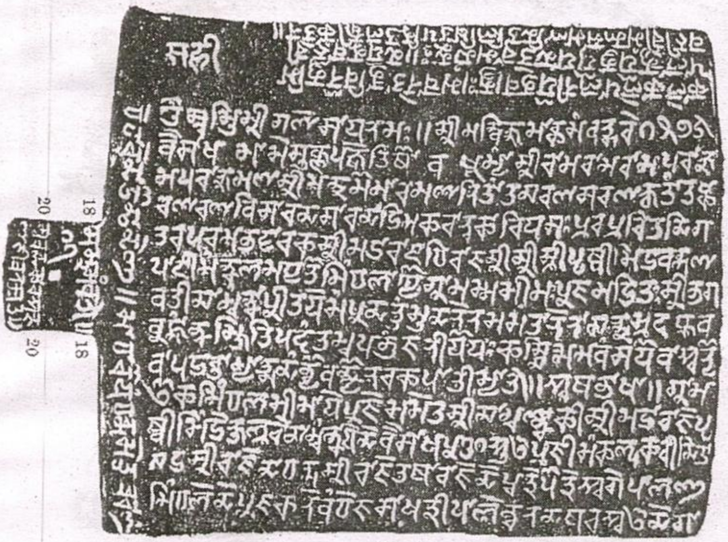


निरमण्ड ताम्रपत्र

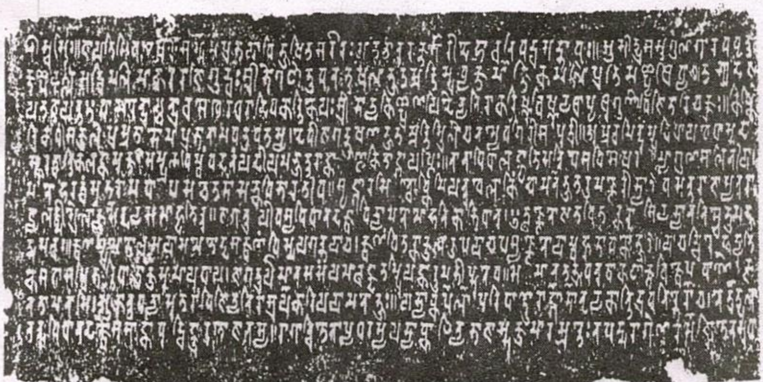
ताबो लेख
(प्रारम्भ)

1. སྤྲེའུའི་ལོ་ལ་སྨོན་མེས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས། གཙུག་ལག་ཁང་འདི་བཞེངས་ནས། ལོ་བཞི་བཅུ་རྩ་དྲུག་གི་འོག་ཏུ་དཔོན་ལྷ་བཙུན་པ་བྱང་ཆུབ་འོད་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཐུགས་སྨོན་དུ་འགྱུར་ནས། གཙུག་ལག་ཁང་འདི་གསོལ་བ་མཛད་དེ། དེའི་བཀའ་རིན་པོ་ཆེས་བསྐལ་བ་སྟོང་དུ་འགྱུར་བས་བདག་ཅག་སྡུག་ཡལ་ས།

2. དེས་ན་དྲི་གཙང་ཁང་གི་རི་མོ་བྲིས་པ་ལ་དགེ་སློང་ཞེས(?)ཁ་རྒྱུ་བདག་པོ་རྒྱུ(7)་དང་བསྟོ་བ་བྱེད་པར་འདོད་བསྐྱེས་དེ་བརྗོད་པ་ནི། (8)གང་ཞིག་ཐུག་རིང་



लुज पनघट शिलालेख



सराहन प्रशस्ति

पहाड़ी रियासतों के राजचिह्न



रतेश



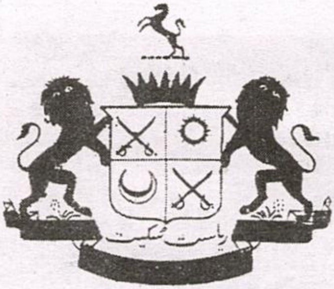
सिरमौर



क्योंथल



कुनिहार



सुकेत



धामी

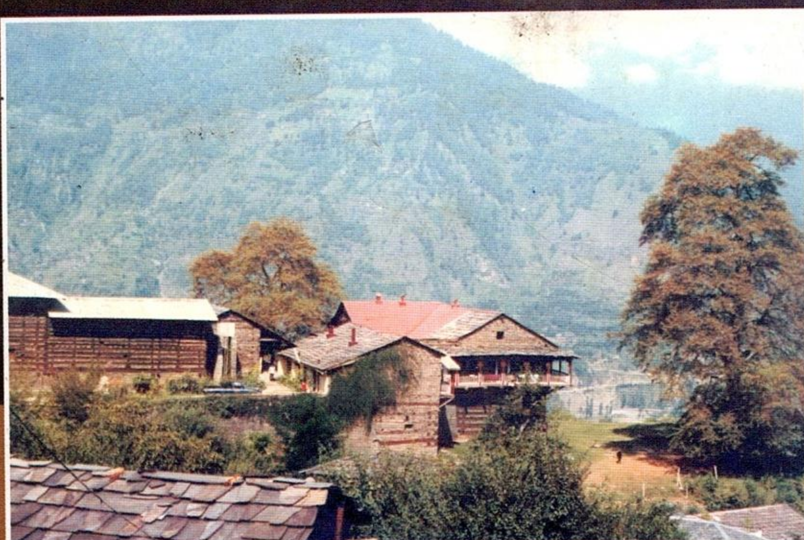


कोटी



चंबा





सुहानी बुक्स

ISBN—978-93-80927-31-2